प्रस्तावना

जैन आगम ग्रन्थों में प्रथमानुयोग के शास्त्रों में महान् पुरुषों के चरित्र के साथ २ अनेक शिक्षाप्रद जन कल्याणकारी उपदेश भरा पड़ा है। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने प्रथमानुयोग के शास्त्र को समीचीन बोध का ज्ञान कराने वाला कहा है। कथा साहित्य में अभिरुचि रखने वाले मनुष्य के लिये भी पुराण शास्त्र बहुत लाभकारी हैं। जैन वाङ्मय में प्रवेश करने वाले जिज्ञासु को प्रथमानुयोग के महान् शास्त्र सम्यक्ज्ञान के द्वार कहे जा सकते हैं।

जैन कथा शास्त्रों में आख्यान व चारित्र बड़े रोचक और अपने विषय को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम हैं। अनेक मनुष्यों ने इन शास्त्रों के स्वाध्याय से अपने को लाभान्वित किया है और भविष्य में भी करते रहेंगे। हमारे पौराणिक शास्त्रों के अनेक सजीव वर्णन हृदयतल को स्पर्श करने वाले और भव्य जीवों को संसार से विरक्त करने में प्रेरणादायक हैं।

प्रस्तुत धर्मामृत ग्रन्थ भी जैन कथा ग्रन्थों में से एक बहुत सरस कथानकों का रोचकता से वर्णन करने वाला काव्य शैलि का सुन्दर ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ श्री नयसेन आचार्य द्वारा रचा हुआ मूलतः कन्नड़ भाषा में है उसका हिन्दी अनुवाद, हिन्दी व संस्कृत, कन्नड़ आदि भाषाओं के विद्वान् आचार्य १०८ श्री देशभूषण जी महाराज ने किया हैं। आपने और भी अन्य कन्नड़ ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद कर उन्हें प्रकाशित कराकर समाज का बड़ा उपकार किया है। इस ग्रन्थ में १४ रोचक कथाएं हैं, शैली बहुत सुन्दर है अनुवाद भी अच्छा है। स्वाध्याय करने वालों को पूरा ग्रन्थ पढ़ जाने की रुचि बनी रहती है। काव्य—अलंकार आदि से अलंकृत होने से ग्रन्थ की सौन्दर्यता बढ़ गई है। इसमें कथाओं के साथ श्रावक धर्म का निरूपण सुन्दर ढंग से किया गया है।

कथाओं का संक्षिप्तसार निम्न प्रकार है।

पहली कथा वसुभूति और दयामित्र सेठ की है। इस कथा में सम्यक्त्व की महिमा बतलायी गयी है। वसुभूति ब्राह्मण ने धन के लोभ से कृत्रिम जिन दीक्षा ली। उसे मुनि दीक्षा में नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव हुआ, परन्तु प्रलोभनों के कारण वह आठ दिन तक मुनि बना रहा। इसी बीच घटना चक्र के बदल जाने से लुटेरों द्वारा वसुभूति घायल होगया। दयामित्र ने उसे आत्मधर्म का उपदेश दिया, फलतः वसुभूति को सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया। सांसारिक पदार्थों से उसका मोह हट गया और उसे जैनधर्म की सत्यता पर विश्वास हो गया। मृत्यु के पश्चात् वसुभूति ने स्वर्गलाभ किया। यह कथा इतनी कौतूहल वर्धक है कि आरम्भ करने पर, समाप्त किये बिना जी नहीं मान सकता है। श्रावकधर्म और सम्यग्दर्शन का यथा स्थान उपदेश दिया गया है।

दूसरी कथा निःशंकित अंग की महत्ता बतलानेवाली ललितांगदेव की है। इस कथा से स्पष्ट है कि पापी से पापी मनुष्य का भी जैनधर्म द्वारा सुधार हो सकता है। इस धर्म के सिद्धान्तों का पालन ऐश्वर्य और विभूति को ही नहीं देता, अपितु आत्मकल्याण कर देता है। अर्हन्त भगवान् की भक्ति कल्पवृक्ष तुल्य है, जो व्यक्ति वीतरागी प्रभु की शरण में पहुँच जाता है, उनके आदर्श द्वारा अपनी आत्मा को उन जैसा ही बनाने का प्रयत्न करता है, वह व्यक्ति निश्चय ही उन जैसा भगवान् बन जाता है। जैनादर्श व्यक्ति को हीन या निःशक्त नहीं मानता है फलतः प्रत्येक आत्मा परमात्मा है, विकारों को दूर करने से प्रत्येक आत्मा निश्चयतः परमात्मा बन जाती है। ललितांगदेव कितना बडा उपद्रवी और अधर्मात्मा था, परन्तु कर्म पर आरुढ़ होते ही, उसके पाप और विकार भस्म हो गये। निर्भय होकर विश्वास पूर्वक जो आत्मधर्म का पालन करता है, उस व्यक्ति के लिए आत्म कल्याण दूर नहीं है। निःशंकित अंग की कथा शंका रहित सांसारिक प्रलोभनों का त्याग करने के लिये उत्साहित करती है।

तीसरी कथा निःकांक्षित अंग की महत्ता प्रकट करनेवाली अनन्तमती की है। अनन्तमती के ऊपर कितने संकट आये, विपत्तियों के पहाड़ गिरे, पर वह अपने कर्त्तव्यपथ से विचलित न हुई। अनन्तमती ने धर्म की आराधना किसी फल प्राप्ति की आकांक्षा से नहीं की. प्रत्युत धर्म आत्मा का स्वरूप है, अतएव धर्म में स्थिर रहना ही मानवता है, ऐसा निश्चय कर वह अपने कर्तव्य में दृढ़ रही।

वयस्क हो जाने पर माता--पिता ने अनन्तमती से विवाह करने के लिये आग्रह किया, प्रेम पूर्वक समझाया, परन्तु वह हिमालय की चट्टान के समान अपने मार्ग में अडिग रही। संसार का कोई भी प्रलोभन, कोई भी शक्ति उसे विचलित न कर सकी। यह प्रचलित अनन्तमती की कथा की अपेक्षा विस्तृत है। कथानक को लेखक ने काफी विस्तार दिया है। घटनाचक्र और परिस्थितियों का ऐसा आयोजन किया है, जिससे अनन्तमती के चरित्र पर पूरा प्रकाश पड़ता है। धर्म में स्थिर रहनेवालों की महत्ता दृष्टि गोचर हो जाती है।

चौथी कथा में निर्विचिकित्सा अंग का समुचित पालन करने से क्या फल प्राप्त होता है तथा सेवा कार्य प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को कितना उन्नत बनाता है, को अभिव्यक्त किया है। जो व्यक्ति घृणा, द्वेष और मात्सर्य आदि दुर्भावों का परित्याग कर सेवामार्ग में लग जाते हैं, वे अपना कल्याण अवश्य कर लेते हैं। राजा उद्दायन ऐसा ही धर्मात्मा व्यक्ति था; दान देना, सेवा करना, मानवमात्र की सहायता करना राजा उद्दायन का जीवन व्रत था। सेवक यश प्राप्त करने के साथ, परलोक में सद्गति पाता है। उसकी आत्मा निर्मल होती हैं; वह प्रलोभनों को ठुकरा देता है और अवसर आने पर समस्त जन्म-मृत्यु के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए तपस्या करने लगता है। महाराज उद्दायन ने सेवामार्ग का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

पांचवीं कथा में अमूढ़दृष्टि अंग की महत्ता बतलायी गयी है। सच्चा विश्वास कितना फलदायक होता है, यह रेवतीरानी की दृढ़ता से स्पष्ट है। यों तो रेवती रानी की कथा और भी कई जगह आयी है, परन्तु इस ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक श्रावक धर्म का निरूपण

करते हुए इस कथा का प्रतिपादन किया गया है। ज्ञान और चारित्र सम्यक्त्व के बिना झूठे हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी भी सम्यक्त्व के अभाव में नर्क, निगोद के पात्र बनते हैं। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य बाह्य आडम्बरों को जीवन में सरलता से स्थान दे देता है, धर्म और आत्माचरण के नाम पर आडम्बर और गुरुडम जीवन को खोखला बनाकर प्रविष्ट हो जाते हैं। इस कथा में आडम्बर और गुरुडमों को जीवन से पृथक् कर जीवन को सात्विक बनाने के लिए जोर दिया है। प्रत्येक विचारक व्यक्ति को आत्म शोधन करने के लिए प्रलाभनों का त्याग करना पड़ता है। संसार के मोहक पदार्थ नाना रूप धर कर लुभाने के लिए सामने आते हैं, परन्तु दृढ़व्रती इनके प्रलोभनों में नहीं आता है। मुनि हो अथवा श्रावक दोनों ही को प्रलोभनों का त्याग करना चाहिए। अहंकार और ममकार आत्मा के शत्रु हैं, जो इनके आधीन रहता है, वह निश्चयतः आत्मधर्म से च्युत है।

दीक्षा लेना आसान है, भावुकता में आकर कोई भी व्यक्ति दीक्षा ले सकता है; परन्तु उसका यथार्थ निर्वाह सब किसी से नहीं हो सकता है। यशोलिप्सा, धनलिप्सा या अन्य पदार्थों की लिप्सा का सर्वथा त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। जो साधक है, उसका ध्येय एकमात्र आत्मशोधन होना चाहिए; आदि बातें इस कथा में निरूपित अभव्यसेन मुनि के चरित्र से स्पष्ट हैं। अभव्यसेन मुनि ने आगम का खूब अध्ययन किया था, उनका यश भी सर्वत्र व्याप्त था; परन्तु सम्यक्त्व के अभाव में उन्हें दुर्गति में जाना पड़ा। धर्म दिखाने की वस्तु नहीं है, यह तो आत्मा की अपनी विभूति है। जो व्यक्ति संसार, शरीर और विषयों से विरक्त हो जाते हैं; वे अपनी आत्मा का शोधन करने में समर्थ होते हैं।

छठवीं कथा उपगूहन अंग की विशेषता प्रकट करनेवाली है। इस अंग का पालन जिनेन्द्रदत्त सेठ ने किया था। प्रायः प्रत्येक मनुष्य अपनी गलतियों और त्रुटियों को न देखकर दूसरों की गलती और त्रुटियों को देखता है। परिणाम यह निकलता है, हम दूसरों की गलतियां ही देखते रह जाते हैं, अपना सुधार नहीं कर पाते। उपगूहन अंग की कथा बतलाती है कि मानवता यही है कि दूसरों के दोषों का आच्छादन कर उन्हें मार्गपर लाना। यदि पापी या अधर्मात्मा को दुरदुराया जाय, तो उसका सुधार कभी नहीं हो सकता है। घृणा हमें पाप से करनी चाहिए, पापी से नहीं। जो मनुष्य अपने दोषों और गलतियों का अवलोकन करता है, उसे अन्य की गलतियां कभी दिखलायी ही नहीं पड़ती। कहावत प्रसिद्ध है कि नजदीक की वस्तु ठीक दिखलायी नहीं पड़ती, उसके गुण दोष आंखों से तिरोहित रहते हैं; इसी कारण हमें अपने गुण-दोष नहीं दिखलायी पड़ते। अपना बड़ा से बड़ा दोष भी गुण ही प्रतीत होता है और दूसरे का छोटे-से-छोटा दोष भी बड़ा दिखलायी पड़ता है। अतएव उपगूहन अंग का पालन करना-पर के दोषों का आच्छादन करना मानवता है। परन्तु इस बात का सदा खयाल रखना चाहिये कि जिसके दोषों का समाज में अकीर्त्ति के भय से आच्छादन किया जा रहा है, उसके वे दोष किसी भी तरह निकाल दिये जायं। चाहे एकान्त में प्रेम से समझाकर अथवा जैसे भी हो, उस तरह से दोषों का परिमार्जन करना आवश्यक है। समाज में

पाप की वृद्धि न हो, इसीलिये दण्ड व्यवस्था का प्रचलन हुआ था। अतएव उपगूहन अंग का गलत प्रयोग नहीं करना चाहिये। इस अंग के पालन करनेवाले जिनेन्द्रदत्त ने सूर्य चोर के आत्मप्रक्षालन के लिए अनेक यत्न किये और अपने उपदेश द्वारा उसे धर्ममार्ग पर लगाकर ही छोड़ा। केवल पाप के छिपा देने से पाप का अन्त नहीं होता और न व्यक्ति का सुधार ही। अतः जहां तक संभव हो ईर्ष्या, घृणा, द्वेष आदि से रहित होकर पापी के पापको दूर करने का यत्न करना चाहिए।

सातवीं कथा स्थितिकरण अंग के पालन करनेवाले वारिषेण कुमार की है। इस कथा से यह स्पष्ट है कि एक सच्चा मित्र किस प्रकार अपने मित्र का कल्याण कर सकता है। मित्र का कार्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं है, प्रत्युत मित्रका सुधार करना है। वारिषेण कुमार ने अपने मित्र पुष्पडाल का कितना उपकार किया। दीक्षा से विचलित होते हुए मित्र को आत्मकल्याण में स्थिर किया। वस्तुतः आज वारिषेण कुमार जैसे मित्रों की ही आवश्यकता है, जो विषय-कषायासक्त व्यक्ति को आत्मशोधन में प्रवृत्त कर सकें। आज तो ऐसे ही मित्र मिलते हैं, जो सुमार्ग की अपेक्षा कुमार्ग में घसीट ले जाते हैं। वारिषेण कुमार ने विचलित होते हुए अपने मित्र पुष्पडाल को नाना प्रकार के उपाय कर आत्मकल्याण में स्थिर किया।

पुष्पडाल का चरित्र हमें यह वतलाता है कि मनुष्य की आसक्ति वहुत बुरी वस्तु है। वारह वर्षों तक मुनि बने रहने पर भी पुष्पडाल अपनी स्त्री के मोह में आसक्त रहा। आत्मकल्याण करने के स्थान पर उसके रूप लावण्य का विचार करता रहा। विषय-भोगों का लुभावना रूप साधारण मानव को कितना कष्ट पहुँचाता है, कितना अस्थिर रखता है; यह इसके चरित्र से स्पष्ट है। यह कथा वड़ी ही रोचक है। वीच-वीच में दिया गया धर्मोपदेश जन्मजरा रूपी मलेरिया को दूर करने के लिए चीनी लपेटी कुनैन की गोली है।

आठवीं कथा वात्सल्य अंग के धारी विष्णु कुमार मुनि की है। इस कथा में वताया गया है कि साधर्मी भाई से वात्सल्य भाव रखना, संकट में सहायता पहचाना और उसके साथ हर तरह का सहयोग रखना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। जो स्वार्थवश अपना ही लाभ सोचते हैं, अन्य व्यक्तियों के लाभालाभ का विचार नहीं करते, वे मानव नहीं, दानव हैं। मानव शब्द ही इस वात का द्योतक है कि विवेक शील वनकर प्रेम भाव से रहना तथा परोपकार में सदा प्रवृत्ति करना। धर्म द्वेष व्यक्ति को कितना नीचे गिरा देता है, यह राजा वलि के आचरण से स्पष्ट है। सहन शीलता जीवन के विकास के लिए एक आवश्यक और उपयोगी गुण है। जो व्यक्ति छोटी-सी वातको लेकर रुष्ट हो जाता है और वदला लेने की भावना को मन में बैठा लेता है, वह व्यक्ति नीच प्रकृति का है। संसार में नाना तरह के मनुष्य हैं, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और वौद्धिक योग्यताओं के कारण उनके विचार भी नाना तरह के हो सकते हैं। अतएव समबुद्धि या सहिष्णु वनना वहुत आवश्यक है। वलि आदि मन्त्रियों की ईर्ष्या ने कितना वड़ा अनर्थ किया होता, यह इस कथा से स्पष्ट है। जो परोप-कारी हैं, वे अपने कल्याण को छोड़कर दूसरों की सहायता के लिए सदा तत्पर रहते हैं। श्री विष्णुकुमार मुनि का चरित्र ऐसा ही है।

अतएव जीवन में वात्सल्य भाव को अपनाना, प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करना और दुःख-संकट में बिना स्वार्थ के दूसरों की सहायता करना प्रत्येक मानव का धर्म है।

नौवीं कथा में प्रभावना अंग की महत्ता बतलायी गयी है। इस अंग का पालन वज्रकुमार मुनि ने किया है। प्रचलित कथा की अपेक्षा इसमें अनेक अवान्तर कथाएं आयोजित की गयी हैं। अवान्तर कथाओं के रहने से कथा रोचक बन गयी है। धर्म मार्ग का उद्योग करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को सदा तैयार रहना चाहिए। धर्म वह रसायन है, जिनका सेवन कर कोई भी व्यक्ति संसार सागर से पार होने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। एतएव धर्म के प्रचार, प्रसार और विकास में सदा सहयोग देना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। वज्रकुमार मुनि ने धर्म प्रचार के लिए संकट सहकर भी ओहिली देवी के जैनरथ को चलाया। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को धर्मात्माओं की सेवा करना, धर्ममार्ग का उपदेश देना, दुःखी और दीन प्राणियों को धर्म का सच्चा स्वरूप समझाकर अच्छे मार्ग पर लगाना चाहिए।

दसवीं कथा अहिंसा धर्म की विशेषता प्रकट करने वाली है। समाज और व्यक्ति को अहिंसा के द्वारा ही शान्ति प्राप्त हो सकती है। राग, द्वेष और मोह के अधीन होकर ही व्यक्ति हिंसा में प्रवृत्त होता है। किसी को बुरी बात कहना, किसी की निन्दा करना, अपने या पर के परिणामों में आकुलता का उत्पन्न होना हिंसा है। विश्व में सर्वदा अहिंसा के द्वारा ही शान्ति हो सकती है। अपने प्राण जितने प्रिय हैं, उतना संसार का कोई पदार्थ नहीं। अतः मरने से प्रत्येक प्राणी घबड़ाता है, जो व्यक्ति दूसरों की हिंसा करता है या दूसरों को कष्ट पहुँचाता है वह कभी सुखी नहीं हो सकता। दूसरों का सुख छीन कर स्वयं सुखी बनना उपहास्यास्पद है। इस कथा में बताया गया है कि धनकीर्त्ति कुमार को मारने के लिए श्रीदत्त ने कितने प्रयत्न किये परन्तु वह उसकी कुछ हानि नहीं कर सका और स्वयं सकुटुम्ब मृत्यु का ग्रास बना। जो दूसरों का बुरा करना चाहता है, उसका बुरा अपने आप हो जाता है।

इस कथा में निष्पिल गुणपाल सेठ के आख्यान से यह प्रसिद्ध है कि विधर्मी को कन्या कभी नहीं देनी चाहिये। आज जो लोग जाति मोह में आकर विधर्मी को कन्या दे देते हैं, वे गुणपाल सेठ के आख्यान से शिक्षा लें। गुणपाल को विधर्मी राजा को कन्या न देने के कारण अपनी सारी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ा और अनेक कष्टों को सहन करना पड़ा।

अहिंसा धर्म कितना सुख देने वाला है, इसके द्वारा शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, संसार के सभी अभीष्ट कार्यों की सिद्धि हो जाती है, यह धनकीर्त्ति कुमार की कथा से स्पष्ट है। धनकीर्त्ति कुमार ने अपने पूर्वभव में सिर्फ एक मछली की ही जान बचायी थी, उसीके कारण अनेक बार उसके प्राण बचे।

ग्यारहवीं कथा सत्याणुव्रत की महत्ता बतलाने के लिए लिखी गयी है। जीवन में अहिंसा धर्म को उतारने के लिए सत्य का पालन करना भी परम आवश्यक है। निन्द्यवचन, कठोरवचन और किसीके दिल को दुखाने वाले वचन असत्य वचन के अन्तर्गत हैं।

असत्य भाषण करने से संघश्री की क्या दुर्गति हुई, यह इस कथा में बतलाया गया है। धनद राजा ने बौद्धधर्मानुयायी संघश्री को जैनधर्म में दीक्षित कर भी लिया, किन्तु अपने गुरु के बहकाने में आकर संघश्री असत्य भाषण कर पुनः बौद्ध हो गया। असत्यभाषण के कारण संघश्री को अन्धा बनना पड़ा। जो व्यक्ति जीवन में सत्यव्रत का पालन करते हैं, उनका आत्मकल्याण होते विलम्ब नहीं होता। सत्य जीवन के लिए अमृत है। अमृत शान्ति, तृप्ति और अमरत्व प्रदान करता है पर सत्य को पाकर कोई भी व्यक्ति सिद्ध बन जाता है।

बारहवीं कथा तो इतनी रोचक और ज्ञानवर्द्धक है कि पाठक सत्य को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हुए बिना नहीं रह सकता है। जीवन सत्य जो कि कठिन आवरण में छिपा रहता है, इस कथा द्वारा प्रकाश में आ जाता है। गलतफहमी के कारण स्वार्थवश मनुष्य कितना नीच हो सकता है, धर्मात्माओं पर कितने अत्याचार कर सकता है, यह इस कथा में वर्णित जिनदत्त सेठ के आचरण से स्पष्ट है। धनका मोह मनुष्य को कितना जघन्य कृत्य करने के लिए प्रेरित करता है, यह भी इस कथा से स्पष्ट है। यों तो इस कथा में अचौर्यव्रत की महत्ता बतलाने के लिए कई अवान्तर कथाएं भी आई हैं, ये सभी कथाएं रोचक और आत्म शोधक हैं।

तेरहवीं कथा शीलव्रत की महत्ता बतलाने के लिये लिखी गयी है। इस व्रत में अपूर्व शक्ति है, इसके द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा शक्ति का विकास करता है। राग-द्वेष रूप विभाव परणति ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने से दूर हो जाती है। शील के प्रभाव से संसार में बड़े सा बड़ा कार्य सुकर और सरल हो जाता है। जीवन और जगत् की वास्तविक परिस्थिति का सम्यक् बोध शीलव्रत के पालन करने पर ही होता है। इस कथा में प्रमातिकुमार और चन्द्रलेखा का अद्भुत चरित चित्रित किया गया है।

चौदहवीं कथा में परिग्रह के दोषों का विवेचन करते हुए अपरिग्रह की विशेषता बतलायी गयी है। तृष्णा और लालसा व्यक्ति को कितना बेचैन रखती है, जीवन के अन्तिम क्षण पर्यन्त भी ये विकार बढ़ते ही रहते हैं। विषयाशक्ति को लेकर मरण करने से व्यक्ति तिर्यंच आदि योनियों में परिभ्रमण करता है। इस कथा में बतलाया गया है कि राजा अनुपरिचर ने मृत्यु के समय परिग्रह में आसक्ति रखने के कारण सर्प योनि में जन्म ग्रहण किया। अनन्तवीर्य महाराज द्वारा सम्बोधन प्राप्त होने पर अपने शत्रु से बदला लेने की भावना के कारण वह भवनवासी देव हुआ। पश्चात् वहां से च्युत होकर इसी राजा का जीव हस्तिनापुर के राजा जयदत्त के यहां गुरुदत्त नामका पुत्र हुआ और समय पाकर समस्त परिग्रह का त्यागकर आत्मकल्याण किया। आचार्य ने परिग्रह को समस्त पापों का खजाना बतलाया है। इस एक पाप के कारण असंख्यात पाप करने पड़ते हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में कथाओं के सहारे धर्म के ऊंचे ऊंचे सिद्धान्तों का विवेचन किया है। श्रावकाचार की प्रायः सभी बातें इस ग्रन्थ में बतलायी गयी हैं। प्रत्येक श्रावक को किन किन नियमों का पालन करना आवश्यक है तथा उन नियमों के पालन करने से जीवन किस प्रकार सुखी हो सकता है, यह धर्मामृत की कथाओं से स्पष्ट है। तत्त्व, सम्यग्दर्शन, कर्मसिद्धान्त और षट् द्रव्य के विवेचन के साथ श्रावक के पञ्चाणुव्रत, सप्तव्यसन त्याग, अष्टमूलगुण, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों का वर्णन भी इस ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक किया गया है। आहार दान विधि, दाता के गुण, पात्र की योग्यता आदि पर भी यथास्थान प्रकाश डाला गया है।

विषय प्रतिपादन करने की विधि अत्यन्त सरल और सरस है। कथात्मक शैली धर्मनिरूपण के लिए विशेष आकर्षक और रोचक मानी गयी है। पुराण-साहित्य इसी शैली में लिखा गया है, इसी कारण आबाल-वृद्ध सभी के लिये यह साहित्य नितान्त उपादेय माना जाता है।

ग्रन्थ कर्त्ता आचार्य श्री नयसेन

इस ग्रन्थ के रचयिता श्री नयसेन आचार्य हैं, ये नयसेन आचार्य व्याकरण, साहित्य, धर्म सिद्धान्त आदि के महान् विद्वान् थे। उत्तर वर्ती कवियों ने उन्हें "सुकवि निकरपिकमानंद" "सुकविजनमनः सरोज राजहंस," "वात्सल्य रत्नाकर" आदि विशेषणों से विभूषित किया है। इनके गुरु का नाम श्री नरेन्द्र सेन था–इन्हें त्रैविद्य चक्रवर्ती कहा जाता था इसका आशय यह है कि सब विषयों के ज्ञाता श्रेष्ठ विद्वान् आचार्य थे।

श्री नयसेन आचार्य संस्कृत, तामिल, कन्नड़, प्राकृत आदि भाषाओं के महा पंडित थे। इनने धर्मामृत के अतिरिक्त कन्नड़ भाषा का एक व्याकरण भी रचा है। इन्होंने स्वयं अपने को तर्कवागीश कहा है तथा अपने को चालुक्य वंश के भुवनंक मल्ल द्वारा वन्दनीय कहा है। इन नयसेन आचार्य का समय ईस्वी सन् की बारहवीं शती का पूर्वार्द्ध है। यह धर्मामृत में आये पद्य से सिद्ध होता है।

ग्रन्थ का प्रकाशन

यह धर्मामृत ग्रन्थ अत्यंत रुचिपूर्ण व सरल, शास्त्र है...इसके प्रकाशन का समाज में अच्छा स्वागत हुआ है। पूज्य आचार्य १०८ श्री देशभूषण जी महाराज ने कन्नड़ से इसका हिन्दी रूपान्तर कर जिनवाणी का महान् प्रचार किया है, अतः पूज्य आचार्य श्री का हम ही नहीं समस्त दि० जैन समाज जितना भी आभार मानें थोड़ा है। इससे पूर्व इस ग्रन्थ का प्रकाशन दो बार हो चुका है। एक तो श्री देशभूषण स्याद्वाद ग्रन्थमाला श्री स्याद्वाद प्रकाशन मंदिर आरा से प्रकाशित हुआ है, जिसकी प्रति के आधार पर ही श्री शांतिवीर दि० जैन संस्थान श्री शांतिवीर नगर (महावीर जी) की तरफ से प्रकाशित होकर यह ग्रन्थ फिर से समाज के सामने आरहा है। दूसरी बार धर्मामृत देहली से प्रकाशित हुआ वह इतना बड़ा विशाल रूप में प्रकाशित हुआ है कि सर्व साधारण का उसे खरीद कर लाभान्वित होना दुर्लभ है। इसीलिये पूर्व प्रकाशित संक्षिप्त प्रति के प्रचार की आवश्यकता का अनुभव करते हुए इस धर्मामृत को संस्थान की तरफ से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

श्री शांतिवीर दि० जैन संस्थान के अधिष्ठाता श्रीमान् ब्र० लाडमल जी की बहुत समय से इस ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन की भावना थी। समाज में इस ग्रन्थ की बढ़ती हुई मांग से, उस मांग की पूर्ति करने की आपकी सदिच्छा से ही यहां इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है समाज में इसका उचित स्वागत होगा। हम श्री शांतिवीर दि० जैन संस्थान की तरफ से पूज्य विद्वान् आ० १०८ श्री देशभूषण जी महाराज तथा पूर्व आवृत्तियों के प्रकाशकों का हार्दिक आभार प्रकट करते हैं कि उनके प्रयत्न से ही यह अमूल्य ग्रन्थ समाज के हाथ में आया है और हमारे संस्थान ने भी धर्म प्रचार की भावना से उनका ही अनुसरण किया है। अगर पूज्य आ० १०८ श्री देशभूषण महाराज का प्रयास चलता रहा तो ऐसे अनेक ग्रन्थ जो कि कन्नड भाषा में सरस्वती भंडारों में पड़े हुए हैं उनका हिन्दी रूपान्तर होकर समाज के सामने आएंगे, जिससे समाज को लाभ प्राप्त हो सकेगा। इत्यलम्।

महेन्द्र कुमार जैन "महेश" शास्त्री श्री शांतिवीर नगर (श्री महावीर जी)

धर्मामृत

विषय-सूची

श्रीवीतरागाय नमः

❁ धर्मामृत–हिन्दी भाषान्तर ❁

भाषान्तरकार का मंगलाचरण

महावीरवक्त्रारविन्दध्वनेश्च, ययोः पादपद्मात् सुसद्वृत्तिलाभः ।
ममाभूत्तयोः शान्तिसिन्धुं नमामि, नमामि प्रभुं पायसिन्धुं किलाद्य ॥ १ ॥
शान्तान्तरात्मसमुदञ्चित साधुवृत्तिः शश्वत्तपः परमसंयमसत्प्रवृत्तिः ।
शब्दप्रयोगसमलङ्कृतवाग्विभूतिः, शं सन्तनोतु जगतो जयपूर्वकीर्तिः ॥ २ ॥
निःशेषशास्त्रपरिशीलनलब्धबोधम्, राजाधिराजपरिपूजितपादपद्मम् ।
आचार्यवर्यजयकीर्तिगुरुं प्रणम्य, धर्मामृतस्य सरलां वितनोमि भाषाम् ॥ ३ ॥
आचार्यवर्यमथसन्नयसेनमर्च्यम्, विद्यातपोविगतकल्मषसूर्यभासम् ।
लोकान् सदा सदुपदेशकृतार्थयन्तम्, ज्ञानस्वरूपममलं मुनिमानतोऽस्मि ॥ ४ ॥
स्वस्वल्पबुद्धिविभवोऽपि मुनेः प्रसादात्, तस्योपदेशवचनस्य महत्तरस्य ।
श्रीदेशभूषणमुनिर्जनबोधनाय, हिन्दीनिबन्धमभिमञ्जुलमातनोमि ॥ ५ ॥

महावीर स्वामी को नमस्कार

जिन वीर प्रभु ने अन्तरंग केवल ज्ञानादि और बहिरंग समवशरणादि लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया है तथा जिनके चरण कमलों में इन्द्र, प्रतीन्द्र, दानवेन्द्र प्रभृति देव सतत नमस्कार करते हैं; जिससे उनके मुकुटों में लगी हुई मणियों में प्रभु के चरण कमल प्रतिबिम्बित होते हैं। और जो भव्यजीवों के लिये कल्पवृक्ष के समान सुखदायक हैं; उन वीर प्रभु को मैं मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूं।

विवेचन—आस्तिक परम्परा में किसी भी कार्य के प्रारम्भ में इष्टदेव को नमस्कार रूप मंगलाचरण करना शिष्टता का द्योतक माना गया है। न्याय शास्त्र में निर्विघ्न कार्य समाप्ति, शिष्टाचार-परिपालन, शिष्य परीक्षा, नास्तिकता परिहार और कृतज्ञता ज्ञापन ये पांच हेतु मंगल-स्तवन करने के बताये हैं। जैन परम्परा में प्रधानरूप से आत्मशुद्धि के लिये ही मंगल-स्तवन करने की परिपाटी है। प्रस्तुत ग्रन्थकर्त्ता नयसेनाचार्य ने अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के चरण कमलों को नमस्कार किया है। वह किसी लौकिक या पारलौकिक कामना को भगवान् से पूरा नहीं कराना चाहता है, क्योंकि वीर प्रभु सृष्टि के कर्त्ता नहीं हैं। आचार्य का अभिप्राय मंगल-स्तवन का यह है कि अनादिकाल से चली आयी कर्म-परम्परा को वीर प्रभु के आदर्श द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है, अतः वीर प्रभु ही मंगलरूप हैं। वही सच्चे देव हैं, अरिहन्त हैं, कर्म कलंक से रहित हैं; उन्हीं के प्रतिपादित आदर्श मार्ग पर चलने से मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है।

सच्चे देव में सर्वज्ञता, वीतरागता और हितोपदेशिता इन तीन गुणों का होना परमावश्यक है। आकाश में चलने छत्र-चमर आदि नाना प्रकार की विभूतियों के होने, आश्चर्य में डालनेवाली नाना प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं के होने, दूसरों की लौकिक कामनाओं को पूर्ण करने, देवों द्वारा उत्सव मनाये जाने, संसार को बनाने या बिगाड़नेवाला

१–'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य'–केवल ज्ञान संसार के सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से जानता है। आत्मा के ऊपर कर्मों का आवरण पड़ने से ज्ञान गुण आच्छादित हो जाता है, जब यह आवरण पुरुषार्थ द्वारा दूर कर दिया जाता है तो समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप में देखने की शक्ति आ जाती है।

—तत्त्वार्थ सूत्र अ० १ सू० २९

होने एवं चमत्कारी बातों को उत्पन्न करने से कोई सच्चा देव नहीं हो सकता है[1]। सच्चे देव में पहले गुण सर्वज्ञत्व[2] का होना आवश्यक है अर्थात् जो संसार के समस्त पदार्थों को प्रत्यक्षरूप से जान सके; क्योंकि ज्ञान का स्वभाव पदार्थों को जानना है, जब तक इस ज्ञान पर पर्दा पड़ा रहता है, तब तक उसके जानने रूप स्वभाव का तिरोभाव या हीनाधिकता होती है। जब ज्ञान को आवृत्त—ढकनेवाले ज्ञानावरणीय कर्म का अभाव हो जाता है तो आत्मा का पूर्ण ज्ञान गुण प्रकट हो जाता है, जिससे सच्चा देव संसार के समस्त पदार्थों को जान व देख सकता है।

वीतरागता[3]—क्षुधा, तृषा, भय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, बुढ़ापा, रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति आश्चर्य, जन्म, नींद और शोक इन अठारह दोषों से रहित होना है। संसारी प्राणी अनादि काल से क्रोधादि कषाय, अज्ञान एवं विषय वासनाओं के वशीभूत हैं, जिससे वे जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि के दुःखों को भोग रहे हैं। साधारणतः उपर्युक्त अठारह दोष प्रत्येक संसारी प्राणी में वर्तमान हैं, जो इन दोषों के वशीभूत है वह सच्चा देव नहीं हो सकता। असाता वेदनीय कर्म के तीव्र या मन्द उदय से होनेवाली क्षुधा, तृषा की बाधा, जो समस्त संसारी जीवों में पायी

१–देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः। मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥
अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः। दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः॥
तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः। सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः॥
—आप्तमीमान्सा श्लो० १–३

२–सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा। अनुमेयत्वतो ऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः॥
सूक्ष्मतः स्वभाव विप्रकृष्टाः। अन्तरिताः कालविप्रकृष्टाः। दूराः देशविप्रकृष्टाः। ते च।
ते अर्थाश्च सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः। तथा च स्वभावविप्रकृष्टा मन्त्रौषधिचित्तादयः।
कालविप्रकृष्टाः लाभालाभसुखदुःखग्रहेण रागादयः। देशविप्रकृष्टा मुष्टिस्थादिद्रव्यम्।
दूरा हिमवन्मन्दरमकराकरादयः। प्रत्यक्षाः अध्यक्षाः प्रत्यक्षज्ञानगोचराः।
—आप्तमीमान्सा श्लो० ५

३–क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः। न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते॥
—रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लो० ६

जाती है तथा इस बाधा को दूर करने के लिये खाद्य पदार्थों को एकत्रित करने की इच्छा होती है, यह इच्छा मोहनीय कर्म जन्य है। सच्चे देव ने इन दोनों कर्मों को ध्यानाग्नि में जला दिया है।

वीर्यान्तराय कर्म का उदय क्षुधा, तृषा जनित कष्टों को सहन करने की शक्ति का अभाव करता है, संसारी जीवों में इस कर्म के उदय के कारण ही सहन-शील शक्ति का अभाव पाया जाता है। सच्चे देव ने वीर्यान्तराय कर्म को नाश कर दिया है, जिससे उनमें अनन्त शक्ति आ गयी है। मोहनीय कर्म का क्षय होने से राग द्वेष, भय आदि का अभाव हो जाता है। राग[2] दो प्रकार का होता है—प्रशस्त और अप्रशस्त। दान, शील, पूजा, परोपकार आदि शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना शुभ—प्रशस्त राग है। विकथा[3]—स्त्रीकथा, राष्ट्रकथा, भोजन कथा, राजकथा करना, हिंसा आदि विकार उत्पन्न करनेवाले कार्यों में प्रवृत्ति करना अशुभ राग है। इह लोक भय, परलोक भय अरक्षा, अगुप्ति, मरण, वेदना और आकस्मिक ये सात प्रकार के भय; जो मोहनीय कर्म से उत्पन्न होते हैं तथा अन्तरंग[4]—कषायादि और बहिरंग[5]—धन, धान्यादि परिग्रह; क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय[6] इन सबका मोहनीय कर्म के क्षय होने से अभाव हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि सच्चे देव में ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान—पूर्ण ज्ञान, दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से अनन्तदर्शन—पूर्ण दर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से राग, द्वेष, जन्म, मरण, बुढ़ापा, भय, आश्चर्य, चिन्ता, अभिमान, हर्ष, विषाद आदि दोषों का अभाव, असातावेदनीय के क्षय से क्षुधा, तृषा का अभाव एवं अन्तराय के क्षय से

२–कालुष्यं तत्र रागादिर्भावश्चौदयिको यतः। पाकाच्चारित्रमोहस्य दृङ्मोहस्याथ नान्यथा॥ पञ्चाध्यायी अ० २ श्लोक ८८३

आत्मा के कलुषित परिणामों का नाम राग है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा के चारित्र गुण का विभाव-विकृत रूप होता है। दर्शन मोहनीय के उदय से सम्यग्दर्शन का विभाव-मोहरूप होता है।

३–आत्मकल्याण से रहित रागादि भावों का पोषण करने वाली चर्चा करना विकथा है

४–उद्यत्क्रोधादिहास्यादि षट्कवेदत्रयात्मकम्। अन्तरङ्गं जयेत्सङ्गं प्रत्यनीकप्रयोगतः॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और मिथ्यात्व इन अन्तरंग परिग्रह के चौदह भेदों को उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि की भावनाओं द्वारा जीतना चाहिये।

—सागार अ० ४ श्लो० ६०

५–गृह, क्षेत्र, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, शयन, आसन, यान, और धातु यह दस प्रकार का बाह्य परिग्रह होता है।

६–सुहदुक्खसुबहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स। संसारदूरमेरं तेण कसाओत्ति णं बेंति॥ —गोम्मटसार जीव का० गा० २८

अनन्तबल की प्राप्ति होती है। अतः अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इस अनन्त चतुष्टय का सद्भाव सच्चे देव में रहता है।

पूर्ण ज्ञानी और वीतरागी होने से सच्चे देव में हितोपदेशिता१ पायी जाती है; क्योंकि जो रागी, द्वेषी होता है, जिसकी बुद्धि में पक्षपात रहता है वह यथार्थ उपदेशक नहीं हो सकता। सच्चा२ देव न किसी की स्तुति, प्रार्थना, पूजा आदि से प्रसन्न होता है और न किसी की निन्दा से नाराज; किंतु इन कार्यों से स्वयं जीव अपनी शुभाशुभ प्रवृत्ति के कारण कर्म बंध करता है३। सच्चा देव सृष्टि का कर्त्ता नहीं४ है, यह संसार के पदार्थों को उत्पन्न कर रागी, द्वेषी नहीं होता; क्योंकि सृष्टि उत्पन्न करना राग द्वेष का कारण है। यह संसार तो अनादिकाल से स्वतः५ निर्मित हुआ चला आ रहा है, केवल वस्तुओं की पर्याय ही बदला करती हैं। द्रव्य६ की दृष्टि से यह संसार नित्य है, इसमें न कोई नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है और न किसी का विनाश ।। १ ।।

१-अनात्मार्थं विनारागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्। ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ।। —रत्न क० श्लो० ८

दोषावरण मुक्तात्मा कृत्स्नं वेत्ति यथास्थितम्। सोऽर्हंस्तत्त्वागमं वक्तु यो मुक्तो ऽनृत कारणैः ।। —आप्तस्व० श्लो० २

राग-द्वेष के नष्ट होने से स्वाधीनता की प्राप्ति होती है। जो काम, क्रोध, संग्राम, आदि क्रियाओं में प्रवृत्ति करता है, वह पक्षपाती रागी होने के कारण यथार्थ वक्ता नहीं हो सकता। —पञ्चाध्यायी अ० २ श्लो० ६०३

२-दोषो रागादिसद्भावः स्यादावरण कर्म तत्। तयोरभावो ऽस्ति निःशेषो यत्रासौ देव उच्यते ।।

निष्कलबोधविशुद्धसुदृष्टिः पश्यति लोकविभावस्वभावम्।
निष्कलबोधविशुद्धसुदृष्टिः पश्यति लोकविभावस्वभावम् ।
सूक्ष्मनिरञ्जनजीवजिनोऽसौ तं प्रणमामि सदा परमाप्तम् ।।
सूक्ष्मनिरञ्जनजीवजिनोऽसौ तं प्रणमामि सदा परमाप्तम् ।।
क्षपित दुरितपक्षक्षीणनिःशेषदोषा भवमरणविमुक्तः केवलज्ञानभानुः।
परहृदयमतार्थग्राहकज्ञानकर्ता ह्यमलवचनवक्ताभव्यबन्धुर्जिनाप्तः ।। —आप्त स्वरूप श्लो० ६३-६४

सयल-वियप्पहं तुट्टाहं सिव-पय-मग्गि वसंतु। कम्म-चउक्कइ विलउ गइ अप्पा हुइ अरहंतु ।। परमात्म प्रकाश अ० २ गा० १९५

३-न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे। तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्त दुरिताञ्जनेभ्यः ।। —बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र वासु० श्लो० ५७

४-उर्वीपर्वततरुतन्वादिकं न बुद्धिमद्धेतुकं कार्यत्वाद्धेतोरन्वयव्यतिरेकाभावात्। —प्रमेयरत्नमाला पृ० ६२

५-तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मत्रं वा यतः स्वतः सिद्धम्। तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पञ्च ।। —पञ्चा० अ० १ लो० ८

६-न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ।। —बृहस्व० श्लो० २४

सिद्ध परमेष्ठी का संस्मरण

जिस सिद्ध परमेष्ठी ने अष्टकर्मों को नाश कर अविनाशी अष्ट गुणों को प्राप्त कर लिया है और लोकाग्र–सिद्ध शिला पर विराजमान हैं तथा जो सदा अच्युत–संसार के जन्म, मरणादि दुःखों से सर्वदा के लिये रहित हो गये हैं। और जो अक्षय शक्ति के धारी हैं, जिससे वे कभी भी किसी के द्वारा पराजित नहीं हो सकते हैं। अमूर्त–निराकार, ज्ञान, दर्शन, सुख, सुक्ष्मत्व आदि समस्त गुणों से सहित, नित्य अबाधित सुख को प्राप्त होनेवाले, निर्मल उच्च गुणों के धारी सिद्ध परमेष्ठी मेरे ऊपर दया करें ॥ २ ॥

विवेचन–आत्मा में सम्यक्त्व,१ ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व ये आठ गुण होते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये कर्म इन आठ गुणों के बाधक हैं–आत्मा पर इन कर्मों का पर्दा पड़ जाने से ये गुण आच्छादित हो जाते हैं; किन्तु जब आत्मा अपने पुरुषार्थ से इन कर्मों को क्षय कर देता है, उपर्युक्त आठ गुणों का आविर्भाव हो जाता है। अभिप्राय यह है कि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से ज्ञान, दर्शनावरणीय के क्षय से दर्शन, वेदनीय के क्षय से अव्याबाधत्व, मोहनीय के क्षय से सम्यक्त्व, आयु के क्षय से अवगाहनत्व, नाम कर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, गोत्र के क्षय से अगुरुलघुत्व और अन्तराय के क्षय से वीर्य गुण की प्राप्ति होती है२

सिद्ध भगवान लोकाग्र ३–सिद्धशिला पर निवास करनेवाले हैं, यह विशेषण आचार्य ने इसलिये दिया है कि कुछ दार्शनिक, 'जीव जिस स्थान से मुक्त होता है वहीं रहता है' ऐसा मानते हैं; इसका निषेध करने के लिये दिया है। पूर्व प्रयोग४ से, असंग होने से, बन्धका नाश होने से तथा गति के परिणाम से इन चार कारणों से जीव का ऊर्ध्व गमन होता

१–कृत्स्नकर्मक्षयाज्ज्ञानं क्षायिकं दर्शनं पुनः। प्रत्यक्षं सुखमात्मोत्थं वीर्यञ्चेति चतुष्टयम्।
सम्यक्त्वं चैव सूक्ष्मत्वमव्याबाधगुणः स्वतः। अस्त्यगुरुलघुत्वं च सिद्धे चाष्टगुणाः स्मृता.॥ –पञ्चाध्या० अ० २ श्लो० ६१७–६१८
२–झाणें कम्म क्खउ करिवि मुक्कउ होइ अणंतु। जिणवरदेवइं सो जि जिय पभणिउ सिद्ध महंतु। –परमात्म० अ० २ गा० २०१।
३–तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् –तत्त्वार्थसूत्र अ० १० सू० ५
४–पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च। आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाम्बुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च –तत्त्वार्थ अ० १० सू० ६–७

मूर्तिमद्देहनिर्मुक्तो मुक्तो लोकाग्रसंस्थितः। ज्ञानाद्यष्टगुणोपेतो निष्कर्मा सिद्धसंज्ञकः। –पञ्चाध्या० अ० २ श्लो० ६०८

है अथवा घूमते हुए कुम्हार के चक्र के समान, मृत्तिका के लेप रहित तुंबी के समान एरण्ड बीज के समान या अग्नि की लौ के समान जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन वाला है। यह जीव ऊर्ध्व गमन में लोक के अग्रभाग तक ही जाता है, इससे आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन नहीं होता; अतः सिद्ध लोकाग्र निवासी हैं।

सिद्ध अच्युत गुणवाले हैं—अपने स्वभाव में ही स्थित है, अपने ज्ञान, दर्शन आदि गुणों से कभी च्युत नहीं होते अथवा 'वत्थु स्वभावो धम्मो'—आत्मा के शुद्ध स्वभाव चिदानन्द[१] रूप धर्म से च्युत—पृथक नहीं होते हैं। कर्मों को नष्ट कर अपने शुद्ध चिदानन्द रूप को प्राप्त किया है, उसी में स्थिर हैं, उससे इधर उधर होने का कोई कारण नहीं रहा है, अतः अच्युत हैं[२]।

अक्षय[३] गुणों के धारी सिद्ध परमेष्ठी हैं तथा इनके गुण कभी हीनाधिक नहीं होते हैं, इसलिये अक्षय हैं। कर्मों का अभाव होने से जन्म, जरा, मरण आदि से रहित हैं, सर्वदा अपने स्वरूप में स्थिर रहनेवाले हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त होने पर भी सदा शिव हैं, नित्य हैं, संसार में लौटकर नहीं आनेवाले हैं, अविनाशी गुणों के धारी हैं, अतः अक्षय हैं।

१—अण्णु वि बंधु वि तिहुयणहँ सासय-सुक्ख-सहाउ ॥
तित्थु जि सयलु वि कालु जिय णिवसई लद्ध-सहाउ ॥ —परमात्म० अ० २ गा० २०२

२—अच्छेद्यो ऽनवभेद्यश्च सूक्ष्मो नित्यो निरञ्जनः। अजरो ह्यमरश्चैव शुद्ध-सिद्धो निरामयः ॥ —आप्तस्व० श्लो० ५३

सिद्ध भगवान् अविनाशी हैं, किसीके द्वारा भेदने योग्य नहीं हैं, उनका स्वरूप अनुभव गम्य है। अपने पद में शाश्वत रहने वाले हैं, रागादि अंजन से रहित हैं, जरा, मरण से रहित हैं तथा आप चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति सदा करते रहते हैं।

३—अक्षयो ह्यव्ययः शान्तः शान्तिकल्याणकारकः। स्वयंभूर्विश्वदृष्टा च कुशलः पुरुषोत्तमः ॥ —आप्तस्व० श्लो० ५४

सिद्धों के गुण क्षय रहित हैं, वे कभी भी अपने द्रव्य स्वभाव से रहित नहीं होते। सिद्ध अष्टमूर्ति हैं, आठ कर्मों के नाश होने से आठ गुणों की प्राप्ति होती हैं, अतः कर्म रहित सिद्ध भगवान् इन गुणों की अपेक्षा से अष्टमूर्ति हैं। दयाध्वज हैं, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट पूर्ण अहिंसा की प्राप्ति आपने की है। अपुनर्भव सिद्ध हैं क्योंकि कर्म कालिमा के नष्ट होने से जन्म,मरण रूप संसार में फिर लौटकर नहीं आते

दग्धे बीज यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः। कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ॥ —तत्त्वार्थ रा० पृ० ३६१

जैसे—बीज के अत्यन्त जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होता है, उसी प्रकार कर्मबीज के जला देने पर जन्म—मरण नहीं होता।

अजित — काम, क्रोध, लोभ, मोहादि द्वारा अजित हैं, क्योंकि उनकी विभाव परणति दूर हो गयी है, जिससे वे कर्म संस्कार से रहित हो सदा अजित हैं। अन्तरंग — मोहरूपी शत्रु और बहिरंग मानवादि से अजेय हैं।

परिणमन क्रिया की विशेषता के कारण आत्मा में स्वाभाविकी और वैभाविकी दो प्रकार की शक्तियां हैं। जब तक यह जीव संसार में रहता है, वैभाविकी शक्ति का विभाव–स्वभाव से विरुद्ध परिणमन होता है, किन्तु जब संसार छूट जाता है, कर्मों का ध्वंश हो जाता है तो यही वैभाविकी शक्ति स्वभाव–रूप में परिणत हो जाती है और जीव सदा के लिये अजेय बन जाता है। आचार्य ने इसी भाव को दिखलाने के लिये अजित विशेषण दिया है।

अमूर्त–घातिया और अघातिया कर्म कलंक से रहित होने के कारण सिद्ध परमेष्ठी शरीर रहित अमूर्तिक हैं। काम, क्रोधादि विकारों के नहीं रहने से तथा आयु, नाम, गोत्र और सातावेदनीय के अभाव हो जाने से सिद्ध परमेष्ठी के परमौदारिक–पुण्यमय स्थूल शरीर का भी अभाव हो जाता है, इन्हें अमूर्त कहा गया है। तात्पर्य यह है कि सिद्ध परमेष्ठी[१] इन्द्रिय गोचर नहीं हैं, यह तो आत्मा का शुद्धरूप है, जो अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। गोम्मटसार में कहा है–

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥

अर्थात्–ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित, शांतिमय–अनंत सुखरूपी अमृत का पान करनेवाले, निरंजन–नवीन कर्म बंध के कारणीभूत भावकर्म रूपी मिथ्यादर्शनादि अंजन से रहित, नित्य, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अव्यावाधत्व,

१–णिहय विविहट्ठ–कम्मा तिहुवण–सिर–सेहरा विहुव–दुक्खा।
सुह-सायर-मज्झ-गया णिरंजणा णिच्च अट्ठ-गुणा॥
अणवज्जा कय-कज्जा सव्वावयवेहि दिट्ठसव्वट्ठा।
वज्जा सिलत्थब्भग्गय पडिमं वाभेज्ज-संठाणा॥

जिन्होंने नाना भेद रूप आठ कर्मों को नाश कर दिया है, जो तीन लोक के मस्तक के शेखर स्वरूप हैं, दुखों से रहित हैं। सुखरूपी सागर में निमग्न हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, आठ गुणों से युक्त निर्दोष हैं, कृतकृत्य हैं जिन्होंने समस्त पदार्थों को जान लिया है, जो अभेद्याकार से युक्त हैं, जो पुरुषाकार होने पर भी गुणों से पुरुषों के समान नहीं हैं, वे सिद्ध हैं।

अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, और अगुरुलघुत्व इन आठ गुणों के धारी कृतकृत्य[1]—जिनको कोई भी कार्य करने को शेष नहीं रहा है, ऐसे लोक के अग्रभाग में निवास करनेवाले सिद्ध परमेष्ठी होते हैं। तात्पर्य यह है कि जिन्होंने घातिया और अघातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है, लोकाकाश और अलोकाकाश को जानने देखनेवाले हैं, मुक्त हुए शरीर से किञ्चित् न्यून आकारवाले हैं, ऐसे लोकाग्र में स्थित आत्मा सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।

जैनागम में आत्मा के तीन भेद बताये हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो आत्मा इन्द्रिय सुख में आसक्त है और जो शरीर को ही आत्मा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा[2] है। अथवा सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित धर्म में जिसका श्रद्धान नहीं है, वह बहिरात्मा है। अन्तरात्मा तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य।

उत्तम अन्तरात्मा[3] छट्ठे गुणस्थानवर्ती महाव्रतों के धारी मुनिराज होते हैं, मध्यम अन्तरात्मा देशव्रतों को धारण करनेवाले नैष्ठिक श्रावक और जघन्य अन्तरात्मा अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक होते हैं। परमात्मा[4] के दो भेद हैं—सकल और निकल।

१–सर्वविवर्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।
भवति तदा कृतकृत्य, सम्यक् पुरुषार्थसिद्धिमापन्नः॥ —पुरुषार्थ सि० ११

२–मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा ति–विहु हवेइ। देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ॥
जो शरीर को आत्मा समझता है, वह वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता हुआ मूर्ख है, अज्ञानी है। —परमात्म प्रकाश अ० १ गा० १३

३–परम समाधिस्थितः सन् देहविभिन्न ज्ञानमयं परमात्मानं योऽसौ जानाति सो ऽन्तरात्मा भवति।
देह–विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ। परम–समाहि–परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ॥
यद्यपि व्यवहार नय के कारण यह जीव अनादि काल से देहमयी है, किन्तु निश्चय नय की अपेक्षा से देहादिक से भिन्न है, केवल ज्ञानमयी है। यह वीतराग निर्विकल्पक शुद्धात्मा की अनुभूति में समाधिस्थ हो जाता है। —परमात्म प्रकाश अ० १ गा० १४

४–समस्त परद्रव्यं मुक्त्वा केवलज्ञानमयकर्मरहितशुद्धात्मा येन लब्धः स परमात्मा भवति। अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्म–विमुक्कें जेण। मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण॥—समस्त पर पदार्थों को छोड़कर कर्म रहित हो जिसने अपने स्वरूप केवलज्ञान को पा लिया है, वही परमात्मा है। —परमात्म प्रकाश अ० १ गा० १५

सकल परमात्मा घातिया कर्मों को नाश करनेवाले केवलज्ञान के धारी अर्हन्त भगवान् हैं और निकल परमात्मा घातिया, अघातिया दोनों प्रकार के कर्मों से रहित, अशरीरी, अष्ट गुणों के धारी, लोकाग्र निवासी सिद्ध भगवान् होते हैं। जैन परम्परा में शुद्ध, निष्कलंक, चिदानन्द स्वरूप में अवस्थित आत्मा ही परमात्मा है, इसमें जीवात्मा से भिन्न कोई परमात्मा नहीं माना गया है, अतः शक्ति की अपेक्षा से सभी भव्य आत्माएं परमात्मा हैं ॥ २ ॥

छत्तीस गुणों से विभूषित, श्रेष्ठ पंचाचार को पालनेवाले पूर्ण अहिंसा के धारी सज्जन पुरुषों द्वारा वन्दनीय श्री आचार्य परमेष्ठी मुझे कर्म बन्धन तोड़ने में शक्ति प्रदान करें[१] ॥ ३ ॥

विवेचन—द्वादश तप, दस धर्म, पांच आचार, छः आवश्यक एवं तीन गुप्तियों का विधिवत् पालन करनेवाले आचार्य होते हैं। द्वादश तपों का वर्णन करते हुए बताया गया है—

अनशन[२]—फल की अपेक्षा न कर संयम वृद्धि के लिये जो उपवास किया जाता है, वह अनशन तप है।

अवमौदार्य[३]—संयम में सावधान रहने के लिये एवं वात, पित्त, श्लेम आदि दोषों के शमन के लिये कम भोजन करना अवमौदार्य है।

वृत्ति परिसंख्यान[४]—भोजन की प्रवृत्ति में मर्यादा करना—भोजन को जाते समय एक घर गली आदि में भोजन करने का नियम करना वृत्ति–परिसंख्यान है।

१–आचार्योऽनादितो रूढेर्योगादपि निरुच्यते। पञ्चाचारं परेभ्यः स आचरयति संयमी ॥
अपि छिन्ने व्रते साधोः पुनः सन्धानमिच्छतः। तत्समावेशदानेन प्रायश्चित्तं प्रयच्छति ॥

आचार्य मुनियों के संघ का अधिपति होता है। इसके कार्य मुनियों को दीक्षा देना, उन्हें व्रत में शिथिल देखकर सावधान करना धर्म से च्युत होने पर उन्हें प्रायश्चित्त देकर पुनः तदवस्थ करना, धर्म का उन्हें उपदेश देना, तपश्चर्या में दृढ़ करना एवं मरणासन्न मुनि का समाधिमरण कराना आदि हैं। आचार्य राग रहित शासक होते हैं, शासन करते हुए भी प्रमादी नहीं होते, शुद्धान्तःकरण विशिष्ट आत्म-ध्यान में तत्पर रहते हैं। मोह या प्रमाद के वशीभूत होकर लौकिक क्रियाओं के करनेवाले आचार्य नहीं हो सकते, अतः व्रत, तप, शील, संयम आदि के धारण करनेवाले ही गण के स्वामी हो सकते हैं।

—पञ्चाध्या० अ० २ श्लो० ६४५–४६–५८

२–दृष्टफलानपेक्षं संयम प्रसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानागमावाप्त्यर्थमनशनम्।
३–संयमप्रजागरदोषप्रशमसन्तोषस्वाध्यायादिसुखसिद्ध्यर्थमवमोदर्यम्।
४–भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारादिविषयः सङ्कल्पचित्तावरोधोवृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्यर्थम वगन्तव्यम्।

*रसत्याग*१—इन्द्रिय निग्रह, स्वाध्याय सिद्धि एवं विकारों को जीतने के लिये घृतादि रसों का त्याग करना रसत्याग तप है।

*विविक्तशय्यासन*२—ब्रह्मचर्य की सिद्धि एवं स्वाध्याय और ध्यान की प्राप्ति के लिये एकान्त स्थान—गुफा आदि में सोना, उठना, बैठना आदि विविक्तशय्यासन तप है।

*कायक्लेश*३—शरीर को सहनशील बनाने के लिये शारीरिक कष्ट स्वेच्छा से सहना कायक्लेश तप है।

*प्रायश्चित्त*४—प्रमाद या अज्ञान से लगे हुए दोषों की शुद्धि करना प्रायश्चित्त है। प्राय शब्द का अर्थ है दोष और चित्त का अर्थ है शुद्धि अर्थात् लगे हुए दोषों की शुद्धि करना प्रायश्चित्त है।

*विनय*५—बड़े मुनियों तथा पूज्य पुरुषों का आदर करना विनय है।

*वैयावृत्य*६—रोगी मुनियों की सेवा करना वैयावृत्य है।

*स्वाध्याय*७—ज्ञान की भावना में आलस नहीं करना स्वाध्याय है।

*व्युत्सर्ग*८—अन्तरंग और बाह्य परिग्रह का त्याग कर देना व्युत्सर्ग है।

१–इन्द्रियदर्पनिग्रहनिद्राविजयस्वाध्यायसिद्ध्याद्यर्थो घृतादिवृष्यरसपरित्यागश्चतुर्थं तपः।

२–शून्यागारादिषु विविक्तेषु संयतस्य शय्यासनमाबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्त्तव्यमिति पञ्चमं तपः।

–सर्वार्थसिद्धि पृ० २९४–९५

३–आतपस्थानं वृक्षमूलनिवासो निरावरणशयनं बहुविधप्रतिमास्थानमित्येवमादिः कायक्लेशः षष्ठं तपः।

४–प्रमाददोषपरिहारः प्रायश्चित्तम्। आलोचना प्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः, इति नवभेदं प्रायश्चित्तम्।

५–पूज्येष्वादरो विनयः। ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः, इति विनयश्चतुर्विधः।

६–कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण चोपासनं वैयावृत्यम्। शरीप्रवृत्त्या यात्रादिगमनेन द्रव्यान्तरेण वा यो ग्लानो मुनिस्तस्य पादमर्द्दनादिभिराराधनं वैयावृत्यमुच्यते।

७–ज्ञानभावना ऽऽलस्यत्यागः स्वाध्यायः। वाचनाप्रच्छना ऽनुप्रेक्षा ऽऽम्नायधर्मोपदेशाः, इति स्वाध्यायः पञ्चविधः। निरवद्यग्रन्थार्थोभयप्रदानं वाचना। संशयोच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा परानुयोगः प्रच्छना। अधिगतार्थस्य मनसा ऽऽभ्यासो ऽनुप्रेक्षा॥ घोषशुद्धपरिवर्तनमाम्नायः। धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः

८–आत्मा ऽऽत्मीय संकल्पत्यागो व्युत्सर्गः। स द्विविधः बाह्योपाधित्यागो ऽभ्यन्तरोपधित्यागश्चेति।

ध्यान१ — मनकी चंचलता को वश करना तथा उसे एक ओर लगाना ध्यान है। आचार्य संघ की धार्मिक वृत्तियों का शासन करते हुए इन तपों द्वारा अपने मन की प्रवृत्ति और इच्छाओं का दमन करते हैं। आचार्य द्वादश तपों के साथ दस धर्मों का पालन भी करते हैं, तथा पूर्णरूप से अहिंसा की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहते हैं—

उत्तम क्षमा२ — दुष्ट पुरुषों द्वारा गाली देने या वध, बन्धन के होने पर भी क्रोध न करना। जैन मुनि उत्तम क्षमा की प्रतिमूर्त्ति होते हैं, अपकारी, शत्रु और सर्व प्रकार से अहित करनेवालों की भी भलाई करते हैं। किसी के मान, सम्मान या अपमान से उनके मन में तनिक भी कलुषता नहीं आती है।

उत्तम मार्दव३ — ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठ वस्तुओं के मद४ का त्याग करना तथा दूसरों द्वारा तिरस्कार होने पर भी अभिमान न करना उत्तम मार्दव है।

उत्तम आर्जव५ — मन, वचन, काय से छल-कपट का त्याग करना।

उत्तम सत्य६ — कल्याणकारी यथार्थ वचन बोलना।

उत्तम शौच७ — लोभ या गृद्धता का त्याग करना।

१-चित्तविक्षेपत्यागो ध्यानम्। उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमन्तर्मुहूर्तात्। —सर्वार्थसिद्धि, पृ० २९५-३००

२-दुष्टजनाक्रोशप्रहसनावज्ञाताडनशरीरव्यापादनादीनां सन्निधाने कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा। —सर्वा० पृ० २७८

३-जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवं माननिर्हरणम्। —सर्वा० पृ० २७८

४-ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥ रत्नक० श्लो० २५

संसारी जीव अशुभोदय से जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य, रूप, तप, धन, आदि को अपना निज रूप मान गर्व करता है, वह अज्ञानवश यह नहीं जानता कि यह सब कर्म के आधीन पुद्गल के विकार हैं, विनाशीक हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक और मुनिराज क्षणभंगुर पदार्थों का गर्व नहीं करते।

५-योगस्यावक्रता आर्जवम्।

६-प्रकर्षप्राप्तलोभान्निवृत्तिः शौचम्।

७-सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधु वचनं सत्यम्। —सर्वा० पृ० २७८

उत्तम संयम१ — छः कायों के जीवों की हिंसा का त्याग करना एवं पञ्चेन्द्रियों के विषयों का त्याग करना ।

उत्तम तप२ — अर्जित कर्मों के क्षय के लिये बारह प्रकार के तपों को करना ।

उत्तम त्याग३—ज्ञानादि का दान देना ।

उत्तमआकिञ्चन्य४—पर पदार्थों में, यहां तक कि अपने शरीर से भी मोह का त्याग कर देना ।

उत्तमब्रह्मचर्य५—विकारों को जीत कर आत्मशक्ति का विकास करना ।

दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन पांच आचारों को; राग-द्वेष को वश करने के लिये सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छः आवश्यकों को एवं मन, वचन और काय की रागद्वेष रूप प्रवृत्ति को त्यागने के लिये मन, वचन और काय को वश करना ये आचार्य के ३६ मूल गुण बताये गये हैं । आचार्य परमेष्ठी विकारों, कषायों और इच्छाओं को पूर्णतया जीतने के लिये ३६ प्रकार के मूल गुणों का पालन करते हैं ॥ ३ ॥

अपने हित–मित उपदेशामृत द्वारा भव्य शिष्यों के मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाले, द्वादशांग श्रुत के पारगामी और भव्यजनों से वन्दनीय श्री उपाध्याय परमेष्ठी मेरे आभ्यन्तर में संलग्न कर्ममल को अपने वचनामृत से निर्मल करें ॥ ४ ॥

विवेचन—उपाध्याय परमेष्ठी जो कि ज्ञान–ध्यान में अपना समय व्यतीत करते हैं तथा जिन्होंने अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये महत्तम प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया है, उनका स्तवन कवि ने उपर्युक्त प्रकार से किया हैं । उपाध्याय परमेष्ठी वे ही मुनिवर कहलाते हैं,जो ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के पाठी होते हैं । ये स्वयं अध्ययन करते हैं तथा पार्श्ववर्ती शिष्यों को अध्यापन कराते हैं । ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों का वर्णन निम्न प्रकार है—

१—वदसमिदिकसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं । धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणिओ ॥ —गो० जी० गा० २६४

२—कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः ।

३—संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्यागः ।

४—उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसन्धिनिवृत्तिराकिञ्चन्यम् । —सर्वा० पृ० २७८

५—अनुभूताङ्गनास्मरणकथाश्रवणस्त्रीसंसक्तशयनासनादिवर्जनाद्ब्रह्मचर्यं परिपूर्णमवतिष्ठते ।

१-*आचाराङ्ग*—इसमें मुनियों के समस्त आचार का वर्णन रहता है, इन्हें किस प्रकार अपना रहन-सहन रखना चाहिये, जिससे आत्मकल्याण में बाधा न हो, पर प्रकाश डाला जाता है। इसके पदों[1] की संख्या अठारह हजार है।

२-*सूत्रकृताङ्ग*—इससे ज्ञान, विनय, छेदोपस्थापना आदि क्रियाओं का वर्णन रहता है; इसके पदों की संख्या छत्तीस हजार है।

३-*स्थानाङ्ग*—इसमें षट् द्रव्यों के एकादि जितने विकल्प संभव हैं,उनका विस्तार सहित निरूपण किया जाता है;इसमें ब्यालीस हजार पद हैं।

४-*समवायाङ्ग*—सम्पूर्ण द्रव्यों में किस धर्म की अपेक्षा साद्दश्य है इसका वर्णन रहता है, इसके पदों की संख्या भी चौसठ हजार है।

५-*व्याख्या प्रज्ञप्ति*—जीव है या नहीं, इस प्रकार के साठ हजार प्रश्नों का वर्णन रहता है, इसमें दो लाख अठारह हजार पद हैं।

६-*ज्ञातृ कथा*—तीर्थंकर और गणधरों की कथाओंका वर्णन रहता है;इसके पदोंकी संख्या पांच लाख पचास हजार है

७-*उपासकाध्ययन*—श्रावकों के आचार का वर्णन रहता है, इसके पदों की संख्या ग्यारह लाख सत्तर हजार है।

८-*अन्तःकृद्दशांग*—प्रत्येक तीर्थंकर के समय में दस-दस ऐसे मुनि होते हैं, जो उपसर्गों को सहन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, इसमें उन्हीं के पुण्य के चरितों का वर्णन रहता है, इसके पदों की संख्या तेईस लाख अट्ठाईस हजार है।

९-*अनुत्तरोपपादिकदश*—प्रत्येक तीर्थंकर के समय में ऐसे दस-दस मुनि होते हैं, जो उपसर्गों को सहन कर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं, इस अंग में इन मुनियों की कथाओं का वर्णन विस्तार से रहता है।

१०-*प्रश्नव्याकरण*—इसमें प्रश्न के अनुसार नष्ट, मुष्टिगत प्रश्नों का उत्तर रहता है;इसमें तेरानबे लाख सोलह हजार पद हैं।

११-*विपाकसूत्र*—कर्मों के उदय, उदीरणा और सत्ता का वर्णन रहता है, इसके पदों की संख्या एक करोड़ चौरासी लाख है।

१-सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलखयं चेव। सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥ —गो० जी० गा० ३३५

अर्थ-सोलहसौ चौंतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठसौ अठासी अक्षर एक पद में होते हैं।

चौदह पूर्वों का विवरण–

१ *उत्पाद पूर्व*–इसमें वस्तु के उत्पाद, व्यय ध्रौव्य का वर्णन है, इसके पदों की संख्या एक करोड़ है।

२ *अग्रायणी पूर्व*–इसमें अंगों के प्रधानभूत अर्थों का वर्णन है, इसके पदों की संख्या छयानवे लाख है।

३ *वीर्यानुप्रवादपूर्व*–बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि के बल का निरूपण रहता है, इसके पदों की संख्या सत्तर लाख हैं।

४ *आस्तिनास्ति प्रवादपूर्व*–जीवादि पदार्थों के अस्तित्व और नास्तित्व का वर्णन रहता है, इसमें साठ लाख पद हैं।

५ *ज्ञानप्रवादपूर्व*–इसमें आठ ज्ञान, उनकी उत्पत्ति के कारण और ज्ञान के स्वामियों का कथन रहता है, इसके पदों की संख्या एक कम एक करोड़ है।

६ *सत्यप्रवादपूर्व*–वर्ण, स्थान, दो इन्द्रिय आदि प्राणी और वचन गुप्ति के संस्कार का वर्णन है, इसमें एक करोड़ छः पद हैं।

७ *आत्मप्रवादपूर्व*–आत्मा के स्वरूप का निरूपण रहता है, इसमें छब्बीस करोड़ पद हैं।

८ *कर्मप्रवाद पूर्व*–इसमें कर्मों के बन्ध, उदय, उदीरणा, उपशम आदि का कथन है, इसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं।

९ *प्रत्याख्यानपूर्व*–द्रव्य और पर्याय के स्वरूप का कथन है, इसमें चौरासी लाख पद हैं।

१० *विद्यानुवाद*–इसमें पांचसौ महाविद्याओं, सातसौ क्षुद्रविद्याओं एवं अष्टाङ्ग महानिमित्तों का वर्णन है,इसमें एक करोड़ दस लाख पद हैं।

११ *कल्याणपूर्व*–इसमें बलभद्र, वासुदेव, तीर्थंकर प्रभृति पुण्यात्माओं के पुण्य का कथन रहता है; इसमें छब्बीस करोड़ पद हैं।

१२ *प्राणवादपूर्व*–इसमें मंत्र, तंत्र, गारुड़विद्या एवं अष्टांग वैद्य विद्या का वर्णन है, इसमें तेरह करोड़ पद हैं।

१३ *क्रियाविशालपूर्व*–इसमें छन्द, अलंकार, और व्याकरण विषय का निरूपण है, इसमें नौ करोड़ पद हैं।

१४ *लोकबिन्दु सार*–निर्वाण के सुख का वर्णन रहता है, इसमें साढ़े बारह करोड़ पद हैं।

उपाध्याय इन ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों को स्वयं पढ़ते हैं तथा पास में रहनेवाले अन्य मुनियों को पढ़ाते हैं। ये प्रत्येक प्रश्न का समाधान करनेवाले, वादविवाद करनेवाले, स्याद्वाद के रहस्य के जानकार, बोलने में प्रवीण, सिद्धान्त शास्त्र के पारगामी, वृत्ति और प्रधान सूत्रों के विद्वान्, शब्द और अर्थ के मर्म के ज्ञाता, श्रेष्ठ व्याख्याता, एवं अध्यापन कार्य में विशेष रुचि रखने वाले होते हैं। उपाध्याय पढ़ने-पढ़ाने के सिवा व्रतादि का पालन मुनियों के समान ही करते हैं। उपाध्याय धर्म का उपदेश देते हैं, आचार्यों के समान आदेश नहीं। वैसे तो आचार्य के समान ही वे संयम, तप, शुद्ध चारित्र और पंचाचार—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र, तप, वीर्य का पालन करते हैं। मुनियों के अट्ठाईस मूल-गुण और चौरासी लाख उत्तर गुणों को पालना, परीषहों को जीतना एवं उपसर्गों को सहना भी उपाध्याय के लिये आवश्यक है[1] ॥ ४ ॥

अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित; भेद विज्ञान द्वारा आत्मा और शरीर को अलग-अलग अनुभव करने वाले दया, श्रेष्ठ चारित्र, शील, सज्ज्ञान, धैर्य आदि गुणों के धारी एवं कर्म शत्रुओं को नाश करने के लिये बद्धकटि श्री साधु परमेष्ठी मेरे दुर्मोह को नाश करें ॥ ५ ॥

विवेचन—जैनागम में साधु को विषय-वासना और आरम्भ परिग्रह से रहित, ज्ञान-ध्यान में लीन रहनेवाला बताया गया है। अन्तरंग—क्रोधादि और बहिरंग—धन, धान्यादि परिग्रह, जो कि संसार में सभी प्रकार के पापों के घर हैं, त्याग किये बिना साधु नहीं हो सकता है। साधु को २२ परीषह भी सहन करनी पड़ती हैं तथा उनका निम्न आचार बताया गया है—

१–उपाध्याय समाधीयान् वादी स्याद्वादकोविदः।
वङ्मी वाग्ब्रह्मसर्वज्ञः सिद्धान्तागमपारगः॥
कविर्व्रत्यग्रसूत्राणां शब्दार्थैः सिद्धसाधनात्।
गमकोऽर्थस्य माधुर्ये धुर्यो वक्तृत्ववर्त्मनाम्॥
उपाध्यायत्वमित्यत्र श्रुताभ्यासो हि कारणम्।
यदध्येति स्वयं चापि शिष्यानध्यापयेद्गुरुः॥
—पञ्चा० अ० श्लो० ६५९-६६१
तुलना–ति० प० अ० गा० ४, द्रव्य सं० गा० ५३।

पांच महाव्रत१, पांच समिति, पञ्चेन्द्रिय-निग्रह, समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण स्वाध्याय, कायोत्सर्गव्रत, स्नान का त्याग, स्वच्छ भूमि पर शयन, वस्त्रत्याग, केशलुञ्चन कराना, एक बार थोड़ा भोजन करना, दन्तधावन—दतौन न करना एवं खड़े होकर आहार लेना ये अट्ठाईस मूलगुण मुनियों के होते हैं। मुनिराज चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन भी करते हैं।

मुनिराज शुद्धोपयोग के द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव करते हैं, परद्रव्य में अहंबुद्धि नहीं करते, ज्ञानादि स्वभाव को ही अपना मानते हैं। अपने ज्ञान में झलकनेवाले परद्रव्य और उनके स्वभाव को जानते तो हैं, पर इष्ट अनिष्ट मान-कर उनमें राग द्वेष नहीं करते। रोग, बुढ़ापा, मान, सम्मान आदि में कुछ भी सुख दुःख नहीं मानते। अपने उपयोग को भी चंचल नहीं करते जहां तक होता है उदासीन होकर निश्चल वृत्ति धारण करते हैं। यदि कभी मन्दराग के उदय से शुभोपयोग की प्रवृति हुई तो उसे भी शुद्धोपयोग में लगाने की चेष्टा करते हैं। अन्तरंग को दूषित करने वाले विकार, कषाय और वासनाओं पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं तथा बहिरंग में सौम्य दिगम्बर मुद्रा को धारण करते हैं, उनके पास तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं होता। मुनि धर्म के सहायक शरीर को धारण करने के लिये उचित आहार विहारादि क्रियाओं को सजग होकर करते हैं। द्वादश तप और दस धर्मों का पालन करते हैं। मुनियों के तेरह प्रकार के चारित्र का वर्णन निम्न प्रकार है।

अहिंसा महाव्रत २—प्रमाद—असावधानता यानी चार विकथा—स्त्री कथा, भोजन कथा, और अवनिपाल कथा, चार कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ, पांच इन्द्रिय स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र; निद्रा और प्रणय इन पन्द्रह प्रमादों से युक्त अपने तथा पर के प्राणों का घात करना या घात करने का विचार करना हिंसा है, इसका पूर्णरीति से त्याग करना अहिंसा महाव्रत है।

१—पंचय महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरोद्दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो॥
अच्चेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतघस्सणं चेव।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूलगुणा अठ्ठवीसा दु॥ मूलाचार गाथा २–३

तुलना—प्रवचनसार चारित्राधिकार गाथा १–६, परमात्मप्रकाश मोक्षाधिकार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लो० १०, धवला प्र० पु० पृ० ५१

२—कायेंदियगुणमग्गणकुलाउजोणीसु सव्वजीवाणं।
णाऊण य ठाणादिसु हिंसादिविवज्जणमहिंसा॥ २

सत्य महाव्रत[1]——प्रमाद के योग से असत्——अप्रशस्त वचन कहना अनृत या असत्य है, इसका पूर्ण रूप से त्याग करना सत्य महाव्रत है।

अचौर्य महाव्रत[2]——मन, वचन, काय से किसी की कोई भी वस्तु लेने की प्रवृत्ति न करना अचौर्य महाव्रत है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत[3]——कुशील का अठारह हजार भेदों सहित त्याग करना तथा रागरूप रमण की प्रवृति का मन, वचन और काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

परिग्रहमहाव्रत[4]——पदार्थों को ग्रहण करने रूप मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को पूर्णरूप से रोकना अपरिग्रह महाव्रत है।

प्रमाद का त्याग करने के लिये मुनिराज समितियों का पालन करते हैं। जब तक मनुष्य में प्रमाद वर्तमान रहता है, तब तक वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। अहिंसा महाव्रत को निरतिचार पालने के लिये समितियों का पालना आवश्यक है। समितियां पांच हैं——

ईर्या समिति[5]——आलस्य रहित हो चार हाथ जमीन आगे देखकर चलना।

१——रागादीहिं असच्चं चत्ता परतावसच्चवयणोत्ति।
सुत्तत्थाणवि कहणे अयधावयणुज्झणं सच्चं॥

२——गामादिसु पडिदाइ अप्पप्पहुदिं परेण संगहिदं।
णादाणं परदव्वं अदत्तपरिवज्जणं तं तु॥

३——मादुसुदाभगिणीविय दट्ठूणित्थित्तियं च पडिरूवं।
इत्थिकहादिणियत्ती तिलोयपुज्जं हवे बंभं॥

४-जीवणिबद्धा बद्धा परिग्गहा जीवसंभवा चेव।
तेसिं सक्कच्चाओ इयरम्हि य णिम्मओऽसंगो॥ ——मू० गा० ५-८

५-मग्गुज्जोवुपओगालंवणसुद्धीहिं इरियदो मुणिणो।
सुत्ताणुवीचि भणिया इरियासमिदी पवयणम्मि॥ ३०२॥ ——मूलाचार गा० ९

भाषा समिति[1]—हित, मित और प्रिय वचन बोलना।

ऐषणा समिति[2]—दिन में एक वार शुद्ध निर्दोष आहार लेना।

आदान निक्षेपण समिति[3]—अपने पास के शास्त्र, पीछी, कमण्डलु प्रभृति को भूमि देखकर सावधानी से धरना, उठाना।

प्रतिष्ठापना समिति[4]—स्वच्छ भूमि में जहां जीव, जन्तु न हों मल, मूत्र का त्याग करना।

इस प्रकार जो इन अठ्ठाईस मूल गुणों का तथा इनकी बृद्धिरूप चौरासी लाख उत्तर गुणों का सम्यक् रीति से पालन करता है, वही सच्चा साधु या मुनि है। कोई भी व्यक्ति कुल परम्परा से,भगवा, श्वेत, लाल आदि वस्त्रों के धारण करने से, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने से, नग्न रहने से, शरीर में भस्म लगाने से, शरीर को कष्ट देने वाली विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाएं करने से विषय-कषाय में लीन रहकर नाना प्रकार के चमत्कारी कार्य करने से एवं परिग्रह त्यागी,होने पर भी अन्तरंग में विषयेच्छा के रहने से तथा मायाचारी बन कर संसार को ठगने से सच्चा साधु नहीं हो सकता। क्रोध करना, मान-माया-लोभ के वश रहना राग-द्वेष रूप परिणाम करना, इच्छाओं के आधीन होकर सांसारिक विषयों में प्रवृति करना; सच्चे साधु का स्वभाव नहीं हो सकता। क्षमा, दया, धैर्य, अन्तरंग की शुद्धि प्रलोभनों का अभाव, तिल-तुष मात्र परिग्रह से रहित, परम ज्ञानी, परमध्यानी भेद विज्ञान के मर्मज्ञ ही सच्चे साधु हो सकते हैं।

१–सच्चं असच्चमोसं अलियादीदोसवज्जमणवज्जं ।
वदमाणस्सणुवीचो भासासमिदी हवे सुद्धा ।। ३०७ ।।

२—उग्गमउप्पादणएसणेहिं पिंडं च अवधिं सज्जं च ।
सोधंतस्स य मुणिणो परिसुज्झइ एसणासमिदी ।। ३१८ ।।

३—आदाणे णिक्खेवे पडिलेहिय चक्खुणा पमज्जेज्जो ।
दव्वं च दव्वठाणं संजमलद्धीए सो भिक्खू ।। ३१९ ।।

४—वणदाह किसिमसिकदे थंडिल्लेणुयरोधे वित्थिण्णे ।
अवगदजंतु विवित्ते उच्चारादी उच्चरादी विसज्जेज्जो ।। ३२१ ।। —मुलाचार

निष्कर्ष यह है कि पंच परमेष्ठी ही मान्य हैं । क्योंकि जैनागम में आत्मिक विकास की अपेक्षा से देवत्व माना है। वास्तव में रत्नत्रय को ही देव बताया गया है, इस रत्नत्रय का जिस जीव में जितना विकार रहता है, उसमें उतना ही देवत्व को विकसित माना जाता है । श्री धवल शास्त्र में इसी बात का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार किया गया है—

शंका१—आत्म स्वरूप को प्राप्त अर्हन्त और सिद्धों को देव मानकर नमस्कार करना ठीक है, किन्तु जिन्होंने आत्मस्वरूप को प्राप्त नहीं किया है, ऐसे आचार्य, उपाध्याय और मुनि को कैसे देव मानकर नमस्कार किया जाय ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि अपने अनन्त भेदों सहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान; सम्यक् चारित्र का नाम देव है, अतः इन तीनों गुणों से विशिष्ट जो जीव है वह भी देव कहलाता है । यदि रत्नत्रय को देव नहीं माना जायगा तो सभी जीव देव हो जायंगे। अतः आचार्य उपाध्याय और मुनियों को भी देव मानना चाहिये क्योंकि रत्नत्रय का अस्तित्व अर्हन्तों की तरह इनमें भी पाया जाता है।

सिद्ध परमेष्ठी के रत्नत्रय की अपेक्षा आचार्य आदि परमेष्ठी का रत्नत्रय भिन्न नहीं है। यदि दोनों रत्नत्रय में सर्वथा भेद मान लिया जाय, तो आचार्यादि में रत्नत्रय का अभाव हो जायगा ।

शंका—जिन्होंने रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की पूर्णता को प्राप्त कर लिया है, उन्ही को देव मानना चाहिये; रत्नत्रय की अपूर्णता जिनमें रहती है, उनको देव मानना असंगत है।

समाधान—यह शंका ठीक नहीं है। यदि एक देश रत्नत्रय में देवत्व नही माना जायगा तो सम्पूर्ण रत्नत्रय में देवत्व नहीं बन सकेगा अतः आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु भी देव हैं ।

—युक्तः प्राप्तात्मस्वरूपाणामर्हतां सिद्धानां च नमस्कारः, नाचार्यादीनामप्राप्तात्मस्वरूपत्वतस्तेषां देवत्वाभावादिति न, देवो हि नाम त्रीणि रत्नानि स्वभेदतोऽनन्तभेदाभिन्नानि तद्विशिष्टो जीवोऽपि देवः अन्यथाशेषजीवानामपि देवत्वापत्तेः । तत आचार्यादयोऽपि देवाः रत्नत्रयास्तित्वं प्रत्यविशेषात् । नाचार्यादिस्थितरत्नानां सिद्धस्थरत्नेभ्यो भेदो रत्नानामाचार्यादिस्थितानामभावापत्तेः । न कारणकार्यत्वाद्भेदः सत्स्वेवाचार्यादिस्थरत्नावयवेष्वन्यस्य तिरोहितस्य रत्नाभोगस्य स्वावरणविगमत आविर्भावोपलम्भात् । न परोक्षापरोक्षकृतो भेदो वस्तुपरिच्छित्ति प्रत्येकत्वात् । नैकस्य ज्ञानस्यावस्थाभेदतो भेदो निर्मलानिर्मलावस्थावस्थित दर्पणस्यापि भेदापत्तेः तस्मादाचार्यादयोऽपिदेवा इति स्थितम् ।

—धवला प्र० पु० पृ० ५२-५३

धर्मा
मृत
२०

इस प्रकार जैन आम्नाय में देव कोई अलौकिक परोक्ष सत्ताधारी शक्ति नहीं है, किन्तु यह जीव जितना विशुद्ध होकर रत्नत्रय का विकास करता है उतने ही अंश में उसमें देवत्व शक्ति आ जाती है। वस्तुतः पूर्णरूप से शुद्ध आत्मा ही देव है ॥ ५ ॥

यक्षिणी और यक्ष का स्मरण

जिसका कमलरूपी मुख है और जो जैन धर्म की प्रभावना करने वाली है तथा मिथ्यात्वरूपी पर्वत को जो भेदने के लिये वज्र के समान है, समस्त भव्य जीवों को प्रसन्न करने वाली है, धर्म पिपासु है, कोमलाङ्गी है, उत्तम मांग-ल्यरूप सद्धर्म में संलग्न है, ऐसी जिन सेविका यक्षिणी देवी मेरे उत्तम काव्य के सृजन में सहायक हो ॥ ६ ॥

श्री १००८ शुभ लक्षणों से युक्त श्री अर्हन्त भगवान के चरणकमलों में भ्रमर के समान मत्त रहने वाला, सम्यग्दर्शन रूपी आभरण से युक्त गजमुख यक्ष जो सर्वदा भव्य जीवों को अपने कार्यों में सहायक होता है, मेरी काव्य रचना में सहायक हो ॥ ७ ॥

विवेचन — इन दोनों पद्यों में आचार्य ने यक्षिणी और गजमुख यक्ष से अपने कार्य में सहायता करने के लिये याचना की है। आचार्य इस लौकिक रीति को बतलाते हैं कि किसी भी कार्य के प्रारम्भ में अपने सहधर्मियों से उसकी सफलता के लिये अनुरोध करना आवश्यक सा है। यक्षिणी और गजमुख यक्ष सम्यग्दृष्टि हैं, सच्चे वीतरागी देव न होने पर भी सम्यग्दृष्टि होने के कारण उनकी सद्भावनाओं से काव्य रचना करने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

जैनाम्नाय देव चार प्रकार के बताये गये हैं[1] — भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। यक्षिणी और गजमुख यक्ष व्यन्तरों के भेदों में से हैं। व्यन्तर देवों के किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ भेद बताये गये हैं। व्यन्तर देव बहुत शक्तिशाली होते हैं, इनमें जम्बूद्वीप को उलटने की सामर्थ्य वर्तमान है।

ये चारों ही प्रकार के देव संसारी सरागी होने के कारण सच्चे देव के समान पूज्य नहीं हैं। इन देवों में राग, द्वेष, छल, कपट, मायाचार, विषय-वासना, लोभ आदि विकार मनुष्यों के समान हैं; फिर भी शक्ति की अपेक्षा ये हमसे

१—देवाश्चतुर्णिकायाः—भवनवासिनो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्चेति। भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः। व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः। ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च।
—तत्त्वा० सू० १, १०, ११-१२

बड़े हैं। हमारे किसी भी लौकिक कार्य में साधक या बाधक हो सकते हैं। नयसेनाचार्य ने यक्ष, यक्षिणी की स्तुति नहीं की, किन्तु साधर्मी होने के नाते अपने इस महान् कार्य में सहायक होने की इच्छा प्रकट की है। स्तुति, वन्दना, नमस्कार सच्चे वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी देव के ही किये जा सकते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक वीतरागी जिनेन्द्र भगवान् के सिवा अन्य को नमस्कार या प्रणाम नहीं करता है। भय, आशा, स्नेह, लोभ, या अन्य किसी प्रकार की भौतिक आकांक्षा से प्रेरित होकर सम्यग्दृष्टि को सरागी देवों की पूजा, स्तुति और नमस्कार नहीं करने चाहिये। ऐसा करने से उसका सम्यक्त्व दूषित होता है।

इतना स्मरण रखना होगा कि जैनागम में यक्ष और यक्षिणी की स्थिति सम्यग्दृष्टि सरागी देवों के रूप में मानी गयी है, ये सच्चे वन्दनीय देव नहीं हैं। इनका सत्कार सहधर्मी होने के कारण किया जा सकता है। जैसे लोक में विद्या गुरु, माता, पिता, बड़े भाई, या अन्य साधर्मी भाईयों का सत्कार करते हैं, अभिवादन करते हैं और उन्हें उच्चासन प्रदान करते हैं, उसी प्रकार इनका भी सम्मान किया जा सकता है। ये यक्षादि देव साधर्मी भाईयों पर जब संकट आता है, सहायता करते हैं और अपने प्रभाव अथवा शक्ति का प्रदर्शन कर धर्म की पूर्ण प्रभावना करते हैं। चौबीस भगवानों की चौबीस यक्षिणियां बतायी गई हैं। ॥ ६-७ ॥

सरस्वती का स्तवन

सरस्वती माता जिस प्रकार शाश्वत और चिरन्तन अपने अनुपम सौन्दर्य एवं चाञ्चल्य द्वारा लोगों के मन को शारीरिक दृष्टि से आकर्षण करती है—अनुपम सुन्दरी है, उसी प्रकार हे माता आप अपने दिव्य तेज और अनुपम प्रभाव सहित काव्य बनाने के लिये मेरे मुख में निवास करिये ॥ ८ ॥

विवेचन—इस पद्य में कवि ने सरस्वती माता की स्तुति की है। देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों का स्थान समान है। आराधक इन तीनों आराध्य के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है और इनके प्रसाद को प्राप्त कर अपने काव्य को पूर्ण करने का संकल्प करता है। कवि परम्परा में सरस्वती की बड़ी भारी महत्ता मानी गयी है। इसको प्रसन्न किये बिना कोई भी कवि अपने काव्य को निर्विघ्न रूप से पूर्ण करने में समर्थ नही होता। वस्तुतः शास्त्रज्ञान द्वारा ही सन्मार्ग या मोक्षमार्ग का दर्शन हो सकता है।

जैन परम्परा में कोई पार्थिव शरीर धारणी देवी सरस्वती नहीं मानी गयी है, किन्तु तीर्थंकर के मुख से निकली हुई दिव्य वाणी ही सरस्वती है। ऊपर केवल जिनवाणी का आलंकारिक वर्णन ही है; क्योंकि कवि लोग जिन-वाणी की कृपा से ही काव्य सृजन करते हैं—

सरस्वत्याः प्रसादेन काव्यं कुर्वन्तु मानवाः।
तस्मान्निश्चलभावेन पूजनीया सरस्वती ॥

जिनवाणी के भारती, सरस्वती, शारदा, वागीश्वरी, कुमारी, ब्रह्मचारिणी, जगन्माता, ब्राह्मणी, ब्राह्माणी, वरदा, वाणी, श्रुतदेवी, गो ये नाम बताये गये हैं। षट्खण्डागम वेदना खण्ड की टीका में बताया है कि तीर्थंकर भग-वान् अपने दिव्य-ज्ञान के द्वारा पदार्थों का साक्षात्कार कर बीज पदों द्वारा उनका निरूपण करते हैं, ग्रन्थरूप से लिपि बद्ध नहीं करते है, इसलिये वे अर्थ कर्त्ता हैं और गणधर देव उन बीज पदों और उनके अर्थ का अवधारण कर ग्रन्थरूप से व्याख्यान करते हैं अतः वे ग्रन्थकर्त्ता कहे जाते हैं। यही दिव्यध्वनि सरस्वती है। कविवर अर्हद्दास ने भी सरस्वती का निम्न प्रकार वर्णन किया है।

वीरादिवक्षीरनिधेः प्रवृत्ता सुधेव वाणी सुधिया कलश्या।
विधृत्य नीता विबुधाधिपैर्मे निषेविता नित्यसुखाय भूयात् ॥

अर्थ—क्षीरसमुद्र रूपी श्री महावीर तीर्थंकर से निकली हुई तथा सुबुद्धि रूपी गणधरों के द्वारा लाकर सेवित हुई सुधा रूपिणी सरस्वती मेरे अनन्त सुख की सम्पादिका होवे।

१—मुनिसुव्रत का० स० १ श्लो० ६

सरस्वती के स्वरूप का वर्णन कविवर भूधरदास ने निम्न प्रकार किया है—

वीर हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढ़री है।
मोह महाचल भेद चली जगकी जड़ता-तप दूर करी है ॥
ज्ञान पयोनिधि माहिं रली बहु भंग तरङ्गनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति मैं अंजली निज शीश धरी है ॥

जैन शतक पद्य ९

अनादि निधन होते हुए भी आगम में श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक ये दो भेद बताये हैं। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात भेद हैं और अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के संख्यात भेद हैं। सामान्य से पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तु समास, पूर्व एवं पूर्वसमास ये बीस भेद श्रुतज्ञान के[१] हैं। इस श्रुतज्ञान का आश्रय लेकर कोई भी व्यक्ति आत्म कल्याण के पथ का अनुसरण कर सकता है,कुमार्ग से दूर हो सकता हैं, अत. माता के समान हितकारी सरस्वती वन्दनीय है। श्रुतज्ञान के भेदों का स्वरूप श्रुतस्कन्ध यन्त्र द्वारा अवगत करना चाहिये ॥ ८ ॥

पट्टावली

९ वें पद्य से लेकर ३९ वें पद्य तक कवि ने गुरु परम्परा का स्मरण किया है, किन्तु इसमें कालक्रम का ध्यान नहीं रखा गया है। परम्परा निम्न प्रकार बतायी है:—

अर्हत्बली, गुणधर भट्टारक, आर्यमंक्षु, नागहस्ति, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्त, भूतबली, जयनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य जटासिंहनन्दी, कूची भट्टारक, समन्तभद्र, पूज्यपाद, विद्यानन्दी, सिद्धसेन, श्रुतकीर्ति, प्रभाचन्द्र, जिनसेन पंडित, यति वृषभसेन, शुभचन्द्र, सिद्धान्तदेव, रामनन्दीसैद्धान्तिक, जिनसेनाचार्य, इन्द्रसेन, भेरुण्ड पण्डित, सिद्धान्तेश, वादिराज, मेघचन्द्र कीर्त्तिदेव, राजसिंह, पद्मनन्दी, सागरचन्द, वासुपूज्य भट्टारक, प्रभाचन्द्र भ०; चारुसेनाचार्य, अमोघचन्द्र, श्रीरामसेनव्रती, कनकनन्दी, अकलंकदेव, माघनन्दी, पम्प, रन्न, भन्न और गुणधर्म का स्मरण किया है।

विवेचन–इस युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के मुख से निकली दिव्यध्वनी को ग्रहण करने वाले गौतम गोत्री वेदवेदाङ्ग में प्रवीण इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्व रूप ग्रन्थों की एक ही मुहूर्त्त में क्रम से रचना

१— श्रुतमपि जिनवर बिहितं गणधररचितं द्वयनेकभेदस्थम्।
अङ्गाङ्गबाह्यभावितमनन्तविषयं नमस्यामि॥
पर्यायाक्षरपदसंघातपत्तिकानुयोगविधीन्।
प्राभृतकप्राभृतकं प्राभृतकं वस्तुपूर्वं च॥
तेषां समासतोऽपि च विंशतिभेदान्समश्नुवानं तत्॥

श्रुतभक्ति ४–५

की, अतः भावश्रुत और अर्थपदों के कर्त्ता तीर्थंकर हैं तथा तीर्थंकर के निमित्त से गौतम गणधर द्रव्यश्रुत के कर्त्ता हैं। गौतम[1] गणधर ने दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान लोहाचार्य को दिया, लोहाचार्य ने जम्बूस्वामी को दिया। ये तीनों ही आचार्य सकलश्रुत के ज्ञाता थे। इनके निर्वाण के पश्चात् विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पांचों ही आचार्य चौदह पूर्व के धारी हुए।

इनके पश्चात् विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दस पूर्वों के धारक तथा शेष चार पूर्वों के एक देश के धारक हुए। इनके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन और कंसाचार्य ये पांचों ही आचार्य सम्पूर्ण ग्यारह अंगों के और चौदह पूर्वों के एक देश के धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एक देश के धारक हुए। अनन्तर सभी अंग और पूर्वों के एकदेश ज्ञाता आचार्य धरसेन हुए, इनके शिष्य भूतबली और पुष्पदन्त श्रुत ज्ञाता हुए।

नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली में अर्हद्बलि, माघनन्दि, और धरसेन को क्रमशः उत्तराधिकारी बताया है अतः नयसेनाचार्य के द्वारा दी गयी पट्टावली में उल्लिखित अर्हद्बली माघनन्दी के गुरु प्रतीत होते हैं तथा धरसेनाचार्य के गुरु माघनन्दी बताये गये हैं। श्रवणबेलगुल शिलालेख नं० (१०५) में अर्हद्बली को संघभेद कर्त्ता एवं पुष्पदन्त और भूतबली का गुरु बताया है—

यः पुष्पदन्तेन च भूतबल्याख्येनापि शिष्यद्वितीयेन रेजे।
फलप्रदानाय जगज्जनानां प्राप्तोऽङ्कुराभ्यामिव कल्पभूजः॥
अर्हद्बलिस्संघचतुर्विधं स श्रीकोण्डकुन्दान्वयमूलसंघम्।
कालस्वभावादिह जायमान-द्वेषेतराल्पीकरणाय चक्रे॥

पट्टावली में गुणधर[2] भट्टारक का नाम आया है, यह कषाय प्राभृत के मूल उद्धार कर्त्ता हैं। जयधवला टीका

१—जयधवला टीका प्र० पृ० ४७ तथा धवला टीका प० ६५–६०

२—गुणहरवयणविणिग्गयगाहाणत्थोवहारिओ सव्वो। —जयधवला कषायपाहुड पृ० ४

में एक-सौ अस्सी गाथाओं में कषाय प्राभृत की रचना करने वाला इन्हें कहा गया है। आचार्य आर्यमंक्षु और नागहस्ति ने गुणधर भट्टारक द्वारा रचित कषाय प्राभृत का अध्ययन कर यति वृषभ को पढ़ाया१।

वराङ्गचरित के कर्त्ता जटासिंहनन्दी; कोप्पल के शिलालेख में उल्लखित जटानन्दी; समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों के कर्त्ता नन्दिसंघीय आचार्य कुन्दकुन्द२ वि० सं० ४९ में हुए। रत्नकरण्डश्रावकाचार, वृहद्स्वयंभूस्तोत्र आदि ग्रन्थों के रचयिता दूसरी शती के आचार्य समन्तभद्र; सर्वार्थसिद्धि के कर्त्ता पांचवीं शताब्दी के आचार्य पूज्यपाद; प्रमाण परीक्षा, प्रमाण निर्णय, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थों के रचियता वि० सं० ६८१ में हुए आचार्य विद्यानन्दी, बृहत् षट्दर्शन समुच्चय, नमस्कारमाहात्म्य आदि ग्रन्थों के कर्त्ता आचार्य सिद्धसेन; हरिवंशपुराण (प्राकृत) के रचयिता आचार्य श्रुतकीर्त्ति; प्रमेयकमलमार्त्तण्ड के कर्त्ता नन्दिसंघीय लोकचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र; आदि पुराण के कर्त्ता जिनसेन ज्ञानार्णव के कर्त्ता आचार्य शुभचन्द्र; वि० सं० ५६१ में हुए रत्ननन्दी; सेन संघीय एकीभावस्तोत्र, वादमञ्जरी आदि ग्रन्थों के रचयिता वादिराज; समाधिशतक के टीकाकार वि० स० ६०१ में हुए मेघचन्द्र, पात्रकेसरी स्तोत्र के कर्त्ता रामसेन; धर्मरत्नाकर श्रावकाचार के कर्त्ता राजसिंह; जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, धर्मरसायन पद्मनन्दि पंचविंशतिका, चरणसार के कर्त्ता पद्मनन्दि; दानसार के रचियता वासुपूज्य; ज्ञानसूर्योदय नाटक (प्राकृत),चतुर्विंशति स्थानक टीका के रचयिता कनकनन्दि; देवसंघीय राजवार्तिक, अष्टशती,न्यायविनिश्चयालंकार आदि ग्रन्थों के कर्त्ता आचार्य अकलंकदेव; अर्हद्‌बली के शिष्य माघनन्दि; कन्नड़ आदि पुराण के रचयिता ई० सन् की दसवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध कन्नड़ कवि पम्प; कविरत्न, कविचक्रवर्ती, कविकुंजरांकुश, उभयभाषा कवि इत्यादि पदवियों से विभूषित राजमान्य अजितपुराण और गदायुद्ध के रचियता कविरत्न एवं हरिवंश पुराण के रचियता ई० सन् १०५० में हुए कवि गुणवर्म का नमोल्लेख पट्टावली में किया है। कूची भट्टारक, जिनसेन पंडित, सिद्धनाथ देव, रामानन्दी सैद्धान्तिक, मेरु पंडित, सिद्धान्तेश, कीर्तिदेव, सागरचन्द्र,

१—जो अज्जमंखुसीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स ।
सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ ॥
—जयधवला

२—आचार्यकुन्दकुन्दाख्यो वक्रगीवो महामतिः ।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छः पद्मनन्दीति तन्नुतिः ॥
—गुर्वावलिः

वि० सं० १४९ पौष सुदी ९ को पट्ट पर विराजमान हुए, यह जाति के पल्लीवाल थे। कोई कोई इनका समय सं० ४९ मानते हैं।

में अन्वेषण करने पर विशेष वृत्त एवं चारुसेन के भी नाम दिये हैं, पर इन आचार्यों एवं साहित्यनिर्माताओं के सम्बन्ध अवगत हो सकेगा ।

आचार्य नयसेन ने अपने पूर्ववर्ती प्रायः समस्त प्रसिद्ध आचार्यों का नामोल्लेख कर दिया है । इस पट्टावली के आधार से कई प्रसिद्ध आचार्यों के समय का निर्णय किया जा सकता है ।

श्रृंगार रस की कविता करनेवाले कवियों का निरूपण

श्रृंगार रस एवं उसके सहायक विभाव[1], अनुभाव[2] और संचारी[3] भावों का वर्णन कर जनता का मनोरञ्जन करने वाले अनेक कवि हैं ।। ४० ।।

विवेचन—काव्य मनीषियों ने काव्य की आत्मा रस को माना है । रस आनन्द स्वरूप है, जब हम किसी उत्तम काव्य को एकाग्र चित्त से पढ़ते हैं तो मनमें निश्चलता आती है, जिससे हमें नैसर्गिक आनन्द की प्राप्ति होती है । श्रृंगार, वीर, करुण, हास्य, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स और शान्त ये नवरस बताये गये हैं । स्थायी भाव[4], विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव ये चारों भाव इसके अंग माने गये हैं । इन्हीं के मिलने से रस की उत्पत्ति होती है । काव्य शास्त्र में यों तो नवों रसों का प्रयोग होता है, पर प्रधानता श्रृंगार, करुण, वीर और शान्त रस की बतायी गयी है ।

साहित्य शास्त्रियों ने बताया है "नित[5]-नित नूतन होने वाले सौन्दर्य के सुखद एवं मन्द-मन्द परिवर्तनों में चित्त को लगाये रखना, वियोग में उनकी स्मृति एवं तज्जन्य शोक के नये-नये रूपों में मन को लीन रखना, चित्त में

१—रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः—साहित्यदर्पण पृ० ८४ । लोक में जो रत्यादि के उद्बोधक हैं, वे ही काव्य नाटक में विभाव कहलाते हैं ।

२—अनुभावः विकारस्तु भावसूचनात्मकः—भावो—मनोविकारों के सूचक अनुभाव होते हैं ।

३—जो विकार—मनोभाव स्थायी भाव के सहायक एवं पोषक होते हैं, संचारी कहे जाते हैं ।

४—वाक्यं रसात्मकं काव्यं—रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य —सा० द० प्र० प०

५—उस स्थिर अवस्था का नाम स्थायी भाव है, जो समस्त परिवर्तित होने वाली अवस्थाओं में एक सी रहती हुई उन अवस्थाओं में दब नहीं जाती, वरन् उनसे पुष्ट होती रहती है ।

प्रियवस्तु सम्मिलन से उसकी प्राप्ति का सुख धीरे धीरे आस्वादन करना, वियोग में प्रिय वस्तु की गुणावली के स्मरण द्वारा शोक करते हुए भी प्रिय वस्तु की प्राप्ति की उत्कट उत्कण्ठा के सहारे भावी आनन्द का रसास्वादन करना ही शृंगार रस है'[1] कवियों ने इसे रसराज बताया है, यह समस्त आमोद प्रमोद का अधिष्ठाता और प्रीति का प्राण है ॥

इष्ट के[2] नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुण रस आविर्भूत होता है । इसमें स्थायी भाव शोक होता है और विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव होते हैं तथा उसका दाहकर्म आदि उद्दीपन होते हैं । प्रारब्ध की निन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवर्णता, उच्छ्वास, निःश्वास, स्तम्भ, और प्रलाप इस रस के अनुभाव होते हैं । निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिन्ता इसके व्यभिचारी भाव हैं ।

आत्म कल्याण के लिये शृंगार रस उपयुक्त नहीं; क्योंकि इसके द्वारा वासनाओं को उत्तेजना ही मिलती है । शृंगार रस के निरूपण करने वाले अनेक कवि हुए हैं पर इस वर्णन द्वारा वे जन समाज का नैतिक उत्थान नहीं कर सके हैं । वासना यों ही मनुष्य में प्रबल होती है, शृंगार रस का निमित्त पाकर वह और भी उत्तेजित हो जाती है, जिससे अपथ में जाना स्वाभाविक है । आचार्य ने उक्त पद्य में सांसारिक प्रवृत्ति का निरूपण करते हुए बताया है कि कवियों की रुचि प्रायः शृंगार रस के निरूपण की ओर रहती है ॥४०॥

सत्काव्य और असत्काव्य का स्वरूप

नवीन कन्नड़ का चिन्तन करने वाला, छन्द-अनुप्रास-विराम का विशेष ख्याल रखने वाला, असत् शब्दों का प्रयोग करनेवाला एवं गुरु लघु के द्वारा तुकबन्दी करनेवाला क्या सत् कवि हो सकता है ? अपितु कभी नही ॥४१॥

विवेचन—कवि होने के लिये आत्मानुभूति का होना आवश्यक है । केवल भाषा व्याकरण, छन्द, अलंकार आदि को जानने मात्र से कोई भी कवि नहीं हो सकता । काव्य की आत्मा रस है । पर यह रस भी आत्मानन्द रूप ही

१—नवरस पृ० १३५

२—इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् ।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् ।
तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः ॥—सा० द० तृ० प० करुण रस

होता है, विषयानन्द रूप नहीं । जो कवि आत्मानन्द को स्वयं अपनी आत्मा में प्राप्त कर लेता है, आत्मा की शुद्धि कर लेता है, वह शब्दों के माध्यम द्वारा कविता के सहारे आत्मानुभूति को अन्य पाठकों को दे देता है, जिससे श्रोता या पाठक उसकी कृति से लाभ उठाते हैं । आनन्द आत्मा का गुण है, इसकी प्राप्ति तभी हो सकती है, जब भेद विज्ञान हो जाय । जब तक जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त रहता है तब तक उसे स्वानुभूति की प्राप्ति हो नहीं सकती । कवि या लेखक के लिये यह अत्यावश्यक है कि वह सांसारिक विषयों में रुलाने वाली रचना न करे । जिन रचनाओं के पढ़ने से विषय वासना उमड़ती है, वे रचनाऐं आत्मविकास में बाधक होती हैं ।

जैन मान्यता में वही सत् काव्य माना जाता है, जो आत्मोत्थान में सहायक हो । जिसमें प्रभु भक्ति का वर्णन हो, या त्रेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र वर्णित हो अथवा द्रव्य और तत्त्व सम्बन्धी चर्चा की गयी हो । चार अनुयोग—प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, और चरणानुयोग ही प्रमाण माने गये हैं, क्योंकि इन चारों अनुयोगों के स्वाध्याय से आत्मोत्थान किया जा सकता है । प्रथमानुयोग में त्रेसठ शलाका पुरुषों—चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र की कथाएं रहती हैं, जिससे इनके सच्चरित्र तथा आत्मशुद्धि के विकास क्रम से कोई भी व्यक्ति बहुत कुछ सीख सकता है । पुण्यात्माओं के चरित्रों के अध्ययन से आत्मोत्थान की प्रेरणा मिलती है तथा दृष्टान्त के द्वारा साधारण व्यक्ति भी कल्याण मार्ग में प्रवृत हो सकता है । समस्त पुराण इसी अनुयोग में आते हैं । प्रसिद्धि भी है कि केवल महापुराण—आदि पुराण और उत्तर पुराण के स्वाध्याय से जैनागम का बहुत कुछ सार भाग जाना जा सकता है । कविताबद्ध रहने से ये पुराण सरस होने के साथ-साथ आत्म कल्याण में भी सहायक होते हैं । द्रव्यानुयोग में द्रव्य चर्चा रहती हैं, इसमें प्रधानतः छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थों का वर्णन किया जाता है । तत्त्वों का ज्ञान इसी अनुयोग से प्राप्त किया जा सकता है,करणानुयोग में त्रिलोक का आकार, विस्तार, गणित एवं भूगोल सम्बन्धी बातें रहती हैं, इनके द्वारा ज्ञान की वृद्धि तो होती ही है, साथ ही आत्मोत्थान की प्रेरणा भी मिलती है और उपयोग स्थिर होता है ।

चरणानुयोग में श्रावक और मुनि के आचार-व्यवहार का वर्णन रहता है, तथा किस प्रकार चारित्र सुधार के द्वारा अपनी आत्मा का उत्थान किया जा सकता है और निर्वाण मार्ग मिल सकता है । प्रत्येक व्यक्ति को इन चारों अनुयोगों के स्वाध्याय द्वारा अपना विकास करना चाहिये । ये ही सत्काव्य हैं ॥४१॥

सत्काव्य सज्जनों के लिये आनन्द देने वाला होता है, किन्तु दुर्जनों के लिये मनहूसी का कारण उस तरह बन जाता है, जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश उल्लू के लिये ।।४२।।

विवेचन—आत्मोत्थान कारक साहित्य सज्जनों के लिये ज्ञानवर्द्धक होने के साथ आनन्द प्रदान करने वाला होता है। सज्जनों का ध्यान सर्वदा कल्याण की ओर रहता है, संसार के विषय कषायों की ओर उनकी प्रवृत्ति कम से कम होती है। जिन रचनाओं के अध्ययन से वासनाओं को उत्तेजना मिलती है वे रचनाएं सत्काव्य में परिगणित नहीं की जा सकती हैं। सत्काव्य के अध्ययन से आत्मरसिक पुरुषों को अपार आनन्द होता है, उनकी राग प्रवृत्ति जिसके कारण वे विषयों में प्रवृत्ति करते हैं, घट जाती है। राग भाव के घटने से समता बुद्धि की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे उन्हें अहर्निश आत्मानुभूति से उत्पन्न आनन्द का अनुभव होने लगता है।

दुर्जनों को सत्काव्य आनन्द नहीं दे सकता, ये रागात्मक शृंगार रस के पोषक काव्यों को पढ़कर अपनी शक्ति को नष्ट करते हैं तथा इसी प्रकार के काव्यों में उन्हें आनन्द आता है। असत्काव्यों के पढ़ने से चारित्रिक अवनति भी होती है तथा आत्मविश्वास चला जाता है और जीवन के वास्तविक ध्येय से व्यक्ति वंचित हो जाता है। शास्त्र स्वाध्याय के लिये ऐसे ही काव्यों या चरित्र ग्रन्थों को लेना चाहिये, जिनके स्वाध्याय से चरित्र की वृद्धि हो तथा आत्मा के अहित कारक विषय-कषायों से घृणा उत्पन्न हो जाय ।।४२।।

जैसे कुंए में रहने वाला मेढ़क, जिसने कभी समुद्र का दर्शन नहीं किया है, वह कुंए को ही सब कुछ समझ कर घमण्ड में चूर रहता है, उसी प्रकार कुकवि जिसने कभी सत्काव्य का दर्शन नहीं किया है, वह कुकाव्य को ही सब कुछ समझता है ।। ४३ ।।

विवेचन—जिस काव्य के अध्ययन से रत्नत्रय की प्राप्ति हो वह सत्काव्य और जिसके अध्ययन से रत्नत्रय की प्राप्ति न हो तथा जो उलटा रत्नत्रय की प्राप्ति में बाधक हो उसे असत्काव्य कहते हैं। राग-द्वेष से समाक्रान्त व्यक्ति को सत्काव्य अच्छा नहीं लगता है, उनका मन ऐसे काव्यों में नहीं लगता, जिनमें अपने को समझने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में गहराई से विचार करने पर कोई भी व्यक्ति सत्काव्य की उपयोगिता को अच्छी तरह जान सकता है, क्योंकि सत्काव्य क्षणिक आनन्द प्रदान नहीं करता, बल्कि वह शाश्वत आनन्द देता है। उसके पठन और मनन से व्यक्ति को ऐसा प्रकाश मिलता है, जिसके द्वारा वह सहज में ही अपना विकास कर लेता है।

दुर्जन पुरुषों को कुकाव्य ही अच्छा लगता है। उन्हें स्त्रियों की चर्चाएं उनके अंग-प्रत्यंग की बनावट तथा उनका सौन्दर्य ही विशेष रुचता है। यह भी सुनिश्चित है कि सभी कवि सत्काव्य का सृजन नहीं कर सकते हैं, किसी एकाध पुण्यात्मा की वाणी ही ऐसी हो सकती है, जो रत्नत्रय की प्राप्ति में सहायक बन सके। अधिकांश कवि ऐसे होते हैं, जिनकी वाणी चमत्कार तो उत्पन्न करती है, पर आत्मोत्थान का मार्ग प्रस्तुत नहीं कर सकती है। कविवर अर्हद्दासजी ने अपने मुनिसुव्रत काव्य में सज्जन और दुर्जनों के इस प्रकृत स्वभाव का सुन्दर चित्रण किया है। कवि कहता है—

संतः स्वभावाद् गुणरत्नमन्ये गृह्णन्ति दोषोपलमात्मकीयम् ।
यथा पयोऽस्रं शिशवो जलौकाः जनो वृथा रज्यति कुप्यतीह ॥

भावार्थ—सज्जन पुरुष स्वभाव से गुणग्राही होते हैं और दुर्जन दोषग्राही। सत्कवि स्वभाव से ही ऐसी रचना करता है जिससे वह तथा उसकी रचना के पाठक और अध्येतार रत्नत्रय मार्ग को प्राप्त कर सकें या इस मार्ग में उत्तरोत्तर प्रगति कर सकें। दुर्जन पुरुष और असत्कवि भी स्वभावतः दुर्गुण ग्राही होते हैं, वे सांसारिक विषयों का अनुरागोत्पादक वर्णन करते हैं जिससे अपना तथा अपने पाठकों का अहित करते हैं। ऐसे कुकवियों की रचनाएं थोड़े समय के लिये भले ही समादरणीय हो जायें, पर उनका वास्तविक आदर नहीं होता है। बालक जैसे स्तन के दूध का पान करता और जोंक खून का, उसी प्रकार सत्कवि अपनी अनुभूति का उपयोग आत्मकल्याण के लिये करता है, उसकी कल्पना अविषयों की ओर नहीं जाने पाती है। परन्तु कुकवि की अनुभूति और कल्पना दोनों ही नियन्त्रण रहित होती हैं, जिससे वह असत् विषयों में ही दौड़ लगाता है ॥ ४३ ॥

कुकवि और सुकवि के स्वभाव का निरूपण

जिस प्रकार चूहा और खोटन बढ़ैया—पेड़ में छिद्र करने वाला पक्षी, इन दोनों का एक ही काम होने पर भी दोनों में महान् अन्तर है, उसी प्रकार कुकवि और सुकवि में भी बड़ा भारी अन्तर होता है ॥ ४४ ॥

विवेचन—यद्यपि काव्य रचना सुकवि और कुकवि दोनों ही करते हैं, दोनों ऊपर से देखने में एकसे ही मालूम पड़ते हैं, फिर भी दोनों में महान् अन्तर होता है। एक कार्य करते हुए भी दोनों में भेद डालने वाली बड़ी भारी खाई होती है। जहां कुकवि केवल शृंगार रस का नख-शिख वर्णन करने में ही अपनी विशेषता और सफलता मानता है,

वहां सुकवि आत्मानुभूति और समता का वर्णन कर अपने को कृतकृत्य समझता है। प्रथम का ध्येय भौतिक, सांसारिक क्षणिक एवं इन्द्रिय तृप्ति तक ही है, पर द्वितीय का ध्येय व्यापक, आध्यात्मिक, शाश्वत और आत्मतृप्ति करने वाला होता है। कविवर भूधरदास जी ने कुकवि की निन्दा करते हुए बताया है कि—

राग उदै जग अन्ध भयो, सहजैं सब लोगन लाज गमाई।
सीख विना नर सीखत हैं, विषयादिक सेवन की सुघराई॥
तापर और रचैं रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझन की अखियान में, झोंकत हैं रज रामदुहाई॥

भावार्थ—मोहोदय के कारण मनुष्य अन्धा हो जाता है जिससे वह अपने करणीय कार्यों को छोड़कर पथ भ्रष्ट हो जाता है और बिना सिखाये विषयों के सेवन की दक्षता प्राप्त कर लेता है। इतने पर भी कुकवि लोग शृंगार की रचना कर मनुष्यों को नरक में पहुँचाते हैं। कवि कहता है कि तुम्हें कसम है, तुम अन्धे पुरुष की आंखों में धूल मत फेंको। सत्कवि कल्याणकारी रचनाएं कर समाज के चारित्र के मापदण्ड को उन्नत बनाता है॥ ४४॥

सत्काव्य सज्जनों को आनन्द देता है

जब मोर नाचता है, तब उसके मनोहर नृत्य को देखकर सरस हृदय विवेकी प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु कुत्ता नाराज होकर उसे काटने दौड़ता है॥ ४५॥

यह काव्य ग्रन्थ भी सत्कवियों एवं सहृदयों को आनन्द देगा, पर कुकवि और मिथ्यादृष्टियों को अच्छा नहीं लगेगा॥ ४६॥

विवेचन—अच्छी वस्तु को देखकर सज्जन पुरुष प्रसन्न होते हैं, उनके हृदय में आनन्द की बाढ़ आ जाती है, पर दुष्ट पुरुष उसी मनोहर वस्तु को देखकर अप्रसन्न होते हैं। यह प्रसन्नता और अप्रसन्नता स्वभाव के ऊपर आश्रित है, इसमें दोष किसी का नहीं है। जिसका जैसा स्वभाव होता है, उसे वही चीज अच्छी लगती है। सत्काव्य के अध्ययन और चिन्तन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों वर्गों के फलों की प्राप्ति होती है। कहा भी गया है—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥

—साहित्य द० प्र० प०

सत्काव्य धर्मात्मा और विचारशील व्यक्तियों के लिये इसीलिये आनन्ददायक होता कि उसके अध्ययन से रत्नत्रय की प्राप्ति की जा सकती है। जो काव्य मोह को घटाता है तथा संसार के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान कराता है, वही सत्काव्य माना जा सकेगा। अज्ञानवश इस जीव को संसार का मनमोहक रूप, जो भीतर से बहुत ही भयावना है, प्रिय लगता है। यह कठिनता से प्राप्त हुई मानव पर्याय को यों ही विषयों में बिता देता है। लक्ष्मी, यौवन, स्त्री, पुत्र, परिजन सभी क्षणभंगुर हैं, विनाशीक हैं। जीवका इनके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, जीव अकेला ही अपने शुभ-अशुभ भावों का कर्त्ता तथा उनसे उत्पन्न फल का भोक्ता है। क्षणिक ऐश्वर्य को प्राप्त कर अभिमान में आकर भले ही अपने को सर्वगुण और समर्थ यह जीव समझे, किन्तु जब तक कर्मों का सम्बन्ध है, तब तक उसका यह समझना अज्ञानता का सूचक है। यद्यपि ज्ञानी जीव अपने को शक्ति की अपेक्षा से शुद्ध, बुद्ध, निष्कलंक, अखण्ड ज्ञानादि गुणों का धारी समझता है, फिर भी कर्म बन्धन की अपेक्षा उसे संसार की माया से लिप्त होना पड़ता है। सत्काव्य द्वारा जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान होता है, वह हेयोपादेय को समझता है तथा जीव, कर्म और इनके सम्बन्ध को समझ कर अपने उद्धार मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है।

आत्म–कल्याणेच्छुक व्यक्ति इसीलिये शास्त्र स्वाध्याय में अपना विशेष समय लगाते हैं जिससे आत्म–शुद्धि और भाव की शुद्धि प्राप्त होने के साथ करण लब्धि को प्राप्त कर सकें। स्वाध्याय में मन के एकाग्र होने से परिणामों में विशेष विशुद्धि आती है, चंचल मन स्थिर होता है, संसार से विरक्ति होती है और रागद्वेष की प्रवृत्ति घट जाती है। जो व्यक्ति सच्चे शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं, वे अज्ञानान्धकार को दूर कर स्वानुभूति को प्राप्त कर लेते हैं। भेद विज्ञान रूपी सूर्य का उदय उनके हृदय में हो जाता है और समय आने पर वे निर्वाण लाभ कर लेते हैं मिथ्यादृष्टियों को सत्काव्य के अध्ययन में उनका मिथ्यात्व ही बाधक होता है। जिस प्रकार पित्तज्वर वाले को दूध कड़ुवा लगता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टियों को सत्काव्य अच्छे नहीं लगते।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

जिस प्रकार सुन्दर ढंग से रखी गयी मिट्टी के वर्तनों की पंक्ति विवेकी पुरुषों को श्रेष्ठ प्रतीत होती है, किन्तु कुत्ते उस पंक्ति को देखकर भौंकने लगते हैं तथा उसे फोड़ डालते हैं ।। ४७ ।।

जिस प्रकार गन्ना—इक्षुदण्ड जब तक नम्रीभूत—नीचे को झुका हुआ रहता है, कृषक पानी का सिंचन कर उसका पोषण करते हैं, किन्तु जब वही घमण्ड से उन्नत हो जाता है तो कृषक उसे काट डालते हैं । इसी प्रकार कविता करते हुए सत्कवि विनयशील और पूज्य एवं कुकवि उद्दण्ड और दण्डनीय होते हैं ।। ४८ ।।

विवेचन—नम्रता मनुष्य का गुण है और अहंकार दोष । अहंकार और ममकार ही इस जीव की अवनति के कारण हैं । जब कोई भी जीव अपने स्वरूप को भूलकर पर में आत्म–बुद्धि ग्रहण करता है तब अहंकार और ममकार की भावना जाग्रत होती है । यह परबुद्धि जितनी अधिक बढ़ती जाती है, अहंकार की भावना भी उतनी ही तेज होती जाती है । सत्कवि नम्रता को धारण करते हैं, वे स्वयं सम्यग्दृष्टि होते हैं तथा सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का पालन करते हुए अपने विशेष ज्ञान द्वारा काव्य का निर्माण करते हैं । इनके द्वारा रचे गये काव्य रत्नत्रय की प्राप्ति में सहायक होते हैं । प्रायः सर्व श्रेष्ठ शास्त्र निर्माता विषय–वासना से रहित, आरम्भपरिग्रह के त्यागी और ज्ञानी ध्यानी होते हैं । ऐसे व्यक्तियों के द्वारा रचे गये शास्त्र ही आत्म कल्याण करने में सहायक हो सकते हैं ।

संसार में वे ही सत्कवि पूज्य हो सकते हैं, जो संयमी, विनयी, ज्ञानी और चारित्रवान् होते हैं । इन्हीं के द्वारा रचित शास्त्रों से मानव समाज का कल्याण हो सकता है । साहित्य के नाम पर कल्याण से च्युत करनेवाली चीजें या रचनाएं समाज में कभी भी चिरकाल तक आदर को प्राप्त नहीं हो सकतीं । ऐसी रचनाओं से चारित्र उत्तरोत्तर बिगड़ता है जिससे अनीति और भ्रष्टाचार का बीजारोपण होता है ।

वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस संसार की असारता को देखकर विचलित हो जाता है; और आत्मा, उसकी खराबियों खराबियों के निदान और उनको दूर करने के उपाय अवगत करना चाहता है । जो काव्य-शास्त्र उसकी इस जिज्ञासा को पूर्ण करने में समर्थ होते हैं, उन्हें वह चाव से पढ़ता है तथा अपने आत्म—शोधन में प्रवृत्त होता है ।

सच्चे शास्त्र बतलाते हैं कि राग भाव ही संसार में दुःख का कारण है, जबतक हमारी रागरूप प्रवृत्ति रहती है तब-तक हमें इष्टानिष्ट रूप में वस्तुएं दिखलायी पड़ती हैं। हम अपने राग के कारण ही पदार्थों को अच्छा या बुरा समझते हैं, रागभाव के दूर होते ही पदार्थों में समता बुद्धि हमारी हो जाती है तथा हमें प्रतीत होने लगता है कि संसार के पदार्थ आत्मा से भिन्न हैं, आत्मा का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं और न उनका आत्मा से कोई सम्बन्ध है; क्योंकि वे पर हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ जिनका प्रतिक्षण अनुभव होता है; वे आत्मा से सर्वथा जुदे हैं। स्त्री, पुत्र, धन, धान्य आदि में जो अपनत्व की प्रतीति हो रही है, वह मिथ्या है। जबतक इन पदार्थों को हम अपने समझते हैं, तबतक हमें दुःख झेलना पड़ता है, अपनी स्वरूपोपलब्धि से वंचित होना पड़ता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को सत्कवियों एवं आचार्यों के द्वारा निर्मित काव्य-शास्त्रों का ही अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये।

असत्काव्य की अग्राह्यकता

जिस प्रकार बिना नमक या चीनी के बढ़िया चावलों के भात में पर्याप्त घी डाल देने पर भी स्वाद नहीं आता है, उसी प्रकार कुकवियों के द्वारा बनाया गया सरस काव्य भी कल्याणकारी नहीं हो सकता ।। ४९ ।।

विवेचन—सत्काव्य की एकमात्र कसौटी रत्नत्रय की प्राप्ति में सहायक होना है। साहित्य शास्त्र के लक्षण प्रणेताओं ने यद्यपि रमणीय अर्थ के निरूपण करने वाले वाक्यों को काव्य कहा है तथा और भी अनेक ध्वनि, अलंकार व्याजोक्ति आदि को प्राधान्य देकर लक्षण बताये हैं, पर वास्तव में काव्य का लक्षण यही है कि जिस रचना में पूर्वापर विरोध न हो और जो रत्नत्रय की वृद्धि में सहायक हो। कुकवि सरस काव्य का निर्माण कर सकते हैं, शृंगार रस का अच्छा वर्णन कर पाठकों के हृदय में वासना को उभाड़ सकते हैं, पर उनके काव्य से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता है। आचार्य नयसेन ने उपर्युक्त पद्य में कुकवि और सुकवि की इसी विशेषता का प्रदर्शन किया है।

जो भक्तिभाव से प्रतिदिन भगवान् का स्मरण करता है तथा प्रतिदिन सत्कार्यों को करता है, ऐसे पुण्यात्मा पुरुषों की कथाओं को कहने और सुनने से कितने कर्मों की निर्जरा होगी, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।।५०।।

विवेचन—प्रत्येक गृहस्थ के दैनिक षट् कर्म हैं—देवपूजा, गुरुपूजा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान देना। जो व्यक्ति गृहस्थावस्था में रहकर अपने इन दैनिक षट्कर्मों का आचरण करता है तथा मूलगुण और उत्तरगुणों का यथार्थ

पालन करता है, वह गृहस्थ मुनिधर्म को धारण करने की पृष्ठ भूमि तैयार कर लेता है। ऐसा व्यक्ति अवसर मिलते ही मुनिधर्म को ग्रहण कर लेता है और अपने आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो जाता है। मुनिधर्म का यथार्थ पालन करता हुआ निर्वाण लाभ करता हैं। इस प्रकार के पुण्यात्मा जीवों की कथाएं कहने और सुनने से कर्मों की निर्जरा होती है, आत्मा निर्मल हो जाती है तथा धर्म–पालने के लिये प्रेरणा मिलती है। महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने से बड़ाभारी लाभ होता है। साधारण व्यक्ति भी ऐसे चरित्रों के अध्ययन से आत्म–कल्याण की बहुत सी बातें जान सकता है।

जिन्हें गृहस्थावस्था में रहकर आत्म–कल्याण करना है, उन्हें कम से कम तीन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये — भगवान् की पूजा करना, शास्त्र स्वाध्याय करना और सामायिक करना। इन तीनों कार्यों को करने वाला व्यक्ति अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को सदा समझता रहेगा, जिससे वह विपरीत मार्ग की ओर नहीं जायगा। भगवान् की पूजा पाप, दुःख, संकट, रोग आदि को दूर करती है, जीव की भावनाओं को शुद्ध करती है। यह उपासना दीनता-भरी याचना या खुशामद नहीं होती। यह तो शुद्धात्मानुभूति के गौरव से ओत-प्रोत रहती है, दीनता, क्षुद्रता और स्वार्थ-परता को जिन पूजा में स्थान नहीं है। पूजा करने से कषायें मन्द होती हैं और साधक को दृढ़ आत्मास्था उत्पन्न होती है जिसके बल से वह आगे अच्छा कार्य कर सकता है। इसी प्रकार स्वाध्याय से सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की वृद्धि होती है, जिससे वह कुपथ पर नहीं जाता। सामायिक करने से कोई भी व्यक्ति अपने आत्म स्वरूप को पहचान सकता है। मोह, माया और राग-द्वेप के फन्दे से अपने को बचा सकता है। एकान्त स्थान में आत्मालोचना करने तथा शुद्ध आत्मस्वरूप का चिन्तन करने से आत्मा में बड़ी भारी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उक्त तीनों नियमों का पालन करना चाहिये।

ग्रन्थकार की लघुता और गुरु का वन्दन

जिनमत रूपी समुद्र से सारांश लेकर इस ग्रन्थ का निर्माण किया जा रहा है, इसके निर्माण में मेरी कोई विशेषता नहीं है ॥ ५१ ॥

आगम रूपी समुद्र के पारगामी, त्रिलोक में वन्दनीय, पञ्चपरमेष्ठी के आराधक, ज्ञान-ध्यान में लीन, जैन मुनिपुंगव श्री नरेन्द्रसेन गुरुदेव को नमस्कार करता हूं, जो कि शिष्यों के लिये बन्धु के समान कृपालु हैं ॥ ५२ ॥

स्थिर वचन कहने वाले, व्रतों से विभूषित, समस्त संसार को पवित्र करने वाले, राज्य से पूज्य, जैनधर्म का उद्योत करने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी, सरस्वती के भूषण तीनों लोकों से पूज्य, जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में भ्रमर की तरह आसक्त एवं सुकवियों के मनरूपी तालाब के लिये राजहंस के समान हैं ।। ५३ ।।

विवेचन — यह धर्मामृत पूर्वाचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थों के आधार पर ही लिखा जा रहा है। इसमें कवि ने अपनी ओर से कोई नयी बात नहीं जोड़ी है, बल्कि प्राचीन आचार्यों के वचनामृत को 'नद्या नवघटे जलम्' के समान एकत्रित कर शृंखलाबद्ध कर दिया है। यदि कोई छद्मस्थ अपनी ओर से किसी नवीन शास्त्र का सृजन करना चाहे तो वह प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित शास्त्र ही प्रमाण होते हैं।

ग्रन्थ का निर्माण करते समय अपने गुरु का स्मरण करना भी आवश्यक होता है। गुरु के स्मरण करने से उपकार स्मरण की परिपाटी अक्षुण्ण रहती है तथा आगे की शिष्य परम्परा को उत्साह मिलता है। ग्रन्थकार ने इसी कारण मंगलाचरण करने के उपरान्त अपने गुरु नरेन्द्रसेन का स्मरण किया है तथा उनके ज्ञान भण्डार की प्रसंसा की है। नरेन्द्रसेन वास्तव से जैन शास्त्र के बड़े भारी पारगामी थे। इनका संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ भाषा पर भी पूरा अधिकार था। काव्य रचने में भी निपुण थे।

आचार्य नयसेन ने आचार्य नरेन्द्रसेन से दीक्षा भी ली थी और शास्त्रों का अध्ययन भी किया था तथा इनकी परम कृपा भी ग्रन्थ-कर्त्ता के ऊपर थी। यों तो नरेन्द्रसेन सभी शिष्यों से स्नेह करते थे, पर विशेषतः वे नयसेन से अधिक प्रेम करते थे। आचार्य नयसेन ने भी उपलब्ध समस्त जैन शास्त्रों का अध्ययन कर श्रावकधर्म के निरूपण करने वाले धर्मामृत नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है ।। ५३ ।।

कवि का परिचय

श्रेष्ठ शील गुण से युक्त, अत्यधिक गुणों से परिपूर्ण सभी भव्यों के मन को आह्लादित करने वाला मैं नयसेन नामक बुद्धिमान कवियों के समूह में कोयल के समान हूं ।। ५४ ।।

जिनेन्द्र वचनामृत को, जो कि समस्त प्राणियों का हित करने वाला है तथा जो समस्त भव्य जीवों का आत्मोद्धार करने वाला है; मैं ऐसे धर्मामृत को कहता हूं ।। ५५ ।।

धर्मामृत की विशेषता

यह इन्द्रपदवी को देने वाला और मोक्ष लक्ष्मी के वैभव को प्राप्त करने में सहायक है । यह मिथ्यात्वरूपी मदोन्मत्त हाथी को नष्ट करने के लिये सिंह के समान समर्थ है । निर्मल सुख और अभ्युदय को देने वाला है तथा विपुलाचल पर श्री वीर प्रभु के मुख से निसृत है एवं देव, दानव और अमरेन्द्र द्वारा स्तुत्य यह धर्मामृत है ॥५६॥

जिनेन्द्र भगवान् की समवशरण सभा में जिसमें सभी जीव शान्ति और प्रेम पूर्वक उपदेश श्रवण करते हैं तथा जिस सभा में किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं रहता; राजा श्रेणिक के प्रश्नानुसार भगवान् के मुख से इस धर्मामृत का उपदेश हुआ है ॥५७॥

एक दिन विपुलाचल पर्वत पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण आया । चतुस्संघ सहित समवशरण के आने से असमय में ही षड् ऋतु के फल फूल उत्पन्न हो गये । वनमाली इन आश्चर्यकारक फल पुष्पों को देखकर प्रसन्न हुआ और इन्हें तोड़कर महाराज श्रेणिक को भेंट करने के लिये चला । राज दरबार में पहुँचकर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया तथा फल पुष्प भेंट कर कहने लगा—"हे महाराज ! विपुलाचल पर जगत हितकारी वर्द्धमान स्वामी का समवशरण आया है, इसी से असमय में सभी ऋतुओं के फल-पुष्प एक साथ विकसित हो गये हैं ।" राजा वनमाली के इन आनन्दकारी वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और सिंहासन से उतर कर सात पग आगे जाकर परोक्ष नमस्कार किया तथा आनन्ददायक समाचार सुनाने के उपलक्ष में वनमाली को यथेष्ट पुरस्कार दिया ।

पश्चात् राजा ने नगर में आनन्द भेरी बजवा दी जिसे सुनकर सभी पुरजन, परिजन एकत्रित हो गये । राजा श्रेणिक ने सभी को अष्ट द्रव्य सहित—जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल सहित भगवान् की पूजा के लिये चलने का आदेश दिया । राजा ने स्वयं रानी चेलना सहित पट्टवर्धन हाथी पर सवार होकर विपुलाचल पर्वत की ओर प्रस्थान किया ।

पर्वत के निकट पहुँचकर राजा श्रेणिक ने अपने राजकीय चिन्हों को वहीं छोड़ दिया और अष्ट द्रव्यों से भगवान् की पूजा की । पश्चात् हाथ जोड़कर त्रैलोक्यनाथ के समक्ष स्तुति करने लगा—

यत्पादाब्जरजः पवित्रशशभृच्छुभ्रच्छिलासञ्चयो
विख्यातो विपुलाचलः सुरशिरो वन्द्योऽभवत्तीर्थराट् ।
सश्रीमानमरेन्द्रपूजितपदः कैवल्य सम्पल्लसन्
वीरो भव्यजनैकबन्धुरनिशं पूयाज्जगन्मानसम् ॥ १ ॥

यो रत्नत्रयभूषितोऽपि रुचिरालङ्कारभारोज्झितोऽ
नेकान्तप्रतिपादकोऽपि नितरामेकान्तयोगे रतः ।
निर्वासा अपि चाम्बराम्बरलसत्कायोऽद्भुतः सर्वविन्
नश्चेतोनिलयं निलीयलसतान्नित्यं स वीरप्रभुः ॥ २ ॥

समीरो ध्यानाग्नेरुदधिरिव धीरोऽमृतगिरः
किरः कीरो हीरोज्ज्वलमुनिमनः पञ्जररतः ।
निधीरोचिष्णूनां गुणमणिगणानामभयदो
महावीरो भीरो मम भवगभीरोदधिभिया ॥ ३ ॥

अज्ञानावृतलोचनोऽस्मि भगवन् ! नालोक्यते सत्पथो
मुक्तिर्दूरतरस्थितातिविषमा भूर्वर्तते सर्वतः ।
नेता कश्चिदवञ्चको न जगति श्रेयस्करो दृश्यते
तत्त्वामेव समाश्रितोऽस्मि हितकृन्नान्योऽत्र कश्चिन्मम ॥ ४ ॥

नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने ।
वचः प्रसून मालाभिरित्यानर्च गिरांपतिम् ॥ ५ ॥

त्वं जिनः कामजिज्जेता त्वमर्हन्नरिहागहः ।
धर्मध्वजो धर्मपतिः कर्मावि निशुंभनः ॥ ६ ॥
त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः ।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्वलद्धाम हितः ॥ ७ ॥

इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति कर और गौतम गणधर को नमस्कार कर राजा श्रेणिक मनुष्यों के कोठे में बैठ कर प्रश्न पूछने लगा—

हे मुने !नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चारों गतियों में जन्म मरण का निरन्तर दुःख उठाता हुआ यह जीव शान्ति लाभ कैसे कर सकता है ? बतलाने की महती कृपा कीजिये ।

देव जिनकी स्तुति में सर्वदा तत्पर रहते हैं, जिसका दिव्य शरीर है और जिनके दांतों की कान्ति सर्वत्र व्याप्त है तथा जो भव्यों द्वारा सर्वदा वन्दनीय हैं, ऐसे गौतम गणधर समुद्र के समान गम्भीर तीर्थंकर प्रभु के मुख से निकली हुई दिव्य वाणी की व्याख्या करते हुए कहने लगे—

राजन् आपने जो प्रश्न किया है, वह बहुत उत्तम है । चारों गतियों के जन्म मरण का दुःख सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना दूर नहीं हो सकता । यह सम्यग्दर्शन ही सांसारिक दुःखों से छुड़ाकर मोक्ष रूपी सुख को दे सकता है । इसकी प्राप्ति करणलब्धि के विना नहीं हो सकती । करणलब्धि के विना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मानना इस प्रकार असंभव है जैसे आंखों के विना देखना मानना,कानों के विना सुनना मानना, खेत के अभाव में धान की उत्पत्ति, स्त्री के विना पुत्र की उत्पत्ति, बुद्धि बिना न्याय, दीवाल या अन्य किसी आलम्बन विना चित्र का खींचना, जल बिना रसोई बनाना, बाण बिना धनुष चलाना, पानी बिना तालाब बनाना, पैर बिना चलना, तैरना विना जाने समुद्र पार करना, सम्पत्ति बिना मनोरंजन की सामग्री खरीदना एवं रसना बिना बोलना असंभव है । अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करणलब्धि[1]

---

१ क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण ये पांच लब्धियां हैं । इनमें पहले की चार लब्धियां सभी को हो सकती हैं, लेकिन पांचवी करण लब्धि सम्यक्त्व और चारित्र की तरफ झुके हुए भव्य जीवों के ही होती है ।

तत्तो अभव्वजो परिग्गंणामं बोलिऊण भव्वो हु ।
करणं करोदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ॥ लब्धिसार गा० ३३

के होने पर ही होती है। देवेन्द्रपद, चक्रवर्तीपद एवं निर्वाणपद की प्राप्ति इसके बिना नहीं हो सकती है। यह सम्यग्दर्शन ही समस्त सुखों को देनेवाला है, दुःख-दारिद्रय को नाश करनेवाला है तथा इसके प्राप्त हो जाने पर जीव को निर्वाण कभी न कभी मिल ही जाता है।

श्रेणिक—प्रभो ! सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है, उसके धारण करने की विधि क्या है और धारण करने से फल क्या होता है ?

गौतम गणधर—राजन् ! "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"—"तत्त्वशब्दो भाव सामान्यवाची। कथम् ? तदिति सर्वनामपदम्। सर्वनाम च सामान्ये वर्तते। तस्य भावस्तत्त्वम्। तस्य कस्य ? योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः अर्यते इत्यर्थो निश्चीयत इत्यर्थः। तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः। अथवा भावेन भाववतोऽभिधानं तदव्यतिरेकात्। तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः। तत्त्वार्थस्य श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानं, सम्यग्दर्शनं प्रत्येतव्यम्। तत्त्वार्थश्च वक्ष्यमाणो जीवादिः। दृशेरालोकार्थत्वात् श्रद्धानार्थगतिर्नोपपद्यते ? धातूनामनेकार्थत्वाददोषः। प्रसिद्धार्थत्यागः कुत इतिचेन्मोक्षमार्गप्रकरणात्, तत्त्वार्थश्रद्धानं ह्यात्मपरिणामो मोक्षस्य साधनं युज्यते, भव्यजीवविषयत्वात्। आलोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवसाधारणत्वान्न मोक्षमार्गो युक्तः। अर्थश्रद्धानमितिचेत्सर्वार्थग्रहणप्रसङ्गः। तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसङ्गः। सत्ताद्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि तत्त्वमिति कैश्चित्कल्प्यत इति। तत्त्वमेकत्वमिति वा सर्वैक्यग्रहणप्रसङ्गः। पुरुष एवेदं सर्वमित्यादिकैश्चित्कल्प्यत इति। तस्मादव्यभिचारार्थमुभयोरुपादानम्। तत् द्विविधं, सरागवीतरागविषयभेदात्। प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम्। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत् १।"

अभिप्राय यह है कि जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का विपरीताभिनिवेश रहित और प्रमाणनयादि के विचार सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन आत्मा का निर्विकल्प गुण है। मोहनीय कर्म के उदय ने इसे दूषित कर दिया है। जब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक् और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाता है तब सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। यह आत्मा में रहता है, पर मोहनीय कर्म इसे आच्छादित रखता है। मोहनीय के हटते ही इस गुण की प्राप्ति हो जाती है।

१—सर्वार्थसिद्धि सू० २ अ० १

संसार और भोगों से विरक्त होने पर ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। सम्यग्दृष्टि अपने को सदा अकेला ही समझता है और समस्त कर्म विकार से अपनी आत्मा को भिन्न, शुद्ध और चैतन्य स्वरूप समझता है। यह आत्मलोक को ही वास्तव और नित्य समझता है, अतः इस लोक भय, परलोक भय वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, मरण भय एवं आकस्मिक भय इन सातों भयों से रहित निर्भय होता है। आत्मिक दृढ़ आस्था के बिना कोई भी व्यक्ति निर्भय नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि बिल्कुल निर्भय रहता है, वह आत्मा को समस्त पदार्थों से भिन्न समझता हुआ अपने कल्याण में प्रवृत्त होता है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की एक ही विधि है, वह है संसार भोगों से विरक्त होकर अखण्ड एवं अनन्त गुणों के समुदाय आत्मा की आस्था करना। यही आस्था प्राणियों को आगे का मार्ग दिखलाती है तथा इसी के द्वारा जीव अपना कल्याण मार्ग प्राप्त करते हैं। इस सम्यग्दर्शन की बड़ी भारी महिमा है, यह जिसको प्राप्त हो जाता है, वह प्रथम नरक को छोड़ शेष छः नरकों में, तिर्यञ्चों में, स्त्रियों में भवनवासी—व्यन्तर—ज्योतिषी देवों में एवं दरिद्र कुल में जन्म नहीं लेता है। शरीर भी स्वस्थ और दिव्य होता है।

जैसे वीरता बिना सैनिक, नाक के बिना सुन्दर मुख, मुद्रिका के बिना अंगुली, सुन्दर अंगुलियों के बिना हाथ, तैल बिना दीपक अपना काम सुचारुरूप से नहीं कर सकता है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन[1] धारण किये बिना धर्म का पालन नहीं हो सकता।

जैसे सामर्थ्य बिना सुन्दर शरीर, दरवाजे बिना सुन्दर महल तथा चाहारदीवारी के बिना बगीचा या दुर्ग सुरक्षित और सुव्यवस्थित नहीं माने जाते हैं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना धर्म व्यवस्थित नहीं माना जा सकता है।

वरांगना बिना राजसभा, सुन्दर और स्वस्थ पुत्र बिना घर पूर्ण जल के बिना, कूप, दुर्ग के बिना राजधानी श्रद्धा बिना पूजा, पति के विश्वास बिना स्त्री, सत्य और दया बिना धर्म जैसे शोभित नहीं होते, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन

१—श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्। त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥ सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का तीन मूढ़ता और आठ मद रहित तथा अष्टाङ्ग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

—रत्न क० श्लो० ४

के बिना मानव जीवन शोभित नहीं होता है, इसके बिना जप–तप करना सब व्यर्थ है ।

जैसे गन्ध बिना घी का स्वाद, प्रेम बिना प्रभुत्व, मोह बिना संसार, भक्ति बिना स्तुति शक्ति बिना युद्ध, धन बिना वैभव, नगर बिना राजा, फल बिना बगीचा, कुलीनता बिना महिमा, रास्ता बिना गमन, घी बिना भोजन, अग्नि बिना रसोई शाला, विश्वास बिना सेवा- सौन्दर्य बिना नारी, दया बिना आचार, सामान बिना दुकान, पति बिना सती, मद बिना हाथी, जल बिना गांव एवं विवेक बिना तप शोभित नहीं होते उसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना जप–तप–दान शोभा को प्राप्त नहीं होते ।

जैसे धर्म बिना राजा, भोजन बिना शरीर, वस्त्र बिना आभूषण, सौन्दर्य बिना युवावस्था, कमल बिना तालाब, धान बिना खेत, सेना बिना राजा, अपनी स्थिति संसार में सम्यक् प्रकार कायम नहीं रख सकते हैं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना आत्मकल्याण संभव नहीं ।

रहट के समान अनादि काल से चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए इस जीव को केवल सम्यग्दर्शन ही दुःख से छुड़ा सकता है ।

सम्यग्दर्शन के अष्टाङ्गों का पालन करना उतना ही आवश्यक है जितना वृक्ष का अस्तित्व कायम रखने के लिये वृक्ष की शाखाओं का होना एवं शरीर का अस्तित्व कायम रखने के लिये शरीर के अवयवों का होना । अष्टाङ्गों के बिना सम्यग्दर्शन का पालन यथार्थरूप से नहीं हो सकता है ।

निःशंकित, निकांक्षित निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और धर्मप्रभावना इन अष्टांगों सहित सम्यग्दर्शन को धारण करना चाहिये[1] तथा पञ्चाणुव्रतों का पालन करना भी आवश्यक है ।

पञ्चरत्न कौन से हैं ? अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रह परिमाणव्रत ये पांच अणुव्रत ही पञ्चरत्न हैं ।

१—नाङ्गहीनमल छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् । नहि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् । जिस प्रकार अक्षरन्यून मंत्र विषवेदना को दूर नहीं कर सकता है, उसी प्रकार अङ्गहीन सम्यग्दर्शन जन्म–मरण की सन्तति को दूर नहीं कर सकता है ।

—रत्न क० श्लो० २१

चौदह रत्न कौनसे है ? क्या ये पांच रत्न भी उनमें शामिल हैं ?

सम्यग्दर्शन, अष्टाङ्ग और पञ्चाणुव्रत ये चौदह मिलकर चौदह रत्न कहलाते हैं पञ्चाणुव्रत रूपी पांच रत्न भी इन्हीं में शामिल हैं। जो दृढ़ता पूर्वक इन चौदह रत्नोंको धारण करता है वह निस्सन्देह अभ्रान्त सुखको प्राप्त करता है।

जो व्यक्ति उपर्युक्त चौदह रत्नों का सम्यक् प्रकार से पालन करते हैं, उनकी महिमा का वर्णन करना संभव नहीं, उन्हें मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति हो जाना भी असंभव नहीं है। अर्थात् थोड़े दिनों की साधना के पश्चात् मोक्षलक्ष्मी इन्हें प्राप्त हो जाती है।

गौतम गणधर की इन बातों को सुनकर मगध सम्राट् श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुआ और भक्ति पूर्वक नमस्कार कर कहने लगा—हे स्वामिन्! मेरी इच्छा इन चौदह रत्नों को धारण करनेवालों के चरित्र के जानने की है। जिन महापुरुषों ने इन रत्नों को धारण कर निर्वाण प्राप्त किया है, कृपया उनकी कथा कहिये।

गौतम गणधर मधुर और गम्भीर वाणी में उत्तर देने लगे—

मध्यलोक में जम्बूवृक्ष से उपलक्षित एक लाख योजन के विस्तारवाला जम्बू नाम का द्वीप है, इसके मध्य में नाभि के समान सुमेरु पर्वत शोभित होता है। इस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन, तीन कोस, एक सौ अठ्ठाइस धनुष साढ़ेतेरह अंगुल है। इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं तथा इन सात क्षेत्रों का विभाग करनेवाले पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवत् महाहिमवत्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरिन् ये छः पर्वत हैं।

इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंच्छ, केशरिन्, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के सरोवर हैं। पद्म तालाब एक हजार योजन लम्बा पांचसौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है। इसमें एक योजन का कमल है, इस कमल पर श्री नाम की देवी सामानिक और परिषद् जाति के देवों के साथ निवास करती है। महापद्म नाम का तालाब दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा और बीस योजन गहरा है। इसमें दो योजन विस्तार का कमल है, जिस पर ह्री नाम की देवी निवास करती है। तिगिंच्छ तालाव चार हजार योजन लम्बा, दो हजार योजन चौड़ा और चालीस योजन गहरा है इसमें चार योजन विस्तार का कमल है, इस पर धृति नाम की देवी निवास

करती है। केशरी तालाव चार हजार योजन लम्बा, दो हजार योजन चौड़ा और चालीस योजन गहरा है। इसमें चार योजन विस्तार का कमल है इस पर धृति नाम की देवी निवास करती है। महापुण्डरीक नामक तालाब दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा और बीस योजन गहरा है इसमें दो योजन विस्तार का कमल है, इस पर बुद्धि नाम की देवी रहती है। पुण्डरीक नामक तालाव एक हजार योजन लम्बा, पांचसौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है, इसमें एक योजन विस्तार का कमल है इस पर लक्ष्मी नामकी देवी निवास करती है। इन सभी कमलों पर निवास करनेवाली देवियों की आयु एक पल्य की होती है।

जम्बूद्वीप के सातों क्षेत्रों में गंगा–सिन्धु, रोहित रोहितास्या, हरित्–हरिकान्ता, सीता–सीतोदा, नारी–नरकान्ता, सुवर्णकूला–रूप्यकूला एवं रक्ता–रक्तोदा ये चौदह नदियां प्रवाहित होती हैं। गंगा–सिन्ध की सहायक नदियां चौदह हजार, रोहित–रोहितास्या की अट्ठाइस हजार, हरित–हरिकान्ता की छप्पन हजार, सीता–सीतोदा की एक लाख बारह हजार, नारी–नरकान्ता की छप्पन हजार, सुवर्णकूला–रूप्यकूला की अट्ठाइस हजार एवं रक्ता–रक्ततोदाकी चौदह हजार हैं।

भरत क्षेत्र का विस्तार ५२६ सही ६ वटा १९ योजन, हिमवत् पर्वत का १०५२ सही १२ वटा १९ योजन हैमवत् क्षेत्र का २१०५ सही ५ वटा १९ योजन, महाहिमवत्कुलाचल का ४२१० सही १० वटा १९ योजन, हरिक्षेत्र का ८४२१ सही १ वटा १९ योजन, निषध कुलाचल का १६८४२ सही २ वटा १९ योजन, विदेह क्षेत्र का ३३६८४ सही ४ वटा १९ योजन, नीलकुलाचल का १६८४२ सही २ वटा १९ योजन, रम्यकक्षेत्र का ८४२१ सही १ वटा १९ योजन, रुक्मि कुलाचल का ४२१० सही १० वटा १९ योजन, हैरण्यवतक्षेत्र का २१०५ सही ५ वटा १९ योजन, शिखरिन् कुलाचल का १०५२ सही १६ वटा १९ योजन एवं ऐरावतक्षेत्र का ५२६ सही ६ वटा १९ योजन है।

इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐवरात क्षेत्रों में समय के प्रभाव से आयु, विद्या, बुद्धि, शरीर आदि की उन्नति, अवनति होती रहती है। भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्र में कर्मभूमि की व्यवस्था है। भरत और ऐरावतक्षेत्र में चतुर्थ-काल में ही तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं परन्तु विदेह में सर्वदा बीस तीर्थंकर वर्तमान रहते हैं। भरतक्षेत्र नाना प्रकार के वन, उपवन; नदी, नाले, सरोवर, आदि से सम्पन्न हैं, इसमें भव्य जीव निवास करते हैं, जो अपने पुरुषार्थ से कर्मोंकी निर्जरा कर निर्वाण लाभ करते हैं।

वसुभूति और दयामित्र सेठ की कथा

इस भरतक्षेत्र में सौराष्ट्र नामका देश है, जो जिनमन्दिर, वाटिका, तालाव, धन, धान्य आदि से परिपूर्ण है। इस सुन्दर हरे-भरे देश में कुवेर की नगरी के तुल्य गिरि नाम का नगर है। यह नगर धर्मात्मा जनों का निवासस्थान है, इसमें सभीलोग सुखी निरोग और धनिक हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पांचों पाप इससे सदा दूर रहते हैं। इस नगर का शासक महामंडलीक राजा था। इस नगर में निर्मल सम्यग्दर्शन का धारी, कुवेर के समान धनिक दयामित्र नामका नगर सेठ रहता था। वह ऐश्वर्य में कुवेर के समान, भोग भोगने में इन्द्र के तुल्य, उदार गुणों का धारी, याचकों के लिये कल्पवृक्ष के समान था।

दयामित्र सेठ अपरिमित ऐश्वर्य का धारी होकर भी भगवान की भक्ति, शास्त्रस्वाध्याय सुपात्रों को दान एवं आत्मचिन्तन आदि गुणों में सदा लीन रहता था।

एक दिन एकाएक इस सेठ के मन में विचार आया कि मनुष्य को सम्पत्ति के होने पर यह पर्याप्त है ऐसा सोच कर पुरुषार्थ को नहीं छोड़ना चाहिये वलिक उत्तरोत्तर पुरुषार्थ करते हुये धनवृद्धि करना चाहिये, जिससे लौकिक और धार्मिक कार्यों का सम्पादन सुचारुरूप से किया जा सके। क्योंकि लोक में धन से ही शक्ति प्राप्त होती है, धन से ही सम्मान मिलता है और धन से ही धर्म उपार्जन किया जा सकता है। अतएव मुझे भी व्यापार के लिये विदेश जाना चाहिये। लक्ष्मी की प्राप्ति विदेश में ही हो सकती है, देश में लक्ष्मी का मिलना प्रायः कठिन होता है। इस प्रकार ऊहा-पोह कर उसने नगर के अन्य व्यापारियों को बुलाया और आदेश दिया कि व्यापार सम्पादन के लिये विदेश चलने का प्रबन्ध शीघ्र करना चाहिये।

अपने पूर्व विचार के अनुसार दयामित्र सेठ ने व्यापारियों के साथ एक शुभ मुहूर्त में गाड़ियों पर अपना सामान लादकर प्रस्थान किया और नगर के बाहर आकर पड़ाव डाला। दोपहर के समय अपने तम्बू के दरवाजे पर बैठे हुए दयामित्र सेठ ने एक ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखा, जो माथे में चन्दन का तिलक, कन्धे में यज्ञोपवीत, हाथ में कुश लिये एवं बगल में कुशासन दबाये हुए था।

दयामित्र सेठ उस ब्राह्मण की इस वेश–भूषा को देखकर तथा वेद और अक्षतों को लिये रहने के कारण उसे धर्मात्मा समझ कर अभिवादन पूर्वक उससे पूछने लगा कि हे विप्रदेव आपका नाम क्या है ? आप कहां से आये हैं ? क्या चाहते हैं ?

ब्राह्मण — भो श्रेष्ठिन् ! मेरा नाम वसुभूति है, मैं दक्षिण भारत से इधर आया हूं । उत्तर भारत में प्रख्यात गंगा नदी है, जो सबको साहाय्य प्रदान करती है तथा पवित्र बनाती है । मैं उसी पावन मन्दाकिनी में स्नान करने जा रहा हूं । मेरे सामने मार्ग सम्बन्धी अनेक कठिनाइयां हैं, रास्ते में भयंकर जंगली जानवर रहते हैं, जो राहगीरों को मार कर खा जाते हैं । चोर और लुटेरों का भी भय है, ये जीते जी पथिकों को जहन्नुम भेज देते हैं । मैं अभी आपके गांव की ओर से आ रहा हूं,मुझे मालूम हुआ है कि आपने भी उत्तर प्रदेश की ओर व्यापार से निमित्त अनेक साथियों के साथ प्रस्थान किया है । मैंने विचार किया है कि आपके साथ गमन करने से मैं सकुशल गंगा जी तक पहुँच जाऊंगा । अतः अब मैं आपकी शरण में हूं ।

दयामित्र सेठ — विप्रदेव ! आप निश्चिन्त होकर हमारे साथ चलें, रास्ते में आपको हम किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होने देंगे । आपको समस्त खाद्य पदार्थ एवं अन्य आवश्यक वस्तुएं हमारे व्यापारी संघ से मिल जाया करेंगीं । इस प्रकार धैर्य प्रदान कर, उसके भोजन का प्रबन्ध किया तथा अपने अन्य साथियों की भी पूरी व्यवस्था की ।

प्रातःकाल दयामित्र सेठ ने अपनी स्त्री एवं पुत्रों को बुलाया और उन्होंने समझाना प्रारम्भ किया—"सर्वदा मुनिसंघ को आहार दान, जिनेन्द्र भगवान् के पूजन का प्रबन्ध, चार प्रकार के दान, भव्यों को विभिन्न प्रकार की सहायता, प्रभावना के कार्य, नगर के लोगों की सब प्रकार से सहायता, रोगियों की सेवा, अनाथ–अबलाओं की रक्षा, जब तक मैं वापस लौटूं मेरे समान ही करते रहना । मेरे घर से कोई भी याचक बिमुख न जाय, धार्मिक कार्य सर्वदा होते रहें । पर्वों के अवसर पर विशेष रूप से भगवान् का पूजन, अभिषेक किया जाय ।"

दयामित्र सेठ के इस उपदेश को सभी ने सहर्ष हाथ जोड़ कर स्वीकार किया । अन्य नाती, पोते,भाई बन्धु भी उसे प्रणाम, नमस्कार आदि यथायोग्य अभिवादन कर जंगल से वापस नगर में चले गये और उसके उपदेश के अनुसार धर्माचरण पूर्वक दीन–दुःखियों की सहायता करने लगे ।

सेठ कुछ आगे जाकर बात-चीत के सिलसिले में ब्राह्मण से कहने लगा—भो विप्रदेव ! मेरा नियम है कि प्रति दिन तीन घटी समय-एक घंटा बारह मिनट शास्त्र स्वाध्याय,दर्शन,पूजन,जाप आदि धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत करता हूं। अपनी इन धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने पर ही भोजन ग्रहण करता हूं । इसके पश्चात व्यापार सम्बन्धी कागज-पत्र देखता हूं। और व्यापार करने का आदेश देता हूं। यहां रास्ते में मैं इसीलिये अपने साथ भगवान् की प्रतिमा रखता हूं, कि पूजन-पाठ यथार्थ रूप से कर सकूं। जीवन को संयमित और व्यवस्थित बनाना मानव मात्र का कर्त्तव्य है। जिस व्यक्ति के जीवन में संयम नहीं वह व्यक्ति यों ही पशुवत् अपने जीवन को व्यतीत कर देता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मा की दृढ़ आस्था रख कर अपने स्वरूप को विचारने का प्रयत्न करना चाहिये। यह जीव मिथ्यात्व के कारण ही इस संसार में जन्म मरण के दुःख उठा रहा है। जब तक इसे आत्म-बोध नहीं होगा, अपना उद्धार नहीं कर सकता है। मैं यह निश्चय पूर्वक जानता हूं कि ये सांसारिक विभूतियां स्थिर हैं, क्षणिक हैं, इनका जीव से कोई सम्बन्ध नहीं; फिर भी मोहवश या कर्मों के उदय की प्रधानता होने के कारण यह सब करना पड़ता है। कर्मों का उदय भी कितना विलक्षण है, यह किसी भी जीव को एक क्षण भी शान्ति नहीं लेने देता। नाना प्रकार के आडम्बर जन्य कार्य इस जीव को कर्म की बलवती प्रेरणा से ही करने पड़ते है। आप जैसे विद्वान् का साथ प्राप्त कर मुझे प्रसन्नता है, क्योंकि आपके साथ चर्चा-वार्ता करने का अवसर मिलेगा। दर्शन शास्त्र से मुझे बहुत प्रेम है, आत्मा, परमात्मा, जगत् और जगत् के नाना कार्यों पर हम और आप चर्चा कर ज्ञानार्जन करेंगे। इस प्रकार वर्तालाप करते हुए दयामित्र सेठ सुख पूर्वक रास्ता तय करने लगा तथा कुछ दूर जाकर एक रम्यस्थान पर अपना डेरा डाला।

दयामित्र सेठ तथा उसके अन्य साथियों ने नित्य क्रियाओं से निवृत होकर भगवान् जिनेन्द्र का अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और जाप आदि क्रियाएं सम्पन्न की। वसुभूति ब्राह्मण को दयामित्र सेठ का उपदेश पहले ही अरुचि-कर प्रतीत हुआ था वह उसकी इन धार्मिक क्रियाओं को देख कर मन में हंसने लगा तथा अपने विचारों में डूबता-उतरता सोचने लगा—मालूम होता है कि यह किसी नंगे साधु के बहकावे में आ गया है। श्रमणों ने सर्वत्र इन भोले प्राणियों को ठगने का प्रयत्न किया है। श्रमणों के मारे नाक में दम हो गई, ये जहां भी पहुँच जाते हैं, अपना प्रभाव डाले बिना नहीं छोड़ते। न मालूम इन लोगों में कौनसा जादू वतमान है, जिससे ये सर्वत्र अपना प्रभाव डाल लेते है।

जिसे सभी प्राणी स्वीकार करते हैं, वह महाधर्म वैदिक धर्म है। जो इस महा धर्म को छोड़कर अन्य धर्मों को मानते हैं, वे कोने में पड़ी हुई छाया के समान व्यर्थ हैं, क्योंकि उनका कुछ भी उपयोग नहीं हो सकता है। यह सेठ भी महान् धर्म को छोड़ इन श्रमणों के भुलावे में आकर व्यर्थ के धर्म को पालने लगा है। मुझे कोई ऐसा उपाय करना होगा, जिससे इस सेठ से धन भी मिल सके तथा यह जैन धर्म छोड़कर वैदिक धर्म भी स्वीकार कर ले। यह मेरा विश्वास भी करता है तथा मेरा सम्मान भी।

श्रमण लोग कायक्लेश सहन करते हैं, परिश्रम खूब करते हैं, मालूम होता है इसी कारण इनका समाज पर अद्भुत प्रभाव है। जो व्यक्ति बिना परिश्रम के भोजन करता है, उसके दोनों ही लोक बिगड़ जाते हैं। यह सेठ गुरूडम शून्य इन ढोंगी श्रमणों के चक्कर में पड़ा है।

मछलियों की तरह इधर-उधर भोजन के लिये भ्रमण करने वाले मुनियों को तप की सिद्धि कहां से हो सकती है? यह सेठ व्यर्थ ही इनके वचनों से चलायमान हो गया है। इस प्रकार के निठल्ले नग्न मुनियों को त्रिभुवन के स्वामी कहकर लोग दीप, धूप, फल, नैवेद्य आदि द्रव्यों से नित्य आनन्द पूर्वक अर्चना करते हैं, इनके पैरों को धोकर गन्धोदक लेते हैं? तथा इनके आदेशानुसार दान आदि कार्यों को करते हुए निर्धन हो रहे हैं।

ये श्रमण मुनि कितने मक्कार हैं, ये कुल में कलंक लगाकर, दरिद्री, मलीन बनकर सब को छोड़कर मुनि हो गये हैं। इन्हें नंगे रहने में लज्जा नहीं आती है। क्या ऐसे लोगों से बढ़कर कोई पागल हो सकता है, जो इनको कुलदेव कहकर पूजा करता है। इस समय इन श्रमणों के प्रभाव से वैदिक धर्म फीका पड़ गया है, आबालवृद्ध सभी जैनधर्म को स्वीकार करने लगे हैं। अतः मुझे इसके लिये कोई उपाय करना होगा। इस प्रकार नाना तरह से मुनियों की निन्दा करता हुआ भी शान्त नहीं हुआ और आगे सोचने लगा कि मुझे ऐसा उपाय करना होगा, जिससे इसकी सम्पत्ति और बुद्धि व्यर्थ न जाय। मैं जब तक इस सेठ को अपने धर्म में दीक्षित न कर लूंगा तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।

वसुभूति—भो श्रेष्ठिन्! संसार का यह नियम है कि बिना परीक्षा किये किसी भी वस्तु को नहीं ग्रहण करना चाहिये; पर मैं देखता हूं कि तुमने इस धर्म को बिना सोचे समझे भावुकतावश किसी श्रमण के फेर में पड़कर स्वी-

कार कर लिया है। मुझे तुम्हारी पूजा-भक्ति देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा है। आप जैसे चतुर, परीक्षक, विवेकी, शास्त्रज्ञ विद्वान् भी इस प्रकार के निर्लज्ज नंगे साधुओं की सेवा और भक्ति कर रहे हैं, यह देखकर मुझे बड़ी भारी ग्लानि और लज्जा हो रही है। आप जैसे विवेकी को यह सब शोभा नहीं देता है।

मायाचारी, दूसरे को ठगने वाले, देव कार्य में प्रवृत्ति करने वाले, मलिन नंगे, आचार-विचार शून्य, दरिद्र, बिना श्रम और प्रयत्न किये उदर पोषण करने वाले इन पाखण्डी श्रमणों की भक्ति क्यों करनी चाहिये; आप स्वयं अपने मन में विचार कर देखें ?

मलिन, स्नान से रहित निर्ग्रन्थ दाँतौन न करने वाले, कुल से भ्रष्ट साधुओं को आप मानते हैं। एक वार यदि ठंडे दिलसे आप विचार करेंगे तो आपको समस्त बातें समझ में आजायंगी। ये श्रमण बिल्कुल मूर्ख होते हैं, उदर-पोषण के लिये ये नाना प्रकार के कष्ट सहन करते हैं, ये बहुत ठग हैं, साथ ही ये जादूगर भी हैं, जो इनके पास गया, वह अवश्य इनसे प्रभावित हुआ। करोड़ों बार समझाने पर भी इनके उपदेश के प्रभाव से किसी को कोई विचलित नहीं कर सकता है। इनके शरीर में कोई शक्ति नहीं, ये काम नहीं कर सकते हैं, मलिन हैं, दरिद्री हैं फिर भी न मालूम आप इनकी स्तुति क्यों करते हैं। आप अपने साथ नग्न प्रतिमा भी क्यों रखे हैं, क्या आपको सालिकराम की गोल मूर्ति पसन्द नहीं आप चतुर्मुखी ब्रह्मा की मूर्ति अपने पास रखिये, फिर देखिये पूजा में कितना आनन्द आता है।

दयामित्र सेठ वसुभूति की इन पाखण्ड और कुतर्क पूर्ण बातों को सुनकर मन में हंसा और विचारने लगा कि धर्मद्वेष संसार में कितना है; श्रमण लोग निःस्वार्थ, परोपकार एवं जन सेवा की दृष्टि से उपदेश देते हैं तथा उनका उपदेश सोलहआना सचाई पर निर्भर है। परीक्षा कर कोई भी उसकी सत्यता को अवगत कर सकता है। न मालूम इन लोगों को श्रमणों से द्वेप क्यों हैं ? क्यों उनकी इतनी निन्दा करते हैं, समाज के सबसे बड़े हितैषी एवं परोपकारी श्रमण हैं। लोकोपकार एवं सेवा के लिये सदा तत्पर रहते हैं तथा जन सेवा का इतना अधिक कार्य करते हैं, जिससे इनका नाम श्रमण पड़ गया है।

जैसे भिल्ल अकस्मात् जंगल में किसी मणि को प्राप्त कर उसकी श्रेष्ठता को बिना समझे कांच समझ कर फेंक देता है, उसी प्रकार पापी जीव, धर्म, अधर्म की परीक्षा किये बिना ही सच्चे धर्म को खो बैठते हैं। जिन्होंने सच्चे

दयामयी धर्म का स्वरूप नहीं समझा है, वे अपनी हठवादिता के कारण झूठे धर्म को ही सब कुछ समझते हैं। इन अल्प बुद्धियों के ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये, बल्कि सहानुभूति और प्रेम के द्वारा इन्हें सच्चे रास्ते पर लाना चाहिये। जैसे उल्लू पक्षी को रात में दिखता है, दिन में नहीं। उसी प्रकार मूर्खों को अधर्म ही अच्छा लगता है, धर्म नहीं।

जिस प्रकार कूप-मंडूक, जिसने कभी समुद्र का दर्शन नहीं किया है, वह कुंए को ही समुद्र समझता है, उल्लू जिसने कभी सूर्य के प्रकाश का दर्शन नहीं किया, वह अन्धेरे को ही सूर्य का प्रकाश समझता है; इसी प्रकार धूर्त व्यक्ति जिसने कभी सत्संगति नहीं की है, वह अधर्म को ही सब कुछ समझता है।

जिसने धतूरा खाया है, उसे मिट्टी, पत्थर और सोना सभी समान मालूम होते हैं। उसी प्रकार कर्म का तीव्रोदय जिनके हैं, उन्हें लौकिक धर्म ही वास्तविक धर्म मालूम पड़ता है। अतएव सद्धर्म पित्तज्वर वाले के लिये दूध जैसा कड़ुवा लगता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टियों को खराब मालूम होता है। अतएव मुझे अपने इस शरणागत का सुधार अवश्य करना होगा, क्योंकि शरणागत की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का महान् धर्म है। यद्यपि यह वसुभूति विप्र व्याकरण, साहित्य न्याय, वेदान्त आदि का पारगामी है, पर न मालूम क्यों इसमें मिथ्यात्व समाया है, जिससे यह जैनधर्म की निन्दा करता है। मैं प्रयत्न कर इसे सन्मार्ग में अवश्य लाऊंगा। यदि एकाएक मैं इसे जैनधर्म का उपदेश दूं, तो यह मेरे उपदेश को नहीं सुनेगा तथा उस उपदेश का प्रभाव बुरा भी हो सकता है, जैसे बालक के हाथ में अस्त्र दे दिया जाय तो वह उससे लाभ उठाने के स्थान में हानि ही उठावेगा अथवा बन्दर के गले में जैसे पुष्पमाला पहनायी जाय, तो वह उसकी शोभा न बढ़ाकर धूलमें मिलही जाती है, उसी प्रकार इस हठी, मिथ्यात्वी को अभी उपदेश देना लाभ के बदले हानिकर होगा। अतः इसको इस प्रकार उपदेश दूंगा जिससे इसका सब प्रकार कल्याण हो तथा सच्चे धर्म की प्रभावना हो।

बारह दिन तक वसुभूति आनन्द पूर्वक दयामित्र सेठ के साथ चर्चा वार्ता करता हुआ मार्ग चलता गया। यद्यपि सेठने अपने आचरण द्वारा उसे उपदेश देना आरम्भ कर दिया था, पर उसका कोई विशेष परिणाम निकलता हुआ दिखलाई नहीं पड रहा था। अतः तेरहवें दिन पड़ाव पर सेठ ने उसे अपने पास बुलाया और आसन देकर अपने पास सम्मान पूर्वक बैठाया तथा ताम्बूल, कर्पूर आदि से सत्कार कर कहने लगा—हे द्विजोत्तम! आपके धर्म मार्ग को

छोड़ कर मैंने अन्य लोगों के धर्म को स्वीकार किया था, किन्तु अब मैंने अपने पुण्योदय से आपको प्राप्त कर लिया है और अब आपके सत्संग से धर्म मार्ग मिल गया है । आप जैसे सज्जन, क्रियाकाण्डी, त्यागी, विद्वान् ब्राह्मण को देखकर मेरे मन में भक्ति भावना जाग्रत हो गयी है । अब मैं आपके धर्म को स्वीकार करूंगा, सेठ के इन वचनों को सुन कर वसुभूति अपने भाग्य की सराहना करने लगा और मन ही मन प्रसन्न होता हुआ तथास्तु कहने लगा—

सेठ ने पुनः वसुभूति से कहना आरम्भ किया—

सेठ—विप्रदेव ! एक निवेदन मेरा आप से यह है कि मैं अपनी कुल परम्परा से एक व्रत करता चला आ रहा हूं, मैं इसे छोड़ नहीं सकता हूं । मेरे पूर्वज जिस प्रकार इस व्रत को करते आये थे उसी प्रकार मुझे भी इसे करना है । अब इसके करने का समय आ गया है ।

पञ्चेन्द्रियों के विकारों को जीतनेवाले तथा देव और असुरों द्वारा वन्दनीय अर्हन्त भगवान् मेरे कुलदेव हैं, उनके मुख से उद्भूत तथा अन्य आचार्यों के द्वारा व्याख्यान किये गये व्रत को पालूंगा

जब मैं घर में था, तब मुझे सब प्रकार की सामग्री मिल जाती थी, किन्तु आज इस जंगल में मुनि के न रहने से नहीं मिल रही है । अतः मैं इस समय अपने अष्टान्हिका व्रत का पालन कैसे करूं ?

हे विप्रदेव ! आप पृथ्वी में स्तुत्य हैं, विद्या, कुल और विवेक में श्रेष्ठ हैं, अतः मुनि के न रहने पर भी आप को दान देने से मेरा कल्याण हो जायगा । आप साहसी हैं, यशस्वी हैं और हैं आप विद्या, बुद्धि में श्रेष्ठ । अतः आप भी दिगम्बर मुनि हो सकते हैं । यहां अन्य कोई मुनिराज नहीं हैं, अतः आप ही मुनि बन कर मेरे व्रत के सम्पन्न कराने में निमित्त बन सकते हैं । मैं आपको दान देकर सब प्रकार से कृतार्थ हो जाऊंगा । आपको दिया गया दान कल्पवृक्ष के समान फल देगा । अब मुझे कल से अष्टान्हिका व्रत करना है, व्रत पूर्ण होने तक आप दिगम्बर मुनि होजांय । व्रत समाप्त होने पर आप जितनी दक्षिणा कहेंगे, मैं सहर्ष दे दूंगा । दयामित्र सेठ के इन वचनों को सुनकर वसुभूति लोभ से आकृष्ट होता हुआ बहुत प्रसन्न हुआ और मन ही मन सोचने लगा कि भगवान बड़े दयालु हैं, मेरी मनोकामनाएं पूर्ण करेंगे । जब धन मिलने को होता है, छप्पर फाड़कर मिलता है । हे प्रभोः आपने मेरी मनोकामना पूर्ण की ।

बिना दवा के अन्धे व्यक्ति को आखों की प्राप्ति होने पर जितनी प्रसन्नता होती है अथवा बिना भोगे सुन्दर कन्या रत्न की प्राप्ति होने पर जैसे प्रसन्नता होती है, सन्तान हीन को सन्तान प्राप्त होने पर जितनी प्रसन्नता होती है, उससे भी बढ़कर दयामित्र सेठ के वचनों से वसुभूति ब्राह्मण को प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा आज पुण्योदय से मैं रत्नराशि के समूह में आ गया हूं, विपुल सम्पत्ति का स्वामी होने वाला हूं। दयामित्र सेठ के पास अपार धनराशि है, यह मुझे यथेच्छ धन-धान्य देने में आनाकानी क्यों करेगा। वसुभूति की विचारधारा और आगे बढ़ने लगी, नाना प्रकार की कल्पनाओं ने आकर उसे घेर लिया। वह सोचने लगा—अहा ! मेरे समान संसार में आज भाग्यवान् कौन होगा ? क्योंकि बिना परिश्रम के मुझे विपुल धनराशि मिलने को है। आठ दिन के पश्चात् में आनन्द पूर्वक धन प्राप्त कर अपने घर जाऊंगा और अपने समस्त दारिद्रय को दूर कर दूंगा। मैंने जीवन भर धन के अभाव में दुःख उठाया है, मेरी पत्नी को कभी अच्छा खाना व अच्छे वस्त्र नहीं मिले। बेचारी जाड़े की रातों को बैठे-बैठे आग तापते हुए बिताती रहती है। घर में एक टूटी झोपड़ी को छोड़ और कुछ नहीं। धन मिलने पर मैं सबसे पहले पक्का बढ़िया मकान बनवाऊंगा तथा अपनी पत्नी को आभूषण इतने बनवाऊंगा, जिससे पड़ोसिन जो अभी उससे घृणा करती हैं, उसके आश्रय में आजाय और उसकी प्रशंसा करें। तथा कहें कि तुम धन्य हो, तुम्हारा सौभाग्य धन्य है, जिससे तुम्हें इतना बड़ा विद्वान् पति मिला, जिसने विपुल सम्पत्ति कमाकर तुम्हें सोने से पीला कर दिया। मैं अपने भाग्य पर इठलाऊंगा, गांव के सभी लोग मेरा रोब मानेगें तथा जो मैं कहूंगा, उसीको उन्हें पूरा करना होगा, अब तो दही, चीनी और पूडियां प्रति दिन खाने को मिलेगीं। दयामित्र सेठ ऐसे ही अच्छा खाने को देता है, अब तो और भी बढिया खाने को मिलेगा, सब प्रकार से बीसों अंगुलियां घी में हैं। इस प्रकार ऊहा–पोह कर सेठ से कहने लगा—

वसुभूति—श्रेष्ठिन् ! मुझे आप की बात स्वीकार है, कृपाकर अपने व्रत की विधि बतलाइये।

दयामित्र सेठ—विप्रदेव! आपको दिगम्बर बनना पड़ेगा तथा मौन पूर्वक खड़े होकर सुन्दर भोजन दिन में एक बार ग्रहण करना होगा। दूसरे व्यक्ति ग्रास बनाकर आपके हाथ में रख दिया करेंगे और आप पाणिपात्र में ही रख कर उसे ग्रहण करेंगे। भोजन के साथ ही आप को जल ग्रहण करना होगा भोजन दिन में एक बार ही लेना होगा भोजन के पश्चात् पानी, सुपाड़ी, ताम्बूल, आदि कोई भी पदार्थ नहीं ग्रहण करना होगा। रात को मौन से रहना पड़ेगा, एकान्त स्थान में ध्यान, स्वाध्याय करते हुए अपना समय व्यतीत करना होगा।

स्नान, दन्तधावन, घर के कुटुम्बियों की स्मृति, सांसारिक कार्यों का चिन्तन, मन को विकार ग्रस्त करना, किसी भी प्रकार की चिन्ता करना आदि का सर्वथा त्याग करना होगा । अपने विचारों और भावों को शुद्ध रखना पड़ेगा, अपने समय को आनन्द पूर्वक व्यतीत करना होगा ।

व्रत के प्रारम्भ में सुमेरु पर्वत के समान धैर्य धारण कर कष्टसहिष्णु बन हाथ से केशलुञ्च करना होगा । दिगम्बर होकर लज्जा को जीतना पड़ेगा, विकार और वासनाओं को हृदयसे बिल्कुल दूर कर देना होगा । श्रमण बनकर मेरे व्रत को पूरा करना पड़ेगा । मेरे निवास स्थान पर ही रहकर मुनिदीक्षा लेनी होगी । मेरे व्रत की समाप्ति होजाने पर दीक्षा छोड़ देना और फिर मनमाना द्रव्य लेकर जहां इच्छा हो चले जाना ।

वसुभूति ने लोभ में आकर आगा पीछा न सोचकर हां, कर दी और सेठ के वचनों को अक्षरशः स्वीकार कर लिया । वसुभूति अपने आप सोचने लगा कि मैं तो अपने घर से बहुत दूर आगया हूं, यहां कोई मुझे नंगा देखकर हंसने वाला नहीं है, नंगा होने में रखा ही क्या है । पशु पक्षी तो सदा नग्न ही रहते हैं । बालों का लुञ्चन कर दूंगा, पुनः आजायेंगे । यद्यपि केशलुञ्चन के समय कुछ कष्ट होगा, पर आगे की उन्नति का खयाल कर उसे सहना पड़ेगा । हां बिना नमक का भोजन करना, स्नान न करना, ताम्बूल भक्षण न करना, आदि बातें अवश्य विचारणीय हैं । पर दो महिने के उपरान्त तो सब कुछ खाने-पीने को मिलेगा ही, अतः भविष्य की आशा पर यह सब भी सहन किया जा सकता है । एक बात मेरे लिये विशेष कष्टकर अवश्य होगी, कि चिकनी सुपाड़ी जो कि मुझे विशेष प्रिय है, उसका अभाव मैं कैसे बर्दाश्त करूंगा । कुछ क्षण तक विचार करने के उपरान्त मन ही मन कहने लगा कि भविष्य की सुखकामना के लिये सब कुछ सहना पड़ता है, बड़ी से बड़ी प्रिय वस्तु का भी त्याग करना पड़ता है । अपने को बिना कष्ट दिये आज तक किसी को क्षणभर के लिये भी सुख नहीं मिला है । जो पहले कष्ट प्राप्त करते हैं, पीछे वे ही आनन्द लूटते हैं । वेद, उपनिषद्, पुराण आदि प्रत्येक स्थल पर चर्चाएं आती हैं कि कष्ट सहने के उपरान्त ही आनन्द प्राप्त होता है । अतएव मुझे भी अपने भविष्य को उज्जवल बनाने के लिये इस समय सेठ की बातों को स्वीकार कर लेना चाहिये । मेरा कल्याण इसी में है । यद्यपि श्रमणों से मुझे चिढ़ है, फिर भी मैं लाभ के निमित्त श्रमण बनूंगा । अपना कार्य सिद्ध होते ही नंगापने को छोड़ पीताम्बर धारी बन जऊंगा । मेरी सब जगह प्रतिष्ठा होगी, लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का एकत्र सम्मेलन अब तक ऐसा कहीं नहीं हुआ होगा । मेरी कीर्ति सुनकर देवलोग भी ईर्ष्या करेंगे ।

इस प्रकार सोच विचार कर वसुभूति ने दयामित्र से मुनि वनजाना स्वीकार कर लिया। दयामित्र सेठ आगे बढ़ा और अगले पड़ाव पर पहुँच कर भगवान् का अभिषेक और पूजन किया। पूर्व निश्चय के अनुसार वसुभूति ब्राह्मण को उच्चासन देकर पूर्व दिशा की ओर मुंह कर बैठाया। द यामित्र सेठ उसके केशों का लुञ्चन करने लगा; दो चार बाल उखाड़े गये थे कि वह चिल्लाने लगा और मरा-मरा कहकर रोने लगा। उसकी हाय-हाय, मरा-मरा की आवाज सुनकर सेठ ने कहा—महाराज! अब दक्षिणा नहीं मिलेगी। आपसे पहिले ही तय किया जा चुका है कि व्रत समाप्ति पर्यन्त आपको श्रमण बना रहना होगा तथा पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार सारी क्रियाओं का पालन करना पड़ेगा।

दयामित्र सेठ के इन वचनों ने वसुभूति को विचलित कर दिया। वह पुनः सोचने लगा हाय-हाय, मैंने आती हुई लक्ष्मी को लात मारदी। मैं क्यों चिल्लाया, हाय मेरा भाग्य ही फूट गया। इस प्रकार पछताते हुए उसने सेठ से कहा—हां सेठ जी! मैं प्रसन्नता पूर्वक सब कुछ सहने को तैयार हूं। से अपने वचनों का पालन करूंगा, इतना कहकर चुप हो गया और भीतर ही भीतर बाल उखाड़ने के कष्ट को सहने लगा।

अत्याधिक पीड़ा होने के कारण उसके दांत कटकटाने लगे, दांतों की भिच्ची मर गयी, आंखों से आंसू आने लगे, सी-सी और हा-हा करता हुआ भीतर ही भीतर सिसकियां भरने लगा; सिर को हाथ से टटोलने लगा।

जैसे घोड़े के ऊपर बैठकर भेड़ कांपती है मुर्दे को देख कर जैसे डरपोक मृत्यु के डर से कांपता है, बरसात में पानी न बरसने से जैसे कृषक दुःख से कांपते हैं, साक्षी के बिना मुकदमा दायर करने वाला कांपता है, कोतवाल के द्वारा पकड़ा गया चोर जैसे कांपता है, भूत से पीड़ित जैसे हूं हूं करता है उसी प्रकार वसुभूति भी दुःखी होकर कांपने और हूं हूं करने लगा।

जैसे सिर में जूं पड़ जाने पर सिर खुजलाया जाता है, बछड़े के मर जाने पर जैसे गाय रंभाती है, बच्चे के मरने से जैसे मां रोती है; भयंकर कीचड़ में फसने से जैसी दशा होती है, घर में सम्पत्ति के होने पर सन्तान के अभाव में जैसा अन्तर्द्वन्द होता है, शूली पर लटकाया हुआ व्यक्ति जैसे तड़फड़ाता है, छोटा बच्चा किसी के द्वारा पकड़े जाने पर जैसे रोता है, मौन धारण करने पर मन में विचारों के आने पर जैसे हूं हूं लोग करते हैं, ठीक उसी प्रकार व सुभूति ने भीतर ही भीतर छटपटाते हुए असह्यवेदना सहकर एक घंटे में केशलुञ्च कराया।

विनय के समुद्र और सत्य-दया के आगार दयामित्र सेठ के कथनानुसार उपवास करने लगा । उसने रात घड़ियां गिनते-गिनते बितायी, पश्चात् प्रातःकाल आहार के लिये निकला ।

दयामित्र ने वसुभूति के आहार के लिये नाना प्रकार व्यञ्जन तैयार किये तथा उसे पड़गाह कर आहार दिया । सबसे प्रथम उसने मिष्ठान्न मिश्रित दुग्ध पान किया, पश्चात् घृत मिश्रित पूरन पूड़ी, सेव, सादी पूड़ी, मोदक, वरफी इत्यादि सुस्वादु पदार्थ भक्षण किये । अनन्तर भात और मूंग की दाल में घी मिलाकर अमृत तुल्य आहार लिया पश्चात् केला, छुहारा, नारंगी, मोसम्मी, नीबू, अमरूद आदि फलों का आहार लिया । भोजन की लोलुपता के कारण उसने खूब भोजन किया, पानी बहुत कम लिया, जिससे अधिक भोजन किया जा सके । पश्चात् हाथ पांव धोकर वह बाहर एक पट्टे पर आकर बैठ गया और सोचने लगा कि आज मैंने जैसे सुस्वादु पदार्थ खाये हैं, वे स्वर्ग में इन्द्र को भी अप्राप्य हैं । इनका वर्णन करना शक्ति के बाहर की बात है । आज जैसा भोजन मैंने ग्रहण किया है, वैसा मुझे किसी जन्म जन्मान्तर में भी नहीं मिला होगा । अहा, मैं धन्य हूं, जो मैंने कल के थोड़े से कष्ट को वर्दास्त कर आज स्वर्गीय सुख को प्राप्त किया ।

वास्तव में मेरे समान कोई भी नहीं है, ऐसा भोजन राजा-महाराजाओं को भी प्राप्य नहीं । श्रमण वनकर मैंने बड़ा अच्छा किया; दक्षिणा भी पीछे मिल ही जायगी, जिस से मैं स्वयं खूब ठाठसे रहूंगा । इस प्रकार वसुभूति दिनभर भोजन तथा अपने भविष्य के सम्बन्ध में सोचता रहा । नाना प्रकार के मनसूवे बांध कर अपने को हर्ष-विवाद में डालता रहा ।

सन्ध्या समय उसे बड़े जोर की प्यास लगी और मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होने लगे और लम्बी-लम्बी सांसें खींचने लगा । जैसे बन्दर को विच्छू के काटने पर वेचैनी आती है और वह इधर उधर तड़फड़ाता फिरता है, कमरे में बन्द कर देने पर भी शान्त नहीं होता है; ठीक उसी प्रकार वसुभूति भी प्यास के मारे व्याकुल हो गया । उसके मन में किसी प्रकार भी शान्ति नहीं आती थी ।

रात को उसकी पिपासा और भी बढ़ी, वह व्याकुल होकर जमीन चाटने लगा और सोचने लगा कि यदि तालाब पास में हो तो पानी पीने के लिये जाना चाहिये । जैसे वायु के तीव्र झोकों से वृक्ष कांपता है, उसी प्रकार

वसुभूति बेचैन होकर छटपटाने लगा। उसका तालु सूख गया, जीभ सट गयी और आंखें बाहर को निकलने लगीं। वह सोचने लगा—कि मैं तो दरिद्र ही अच्छा था, उस समय सूखा-रूखा खाकर आराम से सो जाता था, किन्तु यह अवस्था तो मेरे लिये असह्य है। मालूम होता है कि मेरे प्राण निकल जायंगे। अहा, प्यास भी कितनी भयंकर होती है। भूख सहन की जा सकती है, पर प्यास सहना तो बड़ा ही कठिन है इस प्रकार त्राहि-त्राहि करते करते आकाश की ओर देखने लगा। जैसे ज्योतिषी लोग ताराओं को देखते-देखते रात बिता देते हैं, वैसे ही बादलों की ओर देखते-देखते वसुभूति भी रात बिताने लगा। हाथ पैर में शक्ति न रहने से कटे फण सांप के समान जमीन में पेट के बल चलने लगा। वह रह-रह कर आकाश की ओर देखता था।

वसुभूति के मन में विचित्र द्वन्द था। दक्षिणा की आशा उसे जीवित रखने ने लिये अब भी उत्साहित कर रही थी, वह बार बार भविष्य की बात सोचकर धैर्य धारण करने का प्रयत्न करता, अपने मन को भुलाता किन्तु प्यास की यथार्थता उसके सारे मनसूबों को बालू की भींत के समान गिराने में समर्थ थी। प्यास के मारे उसे एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिलती थी। यद्यपि जी बहलाने का प्रयत्न उसने बहुत किया, पर प्यास उसका पीछा नहीं छोड़ना चाहती थी। वह जितना अपने को भुलाता प्यास उतना ही अधिक कष्ट देती थी।

जैसे नवीन धनी को चोर के भय से नींद नहीं आती, चातक पक्षी जल की आशा लगाये जैसे आकाश की ओर देखते हुए रात बिता देता है, दाहज्वरवाला जैसे शीतल वायु के सेवन के लिये आतुर रहता है, मेढ़क जैसे पत्थर के नीचे बैठकर टर्र-टर्र करता है, स्त्री जैसे प्रथम स्नान के समय भय से कांपती है, उसी प्रकार प्यास से आकुल वसुभूति छटपटाने लगा।

छिपकली जैसे दीवाल पर चढ़ने का उपक्रम करती है अथवा लता जैसी टेढ़ी होकर दीवाल पर चढ़ती है, उसी प्रकार वसुभूति प्यास से व्याकुल होकर दीवाल पर चढ़ने लगा। कुटनी स्त्री जैसे व्यभिचार-रत रहने पर किसी व्यक्ति के आने पर भागती है, शराब पीनेवाला जैसे नशा आने पर बकता है, बुड्ढ़ा व्यक्ति लकड़ी लेकर चलने पर कांपता है, वायु से लता हिलती है, उसी प्रकार वह भी व्याकुल होकर हाथ पैर जमीन पर पटकने लगा।

प्यास की वेदना के अतिरिक्त केशलुञ्च के कारण सिर के फूलजाने से उसकी भी वेदना थी। इन दोनों कारणों से वह रात भर मार्मिक पीड़ा से मां से अलग किये गये बच्चे के समान तड़फड़ाता रहा।

वसुभूति ने जिस किसी प्रकार छटपटाते हुए रात बितायी और प्रातःकाल ही पीछी, कमण्डलु उठाकर दयामित्र सेठ के निवासस्थान की ओर चला । वहां पर पहले दिनका समान लड्डू, पूरी, मिठाइयां, खीर, हलुआ आदि विविध प्रकार के व्यञ्जनों को देखकर डर गया । उसने जी भर कर पानी पीया और थोड़ा सा भोजन करने लगा । दयामित्र सेठ आहार देते हुए बोला—

महाराज ! आप उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हैं, आप गुणवान हैं, मैं आपको जो दूं आप उसे प्रेम से ग्रहण करें । आपको दिया हुआ दान व्यर्थ नहीं जायगा । आप सज्जन हैं, मौन से मेरा दिया हुआ आहार ग्रहण करें । इस प्रकार प्रेम पूर्वक बातें करते हुए वसुभूति को दयामित्र ने भोजन कराया ।

वसुभूति भोजन कर सोचने लगा—यह एक दिन का व्रत एक वर्ष के बराबर है । खड़े होकर हाथ से न तो पर्याप्त जल पिया जा सकता है और न यथेष्ट भोजन ही । भूख-प्यास की वेदना को मैं कब तक सहन करूंगा ? स्नान नहीं करना, एकान्त में रहना, एक बार खाना, वह भी खड़े होकर, ये सब बातें मेरे लिये असह्य हैं । अब मुझे धनी नहीं बनना है, मैं गरीब रहकर ही जीवन बिता दूंगा, पर इस कष्ट को सहन करने की शक्ति मुझमें नहीं है । जब यह शरीर ही नहीं रहेगा तो धन का कौन उपभोग करेगा । न मालूम श्रमण कैसे इन कष्टों को सहते होंगे । मुझ से तो एक दिन भी कष्ट सहे नहीं जा सकते हैं । पुनः उसकी विचारधारा दक्षिण की ओर गयी और सोचने लगा कि धन प्राप्त करने के लिये सभी को कष्ट सहन करने पड़ते हैं, बिना कष्ट के धन किसको मिला है । अधिक क्या लोग जान देकर धन प्राप्त करते हैं, मुझे तो बढ़िया खाना मिल रहा है, आदर सत्कार भी मेरा खूब हो रहा है । कुछ कष्ट सहकर यदि धन मिल जाय तो कोई बात नहीं है । मुझे धैर्य नहीं छोड़ना चाहिये, कुछ दिनों की तो बात ही है, आठ दिन के बाद तो व्रत समाप्त हो ही जायगा; फिर तो मेरे मजे-ही-मजे हैं, मेरे समान कोई भी नहीं हो सकता है । सम्पत्ति बड़े भाग्य से मिलती है, मुझे तो इसके लिये कुछ विशेष श्रम नहीं करना पड़ रहा है, अनायास ही सम्पत्ति मिल रही है । धनकुबेर यह दयामित्र मुझे भाग्य से ही मिला है तथा इस व्रत को करने का सौभाग्य भी मुझे पुण्योदय से ही प्राप्त हुआ है । व्रतमार्ग की कठिनता विचार कर पुनः सहम गया । नीति भी है कि—

स्वच्छन्द रूप से तालाब में स्नान करने वाला; मनमाना स्वतन्त्र रूप से भोजन करनेवाला, स्वेच्छा पूर्वक विहार करनेवाला किस प्रकार एकान्त स्थान में व्रतों में लीन होकर स्थिर रह सकता है ? ऐसे व्यक्ति को व्रत अच्छे

सकता है । इस लोभ की माया धन्य है। संसार में

नहीं लग सकते ? पर लोभ से मनुष्य बड़े बड़े कष्टों को भी सह सकता है । इस लोभ की माया धन्य है। संसार में
सबसे बड़ा पाप लोभ ही है—

वसुभूति का शरीर भी दिगम्बर दीक्षा से–स्नान न करने, भोजन खड़े होकर एक बार करने, प्यास का दुःख सहने, नग्न रहने आदि के कारण अत्यन्त कृश हो गया, वह सूखकर कांटा हो गया।

यह हवा में रखे हुये दीपक के समान चंचल, झगड़ा करनेवाली स्त्रियों के समान उद्विग्न, पति के स्नेह से वंचित पतिव्रता नारी के समान उदासीन, मां के स्नेह से रहित पुत्र के समान आकुल, अग्नि के द्वारा झुलसे हुए पेड़ के पत्तों के समान त्रस्त एवं खींची हुई रस्सी के समान कृश हो गया था । व्रत की कठिन साधना से ऊबकर एक दिन वसुभूति दयामित्र से कहने लगा—

संसार में बाघ की मूंछ उखाड़ कर लाना, सिंह को पकड़ना, अग्नि में प्रवेश करना एवं मदोन्मत्त हाथी को वश में करना सरल और सुकर है, किन्तु श्रमणों के व्रत पालन करना बड़ा कठिन है। वास्तव में श्रमण बड़े ही सहन शील, धैर्यशाली, क्षमावान्, अहिंसक और कर्त्तव्य परायण होते हैं।

तृषा, खुजली; केशलुञ्च के कारण सिर दर्द ये बातें कहने में भले ही सरल हों पर करने में बड़ी कठिन हैं। यह मुझे आज मालुम हुआ है । अब तक मैं श्रमणों से घृणा करता था, उनकी चर्या को देखकर हंसता था, पर अब मैं इनकी विशेषता को समझ गया । मुझे तो आठ दिन आठ वर्ष के समान मालूम पड़ते हैं, मैं इस दुःख को अब सहन करने में सर्वथा असमर्थ हूं। मेरी अवस्था उस बैल के समान है, जो स्वयं शक्तिहीन है, जिस पर बोझ अधिक लाद दिया गया है तथा उसके ऊपर बैठ कर कोड़े लगाये जा रहे हैं। मैं भी इसी प्रकार दरिद्र हूं, लोभ की भावना मुझ में अधिक है, महत्वाकांक्षाएं मुझे परेशान किये हैं, इस पर यह व्रत की साधना और भी कष्ट दे रही है, यह तो "एकस्य दुःखस्य न यावदन्तंता वालू द्वितीयं समुपस्थितं मे" कहावत चरितार्थ हो रही है। इस व्रतरूपी असिका स्पर्श करते मुझे भय हो रहा है , यदि आप मुझे एक बार सुविधानुसार भोजन करने की, तालाव में स्नान करने की, यथेष्ट ठंडा जल पीने की और स्वतन्त्रतानुसार थोड़ा भ्रमण करने की सुविधा प्रदान करें तो मैं दो महिने तक व्रत का पालन कर सकता हूं। वसुभूति के इन वचनों को सुनकर दयामित्र को हंसी आ गयी । दयामित्र–बातें तो लोग बड़ी-बड़ी करते हैं, पर जब करने का समय आता है तो भाग जाते हैं। आप ही श्रमणों की हंसी करते थे, उन्हें मुफ्तखोर और न जाने

क्या क्या कहते थे। अब अपने ऊपर स्वयं आया तो आप समझे कि दिगम्बर दीक्षा कितनी कठिन है। आप जो सहन कर रहे हैं, यह तो मात्रबाह्य कष्ट है। व्रतों का पालन तो बड़ा ही दुःसाध्य है।

जैसे सांप से रहित स्थान में मेढ़क खूब टर्राते हैं, किन्तु जब सांप दिखलायी पड़ जाता है तो मृतक के समान चुप हो जाते हैं, इसी प्रकार मूर्ख लोग प्रारम्भ में बढ़-बढ़ कर बातें करते हैं, किन्तु जब परीषह सहन करने का समय आता है तो नानी याद आने लगती है और दिशा भ्रम हो जाता है। मूर्ख लोग अपनी इच्छानुसार स्वीकार किये गये धर्म की प्रशंसा करते हैं, किन्तु सन्मार्ग में लगानेवाले जैनधर्म को सहन करने की शक्ति न होने से निन्दा करते हैं। जिस प्रकार कच्चे चने की कोमलता लोहे के चने में नहीं मिल सकती है, उसी प्रकार आत्मकल्याण करने की शक्ति सच्चे धर्म में ही है, मिथ्याधर्म में नहीं।

दयामित्र वसुभूति को समझाता हुआ कहने लगा—मित्रवर! देखिये आपको एक परिषह सहन करने में कितना कष्ट हुआ है। श्रमण सदा २२ परीषह, १२ तप, १० धर्म, और १३ प्रकार का चारित्र आजीवन शान्ति पूर्वक पालते हैं। इन व्रतों की साधना से इन्हें रंचमात्र भी कष्ट नहीं होता है, बल्कि व्रताचरण पालने में उन्हें प्रसन्नता होती है। इन्द्रिय जय, विकार और वासनाओं को दूर करना एवं अपनी इच्छाओं पर सब प्रकार से नियन्त्रण करना श्रमणों की ही शक्ति है। वसुभूति को दयामित्र की इन बातों से बड़ा आश्चर्य हुआ।

वसुभूति अपने मन में सोचने लगा—जैसे कृषक बीज बोता है, अंकुर प्रकट हो जाते हैं पर पानी न वर्षने पर गुस्सा के आवेश में आकर उन अंकुरों को तोड़ डालता है उसी प्रकार क्रोध में आकर दक्षिणा के लोभ से मैंने व्रतों को ऐसे ही खो दिया। दो-चार अवैनिक व्यक्तियों को एकत्रित देखकर उन्हें सैनिक समझलेना कार्यकारी नहीं होता, उसी प्रकार मैंने मुनियों के मार्ग को कल्पित समझ अज्ञानतावश निन्दा की है। जिस प्रकार पागल यथार्थ बात कहने पर भी विवेकी नहीं माना जा सकता है, वेश्या एक दिन के लिये सतीत्व धारण करने पर भी सती नहीं हो सकती है, उसी प्रकार मैं थोड़े दिनों के लिये व्रत धारण करने पर भी व्रती नहीं हो सकता हूं। दयामित्र सेठ का धर्म ही सच्चा है, मैंने अज्ञानतावश निन्दा की है। श्रमण वास्तव में सच्चे साधु हैं, उनका मार्ग आत्मकल्याण का मार्ग है। बाईस परीषहों को सहन करने की शक्ति श्रमणों में ही है, अन्य लोगों में नहीं। जैसे सुमेरु पर्वत दूर से छोटा मालूम होता है, और पास जाने पर बड़ा; उसी प्रकार दिगम्बर दीक्षा और इस दीक्षा का पालन करनेवाले श्रमण

महान् है, देखने में भले ही छोटे मालूम होते हों। इस प्रकार विचार करता हुआ वसुभूति, वात्सल्य रत्नाकर, दयामित्र सेठ से हाथ जोड़कर बोला—

आपने जिस धर्म मार्ग को ग्रहण किया है, वह सच्चा है। कृपया मुझे उसका उपदेश दें मेरी लालसा उस धर्म मार्ग को श्रवण करने की है।

दयामित्र—वस्तु के स्वभाव का नाम धर्म है। जैसे जल का स्वभाव शीतल, अग्नि का गर्म है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन मय है। यही आत्मा का धर्म है, इस धर्म से च्युत होना अधर्म है। अर्थात् जब तक आत्मा अपने स्वरूप की ओर झुकी रहती है, धर्म मार्ग में लगी है, और अपने स्वरूप को छोड़ जब परपदार्थों की ओर लग जाती है, अधर्म मार्ग की ओर चली जाती है। मोटे रूप से यों समझिये कि रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र आत्मा का धर्म है अथवा उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचिन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ही धर्म है। सच्चा धर्म संसार के दुःखों से जीवों को छुड़ाकर परमपद देता है। "संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे" अर्थात् जो संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख देता है, वही धर्म है। इस दयामय श्रेष्ठ धर्म का पालन करने से किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं हो सकता है। अधर्मरूप प्रवृत्ति के होने पर ही दुःख होता है। मनुष्य को कष्ट तभी तक होता है, जब तक वह अपने से भिन्न पदार्थों को अपना समझता रहता है इसी कारण राग और द्वेप सबसे बड़े अधर्म माने गये हैं, क्योंकि इन्हीं के कारण ही तो जीव परपदार्थों को अपना तथा स्व को पर समझता है। भेदबुद्धि राग-द्वेष ही उत्पन्न करते हैं। आत्मानुभूति में सबसे बाधक ये दोनों हैं। जब तक जीव की प्रवृत्ति राग-द्वेष मय रहेगी, जीव धर्ममार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता।

जिस प्रकार दर्पण में अपना मुंह देखने पर अन्य का मुंह दिखलायी नहीं पड़ता है, उसी प्रकार पक्षपातवश अन्य धर्म के गुण नहीं दिखलायी पडते हैं। धर्म-द्वेष संसार में बहुत बुरा है। इसके आधीन हुआ व्यक्ति कहीं भी अपना उत्थान नहीं कर सकता। धर्म तो सुख और शान्ति ही देता है, लड़ाई-झगड़े, खून-खराबियां धर्म नहीं सिखलाता। अतः हे वसुभूति आप भैंसा के समान कायरता-वगुलें के समान धूर्तता, शृगाल के समान मायाचार, सौत के समान ईर्ष्याभाव एवं तोते के समान अध्ययन पर्यन्त ही ज्ञान की सीमा को छोड़कर सावधान होकर धर्म का स्वरूप सुनिये। धर्मात्मा व्यक्ति की दृष्टि संकुचित नहीं होती, उसे अपना-पराया कोई नहीं दिखलायी पड़ता। समस्त संसार के साथ उसका मैत्री

भाव रहता है ; वसुभूति — हे श्रेष्ठिन् ! आप कृपाकर मुझे गृहस्थ धर्म को बतलाइये, जिससे मैं कालान्तर में अपना कल्याण कर सकूं । मुझे आपकी बातें विशेष रुचिकर प्रतीत होरही हैं । अबतक मैं अपने को सबसे बड़ा समझ बैठा था, मुझे जाति -अभिमान बहुत था तथा मैं वैदिकधर्म को ही सत्य मानता था । यज्ञों में होनेवाली हिंसा को मैं विधेय समझता था । आज आपके उपदेश ने मेरा बड़ा कल्याण किया है । कृपया आगे और समझाइये ।

दयामित्र—गृहस्थधर्म का अर्थ यह है कि घर में रहते हुए अपने आत्मा स्वरूप का आचरण करना । यद्यपि परपदार्थों से ममत्व बुद्धि गृहस्थावस्था में नहीं हटाई जा सकती है, फिरभी इन पदार्थों से अपने को निर्लिप्त रखा जा सकता है । संयम पालन—इन्द्रिय और मन को वश में रखना तथा समस्त प्राणियों की हिंसा से बचना भी प्रत्येक गृहस्थ को आवश्यक है । हिंसा, सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों अणुव्रतों का पालन करना, शक्ति के अनुसार दान देना, प्राणियों का उपकार करना धर्म है । यदि गृहस्थ अपने जीवन में अहिंसा धर्म का पालन करने लगे तो उसके जीवन में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति बहुत कुछ आ जाती है । मद्यपान करना, वेश्यागमन करना, परस्त्री सेवन करना, जुआ खेलना, मांस खाना, शिकार खेलना क्या कभी भी धर्म हो सकता है ? यज्ञ के नाम पर जो हिंसा की जाती है, वह कभी भी धर्म नहीं । यज्ञ के लिये मद्य का भी उपयोग करते हैं, हवन में मांस, मदिरा चढाई जाती हैं, यह कभी भी विधेय नहीं हो सकता ।

दूसरे प्राणियों को कष्ट देना, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये नाना प्रकार से छल-कपट करना, अनात्मीय भावों में लगे रहना तथा भौतिक पदार्थों को अपना समझकर आत्मा से बहिर प्रवृत्ति रखना अधर्म है । जो व्यक्ति शरीर को आत्मा समझ लेता है तथा जिसे ज्ञान दर्शनमय आत्मा का विश्वास नहीं, उस व्यक्ति को धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती धर्म कहीं बाहर से नहीं लाया जाता है, यह तो अपनी आत्मा की वस्तु है । आत्मा का जैसा स्वभाव है, वैसा आचरण करना ही धर्म है । आत्मा का स्वभाव हिंसा करने का नहीं है, आत्मा झूठ भी नहीं बोलती है और न व्यभिचार करती है । ये सभी क्रियाएं आत्मा की नहीं हैं, जीव कर्मों के कारण इन सब क्रियाओं को करता है । संसार का कोई भी धर्म हिंसा झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह को विधेय नहीं मानता सभी धर्म इनको पाप बतलाते हैं ।

राजा नाम रखने से जैसे कोई व्यक्ति राजा नहीं हो सकता है, उसका आदेश भी कोई नहीं मान सकता है और न उसका सम्मान राजा के समान हो सकता है ; इसी प्रकार झूठे धर्म से व्यक्ति का कल्याण नहीं हो सकता है ।

कोई भी व्यक्ति अपना उत्थान आत्मधर्म से ही कर सकता है। अतएव यह निश्चित है कि संसार में एक आत्मधर्म ही श्रेष्ठ है, यही समस्त प्राणियों के लिये हितकारक है। यह आडम्बर शून्य होता है, जो इसका आश्रय लेता है, उसका कल्याण हुए बिना नहीं रह सकता,

जैसे नाना प्रकार के अनाजों से आटा तैयार किया जाता है, पर इन समस्त आटों में गेहूं का आटा ही श्रेष्ठ और उपादेय माना जाता है; इसी प्रकार अनेक मतमतान्तर आत्मधर्म का वर्णन करते हैं, किन्तु जैनाचार्यों द्वारा निरूपित आत्मधर्म ही सच्चा है। इसी धर्म से समस्त संसार में प्रेम और भाईचारे का सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। जो धर्म आपस में लड़ाने का कार्य करते हैं, वे धर्म सच्चे धर्म नहीं। जैन धर्म स्याद्वाद के द्वारा संसार के समस्त मतमतान्तरों का समन्वय कर सत्य बात का प्रतिपादन करता है। स्याद्वाद ही एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके द्वारा वस्तु के सत्यासत्य का निर्णय किया जा सकता है। वसुभूति — श्रेष्ठिन् क्या तब जैन धर्म ही एक सच्चा है, और संसार के सभी धर्म झूठे हैं ?

दयामित्र — मित्रवर! जो धर्म वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करे, वही सच्चा है। जैनाचार्यों ने बताया है कि अपेक्षाकृत सभी धर्मों में थोड़ी-बहुत सच्चाई है। हां इतर धर्मवालों की दृष्टि अनेकान्त की ओर नहीं रही है. वे एकान्त मार्ग की ओर चले गये हैं, जिससे समान वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन नहीं कर सके हैं, बात यह है कि वस्तु में अनेक धर्म हैं, अनेक गुण हैं। जिस धर्मोपदेशक की दृष्टि जिस गुण या धर्म की ओर जाती है, वह उसी का निरूपण करता है। उसका कहना गलत इसलिये माना जाता है कि वह अपनी एकांगी दृष्टि को पूर्ण समझ लेता है। यदि वह अपनी एकांगता को यथार्थ समझ जाय तब उसके कथन को असत्य नहीं कहा जा सकता है।

वसुभूति— धर्म अधर्म का स्वरूप मुझे समझ में आ गया। अब कृपया यह बतलाइये कि ये संसार के धर्म झूठे होने पर भी सच्चे क्यों माने जाते हैं ?

दयामित्र — कनक धतूरे को भी कहते हैं और कनक स्वर्ण को भी, पर इन दोनों में बड़ा भारी भेद है, इसी प्रकार धर्म-अधर्म में मौलिक अन्तर है। गाय भी दूध देती है और मदार वृक्ष से भी दूध निकलता है। दूध रूप में दोनों समान हैं। किन्तु गाय का दूध खाने में स्वादिष्ट और गुणकारी होता है और मदार का दूध प्राणनाशक इसी प्रकार संसार के अनेक धर्म समान दिखलाई पड़ते है, पर उनमें बड़ा अन्तर होता है। गाय के घृत और भेलमा के घृत में पर्याप्त

भेद है। गाय के घृत के खाने से स्वास्थ्य में वृद्धि और भेलमा के घृत को खाने से पेट में दर्द, जमन घाव आदि हो जाते हैं। इसी प्रकार सत्यधर्म प्राणीमात्र का उत्थान करता है, इस धर्म के पालन से लौकिक जीवन भी व्यवस्थित होता है तथा आत्मा को अल्पकाल में निर्वाणपद भी मिल जाता है। वास्तविक धर्म अहिंसा ही है, इससे प्राणिमात्र को शान्ति और सुख मिल सकता है।

स्वर्ण रस और लोहरस दोनों रस रूप से समान होने पर भी तुल्य गुणवाले नहीं हो सकते हैं, उसी प्रकार अहिंसा और हिंसा धर्म समान नहीं हो सकते। अहिंसा धर्म के द्वारा शान्ति मिल सकती है, क्योंकि इस धर्म का उपदेश सर्वज्ञ, वीतरागी हितोपदेशी अर्हन्त ने दिया है। यह अहिंसा धर्म जैनागम में ही पूर्ण रूप से वर्तमान है, क्योंकि इस धर्म के उपदेशों ने अपने जीवन में अहिंसा का आचरण पूर्ण रूप से उतार लिया था। अहिंसा धर्म के धारण करने से ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की प्राप्ति हो सकती है। वसुभूति—मित्रवर! अभी आपने कहा कि सच्चे धर्म का उपदेश सच्चे देव ने दिया है। अब कृपाकर यह बतलाइये कि सच्चा देव किसे कहते हैं?

दयामित्र—'आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना। भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः। न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते,, ॥

धर्म का मूल सच्चा देव या आप्त है। इसमें तीन गुण होने चाहिये—निर्दोषपना सर्वज्ञपना, परमहितोपदेशकपना। क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, मद, राग, द्वेष, मिथ्यात्व, चिन्ता: अरति: निद्रा, विस्मय, विषाद स्वेद, खेद, ये अठारह दोष सच्चे देव में नहीं रहते हैं, इसलिये वह निर्दोष है। संसार के समस्त पदार्थों को तीनों कालीन—भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालीन पर्यायों को जानता है, अतः सर्वज्ञ होता है, ज्ञान को रोकनेवाला ज्ञानावरण कर्म उसका क्षय हो जाता है, आत्मा में अनन्तज्ञान उत्पन्न हो जाता है अतएव सच्चादेव अल्पज्ञ नहीं होता उसे सभी पदार्थों का साक्षात्कार होता है। सच्चा देव हितोपदेशी भी होता है, संसार के सभी जीवों को हित का उपदेश देता है, असल बात यह है कि असत्य बात बोलने में तीन बातें कारण होती हैं—पहली बात तो यह हैं कि कोई व्यक्ति सदोषी हो तो वह राग या द्वेष वश असत्य बात बोल सकता है। दूसरी बात यह है कि अज्ञानतावश भी असत्य बात कही जा सकती है। तीसरी बात—किसी के अहित करने के लिये भी असत्य वचनों का प्रयोग होता है। सच्चा आप्त

उक्त तीन दोषों से रहित होता है, अतः वह संसार के लिये कल्याण का उपदेश देता है।

सच्चा देव प्रारम्भ में हम और आप के समान मनुष्य ही रहता है। समय पाकर वह संसार से विरक्त हो जाता है, अपनी आत्मा के स्वरूप को अवगत करने की इच्छा करता है अतः विभिन्न प्रकार की साधनाओं द्वारा आत्मा को शुद्ध करता है तथा आत्मा के शुद्ध होने पर वह सच्चा देव बन जाता है। इस सच्चे देव के द्वारा ही धर्म मार्ग का प्ररूपण होता है तथा इसी के द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करने पर मनुष्य अपना कल्याण कर सकते हैं। कालान्तर में वे भी सच्चे देव बन सकते हैं, अपने भीतर आत्मा के स्वाभाविक गुण अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य गुणों को प्राप्त कर सकते हैं।

धर्म वही है जो जीव को भगवान बना दे। जैनधर्म संसार के समस्त प्राणियों को भगवान् बनने के लिये उत्साहित करता है तथा जीव को परमपद में स्थापित कर देता है। जहां अन्य धर्म किसी भी जीव को सदा भगवान के सेवक बने रहने के लिये कहते हैं तथा यह कहते हैं कि भगवान् एक ही है, उसके समान अन्य दूसरा नहीं हो सकता; वहां जैनधर्म सभी प्राणियों को भगवान् बनने के लिये मार्ग बतलाता है। यह दास या गुलामी मनोवृत्ति को दूर करता है।

हे वसुभूति! कृत्रिम मोतियों को धारण करनेवाले संसार में अधिक हैं, किन्तु परीक्षा कर सच्चे मोतियों द्वारा श्रृंगार करनेवाले कम हैं; इसी प्रकार धर्म, अधर्म की परीक्षा कर सच्चे धर्म को धारण कर आत्म कल्याण करनेवाले कम ही हैं। नाना प्रकार के वृक्षों की परीक्षा कर चन्दन वृक्ष को पहचान कर उसका लाभ उठानेवाले संसार में इने-गिने ही होते हैं, उसी प्रकार सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित धर्म की परीक्षा कर धारण करनेवाले कम ही हैं। जब तक वस्तु परीक्षण की क्षमता न होगी तब तक धर्म को पहिचानना कठिन है। निर्दोष परमात्मा के मुख से निकले हुए परमात्मतत्त्व को जानना और उसके उपदेश पर श्रद्धा करना सम्यत्व है; यह सम्यत्व महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन के बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता है। यही जीव को संसार से चतुर्गति दुःख से छुड़ानेवाला है। जिस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है, आत्मा का अटल विश्वास जिसके मन में उत्पन्न हो जाता है, वह अपना कल्याण अवश्य कर लेता है। सम्यग्दृष्टि जीव कभी दरिद्री नहीं हो सकता, विकलांग नहीं हो सकता। उसकी इन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्र आदि पूजा करते हैं। परपदार्थों के साथ लगी ममत्वबुद्धि भी सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने

से ही दूर होती है सम्यक्त्व ही आत्मानुभूति को उत्पन्न करने में कारण है; जीव सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होते ही अपने को संसार के समस्त पदार्थों से भिन्न चैतन्य रूप अनुभव करता है, वह परपदार्थों में बिल्कुल भी लिप्त नहीं होता है।

दयामित्र के इस उपदेश को सुनकर वसुभूति की कर्मकालिमा बहुत कुछ धुल गयी, परिणाम विशुद्ध होने से अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों का क्षय भी हो गया; जिससे उसकी निर्मल निकल आयी और तत्क्षण उसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया। वसुभूति ने आनन्दविभोर होकर दयामित्र सेठ की नाना प्रकार से स्तुति की।

इस प्रकार दयामित्र वसुभूति को सम्यग्दर्शन में दृढ़ कर आगे बढ़ा और उसने नन्द्यावर्त पर्वत पर अपना डेरा डाला। यह स्थान पर्वतीय होने के कारण जंगली हिंसक पशुओं से आवृत था तथा इसमें चोर लुटेरों का भी पूरा भय था। परन्तु सम्यग्दृष्टि को किसी का भी भय नहीं रहता, अतः दयामित्र सेठ निर्भय होकर इस स्थान में ठहर गया।

रात को जंगली लुटेरों ने दयामित्र सेठ के साथवाले व्यापारियों पर आक्रमण किया। दयामित्र वीरता पूर्वक लुटेरों के साथ युद्ध करने लगा। उसने अपार वाण वर्षा की, जिससे लुटेरों के पैर उखड़ गये और वे भागने पर उतारू हो गये। युद्ध के समय वसुभूति दयामित्र के तम्बू में सो रहा था। लुटेरों का एक वाण आकर वसुभूति को लगा और वह घायल होकर पीड़ा से तड़फड़ाने लगा। यद्यपि सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के कारण उसे अधिक कष्ट नहीं हो रहा था, वह संसार की अस्थिरता का विचार करने लगा। दयामित्र भी जब लुटेरों को भगाकर तम्बू के भीतर आया तो मरणासन्न वसुभूति के पास जाकर कहने लगा—अब आप सल्लेखना धारण करें, क्योंकि आपका कल्याण सल्लेखनाव्रत से ही हो सकता है। आप सच्चे अहिंसक बनें, अहिंसक वीर होता है, अतः आप मृत्यु के साथ वीरता पूर्वक युद्ध करें। मृत्यु का भय सर्वथा मन से निकाल दें।

वसुभूति तो क्षायिक सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने से ही आत्मकल्याण के लिये तत्पर था। उसने अपने परिणामों को संसार के बाह्य पदार्थों से हटाकर आत्मा की ओर लगाया और पञ्च नमस्कार मन्त्र का ध्यान करने लगा। ध्यानावस्था में तल्लीन हो उसने शरीर का त्याग किया, जिससे सम्यग्दर्शन के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में मणिप्रभा विमान में मणिकुण्ड नामका देव हुआ।

वसुभूति के जीव मणिकुण्ड देव को अन्यदेव सम्बोधित कर कहने लगे कि ये दिव्य देवाङ्गनाएं, सुन्दर विमान

और सुन्दरतम विभूतियां आपकी हैं, आप इन्हें ग्रहण करें ।

स्वर्ग की दिव्य विभूतियों को देखकर वह आश्चर्यान्वित हो हक्का-बक्का रह गया । इसी समय उसे भव-प्रत्यय अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे उसे पूर्व भव की समस्त बातें अवगत हो गयीं । वह सोचने लगा—मैं कहां ? इस देवगति का अनुपम सुख कहां ? यह सम्यग्दर्शन का ही प्रभाव है । केवल सम्यग्दर्शन के बल से ही जीव का उद्धार हो सकता है । इसमें अद्‌भुत शक्ति है । मैंने तो सदा श्रमणों की निन्दा की, उन्हें दुत्कारा और सच्चे धर्म से दूर रहा । दक्षिणा के लोभ से कुछ दिनों के लिये मैंने व्रत ग्रहण किये, मेरी रुचि व्रतों की ओर बिल्कुल नहीं थी । परन्तु दयामित्र के धर्मोपदेश से मेरा कल्याण हो गया इन्हीं की कृपा से मुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है । अहा ! दयामित्र के समान परोपकार करनेवाले इने-गिने व्यक्ति ही होंगे ।

संसार में वही व्यक्ति अभिनन्दनीय होता है, जो जीव को नाना प्रकार के उपायों से कल्याणपक्ष में लगाता है । इस प्रकार दयामित्र की प्रशंसा और अपनी आलोचना करता हुआ वसुभूति का जीव मणिकुण्ड देव अपने उपकारी गुरु दयामित्र के दर्शन करने चला । उस समय दयामित्र सेठ भगवान् की पूजा कर रहा था; मणिकुण्ड अपना गौरव और प्रभाव उन्हें दिखाकर स्वर्ग चला गया । इसके पश्चात् उसने सोलह स्वर्ग, नन्दीश्वरद्वीप, ज्योतिर्लोक, भवन लोक, पांच अनुत्तर आदि सभी स्थानों का अवलोकन किया और अकृत्रिम चैत्यालयों का दर्शन पूजन कर अपने सम्यक्त्व को निर्मल किया ।

यह एक सागर की आयु को आनन्द पूर्वक भोगता हुआ, वहां से चयकर[1] नन्दश्री का अभयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न होने वाला है । समुद्र के समान गम्भीर, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान दर्शनीय, कामदेव के समान सुभग, समस्त शास्त्रों में प्रवीण, मांडलिक राजा हो अन्त में जिनदीक्षा ग्रहण करेगा तथा तपस्या पूर्वक शरीर का त्याग कर सर्वार्थसिद्धि में देव उत्पन्न होगा । वहां से चयकर निर्वाण प्राप्त करेगा इस प्रकार, गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक से सम्यग्दर्शन की महिमा बतलानेवाली कथा कही । सम्यग्दर्शन का प्रत्यक्ष फल देखकर राजा का विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो गया । राजा मन ही मन सोचने लगा कि इस जीव का उद्धार सम्यग्दर्शन के बिना नहीं हो सकता । वसुभूति ब्राह्मण सम्यग्दर्शन के प्रभाव से कहां से कहां पहुँच गया । धन्य है सम्यग्दर्शन की महिमा और धन्य हैं उसके पालन करनेवाले । इस प्रकार राजा श्रेणिक विचार करता हुआ सम्यग्दर्शन में दृढ़ हुआ ।

१—मृत्यु प्राप्त कर ।

द्वितीय-अध्याय

मोक्ष लक्ष्मी के लिये दर्पण के समान, केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये सुन्दर आभूषण के समान सम्यग्दर्शनरूपी रत्न है। यह सुकवियों की कलकण्ठध्वनी से निरन्तर स्तुत्य है इसलिये मैं इसका निरूपण कर रहा हूं।

यह अनर्व सम्यग्दर्शनरूपी रत्न संशयरूपी चोर को भगाने में समर्थ है और विश्वास रूपी सांकल के द्वारा मनरूपी वज्र कपाटों को बन्द करने में निपुण है।

मगध सम्राट् राजा श्रेणिक ने हाथ जोड़कर भगवान् को नमस्कार करने के अनन्तर अनन्त गुणधारी गौतम गणधर को नमस्कार किया और उनसे निःशंकितअंग की कथा जानने की उत्सुकता प्रकट की।

गौतम गणधर—सम्यग्दर्शन का अष्टांग सहित पालन करना ही कल्याणकारी हो सकता है। जैसे अष्टांग के बिना शरीर अपूर्ण है, उसी प्रकार अष्टांग के बिना सम्यग्दर्शन भी अपूर्ण है। अंग हीन सम्यग्दर्शन पाप मल को दूर नहीं कर सकता है। निःशंकित अंग आंखों में काजल के समान लाभदायक, धान कूटने में मूसल के समान उपकारी, उत्तम घोड़े पर बैठने के लिये असवार के समान, विवाह में मांगलिक गान के समान, शुद्धि और स्वच्छता के लिये दन्त-धावन के समान उपकारी है। मिथ्यात्वरूपी बंध को नाश करने के लिये शंकादि दोषों से रहित निर्दोष सम्यग्दर्शन को धारण करना चाहिये। यह सम्यग्दर्शन ही निवृत्ति मार्ग की ओर जीव को ले जाता है।

द्वितीय कथा—ललितांग की कथा

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में काश्मीर नाम का देश है। इस में तालाब और कमलों से सुशोभित, जिन मन्दिरों से युक्त विजयपुर नाम का नगर था। इस नगर में इन्द्र के समान वैभव धारी, कामदेव के समान सुन्दर, पराक्रमी, भगवान का भक्त, परोपकारी, प्रजावत्सल अरिमत नाम का राजा राज्य करता था।

इस राजा की भगवान् जिनेन्द्र के चरणारविन्दों में भ्रमर की तरह घूमनेवाली, कमल नयनी, गजगामिनी, सुन्दरी नाम की पट्टरानी थी। इन दोनों को सुख पूर्वक समय बिताते हुए नयनों को आनन्दकारी रूप-सौन्दर्य युक्त ललितांग नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। शिशु को प्राप्त कर माता-पिता आनन्द से फूले नहीं समाते थे। उनका रागभाव पुत्र

-धर्मा
मृत
६८

को प्राप्त कर कई गुना बढ़ गया था, हृदय की ममत्व वृत्ति अपना विस्तार करने लगी थी । वह कोमल शिशु माता पिता के आकर्षण और मन बहलाव का केन्द्र था । इसकी बालक्रीड़ाएं माता-पिता को बहुत ही भली मालुम होती थीं । राजा अरिमत पुत्र प्रेम के कारण दरबार में भी कम ही जाते थे । अधिकांश कार्यों को घर पर ही पूरा कर दिया करते थे । रानी सुन्दरी भी उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करती थी । किसी-किसी विषय पर पति-पत्नी में काफी विवाद होता था, पश्चात् दोनों एक मत होकर विषय का निर्णय करते थे । दोनों में प्रेम भाव बढ़ता जा रहा था ।

ललितांग माता-पिता के असीम स्नेह को पाकर वृद्धिगत होने लगा उसने विद्या अर्जन भी नहीं की । दिन-रात कुसंगति में पड़कर समस्त व्यसनों का सेवन भी करने लगा । यद्यपि पुत्र का आचरण माता-पिता को कष्ट कर था, पर पुत्र मोह में पड़कर वे उससे कुछ भी नहीं कह सकते थे । अतएव ललितांग का स्वभाव और भी अधिक दुष्ट होने लगा ।

इच्छा रहते हुए भी दम्पत्ति ने उसकी चंचलता, धूर्तता दुष्टता एवं अनीति पूर्ण कार्यों का विरोध नहीं किया बल्कि हंसकर उसे प्रसन्न करने के लिये प्यार ही करते रहे । ललितांग की धूर्तता दिनोंदिन बढ़ने लगी, वह प्रजा को नाना प्रकार का कष्ट देने लगा । वह नगर के लोगों को पकड़ ले आता और गुण्डों से उन्हें पिटवाता और स्वयं दूर खड़ा होकर हंसता था ।

जैसे नीम के पत्तों के संसर्ग से पानी कडुवा हो जाता है, उसी प्रकार राजपुत्र ललितांग देव भी दुष्टसंगति से विवेक हीन बन गया था, वह दुराचारी होकर प्रजा को भांति-भांति के कष्ट देता था । "यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता । एकैकप्यनर्थाय किमु तत्र यत्र चतुष्टयम्" की नीति के अनुसार वह सर्वत्रअशान्ति उत्पन्न करता था । वह किसी को गाली देता, किसी को बाल पकड़ कर खींचता, किसी के ऊपर थूकता, किसी पानी भरने वाली के ऊपर धूल डाल देता, किसी के घडे को फोड़ देता किसी की रस्सी कुंए में डाल देता एवं किसी को कान पकड़ कर खींचता, इस प्रकार नगर के नर नारियों को तंग करता रहता था । राज पुत्र होने के कारण कोई भी उससे कुछ नहीं कहता था । उससे नगर वासी इतने परेशान थे, कि उसका नाम सुनते ही कांपने लगते । बच्चे ललितांग का नाम सुनकर रोते हुये चुप हो जाते थे । स्त्रियां उसकी सूरत को देखकर भयभीत हो मूर्छित हो जाती थीं ।

ललितांग कभी-कभी मनोविनोद के लिये एक व्यक्ति के सिर को पकड़ कर दूसरे के सिर से टकराता, इस प्रकार दोनों के सिर को फोड़कर शान्त होता। कभी यह अपने साथियों की सहायता से किसी भी भद्र महिला की इज्जत आवरू को बरबाद कर देता था नगर में उसका भय इतना व्याप्त था, कि उसका नाम सुनते ही नगरवासियों की मृत्यु हो जाती थी।

नगर की वेश्याओं को पकड कर बलपूर्वक आद्ध-देवी के मन्दिर में लाकर नृत्य कराता है और रातभर उनका नृत्य देखकर प्रसन्न होता। यदि रास्ते में कोई जाता हुआ मिल जाता तो उसे अपने साथियों से पिटवाता तथा बांधकर पेड़ से लटका देता। उसे मार पीट के कार्यों में अत्यधिक आनन्द आता था। नगर में भिक्षा के लिये घूमनेवाले भिक्षुओं एवं यात्रियों को नाना प्रकार की क्रूरता पूर्वक यातनाएं देता था। इन सबसे कर वसूल करता। उसके उपद्रव विचित्र प्रकार के होते थे, सभी वर्ग के लोग परेशान थे, किसी में इतना साहस नहीं था कि वे ललिताग की शिकायत राजा से कर सकें। शिकायत करते ही उनकी निर्दयतापूर्वक मत्यु अवश्य ही कर दी जाती थी।

एक दिन वह तैलियों के मुहल्ले में घुस गया। उसके देखते ही मोहल्ले के लोग इस प्रकार भाग गये जैसे मन्त्रवादी को देखते ही, भूत, पिशाच भाग जाते हैं, मुहल्ले में जो भी मिला, उसकी खूब मरम्मत की गयी तथा मनों तैल लेजा कर यक्षिणि देवी के मन्दिर में रातभर मसान जलाया। सर्वत्र होलिका–सी जलती दिखलायी पड़ती रही कुछ दिनों के उपरान्त वह एक दिन मालियों के मोहल्ले में चला गया, और फूलों के बाजार को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। चमेली, जूही वेला आदि नाना प्रकार के फूलों को छीनकर बाजार में फैला दिया तथा फूल बेचने वालों को पकड़कर खूब पीटा।

माली अपनी जान लेकर इस प्रकार भागे जैसे सिंह के भय से हरिण दौड़ता है। मालियों के घर में घुसकर उसने उनके वर्तन तथा अन्य घर की चीजों को लूट लिया तथा अपने दुर्जन साथियों को बांट दिया और उनसे कहा—तुम इनको ले जाओ इनका स्वयं उपयोग करना। इन नीच जाति के लोगों को लोटा थाली, गिलास आदि की आवश्यकता नहीं इनको मिट्टी के वर्तन में भोजन करना चाहिये। इस मोहल्ले से निकल कर वह कलवारों के मोहल्ले में गया और उनकी समस्त मदिरा लूट ली तथा कुछ ऐसे ही वरवाद कर दी। लूट में जो सामान उसे मिला, उसको अपने समस्त साथियों में वितरित कर दिया।

उत्तम वस्त्राभूषणों से सज्जित स्त्रियों को उद्यान में पकड़ कर ले आया और उन्हें नाना प्रकार की यन्त्रणाएं देने लगा। इस प्रकार मनोविनोद करता हुआ ललितांग कपड़ों के बाजार में आया। समस्त व्यापारी ललितांग को देखकर डर गये, कुछ तो ऐसे ही डर के मारे भाग गये। ललितांग ने इस बाजार में जाकर बहुमूल्य सुन्दर कपड़ों की लूट करनी प्रारम्भ की, उसने अपने साथियों की सहायता से लाखों रुपये का कपड़ा लूटा। सहस्त्रों रुपये की कीमत के कपड़ों को तो उसने आग लगाकर राख कर दिया। कुछ रेशमी और जरी के वस्त्रों को फाड डाला और कुछ वस्त्रों को आपस में बांट लिया।

यहां से चलकर ललितांग स्टेशनरी के बाजार में आया। दूकानदार उसे देखते ही भय विह्वल हो प्रार्थना करने लगे कि सरकार हम गरीब हैं, हमारा उद्धार कीजिये, कृपा कीजिये। हमारा जीना-मरना आपही के हाथ में है। हमारी आजीविका इसी से चल रही है; आप राजकुमार हैं, हमारे अन्नदाता हैं आपसे ही हमारी परवरिश होती है, अतः हमारे ऊपर कृपा अवश्य होनी चाहिये। ललितांग के ऊपर इस प्रार्थना का कुछ भी असर नहीं हुआ, उसका कठोर हृदय बिल्कुल नहीं पिघला। ललितांग ने अपने साथियों को सामान लूटने का आदेश दिया तथा कांच, मोती आदि के कीमती सामान को तोड़ने-फोड़ने लगा। भय के मारे सभी त्रस्त थे, किसी के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। इधर-उधर भगदड़ मची हुई थी। कोई किसी को नहीं पूछता था। अपनी रक्षा के लिये एक दूसरे को पुकार रहे थे पर कोई भी किसी की रक्षा नहीं कर सकता था। धनी-मानी व्यापारियों को पकड़ कर पीटा जा रहा था तथा मनोविनोद के लिये उन्हें नाना प्रकार की यन्त्रणाएं दी जा रही थीं।

ललितांग का भय इतना व्याप्त था कि नगर के सभी नर नारी अपना-अपना काम-धाम छोड़ जान बचाने के लिये छुपे हुये बैठे थे; और जिधर से ललितांग की आवाज आती उधर ही कान खड़े कर देखने लगते। ललितांग सदा धूर्त, व्यसनी और कामुक साथियों को एकत्रित कर स्त्रियों की चर्चा किया करता था। वह कहता था कि आज अमुक मोहल्ले के अमुक व्यक्ति की युवती लड़की या बहु को आज रात को सोते उठाकर लाना है। इस प्रकार आपस में चर्चा कर नगर में घुस जाते और स्त्रियों को तंग करने लगते। बच्चों को मारते-पीटते तथा बच्चों के पटकने में विशेष आनन्द लेते थे। ललितांग के मारे सारा नगर त्रस्त हो गया। सर्वत्र कोलाहल ही सुनाई पड़ता था। नगरवासियों की दुर्दशा का वर्णन करना शक्ति से बाहर की बात है।

एक दिन ललितांग वेश्याओं के मोहल्ले में अपने साथियों के साथ चला गया, और वहां किसी कुट्टिनी के घर में घुस गया। कुट्टिनी ललितांग को आया जानकर भय से विह्वल हो गयी और अपना होश-हवास खो बैठी, जिससे वह अपने दामाद को ही लड़की समझ कर अन्धेरे में अपने साथ लेती गयी तथा जल्दी-जल्दी दौड़ने के कारण वह घर के पीछे, जहां कूड़ा-कचरा इकट्ठा किया गया था, उसी घूरे के गड्ढे में गिर गयी। दूसरे घर के लोगों ने जब ललितांग के आने का समाचार सुना तो स्त्री, पुरुष सभी भागने लगे। स्त्रियां वेहतास हो इस प्रकार भागीं कि उन्हें खम्भों में लगे शीशों में अपना ही प्रतिबिम्ब ललितांग दिखलायी पड़ा। अतः वे नमस्कार करती हुई कहने लगी— राजन् कृपा कीजिये, धर्मावतार हमने कोई अपराध नहीं किया है। आप प्रजा रक्षक हैं, हम अवलाएं आपकी शरण में हैं। हमने न कोई गलती की है और न आगे गलती करेंगीं। हे राजन् प्रसन्न हो जाइये, आपकी हम शरणागत हैं। राजा प्रजा के लिये पिता तुल्य होता है, आप हमारे पिता हैं कृपा करें, कृपा करें।

पास के घर में एक नव दम्पत्ति सोये हुए थे। जब बाहर ललितांग के आने का हल्ला सुनाई पड़ा तो स्त्री वेचारी देखने के खयाल से बाहर क्या हो रहा है, किवाड़ खोलने लगी। इतने में अर्धनिद्रित पति भी उठा और बाहर की ओर दौड़ा। पति ने अपनी पत्नी को ही चोर समझ पकड़ लिया और उसके बाल पकड़ कर खींचने लगा और जोर-जोर से कहने लगा—हे चोर तूने मुझे क्या नामर्द समझ लिया है, क्या तुम बकरी होकर बाघ के यहां आये हो। तुमने गरीबों को बहुत सताया है, आज मेरे हाथ आये हो ललितांग। इस प्रकार बकते हुए स्त्री को पीटने लगा। स्त्री वेचारी चिल्लाने लगी और अपनी रक्षा की प्रार्थना पति से करने लगी तथा अपना परिचय देने लगी। पत्नी को पहचान कर पति बहुत लज्जित हुआ।

सभी नगर निवासी ललितांग की कार्यवाईयों से तंग आकर विचार करने लगे कि कब तक इस प्रकार के अत्याचारों को सहन किया जायगा। राजकुमार ने नगर को आतंकित कर दिया है, इसके लिये कुछ उपाय अवश्य करना होगा। राजपुत्र अशिक्षित और धूर्त है, यह मद से विह्वल है, इसके अत्याचारों से बचने के लिये उपाय करना आवश्यक है। सभा में एकत्रित सभी ने एक स्वर में कहा स्वप्न में भी ललितांग का भय नगर को त्रस्त किये है। यहां किसी को भी एक क्षण के लिये शांति नहीं। जान माल सभी अरक्षित है, ऐसे राज्य में रहने से कोई लाभ नहीं।

अतः सबने मिलकर प्रस्ताव पास किया कि सभी ललितांग की शिकायत एक साथ मिलकर राजा से करें और राजा को उसे दण्ड देने के लिये बाध्य करें । ललितांग के स्मरण मात्र से ही नागरिकों की आंखों से आंसू निकलने लगते थे, ओठ सूख जाते थे, रोमांच हो आते थे । इस प्रकार सभी एक मत हो राजदरबार में आये और राजा से प्रार्थना करने लगे ।

कुछ चतुर नागरिक—राजन् ! आपका पुत्र निरंकुश हाथी की तरह हम नगरवासियों को कुचल रहा है, पग-पग पर हमें कष्ट देरहा है । कुमार की लीलाओं का कथन करने से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं । हमारा जीवन कीड़े मकोड़े के समान नष्ट किया जा रहा है, हमारी बहू-बेटियों की अस्मत लूटी जा रही है । नगर में गुंडई का बोल-बाला है । धर्मावतार ! राजपुत्र के दुष्कृत्यों का वर्णन करने की शक्ति हम में नहीं है । प्रभो ! अब तो हम आपकी शरण हैं, आप चाहे हमारी रक्षा करें, चाहे न करें । राजकुमार ने सभी के घर-द्वार को लूट लिया है, दुकानों के सामान को तोड़-फोड़ डाला है । नगर में आग लगादी है । अनेक लोगों की हड्डी-पसली तोड़ दी है, अनेकों की खाल खींचली है, बहुतों को कोल्हू में पेल दिया है । प्रजा बहुत त्रस्त है । इस समय नगर में ऐसा एक भी व्यक्ति न मिलेगा, जिसे राजकुमार ने कष्ट न दिया हो । बाल, बच्चे, बूढ़े, नर, नारी सभी को नाना प्रकार की यातनाएं दी गयी हैं । महाराज आप हमारे स्वामी हैं, अब आपको छोड़ के हम किससे अपना दुःख कहें । रात को सोना हराम हो रहा है, हम लोग इधर एक महीने से नहीं सो सके हैं । कुओं से स्त्रियां पानी भरने नहीं जा सकती हैं, अतः अनेक घरों में लोग प्यासे मर रहे हैं । हे राजन् रक्षा करें, रक्षा करें ।

प्रजा की इस दुःख गाथा को सुनकर राजा अरिमत को महान् कष्ट हुआ । पुत्र के निन्द्य कृत्यों से उसके हृदय को मर्मान्तिक पीड़ा हुई । राजा ने प्रजा को सम्बोधित कर कहा—आप लोग जायें, आनन्द पूर्वक अपने-अपने कार्यों को करें । मेरे रहते हुए आप लोगों को कष्ट नहीं हो सकेगा । आपके दुःख को दूर करने का उपाय तुरन्त किया जायगा । आप लोग अब भय छोड़ दीजिये, शान्ति और अमनचैन से रहिये । इस प्रकार प्रजा को समझाकर राजा ने पान, सुपाड़ी, कर्पूर आदि से प्रजा सत्कार किया और समझा-बुझाकर प्रजा को घर भेज दिया । प्रजा के चले जाने पर राजा ने प्रधान अमात्य और पट्ट महिषी को बुलाया और कहने लगा—

जैसे दुर्योधन की संगति से कर्ण, शकुनि और दुश्शासन की बरबादी हुई, उसी प्रकार दुष्टों की संगति से यह ललितांग भी भ्रष्ट हो गया है। आप लोग जानते हैं कि संगति का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है—

जिस प्रकार सूअर की संगति से गाय का बछड़ा मल भक्षण करने लगता है, उसी प्रकार राजकुलोत्पन्न यह ललितांग दुष्टों की संगति से बिगड़ गया है। नदी का मीठा पानी समुद्र में मिलने से खारी हो जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुष भी दुष्टों की संगति से सर्वनाश को प्राप्त हो जाते हैं। शीतल जल जैसे अग्नि के संसर्ग से गर्म हो जाता है, उसी प्रकार ललितांग भी दुष्ट संगति से खराब हो गया है। कहावत भी प्रसिद्ध है कि संगति से ही गुण उत्पन्न होते हैं और संगति से ही गुण विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। अतः ललितांग का सर्वनाश भी कुसंगति के कारण ही हुआ है। प्रजा को इसने इतना बड़ा कष्ट भी कुसंगति के फेर में पड़कर ही दिया है। जो राजा प्रजा का रक्षक है, न्यायकर्ता है; वही यदि प्रजा पीड़क हो जाय तो फिर संसार का उद्धार कभी नहीं हो सकता। ललितांग के दुष्कृत्य सर्वथा निन्द्य और लज्जास्पद हैं, उसे सन्मार्ग पर कैसे लाया जाय तथा उसकी दुष्प्रवृत्तियां कैसे दूर हों, इसका उपाय करना चाहिये।

सन्तान कुसंगति को प्राप्त होकर असन्मार्ग की ओर जाती है, इसका भी मूल कारण माता-पिता ही हैं। यदि प्रारम्भ से माता पिता अपनी सन्तान की देखभाल रखें तो फिर सन्तान कभी कुमार्ग की ओर जा ही न सके। ललितांग बिगड़ गया है, सप्त व्यसनों का सेवन करता है, इसमें भी दोष हमारा ही है, कुमार का नहीं। मोह के कारण हमने उसे शिक्षा नहीं दी, जिससे सत् शिक्षा न मिलने से वह बिगड़ गया है, इसमें अन्य किसी का अपराध नहीं है।

यदि हम इसे मुनियों के पास ले जाते, वहां यह उनका उपदेशामृत सुनता तो इसके संस्कार दृढ़ हो जाते और यह कुमार्ग का पथिक नहीं बनता। अच्छे संस्कारों के न पड़ने से अन्य लोगों की संगति के कारण ही इसकी यह दशा हुई है।

जो माता पिता ज्यादा मोह के कारण सन्तान को अशिक्षित रख लेते हैं तथा लाड़ प्यार में अधिक रखते हैं, उनकी सन्तान अवश्य ही कुमार्गगामी बन जाती है। कहावत भी है कि "माताशत्रु पितावैरी येन बालो न पाठितः" अर्थात् जो माता-पिता अपनी संतान की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते हैं, वे शत्रु हैं। उनके द्वारा सन्तान का हित नहीं हो सकता है, बल्कि सन्तान दिनोदिन बिगड़ती जाती है।

खाद के बिना उत्पन्न हुआ धान्य, बिना शिक्षा का पुत्र और असमय की तपस्या कभी भी सफल नहीं हो सकती । "पुत्रं च शिष्यं च ताडयेंत् न लालयेत्" पूर्वाचार्य की इस उक्ति का उलंघन न करते हुए पुत्र को सदा शिक्षित बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । इस प्रकार विचार करते हुए राजा ने ललितांग को हाथ पकड़ कर पास बैठा लिया और उसे उपदेश देने लगा—

पृथ्वी की रक्षा करना, दुष्टों का निग्रह और शिष्टों का संरक्षण करना, सद्धर्म की रक्षा करना, धूर्तों, लुटेरों और चोरों को देश से बाहर निकाल देना, प्रजा का सब प्रकार से संरक्षण करना, अनीति और कुमार्ग का त्याग करना, शरणागत की रक्षा करना एवं व्यसनों का त्यागना ही क्षत्रीयों का कर्त्तव्य है । क्षत्रीय शब्द का अर्थ यह है कि जो पीड़ितों की रक्षा करें वे क्षत्रीय होते हैं । क्षत्रीय कभी भी निरपराधियों की जान नहीं लेते हैं ।

जैसे बालक के सुख के लिये मां सभी प्रकार के कष्ट स्वयं सहन करती है, सुख की कामना करने वाला जैसे चारित्र और शील की रक्षा करता है, उसी प्रकार पुत्रवत् प्रजा का पालन करना राजा का कर्तव्य है । जो राजा अपनी प्रजा को प्राणों के समान नहीं समझता है, वह राजा अत्यन्त क्षुद्र और नीच है । ऐसे राजा का राज्य शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है ।

चन्द्रमा जैसे किरणों से युक्त होने पर शोभित होता है, सूर्य प्रकाश से युक्त होने पर शोभता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा का हित करने पर शोभता है । जो राजा प्रजा को सन्तुष्ट नहीं कर सकता है, वह राजा कर्तव्य च्युत और पापी माना जाता है । राजा का परम कर्तव्य है कि वह प्रजा की सब प्रकार से देखभाल करे, उसके सभी कष्टों का निवारण करे । जो राजा अभिमान में आकर प्रजा के हितकार्यों को सम्पन्न नहीं करता है, वह नराधम है । नीतिकारों ने भी बतलाला है कि वह राजा नरक का पात्र होता है, जो प्रजा के भूखे रहने पर स्वयं भोजन करता है तथा प्रजा के दुःखी होने पर स्वयं आनन्द का उपभोग करता है । संसार में राजा होना उसी व्यक्ति को उपयुक्त जचता है जो अपनी सन्तान के समान प्रजा का पालन करता है । राजा और प्रजा में केवल अधिकार का भेद है, यह अधिकार तभी प्रकट होता है जब अवसर आने पर राजा प्रजा के हित के लिये अपने स्वार्थों का उत्सर्ग कर देता है ।

पूर्व जन्म के महान पुण्योदय से राज-पदवी मिलती है । जो निर्बुद्धि इस महत्वपूर्ण पद को प्राप्त कर अपने

कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं, वे अत्यन्त निन्द्य हैं। इस पदवी को प्राप्त कर अपना हितसाधन करने के साथ-साथ प्रजा की भलाई सभी प्रकार से करना आवश्यक है। प्रजा उसी राजा को अपने पिता तुल्य समझती है जो उसकी सब प्रकार से सहायता करता है।

राजा ने कुमार को पुनः सम्बोधित कर कहा—कुमार संगति का प्रभाव सभी पदार्थों पर पड़ता है। जड़-चेतन सभी पदार्थ सत्संगति और कुसंगति से बनते बिगड़ते हैं। यद्यपि जड़ में अनुभव करने की शक्ति नहीं, फिर भी उसके ऊपर संगति का असर पड़ता है।

जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर तारागण प्रकाशित होते हैं, किन्तु सूर्य के उदय होते ही उनका प्रकाश लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार तीव्र कर्मोदय से दुष्ट संगति में पड़ जाने से मनुष्य का विवेक लुप्त हो जाता है। अतएव अब तुम्हें दुष्टों को दण्ड देकर धर्मात्मा व्यक्तियों का संरक्षण करना चाहिये। तुम मेरे कुल के उज्वल प्रकाश हो, इस साम्राज्य के स्वामी हो, प्रजा के संरक्षण का भार तुम्हारे ऊपर है अतः अब तुम्हें दुष्टों को दण्ड देकर निर्दोष प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। शिक्षा के अभाव से अब तक जो हुआ सो हुआ; किन्तु आज से आप अहंकार, दुष्ट संगति, उपद्रव, अत्याचार आदि दुर्गुणों को छोड़ प्रजा के कल्याण में तत्पर हो जाइये। राजपुत्र होकर तुम्हें ऐसे नीच कृत्य नहीं करने चाहिये। यदि रक्षक ही भक्षक बन जाय तो फिर संसार किस प्रकार चले, धर्म-कर्म का निर्वाह कैसे हो? जरा अपने कुल, वंश, कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विचार करो। राजपुत्र होकर निन्द्य कृत्य करना, दुष्टों की संगति में रहकर नित-प्रति उपद्रव करना, प्रजा को सब प्रकार से त्रास देना, कहाँ तक उपयुक्त है? तुम जैनधर्म में उत्पन्न हुए हो, तनिक विचारो यह धर्म कितना कल्याणप्रद और उद्धारकारक है?

जैनधर्म शुद्ध, निर्मल स्फटिक मणि के समान है, इसके धारण करने से आत्मा का कल्याण अवश्य हो जाता है, अतः अब आप पापानुराग को छोड़ अपने कर्त्तव्य पालन में लग जाइये। दुष्टों के साथ रहने से वंश, धर्म पद सभी कलंकित होते हैं। कुमार! तुम समझदार हो, राजघराने में उत्पन्न हुए हो, पवित्र जैनधर्म तुम्हारा वंशानुगत धर्म है। जो व्यक्ति इस धर्म को धारण कर लेता है, उसकी आत्मा इतनी पवित्र हो जाती है जिससे उसकी पापाचार की ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। मैं आपको अधिक क्या समझाऊं, आप पाप प्रवृत्ति छोड़कर धर्माचरण में लग जाइये। आज से मेरी कसम खाइये कि कुसंगति में न जाइयेगा। तुम हमारे कुलदीपक हो, तुम्हें प्राप्त कर हमारा कुल धन्य हुआ, अतः

अपने कुल की लज्जा का निर्वाह करने के लिये कुकृत्य का त्याग तुम्हें आज से कर देना चाहिये । हमारे घर में किस बात की कमी है जिससे लूट-पाट कर धन तुम लाते हो ? पुत्र, संसार उन्हीं का गुणगान करता है, जो प्राण रहते हुए अन्य लोगों का उपकार करते हैं । इस प्रकार प्रेम पूर्वक समझा कर कुमार को सुस्वादु भोजन और रत्नहार अर्पित किये तथा राजा ने स्नेहाश्रुओं से कुमार के मस्तक को आर्द्र कर दिया ।

जिस प्रकार नारियल के पेड़ को किसी लकड़ी के सहारे बांध देने पर सीधा हो जाता है; पर पीछे वह फिर टेढ़ा हो जाता है तथा कुत्ते की पूंछ को थोड़ी देर के लिये भले ही सीधा कर लिया जाय, किन्तु थोड़े समय में वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है, इसी प्रकार कुमार भी जब तक राजा के पास रहा ठीक रहा, किन्तु वहां से हटते ही उसकी दुष्प्रवृत्तियां पुनः उद्‌बुद्ध हो गयीं । उसने अपने पुराने साथियों को संघटित किया और सभी एकत्रित हो नगर में लूट–पाट मचाने लगे । नगरी की युवतियों की इज्जत लूटने, सम्भ्रान्त परिवारों को सताने एवं जलाशयों के जल को विषैला बनाने में उन्हें अपूर्व आनन्द आता था - छोटे छोटे बच्चों को कत्ल कर देना, बुड्ढ़ों को धक्के देकर मार डालना उनके लिये अत्यन्त सरल था ।

जब राजा अरिमत को यह समाचार मिला तो उसे बहुत क्रोध आया और ललितांग को बुला कर उसने कहा अरे कुमार ! जैसे दूध पिलाने पर भी सांप विष ही उगलता है, उसी प्रकार तुम मेरे उपदेशामृत के बावजूद भी अपनी पुरानी हरकतों से बाज नहीं आये । अग्नि का छोटा सा कण जैसे हवा के झोंके से तेज हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी बाहर निकलते ही पुनः दुष्टों के चक्कर में आ गये ।

झूठी प्रतिज्ञाएं करने वाले तुम जैसे मक्कार पुत्र को राज्य देने से क्या लाभ ? तुमने मेरी अन्तरात्मा को बड़ा भारी कष्ट दिया है; अब तुम्हें अत्याचार और उपद्रव करने का दण्ड मिलना चाहिये । जिस प्रकार अच्छे कोयले को भी हाथ में लेने से हाथ काला हो जाता है, उसी प्रकार दुर्जन को उपदेश देने पर भी वह दुष्टता ही करता है । दुर्जन संसर्ग से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । अतएव तुम जैसे निकम्मे पुत्र का मैं मुंह नहीं देखना चाहता हूं, तुम मेरे सामने से निकल जाओ । अब तुम्हें मेरे राज्य में रहने की आवश्यकता नहीं । तुम जैसे पापी के रहने से मेरे राज्य का सर्वनाश हो जायगा । जल्दी मेरी आंखों से ओझल हो जाओ । आज से तुम्हें देश निकाला दिया जाता है, यदि कहीं भी मेरे राज्य में तुम पाये गये तो उसी समय तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा ।

ललितांग पिता के क्रोध पूर्ण वचनों को सुन कर सहम गया। वह डरता हुआ मां के पास पहुँचा और नम्रता पूर्वक मां से कहने लगा — मेरी स्नेहमयी मां ! पिताजी ने मुझे देश निकाला दे दिया है अब तो आपही मेरी रक्षा कर सकती हैं। पिता के क्रोधानल से बचाने की शक्ति आप में ही है । आपकी जिस स्नेहमयी गोद में मैंने आनन्द से बचपन बिताया, युवावस्था को प्राप्त हुआ, क्या अब उस गोद में मुझे स्थान नहीं मिलेगा ।

मां — पुत्र तुम नहीं जानते तुम्हारे पिता तुम्हें कितना स्नेह करते हैं। उन्होंने तुम्हें कितना समझाया। तुमने भरी राजसभा में उपद्रव और अत्याचार न करने की प्रतिज्ञा भी ली किन्तु तुमने उस प्रतिज्ञा का चार छः दिन भी पालन नहीं किया। पिता के प्रेमपूर्ण समझाने का तुम्हारे ऊपर कुछ भी असर नहीं हुआ। अतएव अब इस राज्य में तुम्हारे लिये स्थान कहां है ? तुम जैसे अत्याचारी का पुत्र होना ही हमारे लिये लज्जा की बात हैं। मेरे उदर से जन्म लेकर तुमने मुझे भी निन्दनीय बनाया। तुम कुल के लिये कलंक हो, यदि तुम उत्पन्न न होते तो कुल में दाग नहीं लगता बन्ध्या को जीवन में एक बार ही दुःख का अनुभव होता है, किन्तु दुष्ट पुत्र उत्पन्न करने वाली को पग-पग पर दुःख भोगना पड़ता है। तुम्हारे लिये कल्याण इसी में है कि तुम अविलम्ब यहां से चले जाओ। जितना जल्दी हो सके राज्य से बाहर हो जाओ।

जिस प्रकार शीतल जल सूर्य की किरणों के संयोग से गर्म हो जाता है, उसी प्रकार तुम दुष्ट संगति से बिगड़ गये हो। यदि अब भी तुम अपना कल्याण चाहते हो तथा अपनी दुष्टताओं को छोड़ सकते हो तो तुम्हारे लिये एक ही रास्ता है कि तुम अपने पिता के पास जाकर क्षमा याचना करो।

मां के इन वचनों को सुन कर ललितांग को क्रोध आ गया और वहीं गालियां देने लगा। मां ने इस पर भी पुत्र-प्रेम से प्रेरित होकर ललितांग को समझाया— विनय पूर्वक मां-बाप की आज्ञा न मानने से तथा दिन रात दुष्टों की संगति में रहने से तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया है, इसी कारण तुम्हें हित के वचन अच्छे नहीं लगते।

माता के इन वचनों ने ललितांग को और भी कटीले वृक्ष के समान दुःखदायी बना दिया। मदिरा पान किये हुए समान वह मां-बाप को ही गालियां बकने लगा। क्रोधाभिभूत हो वह देश छोड़कर नैपाल देश में आया।

जिस प्रकार गंजड़ी और शराबी गंजेड़ीयों और शराबीयों में मिल जाते है, विष विष में मिल जाता है, उसी प्रकार ललितांग अपने धूर्त साथियों के साथ धूर्तों में मिल गया और चोरी करने लगा। चौर्यकला में इसने अत्यन्त

ख्याति प्राप्त की; जिस कार्य को कोई नहीं कर सकता था, उसे ललितांग करता था। इसने चोरी में सफलता प्राप्त करने के लिये अंजनवटी विद्या को सिद्ध किया, जिससे अदृश्य होकर मनमानी वस्तुओं को चुरा लाता था। अंजनवटी विद्या के कारण सर्वसाधारण में यह अंजन चोर के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। देश-देशान्तों में भ्रमण कर अपनी विद्या के बल से सहस्त्रों रुपयों का माल चोरी में लाने लगा। यह सदा चोरी करना- जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, वेश्या गमन करना, परस्त्री सेवन करना आदि सातों व्यसनों का सेवन करने लगा। सदाचार और धर्म-कर्म को भूल कर निरन्तर दुराचार में ही प्रवृत्त रहने लगा धूर्त, चोर, शराबी डाकू आदि अनाचारियों के साथ रहकर मनमाना पाप करने लगा।

कुछ दिन पश्चात् नाना देशों में भ्रमण करता हुआ ललितांग अपने साथियों के साथ राजगृह नगर में आया। इस नगरी की अप्रतिम सौन्दर्यशाली अनंग सुन्दरी नाम की वेश्या को देखकर मोहित हो गया और वहीं पर रहने लगा। वेश्या की इच्छा पूर्ति के लिये वह रातभर चोरी कर सामान लाता और दिन को वेश्या के घर में ही पड़ा रहता। उसके द्वारा चोरी में लाये हुऐ सामान से थोड़े ही दिनों में वेश्या का घर भर गया। अनंग सुन्दरी इतने महान् चोरी के द्रव्य को देखकर आश्चर्य में पड़ गयी। वह मन में सोचने लगी—इतना वैभव इन्द्र के यहां भी नहीं होगा, किसी राजा महाराजा चक्रवर्ती के यहां भी इतनी विपुल धन- राशि नहीं हो सकती है। मेरा यह पति महान् है, ऐसा व्यक्ति त्रिलोक में भी नहीं होगा। मेरे घर में देश -विदेश की सारी विभूतियां एकत्रित हैं। मुझे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। मैं चाहूं तो इतने धन से राज्य खरीद सकती हूं। वेश्या ने ललितांग की खूब प्रसंशा की और उसे बातों में इस प्रकार फंसा लिया जिससे चोरी करने की विधि, चोरी करने के स्थान आदि को अपने वाक्जाल द्वारा सहज में ही अवगत कर लिया। ललितांग की बातों ने अनंग सुन्दरी को आश्चर्य में डाल दिया। चोरी करने की विधि, स्थान तथा साहस आदि को सुन कर वह मुग्ध हो गयी।

दूसरे दिन राजगृह का नृपति अपने परिवार सहित जल क्रीड़ा के लिये जा रहा था। रानी हाथी पर बैठकर राजा के साथ जा रही थी। उसके गले में ज्योतिप्रभा नामक नीलमणियों का हार चमक रहा था। जब वेश्या की दृष्टि रानी के गले के हार की ओर गयी तो वह उसे देखकर ललचा गयी और उसे पाने के लिये लालायित हो उठी। उसने मन में विचार किया कि मेरा पति अंजनचोर अपनी विद्या के बल से इस हार को लाने में सर्वथा समर्थ है, अतः

इसके प्राप्त करने में मुझे कुछ भी देर नहीं है। जब वह आयगा मैं नाज नखरे के साथ कहूंगी कि यदि आपका मेरे ऊपर सच्चा प्रेम है तो हार लाकर दीजिये। जब तक हार मेरे गले में नहीं पड़ेगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।

अंजनचोर जब ग्रामान्तर से लौट कर आया तो वेश्या ने कटाक्ष करते हुए कहा कि यह महिषी के गले का ज्योतिप्रभा नामक हार आप लाकर तुरन्त दीजिये, अन्यथा मैं अनशन कर अपने प्राण देदूंगी।

अंजनचोर—अरी पगली ! तुझे क्या मेरे प्राणों से मोह नहीं। इस हार का लाना मेरे लिये असंभव है, राजा के यहां कड़ा पहरा रहता है। पहरेदार रातभर जागते रहते हैं। चोरी के लिये जाते ही पकड़ा जाऊंगा और मुझे फांसी का दण्ड भोगना पड़ेगा। क्या तुम्हें मेरे जीवन की तनिक भी परवाह नहीं ? मैं दूसरी जगह से किसी सेठ साहूकार के यहां से इससे भी बढ़िया हार तुम्हारे लिये ला दूंगा। तुम्हें दुःख करने की आवश्यकता नहीं।

अंजनचोर की बातों को सुनकर वह अपना सिर पीटने लगी और एक छोटीसी खटिया पर पड़ कर स्त्रियोचित नखरे करने लगी। उसने भोजन, स्नान, जल आदि का त्याग कर दिया और ललितांग को खोटी खरी बातें सुनाने लगी। मैंने अपनी मां की बात न सुनकर तुम्हें पति चुना, पर तुम एक छोटे से काम से घबड़ाते हो। अब मैं जीवित रह कर क्या करूंगी।

वेश्या की इस फटकार को सुनकर अंजनचोर घबड़ा गया और उसके पैर पकड़ कर बोला—प्रिये चांदनी में विद्या का प्रयोग नहीं होता कृष्णपक्ष की अष्टमी आने दो अवश्य तुम्हें रानी का हार लाकर सौंप दूंगा। इस छोटी सी बात के लिये इतनी नाराज क्यों होरही हो। तुम्हारे लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूं। थोड़े दिन तक धैर्य धारण करिये। ललितांग की इस प्रार्थना को सुन कर भी वेश्या अपनी हठ से विरक्त नहीं हुई, अतः उसे उसी दिन आंख में अंजन लगाकर हार चुराने के लिये जाना पड़ा। विद्या के बल से छिपकर ज्योतिप्रभा हार को अपने हाथ में ले लिया।

ज्योतिप्रभा हार में लगी हुई मणियों का प्रकाश इतना अधिक था, जिससे वह हार छिप न सका। उस हार के प्रकाश की चकाचौंध ने कोतवाल के ध्यान को आकृष्ट किया और उसने हल्ला मचा दिया तथा प्रकाश की दिशा की ओर पकड़ने को दौड़ा। चांदनी रात के कारण अञ्जन गुटिका भी अपना पूरा प्रभाव नहीं दिखला सकी, जिससे कोतवाल उसके पीछे दौड़ने लगा। जब अंजनचोर ने कोतवाल को पीछे आते हुए देखा और अपनी विद्या को निरर्थक देखा तो हार को फेंक दिया तथा जी,तोड़ दौड़ने लगा। वह नगर की चहारदीवारी को लांघ कर श्मशान भूमि की

पहुँचा और ऊपर की ओर देखने
और बढ़ा । वहां पर वृक्ष के नीचे दीपक जलते हुए देखकर वह उस पेड़ के नीचे
लगा । वहां पर एक १०८ रस्सियों का सींका लटक रहा था, उसके नीचे अस्त्र, भाला, बर्छी, तलवार, फर्सा, मुगदर,
शूल, चक्र आदि २ प्रकार के अस्त्र गाढ़े गये थे । एक व्यक्ति वहां पूजा कर णमोकार मंत्र पढ़ता हुआ एक-एक
रस्सी काटता जाता था । प्रत्येक रस्सी काटने के बाद वह भय से नीचे की ओर देखता जाता था, क्योंकि अस्त्र पर
गिरने से मृत्यु होजाने का डर था । अञ्जनचोर ने उससे पूछा तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ?

वह बोला —मेरा नाम वारिसेण है । मैं गगन गामिनी विद्या को सिद्ध कर रहा हूं । मुझे यह मन्त्र जिनदत्त श्रेष्ठि से मिला है । अंजनचोर उसकी बातों को सुनकर हंसने लगा और बोला—तुम्हें सम्यत्वचूड़ामणि, गुणज्ञ जिनदत्त सेठ के वचनों पर विश्वास नहीं है । तुम डरते हो । मालूम होता है कि विद्यासिद्धि में तुम्हें शंका है ? इस प्रकार कह कर अंजनचोर विचारने लगा कि मुझे तो मरना ही है, जैसे भी मरूं ? अतः जिनदत्त सेठ के वचनों पर विश्वास कर मन्त्रोच्चारण करते हुए स्वर्ग जाना अच्छा है । कोतवाल यदि पकड़ लेगा तो फांसी हो ही जायगी, अतः नर्क जाने की अपेक्षा स्वर्ग जाना श्रेष्ठ है । दयानिधि जिनदत्त सेठ के वचन अन्यथा नहीं हो सकते हैं । जिनदत्त सेठ ने आज तक किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया है, अत्यन्त धर्मात्मा, ज्ञानी और विवेकी है । वह कभी भी झूठ नहीं बोल सकता है; अतःमुझे उसकी बातों पर विश्वास करना चाहिये । इतना विचार कर अंजनचोर ने वारिषेण से कहा-भई आपको मन्त्र पर विश्वास नहीं है तो आप इसे मुझे दे दें । मैं इसे सिद्ध कर लूंगा वारिषेण प्राणों के मोह में पड़ कर घवड़ा गया और जिनदत्त सेठ के द्वारा बतायी हुई विधि पूर्वक उस मन्त्र को अंजनचोर को दे दिया । अंजनचोर ने अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ उस मन्त्र को सुना और उसकी साधना करने लगा । उसने सबसे प्रथम जिनदत्त सेठ को निर्मल मन से प्रणाम किया और अटल विश्वास पूर्वक नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करने लगा ।

सींके पर चढ कर मन्त्रोच्चारण पूर्वक वह रस्सियां काटने लगा । उसके मन में अपूर्व साहस, दृढ़ता और धैर्य
उठा लिया और कहा तुम्हें क्या चाहिये ? मुझे आज्ञा दीजिये, मैं प्रस्तुत हूं ।
था । अन्तिम रस्सी के कटते ही जैसे ही वह अस्त्रों के ऊपर गिरने वाला था कि विद्या देवता ने आकर उसको ऊपर ही

ललितांग उर्फ अंजनचोर—मैं जिनदत्त सेठ के दर्शन करना चाहता हूं, मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये ।

जिनदत्त सेठ उस समय सुमेरु पर्वत पर स्थित नन्दन और भद्रशाल वन में जिनेन्द्र प्रभु की पूजा कर रहा था। अंजनचोर सुमेरु पर्वत पर स्थित इस चैत्यालय को देख कर आश्चर्य में पड़ गया। यहां पर नाना प्रकार के फूलों के गुच्छे अशोकवृक्ष, चन्दनवृक्ष आदि से युक्त वन सुशोभित था। फूलों के ऊपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे तथा नाना प्रकार के पक्षी चहचहा रहे थे। मलयानिल पुष्पों की सुगन्ध को लेकर वह रही थी। विद्याधर अपनी पत्नियों सहित विहार कर रहे थे। ललितांग इस वन के सुन्दर मनोहर प्राकृतिक दृश्यों को देख कर आनन्द पूर्वक विहार करता हुआ मुग्ध हो गया।

चैत्यालय में सब जगह स्फटिक मणियाँ लगी हुई थीं सोपान वज्र का बना हुआ था, दरवाजे में वैडूर्य मणियां जटित थीं। वज्र के किवाड़ और सूर्यकान्त मणि की चौखट बनायी गयी थी। पद्मराग मणियों के कलश, मरकत मणियों के तोरण और मोतियों की झालर लगी हुई थी तथा जिन बिम्ब माणिक्य और हीरे के थे।

जिस समय अंजनचोर ने उस मन्दिर में प्रवेश किया, उस समय जिनदत्त सेठ अष्टद्रव्यों से भगवान् जिनेन्द्र की पूजा कर रहा था। अंजनचोर जिनदत्त सेठ के चरणों में नमस्कार करने लगा। जिनदत्त सेठ उसे देखते ही विचारने लगा कि इस दुराचारी, पापी को आकाशगामिनी विद्या कैसे प्राप्त हो गयी।

सेठ—आपको यह आकाशगामिनी विद्या कैसे प्राप्त हो गयी ?

अंजनचोर—हे श्रेष्ठिवर्य ! आपकी कृपा का ही यह फल है। जो जिनेन्द्र भगवान् के वचनों पर अटूट श्रद्धा रखता है, संसार में उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। मैंने कुसंगति में पड़ कर नाना पाप किये, हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह इन पांचो पापों का सेवन किया; पर एक बार ही जिनेन्द्र प्रभु के वचनों का दृढ़ श्रद्धान करने से मुझ जैसे पापी को भी यह श्रेष्ठ विद्या प्राप्त हो गयी। जिनेन्द्र प्रभु अनन्त शक्तिधारी हैं, जो इनकी भक्ति करता है, उसका संसार से अवश्य उद्धार हो जाता है। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि जिनेन्द्र भगवान् ही सच्चे देव हैं, वे ही वीतरागी हितोपदेशी और सर्वज्ञ हैं मैंने आपके वचनों का विश्वास कर पञ्चनमस्कार मन्त्र की आराधना की जिससे मुझे यह आकाश गामिनी विद्या प्राप्त हुई है।

जिनदत्त सेठ ललितांग को दृढ़ करने के लिये एक कथा कहने लगा ——

जैनधर्म के आराधकों से परिपूर्ण बहुजन संकीर्ण भरतक्षेत्र में भूमितिलक नाम का एक नगर है। इस नगर में नरपाल नामक राजा राज्य करता था तथा सुन्दर नाम का राजसेठ अपनी स्त्री सुनन्दा सहित आनन्द से रहता था। इन दोनों के श्रीवर्मा, जयवर्मा, जिनवर्मा, जिनदत्त, जिनदास और धन्वन्तरि ये छः पुत्र थे। राजा के पुरोहित का नाम सोमशर्मा था। इसकी स्त्री यज्ञिले नाम की थी। इनको विश्वानुलोम नाम का पुत्र था। कर्मयोग से धन्वन्तरि और विश्वानुलोम में अत्यन्त वात्सल्य था। दोनों एक साथ ही भोजन-शयन करते थे। ये दोनों एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे।

दैवयोग से दोनों कुसंगति में पड़कर सप्त व्यसनों का सेवन करने लगे। राजपुरोहित और राजसेठ ने इन दोनों को दुष्कर्मों से रोकने के लिये पूरा प्रयत्न किया पर वे न माने। चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कृत्य करते रहे थे। इन दोनों ने राजा से अपने पुत्रों की शिकायत की। राजा ने दोनों को दण्ड दिया, परन्तु फिर भी उन दोनों ने अपने पाप कर्मों को छोड़ा नहीं।

एक दिन उन्होंने राजभण्डार में चोरी की। कोतवाल ने चोरी करते हुए उन्हें पकड़ा और राजा के पास उपस्थित किया। राजा ने कहा—तुम दोनों बड़े दुष्ट हो, जल्दी मेरे राज्य से निकल जाओ, अन्यथा तुम्हें फांसी पर लटकवा दूंगा। राजाज्ञा प्राप्त कर वे दोनों शहर छोड़कर अन्यत्र चले गये। मोह के कारण माता-पिता भी उनके साथ चले। कुछ दिन तक चलने के उपरान्त वे गजपुर में पहुँचे और वहां जाकर भी चोरी का कार्य करने लगे तथा थोड़े ही दिनों में चोरों के सरदार बन गये।

एक दिन विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि से कहा—भई! आप मेरी एक बात अवश्य स्वीकार कीजिये। आप आज से जैन साधुओं के पास न जाइये तथा जैन मन्दिर में भी मत जाइये। आप भूमितिलक नगर में सदा जैन मन्दिर के दर्शन करते थे, जैन साधुओं के उपदेश सुनते थे; किन्तु अब आपको सब छोड़ना पड़ेगा। इनके साथ रहने से हमारे भोग-विलास में बाधा आती है। अतएव आज से आप को मेरी बात मानकर जैन मन्दिर जाना बन्द करना होगा।

धन्वन्तरि—भई बिगड़ते क्यों हो आज से आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

वार्तालाप के कुछ दिन बाद दोनों मित्र कहीं जा रहे थे कि कुछ दूर जाने पर प्यास लगी। वे दोनों जंगल में जल की तलाश करने लगे, इतने में एक जंगली हाथी उनके पीछे दौड़ा। दोनों भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। इसी बीच आकाश में बादल छा गये, पानी बर्षने लगा। पानी बन्द होने पर सन्ध्या समय दोनों वहां से चले किन्तु नगर का फाटक बन्द हो जाने से उन्हें वापस आना पड़ा और वे एक जैन मन्दिर में ठहर गये। सौभाग्य से उस दिन उस मन्दिर में वरधर्म नाम के मुनिराज भी वहां विद्यमान थे। प्रातःकाल भक्तिपाठ के अनन्तर श्रावकों को उपदेश दे रहे थे। उन दोनों ने विचारा कि इनका उपदेश कहीं हमारे कान में न पड़ जाय; अतः उन्होंने अपने कान बन्द कर लिये। अचानक धन्वन्तरि के कान से रुई निकल गयी और उसके कान में मुनिराज जी का उपदेशामृत जाने लगा। वह मुनिराज के पास चला आया और नमस्कार कर उनका उपदेश सुनने लगा। उपदेश सुनकर धन्वन्तरि बहुत प्रभावित हुआ और उसने मुनिराज से व्रत की याचना की। उसकी प्रार्थना सुनकर मुनिराज बोले—तुम कौनसा व्रत लेना चाहते हो ?

धन्वन्तरि—महाराज मुझे कोई ऐसा व्रत दीजिये, जिसका मैं निर्वाह कर सकूं।

मुनिराज—तुम प्रतिदिन घुटे सिर व्यक्ति का दर्शन कर भोजन करना।

धन्वन्तरि इस नियम को सहर्ष स्वीकार कर अपने साथी के पास आकर सो गया। घर आने पर अपने नियम का दृढ़ता पूर्वक पालन करने लगा। एक दिन शीघ्रतावश वह घुटे सिरवाले व्यक्ति के दर्शन किये बिना भोजन करने लगा। बीच में उसे अपने नियम की याद आ गई; अतः वह भोजन छोड़कर अपने नियम को पूरा करने के लिये चला। उसके पडोस में कुम्हार ने उसी दिन सिर घुटवाया था, किंतु वह वर्तन बनाने के लिये मिट्टी लेने बाहर गया हुआ था। धन्वन्तरि जब कुम्हार के यहां पहुँचा और उसे घर में न पाया तो जिधर कुम्हार मिट्टी लेने के लिये गया था, वह भी उधर की ओर चला। जब कुम्हार के पास वह पहुँचा तो उसने कुम्हार को घबड़ाया हुआ देखा। कुम्हार ने समझा—इसने मुझे खदान से धन निकालते हुए देख लिया है, अतः आधा हिस्सा इसको भी देना चाहिये, अन्यथा यह राजा से जाकर कह देगा तो राजा सभी धन लेलेगा। इस प्रकार विचार कर कुम्हार धन्वन्तरि के पीछे धन का हण्डा लेकर चला। धन्वंतरि दर्शन कर सीधा अपने घर की ओर तेजी से चलने लगा। धन्वंतरि आगे चला जा रहा था और कुम्हार स्वर्ण मुद्राओं से भरे हण्डे को लेकर उसके पीछे दौड़ने लगा तथा धन्वंतरि को

पाप दूर करने के लिये कुछ उपाय बतलाइये । जिनदीक्षा से बढ़कर आत्मकल्याणकारी अन्य कोई साधन नहीं है, अतः आप मुझे दिगम्बर दीक्षा दीजिये ।

मुनिराज— वत्स ! तपश्चर्या बड़ी कठिन वस्तु है । यह असिधारा व्रत है, तुम अभी इसके योग्य नहीं हो, अतः घर में रहकर ही श्रावकधर्म का पालन करो

धन्वन्तरि को मुनिराज के वचनों से संतोष नहीं हुआ, परन्तु गुरु आज्ञा मान कर घर चला आया । दो-चार दिन रह कर उसने श्रावकधर्म का पालन किया परन्तु इसके मन में बड़ा भारी संघर्ष था । अंत में उसने निश्चय किया कि जैसे भी हो दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करूंगा । यही एक मात्र मनुष्य का उद्धार करनेवाली है । इस प्रकार विचार-विनिमय कर वह अपनी माता को समझा गया कि तुम विश्वानुलोम को मेरे पास भेज देना । वह धरणीभूषण पर्वत पर गया और वहां श्रीधर्म मुनिराज से दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली ।

जब विश्वानुलोम धन्वन्तरि के घर आया और उसे यह समाचार मिला कि धन्वन्तरि ने दीक्षा ग्रहण करली है, तो उसने निश्चय किया कि जो मित्र की दशा हुई है, वही मेरी होगी । मैं अब दीक्षा ग्रहण कर अपना कल्याण करूंगा । तस्कर वृत्ति करते—करते मेरी आत्मा निष्ठुर हो गई है, अतः अब अंतिम समय में मुझे कल्याण करना चाहिये ।

विश्वानुलोम जिस समय धन्वन्तरि के पास पहुँचा, धन्वन्तरि उस समय सूर्य प्रतिमा धारण किये था, जिससे वह मौन हो खड्गासन लगाये ध्यानस्थ था । विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि से बात-चीत करने का प्रयास किया किन्तु मौन होने के कारण धन्वन्तरि कुछ नहीं बोला जिससे विश्वानुलोम को क्रोध आ गया और सहस्र जटी मिथ्यात्वी तापसी से दीक्षा ग्रहण करली । दूसरे दिन धन्वन्तरि विश्वानुलोम के पास आया और बात करने लगा । विश्वानुलोम ने सोचा कल मैं कितना चिल्लाया पर इसने बात भी नहीं कि, आज मैं इससे क्यों बोलूं । विश्वानुलोम की इस क्रिया को देख धन्वंतरि कहने लगा—हे मित्र ! आपकी यह तपस्या आत्म कल्याण से दूर ले जानेवाली है, इससे आप इहलौकिक कीर्त्ति के सिवा और कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं । इस मानव पर्याय को प्राप्त कर आत्म कल्याण करना चाहिये । अज्ञानता के समान संसार में कोई भी दुःखदाई नहीं है । जिस पाप पंक से बचने के लिये तुम तपस्या कर रहे हो,

धन्वंतरि — महाराज ! आपके द्वारा दिये गये व्रत ने मेरा परम कल्याण किया है । कृपया अन्य सुलभ व्रत दीजिये ।

मुनिराज — वत्स ! तुम किसी पर क्रोध करो और मारो तो सात कदम पीछे हटकर अपना कार्य करना ।

धन्वन्तरि—एवमस्तु ।

कुछ दिन तक घर में रहने के उपरांत दोनों मित्र अपने अनेक साथियों के साथ कलिंग देश की ओर चोरी करने के लिये गये और छः महीने तक वहीं रहते रहे; पश्चात् घर को लौटे । धन्वन्तरि घर से आते समय अपनी स्त्री को गर्भवती छोड़ आया था अतः उसके लिये विशेष रूप में चिंता करने लगा । लौटते समय वह गजपुर में कुछ दिनों तक रहा और वहां पूजा के उत्सव को देखने के अनन्तर घर गया । एक ही चार पाई पर अपनी स्त्री और मां को सोते पाया । मां किसी नाटकमें गयी थी अतः पुरुषकी पोशाक पहनेही सो गई, जिससे धन्वन्तरीको अपनी स्त्रीके आचरण के ऊपर संदेह हो गया । उसने समझा कि मेरी स्त्री किसी पर पुरुष के पास सो रही है, अतः मारने के लिए तलवार खींच ली; परन्तु मुनिराज के द्वारा दिये गये व्रत का स्मरण कर वह सात कदम पीछे को हट गया । इतने में उसकी स्त्री ने अपनी सास से कहा—ज़रा आगे को हटिये, गर्मी लग रही है आप तो मर्दाने कपड़े ही पहने सो गयीं, नींद नहीं आ रही है । स्त्री की इस आवाज को सुनकर वह भौंचक्का रह गया और तलवार म्यान में रखली और विचारने लगा कि आज इस पांचवें व्रत ने मेरा सर्वस्व बचा दिया । आज मुझ से महान् अनर्थ होता, मां की हत्या करता, गर्भिणी स्त्री को मारता जिससे दो जीवों की हत्या होती और मेरा पूरा घर ही उजड़ जाता । धन्य हो दिगम्बर साधु जिनके इन तुच्छ व्रतों ने मेरा कितना उपकार किया । अब मुझे आत्म कल्याण करनेवाले व्रत ग्रहण करना चाहिये । व्यसनों में पड़ कर मैंने अपनी आत्मा का कितना अपकार किया । लोकपरलोक सब कुछ बिगाड़ा, जघन्य से जघन्य कृत्य किया मेरे समान संसार में कोई भी पापी नहीं होगा, हाय ! ऐसे परोपकारी दिगम्बर साधु को प्राप्त कर भी मैंने अपना उद्धार नहीं किया । मुझ से नीच संसार में कोई नहीं होगा । इस प्रकार आत्मालोचना करता हुआ धन्वन्तरि आत्मविभोर हो गया । उसने समस्त धन दान में लगा दिया तथा स्त्री और माताके रहने का पूरा प्रबंध कर अपने कल्याण के लिये मुनिराज के चरणों में आया और हाथ जोड़कर कहने लगा — हे प्रभो ! अब मैं अपने स्वरूप को समझ गया हूं, आप

ठहरने के लिये पुकारने लगा ।

धन्वंतरि अपने कार्य की शीघ्रता के कारण कुम्हार के द्वारा रोके जाने पर भी नहीं रुका और अपने घर पहुँच गया । कुम्हार ने जाकर स्वर्ण मुद्राओं का ढेर उसके सामने लगा दिया और हाथ जोड़कर कहने लगा—हे प्रभो ! आप इन स्वर्ण मुद्राओं को ग्रहण कीजिये; मैंने इन्हें उसी खदान में मिट्टी खोदते समय पाया है । आप इस धन के मालिक हैं, जैसा समझें, करें ।

कुम्हार के इन वचनों को सुनकर धन्वंतरि को मुनिराज के वचनों का स्मरण आ गया और विचारने लगा कि एक छोटे से नियम के ग्रहण करने से इतनी विशाल धनराशि की प्राप्ति हुई है । यदि मैं मुनिराज के पास जाकर अन्य कोई व्रत ग्रहण करूं तो निश्चय ही मालामाल हो जाऊंगा । इस तरह ऊहा पोहाकर कुम्हार को आधा धन दे वरधर्म मुनिराज के पास आया और महाराज से अन्य कल्याणकारक व्रत की याचना की ।

सोच-विचार कर मुनिराज बोले—हे वत्स ! अजान फल का भक्षण करना छोड़ दो ।

धन्वंतरि ने सहर्ष नमस्कार कर व्रत ग्रहण कर लिया । कुछ दिनों के उपरान्त धन्वंतरि और विश्वानुलोम विदेश से बहुत सा धन चुराकर आये और एक बड़े मैदान में बैठकर बटवारा करने लगे । कई दिनों से भोजन न मिलने के कारण ये लोग बहुत भूखे थे तथा पास में रुपये, पैसे सिक्के नहीं थे, सिर्फ स्वर्ण, चांदी और जवाहरात ही थीं । अतः बाजार से भोज्य पदार्थ न ला सकने के कारण इन्होंने जंगल में से ही लालवर्ण के कुछ अजनवी फलों को तोड़ा और सभी लोगों के साथ खाने के लिये बैठे ।

धन्वन्तरि—अरे ! इन फलों का नाम बताओ ? जब तक इनका नाम नहीं मालूम होगा, मैं इन्हें नहीं खाऊंगा । मैंने अजान फल न भक्षण करने की प्रतिज्ञा की है । उसने अपने प्रत्येक साथी से उन फलों का नाम पूछा परन्तु कोई भी नहीं बता सका । अतः उसने अपने घनिष्ट मित्र बिश्वानुलोम से पुनः कहा—मैं किसी भी अवस्था में इन फलों को ग्रहण नहीं करूंगा ।

विश्वानुलोम—भई ! अब हमारा तुम्हारे साथ निर्वाह नहीं हो सकेगा । तुम स्वयं भूखे रहते हो और हम लोगों को भी भूखे रखते हो । तुम्हारे विना खाये मैं कभी भी नहीं खा सकता हूं । तुम दिगम्बर जैन साधुओं के बहकाने से ढोंग में पड़ गये हो । तुम नहीं जानते, ये लोग जादूगर होते हैं । जो इनके पास जाता है, अवश्य प्रभावित हो

जाता है। मैं तो तुम से पहले ही मने करते रहता था कि इनके पास मत जाओ, इनका उपदेश मत सुनो, पर तुमने मेरी बात नहीं सुनी। आज कई दिनों से तुम्हारे ही कारण मैं भूखा हूं। यदि तुम हठ छोड़ देते तो पूर्व के अरण्य में ही फल खाकर हम अपनी क्षुधा को दूर करते। अच्छा तुम मत खाओ, मैं भी नहीं खाता हूं, पर इन विचारे साथियों को भूखे क्यों मारते हो ? अरे भाईयो ! तुम यथेष्ट फल खाकर अपनी क्षुधा को शान्त करो।

विश्वानुलोम के निदेशानुसार अन्य साथियों ने फल खाये और वे सदा के लिये निद्रा देवी की गोद में सो, अपने पाप से छुटकारा प्राप्त किये। बात यह थी कि वे सभी फल विषफल थे, अतः खाते ही उनके साथियों के प्राण पखेरू उड़ गये धन्वन्तरि इस दृश्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और घर पहुँच कर पुनः वरधर्म मुनिराज के पास गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—स्वामिन् ! आपके दिये हुए व्रत ने मेरे प्राणों की रक्षा की है, अतः अब कोई आसान दूसरा व्रत दे दीजिये।

मुनिराज—वत्स ! बलिदान के लिये आटे का बकरा या अन्य पशु बनाकर लोग रास्ते में चौराहे पर छोड़ देते हैं, तुम उसको न खाने का नियम लो।

धन्वन्तरि—महाराज ! आपका व्रत स्वीकार है, आप सच्चे गुरु हैं। चोरी करना मुझे अत्यन्त प्रिय है, आप इसीलिये इसे छोड़ने को नहीं कह रहे हैं।

धन्वन्तरि की बातों को सुनकर महाराज मुस्कुराये और सोचने लगे कि इस शिष्य का कल्याण अवश्य होगा अब इसके उद्धार का समय निकट आ रहा है। त्याग के समान सुखकर अन्य कुछ नहीं है, परन्तु सदा शक्ति के अनुसार ही त्याग करना या करवाना चाहिये। जो अपनी शक्ति का विचार किये बिना व्रत नियम ग्रहण कर लेते हैं, वे प्रायः असफल रहते हैं। यदि इस धन्वन्तरि को मैं एक दिन ही सप्तव्यसन का त्याग कराता तो यह कभी भी नहीं करता। अब निश्चय ही यह धर्म को धारण करेगा।

धन्वन्तरि घर जाकर पुनः चोरी के व्यवसाय को अपने मित्र के साथ पूर्ववत् करने लगा। एक दिन धन्वन्तरि और विश्वानुलोम भूखे-प्यासे चले आ रहे थे। रास्ते में एक स्थान पर धरणेन्द्र का मन्दिर मिला। वहां पर कमलों से परिपूर्ण एक सरोवर था, उसके किनारे आटे के बैलों को कोई बलिदान कर रख गया था। विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि

से कहा—भाई ! यह आटा यहां मिल ही गया है, पानी यहां पर है ही अतः यहीं हमलोगों को भोजन कर लेना चाहिये अब भूख के मारे एक कदम भी आगे नहीं चला जाता है ।

धन्वन्तरि—मेरा व्रत है कि बलिदान के लिये बनाये गये आटे के पशु को काम में न लेना; अतः मुझे भूखा मरना पसन्द है, परन्तु इस बलिदान के अन्न को खाना नहीं । मुझे तो यह आटे का पुतला विषमय प्रतीत हो रहा है । गुरु के वचनों पर मेरा अटल विश्वास है । यद्यपि भूख के मारे मेरे भी प्राण निकल रहे हैं,परन्तु व्रतको मैं नही तोड़ूंगा ।

धन्वन्तरि के न खाने से विश्वनुलोम को भी भूखे ही रह जाना पड़ा; परन्तु उनके अन्य साथियों ने उस आटे के पुतले की रोटियां बनाकर खालीं । भोजन के उपरान्त सभी भोजन करनेवाले साथी मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए । बात यह हुई थी एक सांप उस पुतले को विषैला कर गया था, जिससे उन विषैली रोटियों के खाने से वे मृत्यु के शिकार हुए । साथियों की मृत्यु देखकर वे दोनों आश्चर्य में पड़ गये और चोरी के धन को आपस में बांटकर घर ले गये ।

धन्वन्तरि अपने व्रत की सचाई देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि गुरु के पास जाकर अब और कोई व्रत लेना चाहिये । ये दिगम्बर साधु बड़े ही हितकारी हैं, इनके ही कारण मेरे प्राणों की रक्षा दो बार हुई है । ये संसार से बिल्कुल विरक्त हैं, इनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं । नग्न रहकर भूख, प्यास, गर्मी, वर्षा, जाड़ा, आदि के कष्ट को शान्ति और धैर्यपूर्वक सहन करते हैं । किसी से कुछ भी नहीं लेते, मैंने उस दिन इन्हें सौ स्वर्ण मुद्राएं दीं, परन्तु इन्होंने एक भी न ली । संसार के सब से बड़े हितैषी यही हैं । कोई गाली दे तो भी नाराज नहीं होते । विश्वानुलोम ने उस दिन एक हजार गालियां इनको दी होंगी, पर एक शब्द भी इन्होने मुंह से नहीं निकाला । मेरे एक साथी ने जब ढेले से मारा था, तब भी यह हंसते ही रहे, उस ढेले के दुःख की तनिक भी परवाह नहीं की । परसों जब हम उस रास्ते से जा रहे थे, तो हमने देखा था कि इतनी कड़ाके की सर्दी में भी ये अपने ध्यान में संलग्न थे । अब तो मुझे निश्चय हो गया है कि दिगम्बर साधु ही सच्चे हैं । ढोंगियों के पास कभी नहीं जाना चाहिये, वास्तव में मेरी आदत इन पाखण्डी साधुओं ने ही खराब की है । शराब पीने का मुझे बिल्कुल अभ्यास नहीं था, मुझे शराब देखते ही कप-कपी होती थी; पर धीरे-धीरे पाखण्डी साधुओं ने मुझे शराब की आदत डाल दी यदि उस समय ये दिगम्बर

साधु मिल गये होते, तो निश्चय मेरा जीवन इस नरक से बच जाता। अब पछताने से क्या होता है, मेरी आदतें इतनी पुरानी हो गई हैं कि मैं इन्हें छोड़ने में मजबूर हूं। इस प्रकार विचार-सागर में डुबकियां लगाता हुआ धन्वंतरि वनमें मुनिराज के पास गया और बोला–प्रभो ! आपके व्रत ने मेरी प्राण रक्षा की है, कृपया और कोई सुलभ व्रत दीजिये।

मुनिराज—वत्स ! प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को मांस खाने और मदिरापान करने का त्याग कर दो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

वह व्रत स्वीकार कर घर आया और विश्वानुलोम को बुलाकर चोरी के लिये विदेश गमन किया। अब की बार अपार धनराशि चोरी में उपलब्ध हुई। दोनों साथी अनेक अनुचरों के साथ लौटे तो धन का बंटवारा करने के लिये डेरा डाल दिया। आमोद–प्रमोद करने के लिये अपने दो अनुचरों को बढ़िया शराब लेने और दो को मांस लेने नगर में भेजा। जो व्यक्ति शराब लेने गये थे वे सोचने लगे कि ये दोनों सरदार तो आधे से ज्यादा धन ले लेते हैं, हमलोगों को बहुत कम हिस्सा देते हैं। यदि इस शराब में हमलोग विष मिलाकर ले चलें, तो सरदार तथा इनके अन्य साथी शराब पीते ही यमलोक पहुँच जायेंगे और सारा धन हमें मिल जायगा, जिससे हम अपनी जीवन भर की गरीबी को दूर कर सकेंगे ! इस प्रकार विचार कर विष खरीदा और शराब में मिला दिया !

जो व्यक्ति मांस लेने गये थे, उनके मन में भी यह लोभ-पाप घुसा और उन्होंने भी मांस में विष मिला दिया जब नगर से शराब और मांस आ गया तो विश्वानुलोम बोला—भाई धन्वन्तरि ! इस भोज्य को ग्रहण करो !

धन्वन्तरि—आज चतुर्दशी होने से मैं मदिरा और मांस नहीं ग्रहण करूंगा। विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि को बहुत समझाया, पर वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। उनके सभी साथियों ने विषैली शराब और मांस ग्रहण किये, जिससे वे एक-एक कर मृत्यु के मुख में चले गये। केवल धन्वन्तरि और विश्वानुलोम दोनों बच गये। धन्वन्तरि ने इस आश्चर्यमय घटना को देखकर विश्वानुलोम से कहा—देखा, गुरु वचन का प्रभाव, तीन वार हमारे प्राणों की रक्षा गुरु वचनों से हुई है। देखो ! तुमने उस दिन मुनिराज को कितनी गालियां दी थी, अब उनकी महत्ता को समझो।

धन का बंटवारा कर दोनों घर आये। धन्वन्तरि को शान्ति नहीं मिली, अतः वह मुनिराज के पास गया।

मुनिराज—वत्स ! किस लिये आये हो ?

उसी पाप पंक में लिप्त होने का प्रयास आप क्यों करते हैं ? इस प्रकार समझाकर धन्वन्तरि अपने स्थान पर लौट आया और उग्रतर तपस्या कर समाधिमरण किया, जिससे मरकर अच्युत स्वर्ग में मितप्रभ नाम का अहमिन्द्र देव हुआ ।

धन्वन्तरि के जीव मितप्रभ देव ने नंदीश्वरी द्वीप में विश्वानुलोम के जीव को व्यंतर हुआ देखकर महान् आश्चर्य किया और कहने लगा—तुमने खोटी तपस्या की थी, मैंने तुमको कितना समझाया पर तुम नहीं माने, इसीका फल व्यंतर होना तुम्हें मिला है, तुम स्वयं परीक्षा करके देख लो कि किसकी तपस्या अच्छी है । चलो, अपने-अपने गुरुओं की परीक्षा करें—

वे दोनों चल कर करा‍ट देश के पश्चिम भाग में चन्द्रिकारण्य में रहने वाले जमदग्नि जटाधारी तपस्वी की परीक्षा करने के लिये आये । जमदग्नि उग्र तपस्या में लीन था, आपाद मस्तक लताएं उसे वेष्टित किये हुए थीं, वह सिर पर पत्थर लिए तपस्या में लीन था उसकी इस तपस्या को देखकर अच्युतेन्द्र बोला—मूर्ख की बात, आकाश की छाया और अज्ञानपूर्वक तप कभी शाश्वत नहीं होते । इस प्रकार कह कर उसकी परीक्षा के लिए उसने अपनी विक्रिया के द्वारा दो पक्षियों को उत्पन्न किया और उनका घोंसला उनकी दाढ़ी में बना दिया । कुछ समय के बाद एक तीसरा पक्षी आया और उनसे बोला—मेरु गिरि के पास मेरी बहन की शादी है, अतः आप चलिये । नर पक्षी जब निमंत्रण को स्वीकार कर जाने लगा तो मादा बोली—मैं गर्भिणी हूं, अकेली नहीं रहूंगी । मालूम होता है कि तुम वहां दूसरी शादी कर अपने को सुखी बनाना चाहते हो, इसी कारण तुम मुझे यहीं छोड़कर जाते हो । मैं यह कहे देती है कि यदि तुमने मेरा जी दुखाकर दूसरा विवाह कर लिया तो तुम्हारी वही गति होगी जो मरने पर इस तपस्वी की ।

मादा पक्षी की इस बातको सुनकर जमदग्नि ऋषि को क्रोध आ गया और दोनों पक्षियों को हाथ में लेकर फेंक दिया । क्रोध शांत होनेपर वह ऋषि पश्चात्ताप करने लगा, अतः उनको नमस्कार कर बोला—हे पक्षियों ! बताओ मेरी कौन-सी गति होगी ? तुम लोग मेरी नीच गति क्यों कह रहे हो ? पक्षी बोले—'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' तुमने बिना पुत्र उत्पन्न किये तपस्या की है अतः तुम्हारी अच्छी गति नहीं होगी । पक्षियों के इन वचनों को सुनकर ऋषि बहुत प्रभावित हुआ और उनकी प्रदक्षिणा देकर कहने लगा—आपने मेरा बड़ा उपकार किया है, आज आपने मुझे

सच्चा ज्ञान दिया। मैं अबतक बड़े अन्धेरे में था। हाय! मुझ मूढ़ को यह छोटी-सी बात भी याद न आई। इस प्रकार स्तुति कर घर आया और अपने मामा की पुत्री से विवाह कर आनन्द से विषय भोगने लगा।

अच्युतेन्द्र व्यन्तर की ओर देखकर कहने लगा—देखो! तुम्हारा इतना बड़ा गुरु भी एक छोटी सी बात से चलायमान हो गया। मिथ्या तपस्या का प्रभाव ऐसा ही क्षणिक होता है, यह प्रारम्भ में भले ही चमत्कारपूर्ण मालूम हो, पर पीछे निष्फल सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकती। दिगम्बर साधुओं की परीक्षा तुम पीछे करना, पहले जैन गृहस्थ की ही परीक्षा करके देख लो। आत्मा की प्रतीति हो जाने पर—सम्यग्दर्शन हो जाने पर कोई भी धर्म से च्युत नहीं हो सकता है। यदि तुम सम्यग्दृष्टि श्रावक को ही अपने व्रत से च्युत कर दो, तो मैं तुम्हें बड़ा भारी ज्ञानी समझूं।

रात को एक श्रावक प्रतिमा योग किये श्मशान भूमि में तपस्या कर रहा था। अच्युतेन्द्र ने कहा आप इसकी परीक्षा कीजिये। व्यन्तरदेव ने क्रोधित हो बिजली तैयार की, जोर से हवा चलायी, जिससे बड़े-बड़े पौधे भी उखड़ गये सिंह, व्याघ्र उत्पन्न किये जो दहाड़ने और चिंघाड़ने लगे। श्रावक के चारों ओर अग्नि जलने लगी, मदोन्मत्त हाथियों का समुदाय उपद्रव करने लगा, राक्षसों का समुदाय चिल्लाने लगा कि इसे मारो, काटो, चूर-चूर कर डालो की आवाज गूंजने लगी इतना ही नही उस व्यन्तरों ने उसको मिट्टी के ढेले के समान फेंकना शुरु किया नाना प्रकार के कष्ट दिये; किंतु वह धीर श्रावक इन नाना प्रकार के उपसर्गों से विचलित न हुआ। इसके अनन्तर व्यन्तर ने देव, शास्त्र, गुरु का विक्रिया द्वारा अपमान किया, तथा उसकी स्त्री, पुत्र, माता की हत्याएं की, किंतु वह साधक ज्यों का त्यों ध्यान में अडिग रहा। व्यन्तर उसके अद्भुत धैर्य और तेज को देखकर नत हो गया और उसके चरणों में गिर, अपने कृत्यों की क्षमा मांगने लगा तथा स्वयं उसने मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण किया।

इस प्रकार सेठ अंजनचोर से कथा कहकर बोला कि जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने से सारी विभूतियां प्राप्त होती हैं। गगनगामिनी विद्या तुम्हें प्रभु-भक्ति के प्रसाद से ही प्राप्त हुई है। अंजनचोर विचारने लगा कि मैंने सप्तव्यसन में अपना सब कुछ खो दिया, धूर्तों की संगति से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। अतः अब मुझे जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में ही शान्ति मिल सकती हैं। विश्वानुलोम और धन्वन्तरि जैसे व्यसनो जीवों का कल्याण इस पवित्र धर्म के धारण करते हो गया तो फिर मेरा कल्याण क्यों नहीं इस धर्म के धारण करने से होगा? इस प्रकार आत्मालोचना करता हुआ देवर्षि नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि के पास गया और उनसे दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की, पंच मुट्ठी लौंच

किया और २८ मूल गुणों का पालन करने लगा। कुछ दिन तक तपस्या करने के उपरान्त उसे चारण ऋद्धि प्राप्त हुई। कैलाश पर्वत पर द्वादश प्रकार के तपों को करते हुए उसने घातियों कर्मों को नष्ट किया, पश्चात् मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियों को नाशकर परम पद को प्राप्त हुआ।

जो जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में दृढ़ विश्वास रखता है, वही अविनाशी सुखों को प्राप्त होता है। इस प्रकार गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक से निःशंकित अंग की कथा कही ! जो व्यक्ति निःशंक हो पारस पत्थर के समान निर्मल धर्म से मिथ्यात्वरूपी लोहे को स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है, वह धन्य है।

द्वितीय कथा सम्पूर्ण



तीसरी कथा

निःशंकित अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति में दृढ़ हो गौतम गणधर से निःशंकित अंग की कथा कहने के लिये प्रार्थना करने लगा। गौतम गणधर समस्त सुखों की खान निःकांक्षित अंग की कथा कहने लगे।

अगणित कमलों से परिपूर्ण तालाबों से सुशोभित; कुबेर के समान धनिकों से पूर्ण, सरस्वती के अवतार विद्वानों से युक्त अंगदेश इसी भूमि पर शोभित है। इस देश में मोती और पद्मराग मणियों से युक्त उन्नत शिखरबद्ध जिनचैत्यालयों के द्वारा समस्त पाप को दूर करने वाली चम्पापुरी नाम की नगरी है। इस नगरी में जिनागमरूपी समुद्र का पारगामी श्रेष्ठवणिक वंश में उत्पन्न प्रियदत्त नाम का सेठ था, इसको अनन्त रूप-लावण्यवाली अंगमति नाम की भार्या थी। इन दोनों के गुणवती होनहार अनन्तमती नाम की कन्या थी। यह कन्या अपने रूप और गुणों से सभी के चित्त को प्रसन्न करती थी। इसका बाल्यकाल समवयस्क बच्चों के साथ क्रीड़ा करते हुए बीतने लगा।

एक दिन यह अपनी सहेलियों के साथ गुड्डा गुड़ियों के विवाह का खेल खेल रही थी। इसने गुड़िया और गुड्डा को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाया, दोनों के मस्तक में कुंकुम का तिलक लगाया, सोने का हार पहनाया, गले में सुगन्धित पुष्प और मुक्ताओं से हार तैयार कर पहनाये। कई चन्द्रमुखी बालिकाएं बाजा बजाती हुई, बाजेवालों की नकल कर रही थी। इस प्रकार बालिकाओं की बारात का दृश्य बड़ा ही भव्य और चित्ताकर्षक मालूम हो रहा था। उपस्थित सभी कन्याएं आनन्द विभोर हो लोट-पोट हो रही थीं। इस समय प्रियदत्त सेठ श्री जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के लिये उसी रास्ते से जा रहे थे, जहां बालिकाएं क्रीड़ारत थीं।

प्रियदत्त सेठ ने अपनी प्यारी पुत्री को गोद में उठा लिया और प्यार करते हुए कहा तुम मुझसे छिपाकर विवाह कर रही हो? तुमने वास्तविक बाजे नहीं बुलाये, अतिथियोंको नहीं बुलाया, ज्योनारका प्रबन्ध नहीं किया। यदि तुम पहले से ही मुझ से कह देतीं तो मैं सारा प्रबन्ध कर देता। इस प्रकार अनन्तमती को प्यार की बातें कहकर प्रियदत्त अपने साथ जिनालय में लाया। भगवान् की पूजा-भक्ति करने के अनन्तर उन्होंने मुनिराज के दर्शन किये

तथा मुनिश्री से सद्धर्म का उपदेश देने की प्रार्थना की । श्रद्धापूर्वक उपदेश श्रवणकर नित्यव्रत[१] ग्रहण किये । जाते समय सेठ ने महाराज से प्रार्थना की—प्रभो ! मेरी इस होनहार पुत्री को ब्रह्मचर्यव्रत दे दीजिये । मैं विवाह पूर्ण वयस्क होनेपर करूंगा । मेरे साथ पर्व पर्यन्त यह भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेगी ।

वरदत्त मुनिराज ने हंसकर कहा—पुत्री ! तुम्हें ब्रह्मचर्यव्रत दे रहा हूं, स्वीकार करो ।

अनन्तमती नमोऽस्तु कर—गुरु के वचन अंगीकार हैं । आज से मैं गुड्डा-गुड़ियों का विवाह करना छोड़ती हूं ।

यह व्रत लेकर अनन्तमती बहुत प्रसन्न हुई । जिस प्रकार दरिद्री राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कर, अन्धा दोनों नेत्र पाकर, कुंऐ में गिरा हुआ उसके बाहर आ जाने पर एवं रोगी व्यक्ति बिना औषध के अच्छा हो जाने पर आनन्दित होता है, उसी प्रकार उपर्युक्त व्रत ग्रहण कर अनन्तमती को अपार हर्ष हुआ । वह सोचने लगी कि व्रत ही संसार की पाप कालिमा को दूर कर सुख और शान्ति प्रदान करता है । जीवन में सदाचार का श्री गणेश व्रतों के द्वारा ही होता है ।

वृक्षों के समुदाय में जैसे चन्दन वृक्ष, पुष्पों में कमल, सांसारिक वैभव में स्वर्गिक विभूति, पृथ्वी के राजाओं में चक्रवर्ती श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार समस्त देवों में वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी जिन भगवान् ही श्रेष्ठ हैं । जिनके पूर्वभव का पुण्य बलवान है, उन्हीं के कुलदेव जिनेन्द्र प्रभु हो सकते हैं । दयालु और स्नेहशील रूपवती स्त्री, विश्वासी नौकर, राजा की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करने वाला देश, कुल के अनुसार शील के साथ निर्वेग—विरक्ति, व्रत के साथ तप, तप के साथ ऐश्वर्य, जीवन के साथ श्रद्धा, श्रद्धा के साथ शक्ति, शक्ति के साथ भक्ति, भक्ति से साथ दान, दान के साथ धन, धन के साथ उदारता, सम्यग्दर्शन, व्रत आदि का मिलना संसार में दुर्लभ है । इस ससार से पार करने वाला सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन के बिना इस मनुष्य पर्याय का प्राप्त करना निरर्थक है । धर्म का सार सम्यग्दर्शन ही है, जब तक आत्मा के प्रति श्रद्धा नहीं, लोक परलोक में विश्वास नहीं, तब तक व्यक्ति को शान्ति नहीं मिल सकती । संसार के भोग जीवन में सुख और शान्ति नहीं ला सकते । भोगों से विरक्त हो जाने पर ही शान्ति का अनु-

१—प्रतिदिन गुरु के पास मर्यादा पूर्वक जो व्रत ग्रहण किये जाते हैं, वे नित्यव्रत कहलाते हैं । प्रायः इन इन व्रतों में एक अहोरात्र–२४ घंटे का ही नियम लिया जाता है ,

भव होता है। जो व्यक्ति भोगों का कीड़ा बना रहता है, एक दिन उस व्यक्ति को भी यथार्थता का अनुभव हो जाता है और वह भी इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि जीवन में सुख और शान्ति, सन्तोष और त्याग में ही है।

बाल्यावस्था में सम्यग्दर्शन के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का प्राप्त हो जाना, मेरे लिये परम गौरव की बात है। सांसारिक विषय देखने में सुन्दर पर भीतर से अत्यन्त भयावने हैं। ये विषय सबसे प्रथम मनुष्य की बुद्धि को बिगाड़ते हैं, जिससे विषयी जीव को इन्हीं में आनंद प्रतीत होता है। जिस प्रकार तालाब के पानी को निकाल कर नाले को बांधना, घर को नष्ट कर झोंपड़ी को बचाना, घी को त्याग कर गोबर को लेना, सोना छोड़ मिट्टी को लेना, एवं कस्तूरी को त्याग कर काजल को ग्रहण करना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन और ब्रह्मचर्य को छोड़ संसार के विषयों को ग्रहण करना मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

यद्यपि अनंतमती की अवस्था अभी थोड़ी ही थी, परन्तु विचार शक्ति उसकी प्रौढ़ों के समान थी। इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते समय उसकी अवस्था १५ वर्ष की हो गई। घर में लोग उसे ब्रह्मचारिणी कहा करते थे। यद्यपि प्रियदत्त सेठ का यह विचार था कि अनन्तमती को समझा-बुझा कर विवाह कर देना है, इसलिये वह अच्छे घर-वर की तलाश में था। वह समझता था कि अनन्तमती ने थोड़े दिन के लिये ही यह व्रत लिया है तथा उसका प्रधान ध्येय तो गुड़ियों के खेल का त्याग ही है। अतएव अब वयस्क पुत्री का शीघ्र विवाह कर देना चाहिये।

एक दिन अनन्तमती अपनी सखियों के साथ नगर के बाहर नन्दन उद्यान में आम्रवृक्ष के नीचे झूला-झूलने लगी। वह कमलमुखी अपनी मधुर ध्वनि से भगवान् के गुणों का स्तवन करने लगी, उसके स्वर में अपूर्व मिठास था। यह स्वर ध्वनि जिसके भी कानों में पहुँचती थी, वही मंत्र-मुग्ध हो अपनी सुध-बुध भूल जाता था। इसी समय आकाश मार्ग से विजयार्द्ध श्रेणी का निवासी कुंडलमण्डित नाम का विद्याधर अपनी अग्र पट्टरानी सुकेशिनी सहित क्रीड़ा करने जा रहा था। अनुपम रूपलावण्यवती अनन्तमती के ऊपर जब उस विद्याधर की दृष्टि पड़ी तो वह काम विह्वल हो तड़फने लगा, अपने समस्त ज्ञान और विवेक को खो बैठा। उसकी बुद्धि कुंठित हो गयी; क्योंकि विषयी जीवों की वासना के कारण यही अवस्था होती है, वे अपने विवेक को जलाञ्जलि देते हैं, धर्म-कर्म सब भूल जाते हैं।

प्रकार अनन्तमती उस कामी विद्याधर को देखते ही अपनी चेतना खो बैठी। जब उसकी चेतना लौटी तो उसने अपने को विमान में पाया। तत्क्षण ही अपने बुद्धि-कौशल से सारे रहस्य को समझ गयी और अपने ऊपर आयी हुई विपति देखकर पञ्च नमस्कार मन्त्र का जाप करने लगी। उसने वीतरागी प्रभु का ध्यान करना शुरु किया तथा व्रत रक्षा पर्यन्त अन्न-जल का त्याग कर आत्मचिन्तन में वह लग गयी।

सुकेशिनी को अपने पति पर सन्देह हो गया था, वह उसके कपट जाल को बहुत कुछ समझ गयी थी अतः उसने अवलोकिनी विद्या का स्मरण किया। प्रकट होकर अवलोकिनी विद्या ने विद्याधर के समस्त कुकृत्यों की कथा प्रत्यक्ष देखी बतलाई। जब उसे अपने पति की करतूत मालूम हो गई तो वह क्रोध से कांपने लगी, उसकी आंखें लाल हो गई, दांत कट कटाने लगे और मुंह से अस्पष्ट बड़बड़ाने की आवाज निकलने लगी। सुकेशिनी रौद्ररूप धारण कर दण्ड हाथ में लिये विमान पर आरूढ़ हो अपने पति के पास आई। कुण्डलमण्डित विद्याधर ने जब अपनी स्त्री के इस रौद्रवेश को देखा तो उसके प्राण सूख गये और उसने तत्क्षण लघुपर्ण विद्या का स्मरण किया तथा उसे आदेश दिया कि शीघ्र ही इस अनन्तमती को पृथ्वी पर उतार दो। आदेश पाकर विद्या ने भीम नामक अरण्य में सघन आम्र छाया में जाकर उसको उतार दिया।

इस भयंकर जंगल में चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। कभी सिंह की दहाड़ सुनाई पड़ती थी तो कभी हाथियों की चिंघाड़। स्यार, सारंग आदि भी अपनी-अपनी बोलियां बोल कर भय को बढ़ाने में कुछ कम मदद नहीं पहुँचा रहे थे। भय और आतंक ने वहां अपना साम्राज्य कायम कर लिया था। अनन्तमती दुःख के कारण लम्बी-लम्बी सांसे खींचने लगी और अपने मन को समझाती हुई कहने लगी—अचानक आये हुए असाता कर्म के उदय को सहना पड़ेगा। जीव जो कुछ अच्छा या बुरा करता है, उसका उदय उसे भोगना पड़ता है। मैंने पूर्वजन्म में अवश्य खोटे कर्म किये हैं, अब उनका उदय आने पर मैं क्यों घबड़ाती हूं। जो विपत्ति को शांति और धैर्य के साथ सहन करता है, उसके कार्यों की निर्जरा हो जाती है। परन्तु जो व्यक्ति घबड़ा जाता है और विपत्ति में हाय हाय करता है उसका कर्म बन्धन और दृढ़ होता चला जाता है। अतएव मुझे प्रभुचरणों का स्मरण करते हुए इस अचानक आये हुए कष्ट को सहना पड़ेगा। उसकी विचार धारा पुनः आगे बढ़ी और सोचने लगी—जब मैं पैदल चार-पांच कदम जाती थी तो पिता मुझे गोदी में बैठा कर चलते थे। माता-पिता मुझ पर अपार स्नेह करते थे, मेरी परिचारिकाएं मेरी सेवा में

विद्याधर कामपीड़ित हो सोचने लगा—ऐसी अनिन्द्य सुन्दरी अब तक मैंने कहीं देखी भी नहीं है। इसकी हिरणी जैसी आंखें, कमल जैसा मुख, सिंहनी जैसी कमर, लता जैसा कोमल शरीर, तलवार जैसी भुजाएं, कोयल जैसी वाणी अन्यत्र दुर्लभ है। रति भी इसके रूप लावण्य के सामने तुच्छ है। इसके बिना मेरा जीवन निरर्थक है। पुनः वह सोचने लगा—इस समय मेरे साथ यह सुकेशिनी है, इसके रहते हुए मैं इस अनुपम सुन्दरी को नहीं प्राप्त कर सकता हूं। अतएव पहले मैं सुकेशिनी को किसी बहाने से घर पहुँचा आऊं, पश्चात् इसको प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। यदि मैं धैर्य खो देता हूं तो फिर इस बाला का उपभोग जीवन में कभी भी नहीं हो सकेगा।

जिस प्रकार रात में चोर पहरेदार को देखकर घबड़ाता है, ग्रीष्मर्तु में सूर्य की गर्मी से पथिक त्रस्त होता है, कृषक पानी के बिना सूखी हुई फसल देखकर चिन्तातुर होता है, उसी प्रकार सुकेशिनी को देखकर वह व्यथित हुआ। उसका मुख कमल सूख गया, हृदय मरुभूमि हो गया, उसका समस्त शरीर कांपने लगा, फिर भी धैर्य धारण कर वह कपट पूर्वक अपनी स्त्री से कहने लगा—भद्रे ? इधर क्रीड़ा के लिये अच्छा नहीं प्रतीत हो रहा है, आज मौसम भी सुन्दर नहीं है अतएव मेरा यह अनुरोध है कि कल हमलोग क्रीड़ा के लिये चलेंगे। आज हम वापस लौट चलें, मुझे इधर के एक भूमिगोचरी राजा से मिलना भी है। अतः आज मैं इस आवश्यक कार्य को पूरा कर लेता हूं और कल निश्चिन्त होकर हम क्रीड़ा करेंगे। दूसरी बात यह भी है कि आज तमने अपना ठीक श्रृंगार भी नहीं किया, सुन्दर वस्त्राभूषण भी नहीं पहने हैं अतः कल तुम इस कार्य को भी पूरा कर लोगी।

सुकेशिनी—स्वामिन् विहार के लिये आज का मौसम तो बुरा नहीं है। आकाश स्वच्छ है, शीतल—मन्द-सुगन्धित पवन भी चल रहा है, सूर्य की स्वर्णमयी रश्मियां इन पर्वतों की चोटियों पर कितनी भली लग रही हैं। वस्त्राभूषण भी मेरे ठीक है, आप आज अवश्य चलिये।

विद्याधर—भद्रे ! आज मुझे भूमिगोचरी राजा से मिलना अत्यन्त आवश्यक है। न मिलने से हानि होगी, अतः जल्दी क्या है, कल वनविहार किया जायगा।

इस प्रकार अपनी स्त्री को समझा—बुझाकर घर छोड़ आया और शीघ्र ही विमान लौटा कर चम्पापुर के उद्यान में झूलती हुई अनन्तमती के पास पहुँचा। अनन्तमती उस विद्याधर को देखते ही भय से मूर्छित हो गयी, जिस प्रकार मुर्दे को अन्धेरे में देखकर कायर व्यक्ति होश—खो देता है, वधिक को देखकर गाय का रक्त सूख जाता है उसी

दिन रात उपस्थित रहती थी, वे अब कहां चली गयीं ? मेरी सखियां जो सर्वदा मेरे ऊपर स्नेहामृत उड़ेलती थीं, वे अब कहां चली गईं ! आत्मीय परिजन, हितैषी, मित्र आदि कोई भी साथ देनेवाला नहीं होता । जो मैंने आगम में स्वाध्याय करते समय पढ़ा था, वह अब प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ रहा है । यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, मणि, औषध आदि भी पुण्योदय तक साथ देते हैं, पुण्य के क्षीण होते ही ये सारी वस्तुएं निष्प्रभ हो जाती हैं । जिस प्रकार गाड़ी में धुरा के रहने पर गाड़ी आगे चलती है, धुरा के टूटते ही गाड़ी का चलना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार पुण्य के धुरा के रहने पर ही जीव के सारे कार्य निर्विघ्न चलते हैं । हितैषी मित्र साथ देते है, पुण्य नष्ट होते ही मित्र भी शत्रु बन जाते हैं । हाथ पर रखा धन विलीन हो जाता है । राज्य समाप्त हो जाता है, वैभव धूल में मिल जाता है, और सम्मान अपमान के रूप में परिवर्तित हो जाता है । हाथी, घोड़ा, सेना, दुर्ग, आदि कोई भी वस्तु मनुष्य को कष्ट से नहीं बचा सकती हैं । धर्म ही शरण है, यही विपत्ति में जीव को शान्ति देता है और यही सब कष्टों से त्राण करता है ।

अनन्तमती पुनः विचारने लगी कि जरा सी देर के लिये भी जब इधर-उधर चली जाती थी, तो मेरे माता पिता मेरे लिये बेचैन हो जाते थे, अब मेरे बिना मेरे कुटुम्बियों की, प्रेमिल सखियों की क्या स्थिति होगी ? संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है, अतः साता के उदय से मिलने वाला यह सुख कैसे स्थिर हो सकता है । दुख और सुख दोनों ही एक तराजू के पलड़े है, कभी दुःख का पलला भारी हो जाता है, तो कभी सुख का । इस जीव ने स्वर्ग में सुख भोगा, नरक में बहुत काल तक दुःख भोगता रहा । तिर्यञ्च गति में वाणी के बिना मूक रह कर अनेक प्रेकार के कष्ट सहे । अब बड़ी कठनाई से इस जीव को यह मनुष्य पर्याय मिली है । जो इस अमूल्य पर्याय को प्राप्त कर आत्म कल्याण नहीं करता है, उसका जीवन यों ही बीत जाता है । धर्म के सिवा अन्य कोई भी संसार में हितकारी नहीं है । धन, धान्य, विभूति वैभव, माता, पिता, पुरजन, परिजन ये सभी अनित्य हैं, विनाशीक हैं । धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो इस जीव को नाना प्रेकार के कष्टों के बचा सकता है । राज्य, रूप, महिमा, बल, वीर्य, पराक्रम, सुख, विलास, ऐश्वर्य, धन, यौवन ये सभी इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं । यह जीव पुण्योदय से ऐश्वर्यवान् होता है, और पापोदय से गरीब । संसार के सुख, दुःख को अकेला यह जीव ही भोगता है, अन्य कोई भी सहायक नहीं होता ।

यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है, यह नसों के जाल से बंधा हुआ मांस का लोथड़ा है । हड्डियों का ढांचा है, खून -पीव आदि पदार्थों का समुदाय इस शरीर में है । चमड़े से ढका होने के कारण यह सुन्दर लगता हैं, इससे मल, मूत्र

जैसे दुर्गन्धित पदार्थ निकलते रहते हैं। नरक में इस जीव को कितने महान् दुःख का सामना करना पडता है। वहां इसको सर्दी, गर्मी का महान् दुःख सहना ही पड़ता है, साथ ही वहां की भूमि के स्पर्शमात्र से इसे इतना कष्ट होता है, जिससे लाखों करोड़ों बिच्छुओं के काटने की अनुभूति होती है। शरीर तलवार से काटा जाता है, कोल्हू में पेला जाता है, आग में जलाया जाता है, सुइयों से छेदा जाता है। आरे से सिर से लेकर पैर तक चीर डालते हैं, गर्म तेल में डालकर पकाते हैं। तीक्ष्ण शरीर को जलाने वाली वस्तुओं का लेप शरीर में किया जाता है। गर्दन काट दी जाती है। इस प्रकार छेदने भेदने, भूख, प्यास आदि नाना प्रकारों के कष्ट इस जीव ने नरकों में कितनी ही बार सहे हैं। यहां मुझे केवल भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी का कष्ट हो रहा है, यह कष्ट नरक के कष्टों के सामने कुछ भी नहीं। यहां न मुझे कोई जला रहा है, न कोई काट रहा है, न कोई कोल्हू में पेल रहा है, और न कोई सुइयों से छेदन कर रहा है, तब यह दुःख तो नरक के दुःखों से बिल्कुल कम है, अतः मुझे धैर्यपूर्वक पञ्चपरमेष्ठि की भक्ति करनी चाहिये। मेरा कल्याण प्रभु के ध्यान में ही है, इससे बढ़कर और कुछ उद्धार का उपाय नहीं है।

व्रत पालते हुए इस क्षणिक दुःख का सहन करना कठिन नहीं, पर व्रत के अभाव में सुख का अनुभव करना भी कठिन है। अतः उत्तम मनुष्य गति को प्राप्त कर तथा उत्तम कुल में जन्म लेकर व्रतों का पालन करना परमावश्यक है। जिस प्रकार हाथी जंगल को नहीं छोड़ता, शिशु मां के बिना नहीं रह सकता, स्त्री पति के बिना नहीं रह सकती है, उसी प्रकार व्रतों के बिना मेरा रहना निरर्थक है। व्रत ही इस जीव का कल्याण करने वाले हैं, शरीर में प्राण रहते हुए व्रतों का पालन करना परमावश्यक है इस प्रकार विचार करती हुई अनन्तमती प्रभु स्तुति में लीन हो गई।

इस समय अनन्तमती के पास सिंह, गाय, हाथी, घोडा, सांप, नीले मयूर, कोयल, काक आदि सभी जीव आपस के वैर विरोध को छोड़कर प्रेम से रहने लगे और अनन्तमती के पास शान्तरस का आस्वादन कर सख्यभाव को प्राप्त हुए।

इस जंगल के पास शंखपुर नाम का एक गांव था। इस गांव में एक वनचर लुटेरा रहता था, वह जब जंगल में आया तो अपूर्व लावण्यवती अनन्तमती को देखकर और उसे देवी समझ आनन्दित हुआ। उसने फल, फूल तोड़ कर उसकी पूजा की और प्रार्थना करने लगा—हे देवि हमारी रक्षा कीजिये, हम आपकी शरण में हैं। यह लुटेरा भीमारण्य से चलकर शखपुर में आया और अपने सरदार से हाथ जोड़कर बोला—स्वामिन्! आज इस अरण्य में एक

रानी बनकर तुम संसार का सुख लूटना । अभी तुम अविवाहित हो, तुम्हें किसी न किसी के साथ विवाह करना ही है, फिर क्यों निरर्थक तकलीफ उठाती हो ? तुम्हारे शीलव्रत में जरा भी कलंक नहीं लगेगा । हे रति, रम्भा, भारती, तिलोत्तमा—तुम मेरे ऊपर विश्वास करो और आनन्द से राज्य का सुख लूटो; अपने जीवन को सार्थक बनाओ । तुम एक बार मेरी ओर प्रेम की दृष्टि से देखो, मैं कितना सुन्दर हूं । हे मृगनयनी तुम मुझे कुरूप मत समझो, तुम्हें इतना सुन्दर पति स्वर्ग में भी नहीं मिलेगा । इस प्रकार नाना प्रकार के प्रलोभनों द्वारा अनन्तमती को विचलित करने की चेष्टा की, पर अनन्तमती सुमेरू के समान दृढ़ रही । उसकी दृढ़ता को देखकर देवी किरातरूप को छोड़ प्रत्यक्ष हो कहने लगी—भगवान् जिनेन्द्र के समान संसार में कोई भी देव नहीं है, उनकी भक्ति से संसार के सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं, भक्त के चरणों की दासी लक्ष्मी बन जाती है । देवी ! तुम धन्य हो, तुम्हारी अद्वितीय महत्ता है, तुम्हारी जितेन्द्रियता प्रशंसनीय है; संसार का कोई भी प्रलोभन तुम्हें विचलित नहीं कर सका । अब तुम्हारे सभी उपसर्ग दूर हो गये, ध्यान छोड़िये । मैंने किरात भेष धारण कर तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम इस में उत्तीर्ण हो गयीं । मैं अब तुम्हारी रक्षिका हूं, संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकती है । आप मेरे ऊपर विश्वास कीजिये, मैं यक्षिणी देवी हूं । इतना कहकर देवी अदृश्य हो गयी । अनन्तमती सोचने लगी—मैंने स्वप्न तो नहीं देखा है, क्या वास्तव में देवी आयी थी ।

प्रातःकाल भिल्लराज अपने साथियों के साथ वहां आया और अनन्तमती के चरणों में गिरकर पूजा करने लगा । मुझे अपने कृत्यों की सजा मिल गई, आप शीलवती देवी हैं, आपके समान इस मध्यलोक में शायद ही कोई नारी होगी आप जहां जाना चाहें आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देंगे । अनन्तमती को अब उसके ऊपर विश्वास हो गया और वह उसके साथ अयोध्या के लिये चल दी । कुछ दूरतक भिल्लराज ने उसे रास्ता बता दिया, पश्चात् वह लौट गया । अनन्तमती अयोध्या की ओर जंगल में चलने लगी; रास्ते में एक मंदिर मिला । वह भगवान् के दर्शन करके उस मन्दिर में गई वहां पर एक वैश्य पुत्र को देखा; जो भगवान् के दर्शन करने आया था । वह वणिक् पुत्र अनन्तमती को देख कर बोला —आप कहां रहती हैं ? आपके माता पिता कौन हैं ? कहां से आयी हैं ? किसलिये अकेली भ्रमण कर रही हैं ?

अनन्तमती—सखी क्षमा हूं, पुत्र शील है, सदा अक्षुण्ण रहनेवाली सम्पत्ति सदाचार है, निर्मल दया माता,

देवी आयी है, आप चाहें तो उनसे कुछ वरदान मांग लें। सरदार उसके वचनों को सुनकर भीमारण्य में आया और अनन्तमती को देखकर कहने लगा—यह देव कन्या नहीं है, मानुषी है। यह अनुपम सुन्दरी है; इतना रूप तो आजतक नहीं देखा। इस प्रकार वह अनन्तमती को देखते ही मोहित हो गया तथा अपने वैभव का वर्णन उसके सामने करता हुआ बोला—आपके समान कोई भी प्रतापी सती नहीं है, आपने अपार सौन्दर्य प्राप्त किया है, आपका कटाक्ष मेरे ऊपर चल गया है, अतः आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लीजिये और सुख से रहिये। अनन्तमती उसके कुत्सित प्रस्ताव को सुनकर आत्मस्वरूप का चिन्तन करती हुई पंचनमस्कार मन्त्र का स्मरण करने लगी।

भिल्लराज अनन्तमती को मौन देखकर क्रोधित हो गया, उसकी मूंछें तन गयीं और ताल ठोककर बोला-अभी समय है, मेरी बात स्वीकार कर लीजिये। यदि आपने मेरी इच्छा पूर्ण कर दी तो फिर अपूर्व सुख प्राप्त करेंगी, सदा सहस्रों नर-नारी आपकी सेवा में प्रस्तुत रहेंगे। कोई भी आपकी आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकेगा। मैं सदा आपका दास होकर रहूंगा। यदि आपने मेरी बात नहीं मानी तो इसका परिणाम बुरा होगा, आज्ञा भंग करने का दण्ड आपको भोगना पड़ेगा। यह आप जानती हैं कि इस जंगल में आपकी रक्षा कोई नहीं कर सकेगा, आपको अपना शरीर तो मुझे सौंपना ही है, यदि राजी से आप मान जायेंगी तो अच्छा है, अन्यथा मुझे जबरदस्ती करनी पड़ेगी। इस प्रकार डांट फटकार कर भिल्लराज अनन्तमती के पास अपने किसी आदमी को छोड़ कर चला गया और उसे सावधान कर कह गया कि तुम यहां से एक मिनट के लिये भी इधर-उधर मत जाना। इस सुन्दरी पर अपनी पूरी दृष्टि रखना, कोई जंगली जानवर इसका अनिष्ट न करने पावे।

भिल्लराज के जाने के पश्चात् अनन्तमती विचारने लगी कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत को कभी नहीं छोड़ सकती हूं, व्रत सहित प्राण देना भी मुझे स्वीकार है, किन्तु व्रत रहित एक घड़ी जीवित रहना भी नहीं। मैं अपने प्राण दे सकती हूं पर इस व्रत को नहीं छोड़ सकती। इस प्रकार ऊहा-पोहकर उसने उपसर्ग के अन्त होने तक के लिये आहार-पानी का त्याग तथा कषायों का त्याग कर सल्लेखना ग्रहण करली।

अनन्तमती के ऊपर आये हुए उपसर्ग को देखकर स्थानीय यक्षिणी देवी का आसन कम्पित हो गया और अनन्तमती की परीक्षा करने के लिये उस देवी ने रात में भिल्लराज का रूप धारण कर कहा—हे कमलमुखी! मेरे रूप-सौन्दर्य की ओर देखो, मेरे साथ रहने से तुम्हें सब प्रकार का सुख प्राप्त होगा। तुम्हें अपनी पट्टमहिषी बना दूंगा

सत्य मेरा दादा, गुण मेरे भाई, तत्वचिन्ता मेरी पुत्री सम्यत्व मेरा पिता, संयम मेरा घर, और सुदूरवर्ती मोक्ष मेरा देश है तथा जिनेश्वर का वचन—आगम मेरा नगर है। अनन्तमती के इस उत्तर को सुनकर वह वणिक् पुत्र बहुत प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि यह निकट भव्य है अतः इसे अपने घर ले जाना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उसने कहा—तुम मेरी बहन के तुल्य हो, मेरे घर चलकर आनन्द से रहो। अनन्तमती भी उसके सद् विचारों को अवगत कर उसका विश्वास कर उसके घर चली गयी। वह अपनी स्त्री गुणवती से बोला—इसका पुत्री समझकर पालन करना। मैं जबतक व्यापार करके वापस न लौटूं, इसका यथोचित पालन और संरक्षण करना। यह हमारा परम सौभाग्य है कि इतनी बड़ी धर्मात्मा कन्या प्राप्त हुई हैं, इस प्रकार कहकर व्यापार के लिये चला गया।

गुणवती अनन्तमती का अद्भुत रूप–लावण्य देखकर सोचने लगी—यह अप्सरा के समान सुन्दर है, यह चन्द्रमा की स्त्री रोहिणी से भी अधिक रूप-लावण्यवती है, यह मनुष्य स्त्री नहीं, किन्तु स्वर्ग की कोई देवाङ्गना हैं। जैसे प्रातःकालीन सूर्य दर्शन से शरदृतु में लोग तृप्त नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह इकटक होकर उसके रूप-सौन्दर्य का पान करने लगी। परन्तु उसके मन में एक खटका उत्पन्न हो गया, वह सोचने लगी कि मेरा यौवन और रूप ढल रहा है, यदि कदाचित् मेरा पति आकर इससे विवाह कर लेगा तो मुझे सदा इसके आधीन रहना पड़ेगा, अतः इस विपत्ति को पतिदेव के लौटने के पहले ही दूर कर देना श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार निश्चय कर व्याली नामक कुट्टिनी को बुलाया और उसके हाथ अनन्तमती को बेच दिया। अनन्तमती कुमारी इस विपत्ति में पड़कर सोचने लगी—पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का यह फल है, चाहे मेरे ऊपर कितनी विपत्तियां क्यों न आवें, पर मैं प्राण रहते हुए इस ब्रह्मचर्य व्रत को नहीं छोड़ सकती हूं। धर्म ही मेरा रक्षक है, दुष्ट भाग्य क्या–क्या खेल दिखलाता है। पंचपरमेष्ठी के चरणों की शरण ही मेरे लिये अब सब कुछ है। इस प्रकार ध्यान, स्तवन करती हुई अन्न–जल छोड़कर प्रभु–भक्ति में लीन हो गई।

कुट्टिनी—कुमारी! तुम पागल क्यों हो रही हो? तुम्हें अपने शरीर का ख्याल करना चाहिये। शृंगार करो और स्वच्छ वस्त्र पहनकर अपने पलंग पर बैठ जाओ। हमारा तो यह पेशा ही ऐसा है कि जब तक हम अपना बनाव शृंगार न करेंगी, हमारे यहां कोई फटकेगा भी नहीं। तुम संन्यासिनी क्यों बन रही हो अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? खेलने खाने के दिन हैं। संसार का आनन्द लेना चाहिये, इस अपार रूप–यौवन को प्राप्त कर यों ही खो

देना कहां की बुद्धिमत्ता है ? देखो तुम बनो मत तुमने कितने ही व्यक्तियों के मन को चुरा लिया है। सहस्रों व्यक्ति तुम्हारे चरणों के दास बनने को प्रस्तुत हैं, तुम रानी बनकर संसार के सुखों का भोगो। मैं पुत्री तुझ से सच कहती हूं, तेरे सामने अप्सरा भी कोई वस्तु नहीं है। हमारे सुख के दिन तेरी एक चितवन पर निर्भर हैं।

अनन्तमती हंसकर—विषयी मूर्ख प्राणी बिजली की चमक के समान क्षणिक विषय भोगों को शाश्वत मानते हैं। इन नरक के कीड़ों को धर्म-कर्म कुछ भी नहीं सूझता है। मनुष्य पर्याय को यह क्षुद्र प्राणी योंही खो देते हैं। ब्रह्मचर्य की महत्ता को वेश्या क्या समझ सकती है। सम्यग्दर्शन का स्वरूप विषयी कुत्ते क्या समझेंगे ? आत्मा का हनन कर विषयों के कुंए में गिरना कितनी बड़ी बेवकूफी है ? तुमने मुझे पुत्री कहकर सम्बोधित किया है, अतः मां के पद पर आरूढ़ होकर मुझे कुमार्ग के लिये प्रोत्साहन देने में तुम्हारी यह जीभ गल क्यों नहीं गई। तुम ऐसे पापपूर्ण वचन क्यों निकले ? मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे छोड़ दीजिये, मेरा मन जिधर चाहेगा चली जाऊंगी। इतना कहकर वह मौन हो गई।

कुट्टिनी—अरी कल की छोकड़ी ! तू अभी समझती नहीं है, मैं सामान्य नहीं हूं, मैंने तेरे समान कितनी ही रूपवतियों को ठीक कर लिया है। जिसे तुम नरक कहकर बदनाम करती हो, वह वास्तव में स्वर्ग है। तुम एक बार भी यदि यहां के आनन्द का आस्वादन कर लोगी तो फिर कभी ऐसे वचन नहीं कहोगी ? कोई बात नहीं है, पहले-पहल सभी की यही हालत होती है। दो-चार दिन में तुम्हारी लज्जा छूट जायगी, फिर तो तुम इस प्रकार फसाने लगोगी जैसे मछुआ अपने जाल में मछलियों को। एक नहीं, मैं ऐसी अनेक घटनाओं से परिचित हूं। पहले ऐसा सत दिखलाती हैं जैसे मालूम होता है कि इनके समान 'न भूतो' 'न भविष्यति' कोई है ही नहीं। जीवन का रस जब तुम्हें अनुभूत हो जायगा तब तुम इस ढ़ोंग को छोड़ दोगी।

इस प्रकार नाना प्रकार से समझा बुझा कर वह वेश्या अपने कमरे में चली गई। इधर अनन्तमती ने उपसर्ग आया हुआ जानकर मर्यादा पूर्वक कुछ समय के लिये समाधिमरण ग्रहण कर लिया। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग नहीं टलेगा मैं अन्न-पानी ग्रहण नहीं करूंगी। वह आत्म-आलोचना में तत्पर हो पंचपरमेष्ठी का ध्यान करने लगी। णमोकार मन्त्र का आश्रय ही इस समय उसके प्राणों का रक्षक था।

जब वेश्या ने देखा कि यह इस तरह माननेवाला नहीं है तो उसने सोचा कि इसे राजा के हाथ बेच देना ही उपयुक्त होगा। इस अनुपम सुन्दरी को प्राप्त कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो जायगा और मुझे अपार धन देगा, जिससे मेरे जन्म जन्मान्तर का दारिद्रय दूर हो जायगा। इस समय सबसे बड़ी बुद्धिमानी यही होगी कि इसे राजा के पास पहुँचा दिया जाय। खाना-पीना यह छोड़ चुकी है, यदि मर जायगी तो मेरा धन ऐसे ही बरबाद हो जायगा। इस प्रकार विचार-विनिमय कर वह राजा सिंहव्रत के पास ले गयी और दरबार में जाकर बोली—देव ! इस रमणीरत्न को आपकी सेवा में अर्पण करने आयी हूं। यह अनाघ्रात कलिका आपके उपभोग करने योग्य है। दासी ने इसे पाने के लिये अपार धन खर्च किया है। राजा भी उस दिव्य सुन्दरी को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस वेश्या को विपुल धन राशि देकर विदा किया।

राजा अनन्तमती से बोला—हे कमलमुखी ! तुम्हारे रूप का जादू मुझ पर चल गया है, मेरे समस्त अंगोपांग शिथिल हो गये हैं, तुम्हें देखते ही मैं बेचैन हो गया हूं, मेरा मन किसी भी काम में नहीं लगता है ? हे वनितारत्न ! तुम्हें इतना रूप लावण्य कहां से मिला ? मैं निश्चय से अपने राज्य, भंडार, भृत्यवर्ग, पट्टरानी, कोष, सेना आदि को आपके चरणों में अर्पित करता हूं। आप मेरी मनोकामना पूर्ण कर सब की स्वामिनी बनिये; मैं सदा अपने राज्य रहित आपका आदेश पालता रहूंगा। आप तनिक प्रेम पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखिये, मुझ घायल पर अपने स्नेहामृत का सिंचन कीजिये। आप इतनी दयालु होकर, निष्ठुर क्यों हो रही हैं। क्या मुझे दया का पात्र नहीं मानतीं ? आप प्रसन्न हो जाइये, मैं आपको पट्ट महिषी के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहता हूं। आप इस पद पर लक्ष्मी के समान पूजा, सुख, प्रतिष्ठा और आनन्द प्राप्त करेंगी। राजकुमार, अमात्य, मंत्री, पुरोहित, आदि सभी आपकी आज्ञा में तत्पर रहेंगे। इस प्रकार कहकर उसने अनन्तमती का हाथ पकड़कर अपने मस्तक पर रख लिया और पुनः कहने लगा—रमणीरत्न तुम्हारा यह मौन तो मेरे लिये कामवाण बन गया है, अब अधिक देर तक तुम्हारा मौन मुझे सहन नहीं है। आप कब तक मुझे कष्ट देती रहेंगी ? इस प्रकार मधुर वचन कहकर उसे पकड़ अपने शयनागार की ओर ले गया।

अनन्तमती पञ्चपरमेष्ठि के ध्यान में लीन थी, उसे राजा की बातों का बिल्कुल पता नहीं था। उसके मुख पर अद्भुत तेज विद्यमान था। सतीत्व की किरणें निकल रही थी, व्रतों के प्रभाव के कारण राजकुमार अनन्तमती

से डर रहा था। उसके दिव्य तेज के समक्ष उसकी पाशविक वासना भाग रही थी, परन्तु राजमद उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये उत्तेजित कर रहा था।

जब अनेक प्रयत्न करने पर भी राजा अनन्तमती के मौन को न खोल सका तो उसके मन में ईर्षा की अग्नि जलने लगी और उसे अनन्तमती के ऊपर अपार क्रोध हो आया। राजा सोचने लगा—मैं राजा होकर इस दीन स्त्री से कबसे प्रार्थना कर रहा हूं, परन्तु यह मेरी प्रार्थना सुनना ही नहीं चाहती है। इतने सुन्दर रूप का धारण करनेवाली यह कोई दुष्ट स्त्री है, अन्यथा मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार करती। अतएव अब इसके साथ सख्ती करनी पड़ेगी। सीधी अंगुली घी नहीं निकलता है, राजनीति बड़ी दाव-पेंच वाली होती है, इस समय इसीका प्रयोग करना पड़ेगा।

जब राजा उसके साथ अभद्र व्यवहार करने लगा तो अनन्तमती वायु के झोंकों से प्रताड़ित लता के समान कांपने लगी और पञ्चपरमेष्ठि के गुणों का चिन्तन करती हुई आत्म स्वरूप में स्थिर हो गयी। दासियां प्रेम पूर्वक समझाने लगीं कि राजा साहब की बात मान जाईये, आपको सब प्रकार से सुख मिलेगा। आप वैभव, विलास, ऐश्वर्य भोग-विलास का त्याग क्यों करती हैं। ऐसा सौभाग्य बड़े पुण्योदय से मिलता है। पट्टरानी से बढ़कर स्त्री पर्याय की सार्थकता और क्या हो सकती है? जिस पद के लिये लोग प्रयत्न करते हैं नारियां तपस्या करती हैं, आपको यह पद इतनी आसानी से मिल रहा है, यह कम गौरव की बात नहीं है।

अनन्तमती अपने व्रत में इस प्रकार दृढ़ थी, जिससे दासियों की बातें वह सुनकर भी अनसुनी कर देती थी। उसके अन्तरंग में जिनेन्द्र प्रभु की मूर्ति विराजमान थी, वह उनके ध्यान कर अनुपम नाम ले रही थी। अपनी चेतना को खोकर अनन्तमती ने प्रभु चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। मनसा, वाचा और कर्मणा वह वीतरागी प्रभु का स्मरण कर रही थी। यद्यपि उसका दिव्य तेज राजा से सहन नहीं हो रहा था, फिर भी अपनी हठ पूरी करने के लिये वह उस सती का मन सब तरह से विचलित करने पर उतारु था।

सिंहव्रत राजा ने जब अपने समस्त प्रयत्नों को निष्फल देखा तो वह आपे से बाहर हो गया और स्वयं उठकर अनन्तमती को एक लात मारी और परिचारिकाओं को बुलाकर पिटवाना शुरु किया। जितने भी नौकर-चाकर आते थे, सभी अनन्तमती को लाठी, जूते और घूसों से मारते थे, जिससे उसका शरीर सूझ गया। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि अनन्तमती को जितना मारा पीटा जाता था, वह उतनी ही अपने व्रत में स्थिर होती जा रही थी।

उसके मुख पर दिव्य तेज विद्यमान था, शरीर से मोह छोड़ देने के कारण उसमें अपूर्व दृढ़ता आ रही थी। वह निर्दय राजा के अत्याचारों को भगवान् जिनेन्द्र के चरणों का स्मरण करती हुई धैर्य के साथ सहने लगी। अनन्तमती को अपने शरीर की कुछ भी चिन्ता नहीं थी, केवल उसका ध्यान अपने व्रत की रक्षा की ओर था।

उस अबला धर्मात्मा अनन्तमती के ऊपर होनेवाले अत्याचारों के कारण उस नगर के शासन देव का आसन हिला और उसने अपने ज्ञान के बल से सारी घटनाएं अवगत कर लीं। अनन्तमती के पास आकर हाथ जोड़ उसे प्रणाम किया और ललकार कर कहने लगा—रे दुष्टो सावधान! एक अबला पर अत्याचार करते हुए शर्म नहीं आती। तुम्हारी करनी का फल तुरंत मिलता है, ऐसा कहते ही राजा, अमात्य, सेनापति आदि सभी के ऊपर मार पड़ने लगी। आश्चर्य की बात यह थी कि मारने वाला कोई नहीं दिखलाई पड़ता था, केवल मार ही दिखलाई पड़ती था। कोड़े लगने के कारण सभी के शरीर से खून निकलने लगा, सभी मुंह से खून वमन करने लगे। राजा, अमात्य आदि सभी मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, किन्तु वह अप्रत्यक्ष मारनेवाला दिखलाई न पड़ा और न मार-पड़ना ही रुका।

सर्वत्र चीत्कार सुनाई पड़ रहा था, इनके करुण क्रन्दन से नगर में बेचैनी व्याप्त थी। राजा सिंहरत्न की बड़ी विचित्र स्थिति थी। जिस प्रकार चूहेदानी में फंसा चूहा कहीं भागने का रास्ता न पाकर छटपटाता है, उसी प्रकार राजा, अमात्य, राजकुमार आदि सभी अपनी रक्षा का उपाय न देखकर क्रन्दन कर रहे थे। नगर वासी भी वहां एकत्रित होकर तमाशा देख रहे थे, किन्तु उनकी रक्षा कोई भी नही कर सका, सभी असमर्थ हो टुकुर-टुकुर देखने लगे। नगरवासी प्रार्थना करने लगे—हे प्रभो यह उपसर्ग कैसे दूर किया जायगा ?

सुमेरु के समान स्थिर और पंचनमस्कार मन्त्र के ध्यान में लीन कुमारी को देखकर शासन देव प्रसन्न हो स्तुति करने लगा–हे अनन्तमती! जो भगवान् की भक्ति में निरन्तर लीन रहते हैं, उनकी आराधना और सेवा आबालवृद्ध सभी करते हैं। जो मोहावेश में आकर प्रभु-भक्ति का तिरस्कार करता है, वह अत्यन्त नीच है। जिस के पास धर्म रहता है, उसके पास संसार की सभी अलभ्य वस्तुएं है। व्रत भूषित व्यक्ति यदि भगवान् के चरणों की भक्ति करता है तो उसे संसार के सभी दुर्लभ पदार्थ अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। आप धन्य हैं, देवो आपके गुणों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जो विपत्ति में स्थिर रहता है, ईति-भीति से नहीं घबड़ाता है उसके लिये किसी भी वस्तु की कमी नहीं रहती

विपत्ति में लोग घबड़ा जाते है, किन्तु जैनागम के अध्ययन करनेवाले रंचमात्र भी नहीं घवड़ाते यही उनकी विशेषता होती है।

मेरा किसी के द्वारा अशुभ नहीं हो सकता है, जो यह निश्चय कर लेता है तथा पाप कार्य को छोड़ पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति करता है, और जिनागम के अनुसार अपना प्रत्येक कार्य करता है, उसे चतुर जैन मानना चाहिये। संसार में शरीर, धन, यौवन को क्षणभंगुर समझ कर जो शाश्वत सुख को प्राप्त करता है वह आत्मज्ञ जैन है। स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति धर्म से ही होती है। धर्म आत्मा के वास्तविक स्वभाव का आचरण करना है जो आत्मज्ञ व्यक्ति इस धर्म का आचरण करता है, उसके समान संसार में कोई नहीं हो सकता। जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव जलाना, पानी का स्वभाव शीतलता, वायु का स्वभाव बहना है उसी प्रकार आत्मज्ञ का स्वभाव ज्ञान दर्शन -मय है। आत्मज्ञ इसी स्वभाव को प्राप्त करने का यत्न करता है। पूजा-पाठ तभी तक धर्म की कोटि में हैं, जब तक व्यक्ति आत्मज्ञ नहीं बनता है। आत्मज्ञ हो जाने पर कर्त्तव्य समझकर शुभाश्रव के कार्यों को व्यक्ति भले ही करे, परन्तु धर्म का वास्तविक रूप वह कुछ और ही समझता है। विषय आत्मा के स्वभाव नहीं है। ये स्वयं अचेतन हैं, आत्माकी विभाव परिणति के कारण इनमें प्रवृत्ति होती है। जो विवेकी हैं, वे इनमें प्रवृत्ति नहीं करते, इनसे आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं मानते। कुमारी अनन्तमती तुमने धर्म के वास्तविक रूप को समझ कर जैन धर्म की शान रखी, तुम्हारी आत्मज्ञता प्रशंसनीय है। तुम्हारी चरणरज जो सिर पर धारण करेगा, वह अवश्य ही इससंसार से पार हो जायगा। इस प्रकार शासन देव स्तुति करता रहा, आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी, दुन्दुभि बाजे बजने लगे और कुमारी का जयघोष सुनाई पड़ने लगा।

देव ने राजा सिंहव्रत से कहा कि तुम अपने अपराधों को क्षमा यदि कुमारी से मांगों और इसके चरणों में अपना सिर रगड़ो तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं मैं तो धर्मात्माओं का सेवक हूं, तुमने बड़ा भारी अनर्थकारी काम किया है। तुम विषयी कीड़े हो, अतः जल्दी ही क्षमा याचना करो, अन्यथा तुम्हारे प्राणों का अपहरण हो जायगा।

राजा सिंहव्रत ने अनन्तमती के चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमा याचना की और अपनी पट्टमहिषी सहित उसके चरणारबिन्दों की पूजा की। पश्चात् हाथ जोड़कर कहने लगा—हे धर्ममूर्ते ! मैंने बिना जाने बड़ा अपराध किया है, मेरे समान संसार में अन्य कोई पापी नहीं होगा। राजा का कार्य प्रजा की रक्षा करना है तथा अनाथ दीन दुखियों के कष्टों को दूर करना राजा का परम कर्त्तव्य है, किन्तु मैंने यह कार्य न कर अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की।

इस समय मेरे मन में बड़ी अशान्ति है, मेरा पाप मुझे काटने दौड़ता है। यह सारा राज्य और धन-वैभव आपके चरणों में समर्पित हैं, आप जैसे चाहे मेरी रक्षा करें। राजा के इस प्रकार विनय युक्त वचन सुनकर अनन्तमती बोली—राजन् ! धर्म से बड़कर संसार में कोई वस्तु हितकारी नहीं है, आप धर्म में स्थिर हो जाइये। धर्म ही जीव को शान्ति देने वाला है, इसीके धारण करने से अनुपम सुख की प्राप्ति हो सकती है।

राजा ने राजश्रेष्ठि जिनेन्द्रदत्त को कुमारी अनन्तमती को सौंप दिया। सेठ अपने घर लाकर उसका पालण-पोषण करने लगा। अनन्तमती चैत्यालय में जाकर भगवान् की पूजा भक्ति में रत रहने लगी। रत्नत्रय का पालन करती हुई आत्मस्वरूप में लीन रहने लगी। उस चैत्यालय में कमलश्री नाम की आर्यिका रहती थीं, वह उनके पास आत्मा और तत्त्वों पर विचार करती हुई त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा सुनने लगी। अहर्निश तत्त्वचिन्तन, स्वाध्याय और प्रभु भक्ति में अटल रहती थी, एक वार शुद्ध भोजन करती तथा त्रिकाल सामायिक, वंदना और प्रतिक्रमण करती थी।

इधर चम्पापुरी में प्रियदत्त सेठ और उनकी स्त्री एकाएक प्रियपुत्री अनन्तमती के गायब हो जाने से अत्यन्त दुःखी थे। वे विचारने लगे कि कुमारी के अद्भुत रूपसौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसे कोई विद्याधर चुराकर ले गया है। कुमारी का स्मरण कर माता-पिता विलाप करते हुए कहने लगे—हे चन्द्रमुखी तेरी क्रीड़ा तेरी हंसी तेरा धूलभरा शरीर हम लोगों को कितना सुख देता था। तेरा प्रत्येक कार्य हमें सुख और शान्ति प्रदान करता था। तेरे बिना अब हमारा जीवन निरर्थक हैं।

भगवान् की पूजा किये बिना और मुनिराजों को आहार दान दिये बिना तू आहार ग्रहण नहीं करती थी। हम लोगों को छोड़ कर तू कहां चली गयी। हे भगवान् ! क्या हमारे भाग्य में यहीं दुःख देखना बदा था। जिस प्रकार अग्नि का एक कण भी घास पर गिर कर घास को जला देता है, उसी प्रकार तेरा यह वियोग जन्य दुःख हमें जलाकर भस्म कर देगा। हमारे मन की एक यही साध थी कि बृहद् पूजा करके बड़े भारी गाजे-बाजे के साथ तेरे विवाह का दृश्य अपनी आंखों से देखकर प्रसन्न होंगे, पर यह हमारी कामना अधूरी ही रह गयी। दुष्ट दैव ने हमारी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। हाय हमारी फूल सी सुकुमार पुत्री की क्या दशा हुई होगी ? उसे कौन-कौन से दुःख दिये जा रहे होंगे ? हे प्रभो ! कुमारी की रक्षा करो।

पुनः कुमारी के गुणों का स्मरण कर कहने लगे—लता के समान तन्वंगी, कमलपत्र के समान चंचल नेत्री, भूमि चुम्बी केशों की धारक पुत्री तू कहां गई। इस प्रकार विलाप करते हुए दम्पत्ति जिनालय में वरदत्त मुनिराज के पास गये और उनके चरणों में नमोऽस्तु कर धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की।

मुनिराज—इस संसार में सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगते हैं। यह आत्मा स्वयं कर्त्ता और भोक्ता है। कर्म गति को टालने वाला कोई नहीं है। हाथियों को वश में करने वाले, सिंह को पकड़ने वाले, स्वर्गिक सुख का भोग करने वाले एवं छहों खण्डों पर शासन करने वाले चक्रवर्ती आदि भी जब इन कर्मों के फल से अछूते न रहे तो साधारण व्यक्तियों की बात ही क्या है? मनुष्य, विद्याधर, देवगण, अप्सराएं, स्त्री, धन-ऐश्वर्य के धारी चक्रवर्ती आदि भी जब कालकवलित हुए हैं तो फिर संसार में मृत्यु से कौन बच सकता है?

मुनिराज के उपदेश को सुनकर उन दम्पत्ति को परम शान्ति मिली तथा कर्मों की गति का अनुभव कर पूर्व-वत् रहने लगे। जब हृदय के भीतर कोने में दुःख छिप जाता है, तो वह निकालने पर भी दूर नहीं होता। अनन्तमती के हरण का दुःख सेठ के मन में इतना अधिक था कि लाख समझाने पर भी उसे शान्ति और धैर्य नहीं मिल रहा था। जिस प्रकार आंधी के आने पर मजबूती से बांधी गयी लताएं उखड़ जाती हैं, उसी प्रकार प्रियदत्त सेठ का मन दुःख के कारण अत्यन्त व्यथित था। रह-रहकर अनन्तमती की स्मृति उसके हृदय का आलोडन कर रही थी। अतः उसने एक दिन निश्चय किया कि मैं कुछ दिन के लिये अपनी बहन वसुदेवी के यहां चला जाऊं तो शायद वहां मुझे शान्ति मिलेगी।

प्रियदत्त सेठ अपने निश्चय के अनुसार वसुदेवी के यहां पहुँचा। भाई को दुखी देखकर बहन को भी दुःख हुआ। इसने अपने मधुर वार्तालाप द्वारा भाई को शान्ति प्रदान की। स्नान आदि नित्यक्रियाओं से निवृत्त होकर प्रिय-दत्त सेठ जिनालय में दर्शन करने गया। मन्दिर के दरवाजे के सामने रत्नचूर्ण से निर्मित किये गये चौक और साथियों को देखकर आश्चर्यान्वित हो रोने लगा। उसे अनन्तमती का स्मरण हो आया, क्योंकि अनन्तमती ही ऐसा चौक पूर सकती थी। चौक के बीच में वृक्ष, कमल, हरितचन्दन, पुष्पमालाएं आदि वस्तुएं कलापूर्ण ढंग से बनाई गई थी। इस चौक को देखकर पुनः सोचने लगा कि मेरी कन्या अनन्तमती भी मेरे प्रासाद और जिनालय के सामने इसी प्रकार का कलापूर्ण चौक पूरती थी वह दुःख से विह्वल होकर गर्म गर्म श्वांस छोड़ने लगा। कलाविज्ञ ब्रह्मचारणी अनन्तमती कहां

मिलेगी ? भाई को इस प्रकार विलखते देखकर वसुदेवी कहने लगी—आप इस चौक को देखकर क्यों रोने लगे।

प्रियदत्त—मेरी पुत्री अनन्तमती ऐसा ही चौक पूरती थी, इस चौक को देखकर मुझे उसका स्मरण हो गया है।

वसुदेवी—भाई ! यहां पर एक लड़की है, जो अत्यन्त शीलवान्, आत्मज्ञ और विदुषी है, इसके ब्रह्मचर्य के प्रभाव से नगर के शासनदेव का आसन कम्पित हो गया और इसके शील की रक्षा उसने की। राजा, अमात्य और प्रधान सेनापति को उनकी कामुकता का समुचित दण्ड शासन देव द्वारा मिला यह लड़की अत्यन्त तेजस्वी, भविष्णु और कुशाग्र बुद्धि है। एक बार इसके सम्पर्क में जो पहुँच जाता है, इसका प्रशंसक बन जाता है, इस प्रकार कह कर भीतर ले गयी और संकेत कर उस कन्या को दिखला दिया।

प्रियदत्त उस अनुपम सुन्दरी कन्या को देखते ही अनन्तमती. अनन्तमती कहता हुआ दौड़ा और उसको गोद में उठा लिया। जैसे भिखारी को राज्य मिलने से, भूखे को भोजन मिलने से, प्यासे को जल मिलने से तृप्ति होती है, उसी प्रकार सेठ को पुत्री के मिलने से सुख हुआ। वह पुत्री से कहने लगा— हे कमलमुखी बेटी ! तेरे न रहने से मैं महान् विपत्ति में पड़ा था, खाना-पीना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। सूना घर मुझे काटने को दौड़ता था; मैं दुःख से विह्वल होकर ही यहां आया हूं। प्यारी पुत्री अपना कुल वृतान्त मुझ से कहो। अनन्तमती ने कुण्डल-मण्डित विद्याधर के द्वारा चुराये जाने से लेकर अयोध्या के राजा सिंहव्रत तक सारी कथा कह सुनाई। इस प्रकार पुत्री को प्राप्त कर सेठ प्रियदत्त अत्यन्त हर्षित हुआ।

एक दिन पुत्री को देखकर प्रियदत्त विचारने लगा कि अब अनन्तमती का विवाह कर देना चाहिये। वसुदेवी का पुत्र श्रुतकीर्ति सब प्रकार से योग्य है, सर्व गुण सम्पन्न है। यदि इसके साथ अनन्तमती का विवाह कर दिया जाय तो दोनों का जीवन सुखमय हो जायगा। इस प्रकार निश्चय कर एक शुभ लग्न में उन दोनों का विवाह सम्बन्ध कर देने का उसने निश्चय किया और विवाह की सारी तैयारी शुरु कर दी तथा सुन्दर मण्डप बनवाया। रेशमी वस्त्र चन्दन, तोरण, आम्र पल्लव, मोती की लड़ी, नव रत्न चूर्ण आदि वस्तुओं के द्वारा नगर को खूब सजाया तथा भगवान् के पूजन और अभिषेक के लिये दधि, दुग्ध, घृत, शर्करा, खजुर रस और सर्वौषधि आदि रसों से भरे कुम्भ एवं रेशमीवस्त्र, चीनपट्ट, सूतीवस्त्र आदि सामान एकत्रित किये। अनन्तमती इन सारी तैयारियों को देख कर पिता से

पूछने लगी—

पिताजी ! यह सब सामान किसलिये एकत्रित किया जा रहा है ? क्या आप पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करेंगे या और कोई विधान ?

पिता—समारोह पूर्वक मैं तुम्हारा विवाह करना चाहता हूं । अनेक विद्वान् उत्सव में एकत्रित होंगे, जो जय नन्द आदि शब्दों में आशीर्वाद देंगे ? हे पुत्री ! यह विवाह अभूतपूर्व होगा, ऐसा विवाह अभी तक नहीं हुआ है । मैं इसमें एक करोड़ दीनार[1] खर्च करूंगा, याचकों को स्वेच्छानुसार मुंह-मांगा दान दूंगा; अतिथियों का सत्कार करूंगा और समधी को खूब दहेज दूंगा । दूर-दूर देशों में निमन्त्रण भेजूंगा । एक महीने तक विवाह उत्सव मनाया जायगा ।

अनन्तमती हंसकर बोली—हे पिताजी ! क्या आप त्रिलोकीनाथ भगवान् के सामने लिये गये ब्रह्मचर्य व्रत को भूल गये ? जब आपने पूजाकर श्री वरदत्त मुनिराज से व्रत लिया था, उस समय मैंने भी ब्रह्मचर्य व्रत लिया था । क्या अब मैं उस लिये गये व्रत को छोड़ दूंगी । आप ही बतलाईये कि लिये हुए व्रत को छोड़ना क्या उचित है ?

आश्चर्यान्वित हो प्रियदत्त सेठ कहने लगा—अरी बेटी ! क्या पागलों की सी बातें करती है ? तुम्हारी बातों से मुझे बहुत दुःख हो रहा है । मैंने तो विनोदवश तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था । मेरा अभिप्राय केवल गुड़ियों का खेल रोकना था । तुमने वास्तविक ब्रह्मचर्य व्रत कहां लिया था । वयस्क होने तक के लिये ही तो व्रत दिया गया था, अतः अब विवाह करने में कुछ भी हानि नहीं है ।

अनन्तमती—पिताजी ! क्या भिक्षुक अपनी मिली हुई निधि को छोड़ सकता है ? अनादि काल से संसार में भ्रमण करता हुआ जीव यदि संयम को प्राप्त कर भी छोड़ दे तो इससे बड़ा मूर्ख और कौन हो सकता है । अन्धा व्यक्ति जिस प्रकार पुण्ययोग से प्राप्त किये गये नेत्रों को फोड़ नहीं सकता है, उसी प्रकार सौभाग्य से प्राप्त हुए धर्म को कौन व्यक्ति छोड़ेगा ।

सद्धर्म का मिलना ही कठिन है, मिलने पर उसे छोड़ने वाले मूर्खों को क्या सुख मिल सकता है ? नहीं, कदापि नहीं । धर्म से ही सुख मिलता है, अधर्म दुःख का ही कारण है । मैंने इस छोटी सी आयु में ही संसार का अनुभव कर लिया है और अच्छी तरह देख लिया है कि सद्धर्म में ही सुख है । मोह के कारण आप धर्मात्मा होकर कैसी

[1]—पांच रुपये का एक दीनार होता है ।

बातें कर रहे हैं ? संयम का महत्व आप सरीखे विद्वान् धर्मात्मा न समझेंगे, तो फिर कौन समझेगा ? जीवन की वास्तविकता विषय-सुख में नहीं है ?

प्रियदत्त सेट—पुत्री ! गृहस्थधर्म का पालन करने से भी व्यक्ति अपना आत्म कल्याण कर सकता है। देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान इन षट्कर्मों का गृहस्थ पालन करे तो निश्चय ही वह अपना हित साधन कर लेगा। सुवर्ण, मोती, वैडूर्य, माणिक्य, चांदी के जिनबिम्ब बनवाओ, नवीन जिनालय तैयार कराओ, स्वेच्छानुसार याचकों को दान दो, प्रतिष्ठाएं कराओ और गृहस्थी का सुख भोगो।

अनन्तमती—पिताजी, ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ने से कितना पाप होगा ? हमारे शास्त्रों में बताया गया है कि देव गुरु-शास्त्र की साक्षी पूर्वक लिये गये व्रत को कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जो व्यक्ति व्रत को छोड़ देता है उसे अत्यन्त पाप लगता है। अतः आप स्वयं विचार करें, मैं लिये गये व्रत को कैसे छोड़ दूं ?

प्रियदत्त—बेटी ! व्रत छोड़ने से जो पाप होगा उसका मार्जन जिनालय बनवा कर प्रतिष्ठा करा देने से हो जायगा। भगवान का अभिषेक, पूजन चार प्रकार का दान प्रति दिन करती जाओ। घर में धन की कुछ भी कमी नहीं है। यदि तुम विवाह नहीं करती हो तो इस धन का उपयोग कौन करेगा ? अतः विवाह करना तुम्हें आवश्यक है।

अनन्तमती—पिताजी ! आपने जितने भी धर्म साधन के ढंग बताये हैं वे सभी पुण्योत्पादक हैं किन्तु इन वस्तुओं से धर्म नहीं हो सकता है ? संयम धर्म है, इसके छोड़ने से पाप होगा। आप अभी मोह के कारण धर्म की तह तक नहीं पहुँचे हैं। ब्रह्मचर्य के समान इस जीवन में अन्य वस्तु सुखकर नहीं हो सकती है। मैं आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर देश, धर्म और समाज की सेवा करूंगी। मेरा जीवन अपने लिये नहीं होगा, समाज के लिये होगा।

अनन्तमती की इन बातों को सुन कर प्रियदत्त सेठ का बहनोई कहने लगा—अरी पुत्री ! अब मूर्खता को छोड़दे, लड़कपन में लिया गया व्रत किस काम का ? मजाक में लिये गये व्रत भी कहीं पाले जाते हैं। उस समय तो तुम्हें कुछ भी बोध नहीं था ढोंग करना अच्छा नहीं है, विवाह करने में ही कल्याण है। क्या कभी लड़कियां अविवाहिता रहती हैं। विवाहित हो जाने पर भी देश, समाज और धर्म का उत्थान किया जा सकता है।

अनन्तमती—आपका कहना कुछ अंशों में ठीक हो सकता है। व्रत लेने में मजाक नहीं किया जाता ? सांसारिक बातों में हंसी- दिल्लगी की जाती है, व्रतों में नहीं। लड़कियां क्वारी रहकर भी आत्म कल्याण के साथ समाज

का उद्धार कर सकती हैं । राजुलदेवी को क्या आप भूल गये, उन्होंने अविवाहित रहकर ही समाज की भलाई की अपना कल्याण किया मैं संसार की असारता अच्छी तरह से समझ गई हूं, कोई भी प्रलोभन मुझे व्रतसे विचलित नहीं कर सकता है । मेरी प्रतिज्ञा सुमेरु के समान दृढ़ है । मैं संयमीरूपी रत्न को यों ही नहीं खोना चाहती हूं ।

वासुदेवी—अनन्तमती ! भूल करना जीवन में ठीक नहीं । हमारे कुल में आजतक ऐसा नहीं हुआ है । तुम्हारा विवाह न होने से कुल में कलंक लगेगा, लोग यह कहेंगे कि दरिद्रता के कारण विवाह नहीं हो सका; कुल की मर्यादा नष्ट हो जायगी, सर्वत्र वदनामी होगी । क्या भले घरानों की लडकियां ऐसी जिद्द करती हैं । तुम तेजस्वी, शील-वती, कुलदीपक और सर्व प्रकार से मान्य होकर ऐसी जिद्द क्यों करती हो ?

अनन्तमती—संयम से बड़कर कोई कीमती वस्तु नहीं ।

इस प्रकार उसने सभी परिवार के व्यक्तियों को उपदेश देकर शान्त किया और सभी को संयम की महत्ता समझा दी । वास्तव में संयम के समान कोई भी कल्याणकारी वस्तु नहीं है, संयमी जीव जो इन्द्रियों का निग्रह कर अपने आत्मस्वरूप का अनुभव करते हैं और इस अथाह संसार के पार हो जाते हैं । स्पर्शन इन्द्रिय की दासता के कारण व्यक्ति संसार में व्यभिचार करता है, रसना इन्द्रिय की दासता के कारण अभक्ष्य भक्षण करता हैं, घ्राण इन्द्रिय की दासता के कारण सुगन्धित इत्र, फुलेल आदि का उपभोग करता है । चक्षु इन्द्रिय की दासता के कारण नाटक देखता है और कर्ण इन्द्रिय की दासता के कारण सुन्दर कर्णप्रिय गाने सुनता है । इस प्रकार यह जीव इन्द्रियों की दासता के कारण संसार में अकरणीय कार्यों को करता है । इन्द्रियां अत्यन्त प्रबल हैं, व्यक्ति इनकी दासता के बन्धन में पड़कर अनेक कष्ट उठाता है । अतः इन्द्रियों की गुलामी का त्याग करना परमावश्यक है । संयम इन्द्रियों के लिये लगाम का काम करता है, इसे छोड़ना महान् मूर्खता है ।

अनन्तमती ने वरदत्त मुनिराज की शिष्या कमल श्री आर्यिका से जिनदीक्षा ले ली और वह निःकांक्षित हो व्रत का पालन करने लगी उसके मनमें किसी भी प्रकार का प्रलोभन नहीं था । उसने कषाय और विकारों को उग्र तपस्या के द्वारा भस्म कर दिया । परमागमका अध्ययन करती हुई ध्यान,आत्मचिन्तन में लीन रहने लगी । उसने चारों अनुयोगों का अध्ययन किया, महापुरुषों के चरित्रों का मनन, चिन्तन और स्मरण किया ।

चौथी कथा

निर्वाण लक्ष्मी की प्राप्ति में कारण निःकांक्षित अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ गौतम स्वामी को नमस्कार कर कहने लगा—प्रभो ! निर्विचिकित्सा अंग की कथा सुनने की मेरी इच्छा है, क्योंकि यह मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करानेवाली है। इसके श्रवण से सभी प्रकार के पाप क्षीण हो जाते हैं, वासनाएं दूर भाग जाती हैं और आत्मा निर्मल बन जाती है।

गौतम गणधर—पद्य के समान सुन्दर गुम्फित कथा होती है, इसमें महल के दरवाजों के समान कई आमुख रहते हैं, जिससे भव्य जीवों को उल्लास होता है। यह सुमेरु पर्वत के समान गम्भीर, सिद्धपीठ के समान उत्कृष्ट, राजनीति के समान शासन करने वाली, धर्म के समान सुखदायक, दान के समान कल्याणकारी होती है। जो जीव धर्म कथाओं का श्रद्धान कर जीवन में प्रगति करता है, वह धन्य है। धर्म कथा से ज्ञान और चरित्र का संवर्द्धन होता है। तथा सम्यग्दर्शन में श्रद्धा दृढ़ होती है।

निर्विचिकित्सा अंग को जिन्होंने अच्छी तरह जानकर उत्साह पूर्वक धारण किया है, उनका वर्णन करना संभव नहीं, क्योंकि इस अंग का धारी व्यक्ति मोक्ष लक्ष्मी का वरण करने जा रहा है। सम्यग्दृष्टि जीव किसी से घृणा और द्वेष नहीं करता है। यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है, इसमें मल स्रावित करने वाले नौ द्वार हैं। अतः स्वभावतः अशुचि शरीर को देखकर घृणा नहीं करनी चाहिये। आत्मज्ञ जीव वस्तुस्वरूप का अनुभव कर घृणा से मुक्त रहता है। इस निर्विचिकित्सा अंग के पालन करनेवाले की कथा आगे कही जाती है।

भरतक्षेत्र में अनुपम सुन्दर रत्न और मणियों से परिपूर्ण कच्छ नाम का देश है। यह देश चारों ओर नन्दन वन के समान—वाटिकाओं से सुशोभित स्वर्गपुरी के समान शोभनीय है। इसी सुन्दर मनोज्ञ धन—धान्य से परिपूर्ण देश में रौरवपुर नाम का नगर था, इसमें महामण्डलीक उदयन नाम का राजा राज्य करता था। यह राजा शरणागत रक्षक दुष्टों को दण्ड देने वाला, दीनों के लिये कल्पवृक्ष के समान, उज्वलकीर्त्ति का धारी, नाना उत्तम गुणों से युक्त, कामदेव के समान सुन्दर और कृपालु था। भगवान् जिनेन्द्र की पूजा और भक्ति करने में राजा भरत के समान तल्लीन रहने वाला था, उसकी दृढ़ता और विरक्ति देखकर भरत की आशंका उत्पन्न हो जाती थी। इसकी दान कीर्त्ति समस्त भरत-

प्रेम में स्वरूप थी। सम्यग्दर्शन में वह सनत्कुमार चक्रवर्ती के समान हुए था, उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि इसका रूप स्वयं मदन और सनत्कुमार से भी बढ़कर है। प्रजा उससे बहुत सन्तुष्ट थी, राज्य में ईति-भीति कहीं भी नहीं थी।

चारों प्रकार के दान देने में वह राजा श्रेयांस से भी बढ़कर था, उसके दान की यशोपताका सर्वत्र फहरा रही थी। सर्वदा लोग उसके गुणों का स्तवन करते थे। इस सर्वगुण सम्पन्न राजा की प्रभावती रानी थी, वह इन्द्राणी के समान रूप-सौन्दर्यशालिनी और गुणवती थी। वे दोनों पति-पत्नी जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में सदा लीन रहते थे। प्रभावती का मुख कमल के समान सुन्दर था और उससे गन्ध भी कमल की आती थी। प्रभावती के सिवा इस राजा के और भी कई रानियां थीं, परन्तु पटरानी प्रभावती ही मानी जाती थी, राजा उद्दायन धर्मसाधनपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था।

एक दिन सौधर्म स्वर्ग की सुधर्मा नामक सभा में, जिसमें मनोहर रूपधारिणी, चंचलनेत्रवाली चतुर, हाथी की सूंड के समान लम्बी-लम्बी भुजाओंवाली अप्सराएं चमर ढुला रही थीं, गीत-नृत्य, वादन आदि नाना प्रकार के मनोरंजन के साधन प्रस्तुत थे, हाथ जोड़कर देव कहने लगे—प्रभो! आप सर्वजीव हितकारी जैनागम के मर्मज्ञ हैं, अतः सद्धर्म का स्वरूप आपसे हम लोग जानना चाहते हैं। क्योंकि सद्धर्म ही सब जीवों का कल्याण समानरूप से कर सकता है, पापी से पापी भी इस धर्म के धारण करने से अपना आत्म-साधन कर लेते हैं। यही स्वर्ग-मोक्ष को देनेवाला है, नरक और तिर्यंच गतियों से छुटकारा इसी धर्म के धारण करने से हो सकता है।

सौधर्मेन्द्र—वास्तव में सद्धर्म ऐसा ही होता है। यह धर्म किसी जाती विशेष के लिये नहीं, किन्तु मनुष्यमात्र के लिये है। जो व्यक्ति शुद्ध आचरण द्वारा इस धर्म को धारण करता है, उसकी कीर्त्ति संसार में व्याप्त हो जाती है। धर्म धारण करने के लिये किसी भी प्रकार के बन्धन की आवश्यकता नहीं है। उत्तम कुल में उत्पन्न होकर व्यक्ति चरित्रहीन, व्यसनी और दुराचारी हो सकता है, अतः उत्तम कुल में जन्म लेने ही से धर्म का पालन नहीं हो सकता। गुणों से नाम, रूप और आकृति की अपेक्षा से सभी मनुष्य समान हैं, धर्म ही एक ऐसा पदार्थ है जिसके धारण करने से व्यक्ति वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है। दयामयी अहिंसक धर्म ही सद्धर्म हो सकता है। इसमें व्यक्ति के चारित्र, आत्मिक-विकास आदि पर पूरा जोर दिया गया है। भक्ष्याभक्ष्य का विचार, अपने स्वरूप का मनन, रत्नत्रय की आराधना सद्धर्म में परिगणित है। जो मनुष्य इस प्रकार के धर्म को ग्रहण कर लेता है, वह अवश्य ही

अपना हित साधन कर लेता है । सज्जन और कोमल प्रकृति वालों को यह धर्म रुचिकर होता है, किन्तु दुष्ट प्रकृति वालों को यह बुरा लगता है ।

जिस प्रकार चोर को चांदनी रात अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार सप्त व्यसनों के सेवन करनेवाले को धर्म अच्छा नहीं लगता है । समस्त सुखों की जड़ सम्यग्दर्शन में है, जो अष्टांग सहित इसका पालन करता है, वह नाना प्रकार की गतियों के भ्रमण से छुटकारा पा लेता है । जिस प्रकार सुभग व्यक्ति दर्पण में अपना मुंह देखते हैं तो उन्हें प्रसन्नता होती है, किन्तु नकटा व्यक्ति जब दर्पण में अपना मुंह देखता है तो उसे क्रोध आता है, इसी प्रकार श्रद्धालु पुण्यात्मा को सद्धर्म अच्छा लगता है, परन्तु पापी व्यक्तियों को इससे घृणा और द्वेष ही होता है ।

जैसे बुद्धिमान पुरुष मिट्टी मिश्रित अशुद्ध स्वर्ण में से अपने प्रयत्न द्वारा शुद्ध स्वर्ण निकाल लेते हैं, वैसे ही श्रद्धालु व्यक्ति धीरे-धीरे समीचीन धर्म को ग्रहण कर अपना कल्याण कर लेते हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि सोने और मिट्टी के भेद को न समझ कर— भेद विज्ञान के अभाव में कुगतियों में भ्रमण करते हैं । कुधर्म के उपदेशक बहुल मिल जाते हैं, पर सद्धर्म के उपदेशक इने-गिने व्यक्ति ही मिल सकते हैं । क्योंकि संसार के जीवों की प्रवृत्ति स्वभावतः विषयों में देखी जाती है, जो व्यक्ति मनमोहक व्यसनों की ओर आकृष्ट नहीं होते हैं वे ही वास्तव में धर्म के परिपालक हैं । साधारण व्यक्तियों को दयामय धर्म के धारण करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है, परन्तु पाप-मय धर्म उनके लिए बहुत ही आसान होता है । क्योंकि उसके लिए कुछ भी त्याग नहीं करना पड़ता है । और न किसी भी प्रकार का कष्ट सहना पड़ता है । भौतिक जीवन, जिसका उद्देश्य केवल खाना-पीना और आनन्द से रहना है, मिथ्यात्व या कुधर्म का द्योतक सद्धर्म विवेक सिखलाता है और प्रत्येक कार्य में क्यों और कैसे ? प्रश्न उठाकर अपना अमिट प्रभाव अंकित करता है । मूल्यवान् वस्तु के ग्राहक थोड़े व्यक्ति होते हैं, पर सस्ती चीजों के खरीदार अधिक से अधिक व्यक्ति मिल जाते हैं, इसी प्रकार साधना प्रधान सद्धर्म के धारण करनेवाले कम परन्तु मिथ्या आडम्बर युक्त धर्म को ग्रहण करनेवालों की कभी कमी नहीं रही हैं ।

व्यवहार धर्ममें दान, पूजा, स्वाध्याय, संयम आदि प्रधान हैं । दान देने से स्वपर कष्ट दूर हो जाता है; समाज और धर्म के अर्थ-साध्य कार्य सामूहिक दान के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं । जितने धन का व्यक्ति दान देता है, उतने धन से उसका मोह दूर हो जाता है, जिससे राग द्वेष की माया घटने से धर्म-साधन होता है । बात यह है कि धर्म

आत्मा में है, संसार के बाह्य पदार्थों में नहीं। दान में धर्म नहीं बसता है, बल्कि त्याग वृत्ति में धर्म है। कोई धनिक होकर अधिक धन दान में लगा रहा है, पर उसकी एक मात्र इच्छा कीर्त्ति–उपार्जन की है या और किसी प्रकार का स्वार्थ सिद्ध करने की है तो उसे कभी भी धर्मात्मा नहीं कहा जा सकता। आहार दान, ज्ञान दान, औषध दान और अभय दान इन चारों प्रकार के दान देने में धर्म अवश्य है, पर स्वार्थ के रहने पर धर्म नहीं रहता। स्वार्थ व्यक्ति को नीच बना देता है। भक्ति पूर्वक आहार दान देने से लक्ष्मी की वृद्धि होती है, मन्त्र सिद्ध होता है, सन्तान प्राप्त होती है, रोग-शोक दूर हो जाते है तथा बड़े से बड़े कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इस दान के प्रभाव से मनुष्य स्वर्गादि सुखों को तो प्राप्त करता ही है; किन्तु परम्परा से निर्वाण की भी प्राप्ति होती है। निदान बांध कर दान देने से दान निरर्थक हो जाता है।

ज्ञान दान के समान उपकारक अन्य नहीं है। ज्ञान या विवेक ही व्यक्ति की संसार के हेयोपादेय पदार्थों में प्रवृत्ति कराता है। अज्ञानी जीव वस्तु के स्वरूप से वंचित रहने के कारण सम्यक् प्रवृत्ति नहीं कर सकता है। अज्ञान की निवृत्ति हो जाने से व्यक्ति अपने कल्याण के मार्ग को प्राप्त कर लेता है, उसे हित अहित का ज्ञान हो जाता है। अतएव ज्ञान दान श्रेष्ठ दान है, इसके दाता को सभी प्रकार की सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है तथा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने के कारण आगे चलकर केवल ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है। यदि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में दो चार व्यक्तियों को भी ज्ञानी बना दे, तो वह बहुत बड़ा काम कर सकता है, आत्म श्रद्धा हो जाने पर आत्म ज्ञान होना तथा उस आत्मा को प्राप्त करने के लिये यत्न करना ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। ज्ञान दान का दूसरा नाम शास्त्र दान है, शास्त्र लिखवा कर या छपवा कर बांटना तथा शास्त्रोपदेश देकर मोह अज्ञान और विकारों को दूर करना भी शास्त्रदान है। इस दान का फल शास्त्रकारों ने श्रुतज्ञानी और केवलज्ञानी होना बताया है। एक शास्त्र का दान करनेवाले भी इस संसार से पार हो गये है।

औषध दान में रोगी व्यक्तियों को औषधि का वितरण करना चाहिये। जब किसीका रोग दूर हो जाता है, तो वह परिचर्या या औषध करनेवाले का बड़ा भारी उपकार मानता है, वह अपना नया जीवन प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होता है, अतः इस दान के द्वारा भी अद्वितीय चमत्कारी फलों की प्राप्ति देखी जाती है। त्यागी, साधु, महापुरुषों की परिचर्या करना, रोगी होने पर उनकी सभी प्रकार से संभाल रखना, शुद्ध औषध को देना आदि सभी औषधदान

में गर्भित हैं। इस दान के करने वाले निरोगी रहते हैं। जिस व्यक्ति को सदा स्वस्थ रहना हो और कञ्चन जैसी निर्मल काया की इच्छा हो उसे औषध दान देना चाहिये। निदान बांधकर दान देने से समस्त फल नहीं मिलता है अतः निस्वार्थ भाव से स्वयं त्यागी बनकर दान देना चाहिये।

अभयदान का अर्थ है, दीन-असमर्थ जीवों की प्राण रक्षा करना तथा उनकी सब प्रकार से हिफाजत करना प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राण प्यारे होते है। जो उनकी रक्षा करता है। वास्तव में वह उनका सबसे प्रिय पात्र होता है। अभय दान करने वालों को सद्विवेक पूर्वक दान करना चाहिये। प्राण रक्षा के समान संसार में दूसरा सुखद कार्य नहीं है। इस प्रकार जो व्यक्ति इन चारों प्रकार के दान धर्मों का पालन करता है, वह धर्मात्मा है। गृहस्थ अपनी शक्ति के अनुसार त्यागी, साधु संन्यासियों को दान देता है। प्रभु-भक्ति कर भी धर्म संचय करता है। भगवान् की भक्ति से आत्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट हो जाता है। यही जीवात्मा किस प्रकार परमात्मा बन जाता है, यह भक्ति के चमत्कार द्वारा ही अवगत किया जा सकता है। जिस प्रकार पारस मणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, उसी प्रकार भक्ति के संयोग से जीवात्मा भी परमात्मा बन जाता है। यद्यपि भक्ति श्रद्धा के अन्तर्गत है, बिना श्रद्धा के भक्ति हो नहीं सकती है, परन्तु भक्त जीव अपने हृदय को प्रभु चरण में अर्पण कर समस्त आत्मिक शक्तियों का विकास कर लेता है। नित्य प्रभु की भक्ति से अपनी आत्मा के गुणों का स्मरण होता है, जिससे निर्वाण प्राप्त करने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती। भगवान् की पूजा दरिद्रता, रोग, शोक, मोह मान आदि को दूर कर देती है। अतः सद्धर्म के भीतर प्रभु-भक्ति की गणना की गई हैं।

शास्त्र स्वाध्याय भी सद्धर्म में शामिल है। क्योंकि इसके द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है, हिताहित की प्रवृत्ति और निवृत्ति भी इसीके ऊपर आश्रित हैं। जितने समय तक व्यक्ति स्वाध्याय करता है, उतने काल तक उपयोग के स्थिर रहने के आत्मिक शक्ति का विकास होता है। स्वध्याय की गणना तपों में भी की गई हैं; क्योंकि कर्म निर्जरा का कारण यह है! इस प्रकार सद्धर्म का किंचित् स्वरूप सौधर्मेन्द्र ने कहा।

एक देव—प्रभो! धर्म के आराधक भव्य को कैसा होना चाहिये ?

सौधर्मेन्द्र—घोड़े के मुख में लगाम लगाये जाने पर वह घास मुख में ही रख लेता है, पेट में नहीं जाने देता; उसी प्रकार धर्म को जो ऊपर से ग्रहण करते हैं, उसका भीतर रसस्वादन नहीं करते वे सम्यक् आराधक नहीं

हैं। पुण्य की वृद्धि हो और पाप दूर हो जाय, इस धारणा को लेकर धर्म का श्रवण करना व्यर्थ है। भय या आतंक से धर्म का साधन नहीं हो सकता है। आराधक को श्रद्धालु, विनीत और जिज्ञासु होना चाहिये। विवेकी, श्रुतज्ञ, गुणी, जागरूक होना भी साधक के लिये आवश्यक है। भ्रमर के समान रसज्ञ, सोने के समान शुद्ध, पर्वत के समान स्थिर, स्फटिक के समान निर्मल, सुकवि के समान कुमार्ग रहित, जौहरी के समान परिक्षक, महाक्षत्रिय के समान विचार-परायण, देव के समान समबुद्धि, अर्जुन के समान धर्म प्रिय, संयमी के समान दयालु, सुकवि के समान यति प्रिय, सागर के समान अमर्यादित एवं सुमेरु की तरह धर्म में अटल होने वाला ही भव्य आराधक है। भव्य श्रावक धर्म के स्वरूप को अवगत कर धारण करे। अन्ध विश्वासी बनना उचित नहीं है। परीक्षा प्रधानी बनना तथा खरे-खोटे की परखकर धर्म को स्वीकार करना परीक्षा प्रधानी श्रावक का परम कर्त्तव्य है।

सांसारिक विभूतियां पुण्योदय से मिलती हैं, इन्हें प्राप्त कर अभिमान न करना तथा अपने आत्मस्वरूप का चिन्तन सदा करते रहना चाहिये। क्योंकि वैभव धर्म करने से प्राप्त हो, ऐसा कोई नियम नहीं है, हां, पुण्योदय से ऐहिक वैभव प्राप्त होता है। इसके साथ धर्म का विशेष सम्बन्ध नहीं है। बिना डंठी के जैसे छाता नहीं धारण किया जा सकता है, कोई भी राज्य के बिना राजा नहीं बन सकता, घृत के बिना स्वादिष्ट भोजन नहीं बन सकता, मार्ग बिना गमन नहीं हो सकता, योग्यता और चतुराई के बिना कोई मंत्री नहीं बन सकता, बिना वर्तन के भोजन नहीं बनाया जा सकता उसी प्रकार पुण्योदय के बिना सम्पत्ति प्राप्त नहीं हो सकती। सांसारिक वैभव पुण्य के दास हैं, यह पुण्यार्जन दान, पूजा, स्तवन, अभिषेक, परोपकार, स्वाध्याय, संयम, गुरुभक्ति आदि के करने से होता है। मानव समाज की भलाई करने वाले कार्य पुण्य माने गये हैं।

कर्मों का उदय प्रबल होता है। रामचन्द्र और पाण्डवों को भी कर्मों ने नहीं छोड़ा, स्त्री-माता, घर कुटुम्ब आदि से पृथक होना पड़ा। क्या ये महापुरुष मन्त्र-तन्त्र नहीं जानते थे? अपने कर्मों को मन्त्र-तन्त्र के प्रभाव से क्यों नहीं नष्ट कर सके?

सगर, भरत और अद्रुभसेन जैसे उदार वीर भी समस्त पृथ्वी के अर्धाधिपति थे, चक्रवर्ती हुए। पुण्यानुबन्धी पुण्य से क्या भास्वर पुण्य का बन्ध नहीं हो सकता है? संसार के वैभवों से लिये पुण्य ही प्रधान है।

जिसकी आयु पूर्ण हो जाती है, उसको कोई नहीं बचा सकता है। जीव को शाश्वत सुख पुण्य से नहीं मिल

... सुख ही उपलब्ध होता है, अतीन्द्रिय सुख नहीं । अतीन्द्रिय सुख ही शाश्वत हो सकता है, यही अविनाशीक है। पुण्योदय से क्षणिक सुख-दुःख प्राप्त होते हैं, अतः भव्य श्रावक को धर्म और पुण्य का रहस्य समझ कर रत्नत्रय रूप धर्म को धारण करना चाहिये। यदि आत्मधर्म को धारण करने की शक्ति न हो या कठिनाई हो तो पुण्य कार्यों को सम्पन्न करना चाहिये। पाप कार्य, सप्तव्यसन सेवन, अभक्ष्य-भक्षण आदि का त्याग तो जीवन में अवश्य होना चाहिये। इनके त्याग किये बिना मानव का जीवन पशुवत हो जाता है।

धर्म साधन के लिये निदान नहीं बांधना चाहिये। माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीनों शल्य माने जाते हैं, जीव व्रती शल्य के दूर करने पर ही हो सकता है। शल्य हृदय में कांटे के समान चुभते रहते हैं। अतः धर्म का रहस्य जानने के लिये आगम का अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये। क्योंकि परमागम के बिना उत्तम गति का उपाय नहीं जाना जा सकता है। जिनवाणी ही निर्वाण लक्ष्मी के समक्ष उपस्थित कर देती है। मोह रूपी कुट्टिनी इसके सामने नहीं ठहर सकती है।

देव—हे स्वामिन् ! निर्विचिकित्सा अंग के धारक इस लोक में कितने जीव हैं ? क्या सम्यग्दर्शन का निर्दोष रूप से पालन करनेवाले इस समय विद्यमान हैं ? और उनकी संख्या कितनी है ?

सौधर्मेन्द्र—इस भरत क्षेत्र के रौरवपुर नाम के नगर में निर्मल, उदार गुणों का धारी, भगवान् के चरणों में भ्रमर की तरह लुब्ध, पृथ्वी में भव्यों द्वारा स्तुत्य, सदाचारी उद्दायन नाम का राजा निर्दोष सम्यग्दृष्टि है तथा निर्विचिकित्सा अंग का पूर्णतया पालन करने वाला है। इस प्रकार सौधर्म की सभा में उद्दायन की प्रशंसा की गई।

वासवदेव आश्चर्यान्वित हो कहने लगा कि भरतक्षेत्र में एक ही सम्यग्दृष्टि है ? इतनी जनसंख्या के प्रदेश में एक ही व्यक्ति ऐसा क्यों है ? अन्य दो-चार व्यक्ति भी क्या सम्यग्दृष्टि नहीं होंगे ? मैं जाकर अवश्य परीक्षा करूंगा और सम्यग्दृष्टियों की संख्या का यथार्थ पता लगाऊंगा।

वासवदेव ने भरतक्षेत्र में जाकर मुनिरूप धारण किया। शरीर को कृश, नाक और कान को बेढंगा, आंखों से दुर्गन्धित पानी बहाते हुए, समस्त शरीर से खून-पीप निकालते हुए, गलित कुष्ठ, क्षीण काय, हड्डियों का ढांचा आंतें निकाले हुए, अपना वेष बनाया। इस प्रकार के मुनि को देखते ही दूर से घृणा उत्पन्न होती थी। उसके

वीभत्स शरीर मे निकलने वाली दुर्गन्ध इतनी कड़ी थी कि कोई भी उसके सामने नहीं पड़ता था।

वह जिस गांव में गया, उसी में महान् दुर्गन्धि छोड़ता हुआ। उसकी दुर्गन्धि के कारण कहीं पर उसे आहार नहीं मिला। नामधारी सभी श्रावक उसे देखते ही छिप जाते थे। क्रमशः चलकर वह रौरवपुर नगर में आया; सभी नगर के व्यक्ति उस कोढ़ी के घृणित शरीर को देखकर घबड़ा गये, दुर्गन्धि के कारण कोई भी उसके सामने नहीं आया। कुछ उसकी निन्दा करने लगे, कुछ तिरस्कार करने लगे और कुछ उसको गालियां देने लगे। कुछ कहने लगे देखो इतना भयंकर कुष्ठ रोग होने पर भी इसे खाने की इच्छा है। मौत के दिन निकट हैं, फिर भी भोजन की लालसा दूर नहीं हुई है। थोड़ा आगे चलने पर एक जातिमूढ़ बोला—शरीर सड़ गया है, हाथ पैर बेकाम हो गये हैं, इसका मर जाना ही अच्छा है। न मालूम यह बदकिस्मत क्यों जीवित रहना चाहता है? इस प्रकार की आलोचना सुनता हुआ वह आगे बढ़ा। वहां एक श्रावक मिला, वह कहने लगा—इतना दुःख क्यों सहन कर रहा है? अब आहार-पानी छोड़ अथवा कुंए में कूदकर प्राण दे देने चाहिये। इस प्रकार के जीवन से क्या लाभ? आशा बड़ी बुरी वस्तु है, मनुष्य आशा को लेकर ही जीवित रहता है। तरह-तरह की आलोचना को सुनता हुआ वह मुनि आगे चला।

आगे जाने पर एक श्रावक सोचने लगा कि यह मुनिराज क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदि २२ परिषहों को को सहन करते हैं, अशुभोदय से इन्हें कुष्ट हो गया है। इतने महान् कष्ट के आने पर भी इन्होंने अपने चारित्र को न छोड़ा। इस प्रकार दुर्धर चारित्रधारी मुनिराज को धन्य है। आगे जाने पर एक श्रावक करुणा बुद्धि से कहने लगा—देखो किसी को एक छोटा सा घाव होजाने पर कितना कष्ट होता है, यह मुनिराज इतनी महान् वेदना को सहन करते हुए भी अपनी चर्या के लिये आ गये हैं। इनके समान कौन धन्यवाद का पात्र होगा।

अन्य श्रावक कहने लगा—इस प्रकार महान् कष्टों को सहन करते हुए भी इन्होंने अपनी वीर भिक्षावृत्ति को नहीं छोड़ा है। इस धैर्यशाली को अनेक बार नमस्कार है। मुनिवेष धारी देव उपर्युक्त श्रावकों को अपने-अपने विचारानुसार नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव आयु का वन्ध करने वाला अनुमान करता हुआ आगे बढ़ा।

आगे जाने पर एक कुसंगति में पड़ा हुआ जैन श्रावक कहने लगा—आज तक हमने इस प्रकार के मुनि को नहीं देखा, यह कोढ़ी कहां से आ गया? जैनवृत्ति कितनी कठिन है कि इस दुरावस्था में भी यह साधु अपने व्रतों के पालने के लिये भिक्षार्थ यहां आया है। आगे जाने पर जड़मति श्रावक मिला; वह कहने लगा—कि दुर्गन्ध के मारे

नाक फटी जा रही है, यह यहां से जल्दी चला जाय तो अच्छा है । कुछ दूर चलने पर शून्य हृदय श्रावक मिला और कहने लगा—सबसे कठिन कुष्ठ व्याधि है, इतनी वेदना दूसरे रोग में नहीं होती है, अतः इसे किसी समुद्र या नदी में गिरा देना चाहिये । आगे जाने पर एक वृद्ध मिथ्यादृष्टि कहने लगा—आज तक मैंने अनेक मुनियों को सुन्दर सुस्वादु भोजन दिया है, जिससे मेरे हाथ की अंगुलियां घिस गई हैं, पर इस प्रकार के मुनि को आहार देना चाहिये या नहीं ? शास्त्रों में इस सम्बन्ध में क्या लिखा है ? इसका पता नहीं । अनन्तकाल तक दुःख प्राप्त करनेवालों का मार्ग यही है । कुछ दूर चलने पर एक श्रावक पान खाता हुआ मिला और कहने लगा—कि आगे जाओ, यहां तुम्हारी दाल नहीं गलेगी । अन्य नवीन श्रावक कहने लगा—यह मुनि है या नहीं, इसे आहार के लिये पड़गाहा जाय या नहीं ? इस प्रकार की बात चीत होने लगी मुनि आगे बढ़ा—

एक अन्य श्रावक मुनि को देखकर कहने लगा—भाई तुम्हीं पड़गाहने जाओ, मैंने अभी स्नान किया है । दूसरा कहने लगा कि तुम्हीं जाओ, मैं इस कार्य को करलूं । इस प्रकार वहां से भी मुनिराज आगे चले गये । कुछ दूर जाने पर नवीन श्रावक वार्तालाप करने लगे कि हमने समझा था कि आगे के लोग मुनिराज को पड़गाह लेंगे, अन्यथा हमही पड़गाह लेते । इस प्रकार सब बहानाबाजी करने लगे । इस प्रकार किसी भी श्रावक को मुनि को आहार देने की हिम्मत नहीं हुई बदबू और खून-पीप टपकने के कारण कोई भी उनके पास जाने को तैयार नहीं हुआ श्राविकाएं भी ऊपर-ऊपर ही आहार की चर्चाएं करने लगीं परन्तु आन्तरिक इच्छा किसी की भी आहार देने की नहीं हुई; क्योंकि मुनि का शरीर इतना वीभत्स था जिससे कोई भी आहार देनेके लिये तैयार न हो सका । यद्यपि अनेक श्रावकों ने मुनि की चर्या की प्रशंसा की किन्तु वास्तविक निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने को कोई भी तैयार नहीं हुआ । मुनिवेष धारी वासवदेव जब सारी नगरी में घूम लिया और कोई भी वास्तविक श्रावक न मिला तो वह सोचने लगा—जैसे सभी वृक्ष फलों के बिना समान दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु फल आने पर सभी फलों का गुण अलग-अलग प्रकट हो जाता है । आम और लीची के वृक्ष समान दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु फल आने पर उनका भेद प्रकट हुए बिना नहीं रहता । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की क्रियाएं भी समान रूप से होती हैं, परन्तु अवसर आने पर दोनों का भेद प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता । कर्मों के क्षय के बिना क्षायिक सम्यग्दृष्टि कोई नहीं हो सकता । अतएव वासवदेव ने ऊहा-पोह के अनन्तर निर्णय किया कि अब राजा उद्दायन को परीक्षा के लिये चलना चाहिये ।

राजा उद्दायन उस समय राज सभा में सिंहासन पर बैठा हुआ था। जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर शोभित होता है उसी प्रकार राजा सिंहासन पर शोभित हो रहा था अथवा यों समझना चाहिये कि जिस प्रकार नक्षत्रों के समुदाय में चन्द्रमा शोभा पाता है, उसी प्रकार राजा उद्दायन अपने अमात्य, विद्वान् एवं अन्य लोगों के मध्य में बैठा हुआ शोभा प्राप्त कर रहा था, रानियां मोतियोंका हार पहने हुए सुन्दरवस्त्राभूषणों से सुसज्जित अद्भुत शोभा प्राप्त कर रही थीं। राजा के ऊपर चमर ढोरने वाली नारियां अप्सराओं के समान सुन्दरी थीं, इनके अंग-अंग से लावण्य फूटा पड़ता था। सभाकी नर्तकियां नाना प्रकार के आभूषण पहने हुए अपनी ओर दर्शकों का चित्त आकृष्ट करतीं थी। वे नृत्य विद्या में अत्यन्त प्रवीण और हाव-भाव में चतुरा थीं। राजा की सभा में ये नर्तकियां सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की देवाङ्गनाओं से भी बढ़कर थीं। राजा की सभा इन्द्र की सभा के तुल्य थी, कवि कविता की रचना कर उपस्थित मनुष्यों में वीर-—शृंगार और शान्त रस की धारा प्रवाहित करने में संलग्न थे। राजा के पास अनेक देशों के छोटे-छोटे राजा उपहार भेंट कर रहे थे। राजा का विदेशी विभाग बहुत ही दृढ़ था, संकेत पर ही सारी व्यवस्था विदेशी दूतों की की जा रही थी।

राजा उद्दायन ने मुक्ति दूत के समान उन मुनिराज को देखा तो तुरन्त सिंहासन से खड़ा हो गया और शुद्ध वस्त्र पहन कर मुनिराज को पड़गाहने के लिये आया। वह अपार भक्ति सहित मुनिराज के चरणों में गिर गया तथा नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाह कर उन्हें उच्चासन पर बैठाया। मुनि भेष धारी वासवदेव ने इतनी दुर्गन्ध छोड़ी, जिससे वहां नाक बन्दकर भी रहना संभव नहीं था। दुर्गन्ध सहन न होने से बहुत से लोग भाग गये, पर कुछ लोग राजा के भय से बड़ी कठिनाई के साथ नाक बन्द कर नीचे को मुख किये खड़े रह गये। रानियां भी दुर्गन्ध से घबड़ा कर भाग गयीं, किन्तु पट्टमहिषी प्रभावती ने प्रसन्नता पूर्वक मुनिराज के आहार की तैयारी की। वह कहने लगी कि श्रेष्ठ रत्न मैलरूपी शरीर में पड़ गया है, इस मैल को दूर करने के लिये ऐसी कठिन पथ्या की आवश्यकता है। प्रभावती रानी सहित राजा उद्दायन ने नवधा भक्ति सहित मुनि को आहार दिया। मुनि ने भी कण्ठ पर्यन्त खूब भोजन कर लिया, जिससे उनका शरीर कांपने लगा, आंखों की पुतलियां निकल आयीं, श्वास तेजी से चलने लगीं तथा दुर्गन्ध भी शरीर से निकल रही थी।

मुनि ने राजा और रानी के ऊपर कांपते हुए वमन कर दिया तथा यह वमन सिर से लेकर पांव तक वज्र-

लेप हो गया, किन्तु राजा-रानी को इस बात से तनिक भी कष्ट नहीं हुआ और न अपने मन में उन्होंने घृणा ही की; बल्कि मुनिराज के वमन से राजा के मन में यह चिन्ता अवश्य हो गयी कि हमारा भोजन न मालूम कैसा था, जिससे हमारे कारण मुनिराज को अपूर्व कष्ट हो रहा है। हमारे न मालूम किस अशुभ कर्म का उदय आ गया है, अन्यथा हमारे निमित्त से मुनिराज को इतनी तकलीफ क्यों होती ?

पुनः राजा विचारने लगा—अरे मैं कैसा पापी हूं ? मैंने मुनि को उनकी प्रकृति के अनुकूल आहार नहीं दिया, इसी से उनको वमन हो गया है। इस प्रकार राजा उद्दायन आत्मालोचना करता हुआ गर्म जल से उनके शरीर को धोने लगा और स्वच्छ कपड़े से शरीर को पोंछ दिया तथा बाहर लाकर एक पट्ट पर बैठा कर मुनि की स्तुति करने लगा। पश्चात् रानी प्रभावती भी मुनि की सेवा करती हुई बोली—इस शरीर का विचार किया जाय तो निश्चय ही ज्ञात हो जायगा कि इसमें तिल मात्र भी शुचित नहीं है। अतः जहां तक हो सके इस शरीर से आत्म कल्याण का कार्य लेना चाहिये। यह तो हमारा गुलाम है, यदि इसके ऊपर यथार्थ नियन्त्रण न किया जायगा तो यह उच्छृंखल हो जायगा। जिस प्रकार सांप के बिल में हाथ डालने से काटता हैं, उसी प्रकार शरीर के स्पर्श से सभी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं। यह बिजली की चमक के समान क्षणिक, ग्रह के समान पीड़कारक, कृष्ण पक्ष के समान भयोत्पादक, शिशु के समान चंचल,तृणाग्नि के समान अस्थिर एवं सब प्रकार से दुर्गुणों की खान है। जो इस शरीर को प्राप्त कर रत्नत्रय की आराधना करता है, वही सफल माना जाता है।

वासवदेव प्रसन्न होकर सोचने लगा कि सौधर्म सभामें जो इनके गुणों का वर्णन किया गया था, वह सच है। वास्तव में इनके समान गुणी और सम्यग्दृष्टि जगत् में शायद ही कोई होगा। इस भरतक्षेत्र में मैंने भ्रमण कर देख लिया कि राजा उद्दायन और रानी प्रभावती दृढ़ सम्यग्दृष्टि हैं। निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने में ये अद्वितीय हैं। इनके सम्यक्त्व और निर्विचिकित्सा अंगका वर्णन धरणेन्द्र भी नहीं कर सकता है। अतएव अब मुझे अपने वास्तविक रूप को प्रकट करना चाहिये। ऐसा निश्चय कर उसने अपना दिव्य शरीर प्रकट किया।

आश्चर्यान्वित हो राजा उद्दायन ने पूछा—आप कौन हैं ?

वासवदेव—सौधर्म स्वर्ग में एक दिन यह चर्चा उपस्थित हुई थी कि निर्विचिकित्सा अंग में कौन प्रसिद्ध है, इन्द्र ने इसका उत्तर दिया था कि रौरवपुर का राजा उद्दायन और उसकी रानी प्रभावती इस अंग के पूर्णधारी हैं।

सौधर्मेन्द्र की बात सुनकर सभी देवों ने आपकी स्तुति की, हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मैं परीक्षा करने के लिये चला आया। मैंने आपको अत्यन्त कष्ट दिया, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। मेरा नाम वासवदेव है। सभा में आपका जैसा वर्णन किया गया था, आप उससे बढ़कर गुणी और धर्मात्मा हैं। दुःखी जीवों की सेवा करना आपको अत्यन्त प्रिय है। मैंने समस्त भरतक्षेत्र ढूढ़ डाला पर आपके समान निर्विचिकित्सा अंग का पालन करनेवाला नहीं मिला। मैं युगल मूर्त्ति—राजा और रानी से बहुत प्रसन्न हूं, आप दोनों ही नैष्ठिक धर्मात्मा और सेवाभावी हैं। देवों में न पाये जानेवाले गुण आप लोगों में मौजूद हैं, इसी कारण देव लोग आपकी स्तुति करते हैं। रानी की ओर देखकर पुनः वासवदेव बोला—

हे राजन् ! इस पुण्यमती को शीलवती भी कहा जा सकता है। शील शिरोमणि नारियों से ही यह संसार चल रहा है। शील में अद्भुत शक्ति होती है। नारी की सब से बड़ी सम्पत्ति शील है, जिसने इस सम्पत्ति को खो दिया वह संसार में पापिनी है। शीलवती पत्नी संसार में बड़े पुण्योदय से मिलती है। पातिव्रत धर्म का पालन करने से नारी अपनी पर्याय का छेदन कर पुरुष पर्याय को प्राप्त करती है। इस प्रकार स्तुति कर वासवदेव क्षमा याचना करता हुआ स्वर्ग को चला गया।

कुछ दिनों के उपरान्त राजा उद्दायन अपने किसी कार्य से विदेश चले गये। एक दिन प्रभावती की बचपन की सखी तर्कशास्त्र की ज्ञाता नारायणदत्ता नाम की ब्रह्मचारिणी आई। यह मिथ्याभेष धारण किये थी। सर्वत्र यह प्रचार कर रही थी कि मेरे समान विदुषी और ब्रह्मचारिणी अन्य कोई नहीं है। उसकी कीर्त्ति प्रायः सर्वत्र फैल गयी थी, भक्तों की संख्या भी अपरिमित थी। प्रभावती को देखकर उसने सोचा कि इसका श्राविकापन छुड़ाऊंगी, यह मुझ से बात-चीत भी नहीं करती है और न मुझे नमस्कार ही। अपने को सम्यग्दृष्टि समझती है, अतः इसका अभिमान चूर करूंगी। यद्यपि रानी प्रभावती ने उसका आदर-सत्कार किया किन्तु जैसा वर्ताव होना चाहिये था, उसने नहीं किया, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को किस प्रकार वह नमस्कार करती ?

जैसे सांप को दूध पिलाने पर विष ही उत्पन्न होता है, पित्त प्रकृतिवाले को मीठा दूध पिलाने पर भी कड़ुवा ही लगता है उसी प्रकार दुष्ट प्रकृति के जीव अपनी गलती भी दूसरों की समझते हैं और नाना प्रकार से भलाई करने पर भी अपने दुष्ट स्वभाव को नहीं छोड़ते। नारायणदत्ता सोचने लगी—बाल सखी समझ कर ही इसने मेरे साथ अच्छा

व्यवहार नहीं किया। इसे वैभव प्राप्त कर घमण्ड हो गया है।

कमल तालाब को छोड़ दे, हंस कूड़ा–करकट खाने लगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे तो स्वभावच्युति का दोष आवेगा। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने पद की मर्यादा को छोड़ दे तो बड़ी गड़बड़ी हो जायगी, रानी अपने पद के अभिमान में चूर है, अतः यह इसका दोष नहीं किन्तु इसके पद का दोष है। मैं अपने अपमान का बदला इससे अवश्य लूंगी, अतः प्रतिज्ञा करती हूं कि इसका श्राविकापन दूर किये बिना नमक ग्रहण नहीं करूंगी। योगियों का अपमान करने का फल इसे अवश्य मिलेगा।

वह पुनः सोचने लगी कि चोल नरेश के पास जाना व्यर्थ होगा, क्योंकि वह जैन धर्म का बड़ा भारी श्रद्धानी है। काश्मीर नरेश की पट्टरानी बनने के लायक यह अवश्य है किन्तु वह भी जैन धर्म का अनुयायी है अतः उससे भी मेरा कार्य नहीं हो सकेगा। पाण्ड्य नरेश भी जैन धर्म के आराधक हैं अतः उनसे भी मेरा काम नहीं हो सकेगा। संभवतः मालव नरेश चण्डप्रद्योत के पास जाने से मेरा कार्य हो जायगा।

उपर्युक्त निश्चय कर उसने प्रभावती का एक सुन्दर चित्र खींचा, उसे लेकर वह उज्जयिनी गई और चण्डप्रद्योत को भेंट किया, राजा चित्र को देखते ही काम बाण से विह्वल हो गया तथा अपनी चेतना को खो बैठा। होश में आने पर वह कहने लगा कि यह किस अनिन्द्य सुन्दरी का चित्र है, तुमने इसे कहां पाया? नारायणदत्ता–राजन्! यह रौरवपुर के राजा की पट्टरानी का चित्र है, यह अद्भुत रूप राशि है इसकी तुलना अप्सराओं से नहीं की जा सकती है। आपकी पट्टरानी बनने के यह योग्य है, मैं इसी बात की सूचना आपको देने के लिये आयी हूं।

राजा ने नारायणदत्ता को प्रचुर धन दिया, खूब सम्मान किया तथा मधुर वचन कहकर पूछा कि प्रभावती रानी को प्राप्त करने का उपाय क्या है?

नारायणदत्ता—राजन्! इस समय राजा उद्दायन भी राज्य में नहीं है, वह विदेश गया है। अतः इस समय आप जल्द जाकर उसे ले आइये, आपका काम हो जायगा। उद्दायन राजा के रहने पर आपका काम आसानी से नहीं होगा, क्योंकि वह बड़ा ही पराक्रमी, शूरवीर और युद्धकला का मर्मज्ञ है।

मालव नरेश ने नारायणदत्ता की बात स्वीकार कर रौरवपुर को प्रस्थान किया और जल्दी ही वहां पहुँच कर राज्य को घेर लिया। सालंकार नाम की दासी को रानी प्रभावती के पास भेजा और सन्देश कहलाया। दूती

जाकर कहने लगी——

हे महारानी ! हमारे महाराज चण्डप्रद्योत ने आपका सुख समाचार जानने के लिये मुझे यहां भेजा है। टालमटूल करने की कोई बात नहीं है, आप लोगों की जोड़ी ठीक मिलेगी। आप दोनों सुखी हो जायंगे। मालव नरेश शूरवीर और बलशाली है, आपको ऐसे प्रभावशाली राजा की पत्नी बनने से गौरव प्राप्त होगा। उद्दायन की मालव नरेश से कोई तुलना नहीं, कहां यह जुगुनू और कहां वह चन्द्र, यह अदना सिपाही है तो वह रणक्षेत्र में हुंकारने वाला सिंह। आप सच मानिये संसारिक भोगोपभोगों की वहां कुछ भी कमी नहीं है, सभी भोग सामग्रियां प्रचुर परिमाण में एकत्रित की गई हैं। इस प्रकार प्रभावोत्पादक ढंग से राजा के गुणोंका वर्णन करने लगी। अपनी बात को समझाती हुयी कहती जाती थी कि मालव नरेश को प्राप्त करने से आपका भाग्य सितारा चमक जायगा। आप पट्टमहिषी बन कर शासन करेगीं, अन्य रानियां आपके चरणों की दासी बनी रहेंगी तथा आपकी आज्ञा को सिर आंखों पर रख-कर मानेंगी।

हे तरलाक्षी ! आपकी एक तस्वीर राजा के पास है, राजा उस तस्वीर को देखते ही विरह से विह्वल हो गया है। अपनी सेना सहित मालव नरेश स्वयं यहां पधारे हैं, आप मेरे साथ चलिये और जीवन को सुखमय बनाईये। ऐसा सौभाग्य विरले ही पुण्यशाली जीवों को प्राप्त होता है। जीवन को यों ही बिता देना ठीक नहीं है, इसका सदुपयोग करना चाहिये। यद्यपि मैं मानती हूं कि आप पट्टरानी यहां पर भी हैं, परन्तु मालव में जो सुख और भोग प्राप्त होंगे, वे यहां कभी भी नहीं मिल सकते हैं। सुन्दर वस्त्राभूषण, इत्र-फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थ तथा अन्य भोग सामग्री की वहां प्रचुरता है। रानी प्रभावती——अरी मूर्खा ! परस्त्री में लीन रहनेवाला कभी सत्पुरुष नहीं हो सकता है, वह कभी गुरु की भक्ति नहीं कर सकता है। अतः आपका राजा दुर्जन है, सज्जन नहीं, पशु है, मनुष्य नहीं, मूर्ख है, ज्ञानी नहीं, हिंसक है, अहिंसक नहीं; क्रूर है, दयालु नहीं; पापी है, धर्मात्मा नहीं और मिथ्यादृष्टि है, सम्यक्दृष्टि नहीं। ऐसे राजा की प्रशंसा करते हुए तुझे शर्म आनी चाहिये।

दूती—अरी रानी साहिबा ! धर्म का ठेका आपने ही नहीं ले रखा है। धर्म वास्तव में खाने पीने और आनंद लूटने में है। हमारा नरेश जीवन के वास्तविक तत्त्व से परिचित है अतः संसार में सुन्दर वस्तुओं का उपभोग करना चाहता है। साधुओं और शास्त्रों के वचन स्वार्थियों के हैं, जिन्हें संसार के भोगोपभोग नहीं मिलते हैं, वे ही ऐसी नीरस

बातें किया करते हैं। जीवन का वास्तविक सुख भोग में हैं। आप पागलों की सी बातें क्यों कर रहीं हैं, आनन्द से भोग भोगिये। ऐसे सुन्दर शरीर को प्राप्त कर भी आप भोगों से वंचित रहना चाहती हैं, वास्तव में आप से बढ़कर मूर्ख अन्य कोई नहीं होगा।

रानी प्रभावती—अरी दुष्टा! बोलते हुए तेरी जीभ कट क्यों नहीं जाती है। तू पाप का समर्थन करते हुए तनिक भी भय नहीं कर रही है। व्यभिचारी, जुआरी, चोर और गुण्डों के यहां पर भी नरक के समान दुःख भोगना पड़ता है। पापी का संसार में कहीं उद्धार नहीं हो सकता। जो पाप में सुख समझता है, वह अबोध ही नहीं निरा मूर्ख है।

दूती—रानी साहिबा! ज्ञान ध्यान की बात छोड़ दीजिये, आप सीधे न मानेगीं तो आप को जबरदस्ती हमारे नरेश की बात माननी पड़ेगी। आप जानती हैं कि इस समय आपका कोई भी रक्षक नहीं। हमारी विशाल सेना के सामने आप अकेली क्या कर सकेगीं। यदि राजा उद्दायन आज लौट भी आवें तो भी कुछ नहीं हो सकता है। राजा उद्दायन की शक्ति कितनी है, सेना भी उनके पास थोड़ी है, अतः मेरी बात मान लेने में ही आपका कल्याण है, इसमें आपकी सब प्रकार से भलाई है। जिस शील की आप दुहाई दे रही हैं, वह आपकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगा। व्यर्थ ही आप खतरा मोल ले रही हैं। स्त्री के लिये शील क्या वस्तु है, जहां जाय वहीं आराम से रहने लगे, यही तो उसका शील है। पति भक्ति करनी चाहिये, यह मैं मानती हूं, आप वहां चलकर अपने नये पति की भक्ति कीजियेगा। नया पति ज्यादा सुख पहुँचावेगा।

प्रभावती रानी—अरी बदतमीज! तू अभी अनाप सनाप बोलती जाती है, तुझे धर्म कर्म से बिल्कुल डर नहीं। परमात्मा के नाम पर कुछ तो धर्म का निर्वाह कर। तैने अपने को बेच दिया है, गुलाम व्यक्ति की यही अवस्था हो जाती है। तू शील का महत्व क्या समझेगी। शील व्रत को छोड़ जीवित रहना कुत्तों का जीवन व्यतीत करना है। क्या कुत्ते जलेबी के स्वाद को समझ सकते हैं, विषयी श्वान को तो सूखी हड्डी ही स्वादिष्ट प्रतीत होती है।

दूती—रानी साहिबा! आप क्रोधित न हों। मैं संसार की सच्ची-सच्ची बातें आपके सामने रखती हूं। जीवन पानी के बुल-बुले के समान क्षणिक है; अतः जितना बन सके इससे सुख भोगना चाहिये। यदि मरते समय किसी भी प्रकार की लालसा बनी रह जाय तो निश्चय ही जीव को उसे पूरा करने के लिये संसार में जन्म लेना पड़ता है।

आपने कभी भोगों को भोगा ही नहीं है, अतः आप इसके सम्बन्ध में क्या जाने। धर्म कर जीवन सुखा लेना महान् बेवकूफी है। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि जीवन में वास्तविक सुख विषयों के सेवन से ही आ सकता है। संकीर्ण विचारवालों ने अथवा असमर्थ लोगों ने धर्म का ढकोसला फैला रखा है।

प्रभावती—अन्धा चलते समय आगे के गड्ढे को नहीं देखता है, उसी तरह पाप के उदय से जीव नरक ले जाने वाले कार्यों को नहीं समझता है। परलोक और आत्मा का अस्तित्व मूर्ख लोग नहीं मानते हैं।

दूती—हे कमलमुखी! ज्यादा बातें न करो, आपकी बातों में कुछ भी सार नहीं है। आप हमारे महाराज की पट्टमहिषी बन जाइये, आपका इसी में कल्याण होगा। राजा तुम्हारे कारण तुम्हारे देश की प्रजा को महान कष्ट पहुँचा रहा है। यदि वास्तव में आप दयालु हैं तो अपनी प्रजा पर दया करें, दुःखी प्रजा का दुःख आपके आत्म समर्पण से कम हो सकता है। आप कहने के लिये धर्म का ढोंग धारण किये हैं, पर वास्तव में धर्म कुछ भी नहीं जानती हैं। मालव नरेश तुम्हारे लिये जान दे रहा है और तुम उसकी परवाह भी नहीं करती हो, क्या यह हिंसा नहीं है। एक आदमी मर रहा है और आप धर्म-धर्म चिल्ला रही हैं,अतएव सब किसी की भलाई इसमें है कि आप प्रसन्नता पूर्वक मालव नरेश को स्वीकार कर लें।

प्रभावती—दुष्टा! तू सती के सत् को क्या समझेगी? सती के तेज से तीनों लोक जलकर राख हो सकते हैं। त्रिखण्डाधिपति रावण परस्त्री के मोह में अपना सर्वनाश कर चुका है, तब मालव नरेश जैसे क्षुद्रों की गणना ही क्या है? शील के समान संसार में सुखदायक अन्य कुछ भी नहीं है। हट यहां से अन्यथा तेरे प्राण ले लूंगी।

रानी को क्रोधित और उत्तेजित देखकर दूती अपने प्राण लेकर भागी और राजा से सारी बातें कह दी। मालव नरेश कहने लगा कि सीधे ढंग से नहीं मानती है, तो बलपूर्वक मानना पड़ेगा। जब यहां तक आगये हैं, तो अब बिना कार्य सिद्ध हुए लौटना मूर्खता है। मेरे समक्ष संसार भी युद्ध करने आ जाय तो भी मैं विजयी हो जाऊंगा। उद्दायन की सेना कितनी है, इसको तो मुझे कुछ परवाह नहीं हां निन्दा का डर अवश्य है, पर निन्दा तो अब हो ही चुकी है, अतः जैसे बने इस नारी रत्न को अपने नियन्त्रण में लेना चाहिये। इस प्रकार सोच-विचार कर राजा ने अपने दण्डाधिपति को आदेश दिया कि सेना की एक टुकडी ले जाकर बलपूर्वक रानी प्रभावती को ले आओ। इस कार्य के लिये तुम्हें इच्छित पुरस्कार मिलेगा।

जब रानी प्रभावती कों दण्डाधिपति के आने का समाचार मिला तो वह विचारने लगी कि इस समय राजा तथा प्रधान सेनापति बाहर गये हैं, अपने पास जो थोड़ी सी सेना है, वह इतनी बड़ी सेना का सामना नहीं कर सकेगी। हाय बड़ी विपत्ति आई, इस समय राज्य में कोई भी बड़ा सामन्त नहीं है, सभी राजा के साथ गये हैं, किस प्रकार इस परस्त्री लोलुपी दुष्ट राजा का सामना किया जाय। इस समय सब से श्रेष्ठ उपाय यही है कि चारों प्रकार के आहार का त्यागकर उपसर्ग दूर होने तक समाधिमरण ले लिया जाय। धर्माचरणपूर्वक मृत्यु प्राप्त होने से परलोक तो सुधर जायगा। शील व्रत को मैं जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ सकती हूं, प्राण चले जाना मुझे स्वीकार है पर शील का छोड़ना नहीं।

इतने में दण्डाधिपति ने आकर फाटक तोड़ दिया और नगर के भीतर प्रविष्ट हो गया। पहरेदार को सिपाहियों ने तलवार के घाट उतार दिया और आगे बढ़ते चले गये। सेना को रोकनेवाला कोई था नहीं, अतः सेना तेज गति से आगे बढ़ती गई। इधर रानी प्रभावती नासाग्र दृष्टि लगाकर ध्यान में मग्न थी, उसने समस्त चिन्ताओं को छोड़ दिया था। केवल प्रभुचरणों का ध्यान ही उसके जीवन का सर्वस्व था।

नन्दीश्वर द्वीप के अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना के लिये आकाशमार्ग से जाते हुए देवों का विमान रौरवपुर के ऊपर अटक गया। सती प्रभावती के सतीत्व ने देवों के विमान को कीलित कर दिया। जब देवों ने अवधिज्ञान से विमान के अटकने के कारण को देखा तो मालूम हुआ कि इस नगर में किसी सती के ऊपर विपत्ति आई है। एक सती के ऊपर मालव नरेश के इस प्रकार के अत्याचार को देखते ही एक सम्यग्दृष्टि देव को अत्यन्त क्रोध आया और उसने चण्डप्रद्योत की सेना को हवा की तरह उड़ाकर उज्जयिनी में ला उपस्थित किया।

रानी प्रभावती की परीक्षा करने के लिये उस देव ने चण्डप्रद्योत का रूप धारण किया और समस्त प्रजा को महानिद्रा में मग्न कर विक्रिया ऋद्धि के बल से चतुरंग सेना तैयार की और गढ़ को चारों ओर से घेर लिया। नगर में मायावी आग लगादी, रास्ते में कृत्रिम रक्त की धारा बहने लगी, सर्वत्र भय व्याप्त कर दिया और प्रभावती देवी के पास आकर बोला—मैंने तम्हारी सेना को मार डाला है, अब आप पूरी तरह से मेरे आधीन हैं, अतः आखें खोलकर मेरी ओर देखिये। आपके पति उद्दायन राजा को भी पकड़ कर कैद कर लिया है। अब मेरा सामना करने वाला कोई नहीं है। आप अब मेरे साथ चलिये और पट्टरानी बन कर संसार का आनन्द भोगिये।

रानी राजा चण्डप्रद्योत के रूपधारी देव के वचनों को सुनकर पञ्चनमस्कार मन्त्र के ध्यान में और भी लीन हो गई और स्थिरता पूर्वक जिनेन्द्र प्रभु के गुणों का चिन्तन करने लगी। उसने निश्चय किया कि प्राण जाने तक भी शील को नहीं छोड़ूंगी।

देव पुनः कहने लगा—प्रिये! देखो मैं कितना प्रतापी हूं। तुम्हें कितना सुख दूंगा, इसे तुम नहीं जानती हो? एक बार प्रेमपूर्वक मेरी ओर देखिये। अब राजा उद्दायन से मिलने की आशा छोड़ दीजिये, इसको मैं अपने जादू घर में रखूंगा, यह कौतुक का कार्य करेगा। देखो! तुम्हारा पति तो अब बन्दी बन ही गया है, अतः इस युवावस्था में किसी युवक के साथ रहकर जीवन बिताइये। शील, शील की माला क्यों जपती हो, इस शील के द्वारा तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती है। इस प्रकार उस परीक्षक देव ने नाना प्रकार से रानी प्रभावती को विचलित करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी।

अनन्तर देव ने अपना वास्तविक रूप धारण कर कहा—देखो मैं देव हूं, मैंने विक्रिया बल से यहां की सेना और प्रजा को मूर्छित कर दिया है, चण्डप्रद्योत की सेना को भी उज्जयिनी पहुँचा दिया है, अब तुम्हारे ऊपर उपसर्ग नहीं है। अपने शील के प्रभाव से तुमने देवों को किंकर बना लिया है। मैंने आपकी परीक्षा की थी, आप सतीशिरोमणि हैं धन्य है आपके शील व्रत को, मध्यलोक वास्तव में सती नारियों के सतीत्व पर ही अवलम्बत है। इस प्रकार कहकर पारिजात पुष्पों से रानी की पूजा की; आकाश में दुन्दुभि बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी। सती शिरोमणि की नाना प्रकार से जयध्वनि आकाश में गूंजने लगी।

प्राचीन पुरुष रत्न के चरित्र को बतलाने वाले, जिन भगवान के चरणों में भ्रमर की तरह तल्लीन रहने वाले सम्यक्त्वरूपी आभूषणों को धारण करने वाले दया के समुद्र, सुमेरू के समान धैर्यशाली, राजाओं के द्वारा वन्दनीय उद्दायन राजा की सभी ने स्तुति की।

विदेश से लौटने पर जब राजा उद्दायन को उपर्युक्त समाचार मिला तो उसे संसार से बड़ी विरक्ति हुई और वह अपने बड़े पुत्र अरिञ्जय को राज गद्दी दे तपस्या करने चला गया। जाते समय उसने अपने पुत्र को उपदेश दिया—जिनेन्द्र भगवान के चरणों में सदा लीन रहना, दुष्टों को दण्ड, शिष्टों को अनुग्रह करना तथा दान-पूजा-भक्ति आदि कार्यों को निरन्तर करना चाहिये। इस प्रकार उपदेश देकर चला गया और जिनदीक्षा लेकर तपस्या की तथा अष्टकर्मों

को नष्ट कर निर्वाण पाया। रानी प्रभावती ने भी आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ली और तपश्चरण किया। अन्त में ब्रह्मस्वर्ग में दस सागरोपम आयु प्राप्त कर महा ऋद्धि देव हुई।

यह निर्विचिकित्सा अंग मोक्षलक्ष्मी के लिये तिलक के समान, मिथ्यात्वरूपी हाथी के लिये सिंह के समान और समस्त सुखों की खान है। इस प्रकार निर्विचिकित्सा अंग की कथा गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक से कही। राजा श्रेणिक के हृदय में इस कथा को सुनकर अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई, और उन्होंने अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ किया।

चौथी कथा समाप्त हुयी



पाचवीं कथा

राजा श्रेणिक ने निर्विचिकित्सा अंग की कथा सुनकर गौतम गणधर से अमूढ़ दृष्टि अंग की कथा जानने की इच्छा प्रकट की।

गौतम गणधर—राजन्! मूढ़ता को छोड़कर पाखण्ड के आधीन न होना तथा मूर्ख लोग जिन दम्भों को करते हैं, उन्हें छोड़ना अमूढ़दृष्टि है। मूढ़ताएं तीन प्रकार की होती हैं, प्रथम कुछ लोग देवों में मूर्खता करते हैं, अर्थात् रागी–द्वेषी को देव समझ लेते हैं। परन्तु सत्य यह है जो रागी–द्वेषी नहीं है, क्रोध–मान–माया–लोभ कषायों से रहित है, जितेन्द्रिय है, सर्वज्ञ है, हितोपदेशी है, वही सच्चा देव हो सकता है। जिसके मन में राग–द्वेष लगा है वह निष्पक्ष बात कह नहीं सकता है, उसकी बात सभी जीवों को सुखकर नहीं हो सकती है। जब तक लोभ, स्वार्थ, मोह, घृणा, ईर्षा आदि लगे रहेंगे, तब तक व्यक्ति में समदृष्टिपना नहीं आ सकता है। जो लोग मूर्खतावश रागी–द्वेषी व्यक्तियों को देव मान लेते हैं, उनका कभी ऐसे देवों से हित नहीं हो सकता है। हिंसक, विषयी देवों की आराधना, भक्ति और पूजा से आत्मिक गुणों का विकास नहीं हो सकता है। विवेकी जीव को इस प्रकार के देवों की उपासना नहीं करनी चाहिये अतः जिन्हें राग–द्वेष से रहित देव के सम्बन्ध में पूरी जानकारी हो गई है, वे सच्चे देवों की उपासना से स्वयं देवत्व को प्राप्त होते हैं।

लोक मूढ़ता का अर्थ यह है कि लोक प्रचलित बातों में मूर्खता करना। लोक व्यवहार में अनेक मूर्खताएं प्रचलित हैं यथा गंगा स्नान से पुण्य समझना, बालू–पत्थर आदि के ढेर लगाकर उन्हें पूजना, अग्नि में जलने से पुण्य समझना, नदी में डूबकर मृत्यु प्राप्त करने में पुण्य समझना, किसी स्थान विशेष पर मृत्यु की कामना करना और सोचना कि उस स्थान पर मृत्यु होने से निर्वाण मिल जायगा, इसी प्रकार के और भी अनेक व्यवहार हैं, जो मूर्खता में परिगणित किये जा सकते हैं। इन समस्त प्रकार के अन्धविश्वासों को त्याग कर विवेक से काम लेना ही, व्यक्ति की विशेषता है। सम्यग्दृष्टि जीव समस्त प्रकार के भय और आतंकों से रहित हो विवेक पूर्वक अपनी प्रवृत्ति करता है।

गुरु मूढ़ता तीसरी मूढता है,इसका अर्थ है कि पाखण्डी, ढोंगी विषयलोलुपी गुरुओं की भक्ति करना ऐसे गुरु संसार समुद्र में स्वयं डूबते हैं और अपने भक्तों को डुबाते हैं गुरु तीन प्रकार के बताये गये हैं-प्रथम गुरु वे हैं जो संसार नौका के

समान हैं, जिस प्रकार नौका में सवार होकर अन्य व्यक्ति नदी को पार कर लेते हैं तथा स्वयं नौका भी पार हो जाती है, उसी प्रकार जो स्वयं कर्मबन्धन को नष्ट करते हैं तथा अपने आराधकों के कर्म-बन्धन नष्ट करने के उपाय बतलाते हैं। ऐसे गुरु सभी प्रकार के परिग्रह से रहित दिगम्बर जैन साधु ही हो सकते हैं। इनके जीवन में अहिंसा सभी प्रकार से व्याप्त रहती है, ये अपने पास तिल, तुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखते हैं।

दूसरे प्रकार के गुरु—कागज की नाव के समान होते हैं। जिस प्रकार कागज की नाव स्वयं तो नदी के प्रवाह में पड़कर वायु के वेग से पार हो भी जाती है, किन्तु उसका आश्रय लेनेवाला अवश्य बीच में ही डूब जाता है। यही हालत थोड़ा-बहुत परिग्रह रखने वाले तथा भीतर से समस्त विषयों की लालसा से रहित गुरु होते हैं। ऐसे गुरुओं का आश्रय लेने से भी आत्म कल्याण नहीं हो सकता है।

तीसरे प्रकार के गुरु पत्थर की नौका के समान हैं, जिस प्रकार पत्थर की नाव नदी में स्वयं डूबती है तथा उस पर सवार होने वाले डूब जाते हैं, उसी प्रकार रागी-द्वेषी-मानी-मायावी-लोभी-विषयी-परिग्रहवान् गुरुओं की सेवा-भक्ति करने से संसार में ही भ्रमण करना पड़ता है। गुरु का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि मोक्ष का रास्ता गुरु के द्वारा ही मिलता है, पर जो गुरु स्वयं मोक्ष का रास्ता नहीं जानता है, वह क्या दूसरों को रास्ता बतावेगा ! अतएव सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का श्रद्धान करना तथा कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र कुधर्म का त्याग करना, सम्यग्दृष्टि होने का चिन्ह है। अमूढ़दृष्टि अंग का धारी सभी प्रकार की मूर्खताओं से रहित होकर सद्विवेक द्वारा अपनी प्रवृत्ति करता है, जिससे वह कल्याण मार्ग को प्राप्त कर लेता है।

राजा श्रेणिक—स्वामिन् ! इस अंग के धारी की कथा कहने की कृपा करें।

गौतम गणधर—राजन् ! इस भरतक्षेत्र में नाना प्रकार के सौन्दर्य से परिपूर्ण शौरसेन नाम का देश है। इस देश में अनेक दिव्य जिनालयों से परिपूर्ण उत्तर मथुरा नाम की नगरी है। इस नगरी में वरुण नाम का महामण्डलीक राजा राज्य करता था, इस राजा की पट्टरानी रेवती थी। यह जिनेश्वर की भक्ति में शची के समान, पतिव्रत में सीता के समान एवं विलास में रति के समान थी। सद्गुणों के आभरण से अलंकृत, जिनेन्द्र भक्ति में तल्लीन और नाना प्रकार के हाव-भाव में निपुण रेवती रानी सुख भोगती थी।

विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नामका एक नगर था । इसमें पृथ्वी में स्तुत्य, विद्याधरों के द्वारा पूज्य, जिनेन्द्र भगवान का परम भक्त, दयालु और सद्गुणी चन्द्राभ नामका राजा राज्य करता था । उसकी पट्टरानी सुमति महादेवी थी, इनके चन्द्रशेखर नामका पुत्र था । दोनों पुत्र के प्रेम में मग्न हो राज्य करते थे ।

एक दिन चन्द्राभ राजा विद्याधरों के साथ बैठा हुआ वराङ्गनाओं के नृत्य देखने में तल्लीन था । प्रेम के साथ अनेक विद्याधर आकाश मार्ग से संगीत सुनाने के लिये आ रहे थे, राजा अपने प्रभाव को देखकर प्रसन्न था । उसका ध्यान आकाश की ओर लगा हुआ था । मृगों के समूह के समान, हाथियों के समुदाय के समान, वन के समान, मयूरों के समुदाय के समान कोमल सच्चिकण बालों के समान, पर्वतों के समुदाय के समान, मनुष्य-गाय-बन्दर आदि के समूह के समान विभिन्न आकृति के बादलों से युक्त आकाश दिखलाई पड़ा । नाना आकृति वाले विचित्र वर्ण के बादलों को देखकर चन्द्राभ नृप अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ और सोचने लगा कि जिस प्रकार यह मेघ पटल क्षण भर में अपने विभिन्न रूप और आकृतियों को दिखलाकर विलीन हो रहा है, वैसे ही सांसारिक सुख क्षणभर में नष्ट होने वाले हैं । मोह के कारण संसार के प्राणी इन विषय-जन्म सुखों में लीन रहते हैं, पर वास्तव में ये सुख अस्थिर और नीरस हैं ।

लक्ष्मी इन्द्र धनुष के समान क्षणिक, युवावस्था कोयले की राख के समान सारहीन, स्त्रियों का प्रेम जीर्ण शीर्ण वृक्ष के समान शक्तिहीन, विभूति ओस की बून्द के समान अस्थिर, कीर्त्ति बालू के ढेर के समान अस्थायी, धन और आयु तिनकों की अग्नि के समान क्षणध्वंसी, शोक मेघ पटल के समान क्षणभंगुर; सांसारिक वैभव और विलास नवीन वृक्ष के समान वायु के एक ही झोंके से गिरने वाले हैं । इस प्रकार विचार करते ही विद्याधर संसार से विरक्त हो गया । जब तक कर्म का उपशम नहीं होता, तभी तक स्पर्शनेन्द्रिय के अधीन होकर हाथी मनुष्यों के वश हो दुख सहता है, नेत्र इन्द्रिय के आधीन हो पतंग अपने जीवन का बलिदान करता है, मृग श्रवणेन्द्रिय के आधीन हो मनोहर गान सुनता हुआ शिकारी के वाण द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है । वृक्षों को छेदन करने की शक्ति से युक्त भ्रमर घ्राण इन्द्रिय के आधीन होकर कमल पंखुड़ी में बंध जाता है । रसनेन्द्रिय के वश होकर मीन अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है । जब एक एक इन्द्रिय के विषयों में लीन रहनेवाले जीवों की यह हालत है तब पांचों इन्द्रियों के आधीन रहने वाले मनुष्यों की क्या अवस्था होगी ? इन्द्रियों की आधीनता बुरी वस्तु है । मैंने अब तक इन्द्रियों के आधीन होकर महान् पाप का बंध किया है, मेरी आत्मा पाप पंक में लिप्त है । अब समय आगया है अतः आत्मकल्याण के लिये उत्साहित होना चाहिये ।

उसकी विचारधारा और आगे बढ़ी और सोचने लगा।

यह शरीर मल का ढ़ेर है, इसमें लार-मूत्र आदि अपवित्र पदार्थ भरे हैं। एक दिन यह मिट्टी में मिल जायगा। इसीको प्राप्त कर मनुष्य कितना घमण्ड करता है, दूसरों को छोटा, नीच, तुच्छ और हीन समझता है। अपने को संसार में बड़ा समझता है।

परिग्रह की लालसा इस जीव की बढ़ती चली जाती है। जिस प्रकार सिंह, रीक्ष, बाघ प्राणियों को मारकर खा जाते हैं, उसी प्रकार परिग्रह पिशाच मनुष्य की मनुष्यता को खा लेता है। इसके समान अन्य कोई पाप नहीं है। परिग्रह संचय के लिये व्यक्ति को नाना प्रकार के पाप अत्याचार करने पड़ते हैं। तृष्णा ऐसी पिशाचिनी है की परिग्रह बढ़ता जाता है, यह और वृद्धिगत होती जाती है। इसे शान्त होने का अवसर ही नहीं मिलता, अतः मनुष्य जीवन की सार्थकता विरक्ति में है। जो ऐसे सुन्दर शरीर को पाकर त्याग, तप नहीं करता, उसके समान संसार में अन्य कोई मूर्ख नहीं हो सकता। इस प्रकार विचार कर विद्याधर ने चन्द्रशेखर पुत्र को बुला कर कहा।

हे राजकुमार ! लक्ष्मी के विलास में लगकर मैंने मोह के कारण अपने कल्याण का स्वयं घात किया है ! अतः अब मैं मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करने वाले जिनेन्द्र भगवान के चरणों को शरण में जाता हूं। तुम इस विद्याधर राज्य को संभालो। राजा के इन वचनों को सुनकर राजकुमार कहने लगा—

हे पिताजी ! आप नित्य और शाश्वत सुख को ग्रहण करें और मैं दुर्गति में ले जानेवाले राज्य का संचालन करूं, यह कैसे संभव है ? विचार कर देखने से प्रतीत होता है कि संसार में जितने भी सुन्दर पदार्थ हैं, शक्ति के अनुसार पिता-पुत्र को देता है। दुर्गति में ले जानेवाले क्षणिक सुखदायी राज्य को आप मुझे कैसे दे रहे हैं, अतः हे पिताजी आपका प्रेम मेरे ऊपर है तो नरक गति को ले जानेवाले इस राज्य को कैसे दे रहे हैं। मुझे आपके इस कृत्य से आश्चर्य हो रहा है।

राजा—राजकुमार ! पहले राज्य करो, संसार का सुख भोगो। विवाह करने के उपरान्त जब सन्तान हो जाय, तो तुम भी समर्थ सन्तान को राज्य देकर तपस्या करना। अभी तुम्हारा समय तप करने का नहीं है। राज्य परम्परा को कायम रखने के लिये आपका राजा होना आवश्यक है। मेरा यह समय तपस्या करने का है, तुम्हारा नहीं।

प्राचीन कालमें जैसे राजा नाभि ने अपने पुत्र ऋषभ को राज्य दिया, ऋषभने अपने पुत्र भरत को भरत ने अपने पुत्रों को राज्य दिया। इसी परिपाटी के अनुसार मैं भी तुम्हें राज्य देना चाहता हूं, परिपाटी को छोड़ना उचित नहीं। इस प्रकार राजा ने मधुर वचनों से राजकुमार को सन्तुष्ट किया और उसके मुख की ओर देख कर कहने लगा।

पुत्र! सदाचार सदा पालना, गुणों में लीन रहना, धर्म का पालन करना, सदा भगवान् की भक्ति करना, अभिमान में आकर कभी किसी जीव को दुःख न देना, किसी का अपमान न करना, जैन मुनियों की भक्ति करना; नम्र होकर रहना, दुखियों पर दया करना आदि बातों का पालन सदा करना चाहिये। कुमार तुम होनहार हो, तुमको संसार से निर्लिप्त रहते हुए पृथक् रहना चाहिये। जैसे कमल पत्र पर पड़े हुए जलविन्दु कमल से अलग रहते हैं, इसी प्रकार राज्य सचालन करते हुए भी उसमें लिप्त न होना, व्यक्ति की जागरूकता है। दुःख और पाप के रूप को समझ कर उससे इस प्रकार अलग रहना, जैसे मोती सीप का स्पर्श करता हुआ भी उससे भिन्न रहता है। धर्म, राज-नीति, जिन भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से ही राज्य स्थिर रहता है। जैसे नौकर को कार्य पूरा होजाने पर छोड़ देते हैं, उसी प्रकार सच्चरित्रता प्राप्त होने पर विचारशील दुश्चरित्रता को छोड़ देते हैं। इस तरह पुत्र को समझा कर और राज्य भार देकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये चन्द्राभ पाण्ड्यदेश की दक्षिण मथुरा में विमान द्वारा आया।

यह नगरी अत्यन्त ही सुन्दर और रमणीक थी। इसमें भव्य जिनालय थे, इनके दर्शन करता हुआ वह एक जिनालय में पहुँचा। यहां पर एक विद्याधर को राजा ने भगवान् के दर्शन के लिये आते हुए देखा। यह विद्याधर अत्यन्त सुन्दर और मनोज्ञ था। इसका प्रत्येक अंग दर्शनीय था, इसके साथ अनेक विलासी अंगनाएं थीं। इस मन्दिर में अनेक विद्याधर स्वर्ग के देवों के समान दर्शन-पूजन में संलग्न थे। इन विद्याधरों के विमान चीन महाचीन आदि देशों के वस्त्रों की ध्वजाओं से युक्त थे।

इस जिनालय में भगवान की वेदी हरित वर्ण की मणियों से युक्त मोतियों के द्वारा निर्मित थी। इसी समय मथुरा का राजा चित्रवाहन नगर के समस्त चैत्यालयों के दर्शन करता हुआ अपने द्वारा निर्मित भूत हित चैत्यालय में आया। मन्दिर में जाकर उसने भक्तिभाव सहित भगवान के दर्शन किये तथा स्तुति करता हुआ भक्ति में लीन हो गया।

पूजा करने के उपरान्त भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति करने लगा। पश्चात् पाण्ड्य नरेश ने मुनिराजों को

नमस्कार कर उनकी धर्म देशना सुनी, अनन्तर वह राजमन्त्रियों सहित अपने दरबार को ओर चला गया । विद्याधर उस पाण्ड्यनरेश चित्रवाहन को सम्यग्दृष्टि समझ कर विचारने लगा कि यह राजा धन्य है, जो सम्यग्दृष्टि भक्त, श्रद्धालु और धर्मात्मा है । यह कुल ऐश्वर्य और भगवान् की भक्ति में बहुत बढ़ा चढ़ा है । इसकी कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि गुण क्या अन्य किसी में आ सकते हैं ? इस प्रकार चन्द्राभ विद्याधर पाण्ड्यनरेश की महिमा से आश्चर्यान्वित हो विचारने लगा कि इस राजा के राज्य में कोई भी मिथ्यादृष्टि नहीं होगा । जब राजा सम्यग्दृष्टि है तो प्रजा अवश्य सम्यग्दृष्टि होगी; क्योंकि प्रसद्धि भी है कि 'यथा राजा तथा प्रजा ।'

इस प्रकार राजा चित्रवाहन के सम्बन्ध में ऊहा-पोह करने के उपरान्त चन्द्राभ ने दर्शन, पूजन किया । अनन्तर मुनिगुप्त मुनिराज के पास जाकर नमोऽस्तु किया । ये जिन शास्त्रों के ज्ञानी, सज्जनों के द्वारा वन्दनीय, रत्नत्रय से विभूषित एवं अध्यात्मरत योगी थे । हाथ जोड़कर इनसे चन्द्राभ ने मुनिदीक्षा की याचना की ।

मुनिराज—वत्स ! तपश्चर्या मामूली वस्तु नहीं है, संसार में बिना वैराग्य के न तप होता और न आत्मसाधन ही । शास्त्रज्ञान और सच्ची विरक्ति के बिना दीक्षा लेना निरर्थक है । जिस प्रकार अन्न, जल, अग्नि के होने पर पाकक्रिया की जानकार नारी ही भोजन बना सकती है, अन्य नहीं; इसी तरह शास्त्रज्ञान और विरक्ति के बिना दीक्षा कभी भी सफल नहीं हो सकती है । अतः योगीके लिये २८ मूलगुण और १३ प्रकारके चारित्रका पालन करना अत्यावश्यक है । इनमें से एक गुण कम होने पर मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है । पानी, अग्नि, चावल, दाल आदि के अनुपात का यथार्थ ज्ञान न होने पर जिस प्रकार रसोई ठीक नहीं बनती है, उसी प्रकार मुनिधर्म के गुणों में से किसी एक गुण के कम होने पर कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है । मूल गुणों के नष्ट होने से इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं । अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर जो उद्दण्ड हो जाता है, वह मुनि नहीं है । ऐसा उद्दण्ड मुनि केवल आत्मवंचना करता है ।

अभीष्ट वस्तु चाहे भक्ष्य हो या अभक्ष्य उसे अपने नियम में रख लेना तथा अनिच्छित वस्तुओं को भक्ष्य होने पर भी त्याग देना, मन-मानी चर्या करना, गण्डा-ताबीज देना, ऊट पटांग ढंग से अपनी बात को समझाना ही उद्दण्डता है । बच्चों की सी बातें करने वाले, अन्य मुनियों से ईर्ष्या करने वाले, दूसरों की निन्दा और स्तुति में भाग लेनेवाले, स्वेच्छाचार करने वाले व्यक्ति कभी भी निवृत्ति नहीं प्राप्त कर सकते हैं ।

कल्पित कथाएं कहना, आगम के अर्थ को बदलना, कषाय के आधीन होना मुनि का कार्य नहीं है । अपने संघ को छोड़कर पाखंडी मिथ्यादृष्टियों की स्तुति करने से कभी भी सद्गति की प्राप्ति नहीं हो सकती है । अपनी स्तुति करना, अन्य की निन्दा करना, अन्य के गुणों की प्रशंसा सुनकर जलना साधु का कार्य नहीं है । जो मुनि यह कहते हैं, कि मेरी पूजा करनी चाहिये, आप पर मेरा अधिकार है, आप मुझे छोड़ अन्यत्र नहीं जा सकते, आप को आहार मुझे देना होगा, आहार स्वादिष्ट होना चाहिये, वे निश्चय पतित हैं ।

मुनि को सन्तोषी, सहिष्णु, आत्मज्ञ, जितेन्द्रिय, संयमी, गुणज्ञ, समदृष्टि, व्रती, तपस्वी, मन्दकषायी या क्षीणकषायी और मितभाषी होना चाहिये । जो अधिक बोलता है, वह व्यक्ति असत्य वचनों का प्रयोग करता है तथा भाषा समिति की अवहेलना भी करता है । जहां तक संभव हो मुनि को संघ में ही रहना चाहिये, ऐकाकी विहार करने से संयम के पालन करने में शिथिलता हो सकती है । परिषहों को सहन करने में सदा तत्पर रहने वाले, उग्रोग्रतर तपस्या करने वाले, धीर गम्भीर, निर्ग्रन्थ, वीतरागी मुनि ही वन्दनीय हो सकते हैं ।

नारियल के पेड़ के समान वक्रपरिणामी, लोहे के समान कठोर परिणामी, कौवे के समान परपीड़क, कुत्ते के समान कलहप्रिय, राजपुत्र के समान निरकुंश, बच्चों के समान हठग्रही, किसी भी इच्छा की पूर्त्ति के लिये अनशन करनेवाला, पण्डों के समान दक्षिणा लेकर भोजन करनेवाला, सिंह के समान अन्य को कष्ट देनेवाला, सुअर के समान लोलुपी, दरिद्र के समान असाहसी, चींटी के समान घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत, व्याघ्र के समान इधर उधर स्वेच्छाचारपूर्वक भ्रमण करनेवाला मुनि को न होना चाहिये । मुनि को हंस के समान सारग्रहण करनेवाला, शरत् ऋतु के जल के समान निर्मल, सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान, मन्द वायु के समान गमन करनेवाला, समुद्र के समान अमर्यादित संसार मार्ग से भय रहित, शास्त्रों का पारगामी, सत्पुरुष के समान मात्सर्य से रहित, ईर्षा-निन्दा-स्तुति आदि से रहित, आत्मकल्याण में संलग्न, दूरदर्शी, प्रमाद रहित, सुमेरू पर्वत के समान क्षमाशील, शरीर धारण के लिये आवश्यक भोजन करनेवाला, संयम में उत्साह रखनेवाला, हित-मित-प्रिय वचन बोलनेवाला, धर्मज्ञ, सेनापति के समान जीवों का रक्षण करनेवाला, अवधि ज्ञानी के समान सभी के मन के भावों को जाननेवाला, महावत के अंकुश के समान मन रूपी हाथीको वशमें करनेवाला, किसी के ऊपर क्रोध न करनेवाला, सर्वदा स्वाध्याय में रत रहनेवाला, शिष्यों के साथ सहानुभूति रखनेवाला, पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन करनेवाला, पाप से दूर रहनेवाला, आगम विपरीत न चलनेवाला, अन्य

की निन्दा कर श्रावकों को अपनी ओर न झुकानेवाला एवं दृढ़ आचरण करनेवाला होना चाहिये।

बाह्य परिग्रह को छोड़ देने पर भी जिसके अन्तरंग में परिग्रह शेष है, वह मुनि अपनी संसार सन्तति को नष्ट नहीं कर सकता है। केवल अन्तरंग के छोड़ने का दम्भ करनेवाला, किन्तु बाह्य परिग्रह का धारी कभी मुनि नहीं हो सकता। अतः बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग करनेवाला ही मुनि संसार रूपी सन्तति को नष्ट कर सकता है। जैसे एक चक्र से गाड़ी नहीं चलती है, पानी के बिना भोजन नहीं बन सकता है, बेंट के बिना कुल्हाड़ी काम नहीं कर सकती है, उसी प्रकार केवल अन्तरंग या बहिरंग त्याग भी आत्मकल्याण का साधन नहीं हो सकता है।

शिष्य की योग्यता की बिना परीक्षा किये जो दीक्षा देता है तथा योग्यता के बिना ही जो दीक्षा देता है ऐसा गुरु पाप का भागी है, वह स्वयं पदच्युत होता है और दीक्षा देने वाले को भी कहीं का नहीं रहने देता है। गुण, ज्ञान और योग्यता की परीक्षा न कर दीक्षा देने या लेने से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता है। पहले के ऐश्वर्य, कुल, कीर्त्ति आदि का विचार कर दीक्षा देना सर्वथा अनुचित है। संसार के पदार्थों के साथ ममत्व बुद्धि रखनेवाला मुनि तथा किसी प्रलोभन वश अस्थिर विचार के शिष्य को दीक्षा देने वाला मुनि नरकगामी है। मुनि को राग द्वेष से रहित होकर सदा तपश्चरण में लीन रहना चाहिये और ऐसे ही शिष्यों को दीक्षा देनी चाहिये जो आत्मज्ञ हों, जिन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई हो तथा जिनके द्वारा धर्म का प्रचार और प्रसार होने की संभावना हो। मुनि परम्परा चलाने के लिये दीक्षा देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, किन्तु अच्छी तरह शिष्य की परीक्षा कर ही दीक्षा देनी चाहिये। धनी-मानी, रूपवान्, युवक और वाचाल व्यक्ति तभी दीक्षा का अधिकारी है, जब वह दीक्षा के रहस्य को समझ जाय तथा वास्तविक में आत्मकल्याण करने की लगन हो।

शिष्य की परीक्षा करने के लिये कुछ समय तक उसे अपने पास रखना चाहिये। जब संयम का अभ्यास और शास्त्रज्ञान इस सीमा पर पहुँच जाय कि दीक्षा का निर्वाह शिष्य अच्छी तरह से कर सके, तो उसे दीक्षा दे देनी चाहिये। मुनिमार्ग बड़ा ही कठिन मार्ग है, इसका पालन करना सबके लिये आसान नहीं है। बिना किसी प्रलोभन और महत्वाकांक्षा के इस मार्ग का अनुसरण करनेवाले ही सफल हो सकते हैं। जिनके हृदय में आत्मकल्याण की लगन लग जाती है, संसार के कार्यों और प्रलोभनों से जिन्हें विरक्ति हो जाती है फिर उन्हें दीक्षा लेने से कोई भी नहीं रोक सकता

है । वास्तविक रूप से विरक्ति होने पर व्यक्ती को एक क्षण भी गृहस्थी के जाल में रहना रुचिकर नहीं होता । श्मशान वैराग्य बहुत लोगों को होता है, थोड़े समय के बाद उनका वैराग्य समाप्त हो जाता है और वे पुनः विषयों में फंस जाते हैं । अतएव अपने को अच्छी तरह जांच कर दीक्षा लेनी चाहिये । यह बच्चों का खेल नहीं है, जो आज ली जाय और कल खिलौने के समान फोड़ कर छोड़ दी जाय ।

यदि मोक्ष मार्ग में लगा हुआ गृहस्थ मोह रहित हो तो वह मोही मुनि की अपेक्षा श्रेष्ठ है । अत: श्रावक के व्रत ग्रहण कर आत्म कल्याण करना आपके लिये अधिक हितकर है ।

चन्द्राभ—हे स्वामिन् ! अनादि काल से मैंने कितने ही राज्यों का सुख भोगा है, कितनी ही दिव्य अंगनाओं का आलिंगन किया है, किन्तु अब तो मेरा विचार इस जिनदीक्षा को ग्रहण करने का है । संसार की असारता का अनुभव मुझे हो गया है ।

मुनिगुप्त मुनिराज—वत्स ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं । तुम विद्याधर राजा होकर संसार से विरक्त हो गये हो । तुम्हारा वैराग्य सच्चा है, तुम को मैं दीक्षा देता हूं, किन्तु अभी तुम उत्कृष्ट श्रावक के ही व्र ग्रहण करो । हां, अभ्यास के लिये परिग्रह का त्याग कर दो, अपनी समस्त विद्याओं को, जिनके द्वारा तुम भौतिक कामनाओं को पूरा करते थे, छोड़ दो ।

चन्द्राभ ने समस्त विद्याओं का त्याग कर दिया, परन्तु एक गगनगामिनी विद्या अपने पास रखली ।

मुनिगुप्त मुनिराज—वत्स ! तुमने क्यों गगनगामिनी विद्या अपने पास रखली है, इसकी तुम्हें क्या आवश्यकता है ?

चन्द्राभ—प्रभो ! मेरी भावना अकृत्रिम जिन चैत्यालयों के दर्शन की है । मैं सुमेरु पर्वत के अकृत्रिम जिनालयों के दर्शन करना चाहता हूं, इसलिये इस विद्या का त्याग मैंने नहीं किया है ।

हंसकर मुनिराज—वत्स ! तुम क्षुल्लक दीक्षा ले लो और अपना आत्म कल्याण करो । उत्कृष्ट श्रावक-धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति जल्दी ही इस संसार से मुक्त हो जाता है । यह मार्ग मुनि धर्म पर आरुढ़ होने का सोपान है ।

चन्द्राभ--प्रभो ! अणुव्रतों का स्वरूप समझाइये। श्रावक कितने प्रकार के होते हैं और उत्कृष्ट श्रावक कौन होता है।

मुनिराज--वत्स ! जो श्रद्धालु, ज्ञानवान् और क्रियावान् होता है, वही श्रावक कहलाता है। श्रावक तीन प्रकार के होते हैं--पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक। पाक्षिक श्रावक आठ मूल गुणों का धारण करता है। यह मद्य, मांस, मधु, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करता है। रात्रि भोजनका त्यागी होता है, जल छानकर पीता है और प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, पूजन करता है। जिनेन्द्र प्रभु के वचनों का अटूट श्रद्धान करता है, शक्ति के अनुसार दैनिक षट्कर्मों का पालन करता है। सप्तव्यसन का त्यागी होता है। धर्म प्रचार और प्रसार के लिये दान देता है, मन्दिर बनवाता है, प्रतिष्ठाएं कराता है तथा विशेष उत्सवों के द्वारा धर्म का प्रसार करता है।

नैष्ठिक श्रावक निर्दोष रूप से अतिचार रहित मूल गुणों का पालन करता है, सम्यग्दर्शन को दृढ़ और निर्मल बनाता है। तथा अपने चरित्र का उत्तरोत्तर विकास करता चला जाता है। इसके तीन भेद हैं--जघन्य, मध्यम और उत्तम। प्रारम्भ की सात प्रतिमाओं के धारण करने वाले जघन्य, मध्य की तीन प्रतिमाओं का पालन करने वाले मध्यम और अन्त की ग्यारहवीं प्रतिमा को धारण करने वाले उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं।

चन्द्राभ--स्वामिन् ! प्रतिमा किसे कहते हैं, और इनका स्वरूप क्या है।

मुनिराज--वत्स ! श्रावक के ग्यारह दर्जे होते हैं, जो प्रतिमा कहलाते हैं। सदाचार के पालन करने के लिये कुछ कक्षाएं बंटी हैं, ये ही प्रतिमा कहलाती हैं। अभिप्राय यह है कि सदाचार के पालन के लिये ग्यारह दर्जे हैं, जिनका पालन क्रमशः गृहस्थ करता है। जैसे विद्यार्थी कक्षा क्रम से अपने ज्ञान का विकास करता है, वैसे ही श्रावक सदाचार के कक्षा क्रमानुसार अपने चरित्र का विकास करता है। विद्यार्थी के लिये आगे वाली कक्षा में जाने पर जैसे पीछे वाली कक्षा का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है, वैसे ही चरित्र का विकास करने वाले को भी आगे में सदाचार की कक्षा में जाने पर पीछे वाली सदाचार की कक्षा का चारित्र पालना आवश्यक है।

दर्शन प्रतिमा--संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर पंच परमेष्ठी के चरणों में श्रद्धापूर्वक भक्ति करना दर्शन प्रतिमा है। मूल गुणों के अतिचारों का त्याग करना, सामायिक, पूजन स्तवन करना तथा व्रत और तप का अभ्यास करना, इस प्रतिमावाले के लिये आवश्यक है। आहार-विहार की शुद्धि, रहन-सहन की शुद्धि और कषायों को

मन्द करना तथा आत्म स्वरूप का चिन्तन करना भी इसके लिये विधान है । इस प्रतिमा का धारी पर्वत के समान गम्भीर, समुद्र के जल के समान शान्त, और कमल के पत्ते के समान संसार से निर्लिप्त रहता है । जैसे लोभी व्यक्ति धन से, भ्रमर पुष्प से, फूल गन्ध से, शिशु मां से सदा चिपटा रहता है, वैसे ही इस प्रतिमा वाला भगवान् जिनेन्द्र के गुणों में सदा अनुरक्त रहता है ।

जिस प्रकार सांप को देखते ही मेढ़क, बिल्ली को देखते ही चूहा, डाकू को देखते ही पथिक, गरुड़ को देखते ही सांप, पुलिस को देखते ही चोर, कुत्ते को देखते ही बिल्ली, और बाघ को देखते ही हिरण भाग जाते हैं, उसी प्रकार दर्शन प्रतिमाधारी संसार, शरीर और भोगों से मोह छोड़ देता है ।

जैसे राक्षस को देखकर मनुष्य, सिंह को देखकर हाथी, अपरिचित को देखकर बच्चा, दुश्चरित्र को देखकर धर्मात्मा और व्यसनी को देखकर जितेन्द्रिय अलग हो जाते हैं, वैसे दर्शन प्रतिमावाला सप्तव्यसनों से बिल्कुल दूर हो जाता है ।

इस प्रतिमा वाला अष्टांग सति सम्यग्दर्शन का पालन करता है । ज्ञान, पूजा, कुल जाति, बल ऋद्धि, तप और शरीर का अभिमान नहीं करता तथा षट् अनायतन—मिथ्या देव, मिथ्या देवालय, मिथ्या तप, मिथ्या तपस्वी, मिथ्या व्रत एवं मिथ्या ज्ञानियों की सेवा से पृथक् रहता है । निर्भय होकर संसार में विचरण करता है, किसी भी प्रकार का प्रलोभन उसे पथ-भ्रष्ट नहीं कर पाता है । आत्मकल्याण की चिन्ता दिन रात उसे रहती है । यद्यपि गृहस्थी के समस्त कर्मों को करता है, किन्तु लिप्त किसी भी कार्य में नहीं होता । हानि—लाभ में समता बुद्धि रखता है, गृहस्थी का संचालन करता हुआ भी अन्याय मार्ग का अनुसरण नहीं करता । किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाता है, यद्यपि व्यापार या आजीविका के लिये कोई कार्य करता है, परन्तु अहिंसा धर्म को कभी नहीं भूलता । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग करता है । दर्शन प्रतिमा वाला अपने कषाय और विकारों को जीतने का पूरा प्रयत्न करता है ।

साधर्मी भाई से वात्सल्य भाव रखता है । समस्त प्राणियों के साथ मित्रता का व्यवहार करता है । गुणी व्यक्तियों पर श्रद्धा रखता है, तथा गुणियों को देख कर प्रसन्न होता, दुःखी रोगी जीवों को देखकर दया भाव करता है और शक्ति भर उनके दुःख को दूर करने का यत्न करता है । जो व्यक्ति उसके विचारों के प्रतिकूल चलते हैं, उनके साथ मध्यस्थता-तटस्थता रखता है । जिनेन्द्र भगवान के वचनों में किसी भी प्रकार की शंका नहीं करता है, संसार के

भोगों की या धन वैभव की आकांक्षा नहीं करता, निन्दा या घृणा किसी से नहीं करता, पापी व्यक्ति से भी वह वात्सल्य भाव रखता है, घृणा और पाप से डरता है, पापी से नहीं। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरु दयामयी धर्म में उसकी अटूट श्रद्धा रहती है। करूणा और दया उसके जीवन में वस जाती है। आत्मा के उपर श्रद्धा करने लगता है तथा आत्मिक गुणों को प्राप्त करने के लिये सदा तत्पर रहता है।

दर्शन प्रतिमा धारी यद्यपि व्रतों का धारी नहीं होता फिर भी शक्ति के अनुसार व्रत, उपवास करता है। शल्य का त्यागी, सदाचारी- और वासना कषायों को जीतने वाला तथा अपनी आत्मा को निर्मल करने के लिये तीर्थ-यात्रा करने वाला होता है। भगवान् के जन्मस्थान, तपस्थान और निर्वाणस्थान के पवित्र रजकणों में जाकर अपनी आत्मा की शुद्धि करता है। एकान्त स्थान में वैठकर संसार की अनित्यता का चिन्तन कर वैराग्य को उद्दीप्त करता है।

व्रत प्रतिमा — पञ्चाणुव्रत और सात शीलों का निरतिचार पालन करना व्रत प्रतिमा है। प्रमाद से संकल्प पूर्वक होने वाली त्रस हिंसा का त्याग करना अहिंसाणु व्रत है। इस व्रत का पालन करने वाला जान-बूझ कर किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाता है। इस व्रत के पालन करने के लिये पांच भावनाओं का पालन करना चाहिये।

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।

अर्थात् जीवन में भले प्रकार से वचन गुप्ति. मनोगुप्ति ईर्या समिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपान भोजन — अच्छी तरह देखकर खाने पीने की वस्तुओं को ग्रहण करना, इन भावनाओं का पालन करना चाहिये। इस व्रत के अतिचारों का भी त्याग करना आवश्यक है—

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।

अर्थात् — बन्ध—किसी प्राणी को बांधकर या रोककर रखना; वध—दण्डा, चाबुक या वेत आदि से प्रहार करना; छेद—नाक, कान आदि अवयवों का छेदन करना; अतिभारारोपण—शक्ति और मर्यादा का विचार न कर अधिक वोझ लादना एवं अन्नपाननिरोध—भोजन आदि में रुकावट डालना या समय पर न देना ये पांच अहिंसाणुव्रत के अतिचार हैं।

वस्तु के अस्तित्व का लोप करना, जैसी वस्तु है वैसी न बतलाना, बात चीत करते समय अशिष्ट वचनों का प्रयोग असत्य बोलना है। इस असत्य बोलने को छोड़ना सत्य बचन है। असत्य भाषण करने से हिंसा का पाप लगता है। निन्दा करना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना, अप्रिय बचन बोलना, प्राणियों के वध करने वाले वचन बोलना असत्य में शामिल है। सत्यव्रत का पालन करने के लिये निम्न पांच भावनाओं को पालना चाहिये—

क्रोधलोभीभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।

अर्थात्—क्रोध, लोभ, भय ओर हास्य का त्याग करना तथा निर्दोष वचन बोलना, सत्याणुव्रत की भावनाएं है। इस व्रत के पालने के लिये भी पांच अतिचारों का त्याग करना चाहिये—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः।

अर्थात्—मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्र भेद, इन पांच अतिचारों का त्याग करना चहिये।

किसी की गिरी हुई, पड़ी हुई, भूली हुई अर्थात् बिना दी हुई वस्तु को ग्रहन न करना अचौर्याणुव्रत है। इस व्रत का पालन करने के लिये निम्न भावनाओं का पालन आवश्यक है—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभक्ष्यशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पञ्च।

अर्थात्—पर्वत की गुफा, वृक्षकोटर आदि में रहना; दूसरे के द्वारा त्याग किये स्थान में रहना, अपने स्थान पर दूसरे को आने से न रोकना, भिक्षा नियमों का ध्यान रखकर भिक्षा ग्रहण करना और साधर्मी से विवाद न करना, अचौर्याणुव्रत की भावना है।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः।

अर्थात्—चोरी के लिये प्रेरित करना, चोरी की वस्तु को खरीदना, राज्य में विप्लव होने पर हीनाधिक मान से वस्तुओं का आदान–प्रदान करना, राज्य के नियमों का उलंघन कर व्यापार आदि करना एवं असली वस्तु के बदले में नकली वस्तु देना, अचौर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

"ब्रह्मणि आत्मनि चरतीति ब्रह्मचर्यः" अर्थात् आतमा के स्वरूप में रमण करना ब्रह्मचर्य है। विषय-वासना

आत्मा में विकार उत्पन्न करने वाली है तथा इसके त्याग से आत्मा अपने रूप में रमण करती है, यही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य व्रत का धारी अपनी स्पर्शनेन्द्रिय को आधीन करने के साथ रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय को अपने आधीन करता है। इन्द्रियों के विषयों में उच्छृंखल रूप से प्रवृत्ति करने पर आत्मा में अब्रह्म दोष आता है।

ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने के लिये निम्न पांच भावनाओं का पालन आवश्यक है।

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च।

अर्थात्—स्त्रीरागकथा श्रवणत्याग—जिन कथाओं के सुनने या पढ़ने में स्त्री विषयक अनुराग जाग्रत हो ऐसी कथाओं का त्याग, स्त्री मनोहरांग निरीक्षण—स्त्रियों के मुख, आंख, कुच आदि सुन्दर अंगों को देखने का त्याग, पूर्वरतानुस्मरण—पूर्व के भोगे हुए भोगों के स्मरण का त्याग, वृष्येष्टरस त्याग—गरिष्ठ और प्रिय भोजन का त्याग और स्वशरीर संस्कार त्याग शरीर के शृंगार का त्याग इन पांच भावनाओं का पालन करना चाहिये। इस व्रत के अतिचार—

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतागमनाङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः।

अर्थात्—पर विवाहकरण, इत्वरिका-परि-गृहीता गमन, इत्वरिका अपरिगृहीता-गमन, अनंग क्रीड़ा, और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

संसार के पदार्थों में ममत्वबुद्धि रखना परिग्रह है, इस परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह है। इस प्रकार इन पांचों अणुव्रतों का धारण करना व्रत प्रतिमा वाले के लिये आवश्यक है।

दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथिसंविभाग व्रत इन सात शीलों का भी पालन करना चाहिये। द्वितीय प्रतिमाधारी निरतिचाररूप से शील और व्रतों का पालन करता है।

द्वितीय प्रतिमावाला रक्त, मांस, पीव, चलितरस, त्याज्यवस्तु, मृतकीड़ा और हड्डी इन वस्तुओं के दर्शनमात्र से भोजन का त्याग कर देता है।

सामायिक प्रतिमा—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में कम से कम दो घड़ी और अधिक से अधिक छः घड़ी एकान्त में बैठ कर आत्मचिन्तन करना चाहिये। इस प्रतिमाधारी को निम्न ३२ दोषों को टाल कर सामायिक करना चाहिये—

(१)उन्मत्तचेष्टा (२) अंग संचालन (३) जिह्वा संचालन (४) डरकर सामायिक करना (५) गुरु का तिरस्कार कर सामायिक करना (६) गुरु के प्रतिकूल होकर सामायिक करना (७) सामायिक करते हुए संकेत करना (८) मस्तक ऊपर को उठाना (९) कांपना (१०) संघ विरोधी होकर सामायिक करना (१) गुरु के सामने अभिमान में आकर सामायिक करना (१२) आवाज करना (१३) गुनगुनाना (१४) घोड़े के पैर के सना पांव टेढ़ा करना (१५) लता के समान चंचल होना (१६) ऊपर देखना (१७) नीचे देखना (१८) अपने शरीर को देखना (१९) कौवे के समान तिरछा देखना (२०) घोड़े के मुख में लगी लगाम के समान मुंह हिलाना (२१) शरीर का स्पर्श करना (२२) अंगुली चटकाना (२३) हिलना (२४) पागल की तरह चारों दिशाओं को देखना (२५) सामायिक में इधर-उधर देखा (२६) दांत कटकटाना (२७) मस्तक पर हाथ फेरना (२८) शरीर खुजलाना (२९) भोगों का चिन्तन करना (३०) आंखों से संकेत करना (३१) जबरदस्ती सामायिक करना (३२) प्रमादी होना।

प्रोषधोपवास—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को निरतिचार सोलह प्रहर का उपवास करना प्रोषधोपवास प्रतिमा है। प्रोषध एकाशन करने को कहते हैं, दो एकाशन सहित एक उपवास करना प्रोपधोपवास है।

सचित्तत्याग प्रतिमा—कच्चे फल-फूल, वनस्पति, आदि सचित्त पदार्थों का त्याग करना सचित्तत्याग प्रतिमा है।

दिवामैथुन त्याग या रत्रिभोजन त्याग प्रतिमा-दिन में मैथुन करने का त्याग करना तथा रात को चारों प्रकार के भोजन करने का त्याग करना दिवामैथुन त्याग प्रतिमा है।

ब्रह्मचर्य—मन, वचन और काय से स्त्री विषयक अभिलापा का त्याग करना तथा संसार की समस्त स्त्रियों में मातृत्व भावना का जाग्रत हो जाना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। शरीर शृंगार, गरिष्ठ भोजन आदि का भी त्याग इस प्रतिमाधारी को करना पड़ता है।

आरम्भ त्याग—घर-गृहस्थी के कार्यों का त्याग करना आरम्भ त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमाधारी हिंसा के कारण नौकरी, खेती, वाणिज्य आदि आरम्भ क्रियाओं से विरक्त हो जाता है।

परिग्रह त्याग प्रतिमा—धन, धान्य आदि दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह तथा शरीर आदि पर पदार्थों से आत्मबुद्धि रहित होकर अखंड, अविनाशी आत्म स्वरूप में स्थिर होना परिग्रह त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का पालन करनेवाला घर–गृहस्थी का भार अपने पुत्र आदि पर छोड़कर दो–चार आवश्यक वस्त्र आदि लेकर जिनालय या घर के किसी एकान्त स्थान में रहता है। भोजन के लिये घर का व्यक्ति या अन्य कोई बुलाता है तो जाकर भोजन कर लेता है।

अनुमति त्याग प्रतिमा—चैत्यालय या वन में रहते हुए घर के किसी भी लौकिक कार्य में सलाह नहीं देना अनुमति त्याग प्रतिमा है।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा–घर छोड़कर वन में जाकर गुरुओं के पास दीक्षा ग्रहण करना तथा तपश्चरण करते हुए केवल लंगोटी या खंड वस्त्र धारण कर भिक्षावृत्ति से भोजन करना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है। इसके दो भेद हैं– क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक लंगोटी और चादर दोनों धारण करते हैं। परन्तु ऐलक केवल लंगोटी ही धारण करते हैं।

इस प्रकार ग्यारह प्रतिमाओं के कारण श्रावक ग्यारह प्रकार के भी होते हैं।

चन्द्राभ विद्याधर ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर गुरु के पास उत्कृष्ट-श्रावक-व्रतों का अभ्यास करने लगा।

एक दिन उसकी इच्छा उत्तर मथुरा के जिनमन्दिरों के दर्शन की हुई। उसने मन में विचार किया कि गुरु वचनों का उलंघन कर अपने मन के अनुसार चलनेवाले को सुख कहां? इस प्रकार निश्चय कर मुनिगुप्त महाराज के पास जाकर नमोऽस्तु कर बैठ गया और अवसर पाकर अपनी इच्छा प्रकट की।

गुरु—वत्स! गुणों की वृद्धि करना, वैराग्य बढ़ाना, परिणामों को शान्त रखना, इन्द्रियों तथा मन को वश करना, चारित्र पालन में सजग रहना, यही हमारा तुम्हारे लिये उपदेश है। यात्रा कर जल्दी वापस आना, निर्गुण, चरित्रहीन के पास कभी मत जाना, अन्यथा गुण दूषित हो जायंगे। अपने गुणों में दोष लगाकर प्रमादी बनना बड़ी भारी गलती है। वरुण महाराज की रानी रेवती को आशीर्वाद कहना तथा उद्भूर भट्टारक को प्रतिबंदना कहना।

ब्रह्मचारी हंसकर—गुरुदेव! आपने अन्य श्रावकों को कुछ भी नहीं कहा, तथा अभव्यसेन आदि १०० मुनिराजों के लिये कुछ भी नहीं कहा, क्या बात है? क्या आपका इन दोनों से कोई सम्बन्ध है?

मुनिगुप्त भट्टारक–वत्स ! तुम अपनी शंकाओं का सामाधान स्वयं प्राप्त करोगे । नीम के पेड़ पर कितना ही दूध डाला जाय फल कड़ुवे ही होंगे, कभी भी मीठे नहीं हो सकते । अज्ञानी को अच्छा उपदेश देने पर भी कुफल ही निकलता है ।

ब्रह्मचारी रास्ते में विचारने लगा––गुरुदेव ने कहा है कि तुम्हें अपनी शंकाओं का उत्तर स्वयं मिल जायगा अतः मैं रेवती रानी और उंडूर महाराज की परीक्षा लूंगा, गुरुदेव का प्रेम इन दोनों पर क्यों ज्यादा है ? गुरुदेव अष्टांग निमित्तज्ञानी हैं, निमित्तज्ञान के बल से समस्त बातों को जानते हैं । इनके वचनों में अवश्य कोई रहस्य है । इस प्रकार सोच–विचार करता हुआ ब्रह्मचारी विमान द्वारा अभव्यसेन महाराज के पास आया ।

अभव्यसेन मुनि––वत्स ! कहां से आये हो ?

ब्रह्मचारी––महाराज ! आपके तप की ख्याति सुनकर मैं पाण्ड्य देश की दक्षिण मथुरा नगरी से आपके दर्शन करने आया हूं ।

ब्रह्मचारी के इन वचनों को सुन कर अभव्यसेन मुनि बहुत प्रसन्न हुए ।

ब्रह्मचारी—अभव्यसेन आचार्य के सम्यक्त्व की परीक्षा करने के लिये दो चार आवश्यक बातों के बाद कहने लगा–हे महाराज आपने संसार के भोग विलासों को छोड़ कर यह भेप क्यों धारण किया है ? स्वर्ग-मोक्ष किसने देखा है ? कौन इसे प्राप्त कर सकता है ? आप व्यर्थ क्यों कष्ट उठाते हैं ? श्रावकों को भी कष्ट देते हैं ? प्रत्यक्ष को छोड़ परोक्ष की आशा से आप ऐसा क्यों कर रहे हैं । जब तक जीवन है, आनन्द से रहना चाहिये, व्यर्थ कष्ट सहने से क्या लाभ ? यह तो निर्बुद्धियों का काम है ? धर्म-धर्म कहकर जो अपने शरीर को कष्ट देते हैं ।

अभव्सेन आचार्य—लोग कहते हैं कि मोक्ष में सुख है, आगम में भी वताया है । मैंने उन्हीं लोगों के कहने से इस कष्ट को स्वीकार किया है, क्या जाने वास्तविक बात क्या है ? प्रत्यक्ष में तो आनन्द से खाना पीना, मौज उड़ाना ही सब कुछ है ? मरने के बाद किसने देखा है कि मोक्ष मिलता है ? शरीर जल कर यहीं राख हो जाता है, अतएव भई, में भी गतानुगतिक हूं । मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता है ।

ब्रह्मचारी ने विद्याबल से मायामयी त्रसजीवों को उत्पन्न किया, उनको पैरों से कुचलने लगा तथा बिना प्रयो-

जन के प्राणियों को कष्ट देने लगा। अभव्यसेनाचार्य ने उसके इस कृत्य में बाधा नहीं दी तथा उसे जीव मारते हुए न रोका। वह हंसते हुए अपने स्थान पर बैठे रहे।

अभव्यसेन जब शौच करने गये तो उन्होंने उनके कमण्डलु के प्रासुक जल को सुखा दिया। जब जल की आवश्यकता हुई तो वे बहुत चिन्तित हुए। ब्रह्मचारी ने विद्याबल के प्रभाव से वहां हरी घास भी लगा दी और कहने लगा कि पृथ्वी जल अग्नि, वायु एवं वनस्पति में जीव है, यह किसने देखा है। अतः तालाब का पानी काम में लाना चाहिये। आचार्य ने तालाब का पानी लेकर शुद्धि की।

पुनः ब्रह्मचारी—हे महाराज अनेक प्रकार के गाजे–बाजे के साथ संगीत पूर्वक घी, दधि आदि से वीतरागी प्रभु का भव्य जीव अभिषेक करते हैं, इसमें पुण्य क्या है?

अभव्यसेन—अरे भाई! सुना तो हमने भी है कि पुण्य होता है, पर पता नहीं ठीक कहां तक है!

ब्रह्मचारी—जिस प्रकार कमल जल में रहते हुए भी जल से भिन्न रहता है, सोना माणिक्य के साथ मिलाये जाने पर भी भिन्न रहता हैं, कर्णफूल कान में पहनने पर भी कान से अलग रहता है, आकाश पृथ्वी से भिन्न है, नक्षत्र मेरु की प्रदक्षिणा करने पर भी उससे भिन्न हैं, इसी प्रकार यह अभव्यसेन भी आप्त, आगम के श्रद्धान से रहित है। यह मिथ्यात्वी है, जिस प्रकार नीम के बीज में कभी भी माधुर्य नहीं आ सकता है, सूर्य की किरणें कभी भी शीत नहीं हो सकती हैं, उसी प्रकार अभव्य में कभी भी सम्यक्त्व आ नहीं सकता है।

जैसे पीतल की मूर्ति काली ही रहती है, उसी प्रकार अभव्य जिनदीक्षा लेकर भी पापी ही रहता है, वह अपना आत्म कल्याण नहीं कर सकता है। "संस्कार शतेनापि न गुण्डा कुंकुमायते" अर्थात् सैकड़ों प्रकार से कारीगरी करने पर भी पत्थर जैसे कुंकुम नहीं बन सकता है, उसी प्रकार अभव्य शास्त्राभ्यास, दीक्षा आदि के द्वारा भी भव्य नहीं बन सकता है। यह अभव्यसेन शास्त्राभ्यासी है, बड़ा भारी विद्वान् माना जाता है, परन्तु पूरा मिथ्यात्वी है। इसका निर्वाण नहीं हो सकता है, यह अविवेकी है।

इसके अनन्तर वह ब्रह्मचारी उंडूर भट्टारक के पास गया। उंडूर भट्टारक भिक्षा से लौट रहे थे। ब्रह्मचारी ने विद्याबल से खटमल, चींटी तैयार की और मारना आरम्भ किया। उंडूर भट्टारक इस कृत्य को देखकर विचारने

लगे—जिस प्रकार बच्चा अज्ञानता के कारण मल को हाथ में लेकर शरीर में लगा लेता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि
जीव अशुभकर्म के उदय से पाप करता है। भट्टारक उस निर्दय व्यक्ति के पास गये और सभ्यतापूर्वक मधुर वचन कहने
लगे—दया बिना सद्धर्म, विश्वास बिना स्त्री, आत्मा बिना शरीर और शूरता बिना युद्ध शोभा नहीं देते हैं। यह जैनधर्म
जीव मात्र को कल्याण करनेवाला है, पापसमुदाय को नष्ट करने वाला है, संसार के दुःखों को जलाने वाला है एवं सुव्रत
रूपी निधि से पूर्ण है। इसके समान संसार में अन्य कोई वस्तु सुख दायक नहीं है।

आप जिनेश्वर का वीररूप धारण कर ऐसा निन्द-कृत्य क्यों कर रहे हैं? जिनागम का अध्ययन कर अपना
वास्तविक कल्याण क्यों नहीं करते? परमागम का अध्ययन कर सदा सद्धर्म के स्वरूप को जानने का प्रयत्न होना चाहिये
दया सब धर्मों का मूल है, निर्दयता के समान अन्य पाप नहीं है। जो व्यक्ति निर्दय होकर अन्य जीवों के प्राण लेता है,
वास्तव में वह महान् पापी है। उसका कल्याण कभी नहीं हो पाता है, ब्रह्मचारी—महाराज! आप क्या कह रहे हैं?
शरीर को तपश्चर्या में सुखाना, लौकिक सुखों को छोड़ना और स्त्री—पुत्र आदि छोडकर पारलौकिक सुखों की कामना
करना मूर्खता नहीं तो क्या हैं? जिन छोटे जीवों को मैं मार रहा हूं, उनके जीवित रहने से लाभ क्या? इनको तो
मरना ही है। मैं इनको मार कर दुःख से मुक्त कर रहा हूं?

उद्भट भट्टारक —जो वस्तुएं प्रत्यक्ष नहीं है, उनका भी अस्तित्व युक्ति से सिद्ध होता है। जैसे आंख अपने को
नहीं देख सकती है, फिर भी उसका अस्तित्व स्वीकार करना पडता है, उसी प्रकार परोक्ष बातों की भी सत्ता स्वीकार
करनी पड़ेगी। अपनी मां से व्यक्ति जन्म लेता है, किन्तु जन्म लेते समय इस बात को वह नहीं जानता फिर भी यह
विश्वास करना पड़ता है कि यह हमारी मां है, उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के वचनों का विश्वास करना पड़ेगा आगम
में जो पुण्य—पाप की व्याख्या की गई है, वह ठीक है। निन्दनीय कार्य पाप-कृत्य माने जाते हैं, तथा जिन कार्यों से अपनी
या पर की भलाई होती है वे पुण्य कृत्यों में शामिल हैं। त्यागी व्यक्ति सुखों का त्याग थोड़े ही करता है, बल्कि सुख
प्राप्ति के लिये वह प्रयत्न करता है। स्त्री-पुत्र, धन-वैभव के मूल हैं, यह सब ऐन्द्रिक क्षणिक सुख है, इसका परिणाम
दुःख ही है। अतः जिस सुख का परिणाम दुःख हो, उसे कौन बुद्धिमान धारण करेगा। वास्तविक बात यह है कि शाश्-
वत सुख की उपलब्धि के लिये त्याग किया जाता है, आत्मा के वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि भी त्याग से ही होती
है। वासना और कषाय आत्मा को विकृत करते हैं, इनसे दुःख ही मिलता है, अतः त्याग द्वारा सच्चा सुख प्राप्त किया

जाता है।

जो तुमने अज्ञानता पूर्वक यह कहा है कि जिन छोटे जीवों को मार रहा हूं, उनके जीवित रहने से लाभ क्या ? यह भी तुम्हारा कथत विवेक शून्य है। संसार में सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्रिय हैं। जैसे हमें मारने से कष्ट होता है, वैसे ही इन प्राणियों को भी कष्ट होरहा है। हमारे समान सभी जीवों को जीवित रहने का अधिकार है अपने को विवेकी समझनेवाले प्राणी का यह कर्त्तव्य है कि वह सुख-शान्ति से संसार के अन्य जीवों को जीवित रहने दे। जीना अधिकार है और अन्य को जीवित रहने देना कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति कर्त्तव्य को नहीं समझता है वही इस प्रकार की अनर्गल बातें कहेगा, कोई किसी को मारकर दुःख से नहीं छुड़ा सकता। दुःख से तभी छुड़ाया जा सकता है, जब उसे सद्धर्म का उपदेश दिया जाय और उस धर्म का वह प्राणी अनुसरण कर अपना कर्त्तव्य पूरा करे। अतएव भाई ! आपको इस प्रकार की क्रूरता का त्याग करना चाहिये। अहिंसा के समान संसार में सुख और शान्ति देनेवाला अन्य कोई सिद्धान्त नहीं है।

ब्रह्मचारी—महाराज ! आपकी बातें युक्ति संगत तो अवश्य प्रतीत होती हैं, परन्तु यह बतलाइये कि जिस व्यक्ति ने तप द्वारा मरकर स्वर्ग प्राप्त कर लिया है, क्या उसने कभी आकर आपसे कहा है ? जिससे आप इस प्रकार की बातों का विश्वास करते हैं।

उंडूर भट्टारक—अरे भाई ! मैंने पहले ही कहा था कि आत्मा का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है। मरने पर शरीर यहीं रह जाता है और आत्मा अपने शुभाशुभ फलों के अनुसार अन्य योनि में चली जाती है। यदि कोई व्यक्ति जीवन में अच्छे कार्य करता है तो उसका शुभ बन्ध अवश्य होता है तथा वह अपने कर्मानुसार अच्छी गति को पाता हैं। भगवान् जिनेन्द्र सर्वज्ञ थे, उनके वचन कभी असत्य नहीं हो सकते हैं, अतः जिनागम की सभी बातें सत्य हैं, उनका श्रद्धान करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अनेकान्त सिद्धान्त के द्वारा आप स्वयं षड्द्रव्य पञ्चास्तिकाय, सप्ततत्त्व, षट्काय, छःलेश्या, आदि के सत्यासत्य को जान सकते हैं। इन द्रव्य, तत्त्व और लेश्याओं के स्वरूप में तनिक भी अन्तर नहीं मिलेगा। सर्वज्ञ प्रभु संसार के त्रिकालवर्ती पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से जानते थे। वीतरागी होने के कारण उनके वचनों में किसी प्रकार का दोष नहीं है। जैसे सूर्य अपनी उष्णता नहीं छोड़ता, चन्द्रमा शीतलता नहीं छोड़ता, कमल जल को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार जिनागम में वर्णित तत्त्व कभी झूठ नहीं हो सकते। सम्यग्दृष्टि जीव का सभी

पदार्थों का यथार्थ अधुभव है, वह जिनेन्द्र प्रभु के वचनों को बिल्कुल सत्य और निर्दोष समझता है।

मुनिराज के इस उपदेश को सुनकर वह ब्रह्मचारी बहुत प्रसन्न हुआ। अपना वास्तविक भेद उनके सामने प्रकट कर क्षमा याचना की भक्ति पूर्वक उंडूर भट्टारक की परिचर्या की तथा मुनिगुप्त भट्टारक की प्रतिवंदना कह सुनाई।

अगले दिन ब्रह्मचारी रेवती रानी की परीक्षा के लिये गया। उसने पूर्व दिशा में जाकर विद्या के बल से अपना ब्रह्मा का रूप बनाया। श्रेष्ठ कमण्डलु हाथ में ले लिया, चांदी का छत्र सिर पर धारण किया, यज्ञोपवीत कन्धे में धारण किया, हंस पर सवार हो चतुर्मुखों से सहित साक्षात् ब्रह्मा बन कर आया। श्रावक ब्रह्मा के आने का समाचार प्राप्त कर एकत्रित होने लगे। नाम श्रावक, चर्चा श्रावक, यथार्थ श्रावक, कुमति श्रावक, कार्यार्थी श्रावक, नवीन श्रावक पूजा सामग्री लेकर तमाशा के बहाना वहां आये। जिस समय राजा वरुण की सभा में ब्रह्मा के आने का समाचार प्राप्त हुआ, उस समय राजा रेवती रानी सहित चार हजार मुकुट बद्ध राजाओं की सभा में विराजमान था। राजाने सभा में कहा—हम धन्य हैं, हमारे राज्य में कमलासन सहित साक्षात् ब्रह्मा अनेक देवों सहित पधारे हैं। अतः उनके दर्शन कर हमें कृतार्थ होना चाहिये।

रानी महाराज! आप कैसी बातें कर रहे हैं। यह दर्शन करने के योग्य नहीं है।

राजा—प्रिये! क्या परमेश्वर के दर्शन भी नहीं करने चाहिये। मैं तो अवश्य दर्शन करने जाऊंगा, दर्शन से अवश्य कृतकृत्य हो जाऊंगा।

रानी हंसकर —महाराज! वह ब्रह्मा नहीं है, कोई मायाचारी व्यन्तर या विद्याधर कपट वेष धारण कर ठगने के लिये आया होगा। हमारे आगम में बताया गया है कि इस अवसर्पिणी काल में एक ही आदि ब्रह्म नाम का तीर्थंकर हुआ है, जो मोक्ष भी प्राप्त कर चुका है। अतः यह कोई मायावी ब्रह्मा है, वास्तविक ब्रह्मा नहीं। आप चाहे भले ही दर्शन करने चले जांय। मैं तो इस झूठे, पाखण्डी के दर्शन करने नहीं जाऊंगी।

नागारिक बिना विचार किये आये और सबने ब्रह्मा की पूजा की। ब्रह्मचारी ने देखा कि रानी नहीं आयी तो सोचने लगा कि आज तो मेरा परिश्रम व्यर्थ गया, कल पुनः परीक्षा करूंगा।

अगले दिन वह दक्षिण दिशा में गया और वहां गले में कौस्तुम्भ, चारों हाथों में गदा, शंक, चक्र और धनुष

लिये, नील वर्ण के पर्वत के समान रूप धारण कर के गरूड़ पर सवार प्रकट हुआ। उसने सोलह हजार देवियों के सहित दिव्य विष्णु का रूप धारण किया। नगर में जब यह विष्णु पधारे तो सर्वत्र हल्ला हो गया कि आज विष्णु भगवान पधारे हैं। उनकी पूजा के लिये सभी नागरिक एकत्रित होने लगे, धीरे-धीरे यह समाचार राजसभा में पहुँचा राजा ने रेवती रानी की ओर मुख कर कहा—कल ब्रह्मा आये थे, आपको उनके ऊपर विश्वास नहीं हुआ। आज साक्षात् विष्णु भगवान पधारे हैं, अतः आपको अवश्य उनके दर्शन के लिये जाना चाहिये। दर्शन से आत्मा पवित्र हो जायगी, और इच्छाएं पूर्ण हो जायंगी।

रेवती रानी—राजन् ! यह भी कोई मायावी है, इसकी पूजा अज्ञानी और पाखण्डी ही करेंगे। यह केशव या नारायण नहीं है। हमारे आगम में बताया गया है कि नव नारायण पहले हुए हैं, वे अब यहां कहां से आवेंगे ? वे आज से लाखों बर्ष पहले हुए हैं, उनका अब इस रूप में अस्तित्व कैसे संभव है ? यह कोई अवश्य मायाचारी है। रानी की बातों ने राजा को आश्चर्य में डाल दिया।

ब्रह्मचारी रेवती रानी को आया हुआ न देखकर निराश हुआ और उस रूप को छोड़कर पश्चिम दिशा में जाकर महादेव का रूप धारण किया। उसने अपनी जटाओं में गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा शरीर में भभूति, हाथ में त्रिशूल, कर में सर्पों के कंकण, बगल में पार्वती धारण की। वृषभ पर सवार होकर महादेव के रूप में प्रकट हुआ। नगर में चर्चा होने लगी कि अब तक सुनने में आया था कि महादेव नाम का कोई देव है, किन्तु इस समय हमलोग प्रत्यक्ष दर्शन कर कृतार्थ हो गये।

वरुण महाराज ने इस चर्चा को सुनकर रेवती रानी से कहा—हे कमल मुखी ! आप मेरे साथ सीधे चलिये और महादेव के दर्शन कर अपने को सफल कीजिये। शंकर संसार में कल्याण करते हैं, इनके समान शक्तिशाली अन्य कोई भी देव नहीं है, व्यर्थ की हठ करना अच्छा नहीं होता है।

रानी—देव ! आगम में ग्यारह रुद्रों का वर्णन आया है, वे सभी आज से लाखों वर्ष पहले हो चुके हैं। इस काल में रुद्र नहीं आ सकते। यह कोई मायाचारी है, व्यन्तर या विद्याधर के सिवा अन्य कोई नहीं है। रानी के न जाने से राजा भी महादेव के दर्शन करने नहीं गया।

ब्रह्मचारी इस बार भी रानी को आया हुआ न देखकर आश्चर्य में पड़ गया और अपनी विद्या को विसर्जित किया। अगले दिन वह उत्तर दिशा में आया और जगत को आश्चर्य में डालने वाला रूप बनाया। अशोक वृक्ष तैयार किया, अष्ट प्रातिहार्य बनाये, दिव्य ध्वनि शुरु की, देवों द्वारा पुष्पों की वर्षा होने लगी। पृथ्वी निवासियों को आश्चर्य में डालनेवाला समवशरण बनाया और भगवान् महावीर स्वामी का रूप धारण किया। देखने में बिल्कुल वह महावीर जैसा ही लग रहा था।

तीर्थंकर का समवशरण आया हुआ जान कर सब पूजा के लिये गये और भक्तिपूर्वक कमल, पुष्प, जल, चन्दन, अक्षत, नैवेद्य, फल, धूप, दीप आदि से उनकी पूजा की। पूजा करने और वर्द्धमान भगवान के आने की बात राजा वरुण के कानों में पहुँची।

राजा——हे राजीवलोचनि ! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के दर्शन नहीं किये, पर आज तो अपने कुल-देवता वर्द्धमान स्वामी का समवशरण आया है, अतः अब आप दर्शन के लिये चलिये।

रानी——कैवल्य श्री को प्राप्त किये जिनेन्द्र इस काल में कहां से आ गये ? २४ तीर्थंकर तो पहले ही हो चुके हैं, अब २५ वां तीर्थंकर कहां से आयगा जो भगवान् निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, वे कहां से आवेंगे ? मैं इन्हें तीर्थंकर मानने को तैयार नहीं हूं, अवश्य ही यह कोई मायावी है। राजा को रेवती रानी के वचनों ने आश्चर्य में डाल दिया। वह सोचने लगा, बात ठीक ही है। वास्तव में २५ वां तीर्थंकर कहां से आयेगा ?

राजा——प्रिये ! सभी लोग आश्चर्य में पड़कर क्यों इन्हें महावीर मानते हैं ? क्या सभी लोग मिथ्यादृष्टि हैं। कुछ समझ में नहीं आता है, बात क्या है ?

रानी——स्वामिन् ! जैसे सभी पुष्पों में फल नहीं लगते। सभी वृक्ष चन्दन के नहीं होते है। सभी नारियां सती नहीं होती, उसी प्रकार सभी व्यक्ति सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। कतिपय व्यक्ति ही सम्यक्त्व के धारी हैं। देव, शास्त्र और गुरु का सच्चा श्रद्धान जिसे है, वह कभी भी इस प्रकार के जाल में फंस नहीं सकता है।

जब अबकी बार भी रानी ब्रह्मचारी के पास नहीं गयी तो उन्होंने स्थिरमति समझा। पश्चात् उसने साधु का रूप धारण कियाऔर चर्या के लिये निकला। रानी ने उसको पड़गाहा और भीतर चौके में ले गयी। ब्रह्मचारी ने रानी को सम्यग्दृष्टि समझा तथा अपना वास्तविक रूप प्रकट कर मुनि गुप्त भट्टारक का आशीर्वाद कहा अब ब्रह्मचारी।

को मुनि गुप्त भट्टारक की सारी बातें समझ में आ गयीं ।

कुछ दिनों के बाद रेवती रानी ने सुव्रता नाम की आर्यिका से दीक्षा ग्रहण की और तप कर संन्यास पूर्वक मरण किया, जिससे १६ वें स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई। २२ सागर की आयु प्राप्त कर सुख भोगने लगी। इस प्रकार राजा श्रेणिक को गौतम स्वामी ने अमूढ़ दृष्टि अंग की कथा कही ।

पांचवी कथा समाप्त हुयी



छठवीं कथा

राजा श्रेणिक गौतम स्वामी को नमस्कार कर बोला—प्रभो ! उपगूहन अंग की कथा कहने का कष्ट करें। इस अंग का यथार्थ रीति से पालन करने पर निर्वाण लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है। उपगूहन अंग की महिमा विलक्षण है, जो श्रावक इस अंग को धारण करता है, वह इस संसार से जल्दी पार हो जाता है । सबसे प्रथम मैं उपगूहन अंग का स्वरूप समझना चाहता है ।

गौतम स्वामी—राजन् ! किसी धर्मात्मा, सम्यक्दृष्टि जीव के किसी अवगुण को देखकर उसे छिपाना तथा एकान्त में उसे सचेत कर समझा देना उपगूहन अंग हैं। इस अंग का पालन सभी व्यक्ति नहीं कर पाते हैं, क्योंकि व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरों की गलतियां और दुर्गुण देखता है; जिससे इस अंग का यथार्थ पालन नहीं हो सकता है।

राजा श्रेणिक—स्वामिन् ! इस अंगधारी की कथा सुनने की इच्छा है, कृपया कथा कहकर जिज्ञासा की तृप्ति करें। कथा के सहारे मनुष्य धर्म के तत्त्वों को आसानी से हृदयंगम कर लेता है, अतएव आप धर्मतत्त्वों को उपगूहन अंग की कथा के माध्यम द्वारा कहने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—नाना प्रकार के अतिशयों से युक्त ग्वल देश में सुन्दर कामलिप्त नाम का नगर था । इस नगर में मनोहर नामका राजा राज्य करता था । इस नगर में जिनभक्त नाम का सेठ रहता था । इसका ऐश्वर्य कुबेर के समान और प्रभाव इन्द्र के समान था। इस नगर में इसके समान अन्य कोई भी धनिक नहीं था। यह सुखपूर्वक अपना समय बिताता था।

इसी समय पाटलीपुत्र में वीरध्वज नाम का राजा राज्य करता था, इसकी धर्मपत्नी सुसीमा नाम की थी। इनका पुत्र वीरकुमार नाम का था । यह कुसंगति के कारण सातों व्यसनों सा सेवन करता था। चोर, उचक्के, बदमाश और गुण्डों का साथ उसे प्रिय था । यद्यपि राजा ने पुत्र को सुधारने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वह रास्ते पर न आया।

एक दिन राजकुमार ने अपने साथियों से कहा--मित्रों ! ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहां से हमने वस्तुएं न चुराई हों। हम लोग चोरी के व्यवसाय में बहुत ही प्रवीण हैं। परन्तु एक वस्तु ऐसी सुन्दर और कीमती है कि जिसका चुराना हमारे लिये आवश्यक है। यह चोरी साधारण नहीं है, इसमें प्राण जाने का भी भय है। परन्तु फिर भी मुझे विश्वास है कि कोई भी मेरा साथी इस काम को पूरा कर सकेगा। आप लोग जानते हैं कि भवलदेश में कामलिप्त नाम का नगर है, इसमें प्रसिद्ध धन कुवेर जिनेन्द्र भक्त नाम का सेठ रहता है। इसके जिनालय में भगवान् के ऊपर लगा हुआ मणि मण्डित छत्र अत्यन्त कीमती है, इसके समान दिव्य वस्तु आज तक दूसरी नहीं देखी है।

वह पुनः बोला--यह मन्दिर भी सुमेरु पर्वत के समान वज्र का सा है। बारह दरवाजे हैं, सबों को लांघ कर परकोटे के अन्दर जाना पड़ता है। वहां जाकर पहले कर्मचारियों को वश में करना होगा, इसके बिना वहां से चोरी नहीं हो सकती है। पहरेदारों की वहां कमी नहीं है। तलवार, भाला, गदा लिये पहरेदार सदा सन्नद्ध रहते हैं, आहट पाते ही पकड़ लेते हैं ? इतना सब कुछ होते हुए भी क्या आप लोगों में ऐसा कोई वीर है, जो साहस कर उस बहुमूल्य छत्र को चुरा लावे। मुझे विश्वास है कि आप लोग अत्यन्त हुशियार, समझदार चोर हैं, आप लोगों की तुलना किसी में नहीं की जा सकती है।

किसी भी उपाय से जो लाकर उसे दे देगा, मैं आधा राज्य उसे दे दूंगा। यह छत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है। जबसे मैंने उस छत्र को देखा है, मुझे उसके प्राप्त करने की चिन्ता हो गई है। उसके बिना मुझे चैन नहीं।

सूर्य चोर--राजकुमार ! आप चिन्ता न करें, मैं अवश्य उस छत्र को लाकर आपको दूंगा। चाहे मेरे प्राण इस कार्य में भले ही चले जांय, परन्तु उस छत्र को चुराकर अवश्य लाऊंगा। आज तक मैंने ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य किये हैं, जिससे बड़े बड़े लोग आश्चर्य में पड़ गये हैं; यह मेरे लिये कोई बड़ी बात नहीं है।

चोर सोचने लगा यह काम सामान्य नहीं है, उसे चुराकर कोई नहीं ला सकता है, इसके लिये मुझे बुद्धि से काम लेना होगा। जो काम बल से सम्पन्न नहीं किया जा सकता है, वह बुद्धि से हो सकता है। चोरी कर लेने पर भी दयालु जिन भक्त मेरे प्राण नहीं लेगा, किन्तु उसके व्यक्ति मुझे अवश्य मार डालेगें। सामान्य स्तेय कृत्य से इस में सफल होना कठिन है, युक्ति से काम लेने पर अवश्य सफलता मिलेगी। दुःख, मरण और चिन्ता इन तीनों का रहस्य

स्य चोर ही समझता है। कोई व्यक्ति यदि असावधान होकर किसी दरवाजे में प्रवेश करे तो उसके सिर में चोट लगना साधारण है, परन्तु जो व्यक्ति सावधान होकर घुसता है, उसके सिर में चोट क्यों लगेगी ? विचारशील व्यक्ति युक्ति-पूर्वक किसी भी कार्य को सिद्ध कर लेता है। अतः छत्र में लगी वैडूर्यमणि को सावधानी से लाना होगा, अन्यथा छत्र लेने के साथ ही प्राण ले लिये जायंगे।

इस कार्य को सम्पन्न करने लिये मुझे श्रावक बनना पड़ेगा, मुनिराज के पास जाकर कपट वेश धारण कर आगम का अभ्यास करना होगा। पश्चात् मायाचार द्वारा उग्र तपस्या कर लोक में ख्याति प्राप्त कर लेने पर जिनेन्द्र भक्त सेठ अपने, आप मेरे पास आयगा। मेरे तप से आकृष्ट होकर अपने घर ले जायगा, मैं विश्वास उत्पन्न कर वैडूर्य-मणि को चुरा लाऊंगा, पश्चात् उसे राजा को देकर आधा राज्य प्राप्त करूंगा।

घर आकर उसने अपने कुटुम्बियों से कहा कि आज राजपुत्र वीरकुमार ने एक कार्य करने को दिया है, इस काम के पूरा हो जाने पर आधा राज्य प्राप्त हो जायगा। परन्तु यह कार्य सामान्य नहीं है, इसमें प्राण जाने का भी डर है। मैं अब कार्य की सिद्धि में जाऊंगा, आप लोग मेरे लौटने तक किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें, घर में प्रेमपूर्वक सावधानी से रहें। मैं अपना कार्य कर जहां तक होगा शीघ्र लौट कर आऊंगा। इस प्रकार घर के लोगों को समझा कर वह खलदेश की ओर गया और वहां पर एक जिनालय में एक मुनिराज के पास साधु मार्ग का अभ्यास करने के लिये पहुँचा।

मुनिराज--वत्स ! कहां से आये हो ? कहां रहते हो ? अब कहां जा रहे हो ?

छद्मवेषी--प्रभो ! अनाथ परदेशी हूं। अनादिकाल से इस जीव का कोई भी साथी नहीं रहा है। मैं आत्म कल्याण करने के लिये आपकी सेवा में आया हूं ! आभूषण, वस्त्र, कुटुम्ब, माता, पिता, स्त्री, धन, वैभव आदि के मोह में पड़ कर इस जीव ने अनादिकाल से कष्ट पाया है। संसारिक सुख शाश्वत नहीं है, इस मनुष्य पर्याय का फल यही है भौतिक सुख को छोड़, विरक्त हो आत्म कल्याण के लिये वद्धपरिकर रहे। इस प्रकार की बातें कह कर मुनिराज के पास एक श्रद्धालु शिष्य के समान रहने लगा और इनके निकट सम्पर्क के कारण उठना, बैठना, शास्त्राभ्यास, आहार आदि की विधि को समझ गया। ब्रह्मचारी का भेष धारण कर कपट रूप में श्रावक कर्म का अभ्यास करने लगा। उसने अपना सारा क्रिया काण्ड और बाह्य आडम्बर ब्रह्मचारी का सा बना लिया।

राजपुत्र वीरकुमार से आधा राज्य पाने की लालसा से वह तपस्या में लग गया। पृथ्वी में आश्चर्य उत्पन्न करने वाला कठोर तप करने लगा। बाह्य तप कर उसने शरीर को कृश कर दिया। एकोपवास, द्वि-उपवास, अष्टोपवास, पक्षपवास आदि कठोर उपवास करने लगा, जिससे शरीर सूखकर कांटा बन गया। इस प्रकार उग्र-उग्रतर तपस्या करता हुआ वह कामलिप्त नगर की ओर बढ़ने लगा। ग्राम, नगर, खेट खर्वट, मटम्ब द्रौरा, पत्तन आदि को पार करता हुआ आगे चला जा रहा था। कामलिप्त नगर में पहुँच कर उसने अपने तप का प्रभाव सभी पर डाल दिया मुक्तकण्ठ से सभी उसकी तपस्या की स्तुति करने लगे। उसकी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त हो गयी। चर्चा होने लगी कि ऐसे त्यागी बहुत कम लोग हैं, इन्होंने शरीर से अपना मोह बिल्कुल दूर कर दिया है। प्रत्येक व्यक्ति उसके गुणों की प्रशंसा कर रहा था, जिनेन्द्रभक्त सेठ को जब उस त्यागी ब्रह्मचारी का समाचार मिला तो वह बेचारा उसके दर्शन करने के लिये आया। उसने उसके दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया तथा पूजा कर स्तुति की। हाथ जोड़कर जिनेन्द्रभक्त बोला—स्वामिन् आप हमारे चैत्यालय में दर्शन करने के लिये चलें, दास पर बड़ी कृपा होगी।

पहले तो ब्रह्मचारी ने सेठ जिनेन्द्रभक्त की प्रार्थना स्वीकार करने में आनाकानी की, परन्तु बाद को उसने प्रार्थना स्वीकार कर ली और जिनालय में आकर रहने लगा। ब्रह्मचारी के आ जाने से जिनेन्द्रभक्त भी बहुत प्रसन्न था, अपने पुण्य का उदय समझ कर अपने को कृतार्थ समझ रहा था। ब्रह्मचारी रत्नमयी उस जिनालय को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और जिनेन्द्रभक्त से कहने लगा कि इस रत्न परिपूर्ण जिनालय में मेरा रहना ठीक नहीं है। मैं किसी सादे मकान में रहूंगा, इतने वैभव प्रासाद में रहने से मेरी भक्ति भावना में बाधा आवेगी। इस प्रकार सेठ को दृढ़ करने के लिये उसने मायाचारी वचन कहे। वह छद्मवेषी ब्रह्मचारी प्रत्येक कार्य को सावधानी पूर्वक करने लगा, अतः उसने इस समय और अधिक उपवास करने आरम्भ किये। वह सोचने ल ा—इस समय मैं जितनी अधिक तपस्या करूंगा मेरा प्रभाव बढ़ेगा, जिनेन्द्रभक्त को मेरे ऊपर बिल्कुल विश्वास हो जायगा। अतएव वह मौन होकर उपवास करने लगा, शरीर उसका सूखकर बिल्कुल कांटा हो गया, आखें नीचे बैठ गयीं, किन्तु फिर भी ऊपर से तेज दिखलायी पड़ता था।

वह स्त्रियों को देखते ही आंखें बन्द कर लेता था, उनके साथ वह बात-चीत भी नहीं करता था। यदि कदाचित् किसी स्त्री से बात कर लेता तो उसके लिये उसे उपवास करना पड़ता। वह स्त्रियों के हाथ का परोसा भोजन भी नहीं करता। सुवर्ण का नाम सुनते ही कान बन्द कर लेता था, आभूषणों के स्पर्शमात्र से उपवास करता था।

छद्मवेषी वह ब्रह्मचारी निस्पृह होकर अपना कार्य सिद्ध करने की चिन्ता में था। वह संसारिक भोग को बातें सुनकर अन्तराय कर लेता था। वह विलाव के समान चतुर, बगुला के समान मायाचारी, बड़ ऊमर फलों के समान निस्सार, व्याघ्र के समान अन्तरंग मे क्रूर था।

कुछ दिनों के उपरान्त एक दिन जिनेन्द्र भक्त ने कहीं व्यापार के लिये जाने का विचार किया और अपने साथ जाने वाले व्यापारियों को एकत्रित कर व्यापार के सम्बन्ध में विचार विनिमय किया। प्रस्थान के दिन भक्तिवश ब्रह्मचारी के पास आकर बोला—हे महाराज ! आपके समान व्यक्ति के दर्शन पुण्योदय के बिना नहीं होते ? आप कृपया मेरे ही घर पर रहें, आप अत्यन्त पुण्यवन्त हैं, अद्भुत आप में आकर्षण है। आपके प्रभाव से अनेकानेक श्रावक प्रतिदिन यहां आया करेंगे। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये, और मेरे घर लौट आने तक आप यहीं रहने की कृपा कीजिये। ब्रह्मचारी मन में प्रसन्न होकर सोचने लगा—मेरा पुण्य कितना प्रबल है, मेरा कार्य अब सिद्ध होना ही चाहता है, यह अपने आप घर छोड़ कर जा रहा है। अब तो मेरी इच्छा अच्छी तरह पूर्ण हो जायगी। इस प्रकार वह विचार कर भीतर के भावों को दबा कर ऊपर से कहरने लगा—अरे सेठ ! जब मैंने अपने ही घर के स्त्री पुत्र, कुटुम्बियों को छोड़ दिया, धन–वैभव को छोड़ा, तो मैं किसके घरकी रखवाली करूंगा। मैंने आत्मकल्याण के लिये यह सब त्याग किया है, यदि आत्म कल्याण में कुछ बाधा आयेगी तो फिर मेरा किया कराया चौपट हो जायगा। कल्याणेच्छुक को सदा अपने वैराग्य को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। एक स्थान पर रहने वाले को आनन्द भी प्राप्त नहीं हो सकता है। संसार में सुख लेश मात्र भी नहीं हैं, आहार की याचना ही पहले तो पापकारक है, फिर आहार ग्रहण करने में कितना पाप होता है। मैं तो सोचता हूं कि यदि बन सके तो साधक को आहार का भी त्याग कर देना चाहिये। साधु का काम एक स्थान पर रहना नहीं है, उसे जगह–जगह भ्रमण कर अपने उपदेश द्वारा जनता का कल्याण करना चाहिये। साधु का शरीर चन्दन के समान रगड़ने पर सुख और आनन्द ही देता है। वास्तव में आत्मकल्याण तभी संभव है जब तप–व्रत द्वारा अपनी भलाई की जाय।

जिनेन्द्र भक्त—महाराज ! श्रावकों की विनय और प्रार्थना आप लोगों को सुननी चाहिये। विरक्त व्यक्ति के लिये घर और वन दोनों समान हैं। विषयासक्त वन में रह कर अपना आत्म कल्याण नहीं कर पाता है- उसे विषयों की लालसा नीचे गिरा देती है; किन्तु विषय भी विरक्त व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। आप यहां रह

कर भी अपने ज्ञान ध्यान को समुज्ज्वल बना सकते हैं । यहां रहने पर भी आपकी तपस्या में कोई हानि नहीं होगी। आप कृपा कर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये। इतना कह कर उसने नमस्कार किया।

जिनेन्द्रभक्त सेठने अपने अन्य घरके लोगों को बुलाकर घर की सारी व्यवस्था करदी और दान -पुण्य के कार्यों के संचालन की सारी विधि समझा दी।

ब्रह्मचारी सोचने लगा—अब मेरा भाग्य सफल होने को है। मैंने वैडूर्यमणि को प्राप्त करने के लिये कितने कष्ट सहे हैं। शरीर को भूखा रख कर बिल्कुल सुखा दिया है। पर अब मेरे सभी मनोरथ सफल हो जायंगे। दो-तीन दिन में मैं जल्दी ही राजा के पास जाकर मणि दे दूंगा और अपना आधा राज्य मांग लूंगा। इस प्रकार विचार कर वह रातभर जागता रहा और मध्य रात्रि में उठकर पहरेदारों के सो जाने पर तीनों छत्रों के मध्य में लगे हुए वैडूर्य मणि को उसने निकाल लिया। इस मणि को देखकर वह कहने लगा—हे रत्न शिरोमणि! आपके लिये मैंने कितने कष्ट सहन किये हैं? आपके द्वारा मेरा भाग्योदय होने जा रहा है। वास्तव में आप हैं भी उतने ही सुन्दर, जितने आपको लोग कहा करते थे इस प्रकार रत्न की स्तुति करता हुआ बात करने लगा। अनन्तर उसे गले से लगाया, सिर पर धारण किया और हाथ में लेकर भावी सुख की कल्पना कर अत्यन्त हर्षित हुआ।

वह पुनः सोचने लगा—इस रत्न को देकर वीरकुमार से मुझे आधा राज्य मिल जायगा, मैं धन–वैभव प्राप्त कर आनन्द से राज्य करूंगा। अब, चोरी का धन्धा मैं सदा के लिये छोड़ दूंगा। मेरी तुलना संसार में कोई नहीं कर सकेगा यदि मेरे पुण्य का उदय नहीं होता तो मैं क्यों इस प्रकार का दुस्साहपूर्ण कार्य करता। अब तो निश्चय ही अनेक रमणियों के साथ भोग-विलास करते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाऊंगा। इस प्रकार सोच कर उसने वैडूर्य मणि हाथ में ले ली और समस्त दीपकों को बुझाकर निकल भागा। रत्न की जगमगाहट को देखकर लोग उसके पीछे दौड़ने लगे, उन्होंने उसे रत्नका चोर समझा। नगर के हल्लेको सुनकर जिनालय के पहरेदार भी जाग गये और जिनालय में अन्धेरा देखकर वैडूर्यमणि की चोरी की बात समझ गये। जिनालय में खोजने पर भी जब ब्रह्मचारी दिखलाई नहीं पड़ा तो लोगों ने उसे ठग समझ लिया और वे सभी पहरेदार उस चोर को पकड़ने के लिये दौड़े।

वैडूर्य मणि का प्रकाश इतना तेज था कि जिसके छिपाने के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह उसे छिपा न सका। वह इतनी तेजी से आगे बढ़ा जिससे उसके पांव में कई जगह चोट लगी, कांटे गड़े; परन्तु फिर भी वह भागता गया। इधर चोर के पीछे पहरेदार तथा अन्य नागरिक भी दौड़ते ही गये। तेज प्रकाश उसे पकड़ने में बहुत सहायक था। यद्यपि चोर ने रत्न के प्रकाश को कपड़ों में छिपाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह किसी भी प्रकार नहीं छिप सका।

चोर बेतहाश भाग रहा था। चारों ओर से लोग इसे घेरे हुए थे, उनकी अवस्था बिल्कुल खराब हो रही थी। जब उसे अपने बचने का कोई उपाय नहीं दिखलाई पड़ा तो, वह सोचने लगा कि ये अब मेरे निकट आ पहुँचे हैं। मैं अवश्य पकड़ा जाऊंगा और मेरी बड़ी कुगति होगी। ये लोग मेरी हड्डी-पस्ली सभी तोड़ देगें अतएव समय सबसे अच्छा यही है कि मैं जिनेन्द्रभक्त की शरण में पहुँच जाऊं तो शायद मेरे प्राण बच भी जायंगे। इस समय मेरा बचना बड़ा ही कठिन है, अतः मुझे जिनेन्द्रभक्त के पास ही जाना चाहिये। जिनेन्द्रभक्त का डेरा यहां से पास है। ऐसा विचार कर वह दौड़ा और जिनेन्द्रभक्त के तम्बू में घुस गया।

सेठ का ब्रह्मचारी के ऊपर बड़ा प्रेम था, किन्तु आज उसके ठग और पाखण्डी रूप को देखकर उसे उससे घृणा हो गयी। वह सोचने लगा—जैसे सांप देशविदेश में चाहे जहां घूम आवें, उसे खाने के लिये चाहे जो कुछ दिया जाय किन्तु उसका विष दूर नहीं हो सकता है। इसी प्रकार धूर्त व्यक्ति अपनी धूर्तता को कभी नहीं छोड़ सकते हैं। विवेकी पुरुष को स्त्री-मोही और धनलुब्धक का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, यह नीति शास्त्र का नियम है। क्योंकि व्यसनी का सत्य, दुर्जन का धर्म, मूर्ख का चरित्र, झूठे का शौच, दरिद्र का भोग, कमजोर की वीरता, ठग की कीर्त्ति, विट का शील एवं वधिर का सुनना क्या कभी किसी ने देखा है? अन्धे को भेंट, स्त्री का राज्य, चंचल वृत्तिवालों का धैर्य, पातिव्रत बिना नारी, शील बिना सज्जन एवं सम्यग्दर्शन बिना तप कभी भी शोभा को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्रथमानुयोग के अध्ययन बिना अध्यात्मज्ञान, पागलों का यश और मूर्खों का ऐश्वर्य समय पड़ने पर कार्यकारी नहीं हो सकते है। ये सब बालू की भींत के समान हैं, न मालूम कब ढह जांय। सिद्धान्तशास्त्र का मर्म बिना समझे पढ़नेवाला निर्बुद्धि कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकता है। प्रथमानुयोग शास्त्र की कथाओं के द्वारा अध्यात्मज्ञान समझा जा सकता है, जो व्यक्ति केवल अध्यात्मशास्त्र को ही जानना चाहता है, वह व्यवहार धर्म की सम्यक् जानकारी के अभाव

में इस शास्त्र के रहस्य को हृदयंगम नहीं कर सकेगा, दान–पूजन, स्वाध्याय आदि कार्य व्यक्ति में आत्मिक स्थिरता उत्पन्न करते हैं, अतः इनकी परम आवश्यकता है।

मूर्खों की मित्रता, दरिद्री का भोग, आगम ज्ञान विना तपस्या और अविचारित कार्य कभी सफल नहीं होते। तपस्वी के लिये समागम का अध्ययन परमावश्यक है। शास्त्रज्ञान से परिणामों में दृढ़ता आती है, वास्तविक विरक्ति उत्पन्न होती है, वस्तुस्वरूप का बोध होता है तथा हेयोपादेय रूप यथार्थ प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार जिनेन्द्र भक्त सेठ विचार करने लगा।

जिनेन्द्रभक्त सेठ के तम्बू में चोर के घुसते ही पीछे दौडने वाले लाठी, तलवार और बर्छा लिये आये और उसे मारने के लिये प्रस्तुत थे। वे लोग कहने लगे—इस पापी ने अपनी कीर्ति फैलाई, दूसरों को अपने प्रभाव से झुकाया। जिस प्रकार बबूल के छोटे वृक्ष में आरम्भ से कांटे नहीं दिखलाई पड़ते, किन्तु बड़ा होजाने पर उनमें कांटे निकल आते हैं, उसी प्रकार मूर्खों की तपस्या आरम्भ में अच्छी मालूम होती है, पर वाद को अच्छी नहीं लगती।। वांस, पत्थर बाहर से देखने पर अच्छे लगते हैं, किन्तु उनके भीतर वैसी कोई सुन्दर चीज नहीं होती, इसी प्रकार धूर्त और ठग ऊपर से अच्छे दिखलायी पड़ते हैं, किन्तु भीतर इनके धूर्तता छिपी रहती है। दुष्ट लोग धर्म को स्वीकार कर उसे भी खराब कर देते हैं। इनको पहचानना बड़ा ही कठिन होता है।

जिनेन्द्रभक्त इस दृश्य को देखकर अत्यन्त अचम्भे में पड़ गया और विचारने लगा कि इस समय धर्म की रक्षा करनी चाहिये। इस ब्रह्मचारी के वेप में इसे चोर समझने से धर्म की निन्दा होगी। इस मूर्ख का कुछ नहीं बिगड़ेगा, परन्तु ब्रह्मचारी के भेष से लोगों की श्रद्धा उठ जायगी। जैनधर्म इतना पवित्र और उदार धर्म है कि कोई भी व्यक्ति इसका पालन कर अपना कल्याण कर सकता है। अतः ऊहापोह के अनन्तर सेठ ने एक पाटा रखकर उस पर उसको बैठाया और उसके पैर दबाना शुरू किया। पीछा करने वाले व्यक्तियों ने जब यह कृत्य देखा तो वे आश्चर्य में पड़ गये और सेठसे पूछने लगे कि हे श्रेष्ठिन्! आप यह क्या कर रहे हैं? इस पापीके कृत्य आपको मालूम नहीं हैं क्या? इसने मन्दिर के छत्र में लगी हुई वैडूर्य मणि चुराली है। यह रास्ते में हम लोगों को मिल जाता तो इसे हम तलवार के घाट उतारे विना नहीं छोड़ते, अबतो यह आगके पास आकर बच गया है। यह अविश्वासी, धूर्त, ठग, मायाचारी और

दुष्ट है, इसे शीघ्र ही राज्य के कर्मचारी को देना चाहिये । इसका मायाचार अब छिपाने से छिप नहीं सकता है, इसका धर्मात्मापन हम अच्छी तरह देख चुके हैं ।

जिनेन्द्रभक्त गम्भीर होकर—अरे ! क्या बक रहे हो ? इसने किस की वस्तु चुराई है । धर्मात्मा आदमी की निन्दा करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती । मैंने वैडूर्य मणि इस ब्रह्मचारी से मंगवाई थी, वही तो इसने लाकर दी है। इस निरापराधी साधु के पीछे तुम लोग क्यों पड़ गये हो ? क्या नाश कर लिया है । साधु सन्तों का अपमान करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? यदि यह चोर होता तो कहीं भी भाग सकता था, मेरे पास रत्न देने क्यों आता । शीलवान्, व्रती, तपस्वी की आपने बड़ी दुर्गति की है । मुझे आप लोगों की बुद्धि पर तरस आता है । हाय ! हाय ! आप लोगों ने मेरी भी इज्जत ले ली । धर्मात्मा ब्रह्मचारी का अपमान कर महान् पाप का बंध किया । ऐसे तपस्वी संसार में विरले ही पुरुष होते हैं, इन्होंने कचन-कामिनी को आज तक छुआ भी नहीं है । इस प्रकार के सच्चे त्यागी व्यक्ति के सम्बन्ध में असत्कल्पना करना भी निरर्थक है ।

लोग—स्वामिन् ! हमसे अपराध हो गया । हमने इनको चोर समझा, यह इतनी तेजी से दौड़ने लगे, जिससे हम लोगों का इनके ऊपर सन्देह होना स्वाभाविक था । यदि यह पहले कह देते कि सेठ ने वैडूर्य मणि को मंगाया है तो हम लोग इनके साथ इस प्रकार का निन्द्य वर्ताव कभी नहीं करते । महाराज ! हमारा अपराध तो हुआ, परन्तु अज्ञानता में । बीच में बात काटकर दो-तीन उतावले व्यक्ति कहने लगे—अभी भी इनके ऊपर हमारा सन्देह है । यद्यपि आपके वचनों से हमारा सन्देह बहुत कुछ दूर हो गया है, फिर भी पूरी तसल्ली हमको नहीं हुई है । इनके सारे क्रिया-कलाप चोरों के समान थे । इन्होंने जिनालय में अन्धेरा क्यों किया ? ये दिन में भी आपके द्वारा मंगाई वस्तु को लाकर दे सकते थे, आधी रात को सभी लोगों के सो जाने पर इन्होंने ऐसा काम क्यों किया ? कुछ दाल में काला अवश्य है ।

सेठ—आप लोगों को व्यर्थ सन्देह नहीं करना चाहिये । रात में रत्न हमने ही मंगवाया था । जब हम घर से यहां चले आये तो हमारे मन में विचार आया कि वैडूर्य मणि सबसे अधिक मूल्यवान् है, अतः उसे यहाँ छोड़कर जाना ठीक नहीं, साथ ले जाने पर उसकी यथार्थ रक्षा हो सकेगी तथा उसकी समानता की अन्य मणि मिल जायगी तो लेते भी आयेंगे । आधीरात को रत्न मगांने का यही प्रधान कारण हैं, क्योंकि रात में बस रत्न की चिन्ता के

कारण हमको नींद नहीं आ रही थी, इसलिये उसी समय हमने इनके पास आदमी भेजा था । हमारे ही समाचार के अनुसार आधी रात को यह रत्न लाये हैं । आप लोग बिल्कुल भी सन्देह न करें । भला सोचिये की हमारी ही चीज कोई चुरावे, और हम उनकी सेवा करने लगें, ऐसा आपने क्या कभी देखा है ? चोर को तो सभी पकड़ कर मारते-पीटते हैं ।

इस प्रकार सबको समझा-बुझा कर वहां से विदा किया । सभी लोग आपस में नाना प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना करते हुए अपनी गलती पर पछता रहे थे । उन्होंने सोचा वास्तव में एक तपस्वी को हमने व्यर्थ में ही कष्ट पहुँचाया ।

उनके जाने के पश्चात् सेठ उस मायावी को एकान्त में ले गया और कहने लगा डह कि नगर के समस्त श्रावकों ने आपकी देव तुल्य पूजा की है । सभी आपको बड़ा भारी धर्मात्मा समझते थे । आपने प्रारम्भिक सदाचार की छाप डाल कर कितना बड़ा पाप किया है । आपके समान विश्वासघातक, कृतघ्न, चोर अन्य कोई नहीं है । आपको नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा । जिस प्रकार दूध पीने वाला बिलाव वर्तन के अन्दर मुंह डालकर दूध पीता हुआ समझता है कि मुझे कोई नहीं देखता, इसी प्रकार आप भी यही समझते थे कि मेरे पाप को देखने वाला अन्य कोई नहीं है । पूर्व जन्म में आपने सत्पात्र दान नहीं दिया, इससे आपको धन के लिये इस प्रकार का ढोंग रचना पड़ रहा है । जिस प्रकार गड्ढे में जाकर पानी एकत्रित हो जाता है, उसी प्रकार पुण्यवान के पास सभी सामग्रियां आ जाती हैं । पुण्य के बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं हो सकती है । इस समय आपका कुछ पुण्य शेष था, जिससे मृत्यु से आपकी रक्षा हो गई । ठगी के लिये आपने ब्रह्मचारी का भेष क्यों धारण किया है ? यदि आपको चोरी ही करना उभिष्ट है तो आप अपने इस वेष को क्यों लजाते हैं ? जिनधर्म के धारण करने से वैडूर्य मणि का प्राप्त होना तो बहुत आसान है, यह मोक्षलक्ष्मी को देने वाला है । चोरी करने वाला कभी भी श्रीमन्त नहीं हुआ, कुत्ते के समान घर घर से रोटी चुराने पर भी अन्त में भूखे मरना पड़ता है । सदाचारी व्यक्ति कभी पाप की ओर पैर भी नहीं रखते, पुण्य करने से उन्हें ऐश्वर्य अपने आप प्राप्त हो जाता है । पुण्यमार्ग को त्याग कर आपने यह पापमार्ग क्यों ग्रहण किया ? पुण्योदय से ऐश्वर्य और विभूतियों का प्राप्त होना आसान है ।

दूसरे व्यक्तियों को देखकर कभी भी ईर्षा नहीं करनी चाहिये। कर्म से सुख मिलता है, धर्म को छोड़ देने पर कर्म अपने-आप आकर कष्ट देने लगते हैं। व्यभिचार, चोरी, हिंसा, परिग्रह संचय, झूठ ही तो पाप हैं, जो व्यक्ति इन पाप कर्मों में लिप्त रहता है, उसे कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। निन्दनीय कार्यों से धन की प्राप्ति हो नहीं सकती है। जो मोह में आकर आजीविका उपार्जन के लिये पाप करता है, उसे पापों का फल भोगना पड़ता है। परिवार वाले उसके पाप के फल में शामिल नहीं होते हैं, किन्तु धन से लाभ अवश्य उठाते हैं।

सत्य बोलनेवाले को गर्म लोहा भी नहीं जला सकता है किन्तु झूठ बोलनेवाले को ठंढा लोहा भी जला देता है, अतः सच बोलनेवाला सदा सुखी और झूठ बोलनेवाला सदा दुःखी रहता है। जो मांस खाता है, मदिरापान करता है, जुआ खेलता, है झूठ बोलता है, वेश्यागमन करता है तथा परस्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है, वह व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता है। सदा इस प्रकार के व्यक्ति को कष्टों का सामना करना पड़ता है। पाप कृत्य सदा निन्दनीय इसीलिये कहे गये हैं कि इनसे व्यक्ति को सदा कष्ट ही भोगना पड़ता है।

भगवान की पूजा, अभिषेक, दान आदि के बिना स्वर्ग के सुख कैसे मिल सकते हैं। सुख चाहने वाले को सर्वदा जिनेन्द्र प्रभू के चरण कमलों में खड़े रहना चाहिये। प्रभु पूजक को संसार में उत्कृष्ट से उत्कृष्ट फलों की प्राप्ति होती है। पूजक कभी निर्धन नहीं होता, देवलोक के सुख उसके घर में वर्तमान रहते हैं। रोग, शोक, दारिद्रय सभी भगवान की पूजा करने से दूर हो जाते हैं। जन्म-जन्मों के अर्जित पाप प्रभु-पूजा से थोड़े ही समय में भस्म हो जाते हैं। यदि मदोन्मत्त हाथी की सवारी अभीष्ट है, चन्द्रमुखी रमणियों की आकांक्षा है तो भगवान की पूजा करनी चाहिये।

मन- वचन- काय से पवित्र होकर जो सत्पात्रों को दान देता है, शीलव्रत का पालन करता है एवं दुखी जीवों के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। परलोक में भी उसे सुख मिलता है। कुटुम्बियों से प्रेम, धन, वैभव को प्राप्त करना चाहते हो तो धर्म का सेवन करना चाहिये। चन्दन फुलैल, इत्र, तैल आदि सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति के लिये सत्पात्र को दान देना चाहिये। सम्यग्दृष्टि श्रावक को धन, वैभव अभीष्ट नहीं होते; वह तो संसार में भ्रमण करने वाली वस्तुओं का त्याग करता है। सम्यत्व के समान संसार में अन्य कोई रक्षक और कल्याणकारी नहीं है। यह तीन प्रकार के तापों से सदा बचाता है। देवेन्द्र अहमेन्द्र, राजेन्द्र आदि का वैभव इसी के द्वारा प्राप्त होता है।

तरुणियों द्वारा चमरों का ढ़लना, सुन्दर सिंहासन पर विराजना, अंगरक्षकों के द्वारा रक्षा होना, आदि की प्राप्ति के लिये पुण्य ही कारण है। धर्म—सम्यग्दर्शन के बिना इस जीव का कल्याण नहीं हो सकता है। संसार के बन्धन से छुडानेवाला यही सम्यग्दर्शन ही है।

हाथियों का समुदाय, घोड़ों, का समुदाय, एकच्छत्र राज्य प्राप्ति के लिये तथा इन्द्र के समान ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अभिलाषा है तो भगवान की आराधना करनी चाहिये। धर्माराधना द्वारा पुण्य करने से ही देवोपम सुखों की प्राप्ति होती है।

चन्दन, केशर, कर्पूर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति, सुन्दर रेशमी वस्त्रों की प्राप्ति, दिव्य आभूषणों की प्राप्ति, मनोरम कोमल शय्या की प्राप्ति. मखमली गद्दों की प्राप्ति, सुस्वादु भोजनों की प्राप्ति यथा पुण्योदय के बिना संभव है ? जैसे जुआरी जुआ खेलकर धन कमाने की निरर्थक इच्छा रखता है, नीम का वृक्ष लगाने वाला मधुर फल प्राप्त करने की व्यर्थ इच्छा रखता है, भैंसा पालकर उससे दूध प्राप्त करने का निरर्थक वांछा है, बालू पेर कर तेल प्राप्त करने का असफल प्रयास है एवं भूसा कूट कर चावल प्राप्ति की कामना निरर्थक हैं, उसी प्रकार पाप कर सुख प्राप्ति करने की इच्छा निरर्थक है। पापी व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता है। उसकी आत्मा पाप के कारण सदा छट—पटाती रहती है।

कर्मों के कारण इस जीव को संसार में भ्रमण करना पड़ता है, नरक, निगोद के दुःखों को कर्मों के कारण भोगता है। यदि कदाचित् पुण्य के उदय से चार दिन के लिये राजपदवी प्राप्त भी हो जाय, तो भी अन्त में नरक जाना पड़ता है। कर्म के उपशम से क्षणिक सुख भी हो जाय तो भी दुःख उठाना पड़ता है ग्रीष्मऋतु में जैसे संताप से पीड़ित होकर कोई व्यक्ति वृक्ष की छाया में गया, पर वहां पर रीछ को देखकर डर गया और सिंह की गुफा में चला गया, इस व्यक्ति की इस गुफा में रक्षा नहीं हो सकती है; इसी प्रकार यह जीव एक गति से निकल कर सुख प्राप्त करने के लिये अन्य गति में जाता है, परन्तु वहां पर भी इसको नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। कंचन और कामिनी के प्रलोभन में पड़कर यह जीव नाना प्रकार के पाप करता है और नरक में जाकर नाना कष्टों को सहन करता है। प्रलोभन ही संसार के परिभ्रमण के कारण हैं।

भगवान् की पूजा में विघ्न डालने से, पूजा करना रोकने से पूजा करने वालों का तिरस्कार करने से एवं

प्रभु पूजा करने वालों की निन्दा करने से नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। हाथ का लूला होना, पांव का लंगड़ा कोढ़ी होना, आदि फल जिनधर्म के तिरस्कार से मिलते हैं। दान में अन्तराय करने से भूखों मरना भिक्षा मांग कर पेट पालना आदि कष्टों को सहना पड़ता है।

गूंगे रोगी, कुष्ट रोगी होना आदि फल औषधदान में अन्तराय करने से होता है, दोनों हाथों का टूट जाना, ऐश्वर्य होने पर भोगों को भोगने में असमर्थ होना, दोनों पांवों से लंगड़ा होना आदि फल तपश्चर्या के छोड़ने से भोगना पडता है। आंखों का अन्धा होना, श्वेत कुष्ट होना। सूखा रोग होना आहार दान के अन्तराय का फल है। तुतना, बोलने में असमर्थ होना, ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर उसका जल्द नष्ट हो जाना श्रम करने पर भी ज्ञान की प्राप्ति न होना, अर्जित विद्या का विस्मरण हो जाना, आदि शास्त्र दान के अन्तराय का फल है। निर्धन होना, दरिद्र होकर दाने-दाने के लिये कष्ट उठाना आदि दान के द्रव्य में से चोरी से खाना है। कुत्ता होकर नाना प्रकार के कष्टों को भोगना मायाचार का फल है।

मायाचारी मरकर कुत्ता, महामायाचारी खरगोश, क्रोधी बाघ, महाक्रोधी सिंह, मानी मछली महामानी सांप, रौद्र ध्यान से मरनेवाला भेरुण्ड, महारौद्र परिणामों से मरने वाला ऊंट, गुणियों की निन्दा करने वाला शूकर, कुमार्गी मुर्गी और सद्धर्म द्वेषी हिरण होता है, जातिमद वाले मरकर विलाव, विद्यामद वाले घूग्घू तपमद करने वाले कुत्ता, ऐश्वर्यमद करने वाले मगर, रूपमद करने वाले गधा, ऋद्धिमद वाले चोड़ा चुगली करने वाले रीछ, हिंसानन्द करने वाले बकरी सप्तव्यसन सेवन करने वाले घोड़ा या कुत्ता एवं निरन्तर सप्तव्यसन का सेवन करने वाले मरकर जंगली कुत्ते होते हैं।

पाप के उदय से जीव को नरक में गर्म तेल की कढ़ाई में छोड़ देते हैं, काटते हैं, कोल्हू में पेलते हैं, अग्नि की ज्वाला में जलाते हैं, नाक, कान, हाथ, पैर, छाती आदि को काट डालते हैं। इन्द्रियों के आधीन होकर धर्म-कर्म जो व्यक्ति भूल जाता है उसे अनेक कुयोनियों में नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

सेठ की इन बातों को सुनकर उस मायाचारी को अपने कृत्य पर महान दुःख हुआ। वह पश्चात्ताप करने लगा तथा अपनी भावनाओं द्वारा कर्मों का उपशम कर संसार से विरक्ति प्राप्त की, वह मन में विचारने लगा कि चोरी द्वारा दूसरों की हत्याएं कर जितना धन मैं घर में लाया हूं, उससे मेरे घर वाले आनन्द करते हैं, मुझे व्यर्थ ही सब पापों

का फल भोगना पड़ेगा । मेरे पाप में कोई भी हिस्सेदार नहीं है। आज इस जिनेन्द्रभक्त सेठ के कारण मेरा हित हो गया, अन्यथा मरकर मुझे नरक के दुःख भोगने पड़ते । करोड़ों वर्ष तक नरक में पड़ा कष्ट सहन करना पड़ता । आज सेठ जिनेन्द्रभक्त के उपदेश ने मेरे ज्ञाननेत्र खोल दिये वास्तव में मैंने अब तक बड़ा भारी पाप किया है । सप्तव्यसन का सेवन कर मैंने अपनी आत्मा को नरक और निगोद पर्याय में भ्रमण करने का अधिकारी बना लिया है ।

उसकी विचार धारा आगे बढ़ी और वह पुनः सोचने लगा —मैं वीरकुमार के पास जाकर चोरी की बात क्यों करूं ? सरदार के पास जाकर उसकी स्तुति क्यों करूं ? आधा राज्य लेने में भी मेरा क्या कल्याण होगा ? मायाचारी की तपस्या कर मैंने अपनी आत्मा का बड़ा अहित किया । इस समय जिनेन्द्रभक्त सेठ का उपदेश मेरे लिये निमित्त है, अब अवश्य ही मुझे कल्याण में लग जाना चाहिये । यह सेठ ही मेरा भाई है, पिता है, गुरु है, आप्त है अधिक क्या यही मेरे लिये सब कुछ है, इसने मुझे कल्याण का उपदेश देकर मेरी आंखें खोल दी । वास्तव में अब मेरे कल्याण का समय आ पहुँचा है ।

सूर्य के उदय के बिना जैसे कमल विकसित नहीं होता है, अन्धकार भी दूर नहीं होता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्ररूपित आगम से ही मिथ्यात्व का नाश हो सकता है । मिथ्यात्व के वशीभूत होकर जीव संसार में नाना प्रकार के पाप करता है । जो कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग में लगाते हैं, मिथ्यात्व छुड़ाकर सम्यत्व में दृढ़ करते हैं, प्रमाद दूरकर अत्मकल्याण में सावधान करते हैं वे सच्चे मित्र हैं । इस प्रकार सोच विचार कर वह हाथ जोड़ सेठ से कहने लगा—

सम्यत्व चूड़ामणि ! आपने मेरा कल्याण कर दिया । आज मैं सच्चे धर्म को प्राप्त कर निहाल हो गया । अब तक मैं अपने को भूले हुए था, सत्यता से बहुत दूर था, किन्तु अब सत्य को प्राप्त करने जा रहा हूं । आपने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की । मैं आज से श्रावक धर्म ग्रहण करता हूं । इस धर्म का पालन करने से मुनि धर्म की भी प्राप्ति होती है तथा परम्परा से निर्वाण भी मिल जाता है । कृपया मुझे श्रावक धर्म के सम्बन्ध में समझाने का कष्ट करें——

जिनेन्द्रभक्त—जो संसार से निकल कर जीवों को मोक्ष में ले जाय, उसे धर्म कहते हैं । रत्नत्रय का नाम

ही धर्म है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आंशिक रूप से पालन करता है, वह श्रावक है। सम्यग्दर्शन का पालन तो श्रावक को पूर्ण रूप से करना चाहिये। यह रत्नत्रय धर्म ही इस जीव का कल्याण करने वाला है। श्रावक को आठ मूल गुणों का पालन, सप्त व्यसन का त्याग, पांच अणुव्रत, सात शीलव्रत का पालन करना चाहिये। आहार-पानी शुद्ध रखना, कुसंगति से बचना न्यायपूर्वक धनार्जन कर अजीविका करना, दैनिक षट् कर्मों का पालन करना तथा मरण समय सल्लेखना धारण करना श्रावक का आचार है।

ब्रह्मचारी—स्वामिन् ! श्रावक धर्म के पालन करने से क्या फल मिलता है ?

जिनेन्द्रभक्त—यह धर्म व्यसन रूप मगर के मुंह से, संशय रूपी सिंह के पंजे से, संकल्प–विकल्प रूपी महा-मत्स्य से पूर्ण रक्षा करता है। स्वर्गादि सुखों के अतिरिक्त निर्वाण सुख की प्राप्ति भी इस धर्म के पालन से होती है।

झूठ बोलने वाले, मायाचारी, आडम्बर युक्त, मनमाना उपदेश देने वालों के पास नहीं जाना चाहिये। प्रेम और दया पूर्वक सद्धर्म का उपदेश देनेवालों के पास जाना चाहिये। विषय वासनाओं में अनुरक्त गुरु संसार में भ्रमण करने वाले होते हैं। मायाचारियों के वचन सुनने में अच्छे लगते हैं। परन्तु उनके भीतर विषभरा रहता है। मायावी व्यक्ति अपना अकल्याण तो करता ही है, परन्तु दूसरे व्यक्ति का भी अकल्याण करता है। धूर्त व्यक्ति सदा इसी चक्कर में रहते हैं कि किस प्रकार अन्य व्यक्तियों को फंसाया जाय। अतएव पक्षपात रहित, शुद्ध हृदय, गुणवान्, आगमज्ञ, विवेकी, नैष्ठिक, चारित्रवान् एवं हितोपदेशी व्यक्ति से ही धर्मोपदेश सुनना चाहिये। उपर्युक्त व्यक्ति ही धर्मोपदेश देने का वास्तविक अधिकारी है। जो जिनागम का अर्थ नहीं जानते हैं। व्यर्थ ही काय क्लेश सहते रहते हैं, जिनका अन्तरंग कषाय और वासनाओं से भरा हुआ है ऐसे व्यक्ति कभी भी धर्मोपदेश देने के अधिकारी नहीं।

जिसे शब्द का यथार्थ अर्थ मालूम है, जो विवेकी है, परम्परानुसार सूत्र का अर्थ जानता है, तत्त्वज्ञ है वही उपदेश देने का अधिकारी है।

जैसे संयम और ध्यान में लीन रहनेवाला मुनि श्रेष्ठ माना जाता है, वैसे दान और पूजा में रत रहनेवाला श्रावक श्रेष्ठ समझा जाता है। श्रावक को भी अपनी शक्ति के अनुसार तप करना चाहिये, क्योंकि तप करने के अभ्यास से श्रावक को अनेक प्रकार की विभूतियां प्राप्त होती है तथा मुनि धर्म का अभ्यास पहले से ही हो जाता है। दानी, तपस्वी व्रती, श्रीषेण, धन्यकुमार, करकण्डु महाराज, सीतादेवी आदि की धर्म कथाओं को सुनकर या पढ़कर दान, व्रत

और तपस्या की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

राजा श्रीषेण दान के प्रभाव से मोक्षलक्ष्मी का स्वामी शान्तिनाथ तीर्थंकर हुआ। दान चतुष्टय से पुण्य बन्ध के साथ निर्वाण श्री की प्राप्ति होती है।

तप से भयभीत होकर जो आत्मशोधनकारी तपस्या नहीं करता है तथा संयम पालने में सहायक व्रतों का पालन नहीं करता है, उस व्यक्ति को निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकेगा? प्रथम तिर्थंकर आदिनाथ, सनतकुमार चक्रवर्ती, गुरुदत्त मुनि आदि के समान जो उपसर्गों को जीतकर तपस्या करता है उसे अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

जिस प्रकार आदिनाथ भगवान ने क्रिया सहित तपोमार्ग का आचरण कर निर्वाण लक्ष्मीं की प्राप्ति की उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति रत्नत्रय का पालन करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर लेता है। दिन में सूर्य के उदय से जैसे कमल विकसित होते हैं, उसी प्रकार सद्धर्म और तपस्या के प्रभाव से कल्याण हो जाता है। केवल ज्ञान की प्राप्ति भरतक्षेत्र में पंचमकाल में नहीं हो सकती है फिर भी आगम का श्रद्धान कर दान, धर्म और तपस्या करने से आत्मोत्थान का मार्ग अवश्य मिल सकता है।

जिनेन्द्रभक्त के इस उपदेश से प्रभावित होकर सूर्य नामक चोर ने, जो ब्रह्मचारी बना हुआ था, श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् उसे संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई और जिनदीक्षा ग्रहण कर उग्र-उग्रतर तपस्या करने लगा। अन्त में उसने संन्यास मरण धारण किया, जिसके प्रभाव से वह स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ।

उपगूहन अंग के धारण करने से जिनेन्द्रभक्त सेठ की कीर्त्ति सर्वत्र फैल गयी तथा उसने भी अपना सभी प्रकार से कल्याण किया।

निर्मल जिनधर्म को दुराचारी कभी गन्दा नहीं कर सकता है, जैसे मेढ़क समुद्र के निर्मल जल को गन्दा नहीं कर पाता है, उसी प्रकार पापी व्यक्ति इस विशाल, उदार और सर्वगुण सम्पन्न धर्म को गन्दा नहीं कर सकते हैं।

उपगूहन अंग सभी प्रकार के कल्याणों को देनेवाला है, इसके पालने से कीर्त्ति फैल जाती है, आत्मा में अद्भुत प्रकाश आता हैं, भव्य जीवों को आनन्द की प्राप्ति होती है और सभी कामनाएं सफल हो जाती हैं।

छटवी कथा समाप्त

सातवीं कथा

मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करने में कारण उपगूहन अंग को धारण करने वाले भव्य जीवों को निर्वाण मिलने में बिलम्ब नहीं होता, राजा श्रेणिक आनन्दित होकर गौतमस्वामी के चरण कमलों की वन्दना कर कहने लगा—

प्रभो ! स्थितिकरण अंगकी कथा जानने की मेरी अभिलाषा है। कृपाकर इस कथा को कहने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—राजन् ! धर्म से विचलित होते हुए व्यक्ति को धर्म में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग है। इस अंग का अद्भूत महत्व है; क्योंकि इसके पालन करने से आत्मा निर्मल निकल आती है, आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है। इस अंग का पालन करने वाला वारिषेण कुमार होगा। यह श्रीमती चेलना देवी से उत्पन्न होगा। मगध के राजा श्रेणिक की यह पट्टरानी इन्द्राणी और रोहिणी के समान अतीव सुन्दरी है। भगवद् भक्ति, स्वाध्याय, दान आदि में अग्रगण्य है। सीता देवी, सरस्वती, तिलोत्तमा आदि से भी सौन्दर्य, शील, गुण, भक्ति में बढ़कर है।

उदयाचल पर जिस प्रकार दिवाकर का उदय होता हैं, उसी तरह यशपुञ्ज, समस्त गुणों का समुदाय वारिषेण नाम का पुत्र उत्पन्न होगा। यह कुमार सद्गुणों का निधि, संसार में माननीय, नीतिज्ञ, भव्यजनों से प्रेम करनेवाला, वर्द्धमान चन्द्रमा के समान होगा। यह दृढ़ चित्तवाला, शूरवीर, दिव्य मुनियों का भक्त, भक्तजीवों का आश्रम शील होगा। उदार भाव से सम्यत्व को पालेगा, मिथ्यात्व से सदा दूर रहेगा और भोगविलास से विरक्त रहेगा। स्वाध्याय और धर्म चर्चा में इसका मन सदा लगेगा। तपश्चर्या करने में, दिव्य मुनियों की चरण सेवा में, भव्य जीवों के साथ तत्त्वचर्चा में, और सत्काव्यों के पठन में तत्पर रहेगा। गुणनिलय, जिनचरणों में भ्रमर के समान, जिनागम श्रवण के लिये वर्षा काल में मयूर के समान हर्षित होनेवाला, पापरूपी मदोन्मत्त हाथी को मारने के लिये सिंह के समान तथा सर्वगुण सम्पन्न होगा।

*एक दिन पाटलीपुत्र नगर में निर्मल गुणों के धारी, कला और शास्त्र के ज्ञाता, मुनिजनों से अनुराग

*—यहां से कथा कहने का ढंग भूत कालीन है।

करने वाले, तेजस्वी, उज्ज्वल चरित्र के धारी, समस्त जीवों का उपकार करने वाले, दयानिधि, मुण्डि-पुत्र नाम के आचार्य पाटलीपुत्र में आये । ये आचार्य गांव में एक दिन, नगर में पांच दिन और वन में दश दिन एक स्थान पर शास्त्रानुसार निवास करते थे । पूर्व दिशा में बालहक नामक पर्वत पर इनके ठहरने का समाचार पाते ही मगधाधिपति श्रेणिक परिवार सहित दर्शन के लिये गया और पूजा की । पूजा करने के पश्चात् धर्म श्रवण किया । परिवार के अन्य सदस्य तो घर चले गये किन्तु वारिषेण उन्हीं के पास रह गया । जिस प्रकार लोभी व्यक्ति भण्डार के द्रव्य को छोड़कर नहीं जाता है, उसी प्रकार वारिषेण भी मुनि चरणों को छोड़ कर अन्यत्र जाने को तैयार नहीं हुआ, वह वहीं पर रहकर आत्म कल्याण के सम्बन्ध में सोचने लगा ।

जो व्यक्ति रात दिन जिनेश्वर का ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं । संसार के दुःखों से ऐसे ही व्यक्ति छुटकारा पाते हैं इस प्रकार वारिषेण कुमार विचारने लगा । उसे संसार से विरक्ति हो गई फिर उसे आत्म कल्याण की चिन्ता होने लगी । मुनिराज वारिषेण कुमार की ओर उन्मुख होकर कहने लगे ।

वत्स ! इस संसार में कोई किसी का साथी नहीं है । आत्मा अनादिकाल से मिथ्यात्व के आधीन होकर इस जगत में भ्रमण कर रही है । समझदार इस मोह जाल में न पड़कर अपना कल्याण करते हैं । जो व्यक्ति विषय भोगों में संलग्न रहता है, वह अपने कल्याण का मार्ग नहीं पा सकता है ।

वारिषेण कुमार––स्वामिन् ! आत्मोद्धार का मार्ग क्या है । ऐसा कौन-सा मार्ग है जिसका अनुसरण करने पर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है ? शान्ति का मार्ग क्या है ? प्रभो ! आपकी शरण में आया हूं, आप मेरी रक्षा करने की कृपा करें । मैं आप्त आगम-गुरु-दान तप को जानना चाहता हूं । जैसे हंस जल और दूध के मिश्रित रूप से केवल दूध को ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार मैं भी सद्धर्म और कुधर्म को जान कर सधर्म को ग्रहण करना चाहता हूं । जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति डाकुओं का विश्वास कर उनके द्वारा दुःख उठाता है, उसी प्रकार कुदेव और कुधर्म की सेवा करने से संसार में नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं । धूर्त, खल, दगावाज कर्मकलंक से मलिन कुलदेव की सेवा कर लोगों को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं । परीक्षक परीक्षा कर कभी भी इन कुदेवों के फेर में नहीं पड़ेगा । इन देवों की संगति करनेवाले पत्थर की नौका के समान संसार समुद्र को पार करने में असमर्थ हैं, जो ऐसे देवों की सेवा करते हैं, वे मूर्ख हैं । लोग कहते हैं कि महाप्रभु ही सबका नियन्ता है, वही सब को सुख दुःख देता है ।

सृष्टि के समस्त कार्य उसी के द्वारा होते हैं, यह कहां तक ठीक है। भूत, प्रेत पिशाचों को बहुत से लोग देव समझ कर पूजते हैं, क्या स्त्री के सहित रहने वाले देव सर्वज्ञ, वीतरागी हो सकते हैं? कौन-सा समझदार व्यक्ति उन्हें देव समझेगा।

इस पृथ्वी में झूठ बोलने वाले, डाकू, चोर, हिंसक, अपवित्रों को जो देव मानते हैं, वे मूर्ख हैं, इस प्रकार के देव कभी भी मान्य नहीं हो सकते हैं। जिस प्रकार घर-घर राजा होने पर देश की व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं हो सकती है, उसी प्रकार सभी देव हो जायं तो देव-कुदेव की व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती है। सप्तव्यसनी, दुराचारी देव के पद पर कभी भी आसीन नहीं हो सकते हैं। जो शान्त है; दयालु है, विकारों से रहित है, सर्वज्ञ है, वही देव सच्चा माना जा सकता है। इसी प्रकार के देव की सेवा करने से आत्मा का कल्याण हो सकता है।

जगत में जैसे सदाचारी का सम्मान होता है, दुराचारी का नहीं? दुराचारी नारियों का जितना तिरस्कार उतनी पतिव्रताओं का नहीं। चोरों को ही सजा दी जाती है, सच्चे लोगों को नहीं।

मुण्डि-पुत्र आचार्य—वत्स! क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष आदि अठारह दोषों से रहित देव ही सच्चे देव हैं। यह सर्वज्ञ, हितोपदेशी और वीतरागी होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति के उदय से ये निर्माण-मार्ग का उपदेश देते हैं। संसार के सभी प्रलोभनों से रहित होते हैं। इनके पास संसार की कोई भी वस्तु नहीं होती। सबसे पहले ये अपने को शुद्ध करते हैं। जैसे सोना आग में तपाने से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या के द्वारा ये अपने को शुद्ध कर देते हैं। बात यह है कि यह आत्मा ही कर्म मल से रहित होने पर परमात्मा बन जाती है। परमात्मा बनने की यह शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान है, किन्तु जो कर्ममल को दूर करने का प्रयत्न करते हैं, वे अवश्य ही देव बन जाते हैं। कुदेव शब्द का अर्थ ही यह है कि जो राग द्वेष युक्त हैं; जिनके पास परिग्रह है तथा जो संसार के प्रलोभनों में फंसे हैं। ऐसे कुदेवों की सेवा-पूजा से कोई भी व्यक्ति संसार से छुटकारा नहीं पा सकता है।

सच्चादेव संसार का कर्त्ता कभी भी नहीं हो सकता है। जो वीतरागी है, जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं है, वह संसार की रचना क्यों करेगा? रचना करने का अर्थ तो यह है कि किसी को सुखी और किसी को दुखी बनाना। एक के हाथ-पैर-नाक कान आदि अंग ठीक बनाना, अन्य को लूला, लंगड़ा, नकटा, बूचा बनाना। क्या इस प्रकार के सृष्टि निर्माण से देव में दूषण नहीं आयेगा। जिसको वह सुखी करता है, उसके साथ उसका राग रहेगा, जिस

को दुःखी करता है, उसके साथ उसका द्वेष रहेगा; अतः रागी-द्वेषी तो उसे बनाना ही पड़ेगा। सृष्टि रचने वाला सामान्य गृहस्थ से भी बढकर झंझट में फंस जायगा। जैसे गृहस्थ एक छोटी-सी गृहस्थी के संचालन में दिन-रात व्यस्त रहता है, उसी प्रकार वह भी इस सृष्टि को लेकर दिन-रात व्यस्त रहेगा। नाना प्रकार की चिन्ताएं, वासनाएं, ईर्षा, विवाद आदि उसमें होते रहेगें। अतः सच्चा देव इस सृष्टि का कर्त्ता कभी नहीं हो सकता है।

वास्तविक बात तो यह है कि इस सृष्टि का कोई कर्ता-धर्त्ता नहीं है। यह तो स्वभावतः अपने आप निर्मित अपने अपने पुण्य-पाप के उदय से व्यक्तियों को हानि लाभ होते रहते हैं। प्रत्येक आत्मा अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है। जो जैसा कर्म करता है, वह उस कर्म के उदय आने पर वैसा ही फल पाता है। यदि सृष्टि का कर्त्ता आत्मा को छोड़ अन्य व्यक्ति को माना जाय तो आत्मा के किये गये पुण्य-पाप निरर्थक हो जायंगे। यदि यह कहा जाय कि आत्मा के पुण्य-पाप के अनुसार ही सृष्टि कर्त्ता फल देता है, तो इस फल देने वाले के मानने की आवश्यकता ही क्या है, क्योंकि अपने अपने पुण्य-पाप के उदय से फल की प्राप्ति तो हो ही जाती है, फिर बीच में एक फल देने वाला मानने से लाभ क्या? यदि यह कहा जाय कि जैसे राजा अच्छे-बुरे कर्म करने वाले व्यक्तियों को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड और पुरस्कार देता है इसी प्रकार ईश्वर भी फल देता है। विचार करने पर यह कथन भी बुद्धि हीन जंचता है क्योंकि राजा कर्म सहित है, तथा नाना प्रकार के दोषों से युक्त है, इसी प्रकार ईश्वर सकर्मा और नाना प्रकार के राग-द्वेपों से युक्त सिद्ध हो जायगा? इस प्रकार का सरागी ईश्वर अभीष्ट नहीं है। अतः इस सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर या अन्य कोई देव नहीं हो सकता है।

तार्किक दृष्टि से विचारने पर भी इस सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि न्याय का नियम है, कि अन्वय और व्यतिरेक व्याप्ति के मिलने पर ही कार्य कारण सम्बन्ध माना जाता है। अन्वय व्याप्ति कर्मों की सृष्टि कर्त्ता के साथ मिल सकती है, परन्तु व्यतिरेक व्याप्ति नहीं मिलती है। तथापि—जो जो कार्य होते हैं, उनका कोई कर्त्ता अवश्य होता है, जैसे वस्त्र कार्य हैं, इस लिये इसका कर्त्ता जुलाहा है। इसी प्रकार सृष्टि एक कर्म है, इस का भी कर्त्ता कोई अवश्य होगा। यहाँ अन्वय व्याप्ति है, परन्तु व्यतिरेक व्याप्ति नहीं पायी जाती है, अतः अनुमान के द्वारा सृष्टि कर्त्ता की सिद्धि नहीं हो सकती है। व्यापकानुपलंभ के द्वारा सृष्टिकर्तृत्व बाधित है।

वारिषेण—प्रभो। सृष्टि का कोई कर्त्ता नहीं है, यह मैं समझ गया। परन्तु यह बतलाने की कृपा करें कि

हमारा शरीर कैसे बनता है। माता के पेट में इसे कौन बना आता है ?

मुण्डि-पुत्र आचार्य—वत्स ! शरीर-रचना नाम कर्म के कारण होती है। आठ प्रकार के कर्म हैं, जिनसे उपशम, क्षयोपशम और उदय से प्राणियों के सारे कार्य चलते हैं। ज्ञानावरणी कर्म ज्ञान को ढकता है, इसके उपशम या क्षयोपशम होने से ज्ञान गुण प्रकट होता है, दर्शनावरणी कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढक लेता है, तथा इस कर्म के उपशम या क्षयोपशम से देखने की शक्ति आती है, विश्वास भी इसी गुण के प्रकट होने पर होता है। आत्मा की ओर रुचि भी दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम या क्षय से होती है। वेदनीकर्म के उदय से जीव को सुःख-दुःख भोगने पड़ते हैं। साता का उदय होने से सुख मिलता है और असाता कर्म के उदय होने से दुःख भोगना पड़ता है, मोहनीय कर्म के उपशम, क्षमोपशम और क्षय से जीव को आत्मिक श्रद्धा और चारित्र की प्राप्ति होती है। राग-द्वेष भी इस कर्म के उदय से ही व्यक्ति करता है। आयु कर्म के उदय से इस जीव को किसी निश्चित काल तक एक शरीर में रुकना पड़ता है। नाम कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांगों का निर्माण होता है तथा सुन्दर, असुन्दर शरीर मिलता है। सुडौल अंगोपांगों की प्राप्ति भी इसी कर्म के उदय से होती है। गोत्र कर्म के उदय से जीव को लोक प्रतिष्ठित या लोकनिन्दित कुल में उत्पन्न होना पड़ता है। अन्तराय कर्म के उदय से कार्यों में विघ्न आते हैं, इसके क्षय या उपशम से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार इस जीव को समस्त सुख-दुःख अपने किये कर्मों के कारण ही उठाने पड़ते हैं। प्रत्येक आत्मा कर्त्ता है, और अपने कर्म फलों का भोक्ता भी। न कोई किसी को फल देता है और न कोई किसी के कर्मों के फल को भोगता है।

वारिषेण—स्वामिन् ! क्या सच्चादेव वास्तव में कर्मों का फल नहीं देता है ?

मुण्डि-पुत्र—नहीं वत्स ! नहीं। प्रत्येक जीव अपने कर्मों का स्वयं फल भोगने वाला है। त्रिकाल में भी कर्म सिद्धान्त झूठा नहीं हो सकता है ? कर्मों का फल प्रत्येक जीव स्वयं भोगता है।

वारिषेण—प्रभो ? अचेतन कर्मों में फलदान शक्ति कहां से आती है ?

मुण्डिपुत्र—अचेतन कर्म होने पर भी आत्मा के संयोग के कारण उनमें विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अचेतन परमाणु में भी अद्भुत शक्ति भरी पड़ी है। सूक्ष्म पुद्गल में जितनी शक्ति होती है, उतनी स्थूल पुद्गल में नहीं। कार्य करने वाले पुद्गलों में कार्माण वर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, तैजस वर्गणा और आहार वर्गणा ये प्रधान है। पुद्गल और जीव

इन दोनों द्रव्यों में क्रियावती शक्ति वर्तमान हैं, अतः इसी शक्ति के कारण कर्म अपना फल देते हैं। जीव द्रव्य में क्रियावती और भाववती दोनों प्रकार की शक्तियां हैं। जीव की भाववती शक्ति के कारण ही आत्मा पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करती है और कर्मरूप में परिणत कर एक विलक्षण स्वभाववान पुद्गल को बना देती हैं। बात यह है कि कर्मों को ग्रहण करने के अनन्तर उनमें चार प्रकार की अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, और अनुभाग। स्थिति बन्ध में ग्रहण किये गये पुद्गल परमाणुओं की समय मर्यादा निश्चित की जाती है और अनुभाग बंध में कर्मों में फल देने की शक्ति आती है। अतः कर्मों में फल देने की शक्ति आत्मा के विकृत परिणामों के कारण स्वयं उत्पन्न हो जाती है। कर्मों का परिणमन रासायनिक प्रक्रिया के अनुसार होता है, अतः विभिन्न फल शक्तियां आत्मा के योग और कषाय का संयोग पाकर प्रकट हो जाती है।

वारिषेण—प्रभो ! कर्म फल मेरी समझ में अच्छी तरह से आ गया। आप कृपा कर तप, दान और आत्म कल्याण के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातें बतलाने का कष्ट करें।

मुण्डिपुत्र–वत्स ! अन्तरंग विकारों को दूर करने के लिये अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविधशयन, विविधआसन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयाव्रत, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान करने चाहिये। अनशन, ऊनोदर आदि के करने से आत्मा के संचित विकार दूर हो जाते हैं। शरीर और इन्द्रियां आधीन हो जाती हैं। आत्म शुद्धि के लिये इन व्रतों को अवश्य पालना चाहिये।

वारिषेण कुमार—प्रभो ! पंचाग्नि तप क्यों नहीं करना चाहिये ? इस तप की गणना पृथक् क्यों नहीं की गयी है ?

मुण्डिपुत्र — वत्स ! पञ्चाग्नि तप से व्यर्थ ही अज्ञानता पूर्वक शरीर को कष्ट देना है। इस तप के द्वारा हिंसा होती है, क्योंकि अग्नि जलाने से हिंसा अवश्यम्भावी है। जहां हिंसा रहती है, वहां तपस्या कैसे संभव है ? अहिंसा की प्राप्ति के लिये ही तप किया जाता है, यदि इससे हिंसा हो तो फिर उस तप का मूल्य ही क्या ? विवेक पूर्वक आत्मा की विकार परिणति को दूर करना है, जिस तपस्या के द्वारा यह कार्य सम्पन्न न किया जा सके वह तपस्या निरर्थक है। वास्तविक तप विकार और वासनाओं को दूर करने वाला होता है, जिस तप से यह कार्य पूरा न किया जाय वह कभी

भी तप की कोटि में नहीं आ सकता है। इच्छाओं को रोकना तथा बढ़ती हुई सांसारिक विषय प्रवृत्तियों को हटाना तप है।

इस तप की पृथक् गणना नहीं की जा सकती है, क्योंकि यह अहिंसात्मक तप नहीं है। कायोत्सर्ग तप के द्वारा पंचाग्नि तप का कार्य किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि पञ्चाग्नि तप झूठा है व्यर्थ शरीर को कष्ट देनेवाला है, सच्चे तपों में इसकी गणना की आवश्यकता नहीं। आत्मिक सिद्धियां कायोत्सर्ग और ध्यान के द्वारा प्राप्ति की जा सकती है। कर्म कलंक को नष्ट करने में ये दोनों तप बहुत समर्थ हैं। अखण्ड–चेतन–पिण्ड आत्मा ध्यान के द्वारा अनुभव में लायी जा सकती है।

वारिषेण कुमार—स्वामिन् ! त्याग का जीवन में क्या महत्त्व है ? क्या त्याग के विना आत्मकल्याण नहीं किया जा सकता है ? त्यागी व्यक्ति को किस प्रकार का आचरण करना पड़ता है ?

मुण्डि–पुत्र—वत्स ! त्याग जीवन का सर्वस्व है। त्याग में जो आनन्द है, वह भोग में कभी नहीं। त्याग का सीधा–सादा अर्थ यही है कि जो वस्तु अपनी नहीं है, उसे पर समझकर छोड़ना और अपनी वस्तु को ग्रहण करना। ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य गुण आत्मा के हैं, इनको ग्रहण किये बिना आत्मसाधन संभव नहीं है। धन, वैभव, स्त्री–पुत्र आदि सब पर हैं इनको छोड़ना आवश्यक कर्त्तव्य है। पौद्गलिक कर्म जिनका आत्मा के साथ सम्बन्ध है, उनका भी त्याग करना त्याग में गर्भित है। कषाय, राग द्वेष, रूप, आत्मा की विभाव परिणति का त्याग करना त्याग है। अतएव अपने स्वरूप को प्राप्त करने और परवस्तुओं को छोड़ने का प्रयत्न आत्मा का निज धर्म है। प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का क्षणिक प्रभाव अवश्य पड़ता है परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है, इसका अन्य द्रव्यों के साथ तादात्म्य रूप से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

वारिषेण कुमार—प्रभो! प्रकरण वश हमलोग बहुत आगे निकल गये। गुरु का महत्व आत्म कल्याण के मार्ग में अत्याधिक है। कृपया गुरु कैसे आराध्य है, तथा उसकी आराधना कैसे करनी चाहिये, समझाने का कष्ट करें।

मुण्डि पुत्र—वत्स ! प्रश्न आपका बहुत अच्छा है। आत्म कल्याण के मार्ग में गुरु का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि सच्चा गुरु अपने आदर्श के द्वारा शिष्य का कल्याण कर देता है। शिष्य आत्मज्ञान की पाठशाला में सच्चे गुरु को

पाकर अपने पाठ को ठीक तरह से समझ लेता है। यह निर्ग्रन्थ होता है, महाव्रतों का पालन करता है, संसार से बिल्कुल निस्पृही रहता है और बिना किसी इच्छा और आकांक्षा के आत्मोद्धार में रत रहता है। समाज से कुछ भी नहीं लेता, अधिक से अधिक देने का प्रयत्न करता है। संसार के प्रलोभन उसे विचलित नहीं कर सकते हैं। रत्नत्रय मार्ग का अनुयायी होता है तथा अपने अनुयायियों को भी उसी मार्ग पर ले जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों को जीवन में उतारता है तथा अहर्निश आत्म कल्याण में लगा रहता है। संसार के झगड़े-झंझटों से आत्मार्थि गुरु को कुछ भी मतलब नहीं रहता। उसका एकमात्र ध्येय अपनी आत्मा को शुद्ध करना रहता है।

वत्स ! जैसे सूर्य बिना आकाश, पुत्र बिना घर, दया बिना तप, चतुरंग सेना बिना युद्ध करना संभव नहीं, वैसे ही सम्यग्दर्शन बिना तपश्चर्या करना ठीक नहीं है। आत्मा की श्रद्धा हो जाने पर ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है। जो आस्तिक है, श्रद्धालु है और धर्म कर्म में विश्वास करने वाला है वही व्यक्ति इस संसार में आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्ति करता हुआ देखा जाता है। अन्याय, चोरी, हिंसा, झूठ, कुशील सेवन मिथ्या दृष्टि ही करता है। सम्यक्त्वी इन पापों से सदा घृणा करता है।

पुत्र के लिये, भाई,माता, पिता, आदि कुटुम्बियों के लिये जो अन्याय द्वारा धनार्जन करते हैं, उन्हें राज्य द्वारा तो दण्ड मिलता ही है, साथ ही नरक में दुःख भोगना पड़ता है। लूट कर धन लेने वालों को नाना प्रकार की नरक में यातनाएं सहनी पड़ती हैं।

मिथ्यात्व के आधीन होकर राजा पुण्य से प्राप्त हाथी, घोड़े, सेना आदि को साथ लेकर शिकार खेलने जाता है। मिथ्यादृष्टि को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता है, वह पाप को ठीक समझता है, इसलिये उसकी प्रवृत्ति पाप में निरन्तर होती रहती है। श्रेष्ठ सुख की इच्छा करने वाले भक्तों को सबसे पहले मिथ्यात्व का त्याग करना चाहिये। मिथ्यात्व इस जीव को नाना प्रकार के पाप मार्ग में घसीट कर ले जाता है। हिंसा मार्ग का निरूपण करने वाले आगम मिथ्यादृष्टि को पसन्द आते हैं, वह विषय-कषायों की पुष्टि के लिये अहर्निश कुशास्त्र का ही अध्ययन करता रहता है। जिन शास्त्रों के पढ़ने से वासनाओं को उत्तेजना मिले, पाप करने का प्रोत्साहन प्राप्त हो तथा जो अल्प ज्ञानियों द्वारा रचे गये हों वे सभी कुशास्त्र हैं। श्रेष्ठ शास्त्र के पढ़ने से आत्मा में अपूर्व आनन्द आता है, पाप और वासनाएं क्षीण हो जाती है तथा मन के दूषित विकार भी समाप्त हो जाते हैं। ध्यान और तप की प्रवृत्ति सच्चे शास्त्रों के स्वाध्याय से

ही हो सकती है। निवृत्तिरूप धर्म में प्रवृत्ति सदागम के अध्ययन से ही होती है। जैसे पितज्वर वाले के लिये दूध कड़वा लगता है, उसी प्रकार तीव्र कर्मोदय वाले को परमागम अच्छा नहीं लगता है। कुशास्त्र में असम्बद्ध बातें रहती हैं तथा मूर्ख लोग ऐसी भी अनेक मनगढ़न्त बातें लिख देते हैं जिससे पढ़नेवालो का अनिष्ट होता है।

जैसे सांप को गाय का सुस्वादु दूध पिलाने से विष बन जाता है, उसी प्रकार अपात्र को दान देने से अनिष्ट फल होता है। पत्थरीली ककरीली जमीन में खूब साफ सुथरा करने पर भी उत्तम अनाज उत्पन्न नहीं होता है, उसी प्रकार अपात्र को अच्छी वस्तु देने पर भी पुण्य नहीं होता। दान देते समय पात्र का सदा ध्यान रखना चाहिये। कुपात्र को दान देने से अधर्म होता है, क्यों कि वह दान में प्राप्त हुई वस्तु का सदुपयोग नहीं करता है। तोता जैसे सेमर के फूल की बाहरी सुन्दरता को देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है, परन्तु कुछ समय के पश्चात् उसकी नीरसता को देखकर निराश हो जाता है तथा उसे मानसिक कष्ट होता है, इसी प्रकार कुपात्र पहले अच्छा मालूम होता है, अपने वाह्य आकर्षण के कारण वह दाताओं को उपनी ओर खींचता है, किन्तु कुछ समय के पश्चात् उसकी सारहीनता स्पष्ट हो जाती है तथा उसके दुर्गुण मानसिक अशान्ति का कारण बनते हैं। बबूल के वृक्ष को कितना ही पानी दिया जाए, परन्तु उसमें सदा कांटे ही निकलते हैं। आम के वृक्ष में जल का सिंचन करने पर अमृततुल्य फल स्वभावत: निकलते हैं, इसी प्रकार अपात्र को दान देने पर भी वह अपनी अनीति को नहीं छोड़ता है। सत्पात्र सदा अपने न्याय-मार्ग में लगा हुआ स्व-पर के कल्याण का साधन बनता है।

मूर्ख जैसे घुंघुची के ढेर को अनाज समझ कर उससे क्षुधा की निवृत्ति करना चाहें तो नहीं कर सकता है, उसी प्रकार कुपात्र को दान देने से कल्याण नहीं हो सकता है। गुलाब के पेड़ में जल सिंचन करने से जैसे मनोज्ञ पुष्प आते हैं, परन्तु धतुरे को सिंचन करने पर सुगंधित पुष्प नहीं उत्पन्न हो सकते, उसी प्रकार सत्पात्र को दान देने से अटूट पुण्य होता है, कुपात्र को दान देने से नहीं। उत्तम सत्पात्र दिगम्बर साधु होते हैं, इनको दान देने से अपरिमित पुण्य होता है। ये २८ मूलगुणों का पालन करते हैं, पांचों इन्द्रियों को जीत लेते हैं। इनकी आत्मा में अपरिमित तेज होता है।

मध्यम पात्र व्रती श्रावक होता है, आवश्यकतानुसार इसे दान देने से पुण्यार्जन होता है। व्रत पालन करने के कारण इसकी आत्मा पवित्र हो जाती है, यह ज्ञान-ध्यान में अनुरक्त रहता है। जघन्य पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि

श्रावक होता, इसको दान देने से भी स्व-पर कल्याण होता है । मिथ्यादृष्टि कुपात्र है, इसे दान नहीं देना चाहिये। रोगी, दुःखी, नंगे को आवश्यकतानुसार भोजन-वस्त्र देना करुणादान है, शक्ति के अनुसार इस प्रकार का दान भी देना चाहिये।

इस प्रकार जो धर्म का स्वरूप समझ कर धर्म साधन करता है वह अपना कल्याण कर लेता है। इस प्रकार आचार्य ने वारिषेण कुमार को उपदेश दिया ।

उपदेश श्रवण कर वारिषेण कुमार घर आया और विषय-भोगों से विरक्त होकर श्रावक धर्म का पालन करने लगा। उसका मन धर्म साधन में विशेष रूप से लगता था, संसार के विषय भोग उसे काटने दौड़ते थे । एक दिन सन्ध्या समय वह प्रतिमायोग धारण करने के लिये श्मशान भूमि में चला गया और वहां ध्यानास्थ हो गया। शिला के समान उसे शरीर की खबर भूल गयी और आत्मचिंतन में लीन हो गया ।

इधर मगध में मृगसेन नामक चोर ने राजश्रेष्ठि की स्त्री कीर्त्तिमती के गले का सुन्दर हार चुरा लिया और उसे लेकर दौड़ा । कर्मचारियों ने उसे हार चुराते हुए देख लिया जिससे वह दौड़ता भागता हुआ श्मशान की ओर गया। जब चोर ने देखा कि अब मेरा वचना कठिन है तो उसने उस हार को वारिषेण के पास फेंक दिया और स्वयं आगे चला गया। राजकर्मचारियों ने हार को जब वारिषेणकुमार के पास देखा तो उन्होंने कुमार को ही चोर समझा। वे सोचने लगे कि बचने के लिये कुमार ने यह ढोंग धारण किया है । लोभ कितना प्रबल होता है, कुमार के पास सभी वस्तुएं हैं फिर भी इन्होंने हार चुराने का प्रयत्न किया । इनको हाथी, घोड़ा, स्वर्ण, रत्न, आदि सभी वस्तुएं थीं, पर इन्होंने इतना नीच कर्म क्यों किया ? यह स्वयं युवराज हैं, इनके मनमें चोरी करनेकी भावना कैसे उत्पन्न हुई ? क्या महाराज ने इन्हें धन नहीं दिया, जिससे इन्हें चोरी करनी पड़ी। लोभ कषाय बड़ी प्रबल होती है, मालूम होता है कि उसी लोभ की प्रबलता के कारण इन्होंने चोरी की है । हमारा कर्त्तव्य यह है राजा श्रेणिक से जाकर सच्चा-सच्चा समाचार कहें और कुमार की चोरी की बात बतलादें ।

उपर्युक्त विचार-विमर्श कर वे सभी कर्मचारी राजा श्रेणिक के पास आये और उन्होंने चोरी की सारी बातें कह दीं तथा यह भी कहा कि हार वारिषेण कुमार के पास पाया गया है, इससे प्रतीत होता है कि कुमार ही चोर है।

कर्मचारियों की उपर्युक्त बातों को सुनकर राजा श्रेणिक मन में विचारने लगा कि क्षत्रियों का कार्य दुष्टों को दण्ड देना है। राज्य में जो भी व्यक्ति नियमों का उलंघन करता है, वह अवश्य दण्डनीय होता है। राजा के लिए पुत्र और प्रजा समान है, चोरी करने पर जितना दण्ड साधारण व्यक्ति को देना चाहिये, उतना ही दण्ड अपने पुत्र को भी। न्यायी राजा का ही राज्य स्थिर हो सकता है, न्याय के समक्ष परिवार का मोह छोड़ देना पड़ता है। जो राजा अन्यायी होता है, अपनी प्रजा को कष्ट पहुँचाता है, धर्म और नीति से प्रजा का पालन नहीं करता है, वह मरकर नरक जाता है। राजा के लिए प्रजा प्राणों के समान प्रिय होनी चाहिये। किसी भी प्रकार का कष्ट प्रजा के ऊपर आ पड़े तो राजा को उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। अतएव इस समय मेरा कर्त्तव्य है कि वारिषेण कुमार को मैं मृत्यु दण्ड दूं अन्यथा मेरी अपकीर्त्ति संसार में फैल जायगी।

राजा ने मृत्यु दण्ड का कार्य सम्पन्न करने वाले चाण्डालों को बुलाया और आदेश दिया कि वारिषेण कुमार को मृत्यु का दण्ड तुरन्त दिया जाय। यदि इस आदेश के पालन करने में तनिक भी इधर–उधर किया तो तुम लोगों को भी मृत्यु दण्ड दिया जायगा। बेचारे कर्मचारी राजा की आज्ञा सुनकर भयभीत हो गये, उनके मुख से एक भी बात न निकली और चुप-चाप सिर झुकाकर चले गये।

कर्मचारी वारिषेण कुमार के पास जाकर बोला–युवराज ! महाराज श्रेणिक ने आपको प्राण दण्ड दिया है। आपने चोरी की है, आपके खजाने में किस बात की कमी थी, जिससे आपने नगर के राजश्रेष्ठि की पत्नी का हार चुराया। आपको हार चुराते समय तनिक भी विवेक नहीं था। दिखाने के लिये आप खूब धर्मात्मा बनते थे, परन्तु धर्म तो आपके भीतर लेश भर भी नहीं है। क्या चोरी करना ही आपका धर्म था ? छिः ! छिः ! ऐसा जघन्य काम आपने राजपुत्र होकर किया। महाराज ने आपको युवराज बना दिया था, आप भावी सम्राट् थे; फिर भी न मालूम आपने क्यों चोरी की ? शायद आपने समझा होगा मैं युवराज हूं, जो चाहें करूं। मेरा कोई क्या कर सकता है ? राजा भी दण्ड नहीं देगा; क्योंकि मैं उनका लाड़िला पुत्र हूं। पर महाराज श्रेणिक बड़े न्यायी धर्मात्मा राजा हैं, वे आपके अन्याय अत्याचार को कभी भी बरदास्त नहीं कर सकते हैं। अतः उन्होंने तत्क्षण प्राण दण्ड की आज्ञा दी है।

वारिषेण कुमार प्रतिमायोग में लीन थे, अतः उन्होंने मृत्यु दण्डकों की बातें कुछ भी नहीं सुनी। वे स्वयं मन में सोचने लगे कि जब मृत्यु आती है, कोई भी उससे नहीं बच सकता। चाहें कोई तलघरों में घुस जाय, सुमेरु पर्वत पर

वह जाय, गुफा में छिप जाय और भी बचने के जितने उपाय हो सकते हैं करें, परन्तु मृत्यु से वह कभी नहीं बच सकता है अतः आज चोरी का अपराध लगाकर मेरी मृत्यु होरही है, कोई परवाह नहीं है। मैं आत्म कल्याण में रत हूं, अब उपसर्ग दूर होने तक समाधि मरण धारण करता हूं। कर्मका फल विचित्र होता है,यह नाना प्रकार के दुःख देता है प्रबल कर्म के उदय को कोई नहीं टाल सकता है। त्रिखण्डाधिपति रावण ने कर्मोदय के कारण ही सोने की लंका को धूल में मिला दिया। कुम्भकर्ण जैसे प्रतापी और बलवान को भी कर्मों ने नहीं छोड़ा। पाण्डव, राम,लक्ष्मण, आदि सब किसी को कर्मों का फल भोगना पड़ा है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि में घी डालने पर अग्नि भभक उठती है, उसी प्रकार पूर्व जन्म के कर्म के उदय से दुःख भोगना पड़ता है। भव-भव में यह जीव अपने कर्म बन्धन के कारण ही दुःख उठाता है। इस प्रकार विचार कर वह भगवान के चरणों के ध्यान में लीन हो गया।

वह पुनः ध्यानस्थ हो विचारने लगा कि यह कर्माग्नि जिनधर्मरूपी जल से ही बुझाई जा सकती है तथा जिनागम रूपी ग्रहवाद से कुकर्म रूपी ग्रह को नाश कर सकते हैं। जब तक, जिन दीक्षा रूपी कुल्हाड़ी को नहीं अपनाया जायगा कर्म रूपी वृक्ष का छेदन नहीं हो सकता है! जिन व्रती रूपी पतवार को हाथ में लेकर जीवन नौका को संसार से पार किया जा सकता है। क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय आत्मा का अनिष्ट करनेवाली हैं, इनका विनाश भी जैनधर्म के धारण करने से ही हो सकता है। जिनस्तवन रूपी मेघ के जल से संसार की महा व्याधि दूर हो सकती है। जो व्यक्ति विषय-वासनाओं से छुटकारा चाहता है उसे निश्चय जिनेन्द्र प्रभु के चरणों का आश्रय लेना चाहिये। जिनतत्त्वाकांक्षा रूपी वाणों से कर्मवीर का छेदन करने में कठिनाई नहीं होती है। इस समय मेरे ऊपर जो संकट आया है, उसका निराकरण धर्म की शरण जाने पर ही हो सकता है।

संसार में रोग, वेदना जन्य नाना प्रकार का दुःख होता है। स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बियों के कारण संसार में कितने प्रकार के दुःख सहन करने पड़ते हैं। यदि कुटुम्ब पोषण के लिये धन प्राप्त हो गया तो समीचीन है, अन्यथा धनार्जन में नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। दरिद्रता से जो कष्ट होता है, वह तो और भी चिन्ता की वस्तु है। दरिद्रता देवी जिस घर में वास करती हैं, उसमें संसार के सभी कष्टों का निवास रहने लगता है। अतएव इन संसार के सभी कष्टों से मुक्त होने के लिये वीर प्रभु के चरणों की शरण ही एकमात्र आधार है।

इस प्रकार विचार करते-करते वारिषेण कुमार आत्म चिन्तन में स्थिर हो गया इधर मृत्यु दण्ड देने वाले उनके

मौन को देखकर परेशान हो गये और जब उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तो वे उसे मारने लगे। इधर शासनदेव का आसन हिला और उसने अपने प्रभाव से सभी अस्त्र-शस्त्रों को फूल की माला कर दिया। जितने प्रभावशाली अस्त्रों का वे लोग प्रयोग करते थे, वे सभी निष्प्रभ हो जाते थे। सभी लोग परेशान थे कि बात क्या है; राजा श्रेणिक के सामने जाकर हमलोग क्या उत्तर देंगे। राजा हमको मृत्यु दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ेगा। शासनदेव ने वारिषेण कुमार के सिर में मुकुट, गले में अस्त्र लगने के स्थान पर माला, कंधे में यज्ञोपवीत, अंगुली में मुद्रिका, भुजा में भुजबन्धन, आदि नाना प्रकार के आभूषण बना दिये। जब कर्मचारियों ने वारिषेण कुमार के दोनों हाथ की अंगुलियों को काटना प्रारम्भ किया तो काटने के स्थान पर मुद्रिकाएं बनती चली गईं। मस्तक पर जैसे ही उन्होंने दुधारा चलाया; वह वैसे ही मुकुट बन गया। इस प्रकार की आश्चर्यकारक घटनाओं को देखकर वे चकित हो गये और सोचने लगे कि कुमार वास्तव में जैनधर्म का अनुयायी है, यह पाप सन्तति को नष्ट करने वाला है। जैनधर्म के प्रभाव के कारण ही इस समय कुमार का वध करने में हम लोग असमर्थ हैं।

शासन देव ने रत्न जटित सिंहासन तैयार किया, उस पर कुमार को बैठा कर पूजा की, और स्तुति कर नाना प्रकार से गुणानुवाद करने लगे। आकाश में दुन्दुभि बाजे बजने लगे तथा देव लोग जय-जयकार करने लगे। जब नगर वासियों ने यह कोलाहल सुना तो सभी कौतुहलवश इस दृश्य को देखने के लिये श्मशान को ओर चले। चारों ओर से मृत्यु दण्ड देने वालों को कीलित पाया तथा वे चित्रलिखे के समान अपने स्थान पर स्थित थे। वारिषेण कुमार रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए ध्यानस्थ थे। देवों को पूजा करते हुए देखकर नगर निवासियों ने भी सम्यत्त्व चूड़ामणि की पूजा की।

जब बारिषेण कुमार प्रतिमायोग छोड़कर खड़े हुए तो नगर निवासियों ने उनकी विभिन्न प्रकार से स्तुति की और राजा श्रेणिक ने इस समाचार को सुनकर पुत्र का स्वयं आकर सम्मान किया। युवराज वारिषेण कुमार इस प्रकार पूजित होकर यश का भागी बना।

थोड़े दिन तक घर में रहने के उपरान्त वह विचारने लगा कि मैंने अनन्तानन्त भव ऐसे निकाल दिये, आत्मा का कुछ भी कल्याण नहीं किया। मैं कभी चींटी बना, कभी स्यार, कभी कुत्ता, कभी सिंह और कभी बकरी का शरीर धारण किया। इस प्रकार अनन्तकाल से इस संसार में जन्म—मरण के दुःख उठा रहा हूं। नरकनिगोद पर्याय भी धारण

करनी पड़ी है। यदि इस समय मानव पर्याय को प्राप्त कर भी ऐसे ही जन्म बीत जाय तो फिर मुझसा मूर्ख कौन होगा ? सबसे प्रथम तो जीव को पञ्चेन्द्रिय पर्याय का मिलना ही कठिन है, उसमें भी संज्ञी होना और भी मुश्किल है। तथा मनुष्य होकर विचारशील होना तो बहुत ही दुर्लभ है। ये विषय तो बाहर से सुन्दर मालूम होते हैं, परन्तु इनके भीतर विष भरा है। मोह के कारण ही तो मैं अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा हूं। सम्यक्त्व मुझे नहीं मिला, मिथ्यात्व के वश हो देव, शास्त्र, गुरु की निन्दा की, जिससे यह संसार बढ़ता चला गया। पुण्योदय से इस पर्याय में मुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी है, देव–शास्त्र–गुरु में मेरी अटल भक्ति है। इसी भक्ति के कारण ही एक बार मैं महान् दुःख से मुक्त हुआ हूं। वास्तव में इस वैभव में कुछ भी सुख नहीं। यह तो पहाड़ के समान है जो दूर से देखने में अच्छा लगता है, परन्तु पास जाने पर अच्छा नहीं लगता, इसी प्रकार संसार में धन–वैभव, विषय–कषाय, दूर से देखने पर अच्छे लगते हैं, परन्तु निकट पहुँचने पर ये बहुत बीभत्स मालूम होते हैं।

सांसारिक सुख इस प्रकार के हैं, जैसे सिर के बाल कुछ दिन तक काले रहते हैं, पर पीछे श्वेत हो जाते हैं, इसी तरह से आरम्भ में ये अच्छे लगते हैं; परन्तु दूसरे ही क्षण इनका रूप बदल जाता है। अथवा दीपक थोड़े समय तक प्रकाश देकर जैसे बुझ जाता है, उसी प्रकार ये भी विनाशीक है। चन्द्रमा की चांदनी कुछ दिनों के बाद जैसे अन्धकार में परिणत हो जाती है, उसी प्रकार ये सांसारिक वैभव नष्ट होने वाले हैं। जिनेश्वर ही इस समय एकमात्र पतवार है, अतः उन्हीं की शरण जाने से कार्य हो सकता है। अब मैं इस घर में एक क्षण के लिये भी नहीं रहूंगा, शीघ्र ही जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण करूंगा।

इस प्रकार विचार-विनिमय कर उसने सबसे प्रथम अपनी मां चेलना देवी के पास जाकर अपना विचार प्रकट किया और उससे दीक्षा ग्रहण करने की स्वीकारता ली। घर के सभी सदस्यों से आज्ञा लेकर वारिषेण कुमार ने सुरदेव नामक आचार्य से पुष्पगिरि पर जाकर जिनदीक्षा ली और घोर तपश्चरण करना आरम्भ किया। थोड़े दिनों के बाद उन्हें जंघाचरण नामक ऋद्धि प्राप्त हो गई। नीति है कि आत्म प्रसाधन करने वाले को संसार के वैभव अपने आप मिल जाते हैं। वह इन वैभवों को जितना ठुकराता है ये उसे उतना ही जकड़ते हैं। वैभव वास्तव में पुण्य के दास हैं। जंघाचरण ऋद्धि के प्राप्त हो जाने पर वारिषेण कुमार और भी उग्र तपस्या करने लगा। उसने द्वादश अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन और द [illegible] धर्मों का मनन करना आरम्भ किया, जिससे उसे आत्मिक बोध उपलब्ध होने लगा।

माण्डली नामक पुरोहित की स्त्री का नाम पुष्पवती और उसके पुत्र का नाम पुष्पडाल था। यह पुष्पडाल वारिषेण कुमार का बचपन का मित्र था, तर्क, व्याकरण, न्याय, आदि सभी विषयों का यह पूर्ण पंडित था। इसका विवाह सूरत नामक काणाक्षी के साथ हो रहा था। वारिषेण कुमार सोचने लगा कि मित्र का कर्त्तव्य है कि वह मित्र का उद्धार करे, उसे सन्मार्ग पर लगावे। अतः मित्र पुष्पडाल को भव भ्रमण से बचाना चाहिये। ऐसा निश्चय कर वह पुष्पडाल के घर आया।

पुष्पडाल उस समय विवाह कर घर वापस आया था। उसके हाथ में विवाह का कंकण बंधा हुआ था। वारिषेण उसे पकड़ कर गुरु के पास ले गया और उससे कहा गुरु को नमस्कार करो। नमस्कार करने के पश्चात् वारिषेण ने गुरु से कहा—स्वामिन्! यह भव्य जीव आत्म कल्याण का इच्छुक है। संसार के बन्धन में नहीं बन्धना चाहता है, विषय–भोग में अपना नारकीय जीवन बिताने को यह तैयार नहीं है अतएव आप इसे शीघ्र दीक्षा दीजिये। यद्यपि पुष्पडाल की इच्छा दीक्षा लेने की नहीं थी, किन्तु वारिषेण कुमार के अनुरोध को टालने की क्षमता उसमें नहीं रही। अतः उसे लाचार होकर दीक्षा ग्रहण करनी पड़ी। यद्यपि नव–विवाहिता पत्नी का मोह उसे दीक्षा लेने में बाधक था, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह कुछ भी नहीं कह सका।

दीक्षा लेने पर भी उसका मन अपनी स्त्री में लगा रहता था। तप करने में उसके परिणाम नहीं लगते, वह अपनी स्त्री का ही ध्यान एकान्त में किया करता था। वारिषेण कुमार को यह सब घटना विदित थी, वह सोचने लगा कि मां जैसे बच्चे का अहित नहीं कर सकती है, वैसे मैं भी इस भव्य का कल्याण अवश्य करूंगा। इसको रास्ते पर लाने का उपाय करना पड़ेगा। मैं इसे आगम का बार–बार उपदेश देकर कर्म में दृढ़ करूंगा। इस प्रकार निश्चय कर वारिषेण कुमार ने उसे नाना प्रकार से समझाया—मित्र! इस पवित्र जिनदीक्षा को तुम व्यर्थ ही खो देना चाहते हो? यह दीक्षा देव गति में प्राप्त नहीं हो सकती हैं। देवों को मनुष्यों से सदा ईर्षा रहती है कि ये दीक्षा ग्रहण कर तपस्या द्वारा इसी भव में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। भरत चक्रवर्ती जैसे राजाओं को, जो छः खण्ड के चक्रवर्ती थे, संसार छोड़ते देरी नहीं लगी। चौबीस तीर्थंकरों ने संसार की असारता के कारण ही अपना राज्य–पाट छोड़कर दीक्षा ग्रहण की और आत्म कल्याण में लगे।

शान्तिनाथ प्रभु ने नाना प्रकार के तपश्चरण द्वारा अपने शरीर को कृशकर शीतोष्ण परिषहों को सहन

करते हुए निर्वाण प्राप्त किया, क्या ये सब सामान्य व्यक्ति थे ? जैसे छोटी नौका द्वारा छोटी नदी को पार किया जाता है, उसी प्रकार सामान्य व्रतों द्वारा देवगति के सुखों को भी प्राप्त किया जा सकता है । वास्तविक तप के द्वारा वैराग्य की प्राप्ति होती है, तप से निर्माण मिलता है तथा इन्द्र, अहमेन्द्र पद भी तप से ही प्राप्त होते हैं । स्त्री का शरीर कितना निन्द्य है, यह मल-मूत्र से भरा है, आत्म कल्याण के इच्छुक को इस में कभी भी अनुरक्त नहीं रहना चाहिये। यह शरीर सदा अपवित्र है । पान खाने, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करने, साज शृंगार करने से यह शरीर कभी भी पवित्र नहीं हो सकता है । जैसे मल देखकर घृणा होती है, वैसे इस शरीर को देखते ही घृणा होती है ।

सोना, चांदी, सम्पत्ति आदि वस्तुएं क्षणिक हैं । कुदुम्ब, स्त्री, पुत्र भी साथ देने वाले नहीं हैं । चक्रवर्ती का परिवार साढ़े तीन करोड़ व्यक्तियों का होता है, पर दुःख-सुख अकेले चक्रवर्ती को भोगना पड़ता है । अतएव संसार के वास्तविक स्वरूप को समझ कर तुम मोह छोड़ दो और आत्मकल्याण में लग जाओ । जिस प्रकार बालू में कुंआ खोदने पर जल नहीं निकलता है, उसी प्रकार संसार के विषय भोगों में सुख का लेश भी नहीं है । जो व्यक्ति दीक्षा लेकर भी भोगों की आकांक्षा रखता है, वास्तव में वह महान् मूर्ख है । विषय-भोग रीक्ष, व्याघ्र और सांप के समान भयंकर हैं, ये नाम मात्र से ही जीव को उदरस्थ कर लेते हैं ।

भोग के लिये प्रिय वस्तु नारी मानी जाती है । इसका प्रत्येक अंग विषमय है । नारी की भृकुटी लोहे की सांकल के समान, नितम्ब यमराज के दूत के समान, नाक शिकारी कुत्ते के समान, मुख नरक के बिल के समान, दन्त-पंक्ति यम की दाढ़ों के समान, कुटिल चित्त कालकूट के समान, हाव-भाव विलास नरक के समान, आंखे सिंहनी के समान, भुज लताएं सर्पिणी के समान एवं गला वज्र के समान हैं । जो कामी व्यक्ति नारी को सुन्दरी समझता है, वह उसकी दृष्टि का दोष है । दृष्टि में राग-अंश रहने से कामी को कामिनी प्यारी लगती है । यह नरक ले जाने वाली है, मोक्षमार्ग में रुकावट डालने वाले कुत्ते के समान है । ऐश्वर्य घास की अग्नि के समान, राज-वैभव बादल के समान, युवावस्था इन्द्रधनुष के समान क्षण भंगुर हैं । रमणियों का भोग कपास की राख के समान, जीवन सड़े वृक्ष के समान हैं । अतएव तपस्या में दृढ़ होना यही जीवन का ध्येय है । इस प्रकार पुष्पडाल को वारिषेण कुमार बारह वर्ष तक समझाता रहा, पर उसके हृदय से अपनी स्त्री का मोह नहीं हटा ।

एक दिन वारिषेण कुमार के मन में विपुलाचल पर भगवान महावीर स्वामी के दर्शन की इच्छा हुई । अतः

वे प्रभु के वन्दन के लिये विपुलाचल की ओर चले। जब पुष्पडाल ने देखा कि वारिषेण कुमार विपुलाचल को चले गये तो उसने एक सन्तोष की सांस ली। सोचने लगा कि बारह वर्ष तक मुझे यहां जबरदस्ती रहना पड़ा। आज अच्छा अवसर मिला, अत; अब घर जाकर अपनी पत्नी से मिलूंगा। इस प्रकार विचार कर वह अपने घर को चल दिया। रास्ते में पत्नी से मिलने की मनमोहक कल्पनाएं करता जाता था।

जब वारिषेण कुमार प्रभु दर्शन कर वापस लौटे तो पुष्पडाल को उस स्थान पर न पाकर समझ गये कि मोही जीव को मोह खींच कर ले ही जाता है। इसका मुझे आत्म कल्याण अवश्य करना है, इतना समझाने पर भी इसका मोह नहीं हट रहा है, अतः अबकी बार इसे किसी भी तरह से धर्म में स्थिर करूंगा। इतना विचार कर वह ऋद्धि द्वारा पुष्पडाल के पास गये और घर पहुँचने के पहले ही उसे पकड़ लिया। उसे धर्म में स्थिर करने के लिये वारिषेण कुमार उसके साथ राजगृह गये। जब चेलना देवी ने वारिषेण कुमार को राजभवन की ओर आता देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि मुक्तिमार्ग बड़ा कठिन है, मालूम होता है कि इनके मन में अभी भोगों की आकांक्षा है, अन्यथा कुसमय में यह राजभवन में क्यों आते हैं? साथ में पुष्पडाल को देखकर चेलना देवीने एक सोनेका आसन तथा एक काष्ठासन बिछा दिया। वारिषेण कुमार काष्ठासन पर और पुष्पडाल सोने के आसन पर बैठ गये। चेलना देवी ने अपने वीतरागी पुत्र की अष्ट द्रव्यों से पूजा की और हाथ जोड़ कर कहने लगी—महाराज आज मैं धन्य हो गयी, आपने राजभवन में पधारने का कष्ट किया, आज्ञा दीजिये।

वारिषेण कुमार—आप अपनी तीन सौ बहुओं का शृंगार कर यहां बुलाईये। चेलना देवी ने अन्तःपुर में दासियां भेजकर शृंगार पूर्वक सभी बहुओं को उनके समक्ष बुलाया। सभी वारिषेण कुमार की पत्नियां सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर रति के समान मन्द-मन्द गति से आईं। वे सब सोचने लगी कि स्वामी ने आज हम को याद किया है, यदि हम सब अपने रूप सौन्दर्य से उनको अपने वश में कर लेगीं तो आज से हमारे भाग्य खुल जायंगे, वे दीक्षा छोड़कर यहीं रहने लगेंगे। देखें हमारा भाग्य क्या करता है, इस प्रकार संकल्प-विकल्प करती हुई वारिषेण कुमार के समक्ष उपस्थित हुईं। सभी रानियों के आ जाने पर उन्होंने पुष्पडाल की पत्नी को भी बुलाया। यह काली-कलूटी बकरी के समान मालूम होती थी, उसका मुख लंगूर के समान था। कानी आंख इसे और भी विरूप बना रही थी।

वारिषेण कुमार ने ओजस्वी शब्दों में अपने पुष्पडाल से कहा—मित्र बारह बर्ष तक जिस सुन्दरी का तुम

ध्यान करते रह गये, वह यही है। देखो यह कितनी सुन्दरी है ! आत्म कल्याणकारी तप को छोड़ कर आपने मोहवश इस कुरूपिणी का ध्यान किया। देखो ! इन सुन्दरियों को छोड़ते हुए मुझे विलम्ब नहीं हुआ। ये युवती रानियां रति के समान सुन्दरी, इन्द्राणी के समान गुणवती, सभी प्रकार के भोग योग्य थीं। मोह को जीतने के कारण नया संसार का वास्तविक रहस्य अवगत हो जाने के कारण मुझे इनके छोड़नेमें तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। विषय किंपाक फल के समान हैं, ये देखने में सुन्दर, पर भोग करते ही अपना विषैला प्रभाव डालने वाले हैं। धिक्कार है ऐसे विषयों को, जिनकी आकांक्षा से तुमने बारह बर्ष तक अपनी इस अनिन्द्य सुन्दरी का ध्यान किया। सुखकारी दीक्षा को छोड़कर इस प्रकार की स्त्री का ध्यान करनेवाला मूर्ख नहीं तो और कौन होगा ?

वारिषेण कुमार की बातों को सुनकर सुद्धन्ती—जो कुत्ता के समान कय (वमन) कर उसे खा लेता है, वह महा निन्द्य है। इस अस्थि–चर्ममय शरीर से स्नेह करता है, वह वेवकूफ है। ऐसे प्राणी का संसार में उद्धार होना असम्भव है। जिनदीक्षा आत्म कल्याण करने वाली है, इसे पाकर भी जो व्यक्ति अपने कल्यरण से वंचित है वह बड़ा भारी मूर्ख है।

अपनी स्त्री की उपर्युक्त बातों को सुनकर पुष्पडाल बिचारने लगा—वारिषेण कुमार धन्य हैं, जो इतनी सुन्दर रमणियों को छोड़कर आत्मकल्याण में संलग्न हैं। मैंने बड़ी भारी गलती की जो विषयाकांक्षा को रख कर काली –कलूटी, काणाक्षी का ध्यान किया। मेरी स्त्री भी मुझसे ज्यादा ज्ञानवती है, उसे भी विवेक है, संसार मुझे प्राप्त नहीं हुआ। जिन विषयों को मैं बहुत सुन्दर समझता था, वास्तव में वे बीभत्स हैं, उनमें कुछ भी सार नहीं है। आत्मा का कल्याण इन विषयों के सेवन से कभी नहीं हो सकता है। वीर प्रभु का मार्ग ही श्रेयस्कर है, मैंने इतना समय व्यर्थ खोया। मोह रूपी पर्वत और कर्मरूपी इंधन को भस्म करने के लिये जिनदीक्षा से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। आज मेरा मिथ्यात्व नष्ट हो गया। वारिषेण कुमार ने मुझे सचेत करने के लिये अच्छा मार्ग अपनाया है, मेरे लिये आज का दिन बड़ा भारी कल्याणकारी सिद्ध होगा। मित्र, वही है जो मित्र की सच्चे दिल से भलाई करे। मेरा मित्र, मित्र नहीं; गुरु और हितैषी भी है। आज से मैं विषय-सुखों को सदा के लिये छोड़ता हूं। अब मुझे यहां पर एक क्षण भी रहना दुःखमय प्रतीत हो रहा हैं; ये दिव्यांगनाएं राक्षसियों के समान प्रतीत हो रही है। अतः अब शीघ्र ही चलकर तपस्या में रत होता हैं। मुझे मार्ग मिल गया।

इस प्रकार आत्मालोचना कर पुष्पडाल ने भावसेन मुनि के पास आकर तपस्या आरम्भ की। उग्र-उग्र तप करने लगा, अन्तिम समय समझ कर उसने समाधिमरण धारण किया और मरण कर महार्द्धिक देव हुआ।

वारिषेण कुमार पुष्पडाल को दीक्षा में स्थित कर अकेला भ्रमण करने लगा। बारह प्रकार के तपों को करता हुआ आत्मध्यान में लीन रहने लगा। अन्त में समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग किया, जिससे सर्वार्थसिद्धि विमान में तेतीस सागर की आयु पाकर देव हुआ।

इस प्रकार गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक को स्थितिकरण अंग की कथा कही।

सातवी कथा समाप्त

आठवीं कथा

आत्म कल्याण कारक स्थितिकरण अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से वात्सल्य अंग की कथा कहने की प्रार्थना की राजा श्रेणिक हाथ जोड़ कर विनीत भाव से कहने लगा—प्रभो वात्सल्य अंग का स्वरूप क्या है, और इसके धारण करनेवाले को क्या फल मिलता है ? कहें।

गौतम स्वामी—राजन् ! साधर्मी भाई के साथ स्नेह करना, उसके कष्ट और संकटों को दूर करने का प्रयत्न करना वात्सल्य अंग है। क्योंकि साधर्मी की श्रीवृद्धि से धर्म की श्रीवृद्धि होती है। जो व्यक्ति केवल अपने ही स्वार्थ की पूर्ति में लगा रहता है,अन्य के सुख-स्वार्थों की कुछ भी परवाह नहीं करता, वह निन्द्य है,ऐसे व्यक्ति से धर्म की हानि होती है। धर्म का आधार धर्मात्मा व्यक्ति है, जो धर्मात्मा व्यक्तियों का रक्षण, संवर्द्धन और सहाय्य करता है, वह धर्म का रक्षण, संवर्द्धन और सहाय्य करता है, अतः वात्सल्य अंग स्वार्थ को दूर करने वाला, मानव को संकुचित दायरे से हटा कर विस्तृत सेवा के मार्ग में लानेवाला है। ऐसे अंग का जो पालन करते हैं, वे केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेते हैं।

राजा श्रेणिक—स्वामिन् ! धर्मात्माओं की सेवा करना ठीक है। मुनियों की सेवा करना गृहस्थ का कर्त्तव्य है, परन्तु गृहस्थ की सेवा गृहस्थ क्या करेगा ? कृपा कर इसे समझाने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—राजन् ! मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका यह चार प्रकार का संघ है। इसे चतुर्वर्ण संघ कहा जाता है। इन चार वर्णों की जो सेवा करता है, वह वास्तव में धन्य है। जैसे मुनियों की सेवा-शुश्रूषा से धर्म की वृद्धि होती है, उसी प्रकार श्रावकों की सेवा से भी। आपस में श्रावकों को भी एक-दूसरे की यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये। स्वार्थ के कारण जो आपस में विद्वेष करते हैं, कलह और विसंवाद में अपनी शक्ति को नष्ट करते रहते हैं, वे व्यक्ति नीच हैं। ऐसे व्यक्तियों से धर्म का उद्धार नहीं हो सकता है। प्रत्येक श्रमणानुयायी का यह कर्त्तव्य है कि वह सेवा के मार्ग में लगे जीवन का ध्येय आत्म सुधार है। यह तभी संभव है जब संसार के प्राणियों के साथ वात्सल्य

भाव रहे । इस अंग की कथा निम्न है ।

कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम का नगर था । इसमें महापद्म राजा लक्ष्मीमती रानी के साथ आनन्दपूर्वक राज्य करता था । इसके कामदेव के समान सुन्दर, ऐश्वर्यशाली, जिनेन्द्र भगवान के भक्त पद्मराय और विष्णुकुमार नाम के पुत्र थे ।

एक दिन श्रुतसागर नाम के आचार्य पांच सौ मुनियों के साथ संघ सहित विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे और नगर के बाहर के उद्यान में ठहर गये । वनपाल द्वारा मुनियों के आने का समाचार सुनकर राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ । प्रसन्न होकर उसने वनपाल को नाना प्रकार के वस्त्राभूषण और धन-वैभव पुरस्कार में दिये तथा सिंहासन से उतरकर परोक्ष नमस्कार किया । राजा ने नगर में आनन्द भेरी बजवा कर समस्त प्रजा को एकत्रित किया । सभी श्रावक समुदाय आनन्द सहित पूजा द्रव्य लेकर मुनियों की पूजा के लिये चला । राजा ने पुरजन-परिजन के साथ उस तेजस्वी मुनि संघ की प्रदक्षिणा की और परम तपस्वी, ज्ञानवान श्रुतसागर मुनिराज की पूजा की । पश्चात्, हिंसा, झूठ चोरी, सप्तव्यसन आदि पापों को दूर करने वाले समस्त सुखों की खान जैनधर्म को मन लगा कर सुना । महापद्म राजा उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया । वह सोचने लगा कि अनादिकाल से यह जीव मोहवश पञ्चेन्द्रियों के आधीन हो नाना प्रकार के पाप कर रहा हैं, इसने सभी प्रकार के अकरणीय कृत्यों को किया, इन्द्रिय तृप्ति के साधन विषयों को भोगा और नाना प्रकार के मनमाने कार्य किये । हितकारी गुरु के न मिलने से इस जीव को अनन्तानन्त जन्म ग्रहण करने पड़े । ऐसे सुअवसर को प्राप्त कर भी जो व्यक्ति अपना कल्याण नहीं करना चाहता है, उससे बढ़कर संसार में मूर्ख और कौन हो सकता है ? जीवन ओस बिन्दु के समान अस्थिर है । आयु पानी के बुलबुले के समान अस्थिर है, अतः आत्म कल्याण में शीघ्र ही लगना चाहिये ।

विरक्त होकर राजा महापद्म ने पद्मराय, विष्णुकुमार और सामन्तों को बुलाकर कहा—पूर्व पुण्य के उदय से राज्य प्राप्त होता है,जो व्यक्ति इस राज्य पदको प्राप्त कर अपना कल्याण नहीं करता है,अन्धा है । जैसे किसान आगे की फसल को ठीक तरह से उत्पन्न करने के लिये बीज बचा कर रखता है, उसी प्रकार सारे पुण्य फल को यहीं भोग लेना ठीक नहीं है, आगे के सुखों के लिये और पुण्यार्जन करना आवश्यक है, मानव जीवन स्वपर कल्याण के लिये है, जो व्यक्ति इस कार्य को नहीं करता हैं, वह अपने अमोल जन्म को यों ही बिता देता है, अतएव अब मेरी इच्छा तप

करने की है, इसके द्वारा दोनों लोकों का सुधार हो सकता है। पुण्योदय से ही जिनरूप धारण करने का अवसर प्राप्त होता है, इस प्रकार समझा बुझा कर पद्मराय को राज्यपद दे दिया।

पिता को दीक्षा लेते देखकर विष्णुकुमार हाथ जोड़ कर कहने लगा--हे तात ! यदि राज्य सम्पत्ति अच्छी है तो आप इसको क्यों छोड़ रहे हैं ? आप भोगों को अच्छा समझते हैं तो फिर क्यों छोड़ना चाहते हैं। स्त्रियां, हाथी, घोड़े, धन, धान्य आदि यदि कल्याणकारी सुख साधन हैं तो फिर आप इनको क्यों नहीं स्वीकार करते ? मिथ्यात्व के के कारण अनादिकाल से यह जीव भ्रमण कर रहा है। नरक निगोद आदि में भ्रमण करता हुआ यह जीव नाना प्रकार के दुःखों को भोग रहा है। अतः मेरा भी विचार दीक्षा लेने का है।

महापद्म—पुत्र ! अभी तुम्हारी अवस्था छोटी है। मैंने संसार के विषयों का स्वाद ले लिया है, अतः अब तपस्या करने का मैं अधिकारी हूं। अभी तुम्हें कुछ दिन तक संसार में रहना चाहिये; भोगों को भोगने से जब तृप्ति हो जाय तब तुम तपस्या करने चले जाना। जब तक संसार से विरक्ति न हो तपस्या करने कभी नहीं जाना चाहिये। तपस्या बड़ी कठिन वस्तु है, इसे सब कोई नहीं कर सकता है, किसी भी काम में जल्दीवाजी करना उचित नहीं है।

विष्णुकुमार--पूज्यवर तात ! आप का कहना किसी नय से ठीक है, मृत्यु छोटी और बड़ी अवस्था का विचार नहीं करती है। इसका कुछ भी ठीक नहीं है कभी भी आ जाय। संसार के भोगों में कुछ भी तथ्य नहीं है। मुझे इनसे पूर्ण विरक्ति हो चुकी है। अतः अब मैं जल्द ही दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं।

पद्मराय--आयुष्मान् ! तुम इतनी जल्दी विरक्त क्यों हो रहे हो ? यदि राज्य करने की इच्छा हो तो यह समस्त राज्य तुम्हें दे सकता हूं। यह राज्य पिता की थाती है; प्रजा का पालन धर्म न्याय से करना है। कोई भी व्यक्ति राज्य प्राप्त कर आनन्द से नहीं रह सकता है। यह एक बडा कर्त्तव्य है, इसको जिम्मेदारी को निभाना बहुत बड़ा काम है, अभी तुम्हारे खेलने-खाने के दिन हैं; युवराज्य पद पर आसीन होकर प्रजा को सेवा करो, देश का उत्थान और उद्धार करो। अभी तपस्या करने के दिन नहीं हैं, पिता को मुनि दीक्षा लेने दो। उनकी दीक्षा प्राप्ति में तुम विघ्न मत बनो।

विष्णुकुमार स्वयं विचारने लगा—पुण्योदय से ही आत्मकल्याण का अवसर मिलता है। माता, पिता, भाई, बन्धु यह सब संसार के नाते हैं। अकेली ही आत्मा सुख-दुख को भोगनेवाली है। मोहोदय के कारण नरकादि योनियों में नाना प्रकार के कष्टों को सहा हैं। ऐन्द्रियिक सुखों से इस जीवको कभी तृप्ति नहीं हुई। जैसे ओस के चाटने से प्यास

शान्त नहीं हो सकती है, उसी प्रकार इन्द्रिय-सुखों के उपयोग में जीव को कभी शान्ति नहीं हो सकती है।

इस प्रकार ऊहापोह कर विष्णुकुमार ने महापद्म राजा के साथ श्री श्रुतसागर आचार्य से मुनि दीक्षा ग्रहण करली। महापद्म ने कैलाशपर्वत पर जाकर उग्र तपश्चरण किया और कर्मक्षय कर निर्वाण प्राप्त किया। विष्णुकुमार मुनि उत्तरोत्तर तपश्चरण करते हुए शास्त्राभ्यास करने लगे। पद्मराय भी अपने पिता के आदेशानुसार धर्म-न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उसने दरिद्रों को दान दिये, भगवान जिनेन्द्र के पूजा-महोत्सव कराये तथा अपने राज्य की वृद्धि की।

अवन्ती देश की उज्जैनी नगरी में जयवर्मा नाम का राजा राज्य करता था, इसकी रानी का नाम श्रीमती था। इस राजा के जैनमत के कट्टर शत्रु बलि, नमुचि, वृहस्पति और प्रह्लाद ये चार वेद-शास्त्र के पारंगत मन्त्री थे।

एक समय इस नगर में मोक्ष मार्ग के उपदेशक श्री अकम्पनाचार्य नाम के जैन मुनि अपने ७०० शिष्यों सहित पधारे और नगर के बाहर बगीचे में ठहर गये। जब आचार्य श्री को यह समाचार मिला कि यहां के राजा के चारों मन्त्री जैनधर्म के द्वेषी हैं, तो उन्होंने सब शिष्यों को बुलाकर आज्ञा दी कि जब राजा और मन्त्री यहां आवें तो मौनव्रत धारण कर ध्यानस्थ हो जाना। धर्म द्वेषी से वादविवाद करने से व्यर्थ ही झगड़ा बढ़ता है। सभी शिष्यों ने नमोऽस्तु कह कर गुरु आज्ञा को स्वीकार किया।

गुरु ने जिस समय शिष्यों को यह आदेश दिया था, उस समय श्रुतकीर्ति नाम के आचार्य नगर में भिक्षा के लिये चले गये थे, अतः गुरु का आदेश न सुन सके।

मुनियों के पधारने का समाचार जब नगर में पहुँचा तो सभी श्रावक उनके दर्शन करने आने लगे। राजा ने भी यह समाचार वनपाल के द्वारा अवगत किया और प्रसन्न होकर उसने कहा—परमावधिज्ञान के धारी, द्वादशांग के ज्ञाता अकम्पनाचार्य अपने शिष्यों सहित यहां पधारे हैं। अतः हम सब को चलकर आचार्य संघ की पूजा करनी चाहिये।

मंत्री—महाराज ! ये नंगे साधु दर्शन करने के योग्य नहीं होते, अतः शास्त्रों में इन्हें अदर्शनीय कहा गया है।

राजा—हे मन्त्रिवर ! ये लोग बड़े तपस्वी होते हैं। इन्द्रिय और मन को जीत कर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

मंत्री—राजन् ! पाप-पुण्य, परलोक, जीव, स्वर्ग, मोक्ष कुछ भी नहीं हैं। ये सब कल्पना की वस्तुएं हैं।

स्वार्थियों ने अपना पेट भरने के लिये नाना प्रकार की कल्पनाएं कर रखी हैं। राज्य सुख छोड़कर तपस्या करने में शरीर को कष्ट देना कौन सी बुद्धिमानी है ? पुर्नजन्म कभी होता ही नहीं, मरने के उपरान्त भूत चतुष्टय रूप आत्मा इसी मिट्टी में मिल जाती हैं। जब तक सूक्ष्म परमाणुओं का संयोग रहता है। तब तक शरीर में गति रहती है, इसीका नाम चैतन्य है। इसके समाप्त होते ही मृत्यु हो जाती है, अतः आत्मा नाम का कोई पदार्थ ही नहीं, फिर तपस्या करने की आवश्यकता ही क्या ? प्राप्त हुए भोगों को छोड़ना, अपने शरीर को कष्ट पहुँचाना बेवकूफी के सिवा और क्या है ? ये नंगे साधु अपने मायावी वचनों द्वारा लोगों को जाल में फंसाकर व्यर्थ का ढोंग रचते हैं।

राजा—मीन्त्रिवर ! आत्मा का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वानुभव से प्रतिक्षण सुख-दुःख रूप में आत्मा का अनुभव करता रहता है। भूत चतुष्टय के संयोय से आत्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि जड़-भूत-चतुष्टय से चैतन्य आत्मा की उत्पत्ति होना असंभव है। सजातीय द्रव्य से विजातीय द्रव्य उत्पन्न नहीं हो सकता पुनर्जन्म को सिद्ध करनेवाले अनेक उदाहरण वर्तमान हैं। अनेक व्यक्तियों को अपने पूर्व जन्म की स्मृति रह जाती है। यदि आत्मा का चिरन्तन अस्तित्व न होता और उसके साथ रहने वाले पुण्य-पाप न होते तो फिर संसार में ज्ञान, बुद्धि सुख आदि की विषमता क्यों दिखलायी पड़ती ? अतः एक ऐसा कारण अवश्य मानना पड़ता है, जिससे इस संसार की विषमता का रहस्य सम्बद्ध है।

मन्त्री—राजन् ! पुनर्जन्म मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु इन नंगे साधुओं के दर्शन में क्या रखा है ?

राजा—मीन्त्रिवर ! देखने से क्या पाप लगेगा। यदि आप की इच्छा इनके दर्शन करने की नहीं है तो आप न चलें मेरी इच्छा है अतः मैं दर्शन करने जाऊंगा। इतना कह कर जब राजा दर्शन करने को चलने लगा तो मीन्त्रियों को भी झकमार कर उनके साथ दर्शन करने जाना पड़ा। उन्होंने सोचा कि यह राजा के साथ इस समय नहीं जायंगे तो राजा को बहुत बुरा लगेगा।

जब मुनियों ने राजा और मन्त्रियों को आते देखा तो वे सभी मौन होकर ध्यानस्थ हो गये। राजा सब को प्रणाम करता हुआ आगे बढ़ा। आगे जाने पर अवसर पाकर मन्त्रियों ने राजा से कहा—राजन् ! ये सभी मुनि मूर्ख हैं, इसी कारण मौनी बने बैठे हैं। और भी नाना प्रकार से मुनियों की हंसी, दिल्लगी करते हुए जा रहे थे कि उन्हें रास्ते

में श्रुतकीर्ति मुनि मिले, जो नगर में चले जाने के कारण गुरु आज्ञा नहीं सुन सके थे।

मुनि को आते हुए देखकर वे हंसकर कहने लगे—देखो अपने सामने एक तरुण बैल दौड़ता हुआ आ रहा है जब मुनि और पास आ गये तो उन्होंने और भद्दा मजाक किया।

मुनिराज ने गम्भीर होकर हितमित प्रियवचनों द्वारा उन मन्त्रियों की समस्त शंकाओं का समाधान किया। जीव, लोक, परलोक आदि के अस्तित्व को प्रबल प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया। मुनिराज ने कहा—अपने स्वरूप का प्राप्त होना धर्म है। जब तक कोई भी वस्तु अपने स्वरूप से च्युत रहती है, अधर्मावस्था में हैं। धर्म के धारण करनें से समस्त प्रकार की विपत्तियों का संहार हो जाता है।

यद्यपि मुनिराज के वचन मन्त्रीयों को बुरे लगे- परन्तु राजा को खुश करने के लिये हां में हां मिलाते हुए पुनः कहने लगे—

अर्हन्त कहां हैं? उन्हें किसने देखा है? बिना देखे उनकी पूजा करना कैसे संभव है क्या आपने अर्हन्त को देखा है? स्वर्ग–नरक आपको दिखलायी पड़ रहे हैं?

मुनिराज-—देखो! अप्रत्यक्ष वस्तुओं पर भी विश्वास करना पड़ता है। तुमने अपने दादा को नहीं देखा, पर क्या उनका अस्तित्व नहीं मानते? तुम्हें क्या अपना कुल–गोत्र दिखलाई पड़ रहा है, फिर क्यों अपने को उच्चकुल का कहते हो? पुण्य–पाप का फल प्रत्यक्ष ही सुख, दुःख, हानि, लाभ रूप दिखलायी पड़ रहा है। जैसे राजा की आज्ञा भंग करने पर दण्ड मिलता है, उसी प्रकार भगवान की आज्ञा भंग करने पर दण्ड भोगना पड़ता है। यह जिनेन्द्र प्रभु सभी प्रकार के परिग्रह से रहित होते हैं, ये ही वीतरागी, हितोपदेशी, और सर्वज्ञ देव हैं। धर्म विरुद्ध चलने, संयम को नष्ट करने, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पापों में लिप्त रहने से पाप का बंध होता है। जिन्होंने धर्मार्जन किया है वे अभी भी प्रसिद्ध हैं। अहिंसा में धर्मराज, सत्य में कर्ण, अचौर्य में अर्जुन, शौच में गांगेय और अपरिग्रह में रामचन्द्र प्रसिद्ध हैं, इनका वर्णन पुराणों में आता है। अतः जिनेश्वर भगवान के उपदेश के अनुसार चलने से क्या लौकिक अभ्युदय प्राप्त करने में बिलम्ब होगा? भगवान के बताये मार्ग का अनुसरण करने से क्या धर्म नहीं होगा? जैसे दीपक के रहने से रास्ता दिखलाई पड़ता है, बीज रहने से खेती सफल होती है उसी प्रकार भगवान जिनेश्वर के

धर्म का पालन करने से तथा उनके बताये मार्ग का अनुसरण करने से अवश्य पुण्य होगा। भगवान जिनेश्वर का मत ही संसार में कल्याणकारी है।

जिनदीक्षा धारण करने वाले को सब सुख प्राप्त होते हैं। भूमि के निर्ग्रन्थ—स्वच्छ रखने से किसान को आनन्द होता है, आकाश के निर्ग्रन्थ—स्वच्छ होने से उत्सव सफल होता है, पानी के निर्ग्रन्थ—निर्मल पेय होने से पानी स्वादिष्ट लगता है, अग्नि के निर्ग्रन्थ—तेजस्वी रहने से आहार ठीक तरह से पकाया जाता है, चावल के निर्ग्रन्थ होने से आहार ठीक बनता है, सूर्य के निर्ग्रन्थ रहने से दिन शुद्ध होता है, चन्द्रमा के निर्ग्रन्थ रहने से रात्रि शुद्ध होती है, मन के निर्ग्रन्थ रहने से कार्य सिद्ध होता है, रत्न के निर्ग्रन्थ रहने से मूल्याधिक रहता है, सोने के निर्ग्रन्थ होने से सुन्दर आभूषण बनाये जाते हैं, इसी प्रकार मनुष्य के निर्ग्रन्थ होने से सभी अभिष्ट कार्यों कि सिद्धि होती है। अर्हन्त भगवान् का उपदेश निर्ग्रन्थ धर्म है, इसमें किसी भी प्रकार का छल-कपट या भेदभाव नहीं है अतः आत्मोद्धारक यही धर्म है। बच्चा, गाय, भूमि, सूर्य, वृक्ष, आकाश, समुद्र, घोड़ा, पर्वत आदि पदार्थ निर्ग्रन्थ हैं। संसार में निर्ग्रन्थपन से रहित कोई भी वस्तु नहीं है।

जो लोग यह कहते हैं कि दिगम्बर को देखने से गाय, बैल पशु मर जाते हैं, उस दिन भोजन नहीं मिलता, घर बिना सन्तान का हो जाता है। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो संसार में किसी को भी खाने को नहीं मिलेगा, क्योंकि पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी दिगम्बर हैं। इनके दर्शन पद-पद पर प्रत्येक व्यक्ति को होते हैं। दिगम्बर मुनि का दर्शन करने से तो प्राकृतिक धर्म की ओर झुकाव होना चाहिये। पाखण्डी, ढोंगी और मिथ्याडम्बर में लगे हुए साधुओं के दर्शन से कल्याण की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि मयूरपिच्छी रहने के कारण दिगम्बर साधु को अदर्शनीय मानते हैं, तो यह भी मिथ्या है; क्यों कि मयूरपंख के मुकुट आदि भी बनते हैं और बड़े-बड़े लोग इनको काम में लाते हैं।

यदि दिगम्बरत्व को ही दोष मानते हैं, तो छोटे बच्चे, पशु, पेड़ आदि भी दिगम्बर रहते हैं, इनको देखने में भी दोष मानना पड़ेगा। यदि चटाई रखने के कारण दिगम्बर साधु में दोष है तो चोल देश में रहने वाले सभी चटाई पर शयन करते हैं। कमण्डलु में दोष बताते हो तो कमण्डलु नारियल से बनता है, फिर नारियल उपयोग में लानेवाले कैसे निर्दोष हो सकेंगे ? यदि स्नान न करने से दोष मानते हैं तो सूर्य, चन्द्र को दोष क्यों नहीं लगता ? मैल लगी रहने से दोष मानते हैं तो पृथ्वी पर कूड़ा सदा पड़ा रहता है, फिर उसे क्यों देखते हैं ? खड़े होकर भोजन करना दोष का

कारण है तो पशु खड़े होकर आहार करते हैं, फिर उन्हें क्यों देखते हैं ? पंच महाव्रत धारण करने से दोष समझते हैं तो भीष्म, कर्ण, युधिष्ठर आदि एक एक व्रत के धारण करने वाले निर्दोष कैसे माने जा सकेंगे । यदि निर्वाण प्राप्त करना झूठ है, तो गाय की योनी में ३३ करोड़ देवताओं का निवास है, यह कैसे सच माना जायगा ?

कर्मरूपी शत्रु को नष्ट करने के लिये एक जिनधर्म ही सहायक है । जिनेश्वर की आज्ञानुसार चलना ही एकमात्र कर्त्तव्य है । मद्यपायी, हिंसक और मांसाहारी देव कभी नहीं हो सकता है । मान करना तथा यज्ञ के नाम पर हिंसा करना महापाप है; हिंसा त्रिकाल में भी धर्म नहीं हो सकती है । रावण ने जिन वचनों का उलंघन कर परस्त्री हरण किया, कौरवों ने परिग्रह लालसा को बढ़ाया, इसका परिणाम सर्व विदित है ।

शराबी और मांसाहारी नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं । जब तक धर्म का पूर्ण परिज्ञान न हो जाय तब तक अविश्वास नहीं करना चाहिये । जैसे मन्त्र, विद्या और आयुर्वेद आदि की शक्ति को न जानकर इनके प्रभाव के सम्बन्ध में अविश्वास नहीं किया जा सकता है; इसी प्रकार आत्मा, परलोक आदि के सम्बन्ध में अविश्वास नहीं किया जा सकता है । जिन्हें हम देव समझते हैं, उनकी मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों से पूजा करना बड़ी भारी मूर्खता है । देव कभी भी निंद्य पदार्थों को ग्रहण नहीं करते । क्षेत्रपाल, दिग्पाल आदि सम्यग्दृष्टि जिनेन्द्र भगवान् की आराधना में तत्पर कुदेव नहीं कहे जा सकते हैं, ये कभी भी निन्द्य पदार्थों को ग्रहण नहीं करते हैं । अतः सम्यग्दृष्टि बन कर अपनी आत्मा की शुद्धि करनी चाहिये ।

मुनिराज ने अकाट्य युक्तियों से आत्मा और पुनर्जन्म सिद्ध किया । इनके प्रवचन को सुनकर राजा जयवर्मा बहुत प्रसन्न हुआ और संघ का जयघोष करने लगा । ईर्ष्यालु मन्त्रियों से कहा देखो—दिगम्बर साधु के वचनों में कितनी शक्ति है । हम सभी मन्त्रमुग्ध होकर कितनी तल्लीनता के साथ इनका उपदेश सुन रहे हैं । धन्य है, इन मुनियों को संसार के समस्त विकार भावों से रहित हैं, निर्मल परिणाम के धारी हैं । इन महान तपस्वियों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । राजा ने व्यंग्य पूर्वक बलि से कहा—देखो पीछे तुम इन मुनियोंकी निन्दा करते थे, इनको अपशब्द कहते थे । देखो ये कितने प्रभावशाली हैं । इनके सामने तुम्हारे बोलने की शक्ति है । पीछे बड़बड़ाने से कुछ भी लाभ नहीं, सामने बोलिये जब मालूम होगा । इस प्रकार सभी लोग मुनियों की वंदना कर चलने लगे । थोड़ी दूर आगे जाने पर बलि कहने लगा—

यह तपस्वी मायावी है। इन्होंने माया के कारण सब को वश में कर लिया है। मालूम होता है कि यह मन्त्रवादी भी है, इसी से इसने सबकी जिह्वा को अपने वशमें कर लिया है। ऐसे धूर्तों से सदा सावधान रहना चाहिये। इन नंगे साधुओं को लज्जा भी नहीं आती है। इनमें अधिकांश मूर्ख हैं। छल कपट कर अपना उदर पोषण करते हैं। महाराज ! आप भी भोले हैं, इसलिये इनके आधीन हो गये।

राजा—मन्त्रीवर ! ऐसे सच्चे साधुओं की निन्दा नहीं करनी चाहिये। ये बड़े प्रभावशाली, सात्त्विक हैं। इनका आत्मतेज अपूर्व है। आप स्वयं सोचिये कि उनके सामने एक शब्द भी आप नहीं बोल सके। इस समय आप व्यर्थ ही ऊटपटांग बातें करते हैं।

बलि—राजन् ! इस समय आपकी बुद्धि मारी गयी है, इसी से आप इन धूर्तों की प्रशंसा करते हैं।

राजा—अरे दुष्ट ! तुम्हें बोलना भी नहीं आता है। कुत्ते की पूछ को कितना हो सीधा किया जाय पर वह सीधी नहीं होती, इसी प्रकार दुष्ट सदा मिथ्यात्व के नशे के कारण अपनी गलती को नहीं छोड़ते हैं। जो राजा के सामने इस प्रकार की ऊल-जलूल बातें कहता है, उसे मन्त्रीपद से हटा देना परमावश्यक है। मन्त्री को सर्व प्रिय होना चाहिये। अभिमानी द्वेषी और परपीडक कभी मन्त्री नहीं हो सकता है, आज से तुम्हें मन्त्री पद से हटाता हूं। तुम चारों के चारों ही दुष्ट प्रकृति के हो. इस लिये मैं अपना नया मन्त्री मण्डल बनाऊंगा।

राज्य सभा में आकर राजा ने अपनी परिषद् के सभी सदस्यों को बुलाया और अपना फैसला उनके सामने उपस्थित किया। सभी सदस्यों ने एकमत से राजा की बात का समर्थन किया और नये मन्त्रियों का निर्वाचन किया गया अभिमानी, द्वेषी और ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी भी राज्य शासन के योग्य नहीं हो सकता है। जो सेवाभावी है, त्यागी है और जितेन्द्रिय है वही व्यक्ति अमात्य पद पर आसीन हो सकता है।

बलि, बृहस्पति आदि सभी मन्त्री विचारने लगे कि इन मुनियों के कारण ही हमारी यह दुदर्शा हुई है। अतः इनसे बदला अवश्य लेना चाहिये। इन सबका गुरु आचार्य बड़ा धूर्त है, उसने ऐसी राजनीति चली है, जिससे हम लोगों को यह अपमान और संकट सहना पड़ा है। इस जयवर्मा राजाने हमारा बड़ा तिरस्कार किया है, इसके ऊपर नंगे साधुओं की माया प्रभाव डाल चुकी है; अतः अवसर मिलने पर इन सबसे बदला चुकाया जायगा। हम लोगों ने वेद, वेदांग

आदि सभी शास्त्रों का अध्ययन किया है, क्या ये लोग हमारे सामने ठहर सकेंगे। इस प्रकार नाना तरह से मन सूबे बांधते हुए हस्तिनापुर में पद्मराय के यहां जाकर रहने लगे। राजा पद्मराय ने बलि को मन्त्री पद और अन्य तीनों को अन्य कार्य सौंप दिये।

पद्मराय राजा के यहां थोड़े दिन रहने के बाद बलि ने पूछा—महाराज! आप का स्वास्थ्य दिनोदिन क्यों गिरता जाता है, आपको कौनसी मानसिक चिन्ता है? कृपाकर आप कहें, मैं सर्वशक्तिमान हूं, आपकी सारी चिन्ता और व्यथा दूर करने की शक्ति मुझ में वर्तमान है।

पद्मराय—मन्त्रिवर! मेरे पिता चक्रवर्ती थे, सभी देशों के राजा उनके सेवक थे। उनके दीक्षा लेने के बाद से एक-एक कर सभी देश निकलते जा रहे हैं। अभी हाल में कुम्भपुर के सिंहकीर्ति राजा ने बगावत की है, हमारी आधीनता छोड़कर वह स्वतन्त्र हो गया है। उसके पास पर्याप्त सेना है, अतः हमसे वह अजेय है। इसी कारण चिन्ता से मेरा मन जर्जरित हो गया है।

बलि—राजन्! आप चिन्ता न करें। मुझे थोड़ी सी सेना दें, मैं उस राजा को अपने बुद्धि कौशल से पकड़ लाऊंगा।

थोड़ी-सी सेना लेकर बलि ने कुम्भपुर की ओर प्रयाण किया और थोड़े दिनों के पश्चात् कुम्भपुर को घेर लिया। छल-बल से सिंहकीर्त्ति को अपना बन्दी बना लिया और राजा पद्मराय को लाकर सौंप दिया। इस कार्य से राजा पद्मराय बलि से बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—आपने मेरा बड़ा भारी कार्य किया है। जो कुछ मांगना हो मांगो, दूंगा।

बलि—महाराज! आप बड़े उदार हैं, जो मेरे जैसे तुच्छ आदमी का उपकार मानते हैं। यदि ऐसा है तो आप मेरे वरदान को अपने ही भंडार में रहने दीजिये, जब मुझे जरूरत होगी मांग लूंगा। राजा ने उसकी बात स्वीकार कर ली और कहा कि जब तुम्हारी इच्छा हो तब मांग लेना।

कुछ समय के पश्चात् अकम्पनाचार्य का सात सौ मुनियों का संघ हस्तिनापुर के उद्यान में आकर ठहरा। बलि को संघ का समाचार मिलते ही चिन्ता हो गयी कि अब किसी भी प्रकार अपने अपमान का बदला लेना चाहिये।

यदि इस समय धरोहर में रखा अपना वरदान मांग लूं तो बड़ा अच्छा हो ऐसा निश्चय कर राजा के पास गया और प्रणाम कर वरदान मांगा।

वलि—राजन् ! मुझे सिर्फ सात दिन के लिये राज्य दे दीजिये। राजा ने प्रसन्न होकर बलि की मांग स्वीकार कर ली और सात दिन के लिये उसे राजा बना दिया गया।

राजा होने के बाद जब वलि बिल्कुल निर्भय हो गया तो उसने जहां मुनि ठहरे हुए थे, नरमेध यज्ञ कराना आरम्भ किया। मुनियों के चारों ओर कांटों की वारि लगा दी तथा यज्ञ करने लगा। उसने मुनियोंके नाशके लिये ही यज्ञ आरम्भ किया था। यज्ञ में मांस, हड्डी, रक्त आदि की आहुतियां दी जा रही थीं तथा दूषित वायु मुनियों को महान् कष्ट दे रही थी। जीवित प्राणियों का भी होम किया जा रहा था, जिससे वहां बड़ी भारी दुर्गन्धि आ रही थी। मुनियों के ऊपर बड़ा भारी उपसर्ग किया जा रहा था। मुनियों ने विचार कर प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग दूर नहीं होगा, अन्न-जल का त्याग है। इस प्रकार कषाय, वासना आदि का त्याग कर सल्लेखना ग्रहण की।

नगर के सभी लोग मुनियों के ऊपर भयानक उपसर्ग देखकर अधीर हो गये। सब त्राहि-त्राहि करने लगे। दुष्ट अधर्मी वलि राजा सात सौ मुनियों की वलि करने जा रहा है। नगर के लोग नाना प्रकार से चिन्तित थे। जब राजा ही ऐसा अन्याय कर रहा है तब रक्षा कौन कर सकता है। पद्मराय ने सात दिन के लिये वलि को राजा बनाकर महान् पाप किया। इस पाप के वल से पृथ्वी रसातल को चली जायगी। इस प्रकार सोच विचार कर सभी नगर निवासियों ने भी उपसर्ग दूर होने तक आहार-पानी का त्याग कर दिया। नगर में भयंकर उदासी छा गयी, सभी नागरिक दुःख और शोक में निमग्न हो गये।

दुर्गन्धित धूम ने मुनियों के गलों को बन्द कर दिया। उनकी श्वांसे रुक गयीं, मांस और लोहू आदि की बदबू ने उनको महान् कष्ट दिया यद्यपि धैर्य धारण कर वे शान्ति पूर्वक सभी कष्टों को सहन करते रहे। इनके प्राण कण्ठ में आ गये थे।

आधी रात के समय मिथिलापुर नाम के नगर के वन में सारचन्द नाम के आचार्य ने कंपायमान श्रवण नक्षत्र को देखकर अवधिज्ञान के द्वारा जाना कि कहीं मुनियों को घोर कष्ट हो रहा है। अतः हा ! हा !! कष्ट !!! इस प्रकार के दुःख सूचक शब्द उनके मुंह से निकले उनके पास में रहने वाले पुष्पदन्त नाम के मुनि बोले—प्रभो ! किसे

कहां, क्या कष्ट हो रहा है।

सारचन्द आचार्य—हस्तिनापुर के वन में नीच बलि ने नरमेध यज्ञ आरम्भ किया है। जिस स्थान पर यह यज्ञ हो रहा है, वहां अकम्पनाचार्य का सात सौ मुनियों का संघ ठहरा हुआ है, बलि ने इस संघ से अपना बैर प्रतिशोध करने के लिये यह कुकर्म किया है। हड्डी मांस चमड़ा आदि के जलाने से महान् दुर्गन्ध आ रही है, जिससे मुनियों को महान् कष्ट हो रहा है।

पुष्पदन्त—गुरुदेव! यदि इनके बचने का कोई उपाय हो तो बतलाइये। मैं शक्ति भर प्रयत्न करूंगा। यह धर्म के ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आई है। इसके निवारण के लिये बड़ा त्याग करना भी नगण्य है। यदि मुझ अकिञ्चन से कुछ सेवा हो सके तो आप आज्ञा दें, मैं सब कुछ करने को प्रस्तुत हूं।

सारचन्द आचार्य—वत्स! तुम आकाशगामी हो इस कार्य को सम्पन्न करने में तुम निमित्त बन सकते हो। तुम धरणी भूषर्ण पर्वत पर चले जाओ, वहां पर विष्णुकुमार नाम के मुनि तप कर रहे हैं, उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गयी है। इस कार्य को पूर्णतया सम्पन्न करने की क्षमता उनमें है। तुम उनसे जाकर सभी वृत्तान्त कहो, धर्म की रक्षा हो जायगी।

पुष्पदन्त मुनि आकाश मार्ग से तुरन्त चले और शीघ्र ही विष्णुकुमार मुनि के पास पहुँच गये। वन्दना कर अपना सारा वृत्तान्त उनको सुनाया तथा उनसे अनुरोध किया कि आपको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है अतः आप मुनियों का उपसर्ग दूर करें। आपके द्वारा ही यह महान् कार्य सम्पन्न होगा; क्योंकि वात्सल्य अंग का पालन करनेवाले इस समय इस भरतक्षेत्र में आप ही हैं।

विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया ऋद्धि की परीक्षा करने के लिये एक भुजा लम्बी की तो समुद्र में जाकर पड़ी। परीक्षा के अनन्तर वह शीघ्र ही अपनी ऋद्धि के प्रभाव से मुनियों के उपसर्ग स्थान पर पहुँचे। सबसे पहले राजा पद्मराय के पास उनके महल में गये और पद्मराय को बुलाकर कहा—"इस कुरुवंश में आप कलंक क्यों लगा रहे हैं। इस वंश की कीर्त्ति जगत्प्रसिद्ध है, इसमें राजा श्रेयान्स सर्व प्रथम दानी हुआ। शान्ति, कुन्थु और अरहनाथ ये तीन तीर्थंकर हुए मेरे पिता चक्रवर्ती हुए, जिन्होंने आप को राज्य तिलक देकर तप कर निर्वाण पद प्राप्त किया। आप ऐसे समुज्ज्वल वंश में उत्पन्न होकर मुनियों के नाश का महान् पाप अपने ऊपर क्यों ले रहे हैं?"

पद्मराय—मुनिनाथ ! मैंने मुनियों के ऊपर न उपसर्ग किया है और न करने की आज्ञा दी है । यह सब दुष्ट बलि ने किया है । सिंहकीर्त्ति को वह छल,बल से पकड़ लाया था । मैंने प्रसन्न होकर उसे मन चाहा वरदान मांगने को कहा; परन्तु उस समय उसने वह वरदान नहीं लिया और 'आवश्यकता होगी तब मांग लूंगा' ऐसा कहकर मेरे ही पास रहने दिया । अब उसने इस समय ७ दिन के लिये राज्य ले लिया है, मैं वचन बद्ध हूं । यदि अपने वचनों को लौटाता हूं तो कुरुवंश में कलंक लग जायगा । मेरी हंसी होगी तथा मेरा परलोक भी बिगड़ जायगा । आप सब प्रकार समर्थ हैं, जैसे चाहें मुनियों का उपसर्ग दूर करें । आप में तपस्या का अपूर्व तेज है, मुझ अकर्मण्य से इस समय कुछ होने का नहीं है ।

राजा पद्मराय के उपर्युक्त वचनों को सुनकर विष्णुकुमार मुनि ५२ अंगुल का शरीर बनाकर ब्राह्मण के वेष में 'जहां बलि दान कर रहा था, पहुँचे । बलि ने उन्हें देखकर आदर सत्कार किया और बोला—विप्र क्या चाहते हैं आप स्वेच्छानुसार जो मांगेगे, दूंगा । इस समय मैं सब प्रकार समर्थ हूं । ब्राह्मणों को मुंह मांगा धन दूंगा ।

बलि के बचन सुनकर मुनिराज बोले—मुझे धन दौलत की आवश्यकता नहीं है । ब्राह्मण को आत्मकल्याण से ही प्रयोजन है, संसार के विषयों की उसे आवश्यकता नहीं । अतएव आप मुझे केवल तीन कदम पृथ्वी दीजिये, जिस पर बैठ कर मैं ध्यान कर सकूं । हां, यह भूमि मैं अपनी डेग से नाप कर लूंगा । यदि आपको देना हो तो दीजिये, अन्यथा अस्वीकार कीजिये, जिससे दूसरे किसी दानी का द्वार देखूं ।

बलि—विप्रदेव ! इतना अल्प दान देते हुए मुझे लज्जा का अनुभव करना पड़ेगा । आप और कुछ मांगिये । इस समय आपको मैं सर्वस्व देने में समर्थ हूं ।

विप्रवेषी मुनिराज—वत्स ! हमारा सन्तोष ही एक मात्र धन है । ब्राह्मण को स्वपर कल्याण में रत रहना चाहिये । जो ब्राह्मण तृष्णा करता है, धन की लालसा सदा करता रहता है वह अपने पद से च्युत हो जाता है । आत्म ध्यान करने के लिये तीन कदम भूमि पर्याप्त है, अतः आप देना चाहें तो यही दान दीजिये ।

बलि ने ब्राह्मण वेषधारी मुनि को तीन डेग जमीन देने का संकल्प कर दिया, जो मुनि ने स्वस्ति कहकर स्वीकार किया ।

विक्रिया ऋद्धि के द्वारा विष्णुकुमार मुनि ने अपना शरीर बड़ा बनाकर मापना शुरू किया तो पहली डेग सुमेरु पर्वत पर पडी और दूसरी मानुषोत्तर पर्वत पर। जब तीसरी डेग के लिये जमीन न रही तो बलि से बोले–एक डेग भूमि और दीजिये और वह स्थान बताईये जहां वह पृथ्वी है

बलि—प्रभो ! अब पृथ्वी नहीं है, आप तीसरी डेग मेरी पीठ पर रख लीजिये। इतना सुनते ही ब्राह्मण वेषधारी मुनि ने तीसरी डेग बलि की पीठ पर रखी तो बलि का शरीर थर-थर कांपने लगा। देव और असुरों के आसन कंपायमान हो गये और अवधिज्ञान से समस्त वृतान्त जानकर नारद और सुर असुर वहां आये। मुनि विष्णुकुमार को नमस्कार कर कहने लगे–करुणानिधे ! अब क्षमा कीजिये, बलि राजा की पीठ पर से चरण हटाईये।

मुनिराज ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया, जिससे उनके प्रताप से सर्वत्र शान्ति फैल गयी और धन्य-धन्य की ध्वनि गूंजने लगी। बलि ने यज्ञ बन्द कर सब मुनियों का उपसर्ग दूर किया।

राजा पद्मराय भी इस समाचार को सुनकर वहां आया। मुनियों को नमस्कार कर स्तुति करने लगा–प्रभो ! आप अहिंसा के अवतार हैं। आपने अपने जीवन में अहिंसा धर्म को पूर्णतः उतार लिया है। क्षमा आपमें पूर्णरूप से वर्तमान है, शत्रु और मित्र आपके लिये समान हैं। जो कोई आपको कष्ट पहुँचाता है, आप उससे अप्रसन्न नहीं होते। स्तुति करने वाले सेवक से आप प्रसन्न नहीं होते हैं। राग द्वेप को आपने पूर्णतया जीत लिया है, आपमें लेशमात्र भी रागभाव नहीं है। बाईस परिषह सहन करने में आप समर्थ हैं। विकार और वासनाओं को आपने पृथक कर दिया है। आपके त्याग और तप को धन्य है।

मुनि विष्णुकुमार की ओर संकेत कर राजा कहने लगा—परोपकारी व्यक्ति स्नेहवश अन्य लोगों की भलाई के लिये अपना अहित भी कर लेते हैं। वात्सल्य गुण ऐसा ही है, यह साधर्मी की भलाई और कल्याण के लिये सदा प्रेरणा देता है। मुनिराज ! आपने अपनी तपस्या की परवाह न कर सात सौ एक मुनियों की रक्षा की है। आपके समान धर्मात्मा इस समय शायद ही कोई होगा। आज आपने जैन धर्म की रक्षा कर बड़ाभारी पुण्य का कार्य किया है। आप धन्य हैं, धन्य हैं।

अन्य श्रावक भी इस समाचार को सुनकर वहां पहुँचे और मुनियों की वैयावृत्ति करने लगे। क्योंकि यज्ञ के दूषित धुंऐ के कारण सब मुनियों के गले फट गये थे और आंखों से पानी बह रह था, अतः सब मुनि बेसुध पड़े थे।

यह देखकर श्रावकों ने उनके सचेत करने का उपचार किया और सबके नाक, नेत्र आदि अंग जल से धोकर हवा की, जिससे मुनि सचेत हो गये ,

राजा पद्मराय—इस दुष्ट बलि को इस प्रकार का दण्ड देना चाहिये, जिससे फिर यह कभी भी इस प्रकार का दुष्कृत्य न कर सके। इस नीच ने मेरे राज्य में इस प्रकार का कुकृत्य कर मुझे बहुत कलंकित किया है। अब इसको प्राण दण्ड दिये बिना मुझे शान्ति न मिल सकेगी।

विष्णुकुमार—राजन् ! जो जैसा करता है, उसे वैसा अपने आप भोगना पड़ता है। आप इसे क्षमा कर दें। अहिंसा धर्म के समान आत्मा का अन्य कोई उपकारी नहीं है। धर्म के नाम पर हिंसा करने वालों को नाना प्रकार की कुगतियों में भ्रमण करना पड़ता है।

मुनिराज की इन सारगर्भित बातों को सुनकर बलि, नमुचि, बृहस्पति और प्रह्लाद ने पश्चात्ताप प्रकट करते हुए उनके चरणों में जा मुनिदीक्षा ग्रहण की।

अकंपनाचार्य के संघ को हस्तिनापुर निवासियों ने आहार दान दिया। यह दिन श्रावणी पूर्णिमा का दिन था।

इस प्रकार वात्सल्य अंग का पालन विष्णुकुमार मुनि ने किया। अनन्तर वह गुरु के पास गये और अपने दोषों की आलोचना कर छेदोपस्थापना विधि से महान् तप किया। कुछ दिनों के पश्चात् कर्मबन्धन को नष्ट कर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।



नौवीं कथा

मोक्ष देने वाले वात्सल्य अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से प्रभावना अंग की कथा कहने का अनुरोध किया। राजा श्रेणिक हाथ जोड़कर कहने लगा–प्रभो ! प्रभावना अंग का स्वरूप और इसके धारण करने वाले को क्या फल मिलता है ? बतलाने की कृपा करें।

गौतम स्वामी––राजन् ! साधर्मी भाई के साथ स्नेह करना, उसके कष्ट और विपत्तियों को दूर करना, धर्म का उद्योत करना तथा जिनशासन की अभिवृद्धि के उपाय करना प्रभावना हैं। रथोत्सव करना, पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करना, शास्त्र वितिरित करना, अज्ञानी जीवों के अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करना एवं सामूहिक धर्म प्रभावना के कार्य करना प्रभावना है। पापों का प्रक्षालन करनेवाले अहिंसा धर्म की प्रभावना के लिये अपनी सम्पत्ति और शक्ति का लगाना प्रभावना है।

नाक बिना सूंघना, आंख बिना देखना, कान बिना सुनना, अंगुलियों के बिना भोजन करना जैसे असंभव है, उसी प्रकार अष्टांग के बिना सम्यक्त्व भी अपूर्ण है। अंग हीन सम्यक्त्व पापरूपी मल दूर नहीं कर सकता है। अष्टांग सहित सम्यक्त्व के पालन करने से ही मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है। जैसे हाथ, पैर आदि अंगों के अभाव में शरीर अपूर्ण और निरर्थक है, उसी प्रकार आठ अंगों में से किसी भी अंग के बिना सम्यक्त्व भी अपूर्ण है। धर्मात्मा व्यक्ति अष्टांग सम्यग्दर्शन का पालन अवश्य करता है। सम्यक्त्व का निर्दोष पालन करने वाला इस संसार से अवश्य पार हो जाता है। आत्मा का एकमात्र रक्षक सम्यग्दर्शन ही है. इसके बिना आत्मा का कल्याण करने वाला अन्य कोई साधन नहीं हो सकता है।

प्रभावना अंग का पालन करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है, जिनशासन के प्रचार और प्रसार से पापी और कुकर्मरत व्यक्ति भी अपने कल्याण का मार्ग प्राप्त कर लेते हैं। यह धर्म ऐसा है, जिससे पापी से पापी और नीच से नीच व्यक्ति भी इसका आश्रय पाकर अपना उद्धार कर सकते हैं। जिनशासन की प्रभावना करने वाला व्यक्ति देवों के द्वारा स्तुत्य वन्दनीय होता है, धर्म का प्रचारक होने के कारण उसकी आत्मा में अपूर्व शक्ति आजाती है।

अधिक पूछने पर एकदिन यज्ञदत्ता ने कहा — मुझे कुंकुम वर्ण के पके आम खाने की इच्छा है। परन्तु उस समय आम की फसल नहीं थी, अतः आम प्राप्त करने में पर्याप्त कठिनाई थी। सोमदत्त सोचने लगा — जिस प्रकार सिंहनी का दूध, खरगोश का सींग, गन्ने का फल, कटहल का फूल मिलना कठिन है, उसी प्रकार इस समय आम का मिलना भी। यदि इस समय इसको आम्रफल लाकर नहीं दिया जायगा तो यह मृत्यु को प्राप्त हो जायगी। अतएव आम्रफल लाने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। उसने अपने विद्यार्थियों को बुलाकर चारों दिशाओं में आम की तलाश के लिये भेजा। स्वयं भी जलाशयों के किनारे के आम्रवृक्ष, दूर देशों की आम्रवाटिकाओं का पके फल के लिये अन्वेषण किया, किन्तु उसकी मनोकामना सफल नहीं हुई। आम लाने की चिन्ता में वह खाना-पीना भी भूल गया। उसने ग्राम, नगर, खेट, खर्वट, मटम्ब, दत्तन, द्रोण आदि में घूम-घूम कर आम की तलाश की। उसने देश देशान्तरों में यह घोषणा कर दी कि जो आम का फल लाकर देगा उसे अपरिमित धन दिया जायगा। इस प्रकार पृथ्वी के कोने-कोने में आम्रफल का अन्वेषण किया।

वह गोपुर में गया, गाय चरानेवाले गोचारकों से पूछा, परन्तु कहीं कुछ भी पता नहीं लगा। वह आगे बढ़ा कि उसे बलवाहिनी नदी के किनारे एक भील बस्ती मिली। उसने भीलों से पके आम के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। एक भील ने आगे आकर कहा — मैं पके आम के फल को जानता हूं। सोमदत्त भील के वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा — जल्दी चलकर बताओ, जो इनाम मांगोगे, दूंगा। अब बिलम्ब करना ठीक नहीं है।

भील—इस नदी के किनारे अब्जषण्ड नाम का एक आम्रवन है। इस आम्रवन में एक पेड़ के नीचे एक नंगा गन्दा व्यक्ति मौन होकर तपस्या कर रहा है। वह कुछ बोलता नहीं है और न किसी से कुछ मांगता है। मारने-पीटने पर भी कुछ उत्तर नहीं देता है। उसी पेड़ पर पके फल हैं। भील ने संकेत से रास्ता बतला दिया, जिससे सोमदत्त अपने साथियों के साथ उस रास्ते पर चलने लगा।

सोमदत्त उस वन के रमणीक दृश्य से बहुत प्रभावित हुआ और फल से नम्रीभूत वृक्ष को देखकर सोचने लगा कि इस वृक्ष पर पके फलों का रहना इस तपस्वी की तपस्या का ही फल है। अन्यथा इस एकही वृक्ष पर पके आम क्यों होते? इस वन में और भी अनेक पेड़ हैं, किन्तु उन पर एक भी फल नहीं है। अवश्य ही यह इसकी तपस्या का फल है। यह तपस्वी सामान्य नहीं है, इसकी तपस्या में अपूर्व शक्ति है। यह साक्षात् देव है, इतना बड़ा करामाती

है कि इसके समान ब्रह्मा, विष्णु, और महेश भी नहीं हो सकते हैं। ऐसा विचार कर सोमदत्त उनके चरणों के निकट पहुँचा।

वह आचार्य सुमति नाम के थे और यह यति वृषभ द्वारा विरचित तिलोयपण्णत्ति का स्वाध्याय कर रहे थे। मनुष्य लोक का वर्णन समाप्त कर जब स्वर्ग लोक का वर्णन पढ़ने लगे तो बारहवें सहस्रार स्वर्ग का प्रकरण पढ़ा। सोमदत्त एक-एक शब्द का अर्थ समझने लगा। जब आचार्य सूर्याभ नामके विमान का वर्णन करने लगे, जिससे च्युत होकर सोमदत्त ने पृथ्वी पर जन्म लिया है, तो सुनने मात्र से सोमदत्त को जाति स्मरण हो गया और वह अपनी सारी बातों को समझकर मूर्छित होकर गिर पड़ा। इस घटना से सोमदत्त के साथ में आने वाले विद्यार्थी आश्चर्यान्वित हुए और कहने लगे—गुरु देव ने बहुत परिश्रम किया है जिससे वह थक कर गिर पड़े हैं। इस प्रकार आपस में चर्चा कर सभी उसकी मूर्छा को दूर करने का प्रयत्न करने लगे।

जब सोमदत्त की मूर्छा दूर हुई तो वह सोचने लगा—स्वर्ग में मैंने नाना प्रकार के दिव्य सुख भोगे हैं? उन सुखों से जब मेरी तृप्ति नहीं हुई तो अब इस मृत्यलोक के इन क्षणिक सुखों से मेरी कैसे तृप्ति हो सकेगी? जब सागर के जल से प्यास न मिटी तो ओस विन्दुओं से कैसे प्यास बुझ सकेगी? निवृत्ति मार्ग को ग्रहण किये विना सुख का मिलना कठिन है। सच्चा सुख त्याग में ही है। आत्मा अमर है, इसमें ज्ञान, दर्शन, सुख आदि अनन्तगुण वर्तमान हैं। कर्मों के आवरण के कारण ये गुण विकृत हो गये हैं। मैं अब तक इस भ्रम में था कि आत्मा का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। जहां शरीर समाप्त हुआ, वहीं आत्मा भी समाप्त हो जाती है। जीवन का ध्येय खाना-पीना और आनन्द से रहना है। यही मैंने समझा था, आज मेरा भ्रम दूर हो गया और वस्तु स्थिति का परिज्ञान मुझे हो गया है। इस प्रकार विचार करते हुए सोमदत्त को अनेक भवों की घटनाएं याद आ गई।

सोमदत्त मुनिराज के चरणों में पड़ कर प्रार्थना करने लगा—प्रभो! मेरी पूर्वभवावलि को कहने की कृपा करें। वास्तव में मैंने अनन्त भव धारण कर मनमाने पाप किये हैं, जिससे मेरी आत्मा कर्मों से लिप्त हो गई है और मेरा ज्ञान आच्छादित हो गया है। आज आपके दर्शन से मेरा भ्रम दूर हो गया और मैं अपने को समझ गया हूं।

सुमति मुनिराज—वत्स! तुमने अब तक अनेक भव धारण किये। विद्याधर के भव में तुमने पुण्यार्जन किया, जिससे बारहवें स्वर्ग में देव हुए। वहां से च्युत होकर अब तुमने मानव पर्याय प्राप्त की है।

सोमदत्त—प्रभो ! यह बतलाने की कृपा करें कि मेरी स्त्री को आम खाने का दोहद क्यों हुआ।

सुमति मुनिराज—तुम्हारी स्त्री के गर्भ का जीव जिनशास्त्र का पारगामी होगा, यह जिन दीक्षा ग्रहण कर तप करेगा और अपने कर्म रूपी पर्वत का उन्मूलन कर शाश्वत सुख प्राप्त करेगा। वास्तव में तो आपकी पत्नी को आम खाने का दोहद नहीं है, उसने भय के कारण अपना असल दोहद नहीं बताया है उसकी इच्छा दिगम्बर मुनियों के दर्शन—पूजन की है, वह तीर्थाटन, दान, पूजन-अभिषेक करना चाहती है। आप लोग जैन धर्म के विरोधी हैं, इस कारण उसने अपना दोहद छिपा लिया है और आम खाने की बात झूठ ही आप से कह दी है।

मुनिराज की बात सुनकर सोमदत्त को आश्चर्य हुआ वह बार बार उनके चरणों में नमोऽस्तु करने लगा। उसे संसार से विरक्ति हो गयी, वह सोचने लगा कि संसार के सुख दुःखरूप ही है, इनसे जीवका कल्याण नहीं होता है। अतएव जितना जल्द हो सके आत्मकल्याण में लग जाना चाहिये। इस प्रकार सोचविचार कर सोमदत्त वहीं पर रहने लगा और उसने अपने शिष्यो के हाथ भार्या के लिये आम भेज दिये।

उसकी विचारधारा आगे बढ़ने लगी—जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की शरण से हटकर व्यर्थ के सांसारिक प्रपंचों में पड़कर मैंने नाना प्रकार के कष्ट सहन किये हैं। आज मैंने काललब्धि को प्राप्त कर आगम के पारगामी मुनिराज का उपदेश श्रवण किया है। मिथ्या मद के कारण मैंने अनेक प्रकार के पाप किये, धर्म-कुधर्म को कुछ भी नहीं समझा। यज्ञ कर हिंसा की है तथा अपना सम्मान कायम रखने के लिये मैंने झूठे वचनों का प्रयोग किया है। आज मुझे सच्चा उपदेश प्राप्त कर महान् प्रसन्नता है, अब मेरा कल्याण निकट है, शुभोदय के बिना उपदेश मिलना संभव नहीं। रास्ते में पड़े हुए रत्न के समान, अपने घर में स्वयं आई हुई निधि के समान, बिना खर्च किये प्राप्त हुए महल के समान बिना पानी दिये गये फल के बगीचे के समान, अपने आप ही मुझे जिनधर्म मिल गया। इस धर्म की प्राप्ति के लिये कितना श्रम करना पड़ता है, परन्तु आज मुझे अनायास ही आत्म कल्याणकारी धर्म-मार्ग मिल गया; अतः अब मेरा अवश्य ही आत्म कल्याण हो जायगा। आकाश में बादल छाये हुए देखकर पानी बरसने की आशा से घर जल को गिरा देना, दूसरे के खेत में अच्छा धान उत्पन्न हुआ देखकर अपने खेत में धान न बोना तथा रिश्तेदार के यहां बच्चा देखकर अपने बच्चे को छोड़ देने के समान इस अनायास प्राप्त किये गये धर्म को मैं छोड़नेवाला नहीं हूं। पड़ोस में विवाह की तैयारियां देखकर घर में रोटी मूर्ख लोग ही नहीं बनाते हैं, चतुर व्यक्ति पहले अपना काम करते हैं, तब दूसरों के ऊपर

भरोसा । अतएव इस महान् उपकारी जैनधर्म से मेरा बड़ा भारी कल्याण होगा; क्योंकि यही धर्म आत्मा का निज धर्म है । कर्म बन्धन को इसी के द्वारा तोड़ा जा सकता है । इस प्रकार विचार कर उसने मुनिराज के चरणों में जाकर दीक्षा की याचना की—

सुमति मुनिराज—वत्स ! दीक्षा मार्ग बड़ा कठिन है, सभी लोग इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते हैं । यदि आप को वास्तव में संसारसे विरक्ति हो गई हो तो दीक्षा ग्रहण करो । दिगम्बर मुनि आत्मा में विचरण करनेवाला होता है, यह किसी से अपनी सेवा के बदले में कुछ भी नहीं लेता है ।

सोमदत्त—प्रभो ! अब मुझे उपदेश की आवश्यकता नहीं है । मैं रत्नत्रय का स्वरूप भली भाति समझ गया हूं । तथा यह भी मुझे मालूम हो गया कि आत्मकल्याण का मार्ग क्या है । मैंने अब तक सहस्त्रों विद्यार्थियों को विद्यादान दिया है । व्याकरण, कोप, दर्शन ज्योतिष आदि विपयोंमें मैंने प्रवीणता प्राप्त की है, अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन मैंने नहीं किया था, यह शास्त्र आप के दर्शन से अपने आप प्राप्त हो गया । आपने मेरे ज्ञान नेत्र खोल दिये, जिससे मैं अब अपने को भली प्रकार देख सकता हूं । अब मुझे दिगम्बर होने में बड़ी प्रसन्नता होगी, अतः जल्द से जल्द आप दीक्षा देने की कृपा करें ।

सुमति मुनिराज ने योग्य शिष्य समझकर उसे दीक्षा दे दी । दस धर्म, द्वादश तप, पांच समिति, पांच आचार, षट् आवश्यक, त्रिगुप्तियों का विधिवत सोमदत्त पालन करने लगा ।

जब सोमदत्त के छात्र आम लेकर घर आये और सोमदत्त की दीक्षा का समाचार सुनाया तो सभी लोगों को आश्चर्य हुआ । परिवार के लोग सोचने लगे—विप्र वंश में जन्म लेकर सोमदत्त ने नग्न दीक्षा क्यों ले ली । उसे किस बात की कमी थी, सहस्त्रों विद्यार्थी उसके चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करते थे । राज पुरोहित होने से धन-धान्य से कमी थी ही नहीं, सुन्दरी स्त्री भी घर में है, फिर क्यों दीक्षा ले ली । क्या नंगे बाबा ने अपना कोई जादू चला दिया है, जिससे उसने दीक्षा ग्रहण करली है । गर्भ की अवस्था में सोमदत्त के कार्य को वह उचित समझती थी परन्तु प्रत्यक्ष में परिवार के सदस्यों के भय से कुछ भी नहीं कह सकती थी ।

यज्ञदत्ता ने गर्भ काल को बिताकर एक सुन्दर प्रतापशाली, तेजस्वी, समस्त प्राणियों का हित करनेवाले पुत्र को जन्म दिया । बच्चा का नाम श्रीदत्त रखा गया । गर्भावस्था में यज्ञदत्ता अपने पति के कार्य को ठीक समझती थी,

पर अब उसे पति का दीक्षा लेना खटकने लगा। उसे अपने पति के ऊपर बहुत क्रोध आया। वह सोचने लगी न मालूम गर्भ के कारण मेरे कैसे विचार हो गये थे. जिससे उनके जिन दीक्षा ले लेने पर मैं शान्त रही। अब तो जैसे बनेगा, समझा बुझाकर यहां लाऊंगी।

जब सोमदत्त का नाभिगिरि पर्वत पर आने का समाचार उनके कुटुम्बियों को मिला तो यज्ञदत्ता परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ उनकी तपस्या को भ्रष्ट करने के लिये वहां गई। वह जाकर बोली—तुम्हें सैकड़ों बार धिक्कार है। पवित्र धर्म छोड़कर यह नग्न दीक्षा ले ली। तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में पूजनीय थे। अविवेकी बनकर तुमने क्या कर डाला? वेदान्त, व्याकरण आदि का जितना अतलस्पर्शी ज्ञान आपने प्राप्त किया है, उतना इस साधुने कभी भी नहीं तुम्हारा जैसा कुल पवित्र है वैसा किसी श्रमण का नहीं। भावुकतावश तुमने लोक-परलोक को बिगाड़ डाला। श्रमणों के जादू ने तुम को वश में कर लिया है, इसी कारण तुम्हें नंगा होने में लज्जा नहीं आई। देखो! तुम्हारी स्त्री तुम्हारे सामने उपस्थित है, तुम नंगे हो लज्जा आनी चाहिये। अभी कुछ नहीं बिगड़ा चलो घर कपड़ा पहन लो। देखो शरीर कितना कृश हो गया है, घरका सा खाना-पीना यहां कहां रखा है। जल्दी करो, देरी करना ठीक नहीं है।

यज्ञदत्ता के वचनों को सुनकर भी सोमदत्त मौन ही रहा और ध्यानस्थ हो आत्मचिन्तन करने लगा तो उसकी माता वात्सल्य पूर्वक बोली—बेटा! तुम सभी शास्त्रों के पारगामी नृपपूजित ब्राह्मणों के द्वारा वन्दनीय, नीतिवान्, वेद-स्मृतिपुराणों के धुरन्धर ज्ञाता, और अपूर्व प्रतिभाशाली होकर तुमने यह क्या कर डाला? वेदाभ्यासी होकर जिन दीक्षा क्यों ग्रहण कर ली? अब जल्दी इस दीक्षा को छोड़ो और घर को चलो। अपने सुब्रह्मणत्व को कलंकित मत कीजिये। बिना विचारे जैन साधु के फेर में पड़ कर यह दीक्षा ग्रहण की है। अपने इस कर्म के प्रायश्चित के लिये यज्ञ करें, सभी पाप दूर हो जायगा।

सोमदत्त मन में विचारने लगा कि जिनवचनरूपी अमृत को छोड़कर कुनय विष का पान अनादि काल से करता चला आ रहा हूं, जिससे अभी तक कल्याण नहीं हो सका है। स्याद्वाद और कुनय क्या समान हो सकते हैं? जैसे सूर्य और दीपक का प्रकाश समान नहीं हो सकता है, वैसे ही कुनय क्या स्याद्वाद के समान हो सकेगा? हिंसा, झूठ आदि सप्तव्यसनों में संलग्न लोगों को जिनवचन अच्छे नहीं लगते हैं। जिन लोगों ने विषयों को ही सुख मान लिया है वे जैन धर्म के निन्दक बने ही रह सकते हैं। आत्मबोध के बिना सच्चा धर्म प्रिय हो नहीं सकता है। जब जीव को

आत्मबोध हो जाता है तो फिर सत्य का आभास उसे हो ही जाता है। स्वार्थी लोग ही जैन धर्म की निन्दा किया करते हैं, क्योंकि उनका स्वार्थ पूरा नहीं हो पाता है। अतः इस समय मौन रहना ही ठीक है, मूर्खों की बातों का उत्तर देने से विवाद बढ़ता है। ऊंट खीर का स्वाद क्यों जाने, उसे तो नीम ही मीठा लगता है। मिथ्यावादियों को आत्म कल्याण-कारी जैन धर्म अच्छा नहीं लग सकता है, उन्हें तो विषय-कषाय को पुष्ट करने वाला धर्म ही रुचिकर होता है।

जब सोमदत्त ने उत्तर नहीं दिया तो यज्ञदत्ता पुनः कहने लगी—स्वामिन् ! जैन धर्म एक छोटी सी नदी के समान है और वैदिक धर्म विशाल लम्बा-चौड़ा समुद्र है। आपने विशाल धर्म को छोड़ कर परीषह सहने के लिये इस धर्म को क्यों ग्रहण कर लिया है ? इस धर्म के ग्रहण करने से आपकी बड़ी हंसी हो रही है। सभी द्विज आपको कुल-कलंक कह रहे हैं। विद्यानिधि विप्रवंशशेखर होकर आपने यह क्या अन्याय कर डाला। स्वामी ! संभलिये, जल्दी चलिये भिखारी के समान आपका यह वेष मुझसे देखा नहीं जाता है। आपका शरीर इन थोड़े से दिनों में ही जली हुई लकड़ी के समान हो गया है। देखिये आपका पुत्र कितना सुन्दर और सलोना है,आप इसको एक बार गोद में लेकर प्यार कीजिये।

सोमदत्त मन में सोचने लगा—लोगों ने जैन धर्म के स्वरूप को समझा नहीं है। जिनेन्द्र भगवान् के चरण की सेवा से भुवनत्रय का अधिपतित्व प्राप्त हो सकता है। स्वर्ग की सम्पत्ति, अनेक प्रकार की राजविभूतियां धर्म से ही प्राप्त होती हैं। चतुर लोग हित की बात को सुनते हैं, पाप की वृद्धि करने वाले आत्मकल्याण से बहिर्भूत वचनों को श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं सुनते। अहिंसा में जो आनन्द है, क्या वह कभी भी हिंसा में आ सकता है। कांच और मणि में महान अन्तर होता है। जैन धर्म मणि के समान है और अन्य धर्म कांच के समान। यद्यपि सामान्य व्यक्तिको कांच और मणी समान मालूम होते हैं, परन्तु वास्तव में दोनों में महान् अन्तर है। आत्म धर्म को छोड़ने के कारण ही तो जीव कुगतियों में भ्रमण कर रहा है। इस आत्म धर्म का मिलना सहज नहीं है, कर्म पटल हट जाता है तथा काल लब्धि आ जाती है तभी इस धर्म की प्राप्ति होती है। इन बेचारों को इस धर्म की महत्ता का क्या पता है, ये तो विषयी कीड़े हैं इनको तो विषय पुष्ट करने वाला धर्म ही रुचिकर होगा।

यज्ञदत्ता—अरे ! पाखण्ड को छोड़ और घर को चल। स्त्री-पुत्र को छोड़कर यह मार्ग क्यों ग्रहण किया है। निठल्ले होने के लिये ही यह दीक्षा ली है। कमाने से छुट्टी मिल जायगी, और खाने को मुफ्त में मिलता ही रहेगा। यदि तुम्हें यह मार्ग ग्रहण करना था तो विवाह क्यों किया ? अब तो घर चलना पड़ेगा। इतना कहकर उसने सोमदत्त का

हाथ पकड़ लिया और घसीटना आरम्भ किया। अभी तक सोमदत्त मौन था। वह मौन रहने में ही अपना कल्याण समझता था। उनके द्वारा दिये गये उपसर्गों को शान्तिपूर्वक सहन करने लगा। वे लोग उसका पैर पकड़ कर खींचने लगे, सगोत्री उसके कान पकड़कर खींचने लगे; इस प्रकार जैसे बन सका लोग उसे कष्ट पहुँचाने लगे।

सोमदत्त ने उपसर्ग दूर होने तक संन्यास ले लिया तथा चारों प्रकार के आहार का त्याग कर आत्म चिन्तन में लीन हो गया।

जब सोमदत्त के कुटुम्बियों ने देखा कि यह किसी भी प्रकार से दीक्षा छोड़ने को तैयार नहीं है तथा लाख उपाय करने पर भी यह व्रत से विचलित नहीं हो सकता है तो उन लोगों ने घर चलने का निश्चय किया। सब मिल-कर विचार करने लगे—अब यहां रहने से कोई लाभ नहीं। इसका मस्तिष्क विकृत हो गया है। इतना पढ़ा लिखा होकर भी हमारी बातें नहीं मान रहा है, अतः अब इसे यहीं छोड़कर चलना चाहिये। यदि इसमें समझ आ जायगी तो यह अपने आप ही दो-चार दिन में चला आवेगा। ज्यादा तंग करना भी ठीक नहीं है। जितना इसे कहा जा रहा है, उतना ही यह कड़ा होता जा रहा है। इसने मौन ले लिया है, एक भी वचन नहीं कह रहा है अतः अब घर चलना ही ठीक है।

सब लोग घर को चलने लगे। यज्ञदत्ता को महान् क्रोध था, उसने क्रोध के आवेश में आकर अपने नवजात शिशु को सोमदत्त के चरणों में डाल दिया तथा बड़बड़ाने लगी—इस भाग्यहीन के कारण ही इनकी यह अवस्था हुई है न मालूम यह किस कुघड़ी में गर्भ में आया था जिससे इसने मेरी बुद्धि बिगाड़ दी। यदि मैं आम खाने की बात नहीं कहती तो इनकी यह अवस्था नहीं होती। इस प्रकार बच्चे को वहीं फेंक कर वह अपने घर चली गयी बच्चा मुनि के चरणों में आनन्दित होने लगा।

इस भरत क्षेत्र के विजयार्द्ध के दक्षिण भाग में अमरावती नाम का नगर है। इस नगर में शम्भू नाम का विद्याधर राज्य करता था, इसकी महादेवी नाम की पत्नी थी। इनके दो पुत्र थे—भास्करदेव और सुन्दरदेव। दोनों शूरवीर थे। रूप और गुणों में लक्ष्मी और सरस्वती को तिरस्कृत करने वाली इनकी सुदेवी नाम की बहन थी। कनकपुर के राजा विमलवाहन के साथ सुदेवी का पाणिग्रहण किया गया था।

शम्भू विद्याधर को नाना भोग भोगते हुए संसार से वैराग्य हो गया, जिससे उसने अपने पुत्र भास्करदेव को राज्य दे दिया और स्वयं आत्मकल्याण के लिये चल दिया। भोग और ऐश्वर्य को तृण के समान त्याग कर सुप्रभ नाम के आचार्य के पास जिनदीक्षा लेकर तपस्या करने लगा।

मन्दरदेव ने अपनी विद्या के प्रभाव से भास्करदेव से राज्य छीन लिया, जिससे वह चिन्तित रहने लगा। मन्दरदेव ने राज्य ही नहीं छीना, बल्कि अपने भाई को राज्य से निकाल भी दिया, जिससे वह कनकपुर में अपने बहनोई के यहां चला गया। पवित्र जैनधर्म की आराधना करते हुए भास्करदेव अपना समय बिताने लगा। एक दिन उसने पर्वोपवास किया और भरतक्षेत्र के चैत्यालय और मुनियों के दर्शन करने के लिये चला। नाभिगिरि पर्वत पर सोमदत्त मुनि के दर्शन करने आया, पास में सूर्य के समान तेजस्वी बालक को देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, हृदय में अद्भुत आनन्द उत्पन्न हुआ। उसने उस बच्चे को गोद में उठा लिया और प्यार करने लगा।

मुनिराज की पूजा करने के पश्चात् भास्करदेव उस पुत्र को लेकर घर चला आया और अपनी स्त्री से कहने लगा—प्रिये! तुम्हें सन्तान नहीं है, अतः कामदेव के समान इस सुन्दर पुत्र को प्राप्त कर अपने को सन्तानवती समझो दूसरे दिन उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि वनमाला गूढ़ गर्भिणी थी आज उसे पुत्र की प्राप्ति हुई है। पुत्रोत्सव धूम-धाम से मनाया गया, भगवान की पूजा की गयी। शिशु का नामकरण संस्कार सम्पन्न किया गया और उसका नाम वज्र कुमार रखा। पांच वर्ष के उपरान्त उपाध्याय के पास विद्याध्ययन के लिये भेजा गया। थोड़े ही समय में यह कुमार अक्षर विद्या, अंक विद्या, व्याकरण, कोष्ट आदि विभिन्न शास्त्रों में पारंगत हो गया। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात, कहावत के अनुसार यह बचपन से ही प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि था। अपने रूप और गुणों से सभी व्यक्तियों को मोहित कर लिया था, समस्त विद्याओं में पारंगत होकर घर आया और माता पिता को आनन्दित करता हुआ रहने लगा। माता-पिता पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे, उनके जीवन में पुत्र ने नवीनता ला दी थी।

जब वज्र कुमार वयस्क हुआ तो माता ने सुवेदी की कन्या इन्दुमती के साथ उसका विवाह कर देने का निश्चय किया। धूम धाम से शुभ मुहूर्त्त में कुमार का विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया। दोनों में अत्यन्त स्नेह था। पति-पत्नी आमोद-प्रमोद पूर्वक अपना जीवन बिताने लगे।

वज्र कुमार एक दिन विजयार्द्ध के चैत्यालयों के दर्शन करने जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि एक विद्याधरी किसी विद्या कि सिद्धी में लगी है। एक अजगर सांप उसको निगल रहा है, केवल सिर शेष है बाकी भाग वह उदरस्थ किये हुए है, वज्रकुमार ने दया कर उस विद्याधरी की रक्षा की और अपनी प्रतिविद्या के द्वारा उस विघ्न रूप अजगर को वहां से हटाया। अपना विघ्न दूर होने पर उस विद्याधरी ने वज्रकुमार की खूब प्रशंसा की और पूजा

स्तुति की। जब नमस्कार कर जाने को प्रस्तुत हुई तो वज्रकुमार ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? कौनसी विद्या सिद्ध कर रही हो ?

विद्याधरी—वरचन्द्रपुर नाम के नगर में सुर सदृश गरुड़ नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी पट्टरानी का नाम वश्रिमान्वती था। इसके उदर से पवनवेगा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वही पवनेवगा मैं बहूरूपिणी नाम की विद्या सिद्ध करने आयी हूं। मैं विद्या साधन कर रही थी कि इतनें में यह विघ्न उपस्थित हुआ। मैं आज आपकी कृपा से बच गयी, आपकी आजन्म कृतज्ञ रहूंगी।

इस प्रकार अपना समस्त वृत्तान्त कह कर उसने कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिऐ वज्रकुमार को प्रज्ञप्ति विद्या दे दी।

वज्रकुमार—विद्याधरी देवी ! यह विद्या तो विद्याधरों को हो सकती है। आपको स्त्री पर्याय में यह विद्या कैसे सिद्ध हो गयी ?

पवनवेगा—संजयन्त नाम के आचार्य विदेह क्षेत्र में उग्रोग्र तपस्या कर रहे थे। उनके पूर्वभव का शत्रु विद्युत्वेग विद्याधर विद्या विनोद के लिये इधर-उधर भ्रमण करता हुआ वहां आया और मुनि को देखते ही क्रोधावेश में आ गया। वह मुनिराज को उठाकर आकाश में ले गया और उसने उन्हें हरिवती, गजावती पुष्पावती कमलावती और चंडबेगा इन पांच नदियों के संगम पर पटक दिया ! संजयन्त मुनि ने क्षमा धारण की और संन्यास ले लिया; जिससे उन्हें तुरन्त केवल ज्ञान प्राप्त हो गया और शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा कर्माटवी को जला कर भस्म किया। निर्वाण प्राप्त हो जाने पर देवों ने उत्सव किया तथा उनके गुणों की स्तुति की।

धरणेन्द्र को उस विद्याधर पर तीव्र क्रोध आया। उसने विद्याधर से कहा—तुमने सुमेरु के समान धैर्यशाली मुनिराज को कष्ट पहुँचाया है, अतः कुटुम्ब सहित तुम्हें समुद्र में डुबा देंगे। धरणेन्द्र ने उसे अभिशाप दिया कि जब तक यहां संजयन्त मुनि की पूजा नहीं की जायगी, किसी को विद्या सिद्ध नहीं हो सकती है। इसी कारण यहां विघ्न आ गया है, यह अजगर विद्युतवेग विद्याधर का जीव था, जिसको आपने अभी मारा है। मैंने मुनिराज की पूजा कर इस विद्या को सिद्ध किया है।

वज्रकुमार इस प्रकार विद्या लेकर कनकपुर में आ गया। एक दिन वह अपने पिता भास्करदेव से कहने लगा-आप विद्याधर होकर इस भूमिगोचरी राजा के आधीन क्यों हो गये हैं ? भास्करदेव ने अपना समस्त वृतान्त पुत्र से कहा-वज्रकुमार ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अपने पिता का राज्य लड़कर नहीं ले लूंगा, तब तक मेरे समस्त भोगोपभोग की वस्तुओं का त्याग है। इस प्रकार सिंह गर्जना करते हुए उसने अपनी सेना तैयार की और अमरावतीपुर पर आक्रमण कर दिया। मन्दरदेव ने भी अपनी सेना को सजाया और डटकर सामना किया। दोनों ने वाणवर्षा की और आपस में एक दूसरे के वाणों का काट करने लगे। वज्रकुमार ने समुद्र वाण चलाया, मन्दरदेव ने बाड़वाग्नि वाण द्वारा उसका निराकरण कर दिया। मन्दरदेव ने सर्प वाण चलाया, वज्रकुमार ने उसका गरुड़ वाण द्वारा निराकरण किया। वज्रकुमार ने मेघवाण चलाया, मन्दरदेव ने वायुवाण चलाकर उसे छिन्न भिन्न कर दिया। मन्दरदेव ने पर्वत वाण चलाया, वज्रकुमार ने वज्रवाण द्वारा उसका निवारण किया। मन्दरदेव ने तमोवाण चलाकर सर्वत्र अंधकार कर दिया, किन्तु वज्रकुमार ने तुरन्त सूर्यवाण द्वारा उसका प्रतिकार किया। इस प्रकार वाण चलाते-चलाते जब मन्दरदेव के समस्त वाण समाप्त हो गये तो वह घबड़ा गया और युद्धभूमि छोड़कर भागने लगा।

विजय का डंका बजाता हुआ वज्रकुमार अपने माता पिता और अन्य कुटुम्बियों के साथ अमरावती में रहने लगा। वह विद्याधरों का राजा बन गया। जिनेन्द्रपूजा, अभिषेक, आहारदान, औषधदान, अभयदान और शास्त्रदान कर पुण्यार्जन करने लगा।

कुछ दिन के उपरान्त चन्द्रपुर के राजा गरुड़वेग ने अपनी कन्या पवनवेगा के विवाह के लिये स्वयंवर की तैयारियां की। जगह-जगह निमन्त्रण भेजे गये। वज्रकुमार को भी स्वयंवर में शामिल होने के लिये निमन्त्रण मिला। इस निमन्त्रण को पाकर वज्रकुमार को महान् प्रसन्नता हुई और उसने दूत को भेंट दी। पश्चात् विद्याधरों के साथ उसने चन्द्रपुर के लिये प्रस्थान किया और वहां जाकर एक भव्य भवन में ठहर गया। अगले दिन स्वयंवर मण्डप में सभी विद्याधरों के साथ वज्रकुमार भी पहुँचा और अपने स्थान पर आनन्द सहित बैठ गया। कमलमुखी पवनवेगा ने खूब शृंगार किया और सजकर वह अपनी सखियों के साथ स्वयंवर भूमि में पधारी। समस्त विद्याधर कुमारों को देखते देखते वह वज्रकुमार के पास पहुँची और उन्हें पहचान कर अपना उपकारी समझकर माला उनके गले में डाल दी। अन्यविद्याधर उदास होकर अपने-अपने घर चले गये, सभी वज्रकुमार के भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

विवाह करने के उपरान्त वज्रकुमार अमरावती में आ गया । कामदेव के समान सुन्दर, इन्द्र और कुवेर के समान वैभवशाली हो राज्य का उपभोग करने लगा। सभी विद्याधर उससे प्रसन्न थे। अनेक विद्याधरों ने अपनी कन्याएं उसे भेंट दे दी थीं। सुन्दरी, अनंगमाला, विजया, अनंगसुन्दरी, सुप्रभा, विद्युतवेगा, विजयावती, रत्नसुन्दरी, पवनवेगा रानियां प्रधान थीं। हाथी, घोड़े रथ यात्रा आदि के समूहों सहित विद्याधर उसकी सभा में नितप्रति आते रहते थे।

एक दिन विद्याधर रमणीयों से बात चीत के सिलसिले में मणिमाला ने कहा की आप लोग बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं। मैं तो निस्सन्तान हूं, मुझे जीवन में सन्तान का अरमान सदा रह गया। इस प्रकार की चर्चा पवनवेगा ने सुन ली और रात को पति से कहने लगी—स्वामिन् आपकी मां ऐसा क्यों कह रही थीं कि मैं निस्सन्तान हूं। कृपाकर आप इस रहस्य को बतलाईये, मेरा मन इसे जानने के लिये अत्याधिक उत्सुक है। आपकी वास्तव में माता कौन हैं ?

वज्रकुमार—प्रिये ! मुझे स्वयं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम है । मैं प्रातः माता जी से पूछ कर सारा रहस्य आपको बतला दूंगा। इसे समय आप धैर्य धारण करें, कोई बड़ी समस्या नहीं है। माताजी ने ऐसे ही कुछ कह दिया होगा। मेरा तो ख्याल है कि आपके सुनने में भूल हुई है। माताजी मुझे सदा पुत्र समझती रही हैं, मेरा पालन-पोषण माता-पिता ने पुत्र के ही समान किया है, अतः मुझे तो विश्वास है कि मैं इनका पुत्र हूं। यदि मैं इनका पुत्र नहीं होता तो ये निश्चय ही मेरे साथ ऐसा वात्सल्य व्यवहार नहीं करते। मनुष्य का व्यवहार स्वयं भेद-भाव को प्रकट कर देता है। रक्त का सम्बन्ध जिसके साथ रहता है, उसी से मनुष्य अधिक स्नेह करता है।

वज्रकुमार के इन वचनों से पवनवेगा को कुछ सान्त्वना मिली, परन्तु उसकी जिज्ञासा पूरी नहीं हुई; अतः प्रातःकाल पुनः पति से कहा—स्वामी' आज माताजी से कल की बात का रहस्य अवश्य पूछियेगा ?

वज्रकुमार—वन्दनीय माता ! आपके आशीर्वाद से राज्य का कार्य ठीक चल रहा है। मेरे मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। आशा है आप उसे अवश्य पूरा करेंगी। आज तक आपने मेरी किसी भी बात को टाला नहीं है। अतः आप उसे अवश्य पूरा करेंगी। आप वात्सल्यमयी मां हैं, आपका दुग्ध पान कर मेरा शरीर पुष्ट हुआ है। अतः चरणों में मेरी नम्र प्रार्थना है। कृपया यह बतलाने का कष्ट करें कि मैं वास्तव में आपका पुत्र हूं या नहीं। मेरे असली माता—पिता कौन हैं ?

मणिमाला—पुत्र ! आज कैसा प्रश्न तुम करते हो ? अरे तू मेरा पुत्र नहीं है, तो किसका है । ऐसी कौनसी नारी है जो ऐसा पुत्र उत्पन्न कर सकेगी । चल हट बेटा अपना काम कर, व्यर्थ की बातों में क्या रखा है । जिसके चरणों में विद्याधर राजा नत मस्तक होते हैं, वह मेरा पुत्र नहीं तो और किसका होगा ।

वज्रकुमार—प्यारी मां ! अभी आपने सच्ची बात नहीं बतलायी है । कल आप ऐसा क्यों कह रही थी, कि मैं दुर्भाग्यशालिनी हूं, मेरे सन्तान नहीं । जब मैं आपका पुत्र हूं तो फिर आपने ऐसे बचन क्यों कहे । मां ! सत्य छिपाने से नहीं छिपता है । आप वास्तविक बात बतलाने का कष्ट करें । मुझे आपकी बात से कष्ट नहीं होगा । मेरी वास्तविक माता कोई क्यों नहीं रही हो ? परन्तु अब तो आप ही माता–पिता हैं । आपको छोड़कर मैं अन्यत्र नहीं जा सकता हूं ।

मणिमाला—वत्स ! सत्य तो यह है कि तुम बचपन में एक मुनिराज के चरणों में लोटते हुए मिले । तुम्हारी माता क्रोध में आकर तुम्हें मुनि के चरणों में फेंक गयी थी । तुम्हारे पिता सोमदत्त ने जिनदीक्षा ले ली थी, जिससे घर के लोगों को बहुत दुःख हुआ । सभी उनको मनाने आये, नाना प्रकार से समझाया और घर चलने का अनुरोध किया जब उन्होंने किसी की बात का कुछ भी जवाब नहीं दिया तो क्रोध में आकर वहीं तुमको छोड़ तुम्हारी माता चली गयी । पश्चात् मेरे पतिदेव तुम को यहां ले आये और तुम्हारा पालन–पोषण करने लगे । हमलोगों के कोई सन्तान नहीं थी, जिससे तुमको अपनी सन्तान मानकर पाला । योग्य होकर तुमने जो कार्य किये वे तुम से छिपे नहीं हैं ।

बज्रकुमार—माता जी ! आप लोगों ने मेरा पालन–पोषण कर बड़ा उपकार किया । यह शरीर आपका ही दिया हुआ है । अब तो मेरे माता–पिता आप ही हैं, जीवन में अन्य को माता–पिता नहीं मान सकता हूं । आपका स्नेह मेरे ऊपर अपार है, आपके वात्सल्य के कारण ही मेरी उन्नति हो रही है । परन्तु एक बात है कि मुझे इस संसार से अब घृणा हो गयी है । स्वार्थी और मायावी संसार को जितनी जल्दी हो सके छोड़ देना श्रेष्ठ है । इसमें सभी लोग स्वार्थ के साथी हैं । जब तक पति कमाकर लाता है स्त्री उससे प्यार करती है, माता उसे अपना पुत्र समझती है, कुटुम्बी उसे अपना मानते हैं । किन्तु जब वही कमाना बन्द कर देता है तो पत्नी उससे घृणा करने लगती है. माता उसे निखट्टू समझती है । जान–पहचान के लोग उसका साथ नहीं देते हैं, उसे देखते ही किनारा काट कर निकल जाते हैं । सभी कोई अपने अपने स्वार्थ के कारण स्नेह करते हैं, स्वार्थ निकल जाने पर कोई किसीको नहीं पूछता है ।

वज्रकुमार एकान्त में बैठकर सोचने लगा—स्त्रियों का समुदाय इन्द्रजाल के समान मायावी है, इन्द्रियसुख बिजली की चमक के समान क्षणिक हैं तथा कुत्ते की पूंछ के समान वक्र हैं। शरीर, धन, इन्द्रियां, स्त्री आदि के मोह में पड़ कर धर्म रूपी स्नेह को छोड़ यह जीव दुःख उठा रहा है। अभी तक मद और अज्ञानता के कारण मैंने आत्म-कल्याण के लिये कुछ नहीं किया, परन्तु अब शीघ्र ही इसके लिये मुझे तैयार हो जाना चाहिये। संसार, शरीर और विषयों के सम्बन्ध में जितना ही वह विचार करता था, उसे उतनी ही विरक्ति होती जाती थी उसे अब वह घर, रमणियां और भोग विलास काटने को दौड़ते थे। उसने माता पिता को बुलाकर कहा-आपका उपकार मेरे ऊपर अनन्त हैं। संसार से अब मुझे विरक्ति हो गयी है, अतः मैं अब तपस्या करने के लिये जंगल में जाना चाहता हूं। मैंने यह अनुभव कर देख लिया है कि जिनदीक्षा से बढ़ कर और कोई भी वस्तु आत्मा का उद्धार करने वाली नहीं है। आत्मा का सच्चा कल्याण मुनिदीक्षा ग्रहण करने पर ही हो सकता है। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, जिससे मैं निर्द्वन्द होकर आत्म कल्याण कर सकूं। पहले तो माता-पिता ने इधर-उधर टालने का बहुत प्रयत्न किया तथा वज्रकुमार को नाना उपायों से समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब देखा कि उसके हृदय में दीक्षा लेने की तीव्र लालसा है तो उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी।

वज्रकुमार दक्षिण मथुरा में सोमदत्त भट्टारक के पास पहुँचा और उनसे दीक्षा की याचना की। मणिमाला ने मुनिराज से कहा—प्रभो ! मेरा यह पुत्र इतनी अल्प वय में विरक्त हो रहा है, आप इसे समझाइये। अभी इसके भोग-विलास करने के दिन हैं, परन्तु यह हमारे समझाने से नहीं मानता है। आप परम हितैषी हैं, अतः इसको समझा कर घर वापस कर दीजिये।

मुनिराज—यमराज, बालक, युवक और वृद्ध को नहीं देखता। समय पूरा होने पर उठाकर ले जाता है, अतः तपस्या के लिये अवस्था की आवश्यकता नहीं है, किन्तु संसार से वास्तविक विरक्ति चाहिये। यदि वास्तविक विरक्ति है तो किसी भी आयु का व्यक्ति अपना कल्याण कर लेता है। आत्म कल्याण ही श्रेष्ठ है, इसी से व्यक्ति को सुख मिल सकता है।

इस प्रकार सबको समझा-बुझा कर उन्होंने वज्रकुमार को जिनदीक्षा दे दी भास्करदेव और मणिमाला ने भी अणुव्रत स्वीकार किये। विद्याधर सोमदत्त भट्टारक और वज्रकुमार को नमस्कार कर अपने-अपने घर चले गये।

वज्रकुमार अपने संयम को बढ़ाता हुआ तप करने लगा । संसार से भयभीत हो बाह्य और अभ्यन्तर तप को बढ़ाने लगा, थोड़े दिनों में इन्हें चारण ऋद्धि की प्राप्ति हो गयी ।

दक्षिण मथुरा में पूतवाहन राजा की पट्टरानी सम्यग्दृष्टि थी । यह पच्चीस दोष रहित, अष्टांग सहित सम्यक्त्व का पालन करती थी । इसका नाम ओहलीदेवी था, यह समस्त गुणों से युक्त थी । चांदनी के समान उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी । उसका अद्भुत रूप लावण्य था, शरीर से चम्पा की सुगन्ध निकलती थी । भगवान् की भक्ति और दान देने में प्रवीण थी । इसी नगरी में समुद्रदत्त नाम का सेठ था, इसकी स्त्री का नाम धनदत्ता था । दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे । समय पाकर धनदत्ता को गर्भ रहा, थोड़े ही दिनों में उसकी सारी सम्पत्ति विलीन हो गयी । अशुभ कर्म का उदय होने पर सोना भी राख हो जाता है । जो सेठ कोट्याधीश था, वह छः महिने में भिक्षाटन करने लगा । व्यापार में घाटा होने से सम्पत्ति का क्षय हो गया । जब धनदत्ता के गर्भ से कन्या का जन्म हुआ तो पिता को महान् कष्ट हुआ और पुत्री की उत्पत्ति के तीसरे ही दिन वह संसार से चल बसा । पति की मृत्यु के छः महीने उपरान्त धनदत्ता भी मृत्यु को प्राप्त हुई । माता पिता की मृत्यु के उपरान्त अनाथ बालिका दर दर की भिखारिणी बन गयी । जब वह भूख से व्याकुल रहने लगी तो गलियों में पड़े झूठे अन्न के दाने चुन चुन कर खाने लगी । उसके दुःखी जीवन को देखकर करुणा को भी दया आती थी ।

जिनागम के ज्ञाता, पाप रूपी वन को जलाने वाले, सुमेरु के समान धैर्यशाली, अभिनन्दन और नन्दन नाम के दो मुनि चर्या करते हुए रास्ते से जा रहे थे । जब दोनों मुनिराजों की दृष्टि कूड़े में पड़े अन्न को खाती हुई लड़की पर पड़ी तो नन्दन मुनि कहने लगे कि संसार अत्यन्त दुःख का घर है, देखो कैसी होनहार कन्या है, परन्तु भोजन के अभाव में भूख से मर रही है । उनके इन वचनों को सुनकर अभिनन्दन मुनि कहने लगे—यही कन्या पूतवाहन राजा की पट्टरानी होगी । मुनिराज के इन वचनों को बौद्धधर्मानुयायी रक्ताम्बर ने सुन लिया, उसने मन में विचार किया कि ऋषि के वचन अन्यथा नहीं हो सकते हैं, अतः इस कन्या का पालन करना चाहिये । इसके कारण अपनी भी उन्नति हो जायगी । इस तरह विचार कर वह उसे अपने घर ले गया और उसका नाम बुद्धदासी रखा । बुद्धदासी ने युवावस्था में रति से बढ़ कर सौन्दर्य प्राप्त किया, तिलोत्तमा और स्वर्ग की अप्सराएं भी उसके समान सुन्दरी नहीं हो सकती ।

एक दिन बुद्धदासी श्रृंगार कर नन्दन बगीचे में झूला झूल रही थी। पूतवाहन राजा की सवारी उसी रास्ते से निकली, वह इसके सौन्दर्य को देखते ही मुग्ध हो गया। अपना तन-मन बुद्धदासी के ऊपर न्यौछावर कर दिया। अतः घर आकर राजा ने रक्ताम्बर को बुलवाया और उससे बुद्धदासी की याचना की। रक्ताम्बर ने बुद्धदासी का विवाह राजा के साथ कर दिया। राजा भी उसके साथ आनन्द से रहने लगा। विषय भोगों में फंसकर राजकाज भी छोड़ दिया तथा अन्य रानियों से भी विमुख हो गया

इधर ओहिली देवी का फाल्गुण मास में अष्टान्हिका पर्व आ गया। सर्वदा के समान नन्दीश्वरी पर्व में आठ दिन तक व्रतोपवास किया। पूर्णिमा को भगवान का रथ-विहार करने का विचार स्थिर किया। राजा बुद्धदासी के आधीन था, अतः उसके कहने के अनुसार नगर में ढिढोरा पिटवा दिया कि पहले बुद्ध का रथ निकलेगा तथा धूमधाम से बुद्ध देव की पूजा की जायगी, पीछे जैनरथ जायगा और जिनेन्द्र भगवान् की पूजा भी पीछे की जायगी। राजाज्ञा के अनुसार बुद्ध का रथ निकालने की समस्त तैयारी हो गयी।

ओहिली देवी सोच-विचार में पड़ गयी। उसे यह धर्म का अपमान प्रतीत हुआ कि बुद्धरथ धूमधाम से पहले निकाला जाय और जिनेन्द्र प्रभु की सवारी पीछे निकाली जाय। उसने मन में विचार किया की राजा से कुछ कहना तो व्यर्थ है; क्योंकि वह दुष्टा बुद्धदासी के वश में है। इसी कारण राजा सारा धर्म कर्म छोड़ बैठा है, अतः जब तक जैनरथ पहले नहीं निकलेगा, तब तक के लिये सभी प्रकार के अन्न-पानी का त्याग करती हूं। बहुत सोच विचार कर वह सोमदत्त आचार्य के पास गयी और अपने धर्म का अपमान उनसे कहा और प्रतिज्ञा की कि जब तक बौद्धरथ से पहले जैनरथ नहीं निकलेगा अन्न-पानी का त्याग है। धर्म का अपमान सहन करने की शक्ति मुझ में नहीं है, आप कृपा कर कोई उपाय बतलाइये।

सोमदत्त—आप कनकपुर में वज्रकुमार मुनि के पास जाइये, वहां आप का कार्य अवश्य हो जायगा। वज्रकुमार अनेक विद्याओं से विभूषित हैं, उन्हें चारण ऋद्धि भी प्राप्त है।

रानी किसी तरह कनकपुर पहुँची और वज्रकुमार से सारा वृत्तान्त कहा तथा सोमदत्त आचार्य के पास की गयी अपनी प्रतिज्ञा को भी बतलाया।

रानी की बातें सुनकर वज्रकुमार विचारने लगे कि साधर्मी के साथ वात्सल्य करना चाहिये। वात्सल्य भाव

कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने वाला है, इस लोक और परलोक में कल्याण करने वाला है। जो मात्सर्य छोड़कर चतुर्विधि संघ के साथ प्रेम करता है, वह धन्य है। प्रेम भाव रखना जीवनोत्थान में बड़ा सहायक होता है। जो व्यक्ति साधर्मियों के साथ प्रेम नहीं करता है, ईर्षा या द्वेषवश उनसे मन मुटाव रखता है, वह धर्म के रहस्य से अपरिचित है। इस प्रकार विचार कर वह कहने लगे—

हे दिव्यगुणों की धारणी, भव्यजनों को आनन्द देने वाली ! कल हम विद्याधरों सहित आकर जिनेन्द्र भगवान के रथ को चमत्कार सहित निकालेंगे। आपकी पूजामें कोई बाधा नहीं आ सकती है। आप निश्चिन्त होकर घर जाइये। मुनि के इन वचनों को सुनकर रानी के मन में अपार प्रसन्नता हुई और वह घर लौट आई।

वज्रकुमार मुनि चारण ऋद्धि द्वारा आकाश मार्ग से चलकर अमरावती में आये। जब भास्करदेव ने उन्हें आते देखा तो वह सिंहासन से उतर गया और मणिमाला सहित प्रदक्षिणा दी और आसन पर बैठाया।

भास्करदेव—मुनिवर क्या आज्ञा है ? मैं धन्य हो गया, आपने यहां पधार कर अपने चरणों से मेरा घर पवित्र कर दिया।

वज्रकुमार मुनि —दक्षिण मथुरा में ओहिली महादेवी की पूजा में विघ्न हो गया है, अतः उस विघ्न को दूर करने के लिये समस्त विद्याधरों को मेरे साथ भेजिये।

मुनि के आदेशानुसार विद्याधरों की सेना आकाश मार्ग से जाने लगी और कुछ ही समय में भास्करदेव दक्षिण मथुरा में पहुँच कर रानी ओहिली देवी की पूजा में सहायता करने लगा। नाना प्रकार के वाद्य बजने लगे। विद्याधरों की स्त्री आकाश में नृत्य, गायन और वादन करने लगीं, जिससे उत्सव का सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया।

विद्याधरों के समूह को आकाश में देखकर दक्षिण मथुरा के निवासी कहने लगे कि पूजा-उत्सव को देखने के लिये देव आये हैं ? बुद्धधर्मानुयायी कहते थे कि बुद्धदासी का रथ निकालने के लिये तथा उसका उत्सव सानन्द सम्पन्न कराने के लिये देव आये हैं। प्रधान मन्त्री, दण्डनायक, सेनापति आदि भी कहने लगे कि बौद्ध पूजा के लिये देव आये हैं।

आकाश से आवाज हुई कि अनादिकाल से चली आई जैन-पूजा को छोड़ कर बुद्ध-पूजा कैसे होती है ? आज हम देखते हैं। यदि अपनी भलाई चाहते हो तो सावधान हो जाओ, भगवान जिनेन्द्र की पूजा करो। आकाश से इस ध्वनि को सुनकर सभी थर-थर कांपने लगे, भय से आतंकित हो गये। नगर के लोग राजा की आलोचना करने

लगे कि राजा परंपरा से चली आयी जैन-पूजा को छोड़ कर बुद्धदासी के फेर में पड़ बुद्ध-पूजा करना चाहता है, इसीसे क्रोधित होकर देव आये हैं। राजा ने ओहिली रानी का अपमान कर बुद्धदासी को पट्टरानी का पद दे दिया है, इसीका यह सब परिणाम है।

नगरवासी कहने लगे कि पाण्डव नरेश की बुद्धि बिगड़ गयी है, इसी से वह बुद्धदासी के कहने में है। इसी से नगर को आज देवताओं का कोपभाजन बनाना पड़ रहा है। रानी ओहिली की दृढ़ता, सम्यक्त्व और पूजा-भक्ति देखकर ही नागेन्द्र धरणेन्द्र और मुनि आये हैं।

ओहिली रानी ने आकर वज्रकुमार मुनि की पूजा की, नगरवासी भी प्रभावित होकर एकत्रित हुए और उन्होंने भी मुनिवर की पूजा-भक्ति की। दूसरे दिन जैन मन्दिरों को खूब सजाया गया। धूप घट रखे गये। चन्दन कपूर की सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त हो गयी। भेरी, दुन्दुभि, घंटा आदि बाजे बज रहे थे, गन्धर्व गाना गा रहे थे। हाथी, घोड़े, स्त्री, पुरुष आदि की भीड़ एकत्रित हो रही थी। सर्वत्र जय-जयकार सुनाई पड़ रहा था। सोलह मंजिल का भव्य रथ बात की बात में तैयार किया गया, इसके चारों ओर विद्याधर विमान लिये उपस्थित थे। उस रथ के चारों ओर विद्याधर के विमान ऐसे प्रतीत होते थे, मानों स्वर्ण के विमान के चारों ओर चांदी के विमान चक्कर लगा रहे हों। पुष्प वृष्टि हो रही थी। स्वर्ण चांदी के दण्डों को लेकर विद्याधर घूम रहे थे। भास्करदेव के आदेशानुसार रथ की रक्षा के लिये अनेक विद्याधर प्रस्तुत थे। ध्वजाएं आकाश को छू रही थीं, गायन आकाश से सुनाई पड़ रहा था।

वज्रकुमार और सोमदत्त दोनों मुनिराज वहां पर रहे और धर्म कार्य को सानन्द सम्पन्न करने के लिये प्रयत्न करते रहे। आठ दिन तक खूब धूम-धाम से पूजा पाठ होता रहा। प्रतिदिन अष्टान्हिका विधान किया जाता था। नगर के सहस्रों नर-नारी विधान में शामिल होते थे। मध्यान्ह में श्रीजी की सवारी निकलती थी। गाजे बाजे के साथ अपार जन-समूह रथोत्सव में शामिल रहता था। भास्करदेव सारा प्रबन्ध इन्द्र के समान सम्पन्न कर रहा था। पूजा के समाप्त हो जाने पर ओहिली देवी ने सूर्याकार जिनस्तूप की वहां स्थापना की। इस स्तूप में वज्रमय अनेक सुन्दर प्रतिमाएं स्थापित की तथा उसके चारों ओर श्रेष्ठ परकोटा बनवा दिया।

धर्म प्रचार के लिये ओहिली देवी ने उत्सव खूब धूम-धाम से सम्पन्न किया । याचकों को दान दिया । चतुर्विध संघ का सत्कार किया, शास्त्र दान दिये और धर्म प्रभावना के कार्य किये । ओहिली देवी की पूजा सम्पन्न कराकर वज्र कुमार मुनि अपने निवास स्थान पर आकर तपस्या करने लगे तथा इस प्रभावना अंग के पालने में जो व्रतपालन में त्रुटि हुई उसका गुरुसे प्रायश्चित्त लिया ।

इस प्रकार गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक से प्रभावना अंग की कथा कही ।

नौंवी कथा समाप्त

दसवीं कथा

चित्त को प्रसन्न करनेवाले, निर्वाण लक्ष्मी को देने में सहायक, अष्टांगपूर्वक जो सम्यग्दर्शन का पालन करता है, वह संसार में धन्य है। कवि लोग भी उस धर्मात्मा की स्तुति कर उसी पद को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

शीघ्र मुक्ति को प्राप्त करने में सहायक अष्टांगपूर्वक सम्यग्दर्शन की कथा सुनने के अनन्तर राजा श्रेणिक विश्वबंध गौतम गणधर से कहने लगा—महाराज मैं अहिंसाणुव्रत की कथा जानना चाहता हूं।

गौतम गणधर—अहिंसा के समान संसार में सुख देने वाली अन्य वस्तु नहीं है। संसार के समस्त जीवों का यह कल्याण करने वाली है। जो इस धर्म का पालन करता है, वह संसार का सबसे बड़ा हितैषी है।

राजा श्रेणिक—प्रभो ! अहिंसा व्रत का लक्षण क्या है और इस व्रत की महत्ता क्या है ?

गौतम स्वामी—राजन् ! प्रमाद के निमित्त से किसी भी प्राणी को मनसा, वाचा और कर्मणा कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ पूर्ण आत्मशुद्धि है। कषाय और रागभाव को घटाना, वासनाओं पर नियन्त्रण करना एवं पवित्र आचरण करना अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। पूर्ण अहिंसा का पालन तो मुनिराज ही कर सकते हैं, किन्तु आंशिक अहिंसा का पालन गृहस्थ करते हैं। गृहस्थों की हिंसा चार प्रकार की होती है—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी गृहस्थ संकल्पी हिंसा का पूर्ण त्याग करता है, शेष तीन प्रकार की हिंसाओं का शक्ति के अनुसार त्याग करता है।

राजा श्रेणिक—प्रभो ! इस व्रत के पालनेवालों को क्या फल मिला और किसने किस प्रकार अहिंसा धर्म का पालन किया, कृपया बिस्तार पूर्वक बतलाने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—अहिंसाव्रत पालन करने से स्वर्ग के पुण्य की समाप्ति होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। अहिंसाणुव्रत पालन करने की कथा निम्न प्रकार है—

इस भरतक्षेत्र में नाना प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त मालव नाम का देश है। इस देश में अमरपुरी के

के समान सुन्दर सभी प्रकार की वस्तुओं से युक्त उज्जैन नाम का नगर था। इस नगर का राजा विश्वन्धर था, इसका राजश्रेष्ठि का नाम गुणपाल था। इन्द्राणी और रतिके रूपको तिरस्कृत करनेवाली धनश्री नाम की उसकी स्त्री थी। यह दिन रात भगवद्भक्ति, पूजा, दान और स्वाध्याय में लीन रहती थी। सेठ भी दान, स्वाध्याय, पूजा आदि गृहस्थ के कर्मों को प्रतिदिन सम्पन्न करता था। इन दोनों के लक्ष्मी और सरस्वती के समान गुणशालिनी कन्या थी, इसका नाम बन्धुश्री रखा गया। माता पिता इस कन्या रत्न के साथ सुख पूर्वक समय को बिताने लगे।

धनश्री ने ब्राह्ममुहूर्त में एक स्वप्न देखा, जिसमें उसे ऐरावत हाथी, चन्द्रमा और सूर्य दिखलायी पड़े। प्रातःकाल उठकर उसने गुणपाल सेठ से उसका फल पूछा।

सेठ—इस स्वप्न का फल मुझे मालूम नहीं है। प्रातःकाल जिनालय में जाकर निमित्त ज्ञानी मुनिराज से इसका फल पूछेगें।

प्रातःकाल नित्यक्रियाओं से निवृत्त हो मुनिराज के पास गये और हाथ जोड़कर उनसे फल पूछा।

मुनिराज—ऐरावत हाथी देखने का फल यह है कि धर्मात्मा, गुरुभक्त और पराक्रमी पुत्र होगा। सूर्य देखने से वह पुत्र जिन शासन की उन्नति करने वाला, कामदेव के समान सुन्दर और तेजस्वी होगा।

पुत्र प्राप्ति समझ दम्पत्ति आनन्दित हो— 'समणो अमोग वयणो' मुनियों के वचन झूठ नहीं होते, कह घर चले आये।

कुछ दिनों के उपरान्त धनश्री को गर्भ रहा। गर्भावस्था में उसे तीर्थाटन, दिव्य जिनालयों के दर्शन, दान-पूजा करने की अभिलषा आदि का दोहद उत्पन्न हुआ। भव्यजीव और सद्धर्म के रक्षण की प्रवृत्ति, श्रावकों के साथ धर्मचर्चा करने के भाव, भगवान के समक्ष बैठकर स्तुति करने की इच्छा, त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा सुनने की बांछा, गायन-वादन सहित भगवान की पूजा में रत रहने की लालसा, त्रिलोकीनाथ का पञ्चामृत अभिषेक करने की इच्छा और शास्त्र सुनने की प्रवृत्ति उसके मन में उत्पन्न हुई। इन नवीन दोहदों के अनुसार वह मृगनयनी सर्वदा धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त रहने लगी।

महाराज भरत ने कैलास पर्वत पर जो ७२ जिनालय बनवाये थे, उनका वह ध्यान करने लगी। उसने अनेक

सोने—चांदी के बिम्बों का निर्माण कराया, उनकी प्रतिष्ठाएं करायीं। मन्दिरों में ध्वजा, घंटा आदि उपकरण चढ़ाये। चतुर्विध संघ को चारों ही प्रकार का दान दिया।

एक दिन विश्वन्धर राजा महावैभव के साथ हाथी पर सवार हो वनक्रीड़ा के लिये जा रहा था। मार्ग में उसने सखियों के साथ क्रीड़ा करते हुए श्रेष्ठि कन्या बन्धुश्री को देखा। इस अनिन्द्य सुन्दरी को देखते ही राजा काम-पीड़ित हो गया। वह सोचने लगा— इस अनुपम सुन्दरी ने अपने रूप से रति, शची एवं देवाङ्गनाओं को भी परास्त कर दिया है। इसे प्राप्त किये बिना जीवित रहना निरर्थक है। संसार के समस्त सुख इस सुन्दरी के अभाव में अपूर्ण हैं। इस प्रकार विचार तरंगों में डूबता—उतराता विश्वन्धर राजा मार्ग में से ही लौट गया। घर आते ही राजा मूर्छित हो गया, उसके मुंह से अस्पष्ट ध्वनि निकलती थी, फेन बहा चला जा रहा था। राजा की इस अवस्था को देखकर सभी लोग चिन्तित थे। नाना प्रकार के उपचार किये जा रहे थे। चन्दन, अगर, कपूर के जल से सिंचन किया जा रहा था; दासियां हवा कर रहीं थीं और चिकित्सक औषधोपचार में संलग्न थे।

जब कुछ समय पश्चात् राजा की चेतना लौटी तो उसने दासी को आज्ञा दी कि तुम तुरन्त गुणपाल सेठ के घर जाओ और उनसे कहो कि राजा तुम्हारी पुत्री बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहता है। अतः शीघ्र ही किसी शुभ मुहूर्त्त में विवाह की तैयारी करनी चाहिये।

दासी—श्रेष्ठिन् ! आपको मैं यह खुश खबरी सुनाती हूं कि राजा विश्वन्धर आपकी पुत्री बन्धुश्री से विवाह करना चाहता है। आपके भाग्य जगे, ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो इस हर्षित करनेवाला समाचार को सुनकर आनन्द से न झूमने लगे। ऐसा सौभाग्य कम ही लोगों को मिलता है, महाराज को दमाद बनाना कम गौरव की बात नहीं है। सचमुच में आप बड़े भाग्यशाली हैं, आपकी कन्या के सौभाग्य की क्या प्रसंसा की जाय ? यह तो अब पट्टरानी बनेगी।

दासी के इन वचनों को सुनकर गुणपाल सेठ सोचने लगा। कन्या सदा साधर्मी को देनी चाहिये, विधर्मी को कन्या देना महापाप है। राजा जैनधर्म नहीं मानता है, अतः चाहे जो कुछ हो मैं इस विधर्मी राजा के यहां अपनी कन्या का विवाह नहीं करूंगा। सांसारिक सुखों के लिये धर्म को बेचा नहीं जा सकता है, धर्म ही संसार से त्रास करनेवाला है, यही जीवन का साथी है, इसके बिना जीना निरर्थक है। जो व्यक्ति प्रलोभनों में आकर अपनी कन्या को विधर्मी को

वे देते हैं, वे वस्तुतः निन्दनीय हैं। अब तक बन्धुश्री ने वीतरागी प्रभु की सेवा, अर्चा की है, दिगम्बर मुनियों को आहार दिया है, रात्रि भोजन और बिना छाने जल को कभी छूआ भी नहीं, अब वह किस प्रकार विधर्मी के यहां जाकर अपने धर्म की रक्षा कर सकेगी ? क्या वासना के लिये धर्म बेचा जा सकता है ? कभी नहीं। मैं अपनी कन्या का जैनधर्मानुयायी के साथ विवाह करूंगा, चाहे वह गरीब ही क्यों न हो ? धन तो सांसारिक वस्तु है, इसका क्या विश्वास ? यह आज है कल नहीं रहेगा। परन्तु धर्म शाश्वतिक वस्तु है, यह आत्मा का साथी है, इसको छोड़कर कोई भी अन्य पदार्थ अपना नहीं है। इस प्रकार विचार-सागर में मग्न हो गुणपाल सेठ व्यथित हो गया। उसने किसी प्रकार मीठे वचनों से समझा कर दासी को लौटा दिया। पश्चात् अपनी पत्नी को बुलाकर उसका अभिप्राय जानने के लिये कहने लगा--

महाप्रतापी राजा विश्वन्धर बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहता है। यह हमारे लिये कितने गौरव की बात है। बन्धुश्री पट्टरानी बनेगी, राजदरबार में हमारा मान होगा। अतः अब जल्दी ही बन्धुश्री के विवाह की तैयारियां करनी चाहिये।

धनश्री—स्वामिन् आज आपको क्या हो गया है ? कहीं आपने नशा तो नहीं कर लिया ? आप अपने मुख से कैसी विचित्र बात कह रहे हैं। राजा विश्वन्धर विधर्मी है, मिथ्यादृष्टि है, उसके साथ में अपनी पुत्री का विवाह कभी नहीं होने दूंगी। वीतरागी प्रभु की सेवा के बिना रूप, लावण्य, धन, वैभव, विद्या, पवित्रता, कुल, आदि सभी व्यर्थ है। मदोन्मत्त हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना या लड़की का गला दबाकर उसकी हत्या कर देना अच्छा है, पर मिथ्यादृष्टि से लड़की का विवाह करना अच्छा नहीं। जो व्यक्ति धर्म की अपेक्षा राज्य को या वैभव को महत्व देते हैं, वे निम्न कोटि के हैं धर्म के सामने राज्य वैभव तुच्छ हैं, इन क्षणिक वस्तुओं की तुलना धर्मके साथ नहीं की जा सकती है। स्वामी, आपने बिना बिचारे ही ऐसा कहा है।

आश्चर्य इस बात का है कि आप जैसे धर्म मर्मज्ञ भी बाह्य ऐश्वर्य को महत्ता देते हैं। अनित्य सुखों को आपने क्यों हितकर समझ लिया ? आप बन्धुश्री को नरक में क्यों डालना चाहते हैं। यह पुत्री बड़ी ही धर्मात्मा है, इसकी प्रवृत्ति सर्वदा कर्मशत्रु को नाश करने की ओर रहती है। यदि मिथ्यादृष्टि के साथ इसका विवाह हो जायगा तो इसका उद्धार होना असंभव होगा। संसार में अनन्तकाल तक भ्रमण करने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से जैनधर्म की प्राप्ति होती है; जो व्यक्ति इस धर्म को पाकर अपना कल्याण नहीं करता, उसके समान मूर्ख कौन हो सकता है ? मिथ्यात्वी राजा

के साथ इस कन्या के विवाह करने का अर्थ है, इसे सिंह को समर्पण कर देना। न मालूम आप सम्पत्ति पर क्यों मुग्ध हो गये हैं ? सासांरिक वैभव प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती, किन्तु सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने में बड़ी कठिनाई होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सम्यग्दृष्टि को संसार के सारे वैभव अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। विभूतियां उसके चरणों की दासी बन जाती हैं। क्षणभंगुर ऐश्वर्य को देखकर जो सम्यग्दर्शन को छोड़ देते हैं, वे ऐसे हैं जैसे कोई कांच के सौन्दर्य को देखकर माणिक्य को छोड़ दे।

मिथ्यादृष्टि जीव का वैभव भी स्थिर नहीं रहता। थोड़े ही दिनों में सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, वह दर दर का भिखारी बनकर खाक छानता फिरता है। स्वामिन् ! वास्तविक बात यह है कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप धर्म ही संसार में सुख देनेवाला है। भोग से मनुष्य को कभी शान्ति नहीं मिल सकती है, शान्ति सदा त्याग में है। आपने आज भोग को प्रधान समझ लिया है, इसी से ऐसे वचन आपके मुंह से निकले हैं। आपने शास्त्र में पढ़ा होगा कि—मूर्खराजा, मेघ की छाया, दोपहर के सूर्य की उष्णता, मूर्ख का धन, देखते-देखते विलीन होने वाले हैं। ऐश्वर्य होने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा होता है मनुष्य सम्यग्दर्शन के धारण करने से, अहिंसा धर्म के पालन करने से और आत्म धर्म में विश्वास करने से। स्वामिन् ! स्थिर सम्पत्ति को छोड़ अस्थिर सम्पत्ति को प्राप्त करनेवाले निर्बुद्धि के समान, पति को छोड़कर और पर विश्वास करनेवाली नारी के समान, पतिव्रता पत्नी को छोड़ वेश्या पर आसक्त होनेवाले विट के समान, निर्मल जल छोड़कर कीचड़ मिश्रित जल पीनेवाले निर्बुद्धि के समान ही सच्चे धर्म को छोड़ कुधर्म का सेवन करना है। कुधर्मी की बुद्धि कभी भी स्थिर नहीं रह सकती है, वह लोक परलोक को कुछ भी नहीं समझता है। अतः इस राजा के साथ में मैं अपनी कन्या का कभी भी विवाह नहीं होने दूंगी।

आप अत्यन्त बुद्धिमान हैं, धर्मात्मा हैं, धर्म के वास्तविक रहस्य को जाननेवाले हैं, फिर आपको यह विभ्रम कैसे हो गया है ? मैं आपको क्या उपदेश दे सकती हूं, आप स्वयं विचार कीजिये कि मेरा कहना कहां तक ठीक है ? आप विशेषज्ञ हैं, लोक और शास्त्र की मर्यादा के जानकार हैं अतएव आपकी आज्ञा ही मेरे लिये शिरोधार्य है। मैंने तो अपने विचार आपके सामने रखे हैं।

गुणपाल—कमलनेत्री ! तुम्हारी बुद्धि और उच्च विचार जानकर मेरे मन में अत्यन्त प्रसन्नता है। मैंने केवल

तुम्हारी परीक्षा ली थी। तुम-सी सती-शिरोमणि को पा, मैं, धन्य हूं। जिस घर में दुष्ट और उदण्ड स्त्री हो, उस घर का विनाश अवश्यम्भावी है। नारी का विचारशील और विवेकी होना अत्यावश्यक है। सम्यग्दृष्टि स्त्री का मिलना बड़े सौभाग्य की बात मानी जाती है। ऐसी देवी से पुरुष का जीवन भी सुधर जाता है, वह कृतकृत्य हो अपने कल्याण में प्रवृत हो जाता है। दुश्चरित्र, धर्म से रहित, कलह-कारिणी, पति आज्ञा का उलंघन करनेवाली, पति के धन को चुराने वाली घर की मान-मर्यादा की परवाह न करने वाली साससुसर तथा कुटुम्बियों की सेवा न करनेवाली ईर्ष्यालु और असहनशील नारी कभी भी सद्गृहणी नहीं कही जा सकती है। पति के समक्ष बढ-बढ़कर बातें करनेवाली स्त्री क्या कुलांगना कही जा सकती है।

सत्य, स्पष्ट और मधुर वचन बोलना नारी के लिये आभूषण है। पति को उचित सलाह देना, कुमार्ग से उसकी रक्षा करना, विपत्ति में पति को धैर्य देना तथा सब प्रकार से पति की सेवा करना नारी का परम कर्त्तव्य है। मैं आज तुम्हारे उच्चादर्श को जानकर बहुत प्रसन्न हूं।

विधर्मी को कन्या देने के पक्ष में मैं कभी नहीं हूं। मेरा विचार सदा ही साधर्मों के साथ कन्या का विवाह कर देने का है। केवल तुम्हारे विचारों का जानने के लिये ही मुझे ऐसा कहना पड़ा था। मैं स्वतन्त्ररूप से तुम्हारे विचारों को जानना चाहता था, अच्छा अब बन्धु श्री को बुलाकर उसका भाव भी जान लेना चाहिये। यदि बन्धु श्री राज्य वैभव को पसन्द करे तो हमें फिर अन्य ढंग से विचार करना होगा। विवाह में कन्या की सलाह लेना भी आवश्यक है। कन्या की भावना को जानकर ही हम लोगों को आगे कुछ करना चाहिये।

गुणपाल ने बन्धु श्री को गोद में बैठा लिया और प्रेम पूर्वक कहने लगा—बेटी, तेरे समान कौन पुण्यात्मा होगा, मालव नरेश ने स्वयं ही तुम्हारे साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि विवाह के बाद तुरत ही तुम्हें पट्टरानी के पद पर अभिषिक्त कर दिया जायगा। समस्त राज्य सुख को तुम भोगोगी। हमारे भी भाग्य जगेंगे, सभी देश हमारा सम्मान करेगा। राजा भी हमको उच्चासन देगा। जब तुम्हारे पुत्र को राज-शासन मिलेगा, तब तो हमारी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जायगी। राजघराने में न पैदा होने पर भी तुम्हारे कारण हमारी राजाओं में गणना होने लगेगी, हमारा हुक्म सभी लोग मानेंगे। बेटी हम धन्य हैं, जिन्होंने तुम जैसी कन्याको प्राप्त किया। आज

हमारे समान कौन सौभाग्यशाली होगा ? किसको ऐसा अवसर मिलता है ? पुण्यात्मा ही ऐसे सुअवसरों को प्राप्त होते हैं ।

बन्धुश्री--पिताजी ! क्षमा करें—आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । आप मुझे सांसारिक वैभव में झुलाना चाहते हैं । आप विधर्मी के साथ विवाह कर मेरे धर्म को नष्ट करना चाहते हैं । मैं, वासना लोलुप नहीं । धर्म को कोड़ी के मोल बेचना बुद्धिमानों का काम नहीं । क्या आप नहीं जानते कि यह जैनधर्म ही सभी प्राणियों का हित करनेवाला है, यही त्रिभुवन में उत्तम, पूज्य और वंदनीय है । देवेन्द्र के द्वारा स्तुत्य लक्ष्मी, त्यागियों के द्वारा प्राप्त की जानेवाली मोक्ष इसी उत्तम धर्म के धारण करने से मिलती हैं, समस्त सुखों को देनेवाला यही धर्म है । यह जैनधर्म बड़े पुण्योदय से प्राप्त होता है, पापी व्यक्ति इसे कभी नहीं पा सकते । क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष, शंका, आदि सभी सम्यग्दर्शन के प्रतिपक्षी हैं । सम्यग्दर्शन के प्रभाव से ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है; मिथ्यात्व से इस जीव का त्रिकाल में भी हित नहीं हो सकता है ।

मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है कि आप हिंसक मिथ्यादृष्टि के साथ मेरा विवाह करने को कैसे तैयार हो गये ? क्या आप मेरा हित नहीं चाहते हैं ? हितैषी होकर आप विधर्मी के साथ मेरा सम्बन्ध करने को तैयार हैं । राज्य वैभव धर्म के समक्ष मेरे लिये खाक हैं । आज आपको अपने सम्मान का ख्याल हो आया है । विधर्मी के साथ विवाह करने की अपेक्षा तो आप मेरी हत्या कर दें, यही श्रेष्ठ है । मैं अहिंसा धर्म का पालन करते हुए अपने प्राण देना भी उचित समझती हूं । हाय राम ! आप पिता होकर मेरा अनिष्ट करने को तैयार हैं । क्या इस समय कोई भी मेरी रक्षा नहीं कर सकेगा । इस प्रकार कहकर बन्धुश्री रोने लगी ।

गुणपाल—धन्य हो पुत्री ! आज मेरा जीवन सफल हो गया । तुम जैसी कन्या को पाकर कृतकृत्य हो गया । बेटी ! यह तुम्हारी परीक्षा थी, तुम इसमें पूर्ण सफल हो गयीं । बेटी, जीवित रहते हुए तुम्हारा बिवाह विधर्मी से कभी नहीं करूंगा । मैं स्वयं समझता हूं कि धर्म से बढ़कर कोई वस्तु नहीं । मिथ्यादर्शन और हिंसा के समान अन्य कुछ भी कष्टकारी नहीं हो सकता है

गुणपाल पुनः सोचने लगा—यहां रहने पर राजा बलपूर्वक मेरी कन्या के साथ विवाह कर लेगा तथा राजाज्ञा का उलंघन करने से दण्ड भी भोगना पड़ेगा । अतः लड़की की रक्षा यहां से चले जाने पर ही की जा सकती

है । इस प्रकार विचार कर वह अपनी गर्भिणी स्त्री को अपने मित्र श्रीदत्त के यहां छोड़ कर तथा अपनी एक अरब आठ करोड़ की सम्पत्ति को छोड़ रात को पुत्री को लेकर नगर छोड़ चल दिया ।

जब राजा को यह समाचार मिला कि गुणपाल अपनी सारी सम्पत्ति को ज्यों का त्यों छोड़ अपनी कन्या के साथ चला गया है तो राजा सोचने लगा कि उस धर्मात्मा ने मुझ पापी को अपनी कन्या देना उचित नहीं समझा, इसी से यहां से चुप-चाप चला गया है । वास्तव में धर्म ही कल्याण करनेवाला है, अहिंसा के समान संसार में कुछ भी सुखदायी नहीं है । मैंने कुधर्म सेवन में अपना जीवन यों ही बिता दिया । इस प्रकार विचार करने से राजा की कुधर्म से रुचि हट गयी और जिनधर्मानुयायी उस सेठ को ढूढ़ने के लिये उसने अपने दूतों को भेजा ।

एक दिन उस नगर में शिवगुप्त नाम के आचार्य अपने त्रिगुप्त नाम के शिष्य के साथ ईर्या समिति पूर्वक आ रहे थे । श्रीदत्त सेठ उन ज्ञाननिधि, पापरूपी पर्वत को नाश करने के लिये वज्र के समान आचार्य को पड़गाह कर घर ले गया । मुनियों को आहार दान देने के उपरान्त घर के सभी लोग एकत्रित हो गये । धनश्री भी वहीं चली आयी । त्रिगुप्त मुनि धनश्री को देखकर आश्चर्य में पड़ गये और गुरु से कहने लगे—प्रभो ! यह भद्रपरिणामी, उत्तम गुणवाली और पतिव्रत में प्रवीण पर घर में आकर क्यों रह रही है ? इसका शरीर निस्तेज हो रहा है ।

गुरु—आयुष्मन् ! संसार में सिवा दुःख के और क्या है ? इस नगर के राजा ने इससे कन्या मांगी थी, गुणपाल सेठ राजा के भय से अपनी कन्या को यहां से लेकर अन्यत्र चला गया है और यह बेचारी यहां रह गयी है । इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह बड़ा प्रभावशाली, यशस्वी राजा और धर्मात्मा होगा ।

मुनिराज की भविष्यवाणी को सुनकर श्रीदत्त को बड़ा कष्ट हुआ । वह सोचने लगा कि इसके पुत्र को किसी भी तरह से मार डालना आवश्यक है । इस प्रकार के विचार का प्रधान कारण यह था कि उस उत्पन्न होनेवाले जीव के साथ श्रीदत्त का पूर्वजन्म का वैर था ।

श्रीदत्त ने धनश्री को एक अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया और समय पर उसे थोड़ा सा भोजन देने लगा । उसका आना जाना भी रोक दिया गया ।

समय पाकर धनश्री को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर श्रीदत्त ने उस बच्चे को एक चाण्डाल को मारने के लिये दे दिया और उसके स्थान पर मृतक शिशु सुला दिया गया ।

जब धनश्री को होश आया और मृतक शिशुको देखा तो विलाप करने लगी। श्रीदत्तने अपने मायावी वचनों द्वारा समझाना शुरु किया—कर्मोदयको कोई नहीं टाल सकता है; तुम्हारे दुर्भाग्य से ही मरा बालक उत्पन्न हुआ है। अब शान्ति और धैर्य धारण करना चाहिये।

चाण्डाल जब श्रीदत्त के द्वारा दिये गये बच्चे को मारने के लिये तैयार हुआ तो उसके शुभ लक्षण, लालरंग, प्रभावशाली ललाट और राजाओं के से चिन्ह देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसकी भावना एकाएक बदल गयी और सोचने लगा—मैं इस निरपराधी शिशु को मारकर क्यों खून से अपने हाथ रगूं। अतः इसे गर्म बालू पर छोड़ देता हूं यह अपने आप मर जायगा।

वह शिशु तप्त बालू पर पड़ा मृत्यु की बाट जोह रहा था, कि इतने में श्रीदत्त सेठ का बहनोई इन्द्रदत्त सेठ उसी रास्ते से आ निकला। वह उस अनाथ सुन्दर शिशु को देखकर बहुत प्रभावित हुआ और उसे उठा लिया। उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः घर लाकर अपनी स्त्री को दे दिया और गूढ़ गर्भ बतलाकर जनसाधारण में पुत्र होने की बात प्रकट करदी। जो नौकर चाकर साथ में थे, उन्हें धन देकर इस बात को प्रकट करने की मनाही कर दी।

जब श्रीदत्त को राधा के पुत्र होने का समाचार मिला, तो वह आश्चर्यान्वित हो बहनोई के घर पहुँचा। पुत्र को देखते ही काठ मार गया, उसे अत्यधिक मानसिक वेदना हुई और उसको मार डालने का उपाय सोचने लगा। पर वह अपने मन के भावों को छुपाकर बोला—मैं बहुत प्रसन्न हूं; आप लोगों को पर्याप्त धन था, किन्तु सन्तान के अभाव में वह धन निरर्थक था। आज राधा को पुत्रवती जानकर मुझे बड़ा हर्ष है, मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली कौन होगा ?

मेरे घर में भी धन की कमी नहीं है, अतः मैं राधे को ले जाकर पुत्रोत्सव धूमधाम से करना चाहता हूं। मैं सब जाती वालों को बतला देना चाहता हूं कि धन की सार्थकता किस बात में है ? इस प्रकार बातें बनाकर राधा को अपने साथ ले गया और गांव में जाकर कपट पूर्वक उत्सव किया। जब रात में राधा सोयी हुई थी तो उसने एक मृत शिशु को उसकी बगल में सुला दिया और उस बच्चे को जल्लादों को मारने के लिये सौंप दिया।

प्रातःकाल राधा ने जब मृत शिशु को देखा तो रोने लगी। राधा के रोने की आवाज को सुनकर श्रीदत्त ने भी कपट पूर्वक रोना शुरु किया। वह रोते हुए कहने लगा—मैं अपनी सारी सम्पत्ति का मालिक इसी बच्चे को बनाना

चाहता था। मेरे कितने बड़े-बड़े अरमान थे, इस बच्चे की मृत्यु हो जाने से सभी धूल में मिल गये। मैं कहीं का न रहा, सिर पर एक अपयश भी पड़ा। लोग कहेंगे कि वह अपने यहां न ले जाता तो बच्चे की मृत्यु नहीं होती। पर हाय, भाग्य की रेखा को कौन मेंट सकता है। इतनी बड़ी उम्र में तो राधा को पुत्र हुआ, वह भी चल बसा। यह शिशु भी कामदेव के समान सुन्दर, बृहस्पति के समान बुद्धिमान और इन्द्र के समान पराक्रमी होता। हमारे भाग्य में ऐसा होनहार पुत्र बदा नहीं था, अन्यथा दुष्ट काल हमारे सामने से उसे क्यों ले जाता ? इस प्रकार दूसरों को दिखाने के लिये माथा ठोक-ठोक कर रोने लगा।

जल्लाद जब बच्चे को मारने के लिये सूनसान स्थान में पहुँचा तो उस बच्चे के तेजस्वी मुख को देखकर उसके मन में प्रसन्नता उत्पन्न हुई और वह सोचने लगा--इस निरपराध बच्चे की हत्या कर मैं क्यों पातकी बनूं। मैं इसे तलाब के किनारे छोड़ देता हूं; कोई हिंसक जानवर खा जायगा या यह अपने आप मर जायगा। इस प्रकार निर्णय कर उसने उस तलाब के किनारे पर उसको रख दिया।

दोपहर को गायें तलाब में पानी पीने को आयीं। पानी पीना भूलकर वे उस बच्चे के पास चली गयीं और उसको सूंघने लगीं। उस निरीह शिशु की मूक भावनाओं ने उन पशुओं के हृदय पर भी अपना प्रभाव अंकित कर दिया और सब गायें एकत्रित होकर खड़ी हो गयीं और स्वतः अपने स्तन से दूध गिराने लगीं। जब ग्वालों ने यह दृश्य देखा तो वे अत्यधिक प्रभावित हुए और उस पुत्र को ले जाकर अपने स्वामी गोविन्द को दे दिया। गोविन्द ने उस सुन्दर शिशु का नाम धनकीर्त्ति रखा।

धनकीर्त्ति कुमार कामदेव के समान सुन्दर और दिव्य तेजस्वी था। वह राजपुत्र के समान वृद्धिगत होने लगा।

इधर श्रीवत्त सेठ को अपनी श्रीमती नामक पुत्री का विवाह करना था; इसलिये वह घी लाने के लिये तुरपट्टी नामक गोप गांव में आया। जब उसकी निगाह धनकीर्त्ति पर पड़ी तो उसने तत्काल उसे पहचान लिया और सोचने लगा यह अभागा अभी तक जिन्दा है, मैंने इसे मारने का कितना प्रयत्न किया, फिर भी यह बच गया। मालूम होता है, जल्लाद ने मुझे धोखा दिया है। अबकी बार मैं इसे स्वयं अपने हाथों से जहन्नुम भेजूंगा। अपने बिना किये कोई काम

नहीं होता, क्या अपने मरे बिना किसी को स्वर्ग मिला है। इस कृत्य को सम्पन्न करने के लिये मुझे स्वयं यहां कुछ दिन रुक जाना पड़ेगा। इस तरह सोचकर वह वहां रहने लगा। धीरे धीरे उसने सभी गांव वालों पर अपना प्रभाव डाल दिया। एक दिन उसने गोविन्द को बुलाकर कहा—भाई आपसे एक काम लेना है, आशा है आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगें। वह काम यह है कि–आप अपने पुत्र धनकीर्त्ति को मेरे गांव इस घी और पत्र को लेकर भेज दें, आपकी बड़ी कृपा होगी। मैं अन्य आवश्यक कार्य से दूसरे गांव जा रहा हूं।

उसके कपट जाल से भोला गोविन्द अपरिचित था। अतः उसकी लुभावनी बातों में आकर उसने धनकीर्त्ति को श्रीदत्त के पास भेज दिया। उसने बड़े प्रेम भाव से उसे भोजन कराया और राह का खर्च देकर उसे अपने गांव भेज दिया। साथ में अपने पुत्र के लिये निम्न आशय का पत्र लिखा—

मैं जिस व्यक्ति को घी लेकर भेज रहा हूं, उसे तुम शीघ्र मार डालना। इस पर दया दिखलाने की आवश्यकता नहीं है। इस भेद को छिपाकर रखना, कोई भी जानने न पावे।

धनकीर्त्ति घी का घड़ा और पत्र लेकर शिम्पा नदी के किनारे उज्जयिनी के निकट आया और थकने के कारण आम्रवृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा और सो गया।

इस समय मृगसेना नाम की वेश्या उसी रास्ते से आ रही थी। जब उसकी दृष्टि धनकीर्त्ति के मुख पर पड़ी तो एकाएक उसके मन में स्नेह धारा उमड़ पड़ी। वह अदृश्य शक्ति से खिंच कर आम के पेड़ की छाया में चली आयी धनकीर्त्ति के सुन्दर मुख को देखकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे यह उसका पिता हो। कमर में बंधे पत्र पर जब दृष्टि पड़ी तो उसने उत्सुकता से उस पत्र को खोलकर पढ़ा और उसका रहस्य समझकर दूसरा पत्र लिखकर बांध दिया। उसमें उसने लिख दिया कि पुत्र, तुम्हें मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी, मैं आवश्यक कार्य से दूसरे गांव में जा रहा हूं। आज की लग्न सर्व श्रेष्ठ है, अतः इस सर्व गुण सम्पन्न वर के साथ तुम श्रीमती का विवाह अवश्य कर देना। पुत्र का कर्त्तव्य पिता की आज्ञा मानना है। इस कार्य में तनिक भी ढिलाई मत करना। मेरी प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा वर नहीं मिल सकेगा। इस प्रकार पत्र लिखकर और उसे ज्यों का त्यों बांध कर मृगसेना चली गयी। उसने उसे सोते हुए नहीं जगाया।

जब वह जगा तो बिलम्ब जानकर जल्दी ही घी का घड़ा सिर पर रख उज्जयिनी आया और श्रीदत्त के पुत्र महाबल को उसके पिता का पत्र दे दिया ।

महाबल ने जल्दी ही विवाह की तैयारी कर दी तथा ज्योतिषी को बुलाकर लग्न दिखलायी । ज्योतिषी ने कहा—यह सर्वश्रेष्ठ समय है । धनकीर्त्ति राजा होगा, यह बड़ा प्रतापी और तेजस्वी राजा निकलेगा । महाबल ने खूब धन खर्च कर श्रीमती का विवाह धनकीर्त्ति के साथ कर दिया । उत्सव में अनेक लोगों को भोजन कराया । विवाह के पश्चात् धनकीर्त्ति श्रीमती के साथ कुछ दिनों तक आनन्दपूर्वक रहता रहा ।

जब श्रीदत्त ने उज्जयिनी में आकर यह सब आंखों से देखा तो उसके प्राण सूख गये । विचारने लगा—मैंने तो इसे मार डालने को लिखा था, यह जीवित कैसे बच गया ? मालूम होता है कि इसका पुण्य बहुत जोरदार है ।

पुनः सोचने लगा—मेरी लड़की विधवा हो जाय कोई हर्ज नहीं, पर इसके मारने का प्रबन्ध अवश्य करना होगा । इसके मारे बिना मुझे शान्ति नहीं मिल सकती । न मालूम क्यों मुझे इससे द्वेष हो गया है ? मैं अपने आपको स्वयं नहीं समझ पाता हूं, क्या करूं । इसे मारना तो मुझे अवश्य है ।

उसने धनकीर्त्ति को बुलाया और कहा—बेटे ! मैं तुम्हें सुखी और समृद्धिशाली देखना चाहता हूं । अतः आज अपने कुल देवता धरणेन्द्र की पूजा नैवेद्य लेकर रात को बारह बजे करने जाना होगा । नैवेद्य चढ़ाकर कुलदेवता के दर्शन कर लौट आना ।

रात के बारह बजे जब धनकीर्त्ति कुलदेवता की पूजा के लिये जाने लगा तो महाबल ने कहा—इतनी रात गये मैं आपको नहीं जाने दूंगा । आपका अभी विवाह हुआ है, जाकर सो जायं । मैं ही कुलदेव को नैवेद्य चढ़ाये आता हूं । पिताजी तो ऐसे ही एक न एक नयी-नयी बात करते रहते हैं । इस प्रकार समझा-बुझाकर उसको वहीं पर छोड़ महाबल नैवेद्य चढ़ाने मन्दिर में गया । ज्यों ही उसने मन्दिर में प्रवेश किया त्यों ही जल्लादों की तलवारें उसकी गरदन पर पड़ीं और वह वहीं गिर पञ्चत्व को प्राप्त हुआ ।

जब श्रीदत्त ने धनकीर्त्ति को घर में देखा तो पूछा कि तुम नैवेद्य चढ़ाने नहीं गये ? धनकीर्त्ति—पिताजी ! मैं आपके आदेशानुसार जा रहा था, किन्तु उदार और प्रमी महाबल ने मुझे नहीं जाने दिया और मेरे हाथ से नैवेद्य लेकर वह स्वयं चले गये । मैंने तो आपकी आज्ञा पालने का पूरा यत्न किया, किन्तु मुझे रुक जाना पड़ा ।

धनकीर्त्ति के वचन सुनते ही उसको बड़ी वेदना हुई और नंगे पैर मन्दिर को ओर दौड़ा। मन्दिर के द्वार पर महाबल की लाश पाकर विलाप करने लगा। महाशोक में डूबकर विक्षिप्तसा हो गया। वह सोचने लगा—हाय ! मैंने इस दुष्ट के मारने के लिये कितना प्रयास किया, सब व्यर्थ गया। इसके स्थान में मेरा पुत्र मारा गया, किन्तु जो कुछ भी हो, इसके मारे बिना मुझे शान्ति नहीं मिल सकती है इस प्रकार निश्चय कर अपनी पत्नी को बुलाया और आद्योपान्त सारा ब्याख्यान कह सुनाया तथा यह भी कहा कि अपनी पुत्री का मोह छोड़ कर मेरी शान्ति के लिये बिष प्रयोग द्वारा इसे शीघ्र यमराज के यहां भेज दो।

पहले तो पतिव्रता विशाखदत्ता ने अपने पति को बहुत समझाया और कहा कि पाप करने से शान्ति नहीं मिल सकती। अब तक आपने इसको मारने के लिये कितने ही उपाय किये, पर वे सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। पाप द्वारा पाप का प्रक्षालन नहीं हो सकता है, यदि वास्तव में आप शान्ति चाहते हैं तो अब पाप करना छोड़ दीजिये। आप बड़े हैं, ज्ञानवान् हैं, अहिंसा धर्म का तत्त्व समझते हैं, फिर क्यों आप इस प्रकार की बातें सोचते रहते हैं।

श्रीदत्त—स्त्री का काम पति की आज्ञा मानना है। पतिव्रता स्त्री प्राण जाने पर भी पति की आज्ञा का उलंघन नहीं करती है। आज तक तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की, फिर आज ऐसी बातें क्यों कर रही हो। मुझ में अपना हिताहित समझने की शक्ति वर्तमान है, तुमको उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। यदि मेरा जीवन चाहती हो तो तुम जल्दी ही इस दुष्ट को विष खिलाकर यमराज के यहां भेज दो। विशाखदत्ता—स्वामिन् आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। किन्तु एक बार दासी के वचनों पर स्वयं विचार करने का कष्ट करें। संसार में द्वेष, ईर्ष्या का ताण्डव सदा से होता चला आ रहा है, परन्तु अहिंसा धर्म के समान सुख देने वाला कोई धर्म नहीं है। एक अहिंसा ही ऐसा अस्त्र है जिसके द्वारा वैर–विरोध का अन्त किया जा सकता है। आशा है आप थोड़ा विचार करने की कृपा करेंगे यों तो मैं आपके चरणों की दासी हूं, आप जैसा कहेंगे, मैं करूंगी।

श्रीदत्त—मैं ज्यादा बहस सुनना नहीं चाहता, तत्क्षण ऐसा उपाय करो जिससे यह मारा जाय। इसके जीवित रहते हुए मुझे एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिल सकती।

हताश होकर पत्नी ने सुन्दर विषैले लड्डू तैयार किये। छोटे और गन्दे लड्डू बिना विष के—

देखने में सुन्दर और सुस्वादु लड्डू विषैले बनाये । वह स्वयं हत्या करना नहीं चाहती थी, अतः अपनी पुत्री को आदेश दे कि पिता, पति को भोजन करा देना, पड़ोसी के घर चली गयी ।

जब पति और पिता भोजन करने बैठे तो पुत्री ने सोचा कि यदि सुन्दर और बड़े लड्डू पति को परोसती हूं तो पिता कहेंगे कि शादी हो जाने के बाद तुरत ही लड़की हमें भूल गयी, अतः उसने छोटे और गन्दे लड्डू पति को तथा बड़े और सुन्दर लड्डू अपने पिता को परोस दिये । लड्डू खाते ही श्रीदत्त मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा तड़फड़ाता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ । सच है, जो दूसरे को मारने का या अनिष्ट करने का प्रयत्न करता है, वह स्वयं अपना अनिष्ट करता है ।

धनकीर्त्ति कुमार ने जब ससुर की यह अवस्था देखी तो वह आश्चर्य में पड़ कर सोचने लगा कि अकस्मात् यह क्या हो गया । कन्या श्रीमती भी पिता की इस अवस्था को देखकर रोने लगी, उसके करुण क्रन्दन को सुनकर विशाखदत्ता भी घर आयी । उसने आशा की थी कि दामाद के मर जाने से श्रीमती रो रही होगी, किन्तु घर में आने पर दूसरा ही मामला उसे दिखलायी पड़ा । दामाद के स्थान पर पति के मरण को देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ । वह सोचने लगी--हाय रे भाग्य ! तेरी लीला को कौन जानता है ? क्षण भर पहले जहां गीत-नृत्य होते हैं, वहीं क्षण भर बाद रोना पीटना सुनायी पड़ता है । जिसने जीवन भर कपट वृत्ति की उसका फल उसी को भोगना पड़ा, धनकीर्त्ति का बाल भी बांका नहीं हुआ । अहिंसा रूपी जैनधर्म के फल से भयंकर से भयंकर संकट टल जाता है, किन्तु हिंसा के कारण सुख भी दुःख बन जाता है ।

मुनि के वचन असत्य नहीं हो सकते, यह धनकीर्त्ति निश्चय ही पालक नरेश बनेगा । यह पृथ्वी में वन्दनीय, परम माण्डलिक राजा होगा । वह दामाद के मुंह की ओर देखकर अपने पति के क्रूर कार्यों की आलोचना करते हुए अपनी पुत्री से कहने लगी—बेटी ! राजाओं से पूज्य धनकीर्ति को पाकर तुम धन्य हो, तुम पट्टरानी होगी । मेरे पति को धनकीर्ति का वैभव सह्य नहीं था, जिससे उन्होंने कपट जाल रच कर अनेक बार इन्हें मरवाने के उपाय किये, पर सदा वह असफल रहे । सच है, जो पुण्यात्मा हैं, उनका कोई बाल बांका नहीं कर सकता । जैसे सूर्य के प्रकाश को कोई भी क्षीण नहीं कर सकता है, उसी तरह पुण्यात्मा के पुण्य को कोई भी क्षीण नहीं कर सकता ।

गुणपाल सेट ने अपने मित्र पर विश्वास कर अपनी स्त्री धनश्री को यहां छोड़ दिया था, किन्तु उन्होंने ईर्ष्या-वश उनके पुत्र धनकीर्त्ति को उत्पन्न होने के दूसरे क्षण से ही मारने का प्रयत्न किया, जिसका परिणाम अपने पुत्र की मृत्यु और स्वयं की मृत्यु हुई। आवेश में आकर उसने सारी कथा आदि से अन्त तक कह दी और स्वयं भी उन बिष मिश्रित लड्डुओं को खा गयी। उसने अपनी पुत्री को आशीर्वाद दिया कि तुम पतिव्रत में सीता के समान, पवित्रता में शची के समान, गुरु भक्ति में चेलना के समान, विद्या में सरस्वती के समान और रूप में रति के समान हो पट्टरानी बनोगी।

वह पुनः जोर-जोर से कहने लगी—धनकीर्त्ति सेठ गुणपाल का पुत्र है, यह महामण्डलीक राजा होगा। जैन-धर्म के प्रसाद से संसार में कुछ भी दुष्कर नहीं। इतना कहते-कहते वह भी मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी और पञ्चत्व को प्राप्त हुई।

श्रीदत्त और विशाखदत्ता का अन्तिम संस्कार कर अनेक व्यक्ति धनकीर्त्ति को स्तुति करने लगे—हे देव आपके समान पुण्यात्मा कौन है? आपके समान यशस्वो दिव्य तेजस्वी और अलौकिक चमत्कारी कौन है? आपको देखते ही हम लोग आपके आधीन हो गये हैं।

धनकीर्ति ससुर के सारे धन का स्वामी बना। जब मालव नरेश विश्वम्धर को इस बात की सूचना मिली कि यह सेठ गुणपाल का पुत्र है, तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने चारों ओर दूत भेजकर सम्यत्वचूड़ामणि गुणपाल का भी पता लगा लिया। गुणपाल कौशम्बी में है, यह समाचार अवगत कर राजा ने गुणपाल को ससम्मान बुला लिया और उसे राजसेठ का पद प्रदान किया तथा उसकी सारी सम्पत्ति वापस कर दी। राजा उससे कहने लगा——

श्रेष्ठिवर्य! आप धन्य हैं। आपने अपनी धर्म रक्षा के लिये धन-वैभव, भोग विलास आदि का त्याग कर दिया। आपके त्याग का मेरे ऊपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। मैंने उसी दिन से जैनधर्म धारण कर लिया है तथा श्रावक की क्रियाओं का पालन करने लगा हूं। कृपया मुझे अब जैनधर्म के तत्वों को समझाइये। मैंने साथ ही यह निश्चय किया है कि मैं अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र धनकीर्ति के साथ करूंगा। कन्यादान में आधा राज्य भी देता

हूं, आप स्वीकार करें।

गुणपाल—राजन् ! आपका आदेश मैं तभी स्वीकार कर सकूंगा, जब आप वस्तुतः जैन दीक्षा ले लेंगे। दीक्षान्वय क्रिया के हो जाने पर ही आप जैन माने जा सकेंगे। अतः गृहस्थाचार्य को बुलाकर आप दीक्षान्वय क्रिया सम्पन्न करें।

राजा—श्रेष्ठिन् ! मैं जैनधर्म का पालन करता ही हूं, फिर भी आपकी इच्छा यह है कि मैं दीक्षान्वय क्रिया करूं तो आप शीघ्र ही इसका प्रबन्ध कर दीजिये।

राजा की दीक्षान्वय क्रिया हो जाने के उपरान्त शुभ-मुहूर्त्त में धनकीर्त्ति का विवाह अपूर्व रूप-लावण्यवती राजपुत्री के साथ सम्पन्न हो गया और आधे राज्य का स्वामी बन कर शासन करने लगा।

एक दिन यशोधर नाम के मुनि बिहार करते हुए उज्जयिनी के बगीचे में आये। वनपाल ने यह समाचार राजा विश्वन्धर को सुनाया। मुनिराज का आगम सुनकर सेठ गुणपाल, धनकीर्त्ति और राजा विश्वन्धर अनेक सामन्तों के साथ उनके दर्शन के लिये गये। राजा ने मुनिराज से आप्त, आगम, नवपदार्थ और कर्म का स्वरूप जानने की इच्छा प्रकट की।

मुनिराज ने बड़े ही सुन्दर ढंग से देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप बतलाते हुए, कर्म और जीव के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष का स्वरुप बतलाया, जिसे सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

राजा—महाराज ! इस धनकीर्ति ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा पुण्य किया था, जिससे श्रीदत्त द्वारा पांच बार मारने का प्रयत्न करने पर भी यह जीवित रह गया ?

मुनिराज राजन् ! धनकीर्त्ति के भवान्तर को सावधान होकर सुनें, इसकी भवावली को सुनकर आप स्वयं ही इसके पुण्य का अनुमान कर सकेंगे।

इसी उज्जयिनी नगरी के एक गांव में मृगसेन ना धवर रहता था, उसकी स्त्री का नाम घण्टा था। वह मछली मारने का व्यापार करता था। एक दिन जाल लेकर वह शिम्पा नदी की ओर जा रहा था कि रास्ते में

एक पेड़ की छाया में एक मुनिराज को बैठा देखा। वह उत्सुकता वश उनके पास बैठ गया और धर्मोपदेश सुनने लगा। उपदेश सुनकर जब अन्य श्रावक व्रत ग्रहण कर जाने लगे तो वह भी मुनिराज के निकट आ गया और कहने लगा—

देव ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैंने अब तक अनेक पाप किये हैं, सच्चे गुरुओं की अवहेलना की है। दिन रात हिंसा करना ही मेरा पेशा रहा है। कृपया मेरे उद्धार का कोई उपाय बतलाइये तथा मुझे कुछ नियम भी दीजिये। मेरी अन्तरात्मा से यह ध्वनि निकल रही है कि आपके द्वारा मेरा कल्याण संभव है, आप मेरे सच्चे हितैषी हैं। न मालूम क्यों आपसे मेरा स्नेह हो गया है।

मुनिराज—तुम शराब पीते हो ?

धीवर—जी हां, प्रति दिन खूब पीता हूं।

मुनिराज—तुम शराब पीना छोड़ सकते हो ?

धीवर—महाराज ! इसके बिना तो मेरा जीवित रहना असंभव है। एक दिन भी शराब न मिलने पर प्राण छटपटाने लगते हैं, अजब बेचैनी प्रतीत होती है।

मुनिराज—हिंसा करना छोड़ सकते हो ?

धीवर—गुरुदेव ! यदि आज ही मछलियां मारकर न ले जांऊ तो बालबच्चे भूखों मर जायंगे। मेरी पत्नी मुझे घर में भी नहीं घुसने देगी।

मुनिराज—झूठ बोलना छोड़ सकते हो ?

धीवर—गुरुदेव ! नहीं मेरा तो रोजगार ही झूठ पर आश्रित है। जब तक मैं एक का दस दाम नहीं बतलाता, आजीविका के लायक धनार्जन नहीं हो सकता है।

मुनिराज—चोरी करना छोड़ सकते हो ?

धीवर—गुरुदेव ; मेरा इसके बिना भी निर्वाह नहीं हो सकता है। यह पेशा तो मेरे कुल में अनादिकाल से

चला आ रहा है। मेरा काम मछली पकड़ना है, लोग अपने तालावों में से देखते हुए मछली नहीं पकड़ने देते हैं, अतः प्रायः चोरी से ही मछलियां पकड़नी पड़ती है।

मुनिराज—तुम अभी मछली पकड़ने जा रहे हो, अतः जाल में जो पहली मछली आवे उसे छोड़ देना, प्रतिदिन इस नियम का पालन करना।

धीवर—गुरुदेव ! इस व्रत का मैं पालन कर सकता हूं। इसके पालने से मेरी कुछ हानि नहीं है।

व्रत स्वीकार कर जब उसने शिम्पा नदी में जाल विछाया तो एक बड़ी सी मछली फंस गयी। उसने अपने व्रत के अनुसार उसकी पूंछ में काला धागा बांध कर दूसरी जगह छोड़ दिया। जाल को उसने कुछ दूर चलकर पुनः फैलाया, अवकी बार भी वही मछली फंसी। उसने मछली को पानी में गिराकर २०० गज की दूरी पर अपना जाल बिछाया, किन्तु यहां पर भी वही मछली आकर फंस गयी, उसे महान् आश्चर्य हुआ, पर अवकी बार भी गहरे जल में उस मछली को गिरा वह और आगे चला गया। काफी दूर चलकर उसने जाल बिछाया, सोचा कि अब इतनी दूर वह मछली नहीं आ सकती है, किन्तु आश्चर्यकी बात यह थी कि अवकी वार भी वही मछली उसके जालमें आयी। वह परेशान हो गया और उस मछली को वहीं गिराकर आगे चला। वहुत दूर जाकर गहरे पानीमें जाल फैला दिया। उसने निश्चय किया कि इतनी दूर वह मछली नहीं आ सकती है। पर दैवयोग से इस बार भी वही मछली उसके जाल में फंस गयी। अब तो मृगसेन का हतोत्साह पराकाष्ठा को पहुँचा। इधर सूर्य भी अस्त हो गया था, अन्धकार बढ़ता चला आ रहा था अतः वह खिन्न मन खाली हाथ घर आया।

घर में प्रवेश करते ही मृगसेन की स्त्री घण्टा ने उसे खाली हाथ समझ कर आड़े हाथों लिया। गालियों से उसकी खूब पूजा की और धक्का देकर घर से बाहर कर दिया। यद्यपि मृगसेन ने मुनिराज से व्रत लेने की सारी बातें कहीं, पर उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे मरुभूमि पर जल की वृष्टि अपना प्रभाव अंकित नहीं कर सकती उसी प्रकार मगसेन की वातों का घण्टा पर कुछ भी असर नहीं हुआ। जितनी मृगसेन आरजू-मिन्नत करता था, घण्टा का क्रोध उतना ही अधिक बढ़ता जाता था। उसने अब तो आवेश में आकर लाठी, जूते, मुक्के, लात आदि से भी उसे पीटना शुरु कर दिया। घर से बाहर निकालते हुए कहा कि वहीं जा, उसी मुनि के पास जिसने तुझे यह व्रत दिया है। मेरे घर में तुझ जैसे निखट्टू का काम नहीं है।

घर से बाहर निकल जाने के बाद मृगसेन सोचने लगा—यह संसार कितना स्वार्थी है। एक दिन ही मछली पकड़कर नहीं लाया, उस पर इतना क्रोध ? मुनिराज सच ही कह रहे थे कि स्त्री, पुत्र, पुरजन, परिजन सभी स्वार्थ के साथी हैं। मैंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया। दूसरों को अपना मान मैंने पाप संचय किया है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब को हम अपना समझते हैं, पर क्या कोई भी काम आता है ? अकेले ही जीव को सुख दुःख भोगने पड़ते हैं। जो स्त्री मुझसे स्नेह करती थी, जब मैं कमाकर लाता तो मेरा सम्मान करती थी, आज, उसी स्त्री ने मेरा कितना अपमान किया है। धिक्कार है इस संसार को और इस अज्ञानी जीव को, जो सदा इस माया में पड़ा है। अब मैं निश्चय ही अपना आत्म कल्याण करूंगा। गुरु के द्वारा मुझे सच्चा मार्ग मिल गया है। इस प्रकार सोचते-सोचते घर के बाहर वह सो गया।

मध्य रात्रि में एक सांप निकला और उसने उसके पांव को मेंढ़क समझकर काट लिया और मृगसेन मृत्यु को प्राप्त हुआ।

अहिंसा व्रत के प्रभाव से मृगसेन मरकर धनकीर्त्ति हुआ है। इसने पांच बार मछली को अपने जाल में से छोड़ा था, अतः श्रीदत्त के पांच आक्रमणों से इसकी प्राण रक्षा हुई है। इसी व्रत के प्रभाव से इसे आधा राज्य भी मिला है।

मुनिराज आगे कहने लगे—प्रातःकाल अपने पति की लाश को देखकर घण्टा बहुत दुखी हुई। अपने पति के गुणों का स्मरण कर रोने तथा अपने को धिक्कारने लगी। उसने अहिंसा व्रत का महत्व समझा और गुरु के निकट जाकर व्रत ले लिया। संन्यास मरण पूर्वक प्राण त्याग किये जिससे वह श्रीदत्त सेठ के यहां श्रीमती नाम की कन्या हुई जिस मछली को मृगसेन ने अपने जाल में से छुड़ाया था, वह इस नगरी में मृगसेना नाम की वेश्या हुई है। इसी कारण शिप्रा के तट पर घूमती हुई मृगसेना के मन में धनकीर्त्ति को देखकर पितृ--प्रेम उमड़ा था और उसके प्राणों की रक्षा की थी।

मुनिराज के द्वारा कहे गये भवान्तरों को सुनकर सभी लोग चकित हुए और कहने लगे—जब एक दिन अहिंसा व्रत का पालन करने से इतना फल मिल सकता है तो जो प्रतिदिन पंचाणुव्रतों का पालन करेगा, उसे कितना

फल मिलेगा ? वास्तव में व्रतों के समान अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं हो सकता है। इस प्रकार व्रतों के सम्बन्ध में विचार कर राजा विश्वन्धर और उनकी रानी लक्ष्यमती एवं गुणपाल सेठ और उनकी पत्नी धनश्री ने संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा ग्रहण की। धनकीर्त्ति तथा अन्य राजकुमारों ने अपनी-अपनी पत्नियों सहित पञ्चाणुव्रत ग्रहण किये।

धर्म और न्यायपूर्वक राज्य करते हुए धनकीर्त्ति ने कुछ दिनों के उपरान्त संसार, शरीर और भोगों की क्षण-भंगुरता का विचार कर आत्म कल्याण करनेवाली दिगम्बर दीक्षा यशोधर मुनिराज से ग्रहण करली और श्रीमती आदि रानियों ने भी विरक्त होकर विनयमती नामक आर्यिका से दीक्षा ले ली। सभी लोगों ने अन्त में संन्यास मरण किया, जिससे स्वर्ग में देव हुए।

राजा श्रेणिक इस प्रकार अहिंसा व्रत का प्रभाव सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, वास्तव में अहिंसा के समान प्राणियों का हित करनेवाला, मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढ़ानेवाला और जीवमात्र में सद्भावना का प्रचार करनेवाला अन्य दूसरा कोई नहीं है।

दसवीं कथा समाप्त

ग्यारहवीं कथा

संसार में सुख और शान्ति स्थापित करनेवाले अहिंसा महाव्रत की कथा सुनकर महाराज श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए। अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये उन्होंने सत्याणुव्रत की कथा जानने की इच्छा प्रकट की।

श्रेणिक—स्वामिन् ! अहिंसा व्रत का पालन सत्याणुव्रत की सहायता के बिना नहीं हो सकता है, यह आपने अभी कहा है। कृपया यह बतलाइये कि सत्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

गौतम स्वामी—राजन् ! जो वस्तु जैसी देखी या सुनी हो, उसी प्रकार कह देना अपनी ओर से कुछ भी नमक-मिर्च न मिलाना सत्य है। पर अपने या दूसरे के प्राण बचाने के लिये श्रावक यत्किंचित् असत्य भी बोल सकता है। वस्तुतः सत्यव्रत का सम्बन्ध अहिंसा व्रत से है, जो सत्य अहिंसाव्रत का निर्वाह करने में बाधक है, श्रावक के लिये वह असत्य है। निन्द्यवचन, कठोरवचन और किसी के दिलको दुखानेवाले वचनों का त्याग करना चाहिये। सत्यव्रत पालन करने से वचनों की शुद्धि होती है।

श्रेणिक—स्वामिन् ! सत्यव्रत पालन करने से किसे क्या फल प्राप्त हुआ है ? कृपया इस व्रतधारी की कथा कहें। फल प्राप्ति की कथा जानकर ही इस व्रत के पालने का उत्साह होगा।

गौतम स्वामी कथा कहने लगे—

चारों ओर नन्दनवन से युक्त, कमलों से परिपूर्ण तालाबों से परिवेष्टित व्यंगिमण्डल नाम का देश था। इस देश में प्रतिपालपुर नाम का सुन्दर और रमणीय नगर था। इसमें सत्यवचन बोलनेवाला, दृढ़व्रती, प्रजापालक धनद नामका राजा राज्य करता था। यह भगवान् की पूजा और अर्चा करने में इन्द्र के समान, दान में श्रेयान्स के समान, योग में नगेन्द्र के समान, रूप में कामदेव के समान, सम्पत्ति में कुवेर के समान, तेज में सूर्य के समान, प्रताप में भरत चक्रवर्ती के समान और प्रजापालन करने में राम के समान था।

एक दिन एक दूत राजा के पास आकर हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला—

राजन् संघश्री नामक बौद्ध धर्मानुयायी की पुत्री कमलश्री रति के समान सुन्दर, हिरण के समान दीर्घनेत्री, पर्वत के समान उन्नत स्तनवाली, सबके मनमें मनमथ की पीड़ा उत्पन्न करने में समर्थ है। यह रूप में लक्ष्मी और गुणों में सरस्वती है। देव ! यह आपकी पट्टरानी होने के योग्य है।

राजाने इस सुखद समाचार को सुनानेवाले दूत को पारितोषिक देकर विदा किया। कुछ समय पश्चात् अपनी दासी को संघश्री के यहां कन्या याचना के लिये भेजा। जब दासी संघश्री के यहां पहुँची तो संघश्री ने उठकर उसका ससम्मान स्वागत किया।

संघश्री—महाराज ने क्या आदेश भेजा है। क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया है।

दासी—श्रेष्ठिन् महाराज आपकी सुन्दरी कन्या कमलश्री के साथ पाणिग्रहण करना चाहते हैं। मुझे कन्या याचना के लिये आपके पास भेजा है।

इस समाचार को सुनकर संघश्री को अपूर्व प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा कि राजा अबतक जैनधर्म का पालन करता था, जिससे जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ। अब यदि मेरी कन्या के साथ विवाह हो जागगा तो निश्चय ही वह बौद्धधर्म को मानने लगेगा, जिससे बौद्धधर्म का खूब प्रचार और प्रसार होगा। मुझे यह बहुत सुन्दर अवसर मिल रहा है, इस सुअवसर से लाभ उठाना आवश्यक है। राजा के साथ सम्बन्ध हो जाने से मेरा भी सम्मान बढ़ेगा तथा सम्पत्ति भी मुझे अनायास प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार मन ही मन प्रसन्न होकर संघश्री अपनी कन्या के साथ राजदरबार में पहुँचा।

राजा ने जब कन्या के रूप--सौन्दर्य को देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। सोचने लगा--यह संसार कितना विचित्र है, इसमें एक से एक बढ़कर सुन्दर वस्तुएं हैं। यह कमलनेत्री शची, सीता, मेनका, रति, राधा, रोहिणी आदि के सौन्दर्य को एकत्रित कर बनायी गयी है। इतना सौन्दर्य संसार की एक भी नारी में नहीं है। वस्तुतः इसको प्राप्त कर मेरी समस्त कामनाएं पूर्ण हो जायंगी।

विवाह के अनन्तर राजा कमलश्री के साथ भोगों में मग्न हो गया। राज-काज में भी शैथिल्य आने लगा, धार्मिक आचरण भी छूट गया। कुछ दिनों के उपरान्त राजा को अपनी गलती मालूम हो गयी और वह सोचने लगा—

कर्त्तव्य से च्युत हो जाना महान् पाप है। संसार के भोगों में कुछ भी सार नहीं है। न मालूम अनादिकाल से इस जीव को ये भोग क्योंकर ठगते आये हैं। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपना कल्याण करने में समर्थ है, किन्तु यह मनुष्य नाम का जन्तु भी कंचन और कामिनी के मोहक रूप से पृथक नहीं है। मैंने स्वयं ही जिन भगवान् के चरणों की सेवा छोड़ इस पाप के गर्त में मज्जन किया है। जिन भगवान् और दिगम्बर साधुओं की भक्ति छोड़ स्त्रियों की सेवा में लगकर मैंने बडी भारी मूर्खता की है। अब मुझे अवश्य ही सजग होकर अपने उद्धार में लगना चाहिये।

इस बौद्धधर्मानुयायी कमलश्री के साथ रहकर मैं चौपट हो गया। विधर्मी स्त्री सचमुच में धर्म को छुड़ा देती है। अतएव विवाह या अन्य प्रकार का सम्बन्ध सदा साधर्मी से ही करना चाहिये। मैं व्यर्थ ही स्त्रीसुख, राजसुख, धन-वैभव आदि के प्रलोभन में पड़कर अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूं। अब मेरे लिये सबसे अच्छा उपाय यही है कि मैं जिस प्रकार से हो इस स्त्री को जैनधर्म में दीक्षित करूं। जबतक यह बिधर्मी रहेगी, मेरे धर्म की हानि होती रहेगी। पति का सबसे पहला कर्त्तव्य है, अपनी पत्नी का सुधार करना। जो पति अपनी स्त्री को सुशिक्षित और विवेकी नहीं बनाता है, वह केवल वासना प्रिय ही कहा जा सकेगा। अतएव मुझे कमलश्री को समझा कर भगवान् अर्हन्त की उपासिका बना लेना चाहिये। समय पाकर राजा कमलश्री को समझाने लगा—

प्रिये ! इस संसार में वीतरागी प्रभु के द्वारा बतलाया गया धर्म ही आत्मकल्याणकारी हो सकता है। आत्मा का सच्चा स्वरूप ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमय है, जिस धर्म के द्वारा आत्मा का यह स्वरूप प्राप्त किया जा सके, वही धर्म मंगलमय हो सकता है। हिंसा और असत्य धर्म के अंग नहीं हैं, इनसे बढ़कर संसार में दूसरा अधर्म नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय से ही इस जीव का उद्धार हो सकता है। प्रतिदिन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। हमें अपने व्यवहार को इतना मधुर और प्रिय बनाना होगा, जिससे किसी भी व्यक्ति को हमसे कष्ट न हो। हम मनुष्य मात्र में विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रचार कर सकें तो हम बड़े धर्मात्मा हैं, कायक्लेश सहना धर्म नहीं है, किसी को कष्ट पहुँचाना धर्म नहीं है, किसी को धोका देना, ठगी करना धर्म नहीं है। वस्तुतः धर्म आत्मा के असली भाव का नाम ही है, जिन क्रिया और व्यवहारों से आत्म स्वभाव प्राप्त किया जा सके, वे सब धर्म हैं। हठ, दुराग्रह, को धर्म में स्थान नहीं है। धर्मात्मा की दृष्टि

विशाल होती है, वह अपनी उदारता और विशालता से सभी प्राणियों को सुख और शान्ति पहुँचाता है। सबका परम हितैषी होता है, स्वप्न में भी किसी के अहित की बात नहीं सोचता। आत्मालोचना के द्वारा अपने किये गये अपराधों को समझता रहता है तथा अपनी गलती को समझ उसे सुधारने का प्रयत्न करता है। शास्त्रों में बताया गया है कि सबसे बड़ा प्रायश्चित्त गलती को न दुहराना ही है। जो यह सोचते हैं कि गलती हो जाने पर उसका प्रायश्चित्त कर लेंगे, वे अन्धेरे में हैं। उनका यह सोचना ऐसा ही है जैसा कीचड़ लगाकर पैर को धोना और बार-बार इसी क्रिया को करते जाना।

इस प्रकार कमलश्री को समझा कर राजा धनद ने उसे जैनधर्म में दीक्षित कर लिया। कमलश्री आनन्द पूर्वक जैनधर्म का पालन करने लगी, दिगम्बर मुनियों को प्रतिदिन आहार देना, वीतरागी प्रभु की भक्ति करना, शास्त्र स्वाध्याय करना और श्रावक की अन्य क्रियाओं का पालना करना उसका दैनिक कृत्य था। वह सब प्रकार से जैन क्रियाओं का पालन करती थी, उसका जीवन रत्नत्रय की ओर बढ़ रहा था।

राजा ने पुनः एकदिन विचार किया कि कमलश्री तो जैनधर्म में दीक्षित हो गयी, परन्तु इसका पिता संघश्री पक्का बौद्ध है, वह जैनधर्म से द्वेष रखता है। अतः जब तक उसे जैनधर्म में दीक्षित नहीं किया जायगा, यह भी सद्धर्म से विचलित हो सकती है। जैसे कांटेदार पेड के पास में रहनेवाले अन्य पेड़ों को भी कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार कुसंगति मनुष्य का सर्वनाश कर देती है। अब सबसे पहले संघश्री को श्रावक बनाना चाहिये। यद्यपि संघश्री हठी है अपनी जिद पर डटा रहनेवाला है, फिर भी प्रयत्न करना अपना कर्त्तव्य है। सुअवसर आजाने से सारी वस्तुएं बदल जाती हैं।

अज्ञानी जीव अन्धानुकरण करनेवाले होते हैं। जैसे भेड़ें एक दूसरे के पीछे चलकर कुंए में कूद अपनी जान दे देती हैं, उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अपनी गांठ की अक्ल न होने में अहित भी कर लेते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह द्वारा सदा ही नासमझ अपना और पर का अहित करते रहते हैं। राग-द्वेषी गुरु और देवों के सम्पर्क में रहने के कारण उसकी बुद्धि भी मलिन हो जाती है। हिताहित का विवेक उन्हें नहीं रहता। मिथ्यादृष्टि जीव सदा अपने कल्याण से दूर रहता है। इस प्रकार विचार विनिमय कर धनद राजा ने संघश्री को बुलाया—

राजा—श्रेष्ठिन ! मनुष्य पर्याय की यथार्थता धर्म धारण करने में है । जैनधर्म ही आत्मा का वास्तविक धर्म है । जिस व्यक्ति को आत्मविश्वास हो जाता है, वह सर्वदा स्वपर-कल्याण में रत रहने लगता है । आप स्वयं सोचें कि अनादिकाल से इस जीव ने कर्मबन्धन में पड़कर अनेक योनियों को धारण किया है । जीवन का कुछ भी ठीक नहीं है, यह पानी के बुल-बुले के समान है, देखते देखते विलीन होनेवाला है । अतः सदा ही मनुष्य को अपने विवेक से काम लेना चाहिये । हठ करना बड़ी भारी मूर्खता है । परीक्षा करने से सत्यता और असत्यता का अपने आप परिज्ञान हो जाता है । जो धर्म सच्चा होता है, उसका अनुसरण करने से ही आत्म कल्याण संभव है झूठा धर्म कभी भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता । आप विवेकी हैं, धर्म की सत्यता की परीक्षा स्वयं करें । क्या जिस धर्म मार्ग में पूर्वापर विरोध हो, जिसके तत्त्वों का प्रत्यक्ष और अनुमान से खंडन हो सकता हो, वह सच्चा धर्म हो सकता है । आप जिस बौद्धधर्म का अनुसरण कर रहे हैं, उसके द्वारा अभिमत क्षणिकवाद को आप क्या सत्य समझते हैं ? यदि पदार्थ क्षणिक हैं तो फिर उनकी प्रतीति हमें क्यों होती है ? स्थिर और स्थूल आकार के वे क्यों प्रतीत होते हैं ?

आपके धर्म में जब आत्मा का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया गया है तो फिर धर्माचरण की आवश्यता क्या ? क्या आत्मा के अभाव में निर्वाण व्यवस्था बन सकती है ? निर्माण तो आत्मा को ही होता है, शरीर को नहीं चित्तसंतति रूप आत्मा का अस्तित्व कभी नहीं सिद्ध हो सकता । आप स्वयं अनुभव से विचार करें कि बौद्ध दर्शन द्वारा अभिमत प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान प्रमाण की व्यवस्था क्या सिद्ध हो सकती है ? आगम, तर्क, प्रत्यभिज्ञान आदि प्रमाणों को तो बौद्धदर्शन में माना नहीं गया है, फिर वस्तु व्यवस्था किस प्रकार संभव है ?

जैनधर्म की वस्तु व्यवस्था किसी भी प्रमाण से असिद्ध नहीं है । प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक है, एक दृष्टिकोण से वस्तु नित्य है और दूसरे दृष्टिकोण से अनित्य है । अनन्त धर्मात्मक वस्तु के वास्तविक स्वरूप का विश्लेषण स्याद्वाद दर्शन के द्वारा ही संभव है ।

राग-द्वेषी क्या सच्चा देव हो सकता है ? जिसमें स्वयं कमजोरी है, वह हमारे लिये आदर्श कैसे हो सकता है ? आदर्श को शुद्ध, निर्मल, पवित्र और निष्पक्ष होना ही चाहिये । वीतरागी प्रभु ही सच्चे आदर्श हो सकते हैं । उनकी आराधना से ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है ।

इस प्रकार राजा धनद ने संघश्री को उपदेश दिया, जिससे उसने प्रभावित होकर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

संघश्री के जन्म जन्मान्तर के संस्कार प्रबल थे, अतः उसके मन में कुछ सन्देह बना रहा। एक दिन परम-तपस्वी, पापों को नष्ट करनेवाले, सभी आगमों के पारगामी, यशस्वी, सुमेरु के समान क्षमावान, पुण्यमूर्ति, देवदानवों के द्वारा वन्दनीय, पूर्वविदेह से वैक्रियिक ऋद्धि प्राप्त दो चारण मुनि जारहे थे। राजा धनद ने जब आकाशगामी चारण मुनियों को देखा तो दरबार में कहा—देखो धर्म की कितनी महत्ता है। ये ऋषीश्वर तप के प्रभाव से आकाश में बिहार कर रहे हैं। धन्य है, जैनधर्म को। जो व्यक्ति इस धर्म का पालन करता है; वह अवश्य ही संसार समुद्र से पार हो जाता है।

जब संघश्री ने धर्म का यह प्रत्यक्ष फल देखा तो सद्धर्म के प्रति उसकी धार्मिक श्रद्धा फूट पड़ी, मिथ्यात्व नष्ट हो गया, उसका सारा सन्देह दूर हो गया और उसने सच्चे दिल से जैनधर्म को ग्रहण कर लिया।

एक दिन राजा धनद ने अपने प्रधान अमात्य बुद्धिसागर से प्रेतिपालपुर की वंश परम्परा जानने की इच्छा प्रकट की। प्रधान अमात्य बुद्धिसागर बोला—श्री वासुपूज्य तीर्थंकर के समय में यशोधर नाम का राजा हुआ था। यह इक्ष्वाकुवंशी था और अंगदेश की चम्पापुरी नगरी में निवास करता था। इसकी रानी का नाम सौन्दर्य देवी था। अनन्तवीर्यकुमार, श्रीधर और प्रियबन्धु ये तीन कामदेव के समान सुन्दर पुत्र थे।

एक दिन यशोधर राजा ने निश्चय किया कि दिग्विजय के लिये चलना चाहिये। जबतक देश देशान्तर के राजाओं को पराजित नहीं किया जायगा, कीर्त्ति स्थिर नहीं हो सकेगी। आसमुद्र पृथ्वी को अपने आधीन करना चाहिये। इस प्रकार के निश्चय के उपरान्त उसने प्रधान अमात्य को बुलाकर सारी बातें कह दी। अनन्तर तीन दिनों तक मन्त्री अन्य मुकुटबद्ध राजाओं तथा सेनापतियों के साथ भगवान् का अभिषेक किया। पश्चात् राजाओं को आतंकित करने के लिये रणभेरी बजाते हुए उसने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। मालव, मगध, करनाटक, गौड, कराट, गोकुल, लाट, चोल, चेर, पाण्ड्य, मिलिन्द आदि देशों को अपने आधीन कर व्यंगिमण्डल में आया। इस देश के सौन्दर्य को देखकर वह मुग्ध हो गया और यहीं पर प्रतिपालपुर नाम का नगर बसा कर रहने लगा। रत्न, आभरण आदि से युक्त जिनालय

उसने बनवाये। अपने राज्य और प्रजा की उन्नति के लिये अनेक धार्मिक कार्य किये। यह राजा दृढ़ सम्यत्वी था, जिनेश्वर की पूजा में सदा लीन रहता था। चतुर्विध संघ को चारों ही प्रकार का दान देता था।

एक दिन वह नगरवासियों के साथ वनक्रीड़ा के लिये गया। वसन्तर्तु में उसने अनेक प्रकार से जलक्रीड़ा की। मदोन्मत्त हाथी पर सवार होकर जब वह घर की ओर वापस आ रहा था, तो रास्ते में आम के सूखे पेड़ को देखकर उसे वैराग्य हो गया। वह सोचने लगा--

भूत की बात सुनकर युद्ध के लिये प्रस्थान करनेवाले के समान, चोर की बात मानकर उसके साथ व्यापार करनेवाले के समान, डाकू की बात का विश्वास कर घर का धन बतलानेवाले के समान, ठग की बात को सच मानकर उसके अनुसार कार्य करनेवाले के समान पञ्चेन्द्रिय के विषयों में रत होनेवाला भी महान् मूर्ख और अविचारशील है। जैसे संसार में जल का मन्थन कर मक्खन निकालना व्यर्थ है, उसी प्रकार विषय कषायों की पुष्टि के लिये अपने जीवन को खोना भी व्यर्थ है। खद्योत के प्रकाश को देखकर दीपक को बुझानेवाले के समान आत्मधर्म को छोड़ संसार के विषयों में लीन होना भी निरर्थक है।

यह संसार कैसा विलक्षण है। जिन वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किया जाता है, वे ही वस्त्र शरीर का कफन बनते हैं। जिनके पास अपार वैभव था, वे ही भीख मांगते हुए देखे जाते हैं। बड़े बड़े चक्रवर्ती जिनका ऐश्वर्य अपार था, जिनकी सेवा में बड़े-बड़े राजा हाथ जोड़े खड़े रहते थे, वे सब कहां चले गये? संसार में जो शरीर और इन्द्रियों को ही सब कुछ समझते हैं, वे वास्तव में बड़े अन्धेरे में हैं। त्याग और तपस्या के बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता है।

मैंने कितनी ही रानियों का भोग किया, पर तनिक भी तृप्ति नहीं हुई। यौवन काल ऐसे ही बीत गया। अब निश्चय ही आत्मकल्याण करने की तैयारी करनी चाहिये।

प्रातःकाल उसने अनन्तवीर्य को बुलाकर कहा—पुत्र! तुम अब इस विशाल पृथ्वी के शासन का भार ग्रहण करो। सभी राजाओं को अपने आधीन कर साम्राज्य भोगो। मुझे संसार से वैराग्य हो गया है, अतः मैं अब तपस्या केलिये जा रहा हूं।

अनन्तवीर्य—पिताजी ! जब यह राज्य आपको सुखदायी नहीं हुआ तो फिर मुझे कैसे यह सुख दे सकेगा। क्षणिक सुखों में मैं नहीं फंसना चाहता हूं। ये भोग विलास बाहर से ही अच्छे लगते हैं, पर इनके भीतर कुछ भी सार नहीं है। अतः अब मेरी भी इच्छा शाश्वतिक सुखों को प्राप्त करने की है, मैं भी दीक्षा लेकर तपस्या करना चाहता हूं।

यशोधर महाराज ने अपने पुत्र श्रीधर को बुलाया और कहा—आयुष्मान् ! मैं अब संसार से विरक्त होकर तपस्या करने जा रहा हूं, आप इस राज्य को स्वीकार करें।

श्रीधर—स्वामिन् ! जब आप ही इसे निस्सार समझ कर त्यागना चाहते हैं। तो फिर मुझे क्यों इसमें लिप्त करना चाहते हैं ! यदि राज्य में सुख था तो आप स्वयं क्यों त्याग कर रहे हैं, देव अब संसार को भ्रमजाल समझने लगे हैं तो फिर हम लोग भी आपका ही अनुसरण करेंगे। आपको सदा हमारे हित की बात कहनी चाहिये; आप क्यों इस राज्य के दल-दल में हमें फंसाना चाहते हैं।

इसके पश्चात् यशोधर महाराज ने अपने पुत्र प्रियबन्धु को बुलाया और उससे कहा—पुत्र तुम अब सब प्रकार से समर्थ हो, अतः समस्त राज्य का भार तुम्हारे कन्धों पर छोड़ता हूं। तुम्हारे समान गुणी और विद्वान् कम ही व्यक्ति संसार में हैं। तुम सब तरह से राज्यशासन करने के योग्य हो।

प्रियबन्धु—देव ! आदेश प्रमाण है।

यशोधर महाराज ने अगले दिन प्रियबन्धु का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं तथा अन्य दोनों पुत्रों ने विश्वसेन आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। मुनिराज के पादमूल में रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया तथा उत्तरोत्तर तपस्या करते हुए वे कर्मों की निर्जरा करने लगे। इनका शरीर तपस्या के कारण सूखकर कांटा हो गया। संयम के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह कर दिया। द्वादश तप, दस धर्म, पांच आचार, षट् आवश्यक, त्रिगुप्ति और पांच समितियों का पालन करने लगे।

इधर प्रतिपालपुर में प्रियबन्धु अच्छी तरह से शासन करता हुआ समय बिताने लगा। एक दिन वनपाल ने वसन्तराज के आगमन की सूचना राजा को दी और राजा से अनुरोध किया—प्रभो ! कोयल बोल रही है, केकी नृत्य कर रहा है, पुष्पित मल्लिका पर भ्रमर आसक्त हैं, आम्रमंजरी अपनी सुगन्ध से समस्त वाटिका को सौरभान्वित कर रही है।

राजा प्रियबन्धु ने अगले दिन वसन्तोत्सव मनाने के लिये आनन्दभेरी बजवा दी और वनक्रीड़ा की तैयारी होने

लगी। सभी वराङ्गनाएं देवाङ्गनाओं के समान अपना शृंगार कर उपस्थित हुई। राजा ने वन में जाकर क्रीड़ा की, पश्चात् माधवी लताओं द्वारा निर्मित मण्डप में प्रवेश किया। इस मंडप में अगर, कपूर, धूप आदि का धुंआ निकल रहा था। अशोकवृक्ष के पल्लव बिछे हुए थे।

रात में राजा इस मण्डप में निद्रा मग्न था कि अचानक वहां एक सांप निकला, उसने राजा के पैर को मेढ़क समझ डस लिया। राजा ने तत्क्षण सावधान हो समस्त परिग्रह का त्याग कर समाधिमरण धारण कर लिया और सन्यास के प्रभाव से मरकर स्वर्ग में देव हुआ।

धर्मा

मृत
२५७

राजा की मृत्यु के उपरान्त प्रधान अमात्य ने विचार किया कि राजा को कोई सन्तान नहीं है, अतः अब कोई भी शत्रु राजा इस राज्य पर आक्रमण कर सकता है। इस समय इस समाचार को गुप्त रखना ही उपयुक्त होगा। अतएव उसने नगर में इस समाचार का प्रचार कर दिया कि प्रियबन्धु महाराज वनक्रीड़ा करके वापस आ गये हैं,अस्वस्थ होने के कारण किसी से मिलेंगे नहीं।

प्रधान अमात्य ने समस्त माण्डलिक राजाओं को बुलाया और आदेश दिया कि व्यंगिमंडल का राज्य बढ़ाना है, अतः दक्षिण देश के राजाओं को परास्त करने के लिये चतुरंग सेना सहित प्रस्थान करना होगा। आदेश पाते ही सभी राजा चतुरंग सेना सहित चल पड़े। रास्ते में जटाशिखरगिरि पर नीचे सेना का पड़ाव डाल दिया गया। प्रधान अमात्य चुपचाप अकेला ही पर्वत के ऊपर गया और समस्त मन्दिरों के दर्शन कर मुनियों के दर्शन किये। पश्चात् वह श्रीधर मुनिराज से कहने लगा–

मुनिवर ! व्यंगिमण्डल से अनेक श्रावक जो असमर्थ, बुड्ढे और रुग्ण हैं, आपके दर्शन के लिये आये हैं। वे इस उन्नत पर्वत पर चढ़ नहीं सकते हैं, भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के लिये आपको पर्वत के नीचे चलना चाहिये। महाराज ! उन श्रावकों ने यह प्रतिज्ञा की है कि जब तक वे आपके चरणों का दर्शन न कर लेंगे, भोजन नहीं करेंगे। आप दया के समुद्र हैं, उन श्रावकों को दर्शन देकर कृतार्थ करें। आपकी चर्या भी नीचे ही हो जायगी।

प्रधान अमात्य किसी प्रकार बातों में फंसा कर श्रीधर मुनिराज को नीचे लिवा लाया और कपटवृत्ति से पड़गाह कर उनको आहार दिया। भोजन में मादक पदार्थों का मिश्रण कर दिया, जिससे आहार ग्रहण के उपरान्त मुनि-

राज बेहोश हो गये। पश्चात् उन्हें पालकी में सवार कर प्रतिपालपुर ले आया और समस्त राजाओं से कह दिया कि अभी महाराज का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अतः कुछ दिनों के पश्चात् दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे। अभी इस कार्य-क्रम को स्थगित रखा जाय।

प्रतिपालपुर में श्रीधर मुनि को लाकर उन्हें वस्त्राभूषण पहना दिये। जब मुनिराज का नशा दूर हुआ तो अपने को राजमहल में पाकर आश्चर्य में डूब गये। पश्चात् उस अमात्य से सारी बातें ज्ञातकर चिन्ता करने लगे–जिस क्षणभंगुर सुख को मैंने छोड़ा था आज कर्मोदय से मुझे फिर उसीके बन्धन में पड़ना पड़ा है। कर्मों को धन्य है जो संसार के जीवों को इस तरह से नचाते हैं, हर साधक यह समझता है।

प्रधान अमात्य–महाराज ! इतना बड़ा विशाल साम्राज्य सन्तान के अभाव में यों ही नष्ट हो रहा है। आप सन्तान हो जाने पर तपस्या करने चले जावें। तब तक आपको यह राज्य भार चलाना पड़ेगा। मैंने अक्षम्य अपराध किया है, पर इस भार को निभाने के लिये। आप ज्ञानी हैं, लोक–परलोक की रीति को जानते हैं अतः आप समस्त माण्डलिक राजाओं की भेंट स्वीकार करें। यदि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे तो, हम बिना अन्न–जल के अपने प्राणों का त्याग कर देंगे। इतने बड़े साम्राज्य का विनाश अपनी आंखों से हम नहीं देख सकते।

मुनि श्रीधर ने अधिक सोच–विचार कर प्रधान अमात्य की बात स्वीकार कर ली और सन्तान उत्पन्न होने तक राजशासन चलाने का वचन दे दिया तथा अब वस्त्र पहन लिये।

कुछ दिनों के पश्चात् श्रीधर महाराज के पुत्र उत्पन्न हुआ और वयस्क हो जाने पर पुत्र को राज्य शासन दे तपस्या करने चले गये। श्रीधर मुनि ने इसी पर्वत पर तपस्या करके कर्मों को नष्ट किया था, इसलिये इस पर्वत का नाम ऋषि निवास गिरि और पर्वत के नीचे वट वृक्ष के नीचे से मोक्ष प्राप्त किया था, इसलिये उस वट का नाम सिद्धवट पड़ गया था।

जिस समय श्रीधर आचार्य को केवल ज्ञान हुआ था, उस समय देवों ने आकर उनकी पूजा की थी, इसलिये इस नगरी का नाम अमरावती पड़ गया। प्रधान अमात्य इन्द्र प्रभु ने वृद्धावस्था में तप किया था। इसलिये इस नगर का

नाम वृद्धपुर भी पड़ गया है। वंश परम्परा के अनुसार आगे जाकर यही वंश ऋषिपुत्र या मुण्डिपुत्र कहलाया।

इस तरह बुद्धिसागर ने धनद महाराज को उनको वंशावली बतलायी, जिसे सुनकर संघश्री आदि सभी को बहुत प्रसन्नता हुई।

संघश्री सोचने लगा, इस वंश वाले बड़े धर्मात्मा हैं। आज मैंने इनकी कृपा से सच्चे धर्म को पा लिया। वस्तुतः सद्धर्म का मिलना बड़ा कठिन है, मैं आज इसे पाकर कृतकृत्य हो गया।

कुछ दिनों के उपरान्त संघश्री का गुरु बौद्धश्री आया और उसने जब संघश्री को बुद्धधर्म से उदासीन देखा तो मन में चिन्तित हुआ। उसने मन में निश्चय कि जैसे भी होगा संघश्री को जैनधर्म से अलग करूंगा।

बौद्धश्री — क्यों रे संघश्री ! क्या धनद राजा को दामाद बना लेने से तुझे घमंड हो गया है। आजकल तुम हमारा अपमान भी करने लगे हो ? राजा के बहकाव में आकर तुमने बौद्धधर्म छोड़ दिया है, और जैनधर्म स्वीकार कर लिया है। यह तुम्हारा कार्य निन्दनीय है। तुमको फिर बौद्धधर्म स्वीकार करना पड़ेगा। तुम में मेरा आदेश टालने की शक्ति नहीं है, भला गुरु का आदेश कोई भी टालता है। संघश्री ! मुझे तुम्हारे ऊपर सच्चा विश्वास था कि तुम बौद्धधर्म का प्रचार और प्रसार करोगे, किन्तु तुमने तो उल्टा उसका ह्रास किया है। अतएव अब जल्द मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि आज से पुनः बौद्धधर्म धारण कर उसका प्रचार करूंगा। यह जैनधर्म अच्छा नहीं है; इसमें स्त्री, पुत्र, धन, धान्य सभी त्यागना पड़ता है। दुष्कर तपस्या करनी पड़ती है, सभी इन्द्रियों के भोगों का त्याग करना पड़ता है। आत्मा जब अनित्य है, शरीर से भिन्न उसका अस्तित्व ही नहीं तो फिर क्यों इन सब प्रत्यक्ष सुखों को छोड़ा जाय ?

संघश्री— महाराज ! जिनेश्वर के वचन बिल्कुल सत्य हैं। मैंने धर्म का फल प्रत्यक्ष देखा है, चारण मुनियों को आकाश मार्ग से गमन करते हुए देखकर किसे धर्म का विश्वास न होगा।

बौद्धश्री — आयुष्मान् ! धनद राजा ने तुम्हें फंसाने के लिये कोई जाल रचा होगा। जादू-टोने के प्रभाव से आकाश में कुछ दिखला दिया होगा, तुम उसे चारण मुनि समझ गये हो। हमने तो आज तक किसी मुनि को आकाश में गमन करते नहीं देखा।

इस प्रकार बौद्धश्री द्वारा समझाये जाने पर संघश्री ने जैनधर्म छोड़ दिया और पुनः अपने पूर्व धर्म का

पालन करने लगा।

सच है जिनका अशुभ कर्मोदय है वे श्रेष्ठधर्म को कभी नहीं ग्रहण कर सकते। सच्चे धर्म का मिलना आसान नहीं है। यह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है।

जब राजा धनद को संघश्री के धर्म परिवर्तन का समाचार मिला तो विचारने लगा कि भवितव्यता को कोई नहीं बदल सकता है। जिसके अशुभ कर्मों का उदय है, वह लाख प्रयत्न करने पर भी श्रेष्ठधर्म को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। निर्गुणी और बुद्धिमानों को कितना ही उपदेश दिया जाय, पर उससे कोई लाभ नहीं। मलभक्ष शूकर लवंग, जायफल, किसमिस, अंगूर, मुनक्का आदि को मिलने पर भी नहीं खायेगा। उसे विष्ठा ही अच्छी लगती है। अतः स्वभाव एक विलक्षण वस्तु है, इसका बदलना संसार में कठिन है।

नीम का स्वभाव कड़ुवा, गुड़ का स्वभाव मीठा, मिर्च का स्वभाव तिक्त, आंवले का स्वभाव कषैला और नीबू का स्वभाव खट्टा होता है। लाखों प्रयत्न करने पर भी उनके स्वभाव को नहीं बदला जा सकता है। हां, प्रयत्न करने पर इन वस्तुओं के स्वभाव में भी कुछ विकार आ सकता हैं। अतः मैं भी पुनः प्रयत्न करके देखूं, शायद संघश्री पुनः जैनधर्म स्वीकार करले। इस प्रकार विचार कर राजा ने संघश्री को बुलवाया और कहने लगा—

श्रेष्ठिन्! आपने अपने धर्म को छोड़ दिया? आप नहीं समझते कि जैनधर्म के समान संसार में कोई भी धर्म सुखकारी नहीं है। आप व्यर्थ ही अपने मायावी गुरु के फेर में पड़ गये। अपने विचारों पर दृढ़ रहना मानवता में परिगणित है।

वर्षा ऋतु में जैसे खूब पानी वरसता है, पर पत्थर के भीतर कभी पानी प्रवृष्टि नहीं होता। इसी प्रकार कर्मों के आधीन व्यक्ति को कितना ही उपदेश दिया जाय उस पर उसका प्रभाव ही नहीं पड़ता। जीव का जब तक पुण्योदय रहता है, सदुपदेश सुनता है तथा संसार में सम्मान और यश प्राप्त करता है; पापोदय के होते ही उसकी प्रवृत्ति धर्म से हट जाती है तथा अस्त होते हुए सूर्य के समान उसका सारा तेज फीका पड़ जाता है।

साधर्मी का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वह विचलित होते हुए व्यक्ति को धर्म में दृढ़ करें, जीवन का सच्चा सुख धर्म धारण करने से ही प्राप्त हो सकता है। धर्म से बढ़कर और कोई चीज आनन्ददायक नहीं है। जिसने

अपनी जितनी आध्यात्मिक उन्नति करली है, वह उतना ही सुखी है। सम्यक् श्रद्धा के बिना ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना नहीं आ सकता। जिस व्यक्ति का सिद्धान्त चंचल रहता है, वह कभी भी आत्मकल्याण नहीं कर सकता है। अतएव अब आप पुनः जैनधर्म को ग्रहण कर लें।

संघश्री—राजन् ! आपने मुझे भुलाव देकर जैनधर्म में दीक्षित कर दिया था। मैं आपके मायावी रूप को समझ गया हूं। मेरी समझ से बौद्धधर्म ही श्रेष्ठ और कल्याणकारक है। क्या प्रत्यक्ष भोग विलास को छोड़कर कोई भी सुखी हुआ है ? तपस्या से कोई भी आकाश में गमन नहीं कर सकता है। जादू या टोना से खेल कोई भी दिखला सकता है, पर आकाश गमन की शक्ति किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकती है।

राजा—श्रेष्ठिन् ! आप असत्य न बोलें। क्या आपने जैनधर्म के आराधक मुनियों को आकाश में गमन करते नहीं देखा था। आपने मिथ्यात्व के कारण सद्धर्म को छोड़ दिया है। अनुपम तपस्वियों के प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर भी आप इस समय इतनी विलक्षण बातें कह रहे हैं। आपके मायावी गुरु ने आपको न मालूम किस प्रकार उलटा-पुलटा समझा दिया है, जिससे आप इस तरह की बातें करने लगे हैं। पर यह सदा स्मरण रखिये कि मूर्ख लोगों की बातों में पड़कर सद्धर्म का छोड़ना कितना अनुचित है। आप सच सच कहिये कि आकाश मार्ग से जाते हुए मुनियों को आपने क्या नहीं देखा ?

संघश्री—आंख, नांक, कान और सिर को स्पर्श कर कहने लगा—मैंने चारण मुनियों को नहीं देखा है।

संघश्री के मुख से निकले इन असत्य वचनों के प्रभाव से नगर के रक्षक देव का आसन हिल गया और उसने क्रोधित हो उस झूठे की आंखें फोड़ दीं। सभा स्थित सभी व्यक्ति आश्चर्य में पड़ गये और कहने लगे—झूठ बोलने का फल तुरन्त मिल गया। हम लोगों को इसके पास से हट जाना चाहिये, अन्यथा कहीं हमारी आंखें न फूट जायं। सूर्य के समान तेजस्वी, देव, विद्याधर और मनुष्यों के द्वारा वन्दनीय चारण मुनियों को आकाश मार्ग से जाते हुए हमने देखा है, यह संघश्री अपने गुरु के बहकाने में आकर झूठ बोला है जिसका फल इसे प्रत्यक्ष मिल गया है।

झूठ बोलने के समान दूसरा पाप नहीं है। जो व्यक्ति सदा सच बोलता है, वह संसार के बड़े से बड़े पापों से अपनी रक्षा कर लेता है। सत्य वचन बोलने से आत्म शक्ति का विकास होता है, वचनों में अपूर्व शक्ति आ जाती

है तथा लोक-परलोक में अनेक सुखों को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार बात-चीत करते हुए लोगोंने संघश्री को उठाकर घर भेज दिया। संघश्री भीतर ही भीतर चिन्ता से जलने लगा। उसके मन में अपार वेदना थी, कभी वह अपने बौद्ध गुरु को कोसता तो कभी राजा के ऊपर क्रोध करता। उसके मन में विचित्र द्वन्द था, एक क्षण के लिये भी शान्ति नहीं थी, चिन्ता से जल-जल कर उसने प्राणों का त्याग किया, जिसके प्रभाव से वह नरक में गया। आज भी उसके वंश में अन्धे ही जन्म लेते हैं। इसी कारण आन्ध्र देश और अन्धकपुर नगर के नाम पड़ गये हैं ।

मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि को हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह अच्छे प्रतीत होते हैं। जब तक मिथ्यात्व का नशा रहता है, तब तक भ्रान्त प्रतीति सुखकर मालूम पड़ती है, किन्तु सम्यग्दर्शन के प्राप्त होते ही भ्रान्ति निकल जाती है और सत्य का दर्शन होने लगता है। इस मानव जीवन को पाकर जिसने व्रत नहीं धारण किये, उसके जीवन से क्या लाभ ? सच्चा सुख व्रतों को धारण करने में है। जिसने एक बार व्रत पालन करने का आनन्द ले लिया है, वह फिर कभी भी व्रतों को नहीं छोड़ सकता है ।

सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने से आत्म प्रतीति होती है, अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है और जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्मों को सम्यग्दर्शन के प्रभाव से ही नष्ट किया जा सकता है।

एक दिन धनद राजा को संसार से विरक्ति हो गयी। उन्हें संसार असार प्रतीत होने लगा, अतः अपने इन्द्र नामक पुत्र को बुलाकर कहा—वत्स ! अब हमारा समय संसार में तप करने का है। आत्मकल्याण करना प्रत्येक जीव का चरम लक्ष्य है। अतः आज से इस राज्य का भार तुम्हें सौंपता हूं। पुत्र ! प्रजा का पालन सन्तान वत करना, धर्म की रक्षा करना, दीन अनाथ की सेवा करना, भगवान् की पूजा करना, शास्त्र चर्चा में लीन रहना, सत्संगति करना, राज्यकार्य करते हुए राज्य से निर्लिप्त रहना और सुकवियों का सम्मान करना अत्यावश्यक है। इस प्रकार राजकुमार को राजा ने उपदेश दिया तथा प्रातःकाल ही राज्य तिलक कर दिया गया।

धनद राजा ने चारसौ मुकुटबद्ध राजाओं के साथ समस्त भोगों को छोड़ श्रुतार्णव नामक आचार्य के पास जाकर दीक्षा ली और द्वादशांग का अध्ययन आरम्भ किया। गुरु के आदेशानुसार एकाकी विहारी होकर २२ परिषहों

को सहने लगा । धनद मुनिराज ने जाड़े में चार महिने तक उपवास करते हुए तपस्या की । क्षुधा, तृषा, शीत, आतप आदि को सहन करता हुआ ग्रीष्म ऋतु में एक पाषाण शिला पर आतप योग लगाकर चार महीने बिताये । वर्षा ऋतु में खडगासन लगाकर तपस्या करने लगे । बिजली कड़कती, बादल बरसते, तूफान आते पर वह निश्चल होकर तपस्या में लीन थे । दुर्द्धर तपस्या करके चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा अवन्ती के तडियर नामक पर्वत पर तपस्या करते हुए आठ कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया ।

असत्य बोलने के प्रभाव से संघश्री रौरव नरक में गया और सत्य की रक्षा करने वाला धनद राजा निर्वाण को प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार राजा श्रेणिक इस कथा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

ग्यारहवीं कथा समाप्त

बारहवीं कथा

सत्यव्रत मोक्ष लक्ष्मी को देने वाला है, सम्यत्व प्राप्ति का कारण है। मगध सम्राट् श्रेणिक सत्यव्रत की कथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी इच्छा अन्य व्रतों की कथाएं जानने की हुई; क्योंकि व्रत पालन करने के फल को व्यक्त करने वाली कथा सुनकर प्रत्येक व्यक्ति व्रतों के पालन करने लिये प्रेरणा प्राप्त करता है। कथाएं मानव जीवन में पथ प्रदर्शन का कार्य करती हैं। अतः हाथ जोड़कर श्रेणिक कहने लगा—

स्वामिन् अचौर्याणुव्रत के पालन करने से क्या फल मिलता है? इस फल को किसने प्राप्त किया इस मानव जीवन को सुखी बनाने के लिये अचौर्य की क्या आवश्यकता है?

गौतम स्वामी—राजन्! अचौर्याणुव्रत पालन करने से संसार में सुव्यवस्था होती है, जीवन सुखी बन जाता है तथा लोक-परलोक में आनन्द मिलता है।

चोरी करने से हिंसा होती है, झूठ बोलना पड़ता है और चोरी से प्राप्त धन का अपव्यय होने से सप्त व्यसनों का सेवन करना पड़ता है। जो व्यक्ति लोभ वश किसी भी प्रकार की चोरी करता है, वह निश्चय ही अपनी आत्मा का पतन कर लेता है। धन मनुष्यों ने लिये प्राणों के समान प्रिय है, जो दूसरों के धन का अपहरण करता है, वह उसके प्राणों का ही अपहरणकर्त्ता माना जाता है चोरी करना वहुत बड़ा पाप है, इस पाप का करने वाला सदा सन्ताप की अग्नि में जलता रहता है। यदि कोई व्यक्ति चोरी करके धनी बनने की कामना रखता है, तो उसकी यह कामना बालू की भीत है। धन सदा शुभ कर्मों के उदय से प्राप्त होता है, अशुभोदय के आने पर अर्जित धन भी चला जाता है। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि बिना दिये किसी की भूली हुई, पड़ी हुई गिरी हुई वस्तु को न स्वयं लेना और न अन्य को ही देना चाहिये। चोरी का त्याग करने वाले व्यक्ति का सभी लोग विश्वास करते हैं, जिससे समाज का उचित ढंग से संचालन होता है, किसी भी प्रकार की अव्यवस्था नहीं आने पाती है।

श्रेणिक—स्वामिन्! अहिंसाव्रत और सत्यव्रत के पालन करने से ही चोरी का त्याग हो जाता है, फिर इस व्रत को पृथक् स्थान क्यों दिया?

गौतमस्वामी—राजन् ! विस्तार से अहिंसा धर्म की व्याख्या करने के लिये ही अचौर्यव्रत को पृथक् स्थान दिया गया है । अहिंसा इतना व्यापक धर्म है, कि इसका वास्तविक पालन करने से सारे पापों का त्याग हो जाता है । जो व्यक्ति अहिंसक है, वह झूठ क्यों बोलेगा ? चोरी क्यों करेगा ? फिर भी अहिंसा को सभी पहलुओं से समझाने के लिये इन व्रतों का पृथक् विधान किया गया है ।

श्रेणिक—स्वामी ! क्या अचौर्य व्रत का धारी चोरी के लाये हुये सामान को खरीदेगा ?

गौतम स्वामी—नहीं राजन्, नहीं ! चोरी का सामान लेना भी चोरी है ।

जो इस व्रत का अच्छी तरह पालन करता है, वह सब प्रकार से सुख और शान्ति प्राप्त करता है । इस की कथा निम्न है—

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण अवन्ती नाम के देश में उज्जयिनी नाम की नगरी थी । इस नगरी में धरणीधर नाम का राजा राज्य करता था । इस राजा का राजसेठ दिव्य गुणों का धारी, जिनेन्द्र भगवान का भक्त जिन शास्त्र का पारगामी और प्रतिभावान जिनदत्त नाम का था । इस सेठ की स्त्री का नाम जिनेन्द्रदासी था । ये दोनों दम्पत्ति आनन्द पूर्वक रहते थे ।

एक दिन पाप रूपी तिमिर को दूर करने वाले पवित्र चरित्र के धारी जिनधर्म के मर्मज्ञ, जिनपालिक नाम के मुनिराज एकाकी विहार करते हुए आ रहे थे । उज्जयिनी के पास आते-आते सूर्यास्त हो गया, अतः रात में गमन निषिद्ध होने से वह भयंकर श्मशान भूमि में जाकर भूमिशोधन कर ध्यानस्थ हो गये । सूर्योदय तक इसी स्थान पर रहेंगे ऐसा नियम कर वहीं एक ही करवट लेट गये । धनुषाकार होकर उन्होंने योग लगाया । योग में मुनिराज इतने लीन थे कि इन्हें अपने शरीर का भी होश नहीं था ।

मध्य रात में उज्जयिनी का बिड़म्ब नामक साधक मन्त्र विद्या सिद्ध करने के लिये उसी श्मशाम भूमि में आया । उसने योगस्थ जिनपालित मुनि को मुर्दा समझा अतः पास की चिताओं में से दो तीन मुर्दे और खींच लाया । जिनपालित मुनि और अन्य मुर्दाओं को मिलाकर उसने चूल्हा तैयार किया और इस चूल्हे में आग जलाकर भात बनाना आरम्भ किया । जब आग की लपटें जिनपालित मुनि के मस्तक के पास पहुँची तब भी वह ध्यानस्थ रहे । उन्होंने अग्नि

की कुछ भी परवाह नहीं की। मुनिराज सोचने लगे—

स्त्री बिना पुत्र, दूध बिना मक्खन, सूत बिना कपड़ा और मिट्टी बिना घड़े का बनना जैसे असंभव है, उसी प्रकार उपसर्ग बिना सहे कर्मों को नष्ट करना असंभव है। उपसर्ग की आग से कर्म रूपी लकड़ी जल कर भस्म हो जाती है। इस पर्याय की प्राप्ति और इसमें भी दिगम्बर दीक्षा का मिलना बड़े सौभाग्य से होता है। जो व्यक्ति ऐसे अवसरों पर विचलित हो जाते हैं, वे कहीं के भी नहीं रहते। जीव के परिणाम ही उन्नति अवनति के साधन हैं। परिणाम जैसे-जैसे विशुद्ध होते चले जाते हैं, वैसे यह जीव आत्मकल्याण में प्रवृत्त होता जाता है। इस संसारमें हम अनादि कालसे भव भ्रमण कर रहे हैं; इसमें कोई किसी का नहीं है, सभी स्वार्थ के साथी हैं। यह जीव अकेला ही जन्म मरण के दुःख को भोगता है, इसके दुःखों में से बटवारा करने वाला कोई नहीं है। सद्धर्म का मिलना अत्यन्त कठिन है, इस अशुद्ध शरीर के मोह में पड़कर अपना अकल्याण नहीं करना चाहिये। आत्मा सदा इस शरीर से भिन्न है, शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। केवल आत्मा की वैभाविक शक्ति विशेष के कारण इस शरीर की प्राप्त हुई है तथा अनादिकालीन कर्म बन्धन चला आ रहा है।

मुनिराज आगे सोचने लगे आत्म परिणामों को दृढ़ करने के लिये प्रमत्त, अप्रमत्त आदि गुणस्थानों को दृढ़ करना अत्यावश्यक है; पश्चात् उन्होंने बारह भावनाओं और संसार की अनित्यता का चिन्तन किया। आत्मरस का आस्वादन करते हुए मुनिराज परमानन्द में विचरण करने लगे।

कुछ समय के अनन्तर मुनिराज ने महाव्रत, समिति आदि का चिन्तन किया. जिससे उन्हें अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई। वह सोचने लगे कि जिस प्रकार श्रावक को भगवान् की पूजा करने से सभी ऐहिक सुखों की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार मुनि को व्रतों में दृढ़ होने से समस्त सुख मिल जाते हैं। जो भव्य जीव पवित्र जैनधर्म का आश्रय ग्रहण कर लेता है, वह निश्चय ही इस संसार सागर से पार हो जाता है। भगवान् जिनेन्द्र का वास्तविक स्वरूप दिगम्बर मुद्रा है, इस कल्याणकारी मुद्रा को धारण कर विचलित होना महान आश्चर्य का विषय है।

धर्मध्यान के चिन्तन के अनन्तर मुनिराज ने शुक्ल ध्यान करना आरम्भ किया। आरम्भ में व्रत की महिमा का विचार करते हुए सोचने लगे—व्रत का पालन करने से चाण्डाल भी देव हो गया, कौवे का मांस छोड़ने से

खदिर सागर इन्द्र पदवी को प्राप्त हुआ। नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से कितने ही भव्य जीवों ने आत्मकल्याण कर लिया है। दृढ़ सूर्य नाम का चोर चोरी करते पकड़ा गया, दण्डस्वरूप सूली पर चढ़ाया गया पर णमोकार मन्त्र के प्रभाव से देव हो गया। सोमशर्मा की स्त्री ने बरदत्त मुनिराज को आहार दान दिया था, जिससे वह देवाङ्गना हुई। नमि और विनमि ने भगवान् आदिनाथ की आराधना की थी, जिससे धरणेन्द्र ने आकर उनकी सेवा की। क्या भगवान् की आराधना करना सामान्य हो सकता है? द्रुमसेन ने जिनेश्वर के मार्ग को समझकर कर्मों को नाश कर दिया, अतः आराधना करनेवाले को मोक्ष कुछ भी दूर नहीं? रथनेमि ने महाव्यसनी होकर भी अन्त में भगवान् के चरणों की शरण लेने से निर्वाण पद को पाया। चिलात पुत्र ने उपसर्ग आने पर व्रतों को नहीं छोड़ा, ध्यानस्थ रहा जिससे उसने मोक्ष पद पाया जैन दीक्षा सामान्य नहीं है, जिसने इसके मर्म को समझ लिया है, वह बात की बात में इस संसार से पार हो गया है। महाव्रतों का प्राप्त होना परम सौभाग्य है, मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है। नरक में इस जीव को कितनी वेदनाएं सहन करनी पड़ती हैं। यह जीव मरन, छेदन, भेदन, भूख, प्यास के कष्टों को नरक में सहता चला आ रहा है। यह वेचारा अज्ञानी जीव मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर रहा है केवल अपने किये कर्मों के कारण थोड़ा उपसर्ग मुझे सहन करना पड रहा है

जैसे कोई धनिक सर्वदा धन संचय करता रहे, पर वह चोरों के आने पर उसकी रक्षा न करे तो उसका धन संचय करना निरर्थक है, उसी प्रकार जो तपस्वी निरन्तर ध्यान में लीन रहता है, पर उपसर्ग के आने पर तप से विचलित हो जाता है, उसकी यह क्रिया भी सर्वदा निरर्थक है। अतएव अपनी शक्ति के अनुसार दृढ़ रहना चाहिये। शक्ति और बुद्धि के समन्वय से ही आत्मा का शोधन किया जा सकता है। तपस्या करने के लिये शक्ति का होना परम आवश्यक है। जिसमें दृढ़ता नहीं है, उपसर्ग सहन करने की शक्ति नहीं है, ऐसा व्यक्ति कर्मबन्धन को तोडने में असमर्थ है। जिस प्रकार अन्धेरे में दीपक से सूर्य के समान प्रकाश नहीं हो सकता है, उसी प्रकार अल्पशक्ति वाला कर्मबन्धन को नहीं तोड़ सकता है। कोई भी व्यक्ति जिनदीक्षा रूपी मार्ग के अभाव में, जिनेन्द्र-भक्ति रूपी घोड़े पर सवार हुए बिना, जिनेन्द्र आराधनारूपी चाबुक के अभाव में जिनागम के इष्टतत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है।

वस्तुतः जिनेश्वर ही अशरण की शरण है। इन्द्रियों और मनको वश में किये बिना किसी को भी जिनेश्वर का मार्ग नहीं मिल सकता है। संयम के सिवा अन्य कोई शरण नहीं है। इस प्रकार मुनिराज आत्म चिन्तन करते हुए

धर्म में लीन हो गये।

जब जलती हुई आग उनके हाथों के पास पहुँची तो कुहुनी अपने आप ही बिना ऊपर को उठाये, उठ गयी हाथों को उठता देख वह मन्त्रवादी साधक बहुत भयभीत हुआ और अपना सारा सामान वहीं छोड़ घर की ओर भागा। वह इतनी तेजी से भागा जा रहा था, जिससे उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई उसका पीछा कर रहा है। भय-विह्वल हो वह चिल्लाता हुआ दौड़ने लगा कि मुझे बचाओ, मेरे पीछे भूत लगा है।

जिनपालित मुनि को आग की लपटें चारों ओर से घेरे हुई थीं। दया से द्रवित मुनि सोचने लगे कि इस समय थोड़ा भी इधर—उधर हिलने से आसपास के जीवों की हिंसा होगी, अग्नि की लपटें इधर—उधर फैलकर निकटस्थ जीवों को जला देंगी। अतएव वे बिल्कुल ध्यानस्थ हो गये।

मुनिराज की ध्यानदृढ़ता को देखकर श्मशान भूमि के रक्षक देव का शासन हिल गया उसने समुद्र की गर्जना के समान भयंकर गर्जन किया तथा मुनिराज की जय—जय ध्वनि करने लगा। उसने उपसर्ग दूर कर नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से मुनिराज के चरणों की पूजा की और स्तुति करता हुआ कहने लगा—प्रभो! आपके समान धैर्यशाली कौन है? आपने अपने शरीर का तनिक भी मोह नहीं किया। धन्य है जैनधर्म, जिसके प्रभाव से ऐसे—ऐसे उपसर्ग विजयी साधु आज भी वर्तमान हैं। वास्तव में जिनेश्वर के चरणों की शरण प्राप्त हो जाने पर संसार में कुछ भी दुष्कर और दुर्लभ नहीं होता है। आपने शरीर, धन, परिग्रह आदि से ममत्व त्यागकर उपमातीत पदवी प्राप्त की है। ऐसे ही दुर्द्धर तपस्वी शरीर का मोह छोड़कर आत्म सिद्धि प्राप्त करते हैं। वस्तुतः जैन मुनियों की तपस्या बड़ी विलक्षण होती है, वे शरीर, स्त्री, पुत्र, धन धान्य आदि से मोह छोड़कर आत्मसिद्धि में संलग्न रहते हैं। ऐसे ही वीतरागी साधु सच्चे साधु या तपस्वी होते हैं।

जो साधु स्त्री, पुत्र में आसक्त हैं, विषय—वासनाओं की पुष्टि के लिये नाना प्रकार के आडम्बर करते हैं, वे कभी भी सच्चे तपस्वी नहीं हो सकते। जो उपसर्ग आने पर विचलित नहीं होते, संयम की सदा आराधना करते हैं भोगों की तनिक भी लालसा जिनके मन में नहीं होती वे साधु ही आत्म कल्याण करनेवाले कहे जा सकते हैं। देव आप धन्य हैं, आपने अपनी साधना के द्वारा आत्मसिद्धि प्राप्त की है। इस प्रकार नाना प्रकार से स्तुति कर वह श्मशान भूमि का शासक देव तिरोहित हो गया।

नगर में यह सारा समाचार हवा की तरह व्याप्त हो गया। नगर निवासी इस आश्चर्यकारी घटना को देखने के लिये दौड़ पड़े। जब सभी लोगों ने मुनिराज को अधजला ध्यानस्थ पाया तो वे सब आश्चर्य में डूब गये। प्रातःकाल हो जाने पर सूर्योदय हो गया था, अतः जिनपालित मुनि ने योग समाप्त किया।

जिनदत्त सेठ भी नगर वासियों के साथ इस चमत्कार को देखने के लिये आया था। वह मुनिराज से बहुत प्रभावित हुआ और उनके शरीर को रुग्ण समझकर सेवा करने के ख्याल से मुनिराज को अपने जिनालय में लिवा लाया।

जिनदत्त सेठ ने मुनिराज की बड़ी भक्ति के साथ परिचर्या की, उनके जले शरीर पर औषधि लगा दी। थोड़े दिनों में जिनदत्त सेठ की सेवा से मुनि का शरीर स्वस्थ हो गया। एक दिन मुनिराज ने विहार करने की बात जिनदत्त से कही।

जिनदत्त—गुरुवर ! कुछ दिन तक और यहीं रहने की कृपा करें। अभी आपका शरीर पूर्ण स्वस्थ नहीं है। कमजोरी अभी पूरी है, आपको चलने में कष्ट होगा।

मुनिराज—श्रेष्ठिन् ! मुनियों को एक नगर में ५ या ७ दिन से ज्यादा नहीं रहना चाहिये। हमको उज्जयिनी में रहते हुए आज पांच दिन हो गये, अब विहार करना आवश्यक है।

जिनदत्त—स्वामिन् ! आपका शरीर अभी ठीक नहीं है, रुग्णावस्था में कुछ दिन और ठहरना चाहिये। समय और परिस्थिति के अनुसार काम करना परम आवश्यक है।

मुनिराज—वत्स ! यह शरीर सदा अस्वस्थ है, आत्मकल्याणी इसकी परवाह नहीं करते। आत्मोद्धार के लिये ही तो हमने अपना घर द्वार छोड़ा है। हमें अब मोह करने से कोई लाभ नहीं।

जिनदत्त—स्वामिन् ! अभी आप मेरे आग्रह से दो दिन और ठहरें। चलने में आपको कष्ट होगा। कुछ घाव भी ठीक नहीं है, अतः दो एक दिन में वे भी अच्छे हो जायंगे।

मुनिराज—नहीं वत्स, नहीं। अपने नियम को हम नहीं तोड़ सकते हैं। वीर व्रती अपने मार्ग को नहीं छोड़ सकते।

इस प्रकार समझा बुझाकर मुनिराज ने विहार किया। जिनदत्त श्रावक भी उनको कुछ दूर तक पहुँचाने के लिये गया। मुनिराज ने उपदेश देकर उसे वापस किया।

जिनदत्त सेठ के पुत्र जिनदास ने जब पिता और मुनि को घर से बाहर जाते देखा तो जिस कमरे में मुनिराज रहते थे उस कमरे में गड़े हुए धन को गुन्डों की सहायता से निकाल लिया और धन के स्थान को ज्यों का त्यों ढक दिया।

जब जिनदत्त सेठ लौटकर आया तो अपने धनको देखने लगा। जिनदत्त को सोने, जवाहरात से अधिक मोह था, जब वह धन नहीं मिला तो उसके मन में बड़ी भारी बेचैनी हुई। जिनदास अनजान की तरह दूसरे कमरे में आकर सो गया।

बहुत सोच विचार के बाद जिनदत्त सेठ ने निश्चय किया कि निश्चय मेरा स्वर्ण रत्न का भण्डार मुनि ही खोदकर ले गये हैं। मुनिराज अभी दूर नहीं गये होंगे, उन्हें लौटाकर लाना चाहिये और जैसे हो वैसे उनसे धन वसूल करना चाहिये। हाय, आजकल के मुनि भी चोरी करते हैं, कहां तो इतना उपसर्ग सहना और कहां चोरी जैसा नीच कृत्य करना। इस कमरे में मुनिराज के सिवा और कोई आया ही नहीं, अतः उनको छोड़ और कौन ले गया होगा? इस प्रकार विचार कर वह कपट वृत्ति से मुनिराज के पास आया और नमस्कार कर कहने लगा–

स्वामिन्! आज आप अवश्य लौट चलें। विहार करने से आपका व्रत भी पूरा हो गया और अब पुनः पांच दिन ठहर सकते हैं। मेरी इच्छा आपसे व्रत लेने की है, मुझे ऐसा विश्वास है कि आपके द्वारा ही मेरा आत्म कल्याण हो सकेगा। आप कल चले जायें।

घर ले जाकर श्रीदत्त सेठ ने मुनि को एक पटा पर बैठा दिया और धन निकालने के अभिप्राय से निम्न कथा कहने लगा–

प्रभो! व्यघ्रखेट नगर में दिनकर का कराल नामक पुत्र था। यह पुत्र बचपन में अधिक लाड़–चाव रखने के कारण कुसंगति में पड़ गया और सप्तव्यसनों का सेवन करने लगा। वेश्या सेवन में इतना संलग्न था कि उसने अपना सारा धन इस दुर्व्यसन में बरबाद कर दिया। जब घर में धन नहीं रहा तो चोरी करना शुरू किया। एक दिन यह राजा के यहां चोरी करने को गया। जब धन चुरा कर जाने लगा तो पहरेदारों ने देख लिया और पकड़ने के लिये

उसका पीछा किया । कराल बेतहाश भागा और भागते-भागते जब वह थक गया और भाग निकलने की आशा नहीं रही तो एक दयालु सज्जन के चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा—स्वामिन् मैं आज से कभी चोरी नहीं करूंगा, आप मेरी रक्षा करें । धर्मात्मा व्यक्ति ने दया से द्रवित होकर अपने घर में शरण दी और जनाने कपड़े पहनाकर अपने घर की स्त्रियों में छिपा दिया । कोतवाल और पीछा करनेवाले चपरासियों ने उसके घर की तलाशी ली और स्त्री समझकर उसे छोड़ चले गये । वह रात भर घर में रहा, जब सब लोग सो गये तो चुपचाप उठा और उस घर की सारी धन-सम्पत्ति ले रफू-चक्कर हो गया ।

स्वामिन् क्या कराल का ऐसा करना उचित है ? शरणागत बनकर किसी को धोखा देना कितना बड़ा पाप है । जिसने शरण दी है, उसी को ठगना और उसके साथ विश्वासघात करना कहां तक उचित है ? आप स्वयं विचार करें ।

जिनपालित मुनि इस कथा को सुनकर अचम्भे में पड़ गये और जिनदत्त सेठ की आशंका समझकर निश्चय किया कि मालूम होता है कि जिस कमरे में मैं ठहरा था, उसमें का धन किसीने चुरा लिया है और इसका सन्देह हमारे ऊपर है, अतः ऐसी कथा कहनी चाहिये जिससे इसे अपनी गलती मालूम हो जाय । मुनिराज बोले—

प्राचीन काल में द्वारावती नगरी में उदार नारायण नाम का राजा राज्य करता था । यह अर्धचक्री राजा था । एक दिन इस नगर में दण्डक नाम के मुनिराज आये । राजा मुनि आगमन सुन प्रसन्न हुआ और इनके निकट आ नमोऽस्तु कर उपदेश सुनने लगा । मुनिराज व्याधि से पीड़ित होने के कारण बहुत ही कृश हो गये थे । मुनिराज को रोगी समझ उनकी परिचर्या करने के ख्याल से राजा ने प्रार्थना की प्रभो ! चातुर्मास यहीं कीजिये, हमलोगों को उपदेश का लाभ होगा । आप जैसे गुरुओं का समागम बड़े ही पुण्योदय से होता है । ज्यादा आग्रह देखकर मुनिराज ने तथास्तु कह दिया । महाराज का चातुर्मास द्वारावती में हो गया ।

राजा ने एक दिन श्रीकान्त नाम के वैद्य को एकान्त में बुलाया और मुनिराज की व्याधि को दूर करने के लिये कहा । श्रीकान्त वैद्य ने राजा के आदेश से औषधि तैयार की और उसे रानियों के पास भिजवा दिया तथा यह आदेश दे दिया गया कि चावल के आटे में मिला कर लड्डू बनाकर इस औषध को दे देना पड़ेगा । मुनिराज औषध

के नाम पर कुछ भी नहीं लेंगे अतः चुप-चाप उनको दवा दे देनी चाहिये। मुनिराज का जहां-जहां अहार होता था, औषध मिश्रित लड्डू वहीं-वहीं भिजवा दिये जाते थे।

कुछ दिनों के उपरान्त मुनिराज अच्छे हो गये तो वैद्यराज अपनी महिमा प्रकट करने के ख्याल से सोचने लगे कि मैं मुनिराज को अपना परिचय दूंगा तो वे बहुत प्रसन्न होंगे और मेरी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त हो जायगी। एक दिन जब राजा उपदेश सुन रहा था तो वैद्य भी वहीं पहुँच गया और मुनिराज और राजा को नमस्कार कर कहने लगा--असाध्य रोग को मैंने बड़ी बुद्धिमानी पूर्वक दूर किया है। मुनिराज ने इस बातको सुनकर वैद्य की कुछ प्रशंसा नहीं की केवल इतना ही कह कर रह गये कि जब तक अशुभ कर्मोदय है, कष्ट भोगना पड़ता है। शुभोदय आते ही व्याधि दूर हो जाती है।

वैद्यराज मुनिराज के वचनों के मर्म को न समझ कर मन में कहने लगा—मैंने इतना इनका उपकार किया, फिर भी यह कर्मों की बात कह रहे हैं। अच्छा देखूंगा, इनके कर्मों को। दस-पांच दिन के बाद ही वैद्यराज का आर्त्त-ध्यान पूर्वक मरण हो गया, जिससे वह मरकर बन्दर हुए।

मुनिराज द्वारावती से विहार कर उसी वन में गये जहां वैद्यराज का जीव बन्दर हो गया था। ज्यों ही प्रत्याख्यान कर मुनि आम के पेड़ के नीचे बैठकर सामायिक करने लगे कि आम पर बैठे बन्दर की दृष्टि उनपर पड़ी और पूर्वजन्म के वैर का स्मरण कर एक सूखी लकड़ी तोड़कर मुनि की जांघ में घुसेड़ दी। मुनिराज उपसर्ग समझकर आत्मध्यान में लीन हो गये, उन्होंने शरीर से अपना मोह दूर कर दिया।

बन्दर ने जब सुमेरु पर्वत के समान मुनिराज को आत्मध्यान में लीन देखा तो उनकी अहिंसक प्रवृत्ति का उसपर अपूर्व प्रभाव पड़ा। उसका हृदय बदल गया, परिणामों में परिवर्तन हो गया। पश्चात्ताप करते हुए वह किसी जंगली पेड़ का पत्ता तोड़ कर ले आया और उसे मुनिराज के घाव में डाल दिया जिससे उनका घाव तत्काल अच्छा हो गया। बन्दर ने मुनिराज के पास बैठकर अणुव्रत ग्रहण किये और धर्मध्यान पूर्वक शरीर का त्याग किया, जिसके प्रभाव के वह देव हुआ।

श्रेष्ठिन्! बिना बिचारे काम करने से दुर्गति प्राप्त होती है। प्रायः बिना बिचारे ही लोग साधुओं को कष्ट देते हैं।

जिनदत्त इस कथा को सुनकर सोचने लगा, जीवन भर की अर्जित सम्पत्ति को कैसे छोड़ूं ? अतः वह भी मुनिराज को सचेत करने वाली कथा कहने लगा—

भानुपुरा नाम के नगर में हीन बुद्धि कपिल नाम का ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह सोचने लगा कि गरुड़ विद्या सीखकर चारों ओर चमत्कार फैलाया जा सकता है, अतएव वह यश कमाने की लालसा से पूर्व देश के एक मंत्रवादी के पास विद्या सीखने गया। इधर-उधर से मिष्ठान्न एकत्रित कर वह उदरपोषण करने लगा। जब विद्या समाप्त कर चुका तो वह अपने घर को वापस लौटा। रास्ते में उसे एक मरा व्याघ्र मिला, यह व्याघ्र सांप के काटने से पञ्चत्व को प्राप्त हुआ था। उसने मन्त्र परीक्षा करने के लिये उस बाघ की हड्डियों को एकत्रित किया और मांत्रित जल उसके ऊपर छोड़ दिया, जिससे बाघ जिन्दा हो गया और उपकार का स्मरण न कर उस कपिल को खा गया।

हे मुनिराज क्या उस व्याघ्र का यह कार्य उचित कहा जायगा। उपकारी के उपकार का यह बदला देना कहां तक उचित है, आप स्वयं विचार करें।

मुनिराज जिनदत्त की असद् वृत्ति को ज्यों की त्यों देखकर उसके भ्रमोच्छेदन के लिये कहने लगे—

केसरीपुर नाम के नगर में वासव नाम का राजा राज्य करता था। उनकी प्रकाशमान कीर्त्ति चारों ओर व्याप्त थी। इस नगर के राजसेठ के लड़के का नाम नन्दन था। लड़का प्रतिदिन नाना प्रकार के आभूषण पहन कर खेलने जाता था। पड़ोसी की एक स्त्री को उस बच्चे के आभूषणों को देखकर लालच आ गया। उसने विचार किया कि इस बच्चे की हत्या कर उसके आभूषण ले लेने चाहिये। यहां कौन देखता है ? इस प्रकार निश्चय कर वह फुसलाकर बच्चे को अपने घर के भीतर ले गयी तथा गला दबाकर उसकी हत्या कर दी और कोई इस बात को जान न जाय, इसलिये लाश को सांड़ के सींगों में लटका दिया। लोगों ने समझा कि वास्तव में सांड़ ने अपने सींगों से बच्चे को मार डाला है।

बच्चे के न मिलने से मां-बाप को बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे नाना प्रकार से विलाप करने लगे तथा पुत्र के ढूंढने के लिये प्रयास किया। अकस्मात् सींग में बच्चे की लाश को लटकाये हुए आते सांड़ को देखा। वे तुरंत समझ गये कि इस पापी सांड़ ने ही हमारे बच्चे को मार डाला है, अतः पूंछ पकड़ कर सांड़ को मारने लगे। सांड़

खाने से मुंह फाड़ कर रंभाने लगा।

सांड़ दौड़कर एक लुहार की दुकान में घुस गया और वहां से गर्म लोहे को मुंह से उठाकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये, ले कर आ गया। लोगों ने जब सांड़ के इस कृत्य को देखा तो बहुत प्रभावित हुए और उसे निर्दोष समझ सोचने लगे कि आभूषणों के लोभ से अवश्य इसे किसी लालची ने मारा है। अतएव कोतवाल को खबर देनी चाहिये। खबर पाकर पुलिस आई और उसने गुप्त रीति से जांचकर वास्तविक हत्यारे का पता लगा लिया। राजसेठ वास्तविक हत्यारे को जानकर तथा सांड़ को निर्दोष समझ अपनी गलती पर पछताने लगा। अतः बिना बिचारे कभी कोई काम नहीं करना चाहिये।

इस कथा को सुन कर जिनदत्त ने विचार किया कि एक कथा और कहता हूं, जिससे निश्चय ही मेरा धन मिल जायगा। वह कहने लगा—

भारती नाम की नदी के किनारे पर कापालिक नामका एक साधु रहता था। एक दिन नदी में बाढ़ आयी। इस बाढ़ में एक हाथी का बच्चा एक पेड़ के सहारे बहते हुए चला जा रहा था। कापालिक को उस हाथी के बच्चे पर दया आयी, अतः उसने अनेक मनुष्यों की सहायता से पानी के भीतर से उस बच्चे को निकाला और उसका पालन-पोषण करने लगा—

जब यह हाथी का बच्चा बड़ा हो गया तो यह ऐरावत हाथी के समान मालूम पड़ता था। राजा के पास जाकर किसी ने खबर दी कि कापालिक का हाथी सर्वश्रेष्ठ है तो राजा ने दूत भेजकर कापालिक से हाथी मंगवाया। राजा का आदेश मानकर कापालिक ने हाथी दे दिया, किन्तु प्रतिदिन सांकल तोड़कर वह हाथी राजा के यहां से चला आता था। जब लोगों ने हाथी को अधिक तंग किया तो उसने अनेक व्यक्तियों की हत्या कर दी, इससे राजा बहुत ही असन्तुष्ट हुआ। राजा को क्रोधित जानकर कापालिक स्वयं हाथी को लेकर गया और उसे मजबूत बन्धन में बंधवा दिया।

दूसरे दिन क्रुद्ध होकर हाथी आया और उसने कापालिक को ही मार डाला। मुनिराज क्या हाथी का यह कार्य उपयुक्त था? दुर्गुणी उपकार करने पर भी अपकार ही करते हैं।

जिनपालित मुनि इस कथा को सुनकर मन में विचार करने लगे कि लोभी के मन और बाढ़ के पानी को

निर्मल करना बड़ा कठिन है। शायद अबकी कथा कहने से यह अपने भ्रम को दूर कर सके। अतः वह बोले—

दन्तीपुर नाम का एक नगर था। इसमें अनन्तश्री नाम की सुन्दरी वेश्या रहती थी, इसकी वासवदत्ता नाम की सखी थी, इसने अनन्तश्री को सुन्दर तोता लाकर दिया। पिंजड़े में रखकर तोते को सारी चेष्टाएं और हाव-भाव सिखलाने प्रारम्भ किये। तोते के कारण नगर की सभी वेश्याएं उससे ईर्ष्या करती थी, इससे उन लोगों ने अनन्तश्री को मारने के लिये वासवदत्ता को धन देकर अपने अधीन कर लिया। वासवदत्ता ने शराब में विष मिलाकर अनन्तश्री को दिया। अनन्तश्री कहने लगी—थोड़ी देर में मैं पीऊंगी अभी तू गिलास को आले में रख दे। वासवदत्ता किसी काम से बाहर चली गयी और अनन्तश्री की आंखों में नींद आ गयी।

पिंजड़े में बन्द तोते का ध्यान जब शराब की ओर गया तो उसने देखा कि शराब के वर्तन के ऊपर जितनी मक्खियां बैठती हैं, वे सभी शराब पीते ही मर जाती हैं। अतः शराब में विष समझ कर अपनी स्वामिनी की रक्षा के लिये उस गिलास को गिरा दिया।

जब अनन्तश्री की आंख खुली तो शराब के गिलास को गिरा हुआ देखकर उसे बहुत क्रोध आया और उस तोते के पिंजड़े को उठाकर पटक दिया, जिससे तोता मर गया।

शराब के पास मरी हुई मक्खियों को देखकर अनन्तश्री को शराब में मिले हुए बिष का निश्चय हो गया और बिना बिचारे किये गये कार्य पर पछताने लगी। उसके मन में तोते के मरने का बड़ा भारी शोक था, वह नाना प्रकार से विलाप करने लगी।

श्रेष्ठिन् ! बिना बिचारे काम करना या अपनी गलत धारणा बना लेना कहां तक ठीक है ? अनन्तश्री निर्दोष तोते को मारकर जिस प्रकार पछताई उसी प्रकार अज्ञानी जीव भ्रमवश कोई काम कर देने से पछताते हैं।

मुनिराज के वचन सुनकर सेठ के मन का मैल दूर नहीं हुआ, अतः वह धत्त निकालने के लिये एक कथा कहने लगा—

अवनी भूषण नाम के नगर में एक बढ़ई रहता था, बहुत ही बुद्धिमान था, बिन्ध्याचल पर्वत पर जाकर प्रतिदिन वृक्ष काटकर लाता था। एक दिन वह वृक्ष काट रहा था कि एक मदोन्मत जंगली हाथी उसी रास्ते से निकला।

हाथी से डरकर वह पेड़ पर चढ़ गया। जब हाथी निकल गया तो उस पेड़ से उतर आया और उसी को काट लिया। हे मुनिराज क्या उपकार करने वाले के साथ इस तरह अपकार करना ठीक है? सेठ की कथा को सुनकर मुनिराज को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि इसके मन में अभी सन्देह है अतः उसके सन्देह को दूर करने के लिये एक कथा कहने लगे—

इस पृथ्वी पर अमरखेट नाम का नगर था, इस नगर में चन्द्रदत्त नाम का ब्राह्मण अपनी यज्ञदत्ता नामक स्त्री के साथ आनन्दपूर्वक रहता था। इस स्त्री ने एक नेवला पाला। इसे वह सन्तान के समान प्रेम करती थी। एक दिन यज्ञदत्ता बच्चे को पालने में सुलाकर पानी भरने चली गयी। बच्चा नींद में आनन्द पूर्वक सो रहा था, इतने में एक सांप निकला और बच्चे को काटने के लिये दौड़ा। नेवला ने बीच में ही झपट कर उस भयंकर सांप को पकड़ लिया और उसके टुकडे-टुकडे कर डाले। नेवला अपनी स्वामी भक्ति को दिखलाने के लिये दरवाजे पर आ गया। जब ब्राह्मणी पानी भरकर लौटी तो नेवले के मुंह पर खून लगा देखकर बहुत क्रोधित हुई और आवेश में आकर भरा घड़ा उसके ऊपर पटक दिया तथा विलाप करने लगी—पापी तूने मेरे बच्चे को मार डाला, ले अपनी करनी का फल भोग।

वह ब्राह्मणी रोती हुई घर में आयी तो बच्चे को आनन्द से सोते देखा तथा उसके पास भयंकर सांप के कई टुकडे देख विलाप करने लगी। उसे नेवले की याद सताने लगी, अपने बिना बिचारे किये गये कार्य पर उसे बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ।

श्रेष्ठिन्! बिना विचारे जो कार्य करते हैं, जिनके मन में झूठा सन्देह उत्पन्न हो जाता है, वे वस्तुतः अपनी बड़ी भारी हानि उठाते हैं।

इस कथा को सुनकर भी जिनदत्त सेठ के मन का सन्देह दूर नहीं हुआ और वह पुनः एक कथा धन निकालने के लिये कहने लगा—

प्राचीन काल में कामुक बन था, उसमें एक कुआ था कुएं में एक बाघ, एक सांप, एक बन्दर और एक मनुष्य भूल से गिर गये थे। एक दिन उस रास्ते से एक ब्राह्मण गंगा स्नान के लिये निकला, उसे रास्ते में बहुत प्यास लगी अतः घबड़ा कर जल की तलाश में उस कुए पर आया। जैसे ही उसने अपने लोटे को कुए में जल भरने के लिये लटकाया कि बाघ

ने लोटे को पकड़ लिया। जिस किसी तरह से उसने बाघ को कुंए के बाहर निकाला। बाहर आकर बाघ ने आश्वासन दिया कि तुम घबड़ाओ मत, मेरे द्वारा तुम्हारी किसी भी प्रकार की हानि नहीं होगी, बल्कि मैं तुम्हारे उपकार का बदला चुका दूंगा।

दूसरे बार लोटा लटकाने पर सांप लोटे में बैठकर आ गया, उसने भी उसे उपकार करने का आश्वासन दिया और जंगल की ओर चला गया। तीसरी बार लोटा डालने पर बन्दर चला आया और वह भी नमस्कार कर कहने लगा आपने मुझे जीवन दान दिया है, अतः मैं आपकी सब प्रकार से सहायता करता रहूंगा।

ब्राह्मण—इस समय मुझे सहायता की आवश्यकता नहीं है, समय आने पर आप मेरी सहायता करें। प्रत्येक प्राणी का यह धर्म है कि वह अपने उपकारी का स्मरण रखे।

चौथी बार कुंए में लोटा फांसने पर सुनार भी लटक कर चला आया और वह भी नमस्कार कर विपत्ति पड़ने पर सहायता का आश्वासन देकर चला गया।

गंगा स्नान कर जब ब्राह्मण लौटा तो उसने सर्व प्रथम बन्दर से भेंट की। बन्दर ने उसे मधुर, सुस्वादु फल दिये। कुछ समय तक विश्राम कर वह बाघ के पास गया और उसने भी सम्मान और विनय पूर्वक नमस्कार किया और अमूल्य रत्न भेंट दिये। इसके पश्चात् वह ब्राह्मण ताम्रकूट नगर में सुनार के पास आया। यह भी अपने उपकारी को प्राप्त कर प्रसन्न हुआ। पर ब्राह्मण के पास रत्न भंडार देखकर उसके मन में लोभ आ गया। उस दुष्ट सुनार ने ब्राह्मण को एक स्थान पर ठहरा दिया और पुलिस को सूचना दी कि इसने चोरी की है। सूचना पाकर पुलिस वहां आ गयी और उसने ब्राह्मण को पकड लिया तथा राजा के सामने ला उपस्थित किया।

विपत्ति आयी हुई समझ कर ब्राह्मण ने सांप का स्मरण किया। अपने वचनानुसार सर्पराज उपस्थित हुआ और उसने राजकुमार को डस लिया। सांप के डसते ही राजकुमार मूर्छित हो गया। सांप ने राजा को स्वप्न दिया कि जब तक तुम निर्दोष ब्राह्मण को मुक्त नहीं करोगे, राजकुमार अच्छा नहीं हो सकता है। इस प्रकार सांप ने ब्राह्मण को कारागृह से मुक्त कराया और उसका धन भी दिला दिया।

मुनिराज क्या उस सुनार का इस प्रकार अपकार करना उचित था ? जो उपकारी के साथ अपकार करता

है, वह वास्तव में बड़ा ही नीच है। एसे व्यक्ति के लोक-परलोक सभी विगड़ जाते हैं।

जिनदत्त सेठ के मन में ज्यों का त्यों सन्देह देखकर मुनिराज पुनः कथा कहने लगे—

अवन्तिदेश में उज्जयिनी नाम का नगर है। इसमें महेन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। इसका कुवेर नाम का राजश्रेष्ठि था। एक दिन राजा अपने सभी दरबारियों के साथ वन क्रीड़ा के लिये गया। कुवेरदत्त सेठ को क्रीड़ा करते हुए एक आम का पका फल मिला। छानबीन कर सेठ ने निश्चय किया कि फल का अद्भुत प्रभाव है। बुड्ढा इसके सेवन से जवान बन सकता है, श्वेत केश काले हो जाते हैं, समस्त रोग और विपत्ति इसके सेवन से दूर हो जाती हैं। अतः इसके बीज को राजा को भेंट करना सर्वश्रेष्ठ है, राजा इसे पाकर बहुत प्रसन्न होंगे और अपार धनराशि मुझे प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार ऊहा पोहकर वह उस फल के बीज को मालव नरेश के पास लेकर गया।

मालव नरेश—श्रेष्ठिन् ! यह बीज कहां से लाये हो ? इसका क्या गुण है ?

सेठ—राजन् ! यह बीज अमृतफल का बीज है। इसका फल खाने से बुड्ढा जवान हो जाता है; श्वेत केश काले हो जाते हैं और सभी प्रकार की व्याधियां दूर हो जाती हैं।

मालव नरेश सेठ के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और पर्याप्त पुरस्कार देकर उसे विदा किया। राजा सोचने लगा—जैनधर्मानुयायी कुवेरदत्त सेठ के वचन कभी भी असत्य नहीं हो सकते हैं। अतः अपनी सेना, सामन्त, परिवार आदि को स्वस्थ रखने के लिये इस बीज को अपने बगीचे में बो देना अच्छा होगा। ऐसा विचार कर उसने उस आम के बीज को अपने बगीचे में बो देने का आदेश दिया।

थोड़े दिनों के उपरान्त जब आम का पेड़ बड़ा हुआ, उस पर फल आये तो एक चील मरे हुए सांप को लेकर आकाश मार्ग से जा रही थी। सांप के शरीर से रक्त टपक रहा था। इस विषैले रक्त की एक बून्द उस आम के पेड़ पर गिर गई, जिस विष के प्रभाव से एक फल पक कर पीला हो गया। वनमाली ने उसे पका समझ कर राजा को दे दिया। राजा ने अपनी मनोकामना पूरी होते देखकर माली को खूब इनाम दिया और फल राजकुमार को खाने के लिये दिया गया। उस विषैले फल के भक्षण से राजकुमार की तत्काल मृत्यु हो गयी, जिससे राजा कुवेरदत्त सेठ से बहुत अप्रसन्न हुआ। उसकी सम्पत्ति लूट ली गयी और उसे कारागृह में बन्द कर दिया गया। अन्य लोगों का अनिष्ट न हो

जाय, इसलिये राजा ने उस आम्र वृक्ष को काटने का आदेश दे दिया।

जब नगर के दुःखी, दीन और वृद्धों ने यह समाचार सुना कि राजा की वाटिका के कटे हुए आम के पेड़ के फलों के खाने से तत्काल मृत्यु हो जाती है, तो वे बेचारे जीवन के कष्टों से छुटकारा पाने के लिये बगीचे में गये और उस तथाकथित विष वृक्ष के फलों को खाकर चंगे और स्वस्थ बन गये। धीरे धीरे यह सब समाचार राजा के पास पहुँचा तो वास्तविक बात ज्ञात कर राजा को बहुत कष्ट हुआ। राजा पछताता हुआ तत्काल कारागृह में कुबेरदत्त सेठ के पास गया और उसे बन्धन मुक्त कर क्षमा याचना करने लगा।

श्रेष्ठिन् ! बिना विचारे जो काम करता है, उसे महेन्द्र राजा के समान पश्चात्ताप करना पड़ता है। किसी पर झूठा सन्देह करना अच्छा नहीं होता है।

जिनदत्त सेठ का संशय इस कथा से भी दूर नहीं हुआ। उसे बार बार धन की याद आ रही थी, अतः वह पुनः धन प्राप्ति की लालसा से कथा कहने लगा—

सानन्द गिरि नाम के नगर में पुलिंद और अमित नाम के दो मित्र रहते थे, वे घूमते हुए दैत्य नामक वन में गये। चलते चलते पुलिंद को प्यास लगी। पानी का पता उसे एक बन्दर से मिला। उसने जलाशय में जाकर खूब पानी पिया, पश्चात् विचारने लगा कि आगे चलने पर पुनः प्यास लगेगी, अतः इस बन्दर को मार कर इसके चमड़े की थैली बनाकर पानी रख लेना चाहिये। अपने निश्चय के अनुसार उसने बन्दर को मार दिया और उसके चमड़े की थैली बना कर उस में पानी भर लिया और आगे चला। हे मुनिराज ! उस उपकारी बन्दर के साथ उसका यह अपकार करना उचित था ?

मुनिराज इस कथा को सुनकर आश्चर्य में पड़ गये और उसके सन्देह को दूर करने के लिये निम्न कथा कहने लगे—

इस पृथ्वी पर कौशाम्बी नाम का नगर था। इसमें विशाख नाम का एक बड़ा सेठ रहता था, इसके पुत्र का नाम अंगारक था। अंगारक को रत्न, सोना और जरी के कीमती वस्त्रों से बहुत मोह था अतः वह इन सब वस्तुओं को एकत्रित कर अपने कमरे में बैठ गया। उसने अपनी सबसे प्रिय चन्द्रकान्तमणि को भी जरी के कपड़ों के ऊपर रख दिया। इतने में वहां मेधावी नाम के मुनि भ्रमण करते हुए चर्या के लिये आये। विशाख सेठ ने मुनिराज को भक्तिपूर्वक

पड़गाहा और आहारदान दिया। पुत्र भी इस कार्य में शामिल था। इसी बीच वहां एक चील उड़ती हुई आयी और चन्द्रकान्तमणि को मान्स पिंड समझ उठाकर ले गयी।

मुनिराज को आहार दान देने से पञ्चाश्चर्य हुए। नगर में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। अंगारक चन्द्रकान्तमणि को देखने के लिये आया और मणि को कमरे में न पा, मुनि को ही चोर समझा। अतः जल्दी ही सेठ पुत्र मुनिराज के पास पहुँचा और उन्हें झूठी बातों में फंसाकर अपने घर लिवा लाया तथा मुनि को आसन पर बैठा कर कहने लगा—स्वामिन् ! आप सब कुछ छोड़कर भी रत्न के ऊपर क्यों मोह करते हैं ? आपने रत्न क्यों चुराया ? आप जल्दी ही चन्द्रकान्तमणि को दीजिये, अन्यथा आपकी पूरी खबर ली जायगी।

सेठ पुत्र के उपर्युक्त वचनों को सुनकर मुनिराज विचारने लगे—इस पापी से बातें करना व्यर्थ है, अतः मौन रहना ही श्रेयस्कर होगा।

बार-बार पूछने पर जब मुनिराज कुछ नहीं बोले तो उसका सन्देह और भी दृढ़ हो गया। अतः उसने मुनि को चोर समझ कर मारना-पीटना आरम्भ-किया। यहीं तक नहीं उसने आग से भी मुनि को जलाया। मुनिराज सुमेरु के समान अपने ध्यान में लीन रहे, जिनेन्द्र स्वरूप का चिन्तन करते रहे। उपसर्ग आने पर मुनिराज ध्यान में इतने लीन हो गये कि उन्हें शुक्ल ध्यान प्राप्त हो गया और क्षपक श्रेणि चढ़कर घातिया कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया।

केवल ज्ञान प्राप्त होते ही चारों निकाय के देवों ने आकर मुनिराज की पूजा की। इसमें अंगारक को बहुत आश्चर्य हुआ और डर गया। मुनिराज को मारते समय लकड़ी का एक टुकड़ा पेड़ पर बैठी चील को उचट कर लगा, जिससे चन्द्रकान्त मणि उसके गले से निकल पड़ी। मणि को पेड़ के ऊपर से गिरता देखकर अंगारक बहुत दुःखी हुआ और पछताने लगा—मैंने मुनि को व्यर्थ कष्ट दिया है। कितने बड़े पाप का मैंने बन्ध किया है। मुझसा पापी संसार में कौन होगा ? इस प्रकार आत्मलोचना करते हुए उसे संसार से विरक्ति हो गयी और उन्हीं केवली के पास आकर दीक्षा ग्रहण की।

मुनिराज इतना कह कर मौन हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि अज्ञानी के साथ अधिक बातें करना निरर्थक

स्त्री वसन्ततिलका उस समय भी वन विहार कर रही थीं। वसन्त अपनी स्त्री को धनुर्विद्या दिखलाने के लिये बाणों द्वारा आम के फलों को उसके हाथ में पहुँचा रहा था। राजकुमार इस दृश्य को देखकर बहुत प्रभावित हुआ और अपने मन में धनुर्विद्या सीखने का संकल्प कर स्त्री को वहीं सोती छोड़ पाटलीपुत्र में द्रोणाचार्य के पास आया। उसने आते ही गुरु चरणों में अमूल्यरत्न चढ़ाये और हाथ जोड़कर विद्यादान की प्रार्थना की।

द्रोणाचार्य ने आकृति और रूप–गुण से उसे कोई राजकुमार समझा। वह सोचने लगे कि त्यागवृत्ति और धार्मिक गुण राजा में होते हैं, ब्राह्मणों में उद्दण्डता, वैश्यों में लोभ और शूद्रों में मूढ़ता रहती है। अतएव यह विनयी अवश्य ही क्षत्रियकुमार है। अतः द्रोणाचार्य ने उससे पूछा—तुम्हार नाम क्या है? कहां रहते हो? किसलिये यहां आये हो और क्या चाहते हो?

प्रमातिकुमार—मैं जिन भगवान् का भक्त ब्राह्मण पुत्र हूं और धनुर्विद्या सीखने के लिये आपकी सेवा में आया हूं। आपका यश मेरे कानों में पहुँचा था, अतः प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये उपस्थित हुआ हूं।

द्रोणाचार्य प्रमातिकुमार को सुयोग्य जैनधर्मानुयायी समझ अपने विद्यालय में ले आये और उसे धनुर्विद्या सिखाने लगे। प्रमातिकुमार में विद्यार्थी के सभी गुण वर्तमान थे, वह अल्पाहारी, अप्रमादी, परिश्रमी, अध्यावसायी, जागरूक और मधुकरी वृत्ति से जीविका अर्जन करता हुआ रहता था। धीरे–धीरे धनुर्विद्या का अभ्यास करते–करते प्रमातिकुमार इस विद्या में परिपक्व हो गया। उसकी बुद्धि की प्रखरता गुरु को भी आश्चर्य में डाल रही थी।

एक दिन द्रोणाचार्य अपने सभी शिष्यों के साथ मालवदेश पहुँचे, यहां का राजा सिंहसेन था। इसकी पुत्री का नाम चन्द्रलेखा था। चन्द्रलेखा अपनी सखियों के साथ सहस्रकूट चैत्यालय का दर्शन कर लौट रही थी। इतने में एक मदोन्मत्त हाथी, चिग्घाड़ता हुआ और मार्ग में मिलनेवाले लोगों को रौंदता हुआ चन्द्रलेखा के निकट आया। चारों ओर हाहाकार मच गया, चन्द्रलेखा की सखियां तो इधर–उधर भाग गयीं, किन्तु वह अपने स्थान पर ही घबड़ा कर गिर गयी। उसने हाथी के उपसर्ग के दूर होने तक संन्यास ले लिया और भगवान् जिनेन्द्र का चिन्तन करने लगी। हाथी चन्द्रलेखा को पैरों के नीचे कुचलने वाला ही था, सभी लोग सड़क के किनारे पर खड़े इस दयनीय दृश्य को देख रहे थे। द्रोणाचार्य के शिष्य भी इस अप्रत्यासित घटना को देखकर घबड़ा गये। प्रमातिकुमार को चन्द्रलेखा पर दया आयी, अतः वह हाथी को पकड़ने के लिये दौड़ा। अपने अपूर्व बल और पराक्रम द्वारा उसने हाथी को वश में कर लिया

और हाथीशाला में उसे बंधवा दिया पश्चात् कुमारी चन्द्रलेखा की प्रशंसा करते हुए बोला–देवि ! आपके धर्म प्रेम को धन्य है। वास्तव में आप बड़ी धर्मात्मा हैं।

कुमारी चन्द्रलेखा प्रमातिकुमार के पुरुषार्थ और बल को देखकर बहुत प्रभावित हुई और उसने प्रमातिकुमार को अपने मनका आराध्य बनाने का निश्चय कर लिया।

कुमारी चन्द्रलेखा के निश्चयानुसार उसका विवाह चन्द्रबेध करने पर प्रमातिकुमार के साथ हो गया। परन्तु द्रोणाचार्य के अन्य शिष्यों को यह बात खटकी और वे उससे ईर्ष्या करने लगे। गुरु द्रोणाचार्य ने शिष्यों के मनको सन्तुष्ट करने के लिये एक दिन उनकी धनुर्विद्या की परीक्षा रखी। एक उद्यान में पहुँच कर द्रोणाचार्य ने शिष्यों को आदेश दिया कि सामनेवाले नारियल के पेड़ के नारियलों को अपने आप ले आओ, एक भी नारियल धरती पर गिरने न पावे।

प्रमातिकुमार से द्रोह करनेवाले सभी शिष्यों ने नारियलों को अपने पास लाने का उपाय किया, पर वे अपने पास फलों को लाने में असमर्थ रहे। जब द्रोणाचार्य ने जिनभक्त प्रमातिकुमार को आदेश दिया कि आकाश मार्ग से फलों को अपने पास लाओ तो वह अपनी चतुराई से शीघ्र ही नारियल के फलों को अपने पास ले आया। द्रोणाचार्य प्रमातिकुमार के बाण–कौशल को देखकर बहुत प्रभावित हुए और योग्य शिष्य की प्रशंसा करने लगे।

प्रमातिकुमार के इस कौशल ने अन्य शिष्यों के मन में और भी ईर्ष्या उत्पन्न कर दी और वे उसके अनिष्ट साधन में तत्पर हो गये। एक दिन जंगल में सभी साथी जा रहे थे कि मदोन्मत्त वनगज सामने आता दिखलायी दिया। साथियों ने प्रमातिकुमार को झूठ-मूठ में इसलिये बढ़ावा दिया कि यह समाप्त हो जाय या हाथी इसे घायल कर दे। प्रमातिकुमार धैर्य पूर्वक शान्तिनाथ भगवान् की स्तुति पढ़ता हुआ हाथी के पास गया और अपने पुण्य प्रभाव से उसे पालतू कुत्ते के समान वश में कर लिया। इस कार्य से उसके साथियों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और वे भी अपना वैर-विरोध छोड़कर उससे प्रेम करने लगे।

सच है संसार में पुण्य की महिमा विचित्र होती है; पुण्योदय से ही सारी चीजें उपलब्ध होती हैं। पुण्यात्मा को सभी भोगोपभोग अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। पुण्याक्षीण होने पर हाथ पर रखा धन भी चला जाता है। जैसे

छोटी-छोटी नदियां समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार पुण्य के प्रभाव से सभी लौकिक विभूतियां उपलब्ध हो जाती हैं। पुण्योदय होने पर सरलता से वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं, पर पुण्य के अभाव में लाख प्रयत्न करने पर भी वस्तुओं की उपलब्धि नहीं होती।

सूर्य के उदय से कमल विकसित होते हैं, पर चन्द्रमा के उदय से वे ही संकुचित हो जाते हैं; इसी प्रकार पुण्योदय से सुख मिलते हैं, पर पापोदय से सभी सुख विलीन हो जाते हैं। कर्मोदय वलवान् होने पर रस्सी सांप बन जाती है, गले का हार सर्प हो जाता है, भाई शत्रु बन जाता है, और हाथ पर रखा धन विलीन हो जाता है। प्राय देखा जाता है कि पाप के प्रभाव से मनुष्य आयुष्मान् होते हुए रोगी विद्वान् होते हुए, पागल, धनिक होते हुए भी मूर्ख और राजा होते हुए भी शासन हीन होता है।

इस प्रकार पुण्योदय के कारण चन्द्रलेखा का विवाह हो जाने के उपरान्त मालव देश का आधा राज्य भी प्रमातिकुमार को मिल गया।

एक दिन कौशाम्बी नगर से दूत आया और उसने कहा कि दन्तिबल राजा पर एक माण्डलिक राजा ने आक्रमण कर दिया है। शत्रुओं ने कौशाम्बी के दुर्ग को तोड़ दिया है। यद्यपि राजा दन्तिबल वीरतापूर्वक युद्ध कर रहा है, पर इस युद्ध में विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। दूत के मुख से इस बात को सुन कर प्रमातिकुमार क्रोधाभिभूत हो गया और तत्क्षण कौशाम्बी चलने की तैयारी करने लगा।

प्रमातिकुमार ने सोचा कि यदि मैं मालवानरेश से आज्ञा मागूंगा तो आज्ञा नहीं मिलेगी, अतः बिना कहे चुप-चाप चल देना चाहिये। इस प्रकार निश्चय कर चन्द्रलेखा को साथ ले एक रथ पर सवार हो चल दिया। रास्ते में छोटी छोटी नदियों का उलंघन मदोन्मत्त हाथी के समान करता हुआ आगे बढ़ा चला जा रहा था। जंगली जन्तुओं पर वाणों का प्रयोग कर चन्द्रलेखा को अपनी धनुर्विद्या का परिचय देता जा रहा था। रास्ते में उसने एक अजीव दृश्य देखा कि एक लुटेरों का सरदार द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बनाकर धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था प्रतिदिन वह भक्तिभाव पूर्वक पुष्पों से गुरु पूजा करता था, पश्चात् धनुर्विद्या का अभ्यास। इस प्रकार धनुष चलाने में उसने बड़ी भारी क्षमता और प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

सुवेग नामक चोर सरदार की दृष्टि जब चन्द्रलेखा पर पड़ी तो वह कामविह्वल हो गया। समस्त विवेक को खो उस रमणीरत्न को पाने की लालसा करने लगा उसने निश्चय किया कि इस युवक को मार इस रमणी को प्राप्त कर लूंगा। जब तक यह जीवित रहेगा,यह रमणी हाथ आने की नहीं। इस प्रकार निर्णय कर उसने समस्त डाकुओं को एकत्रित करने के लिये शंखध्वनि की, जिससे बात की बात में डाकू वहां एकत्रित हो गये और प्रमातिकुमार को चारों ओर से घेर लिया।

सरदार—कुमार ! तुम इस रमणी को हमें सौंप दो तो हम तुम्हें जीवित छोड़ सकते हैं। तुम से हमें कुछ भी द्वेष नहीं हैं। हम केवल तुम्हारी इस पत्नी को चाहते हैं। इस अनिन्द्य सुन्दरी को भोगने का तुम्हें अधिकार नहीं है। यह तो हम जैसे शासक को मिलनी चाहिये। अतएव तुम इसे हमें शीघ्र सौंपकर चले जाओ।

प्रमातिकुमार—रे मूर्ख ! जवान संभाल कर बोल। तुम्हें ऐसी बाते करते हुए लज्जा नहीं आती है। तुम कायर, बुजदिल और कामी कुत्ते हो। जो परस्त्री को देखकर ललचा जाता है, उसके समान नीच और धूर्त कौन होगा ? यदि तुम में शक्ति है तो सामने आकर अपनी शक्ति का परिचय दो। देखें—कौन किसे पराजित करता है।

सरदार—अरे ! जब मृत्यु आ जाती है, तब लोगों की अक्ल खराब हो जाती है। मालूम होता है कि होनहार अच्छा नहीं है। तुम्हारे प्राण इस शरीर को छोड़कर जाना चाहते हैं, इसीसे तुम इस प्रकार की बातें करते हो ? आयु के बिना कोई किसी को बचा नहीं सकता।

प्रमातिकुमार—अरे धूर्तराज, नीच, कामी ! तेरे जैसों को आत्मबल ही नहीं, जो परायी स्त्री को लेना चाहता है, उससे बढ़ कर नीच कौन हो सकता है ? अपनी स्त्री में ही सन्तोष रखना एक बड़ी भारी नैतिकता है। अपनी स्त्री के सिवा संसार की अन्य स्त्रियां मां, बहन और बेटी के समान हैं। तुम जैसे पापियों को मार कर ही मुझे शान्ति मिलेगी आओ मैदान में, दोनों की परीक्षा हो जायगी।

इस वार्तालाप के अनन्तर डाकुओं में और प्रमातिकुमार में घमासान युद्ध हुआ। प्रमातिकुमार ने निद्रा बाण के द्वारा सभी डाकुओं को मूर्छित कर दिया। डाकू सरदार जो दूर पर खड़ा यह दृश्य देख रहा था, उसने कहा—तुम क्या समझते हो, मैं इतनी जल्दी पराजित होनेवाला हूं। मैं अभी तुम्हें मौत के घाट उतारता हूं। मेरी बाण विद्या को

है। अतः उपसर्ग दूर होने तक चारों प्रकार के आहार का त्याग कर संन्यास ले लिया।

क्रोध से फुफकारता हुआ जिनदत्त बोला—अब जल्दी धन निकाल कर दो। अब ज्यादा बातें मैं नहीं सुनना चाहता हूं। मैं तुम्हें काट-काट कर टुकड़े कर दूंगा, अथवा अब सीधे सीधे मेरा धन दे दो। ढौगीं कहीं का, आया है मुनि बनने। चोरी ही करनी थी तो मुनि क्यों बने ? तुमने तो धर्म को भी लजाया।

इस प्रकार कहकर उसने किवाड़ बन्द कर लिये। जिनदास अलग बैठा हुआ पिता के कार्यों पर हंस रहा था। वह सोचने लगा कि मेरा पिता कितना बड़ा लोभी है। धन के लोभमें आकर व्यर्थ ही मुनिराज को कष्ट दे रहा है। धन चुराया मैंने है, मुनिराज बेचारे निर्दोष हैं। इस प्रकार कुछ देर विचार करने के उपरान्त उसके मन में धन से ग्लानि उत्पन्न हो गयी। वह पुनः सोचने लगा—

यह धन पाप का घर है। इसके कमाने में भी पाप और रक्षण करने में भी पाप। यह सब प्रकार से नरक ले जाने वाला है। मैंने धन चुरा कर बड़ा पाप किया। चोरी करने से कितना बड़ा अनिष्ट हो रहा है। निर्दोष मुनिराज मेरे कारण कष्ट पा रहे हैं। मैं पापी आनन्द से धन चुरा कर बैठा हूं और मुनिराज को कष्ट सहना पड़ रहा है। मैंने आज तक अपने कार्यों से किसी को भी सुख नहीं दिया है, इतने बड़े त्यागी, साधु के कष्ट का कारण मैं हूं। चोरी करना कितना बुरा काम है, चोर को नरक तो जाना ही पड़ता है, पर राज दण्ड, पंचदण्ड भी भोगना पड़ता है। चोरी करने से कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। आत्मा सदा व्याकुल होकर छटपटाती रहती है। चोर की आत्मा इतनी पतित हो जाती है जिससे वह हिताहित का विचार करना छोड़ देता है। वास्तव में चोरी करना बहुत बड़ा पाप है। अतएव मुझे इस धन को जल्दी ही पिता के सामने रख देना चाहिये, जिससे पिताजी मुनिराज को उपसर्ग देना बन्द कर दें।

इस प्रकार ऊहापोह कर जिन दास ने लिया हुआ सभी धन जिनदत्त के सामने रख दिया और यह कहते हुए क्षमा मांगी कि अज्ञानता के कारण चोरी की थी आप इन निर्दोषी मुनिराज को कष्ट न दें।

इस तरह कहकर जिनदास मुनिराज के चरणों में गिर गया और उनसे भी अपने अपराध की क्षमा मांगी। मुनिराज उपसर्ग दूर हुआ जानकर कहने लगे—

वत्स ! धर्म के समान संसार में कोई भी सुखकारी पदार्थ नहीं है। अचौर्य आत्म का धर्म है। यह जीव अनादि काल से ही इन पाप और कषायों के अधीन होकर संसार में भ्रमण कर रहा है। जीव क्रोध में अन्धा होकर गाली

देता है, भाई बन्धुओं की हत्या कर डालता है, पडोसियों का अहित करता है और न मालूम कितने पापों का करता है। इस प्रकार मानवश अपने को बड़ा और संसार के अन्य प्राणियों को छोटा समझता है। इस जीव ने माया छल कपट करके कितने प्राणियों को ठगा है, कितने प्राणियों को हानि पहुँचायी है; पर इसको तनिक भी सुख नहीं मिला। लोभ-कषाय भी अत्यन्त अहितकारक हैं। संसार के सभी पदार्थों के छोड़ देने पर भी लोभ के कारण यह जीव संसार में पुनः लिप्त हो जाता है। लोभी बड़े से बड़ा पाप करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाता। चोरी करना, लूटना, धन हड़प जाना आदि सभी लोभ के कारण होता है। लोभ के अधीन होकर मनुष्य अपने विवेक को खो देता है। वह बिल्कुल अन्धा बन जाता है। व्यर्थ ही इष्ट, अनिष्ट की कल्पना कर लेता है।

वत्स ! तुमने चोरी छोड़ दी, यह अच्छा किया। संसार में आत्मा का उद्धार करनेवाला धर्म ही है।

जिनदास—स्वामिन् ! मुझे अब संसार से विरक्ति हो रही है। अनादि काल से जन्म,मरण के दुःख सहने के उपरान्त अब मुझे यह व्रत ग्रहण करने का अवसर मिला है। स्वार्थ के सिवा संसार में कुछ नहीं है। मैंने यह अच्छी तरह से समझ लिया है कि व्रत ही इस जीव का कल्याण करने वाले हैं। अतएव मुझे व्रत देने की कृपा करें।

मुनिराज ने जिनदास के आग्रह को स्वीकार कर लिया और उसे श्रावक के व्रत दे दिये।

जिनदास ने कुछ दिनों के उपरान्त दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की और तपस्या कर अचौर्य व्रत के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त किया।

इस प्रकार गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को अचौर्यव्रत की कथा कही—

बारहवीं कथा समाप्त

तेरहवीं कथा

अस्तेय व्रत की कथा सुनकर महाराज श्रेणिक गद्गद् हो गये और गौतम गणधर से ब्रह्मचर्य व्रत की कथा सुनने की जिज्ञासा प्रकट की।

मगध सम्राट्—स्वामिन् कथा जानने के पूर्व मैं ब्रह्मचर्य व्रत का स्वरूप और उसका महत्व अवगत करना चाहता हूं। कृपया पहले इस व्रत का स्वरूप बतलाने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—राजन्! मैथुनरूप परिणामों को अब्रह्म कहते हैं, जबतक आत्मा स्वभाव में रमण करता रहता है, तबतक व्यक्ति ब्रह्मचारी माना जाता है। आत्म स्वभाव से च्युत होना ही कुशील या अब्रह्म है। परन्तु ब्रह्मचर्य की यह परिभाषा मुनिराजों के लिये है। श्रावक स्वदार सन्तोष व्रत का पालन करता है, वह अपनी स्त्री के सिवा संसार की सभी स्त्रीयों को मां, बहिन और पुत्री के समान समझता है, जो श्रावक इस व्रत का पालन करता है, उसकी देव भी पूजा करते हैं। इन्द्र-धरणेन्द्र के द्वारा पूज्य होकर अमरपद को प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्य व्रत में अपूर्व शक्ति होती है, इस व्रत के द्वारा मनुष्य अपनी आत्मशक्ति का विकास करता है, विद्या, मन्त्र और ब्रह्म (आत्मा) भी ब्रह्मचर्य के धारण से ही प्राप्त होते हैं। प्रत्येक श्रावक का परम कर्त्तव्य है कि वह स्वदार सन्तोष व्रत को धारण करे। परस्त्री सेवन या वेश्या सेवन से मनुष्य अपना बड़ा भारी ह्रास करता है। नरक का द्वार तो उसके लिये सदा खुला ही रहता है, पर इस लोक में भी उसे नाना प्रकार की हानियां उठानी पड़ती हैं। भयंकर से भयंकर रोग कुशील सेवन से हो जाते हैं, आयु और जीवन—शक्ति क्षीण हो जाती है, जिससे अकाल मरण हो जाता है।

ब्रह्मचर्य व्रत की महत्ता का वर्णन कौन कर सकता है? इस व्रत के प्रभाव से एक मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान् बन सकता है, एक दुर्बल व्यक्ति सबल बन सकता है और अल्प शक्ति वाला व्यक्ति महान् से महान् कार्यों को कर सकता है। ध्यान और तपस्या ब्रह्मचर्य के बिना सफल नहीं हो सकती अतएव आध्यात्मिक विकास के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना प्रत्येक नर-नारी के लिये आवश्यक है। जो नर या नारी जितने अधिक समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे उतने ही अधिक अपने लौकिक या पारलौकिक कार्यों में सफल होते हैं।

श्रेणिक—स्वामिन् ! ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से किसे विशेष फल की प्राप्ति हुई और उसे इस व्रत में किस प्रकार ख्याति मिली, आदि बातें समझाने की कृपा करें।

गौतम स्वामी—

वत्सकावती देश में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। इसमें दन्तबल नामका महामण्डलीक राजा शासन करता था, इसकी पट्टरानी धारिणी नाम की महादेवी थी। राजा वैभव में इन्द्र के समान, रूप में कामदेव के समान, धैर्य में पृथ्वी के तुल्य, अर्हन्त भगवान् के चरणों में भ्रमर के समान रत और साधर्मी भाइयों से गौ-वच्छ के समान वात्सल्य करनेवाला था। इस राजा के बड़े पुत्रका नाम प्रमातिकुमार था यह पुत्र भी पिता के समान नीतिवान् और ज्ञानवान् था।

वसन्तराज के आने पर वनपाल ने महाराज को सूचना दी कि आम्रवृक्षों पर मंजर आ गयी, लताएं पुष्पों से परिपूर्ण हो गयीं, कोयलें मधुर तानें छोड़ने लगीं और सारी प्रकृति आनन्द विभोर हो गयी है। महाराज वनक्रीड़ा के लिये चलें।

वनपाल द्वारा वसन्तराज के आगमन की सूचना पाकर महाराज दन्तबल ने बन विहार की तैयारी की, वह सेना को सजाकर सामन्त, राजकुमार आदि के साथ वनक्रीड़ा के लिये चला। वसन्तकालीन आकाश की निर्मलता को देखकर राजा रानी से कहने लगा—प्रिये आकाश कितना निर्मल है, इसका सौन्दर्य अनुपम है। प्रकृति इस समय अपनी अपूर्व छटा दिखला रही है। कुछ दूर और बढ़ने पर कमल परिपूर्ण तालाब को देखकर राजा कहने लगा—ये विकसित कमल ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो जिनेन्द्र के पाद पद्म ही हों। कुछ दूर और चलने पर उसे निर्मल पृथ्वी सम्यग्दृष्टि के चित्त के समान, अशोक वृक्ष सुकवि की मनोहर रचना के समान, चम्पा, चमेली और गुलाब के पुष्प रमणियों के विभिन्न अंगों के समान प्रतीत हुए।

सन्ध्या समय वनक्रीड़ा के पश्चात् राजा ने लता भवन में शयन किया और प्रमातिकुमार ने अपनी पत्नी सौन्दर्य देवी के साथ आम्रवृक्ष के कुंजों में निर्मित लता भवन में विश्राम किया। थोड़ी देर तक सौन्दर्य देवी के साथ राजकुमार वार्तालाप करता रहा। दिन भर की थकावट रहने के कारण सौन्दर्य देवी को निद्रा आ गयी, अतः कुमार उसे मृदुल पुष्प शय्या पर सुलाकर वनका दृश्य देखने के लिये चल दिया। उस समय सामन्त पुत्र वसन्त और उसकी

अभी तुमने देखा नहीं है।

प्रमातिकुमार — धन्य है आपको, और आपकी वाण विद्या को। एक राहगीर की स्त्री को छीनना वीरता है? क्या परस्त्री लम्पट वीर हो सकता है? रावण कितना वीर था; पर परस्त्री की लम्पटता ने उसका सर्वनाश कर दिया। क्या परस्त्री की आकांक्षा करनेवाले को यश मिल सकता है? वस्तुतः परस्त्री की कुदृष्टि भूखे सिंह के समान है जो व्यक्ति को खा जाती है। जो व्यक्ति परस्त्री में आसक्त रहते हैं उन्हें नाना प्रकार का कष्ट भोगना पड़ता है।

इस प्रकार समझाने पर भी सरदार के मन पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। अतः वह बड़े कौशल के साथ युद्ध करने लगा। प्रमातिकुमार के रथ को उसने वाणों से आच्छादित कर दिया, अग्नि वाण, धूम्रवाण, आदि के द्वारा प्रमातिकुमार को अनेक कष्ट दिये। यद्यपि प्रमातिकुमार ने बड़े ही कौशल से युद्ध किया, परन्तु सरदार की युद्ध विद्या के सामने उसका पराक्रम फीका पड़ गया। जब चन्द्रलेखा ने देखा कि पति की पराजय होने को है, तो उसने सोचा कि मृत्यु के पहले ही मर जाना श्रेष्ठ है। पति के मर जाने पर मैं इस दुष्ट के हाथ में पड़ूंगी और यह मेरे शीलव्रत का अपहरण कर लेगा, जिससे मुझे नरक और तिर्यञ्च गति में अनेक जन्म ग्रहण करने पड़ेंगे। जो स्त्री अपने पति को छोड़ अन्य पुरुष के साथ रमण करती है, वह निश्चय ही शूकरी, बन्दरी, भैंस, जंगली गाय आदि पर्यायों को प्राप्त होती है। प्राचीनकाल में अनेक रमणियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये अपने प्राणों का त्याग किया है।

विपत्ति के आने पर धैर्य रखना तथा अपने धर्म की रक्षा के लिये सब कुछ करने को तैयार रहना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। इस समय यदि मैं घबड़ा जाती हूं तो निश्चय ही मेरा अमूल्य शीलरत्न चला जायगा। अतएव मुझे अपने पति के मरने के पहले अपने प्राणों का त्याग कर देना उत्तम होगा।

इस प्रकार ऊहा-पोह कर चन्द्रलेखा रथ से उतर पड़ी और उस ओर चल पड़ी जिधर से सरदार के वाण आ रहे थे। जब सरदार ने उस अनुपम देवी की रूपराशि देखी तो वह अपना सब कुछ भूल गया। वाण चलाना छोड़ काम विह्वल उन्मत्त सा हो उसे पकड़ने के लिये दौड़ा, इसी बीच प्रमातिकुमार का एक वाण सरदार के मस्तक में लगा और उसने उसका काम तमाम कर दिया। सरदार के गिरते ही उसके अन्य साथी भाग गये और वह यमपुर चला गया।

पाप का फल तुरंत मिलता है, देर से नहीं। परस्त्री की आसक्ति से बुद्धि नष्ट हो जाती है। मति, गति, धैर्य, दया

आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं। मन, शरीर और आत्मा कलुषित हो जाते हैं, जिससे किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती है।

सम्यक्त्वचूड़ामणि प्रमातिकुमार ने उन डाकुओं की भी मूर्छा दूर कर दी, जिनको पहले सुला दिया था। इस प्रकार वह उस जंगल से आगे बढ़ा।

कौशाम्बी नगरी में आकर प्रमातिकुमार ने बड़े ही कौशल के साथ युद्ध किया। उसके शौर्य-पराक्रम को देखकर शत्रु के छक्के छूट गये। शत्रु सेना तितर-बितर हो भागने लगी। प्रमातिकुमार अकेला ही रणक्षेत्र में सर्वत्र दिखलायी पडता था, उसके सामने ठहरने की शक्ति किसी में नहीं थी। शत्रुपक्ष के सेनापति को उसने बात की बात में गिरफ्तार कर लिया और वह राजा के पास चला आया। अपने मयूर बाण से राजा के छत्र को पृथक कर, उसके रथ की ध्वजा को नीचे कर दिया। राजा घबड़ा गया और रणभूमि छोड़ भाग गया। प्रमातिकुमार को शत्रु सेना के भागने से बहुत माल हाथ लगा।

जब राजा दन्तिबल ने देखा कि कोई एक अपरिचित आकर उनकी ओर से युद्ध कर रहा है तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन ही मन देवी देवताओं की प्रशंसा करने लगे, उनका ख्याल था कि कोई परोक्ष सत्ता हो अथवा उसकी प्रेरणा से कोई राजा हमारी ओर से युद्ध कर रहा है। इस नये वीर की युद्ध शैली इतनी विचित्र और आकर्षक थी कि सभी लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

अकस्मात् पिता पुत्र की आंखें चार हुईं। पिता ने पुत्र को पहचान लिया और उनके हृदय का वात्सल्य उमड़ पड़ा। पुत्र की भी पितृभक्ति उमड़ पडी और वह भी पिता के चरणों में गिर गया। चन्द्रलेखा ने भी ससुर की चरणधूलि सिर पर चढ़ाई। इस तरह आपस में मिलकर सभी लोग खुश हुए। राजा ने पुत्र और पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया कि जैनधर्म की आराधना करते हुए अनन्तकाल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग करो। इस प्रकार प्रमातिकुमार कुटुम्बियों से मिला, शत्रु की पराजय हो जाने के बाद उसने धूमधाम से भगवान की पूजा की।

कुछ समय के पश्चात् दन्तिबल को संसार से विरक्ति हो गयी। उसने अपने पुत्र प्रमातिकुमार को राज्यभार दे दिया। प्रमातिकुमार भी पिता के आदेश के अनुसार पराक्रम पूर्वक राज्य करने लगा। कुछ दिनों के उपरान्त उस नगर में धर्मघोष नामके मुनिराज पधारे। प्रमातिकुमार को जब वनपाल से मुनिराज के आने का समाचार प्राप्त हुआ तो वह बहुत खुश हुआ। उसने वनपाल को खूब पुरस्कार दिया। वह सोचने लगा—मुनिराजों का दर्शन तीव्र पुण्योदय

के होने पर ही होता है। मेरा भाग्य धन्य है जो आज वीतरागी साधु के दर्शन का अवसर मिला। कर्मप्रक्षालन के लिये ऐसे सत् अवसर बहुत कम आते हैं। गुरुओं के समागम से मनुष्य अपने पापों को धो डालता है और अपनी आत्मा का कल्याण कर लेता है। वस्तुतः आज मैं धन्य हो गया। शायद मेरी भलाई इन्हीं के द्वारा होगी।

प्रमातिकुमार महाराज मन्त्रियों, सामन्तों और महाजनों सहित मुनिराज के दर्शन के लिये गया। उसने भक्तिभाव पूर्वक मुनिराज की वन्दना की और उनके चरणों के पास बैठ गया और मुनिराज से बोला—प्रभो ! निर्वाण-पद देनेवाले इस पवित्र जैनधर्म को जानने की मेरी इच्छा है। मैं अपने आत्म-कल्याण के लिये जैनतत्त्वों को जानना चाहता हूं। मेरा यह विश्वास है कि जिनेन्द्र भगवान ही एक सच्चे देव हैं, उनके अनुयायी जैनमुनि ही सच्चे तपस्वी हैं और जिनेन्द्र प्रभु के निर्दोष वचन ही सच्चे शास्त्र हैं। किसी भी जीव का उद्धार सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु की भक्ति करने से ही हो सकता है। संसार के समस्त पाप और कलुषितों से जिनेन्द्र भक्ति ही रक्षा कर सकती है। वे जीव धन्य हैं जो सदा जिन भक्ति में रत हैं। कृपया तत्त्वों के सम्बन्ध में कुछ बतलाने का कष्ट करें।

मुनिराज—वत्स ! वस्तु के भाव का नाम तत्त्व है। वे पदार्थ जिनके बिना संसार का काम विल्कुल नहीं चल सकता है तथा जिनका सद्भाव सदा बना रहता है, तत्त्व हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध,संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं।

मुनिराज ने इन तत्त्वों का विस्तार सहित निरूपण किया, जिसे सुनकर महाराज प्रमातिकुमार को अपूर्व हर्ष हुआ। श्रावक के नित्यप्रति में किये जाने वाले षट्कर्मों के करने का नियम भी महाराज ने लिया। पश्चात् मुनिराज से परस्त्री लम्पट सुवेग नामक डाकुओं के सरदार की कौनसी गति हुई, यह जानने की इच्छा बताई। प्रमातिकुमार ने सुवेग को उसके दुष्कृत्यों के कारण यमपुर भेजा था,पर उनके मन में उसकी गति जानने की अभिलाषा वर्तमान थी। अवधि-ज्ञानी धर्मघोष मुनिराज प्रमातिकुमार की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये कहने लगे—

जिस सुवेग डाकू सरदार की गति के सम्बन्ध में तुम्हें चिन्ता हुई है, वह परस्त्री लम्पटता के कारण नरक में गया है और वहां पर नाना तरह की वेदनाएं भोग रहा है। प्रथम तो स्त्री में आसक्ति ही मोह का कारण और पापवर्धक है। जब कोई व्यक्ति परस्त्री में आसक्त हो जाता है, तो उसकी विद्या, बुद्धि सब चली जाती है और वह नरक

में महान् दुःखों को भोगता है। यह व्यक्ति चावल छोड़ कर भूसा खाने वाले के समान मूर्ख, हाथी छोड़ गधे पर सवारी करने वाले के समान निर्बुद्धि, केला छोड़ केला के पत्ता खाने वाले के समान अविवेकी, और गन्ना छोड़ गन्ने की जड़ खाने वाले के समान बुद्धिभ्रष्ट होता है। ऐसा व्यक्ति अपना और पर का कुछ भी भला नहीं कर सकता, बल्कि संसार में निरन्तर पापार्जन करता हुआ अपने भव-जाल को बढ़ाता रहता है।

जैसे सिंह को देखकर हाथी, सांप को देखकर मेढ़क, गरुड़ को देखकर सांप भयभीत हो जाता है, उसी प्रकार परस्त्री सेवन की भावना से भयभीत होना चाहिये। जो व्यक्ति सदा पाप से भयभीत रहता है, वह निश्चय ही कुशील सेवन से बच जाता है। जो परस्त्री में माता, बहन और पुत्री की भावना रखता है, वह वस्तुतः संसार में कल्याण कर लेता है। परनारी की दृष्टि को कालकूट के समान, उसके केशों को सर्प के समान, उसके मस्तक पर लगी मणियों को सर्पफण के समान, उसकी नाक को बाघ की मूंछ के समान, मुंह को सिंहनी के मुंह के समान, जीभ को तलवार के समान, आंखों को मृत्यु के समान, पावों को शूल के समान, और उसके सौन्दर्य को राक्षसी के समान समझने वाले व्यक्ति संसार से अपना कल्याण कर लेते हैं।

परस्त्री वह काली नागिनी है, जिसका विष जन्म जन्मान्तर तक जाता है। जो एक बार इस पाप पंक में फंस जाता है वह अपना बड़ा भारी अपकार करता है। इस पाप के गड्ढे से निकलना बहुत ही कठिन है।

परस्त्री सेवन करने वाले को राजदण्ड, पंचदण्ड भी भोगना पड़ता है। इस भूमि पर साक्षात् नरक परस्त्री सेवन है, इससे मनुष्य की सारी शक्तियां कुंठित हो जाती हैं, वह जीवन में अपने हित मार्ग से बहुत दूर चला जाता है। बात की बात में जीवन भर की साधना, तपस्या और प्रभुता परस्त्री सेवन से नष्ट हो जाती है। जो मूर्खतावश सुख समझते हैं, वे गलत मार्ग पर हैं। शास्त्रकारों ने इसी कारण परनारी को पैनी छुरी कहा है, जैसे तेज छुरी पेट को फाड़कर प्राणान्त कर देती है, उसी प्रकार परनारी सेवन से पुण्य का छेदन हो जाता है और पाप की वृद्धि होती है। उपदेश से प्रभावित होकर उसने मुनिराज से पंचाणुव्रत लिये। इसके आगे भी मुनिराज ने ब्रह्मचर्याणुव्रत की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए परस्त्री सेवन के दोष बतलाये।

इस प्रकार परस्त्री सेवन की बुराइयों पर मुनिराज ने पर्याप्त प्रकाश डाला। प्रमातिकुमार मुनिराज का उप-

देश सुन बहुत प्रसन्न हुआ और उनके चरणों में नमोऽस्तु कर नगर को लौट गया ।

बहुत समय तक राज्य करने के उपरान्त प्रमातिकुमार को एक दिन अपने श्वेत केश देखने से अनुभव हुआ कि अब मेरी मृत्यु निकट है । मृत्यु के दूत आ चुके हैं, अतः अब आत्म कल्याण में प्रवृत्त होना चाहिये । जो जीवन को सदा स्थिर समझता है, वह बड़ा भारी अज्ञानी है । सांसारिक वैभवों को नित्य समझना सबसे बड़ी मूर्खता है । जन्म-मरण, सुख-दुख में धर्म को नहीं भूलना चाहिये । धर्म ही समस्त सुखों की जड़ है, जो इस को भूल जाता है वह अपना कभी भी उद्धार नहीं कर सकता है ।

संसार में केवल एक ही बात निश्चित है, वह है मरण । इस अटल सत्य को समझकर भी मोही प्राणी अपना जीवन यों ही बिता देता है । सद्धर्म का चिन्तन नहीं करता; मोहावेश में पर पदार्थ ही अच्छे मालूम होते हैं, अतः इन्हीं में लगकर अपने जीवन को खो देता है । संसार में अपने से भिन्न एक अणु भी अपना कल्याण करनेवाला नहीं है । यहां की कोई भी वस्तु मरने के बाद साथ नहीं जायगी, यहीं पर पड़ी रह जायगी । अपने राग के कारण जीव इन्हें अपना समझ रहा है । स्त्री, पुत्र, धन, दौलत आदि राग से ही अपने प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में ये बिल्कुल भिन्न हैं । अतएव हमें क्षणभंगुर संसार में इस नर भव को यों ही नहीं खोना चाहिये । बड़ी कठिनाई से यह मनुष्य पर्याय मिली है, अतएव आत्म कल्याण में लगना बहुत आवश्यक है ।

इस प्रकार विचार-विनिमय कर अपने बड़े पुत्र विमलकीर्त्ति को बुलाकर राज्याभिषेक किया और स्वयं राज-पाट छोड़ दिगम्बर दीक्षा ली ।

सच ही है, इस जीव के लिये दिगम्बर दीक्षा के समान अन्य कुछ उपकारी नहीं है । यही संसार के दुखों से छुड़ाकर शाश्वत सुखों को प्रदान कराती है । दुर्द्धर तपस्या करने के उपरान्त मरण समय प्रमातिकुमार ने संन्यास मरण लिया और समाधि पूर्वक प्राणों का त्याग किया, जिससे पन्द्रवें स्वर्ग में जाकर कीर्त्तिधर नामक महर्द्धि देव हुआ ।

परस्त्री में आसक्त होने वाले नीच गति को पाते हैं, पर जिन्होंने धर्म का स्वरूप समझ कर परवनिता से विरक्ति पा ली है और जो जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रतिपादित धर्म का पालन करते हैं, वे निवृत्तिमार्ग के पथिक बन निर्वाण प्राप्त करते हैं। इस जीव का सच्चा पुरुषार्थ निर्वाण प्राप्त करने में ही है।

इस प्रकार मगध सम्राट् श्रेणिक गौतम गणधर से ब्रह्मचर्य व्रत की कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

तेरहवीं कथा समाप्त

चौदहवीं कथा

सज्जनों के द्वारा वन्दनीय, ब्रह्मचर्याणुब्रत के धारी, दयालु राजा श्रेणिक ने ब्रह्मचर्यव्रत की कथा जानने के पश्चात् अपरिग्रह व्रत की कथा जानने की इच्छा प्रकट की। वह गौतम स्वामी से बोला—प्रभो ! अपरिग्रह ब्रत किसे कहते हैं ? इस ब्रत का पालन न करना क्यों पाप का कारण है ? इस ब्रत के पालन करने से आत्मा पवित्र कैसे होती है।

गौतमस्वामी—राजन् ! किसी भी वस्तु में मूर्छा रखना परिग्रह है, इस मूर्छा का त्याग करना अपरिग्रह है। धन, धान्य, राज, वैभव, स्त्री पुत्र आदि सभी पदार्थ परिग्रह हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद; पुरुषवेद, और नपुंसकवेद भी परिग्रह हैं। जो व्यक्ति इस परिग्रह का त्याग करता है, वही अपरिग्रह ब्रत को पालता है।

ममत्व बुद्धि को परिग्रह इस लिये माना गया है कि वाह्य परिग्रह के न रहने पर भी, ममत्व के रहने से व्यक्ति परिग्रह का संचय कर लेता है। अतः मूर्छा ही वस्तुतः परिग्रह है, जो इसका त्यागी है वही अपरिग्रही है। श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार धन, धान्य, गाय, घोड़े, महल, मकान आदि का परिमाण करता है तथा लोभ कषाय को घटाने के लिये मूर्छा को भी धीरे-धीरे घटाता है।

समस्त पापों की जड़ यह परिग्रह है। इसलिये इसे सर्वदोषानुषङ्ग कहा गया है। अपने और दूसरे के जीवन को सुखी बनाने के लिये अपरिग्रह ब्रत का पालना आवश्यक है। इसके पालने से ही संसार में शान्ति स्थापित की जा सकती है।

श्रेणिक—स्वामिन् ! इस अपरिग्रह ब्रत का पालन करने में कौन प्रसिद्ध हुआ है और किसे फल की प्राप्ति हुई है। कृपया इस ब्रत के पालन करनेवाले का आख्यान कहें—

गौतम स्वामी—

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुरुजांगल नाम का देश है, इस में अवन्ति नाम की नगरी है। इस नगरी का राजा अनुपरिचर नाम का था। इसकी पट्टरानियों के नाम पद्मावती, प्रभावती, सुप्रभा, कनकप्रभा थे। इन में पट्टरानी पद्मावती का अग्रस्थान था, इसके पुत्र का नाम अनन्तवीर्य था। अन्य रानियों से भी पुत्र उत्पन्न हुए थे। यह राजा अत्यन्त

प्रभावशाली था, कई माण्डलिक राजा इसे नमस्कार करते थे। इसकी सभा में सदा नाच गान होता रहता था।

एक दिन वनमाली ने आकर वसन्त ऋतु के आगमन की सूचना दी। राजा ने वसन्त आगमन जानकर वन विहार करने का विचार किया और तदनुसार उसने प्रयाण वाद्य बजाया, जिसे सुनकर सभी शूरवीर और सामन्त चल पड़े। राजकुमार और रानियां भी मदोन्मत्त हाथियों पर सवार होकर चल पड़ी। सेना आगे-आगे अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित हो चलने लगी।

वन के सौन्दर्य को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और लता निकुंजों में जाकर उसने विश्राम किया। पश्चात् रत्न और मणियों से निर्मित घाटों और सोपानों वाले रंग-विरंगे जल से युक्त तालाब में जलक्रीड़ा के लिये राजा ने रानियों सहित प्रवेश किया। तालाब का जल कुंकुम, केसर, कस्तूरी, कर्पूर आदि से सुगन्धित किया गया था। उसके घाटों पर मणियों के चौक पूरे गये थे, सोपानों पर सुगन्धित पुष्प बिछाये गये थे। राजा अपनी पट्टमहिषियों के साथ जलक्रीड़ा में मग्न था।

इसी बीच विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीस्थ अलकापुरी का निवासी वज्रदाढ़ नाम का विद्याधर अपनी स्त्री मदनवेगा के साथ आकाश मार्ग से आ रहा था। मदनवेगा की दृष्टि जब तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए अनुपरिचर राजा पर पड़ी तो वह कहने लगी—

हमलोग पक्षी के समान सदा आकाश में घूमते रहते हैं। देखिये यह राजा कितना सुखी है, अपने समस्त परिवार के साथ आनन्द पूर्वक जल विहार कर रहा है। हम लोग केवल नाम के लिये विद्याधर हैं पर वास्तव में हमारे जीवन में सुख तनिक भी नहीं है। हम से अधिक सुखी तो यह राजा है, इसने किस प्रकार का सुन्दर तालाब बनवाया है, इस तालाब का जल भी कितना सुगन्धित और स्वच्छ है। वास्तव में यह धन्य है, मनुष्य जीवन के लौकिक सुखों को यह भोग रहा है।

वज्रदाढ़ को अनुपरिचर राजा की यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी, अतः वह अपनी स्त्री को अलकापुरी में छोड़-कर पुनः वहां पर आया और एक बड़ी सी शिला लेकर उस तालाब को ढक दिया। राजा और रानियां उसी तालाव के भीतर रह गये। यद्यपि उन्होंने बाहर निकलने का पूरा प्रयत्न किया, पर वे अपने प्रयत्न में सफल न हो सके। रानियों

ने राजा से कहा—देव ! अब दुःख करने से कुछ नहीं होने का है, पूर्व जन्म कृतकर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। अशुभोदय किसी को नहीं छोड़ता, अब शान्तिपूर्वक आयी हुई विपत्ति को सहना चाहिये। घबड़ाने या विलाप करने से कुछ होने का नहीं है। स्त्री, पुत्र, धन, दौलत सब यहीं पर रहने वाली वस्तुएं हैं, इनसे मोह करना व्यर्थ है। समय पड़ने पर कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता है, चिन्ता, दुःख और ग्लानि करने से कुछ भी हाथ आने का नहीं। इस जीव ने पूर्वजन्म में जैसे शुभाशुभ कृत्य किये हैं, उनका फल इसे भोगना पड़ेगा। अब मृत्यु से यहां कोई नहीं बचा सकता है, अतः भगवान् जिनेन्द्र के चरणों का ध्यान कीजिये ! वीर वही है, जो मृत्यु का वीरता पूर्वक आलिंगन करे और तनिक भी विचलित न हो।

देव ! अब परिग्रह का मोह छोड़कर, संन्यास मरण धारण करना चाहिये। यह संन्यास मरण ही आत्मा का सच्चा कल्याण करनेवाला है, इसी के द्वारा मनुष्य अपना सच्चा उपकार कर सकता है। मरते समय जो व्यक्ति मोह करता है, वह अपना बड़ा भारी अहित कर लेता है अतएव अब धन, धान्य, वैभव आदि का त्यागकर आत्म कल्याण में लगना चाहिये। महाराज ! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के समान अपनी गति को विगाड़िये मत। परिग्रह का मोह बड़ा ही अहितकर होता है, आचार्यों ने परिग्रह के मोह को समस्त पाप की खान माना है। कोई भी जीव परिग्रह का त्याग किये बिना अपना सच्चा हित साधन नहीं कर सकता।

मोही राजा ने धन, धान्य, वैभव, राज्य, परिवार आदि में आसक्त चित्त हो मरण किया। लाखों तरह से समझाये जाने पर भी राजा का मोह नहीं छूटा, आर्त्त ध्यान में लीन रहा। स्त्री पुत्रों का नाम ले-लेकर विलाप करते हुए उसने मृत्यु प्राप्त की, जिससे वह उसी उद्यान में अजगर हुआ।

रानियों ने समस्त परिग्रह त्याग कर संन्यास मरण धारण किया, जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु प्राप्त कर आनन्द, कान्त, सुकान्त और अमितकान्त नाम की देव हुईं।

जब राजकुमारों और सामन्तों को रानियों सहित अनुपरिचर महाराज की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ तो वे सभी दुःख में संलग्न हो गये। तालाब पर रखे गये पत्थर को देखकर वे कहने लगे कि यह कार्य किसी व्यन्तर या विद्याधर का है। पूर्वजन्म के बैर के कारण ही ऐसा किया गया है। राजा और रानियों के गुणों का स्मरण कर सभी लोग विलाप करने लगे और नाना प्रकार से दुःख प्रकट करते हुए चिन्तित हुए। अनन्तवीर्य ने सभी को समझाया और

कर्म की विचित्रता का स्वरूप बतलाते हुए धैर्य प्रदान किया ।

शुभ मुहूर्त्त में अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक कर दिया गया और सारे कार्य पूर्ववत् चलने लगे । एक दिन इस नगर में अवधिज्ञानी सारस्वत नाम के आचार्य संघ सहित पधारे । वे श्रावन्ति के उद्यान में एक मनोहर शिला पर आसीन होकर तपस्या करने लगे ।

अनन्तवीर्य मुनिसंघ का समाचार पाकर पुरजन, परिजन सहित मुनिराज की वन्दना के लिये गया और निकट पहुँच कर तीन प्रदक्षिणा दीं और अष्ट द्रव्यों से पूजा की । पश्चात् शेषाक्षत मस्तक पर चढ़ाकर सामन्तों सहित मुनिराज का उपदेश सुनने लगा ।

धर्मोपदेश श्रवण करने के अनन्तर उसने हाथ जोड़कर मुनिराज से पूछा—प्रभो ! मेरे माता पिता का मरण कैसे हुआ ? उनके ऊपर बृहद्शिला किसने रखी ?

अवधिज्ञान द्वारा समस्त बातों को ज्ञातकर मुनिराज बोले—वत्स ! वज्रदाढ़ नामका विद्याधर अपनी पत्नी मदनवेगा सहित भ्रमण करता हुआ वहां आया । अपनी स्त्री द्वारा की गयी राजा की प्रशंसा उसे अच्छी न लगी और उसे अलकापुरी में छोड़, पुनः आकर एक बृहद् शिलाखण्ड को उनके ऊपर छोड़ दिया, जिससे राजा अनुपरिचर की रानियों सहित मृत्यु हो गयी ।

अनन्तवीर्य—स्वामिन् ! आपने मृत्यु तो बतला दी, अब कृपाकर यह और बतलाने का कष्ट करें कि उनकी गति कैसी हुई है ।

मुनिराज—तुम्हारी माताओं ने समस्त वस्तुओं से ममत्व छोड़ संन्यास मरण धारण किया था, जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में देव हुई हैं । महाराज अनुपरिचर को अन्त समय में भी सभी वस्तुओं का मोह लगा रह गया, जिससे वह उसी बाटिका में अजगर पर्याय को प्राप्त हुए हैं ।

अनन्तवीर्य माताओं की सद्गति और पिता की कुगति ज्ञातकर आश्चर्य में डूब गया । उसने विचारा कि यह जीव अपने परिणामों के अनुसार ही सद्गति या दुर्गति को प्राप्त करता है । अतः वह मुनिराज से हाथ जोड़कर कहने

लगा—प्रभो ! आप थोड़ा कष्ट कर मेरे पिता को ऐसा उपदेश दें जिससे वह इस तिर्यंच गति को छोड़ अपना आत्म कल्याण कर सकें।

मुनिराज—वत्स ! अभी उपदेश देने से आपके पिता के जीव सर्प को जातिस्मरण हो सकता है तथा जातिस्मरण होते ही स्वर्ग से रानियों के जीव भी वहां आ जायंगे और उन्हें सम्यक् उपदेश देंगे, जिससे वह परिग्रह से होनेवाली हानियों को समझ जायंगे और संसार से ममत्व छोड़ अपना आत्म कल्याण करेंगे। हमारे उपदेश की अपेक्षा तुम्हारे ही समझाने से उनका कल्याण हो सकता है। जैनधर्म ऐसा अमृत है कि इसका कोई किसी भी अवस्था में सेवन करे, लाभ ही लाभ है। यह धर्म सभी जीवों का कल्याण करनेवाला है।

अनन्तवीर्य मुनिराज को नमस्कार कर अपने पिता के जीव अजगर के पास आया और उसे नमस्कार कर कहने लगा–स्त्री होकर आपकी रानियों ने परिग्रह छोड़ने के कारण देव पद को प्राप्त किया है। सांसारिक पदार्थों की वांछा तथा परिग्रह की लालसा बड़ी हानिकारक है। आपने पुरुष पर्याय प्राप्त कर शूर–वीरता के अनेक कार्य किये, किन्तु मरण समय धन, धान्य से मोह लगा रहा जिससे आपको यह नीच पर्याय प्राप्त हुई धर्मधारण कर भी जो व्यक्ति अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह में लीन रहेगा, वह निश्चय ही अपनी गति को बिगाड़ लेगा। आप वैभवशाली राजा थे, बड़े–बड़े शूर वीर और सामन्त आपका सम्मान करते थे, क्या अपनी यह दशा आपको खटकती नहीं है ? देव ! मोह बहुत बुरी वस्तु है, जो मूर्छा करने लगता है, अपने परिणामों को आर्त्त–रौद्र रखता है, वह निश्चय ही कुगति को प्राप्त होता है। वहां आप पहले दिव्य अंगनाओं के बीच शोभित होते थे, कहां अब आप पापोदय के कारण हलाहल को लिये घूम रहे हैं।

श्रेष्ठ चावल, दूध, घृत, मिश्री आदि भक्षण करनेवाले अब आप मेढ़क भक्षण कर अपना उदर पोषण कर रहे हैं। मृदु शय्या पर अंगनाओं के साथ विलास करनेवाले आप कंकरीली भूमि पर शयन कर रहे हैं। अब भी आपको कल्याण करने का अवसर है, आप सचेत हो जाइये। शरीर, धन, वैभव आदि से मोह छोड़कर अपने स्वरूप का चिन्तन कीजिये। विषयाकांक्षाएं विष के समान इस जीव को कष्ट देनेवाली हैं।

अनन्तवीर्य के इस उपदेश को सुनकर अजगर को जाति स्मरण हो आया। रानियां भी अवधिज्ञान से अपने

पति की गति को अवगत कर उसे समझाने के लिये वहां आयीं और उपदेश देने लगी—

सर्पराज ! आप अपने ऊपर विचार कीजिये। विषयों की आसक्ति के कारण ही आपकी यह अवस्था हुई है। दुःख है कि आप अब भी विषयासक्ति को नहीं छोड़ रहे हैं, स्त्री में आपकी आसक्ति इस समय भी पूर्ववत् वर्तमान हैं। यदि आप इस गति के दुःखों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण करो, उनकी भक्ति ही इस जीव को दुर्गति से छुड़ानेवाली है। आप स्वयं विचार करें, हमलोगों ने वीरता पूर्वक संन्यास मरण धारण किया, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम देवगति को प्राप्त करना है। आप मोह में पड़कर वैभव में आसक्त रहे जिससे यह अजगर की पर्याय प्राप्त हुई।

इस प्रकार देव समझाकर वहां से चले गये। अनन्तवीर्य भी उसे सम्बोधन देकर चला आया और मुनिराज के पास आकर सारा वृत्तान्त कहा।

मुनिराज—अनन्तवीर्य वत्स ! सर्पराज की आयु अब केवल १५ दिन की है।

अनन्तवीर्य–प्रभो ! आप एक बार ससंघ उनके उपकार के लिये अवश्य चलें। आपके वहां पहुँचने से अवश्य ही उनका कल्याण होगा।

अनन्तवीर्य के आग्रह को स्वीकार कर मुनिराज अजगर के पास गये और बोले—सर्पराज ! अब तुम्हारी आयु १५ दिन की शेष है, अतः मोक्ष लक्ष्मी को देनेवाले व्रतों को स्वीकार करो। इस प्रकार समझाकर उसे व्रत दे दिये। मुनिराज १५ दिन तक निरन्तर उस अजगर को उपदेश देते रहे और अन्त समय निकट आया हुआ जानकर बोले—तुम्हारी आयु समाप्त हो रही है, अब शरीर से मोह छोड़कर आत्म कल्याण में प्रवृत्त होना चाहिये। भेद विज्ञान द्वारा अनेक भावों में संचित पाप इसी भव में समाप्त करने का उद्यम करना श्रेष्ठ होगा। अब संन्यासमरण धारण करना परम आवश्यक है।

मुनिराज ने संसार की क्षणभंगुरता, वैभवों की अस्थिरता का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया, तथा संन्यास-मरण धारण करने पर बहुत जोर दिया।

समाधिमरण का महत्व बतलाते हुए मुनिराज कहने लगे–एक भव में ही समाधिधारण करने से जीव अपना

कल्याण कर लेता है। समाधिमरण से आठभव के पश्चात् अवश्य निर्वाण सुख मिलता है। वस्तुतः रत्नत्रय के समान इस जीव की भलाई करनेवाला अन्य कोई नहीं है। यही संसार से श्रान्त जीवों को सुख और शान्ति देने वाला धर्म है, जो इस धर्म को भूल जाते हैं, वे अनन्तकाल तक संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

इस प्रकार १५ दिनों तक धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् उस अजगर ने प्राण त्याग किये, किन्तु वज्रदाढ़ से बदला लेने की भावना उसके मन में शेष थी, इसलिये वह तीन पल्य की आयु प्राप्त कर भवनवासी देव हुआ।

अनन्तवीर्य ने पुनः मुनिराज से पूछा—स्वामिन् ! अब मेरे पिता की कौन सी गति हुई है ? मुनिराज–वत्स ! बदले की भावना शेष रह जाने से उन्हें भवनवासी देवों में जन्म लेना पड़ा है। परिग्रह कितना बड़ा पाप है, रानियों ने इसके त्याग से देव गति प्राप्त की पर राजा को दो भव यों ही खोने पड़ रहे हैं। वास्तव में मोह बहुत बड़ा पाप है, इसका प्रक्षालन जल्द नहीं हो सकता है

मुनिराज के इन वचनों का अनन्तवीर्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। उसे संसार से विरक्ति हो गयी, अतः उसने अपने बड़े पुत्र स्वभाव कुमार को बुलाकर राजतिलक दिया और स्वयं अपरिग्रही बन तपस्या करने लगा। सम्मेद-शिखर पर जाकर कर्मक्षय कर निर्वाण लाभ किया।

अनुपरिचर राजा के जीव विमलदेव नामक भवनवासी ने जब वज्रदाढ़ विद्याधर को देखा तो क्रोधाभिभूत हो उसकी समस्त विद्याओं को छीन लिया तथा विद्याधर और उसकी पत्नी को समुद्र में डाल दिया। भवनवासी देव ने उन्हें समुद्र में डाल कर कहा कि खूब पानी पियो और अपनी करनी का फल भोगो। तुमने मुझे चार पट्टरानियों के साथ तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए शिलाखण्ड से ढक कर मारा था, इसी का बदला मैंने चुकाया है।

विद्याधर आर्तध्यान से मरण को प्राप्त हुआ, जिससे वह प्रथम नरक में गया। इधर कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम के नगर में जयदत्त नाम का राजा शासन करता था, उसकी रानी का नाम विजया देवी था। इनको कोई सन्तान नहीं थी। दम्पत्ति ने गुरुदत्त मुनिराज के सामने नमस्कार कर कहा—प्रभो ! हमारे किस पाप का उदय है जिससे कुल बढ़ाने वाली सन्तति हमें नहीं प्राप्त हुई है। क्या कभी हमें सन्तान होगी, या बिना सन्तान के यह राज्य यों ही नष्ट हो जायगा।

गुरुदत्त मुनिराज—वत्स ! धैर्य रक्खो घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। आपको जैनधर्म को बढ़ानेवाला, निर्मल चरित्र का धारी धर्मात्मा पुत्र होगा।

कुछ दिनों के उपरान्त अनुपरिचर राजा का जीव विमलदेव चय कर विजयादेवी के गर्भ में आ गया। समय पाकर रा.ी के एक सुन्दर पुत्र हुआ, जिसका नाम गुरुदत्त रखा गया। क्योंकि यह पुत्र गुरुदत्त महाराज के आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ था, अतः उन्हीं के नाम पर इसका नामकरण हुआ। यह शिशु आरम्भ से ही होनहार, विवेकी, समझदार और प्रतिभाशाली था। इसने थोड़े ही समय में समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था।

जब गुरुदत्त राज्य भार ग्रहण करने के लायक हो गया तो पिता ने पुत्र को समस्त शासनभार सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो सुधर्माचार्य के पास गया। मुनिराज के उपदेश श्रावण करने के उपरान्त राजा ने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की और दुद्ध र तपस्या करने लगा।

गुरुदत्त भी पिता के द्वारा दिये गये राज्यशासन को बहुत ही सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से चलाने लगा, उसने राज्य की वृद्धि की, प्रजा की सुख सुविधा के लिये अनेक प्रयत्न किये। प्रजा इस नये महाराज से बहुत ही प्रसन्न थी। उसकी दिन दूनी और रात चोगुनी उन्नति होती जा रही थी। महामाण्डलिक और माण्डलिक राजा उसे नमस्कार करने लगे थे।

एक दिन गुरुदत्त महाराज ने चम्पापुर के राजा धरित्रीवाहन की पुत्री अभयमती को मांगने के लिये दूत भेजा, पर धरित्रीवाहन ने कन्या देने से इन्कार कर दिया जिससे गुरुदत्त ने चम्पापुरी पर आक्रमण किया और चारों ओर से घेर लिया। जब अभयमती को यह समाचार मिला कि कोई राजा उसका हरण करना चाहता है, तो उसे बहुत चिन्ता हुई; क्योंकि उसने अपने मन में गुरुदत्त महाराज से ही विवाह करने का निश्चय किया था।

जब अभयमती को दासियों द्वारा यह समाचार मिला कि महाराज गुरुदत्त ही स्वयं सेना लेकर आये हैं और धरित्रीवाहन विवाह करने से आनाकानी कर रहा हैं, इसीसे उन्होंने आक्रमण किया है तो वह स्वयं पिता के पास गयी और अपना निश्चय उन्हें सुना दिया। उसने कहा—पिताजी ! मैं अपना विवाह गुरुदत्त के सिवा अन्य किसी से नहीं कर सकती हूं। इस भव के मेरे पति गुरुदेव महाराज ही हैं। आप मुझे उनसे विवाह करने की स्वीकृति दें।

कन्या की इच्छा अवगत कर महाराज धरित्रीवाहन ने गुरुदत्त के साथ विवाह करने की स्वीकृति दे दी। अभयमती ने प्रसन्न होकर गुरुदत्त के साथ विवाह कर लिया, गुरुदत्त भी विवाह कर हस्तिनापुर लौट आया और पूर्ववत् राज्य शासन करने लगा।

नरक से निकल कर बज्रदाढ़ का जीव नीलगिरि पर्वत पर व्याघ्र हुआ वह आस-पास के गांवों में उपद्रव करने लगा, जिससे प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गयी। लोग भयभीत हो गुरुदत्त महाराज के पास आये। महाराज गुरुदत्त ने जिस गुफा में वह व्याघ्र रहता था, लकड़ियां भरवा कर आग लगवा दी, जिसके वह आर्त्त रौद्र परिणामों के साथ मरण को प्राप्त हुआ। यह सौराष्ट्र देश में द्रोणमत नामक पर्वत के नीचे पल्लीखेट नामक गांव में आभरण नामक ब्राह्मण का हलमुख नामक पुत्र हुआ। हलमुख भी क्रमशः बड़ा होने लगा।

एकदिन हस्तिनापुर में अमितास्रव नाम के मुनिराज आये। राजा गुरुदत्त ने उन्हें नमोऽस्तु कर अपने पूर्व भवों को जानने की अभिलाषा प्रकट की। मुनिराज द्वारा अपने चार भवों का वृत्तान्त ज्ञात कर गुरुदत्त महाराज को अभयमती के भवों को जानने की उत्कंठा उत्पन्न हुई और उसके भव बतलाने की प्रार्थना मुनिराज से की। दयालु मुनिराज अभयमती की भावावली कहने लगे—

चम्पापुर नगर में गरुडवेग नाम का किरात रहता था, उसकी स्त्री का नाम गोमुखी था। एक दिन गोमुखी चतुर्विध संघ सहित आये समाधिगुप्त नाम के मुनिराज के पास धर्मोपदेश सुन रही थी। उपदेश श्रवण करने के उपरान्त सभी लोगों ने व्रत नियम ग्रहण किये। श्रावकों को व्रत लेते देखकर गोमुखी ने भी अणुव्रत लिये। इसका पति प्रतिदिन कबूतर पकड़कर लाता था, पर वह उसको छोड़ देती थी, जिससे वह नाराज होकर प्रतिदिन पीटता था। एक दिन क्रोध में आकर गरुडवेग ने गोमुखी को घर से निकाल दिया। वह घर से निकलकर अपने एक कुटुम्बी के यहां रहने लगी। मरते समय उसने धरित्रीवाहन राजा का ऐश्वर्य प्राप्त करने की अभिलाषा की, जिससे यही उनकी पुत्री हुई।

अभयमती व्रतों के फल को अवगत कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और सोचने लगी कि व्रतों के सिवा अन्य कोई संसार में रक्षक नहीं है, धर्म ही इस जीव को लोक-परलोक के दुखों से मुक्ति दे सकता है। अब तक भोगों में आसक्त रहकर हमने अपने जीवन को कौड़ी के मोल बेचा है, पर अब आत्मकल्याण करने लिये तैयार हो जाना चाहिये। यह जीव व्यसनों में फंसकर अपना अहित करता है, सच्चे धर्म को घबड़ा कर छोड़ देता है, जिससे इसे आत्मिक तुष्टि नहीं

होती है, अब अवश्य ही हमलोगों को आत्मकल्याण में लगना चाहिये, इस प्रकार निश्चय कर महाराज गुरुदत्त और अभयमती रानी को संसार से विरक्ति हो गयी। उन्हें संसार के वैभव काटने लगे।

महाराज गुरुदत्त ने अपने पुत्र श्रीदत्त को बुलाया और उन्हें सारी बातें समझा कर राज्यतिलक दे दिया तथा अमितास्त्रव नामक आचार्य के पास आकर दीक्षा ग्रहण की। थोड़े दिनों में द्वादशांग श्रुतज्ञान का धारी होकर गुरुसेवा करता और पश्चात् गुरू आज्ञा से एकाकी विहार करने लगा।

अभयमतती ने इन्हीं आचार्य की शिष्या सुब्रता नामक आर्यिका से ब्रत ग्रहण किये। राजा और रानी तपस्या करने लगे। अभयमती की आयु थोड़ी थी, अतः उसने अपनी मृत्यु निकट जान समाधिमरण धारण कर लिया। मरते समय उसके परिणामों में पर्याप्त शान्ति थी, जिससे वह कापिष्ठ स्वर्ग में मितकान्त नामक देव हुई।

गुरुदत्त आचार्य विहार करते पल्लीखेट नाम गांव के जंगल में आये और सन्ध्या हो जाने से प्रातः काल होने तक वहीं रात्रियोग धारण किया। प्रातःकाल हलमुख ने गुरुदत्त मुनिराज को देखा। वह अपने खेत में हल जोतने जा रहा था तथा इसी खेत में अपनी स्त्री को भोजन लाने को घर कह आया था। पर यहां खेत में पानी भरा हुआ है, जिससे हल चलाना बहुत ही कठिन है, अतः वह मुनिराज से कहने लगा—

रे साधु ! जब मेरी स्त्री यहां भोजन लेकर आवे, तू कह देना कि पश्चिम के खेत में हल जोतने गया है, वहीं पर भोजन दे आवे। देरी नहीं करे, और देखिये भूल मत जाना, अन्यथा मुझे भूखा रहना पड़ेगा। हल कभी भी सूखे रहकर नहीं जोता जा सकता है।

स्त्री जब दोपहर को रोटियां लेकर आयी और खेत में हलमुख को न पाया तो बहुत नाराज हुई और गालियां देती हुई घर लौट आयी। इधर पश्चिम वाले खेत पर जब सन्ध्या समय तक भी भोजन नहीं आया तो हलमुख को बड़ा कष्ट हुआ और क्रोध में पागल होकर घर आया तथा स्त्री को खूब पीटने लगा।

आप खेत पर थे कहां, मैं तो घंटों वहां बैठ-बैठ कर आयी हूं, मेरी क्या गलती है, उसकी स्त्री ने कहा।

मैं पश्चिम के खेत में काम करने जा रहा हूं, यह बात तुमसे किसी आदमी ने नहीं कही। मैं उस साधु से कह आया था, बड़ा मक्कार निकला। अच्छा अब उसकी मरम्मत करता हूं, क्रोध में बड़बड़ाते हुए हलमुख ने कहा—

वह मुनिराज के पास गया और उनको पकड़ कर ले आया। उनके शरीर से, तेल में भिगोकर कपड़ा लपेट दिया और आग लगा दी। क्षमावान् मुनिराज उपसर्ग आया जानकर ध्यान में लीन हो गये। उन्होंने समस्त विकारों का त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। ध्यान के बल से कर्म शृंखला टूटने लगी, अनादिकालीन कर्म जल-जलकर भस्म होने लगे। मुनिराज सोचने लगे—क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है; इससे किसी की भलाई नहीं हो सकती है। क्षमा के बराबर आत्मा का हित करनेवाला अन्य कुछ भी नहीं है। अनन्तर शुक्ल ध्यान द्वारा क्षपक श्रेणी का आरोहण किया और घातिया कर्म नाशकर कैवल्य प्राप्त कर लिया चारों निकाय के देव आकर उनकी स्तुति करने लगे—

जय दिविज महित, जय बोष रहित। जय दिव्य मूर्त्ति, जय विदित कीर्त्ति ॥
जय मदन बैरि, जय दुरित हारि। जय गुन निधान, जय सुख निधान ॥
जय शान्तरूप, जय विजित कोप। जय मोह विलय, जय धर्म निलय ॥
जय भव्य वन्द्य, जप जगद्वन्द्य। जय कान्तिधाम, जय पुण्यधाम ॥
जय मुनि गनेश, जय महाविनाश। जय दय समुद्र, जय नय समुद्र ॥
जय सच्चरित्र, जय जग पवित्र। जय सेव्य वचन, जय सत्य वचन ॥
जय यम कृतान्त, जय मुक्ति कान्त। जय बोध रूप, जय नष्ट ताप।
जय सकल रुद्र, जय जय जिनेन्द्र। जय श्रय धाम, जय जय विराम ॥

देव पुनः कहने लगे—

हे प्रभो आपके चरण प्रसाद से कल्याण, वचनचातुरी और निर्वाण मिलने में क्या देरी है। देवराज द्वारा आपके चरण निरन्तर वन्दनीय हैं। कर्मबन्धन को नाश करने के लिये आप दवाग्नि के समान है। इस प्रकार स्तुति देवों ने की।

हलमुख देवों को आया हुआ देखकर आश्चर्य में डूब गया तथा कुछ भयभीत भी हुआ। मुनिराज के शरीर में लगायी गयी आग अपने आप शान्त हो गयी थी। उनके शरीर से अपूर्व कान्ति निकल रही थी, केवली मुनिराज ने

से ही दूर होती है सम्यत्व ही आत्मानुभूति को उत्पन्न करने में कारण है; जीव सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होते ही अपने को संसार के समस्त पदार्थों से भिन्न चैतन्य रूप अनुभव करता है, वह परपदार्थों में बिल्कुल भी लिप्त नहीं होता है।

दयामित्र के इस उपदेश को सुनकर वसुभूति की कर्मकालिमा बहुत कुछ धुल गयी, परिणाम विशुद्ध होने से अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यत्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों का क्षय भी हो गया; जिससे उसकी निर्मल निकल आयी और तत्क्षण उसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया। वसुभूति ने आनन्दविभोर होकर दयामित्र सेठ की नाना प्रकार से स्तुति की।

इस प्रकार दयामित्र वसुभूति को सम्यग्दर्शन में दृढ़ कर आगे बढ़ा और उसने नन्द्यावर्त्त पर्वत पर अपना डेरा डाला। यह स्थान पर्वतीय होने के कारण जंगली हिंसक पशुओं से आवृत था तथा इसमें चोर लुटेरों का भी पूरा भय था। परन्तु सम्यग्दृष्टि को किसी का भी भय नहीं रहता, अतः दयामित्र सेठ निर्भय होकर इस स्थान में ठहर गया।

रात को जंगली लुटेरों ने दयामित्र सेठ के साथवाले व्यापारियों पर आक्रमण किया। दयामित्र वीरता पूर्वक लुटेरों के साथ युद्ध करने लगा। उसने अपार बाण वर्षा की, जिससे लुटेरों के पैर उखड़ गये और वे भागने पर उतारू हो गये। युद्ध के समय वसुभूति दयामित्र के तम्बू में सो रहा था। लुटेरों का एक बाण आकर वसुभूति को लगा और वह घायल होकर पीड़ा से तड़फड़ाने लगा। यद्यपि सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के कारण उसे अधिक कष्ट नहीं हो रहा था, वह संसार की अस्थिरता का विचार करने लगा। दयामित्र भी जब लुटेरों को भगाकर तम्बू के भीतर आया तो मरणासन्न वसुभूति के पास जाकर कहने लगा—अब आप सल्लेखना धारण करें, क्योंकि आपका कल्याण सल्लेखनाव्रत से ही हो सकता है। आप सच्चे अहिंसक बनें, अहिंसक वीर होता है, अतः आप मृत्यु के साथ वीरता पूर्वक युद्ध करें। मृत्यु का भय सर्वथा मन से निकाल दें।

वसुभूति तो क्षायिक सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने से ही आत्मकल्याण के लिये तत्पर था। उसने अपने परिणामों को संसार के बाह्य पदार्थों से हटाकर आत्मा की ओर लगाया और पञ्च नमस्कार मन्त्र का ध्यान करने लगा। ध्यानावस्था में तल्लीन हो उसने शरीर का त्याग किया, जिससे सम्यग्दर्शन के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में मणिप्रभा विमान में मणिकुण्ड नामका देव हुआ।

वसुभूति के जीव मणिकुण्ड देव को अन्यदेव सम्बोधित कर कहने लगे कि ये दिव्य देवाङ्गनाएं, सुन्दर विमान

और सुन्दरतम विभूतियां आपकी हैं, आप इन्हें ग्रहण करें।

स्वर्ग की दिव्य विभूतियों को देखकर वह आश्चर्यान्वित हो हक्का-बक्का रह गया। इसी समय उसे भव-प्रत्यय अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे उसे पूर्व भव की समस्त बातें अवगत हो गयीं। वह सोचने लगा—मैं कहां? इस देवगति का अनुपम सुख कहां? यह सम्यग्दर्शन का ही प्रभाव है। केवल सम्यग्दर्शन के बल से ही जीव का उद्धार हो सकता है। इसमें अद्भुत शक्ति है। मैंने तो सदा श्रमणों की निन्दा की, उन्हें दुत्कारा और सच्चे धर्म से दूर रहा। दक्षिणा के लोभ से कुछ दिनों के लिये मैंने व्रत ग्रहण किये, मेरी रुचि व्रतों की ओर बिल्कुल नहीं थी। परन्तु दयामित्र के धर्मोपदेश से मेरा कल्याण हो गया इन्हीं की कृपा से मुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है। अहा! दयामित्र के समान परोपकार करनेवाले इने-गिने व्यक्ति ही होंगे।

संसार में वही व्यक्ति अभिनन्दनीय होता है, जो जीव को नाना प्रकार के उपायों से कल्याणपक्ष में लगाता है। इस प्रकार दयामित्र की प्रशंसा और अपनी आलोचना करता हुआ वसुभूति का जीव मणिकुण्ड देव अपने उपकारी गुरु दयामित्र के दर्शन करने चला। उस समय दयामित्र सेठ भगवान् की पूजा कर रहा था; मणिकुण्ड अपना गौरव और प्रभाव उन्हें दिखाकर स्वर्ग चला गया। इसके पश्चात् उसने सोलह स्वर्ग, नन्दीश्वरद्वीप, ज्योतिर्लोक, भवन लोक, पांच अनुत्तर आदि सभी स्थानों का अवलोकन किया और अकृत्रिम चैत्यालयों का दर्शन पूजन कर अपने सम्यक्त्व को निर्मल किया।

यह एक सागर की आयु को आनन्द पूर्वक भोगता हुआ, वहां से चयकर[१] नन्दश्री का अभयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न होने वाला है। समुद्र के समान गम्भीर, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान दर्शनीय, कामदेव के समान सुभग, समस्त शास्त्रों में प्रवीण, मांडलिक राजा हो अन्त में जिनदीक्षा ग्रहण करेगा तथा तपस्या पूर्वक शरीर का त्याग कर सर्वार्थसिद्धि में देव उत्पन्न होगा। वहां से चयकर निर्वाण प्राप्त करेगा इस प्रकार, गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक से सम्यग्दर्शन की महिमा बतलानेवाली कथा कही। सम्यग्दर्शन का प्रत्यक्ष फल देखकर राजा का विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो गया। राजा मन ही मन सोचने लगा कि इस जीव का उद्धार सम्यग्दर्शन के बिना नहीं हो सकता। वसुभूति ब्राह्मण सम्यग्दर्शन के प्रभाव से कहां से कहां पहुँच गया। धन्य है सम्यग्दर्शन की महिमा और धन्य हैं उसके पालन करनेवाले। इस प्रकार राजा श्रेणिक विचार करता हुआ सम्यग्दर्शन में दृढ़ हुआ।

१—मृत्यु प्राप्त कर।

द्वितीय-अध्याय

मोक्ष लक्ष्मी के लिये दर्पण के समान, केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये सुन्दर आभूषण के समान सम्यग्दर्शनरूपी रत्न है। यह सुकवियों की कलकण्ठध्वनी से निरन्तर स्तुत्य है इसलिये मैं इसका निरूपण कर रहा हूं।

यह अनर्घ सम्यग्दर्शनरूपी रत्न संशयरूपी चोर को भगाने में समर्थ है और विश्वास रूपी सांकल के द्वारा मनरूपी वज्र कपाटों को बन्द करने में निपुण है।

मगध सम्राट् राजा श्रेणिक ने हाथ जोड़कर भगवान् को नमस्कार करने के अनन्तर अनन्त गुणधारी गौतम गणधर को नमस्कार किया और उनसे निःशंकितअंग की कथा जानने की उत्सुकता प्रकट की।

गौतम गणधर—सम्यग्दर्शन का अष्टांग सहित पालन करना ही कल्याणकारी हो सकता है। जैसे अष्टांग के बिना शरीर अपूर्ण है, उसी प्रकार अष्टांग के बिना सम्यग्दर्शन भी अपूर्ण है। अंग हीन सम्यग्दर्शन पाप मल को दूर नहीं कर सकता है। निःशंकित अंग आंखों में काजल के समान लाभदायक, धान कूटने में मूसल के समान उपकारी, उत्तम घोड़े पर बैठने के लिये असवार के समान, विवाह में मांगलिक गान के समान, शुद्धि और स्वच्छता के लिये दन्त-धावन के समान उपकारी है। मिथ्यात्वरूपी बंध को नाश करने के लिये शंकादि दोषों से रहित निर्दोष सम्यग्दर्शन को धारण करना चाहिये। यह सम्यग्दर्शन ही निवृत्ति मार्ग की ओर जीव को ले जाता है।

द्वितीय कथा—ललितांग की कथा

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में काश्मीर नाम का देश है। इस में तालाब और कमलों से सुशोभित, जिन मन्दिरों से युक्त विजयपुर नाम का नगर था। इस नगर में इन्द्र के समान वैभव धारी, कामदेव के समान सुन्दर, पराक्रमी, भगवान का भक्त, परोपकारी, प्रजावत्सल अरिमत नाम का राजा राज्य करता था।

इस राजा की भगवान् जिनेन्द्र के चरणारविन्दों में भ्रमर की तरह घूमनेवाली, कमल नयनी, गजगामिनी, सुन्दरी नाम की पट्टरानी थी। इन दोनों को सुख पूर्वक समय बिताते हुए नयनों को आनन्दकारी रूप-सौन्दर्य युक्त ललितांग नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। शिशु को प्राप्त कर माता-पिता आनन्द से फूले नहीं समाते थे। उनका रागभाव पुत्र

को प्राप्त कर कई गुना बढ़ गया था, हृदय की ममत्व वृत्ति अपना विस्तार करने लगी थी । वह कोमल शिशु माता पिता के आकर्षण और मन वहलाव का केन्द्र था । इसकी बालक्रीड़ाएं माता-पिता को वहुत ही भली मालुम होती थीं । राजा अरिमत पुत्र प्रेम के कारण दरवार में भी कम ही जाते थे । अधिकांश कार्यों को घर पर ही पूरा कर दिया करते थे । रानी सुन्दरी भी उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करती थी । किसी-किसी विषय पर पति-पत्नी में काफी विवाद होता था, पश्चात् दोनों एक मत होकर विषय का निर्णय करते थे । दोनों में प्रेम भाव वढ़ता जा रहा था ।

ललितांग माता-पिता के असीम स्नेह को पाकर वृद्धिगत होने लगा उसने विद्या अर्जन भी नहीं की । दिन-रात कुसंगति में पड़कर समस्त व्यसनों का सेवन भी करने लगा । यद्यपि पुत्र का आचरण माता-पिता को कष्ट कर था, पर पुत्र मोह में पड़कर वे उससे कुछ भी नहीं कह सकते थे । अतएव ललितांग का स्वभाव और भी अधिक दुष्ट होने लगा ।

इच्छा रहते हुए भी दम्पत्ति ने उसकी चंचलता, धूर्तता दुष्टता एवं अनीति पूर्ण कार्यों का विरोध नहीं किया वल्कि हंसकर उसे प्रसन्न करने के लिये प्यार ही करते रहे । ललितांग की धूर्तता दिनोंदिन बढ़ने लगी, वह प्रजा को नाना प्रकार का कष्ट देने लगा ।वह नगर के लोगों को पकड़ ले आता और गुण्डों से उन्हें पिटवाता और स्वयं दूर खड़ा होकर हंसता था ।

जैसे नीम के पत्तों के संसर्ग से पानी कडुवा हो जाता है, उसी प्रकार राजपुत्र ललितांग देव भी दुष्टसंगति से विवेक हीन बन गया था, वह दुराचारी होकर प्रजा को भांति-भांति के कष्ट देता था । "यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता । एवैकप्यनर्थाय किमु तत्र यत्र चतुष्टयम्" की नीति के अनुसार वह सर्वत्रअशान्ति उत्पन्न करता था । वह किसी को गाली देता, किसी को वाल पकड़ कर खींचता, किसी के ऊपर थूकता, किसी पानी भरने वालों के ऊपर धूल डाल देता, किसी के घडे को फोड़ देता किसी की रस्सी कुंए में डाल देता एवं किसी को कान पकड़ कर खींचता, इस प्रकार नगर के नर नारियों को तंग करता रहता था । राज पुत्र होने के कारण कोई भी उससे कुछ नहीं कहता था । उससे नगर वासी इतने परेशान थे, कि उसका नाम सुनते ही कांपने लगते । वच्चे ललितांग का नाम सुनकर रोते हुये चुप हो जाते थे । स्त्रियां उसकी सूरत को देखकर भयभीत हो मूर्छित हो जाती थीं ।

ललितांग कभी-कभी मनोविनोद के लिये एक व्यक्ति के सिर को पकड़ कर दूसरे के सिर से टकराता, इस प्रकार दोनों के सिर को फोड़कर शान्त होता। कभी यह अपने साथियों की सहायता से किसी भी भद्र महिला की इज्जत आवरू को बरबाद कर देता था नगर में उसका भय इतना व्याप्त था, कि उसका नाम सुनते ही नगरवासियों की मृत्यु हो जाती थी।

नगर की वेश्याओं को पकड कर बलपूर्वक आद्ध-देवी के मन्दिर में लाकर नृत्य कराता है और रातभर उनका नृत्य देखकर प्रसन्न होता। यदि रास्ते में कोई जाता हुआ मिल जाता तो उसे अपने साथियों से पिटवाता तथा बांधकर पेड़ से लटका देता। उसे मार पीट के कार्यों में अत्यधिक आनन्द आता था। नगर में भिक्षा के लिये घूमनेवाले भिक्षुओं एवं यात्रियों को नाना प्रकार की क्रूरता पूर्वक यातनाएं देता था। इन सबसे कर वसूल करता। उसके उपद्रव विचित्र प्रकार के होते थे, सभी वर्ग के लोग परेशान थे, किसी में इतना साहस नहीं था कि वे ललिताग की शिकायत राजा से कर सकें। शिकायत करते ही उनकी निर्दयतापूर्वक मत्यु अवश्य ही कर दी जाती थी।

एक दिन वह तैलियों के मुहल्ले में घुस गया। उसके देखते ही मोहल्ले के लोग इस प्रकार भाग गये जैसे मन्त्रवादी को देखते ही, भूत, पिशाच भाग जाते हैं, मुहल्ले में जो भी मिला, उसकी खूब मरम्मत की गयी तथा मनों तैल लेजा कर यक्षिणि देवी के मन्दिर में रातभर मसान जलाया। सर्वत्र होलिका–सी जलती दिखलायी पड़ती रही कुछ दिनों के उपरान्त वह एक दिन मालियों के मोहल्ले में चला गया, और फूलों के बाजार को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। चमेली, जूही वेला आदि नाना प्रकार के फूलों को छीनकर बाजार में फैला दिया तथा फूल बेचने वालों को पकड़कर खूब पीटा।

माली अपनी जान लेकर इस प्रकार भागे जैसे सिंह के भय से हरिण दौड़ता है। मालियों के घर में घुसकर उसने उनके वर्तन तथा अन्य घर की चीजों को लूट लिया तथा अपने दुर्जन साथियों को बांट दिया और उनसे कहा—तुम इनको ले जाओ इनका स्वयं उपयोग करना। इन नीच जाति के लोगों को लोटा थाली, गिलास आदि की आवश्यकता नहीं इनको मिट्टी के वर्तन में भोजन करना चाहिये। इस मोहल्ले से निकल कर वह कलवारों के मोहल्ले में गया और उनकी समस्त मदिरा लूट ली तथा कुछ ऐसे ही वरवाद कर दी। लूट में जो सामान उसे मिला, उसको अपने समस्त साथियों में वितरित कर दिया।

उत्तम वस्त्राभूषणों से सज्जित स्त्रियों को उद्यान में पकड़ कर ले आया और उन्हें नाना प्रकार की यन्त्रणाएं देने लगा । इस प्रकार मनोविनोद करता हुआ ललितांग कपड़ों के बाजार में आया । समस्त व्यापारी ललितांग को देखकर डर गये, कुछ तो ऐसे ही डर के मारे भाग गये । ललितांग ने इस बाजार में जाकर बहुमूल्य सुन्दर कपड़ों की लूट करनी प्रारम्भ की, उसने अपने साथियों की सहायता से लाखों रुपये का कपड़ा लूटा । सहस्त्रों रुपये की कीमत के कपड़ों को तो उसने आग लगाकर राख कर दिया । कुछ रेशमी और जरी के वस्त्रों को फाड डाला और कुछ वस्त्रों को आपस में बांट लिया ।

यहां से चलकर ललितांग स्टेशनरी के बाजार में आया । दूकानदार उसे देखते ही भय विह्वल हो प्रार्थना करने लगे कि सरकार हम गरीब हैं, हमारा उद्धार कीजिये, कृपा कीजिये । हमारा जीना-मरना आपही के हाथ में है । हमारी आजीविका इसी से चल रही है; आप राजकुमार हैं, हमारे अन्नदाता हैं आपसे ही हमारी परवरिश होती है, अतः हमारे ऊपर कृपा अवश्य होनी चाहिये । ललितांग के ऊपर इस प्रार्थना का कुछ भी असर नहीं हुआ, उसका कठोर हृदय बिल्कुल नहीं पिघला । ललितांग ने अपने साथियों को सामान लूटने का आदेश दिया तथा कांच, मोती आदि के कीमती सामान को तोड़ने-फोड़ने लगा । भय के मारे सभी त्रस्त थे, किसी के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था । इधर-उधर भगदड़ मची हुई थी । कोई किसी को नहीं पूछता था । अपनी रक्षा के लिये एक दूसरे को पुकार रहे थे पर कोई भी किसी की रक्षा नहीं कर सकता था । धनी-मानी व्यापारियों को पकड़ कर पीटा जा रहा था तथा मनोविनोद के लिये उन्हें नाना प्रकार की यन्त्रणाएं दी जा रही थीं ।

ललितांग का भय इतना व्याप्त था कि नगर के सभी नर नारी अपना-अपना काम-धाम छोड़ जान बचाने के लिये छुपे हुये बैठे थे; और जिधर से ललितांग की आवाज आती उधर ही कान खड़े कर देखने लगते । ललितांग सदा धूर्त, व्यसनी और कामुक साथियों को एकत्रित कर स्त्रियों की चर्चा किया करता था । वह कहता था कि आज अमुक मोहल्ले के अमुक व्यक्ति की युवती लड़की या बहु को आज रात को सोते उठाकर लाना है । इस प्रकार आपस में चर्चा कर नगर में घुस जाते और स्त्रियों को तंग करने लगते । बच्चों को मारते-पीटते तथा बच्चों के पटकने में विशेष आनन्द लेते थे । ललितांग के मारे सारा नगर त्रस्त हो गया । सर्वत्र कोलाहल ही सुनाई पड़ता था । नगरवासियों की दुर्दशा का वर्णन करना शक्ति से बाहर की बात है ।

एक दिन ललितांग वेश्याओं के मोहल्ले में अपने साथियों के साथ चला गया, और वहां किसी कुट्टिनी के घर में घुस गया। कुट्टिनी ललितांग को आया जानकर भय से विह्वल हो गयी और अपना होश-हवास खो बैठी, जिससे वह अपने दामाद को ही लडकी समझ कर अन्धेरे में अपने साथ लेती गयी तथा जल्दी-जल्दी दौड़ने के कारण वह घर के पीछे, जहां कूड़ा-कचरा इकट्ठा किया गया था, उसी घूरे के गड्ढे में गिर गयी। दूसरे घर के लोगों ने जब ललितांग के आने का समाचार सुना तो स्त्री, पुरुष सभी भागने लगे। स्त्रियां वेहतास हो इस प्रकार भागीं कि उन्हें खम्भों में लगे शीशों में अपना ही प्रतिबिम्ब ललितांग दिखलायी पड़ा। अत: वे नमस्कार करती हुई कहने लगी— राजन् कृपा कीजिये, धर्मावतार हमने कोई अपराध नहीं किया है। आप प्रजा रक्षक हैं, हम अवलाएं आपकी शरण में हैं। हमने न कोई गलती की है और न आगे गलती करेंगीं। हे राजन् प्रसन्न हो जाइये, आपकी हम शरणागत हैं। राजा प्रजा के लिये पिता तुल्य होता है, आप हमारे पिता हैं कृपा करें, कृपा करें।

पास के घर में एक नव दम्पत्ति सोये हुए थे। जब बाहर ललितांग के आने का हल्ला सुनाई पड़ा तो स्त्री वेचारी देखने के खयाल से बाहर क्या हो रहा है, किवाड़ खोलने लगी। इतने में अर्धनिद्रित पति भी उठा और बाहर की ओर दौड़ा। पति ने अपनी पत्नी को ही चोर समझ पकड़ लिया और उसके बाल पकड़ कर खींचने लगा और जोर-जोर से कहने लगा—हे चोर तूने मुझे क्या नामर्द समझ लिया है, क्या तुम बकरी होकर वाघ के यहां आये हो। तुमने गरीबों को बहुत सताया है, आज मेरे हाथ आये हो ललितांग। इस प्रकार बकते हुए स्त्री को पीटने लगा। स्त्री वेचारी चिल्लाने लगी और अपनी रक्षा की प्रार्थना पति से करने लगी तथा अपना परिचय देने लगी। पत्नी को पहचान कर पति बहुत लज्जित हुआ।

सभी नगर निवासी ललितांग की कार्यवाईयों से तंग आकर विचार करने लगे कि कब तक इस प्रकार के अत्याचारों को सहन किया जायगा। राजकुमार ने नगर को आतंकित कर दिया है, इसके लिये कुछ उपाय अवश्य करना होगा। राजपुत्र अशिक्षित और धूर्त है, यह मद से विह्वल है, इसके अत्याचारों से बचने के लिये उपाय करना आवश्यक है। सभा में एकत्रित सभी ने एक स्वर में कहा स्वप्न में भी ललितांग का भय नगर को त्रस्त किये है। यहां किसी को भी एक क्षण के लिये शांति नहीं। जान माल सभी अरक्षित है, ऐसे राज्य में रहने से कोई लाभ नहीं।

अतः सबने मिलकर प्रस्ताव पास किया कि सभी ललितांग की शिकायत एक साथ मिलकर राजा से करें और राजा को उसे दण्ड देने के लिये बाध्य करें। ललितांग के स्मरण मात्र से ही नागरिकों की आंखों से आंसू निकलने लगते थे, ओठ सूख जाते थे, रोमांच हो आते थे। इस प्रकार सभी एक मत हो राजदरबार में आये और राजा से प्रार्थना करने लगे।

कुछ चतुर नागरिक—राजन् ! आपका पुत्र निरंकुश हाथी की तरह हम नगरवासियों को कुचल रहा है, पग-पग पर हमें कष्ट देरहा है। कुमार की लीलाओं का कथन करने से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारा जीवन कीड़े मकोड़े के समान नष्ट किया जा रहा है, हमारी बहू-बेटियों की अस्मत लूटी जा रही है। नगर में गुंडई का बोल-बाला है। धर्मावतार ! राजपुत्र के दुष्कृत्यों का वर्णन करने की शक्ति हम में नहीं है। प्रभो ! अब तो हम आपकी शरण हैं, आप चाहे हमारी रक्षा करें, चाहे न करें। राजकुमार ने सभी के घर-द्वार को लूट लिया है, दुकानों के सामान को तोड़-फोड़ डाला है। नगर में आग लगादी है। अनेक लोगों की हड्डी-पसली तोड़ दी है, अनेकों की खाल खींचली है, बहुतों को कोल्हू में पेल दिया है। प्रजा बहुत त्रस्त है। इस समय नगर में ऐसा एक भी व्यक्ति न मिलेगा, जिसे राजकुमार ने कष्ट न दिया हो। बाल, बच्चे, बूढ़े, नर, नारी सभी को नाना प्रकार की यातनाएं दी गयी हैं। महाराज आप हमारे स्वामी हैं, अब आपको छोड़ के हम किससे अपना दुःख कहें। रात को सोना हराम हो रहा है, हम लोग इधर एक महीने से नहीं सो सके हैं। कुंओं से स्त्रियां पानी भरने नहीं जा सकती हैं, अतः अनेक घरों में लोग प्यासे मर रहे हैं। हे राजन् रक्षा करें, रक्षा करें।

प्रजा की इस दुःख गाथा को सुनकर राजा अरिमत को महान् कष्ट हुआ। पुत्र के निन्द्य कृत्यों से उसके हृदय को मर्मान्तिक पीड़ा हुई। राजा ने प्रजा को सम्बोधित कर कहा—आप लोग जायें, आनन्द पूर्वक अपने-अपने कार्यों को करें। मेरे रहते हुए आप लोगों को कष्ट नहीं हो सकेगा। आपके दुःख को दूर करने का उपाय तुरन्त किया जायगा। आप लोग अब भय छोड़ दीजिये, शान्ति और अमनचैन से रहिये। इस प्रकार प्रजा को समझाकर राजा ने पान, सुपाड़ी, कर्पूर आदि से प्रजा सत्कार किया और समझा-बुझाकर प्रजा को घर भेज दिया। प्रजा के चले जाने पर राजा ने प्रधान अमात्य और पट्ट महिषी को बुलाया और कहने लगा—

जैसे दुर्योधन की संगति से कर्ण, शकुनि और दुश्शासन की बरबादी हुई, उसी प्रकार दुष्टों की संगति से यह ललितांग भी भ्रष्ट हो गया है। आप लोग जानते हैं कि संगति का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है—

जिस प्रकार सूअर की संगति से गाय का बछड़ा मल भक्षण करने लगता है, उसी प्रकार राजकुलोत्पन्न यह ललितांग दुष्टों की संगति से बिगड़ गया है। नदी का मीठा पानी समुद्र में मिलने से खारी हो जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुष भी दुष्टों की संगति से सर्वनाश को प्राप्त हो जाते हैं। शीतल जल जैसे अग्नि के संसर्ग से गर्म हो जाता है, उसी प्रकार ललितांग भी दुष्ट संगति से खराब हो गया है। कहावत भी प्रसिद्ध है कि संगति से ही गुण उत्पन्न होते हैं और संगति से ही गुण विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। अतः ललितांग का सर्वनाश भी कुसंगति के कारण ही हुआ है। प्रजा को इसने इतना बड़ा कष्ट भी कुसंगति के फेर में पड़कर ही दिया है। जो राजा प्रजा का रक्षक है, न्यायकर्ता है; वही यदि प्रजा पीड़क हो जाय तो फिर संसार का उद्धार कभी नहीं हो सकता। ललितांग के दुष्कृत्य सर्वथा निन्द्य और लज्जास्पद हैं, उसे सन्मार्ग पर कैसे लाया जाय तथा उसकी दुष्प्रवृत्तियां कैसे दूर हों, इसका उपाय करना चाहिये।

सन्तान कुसंगति को प्राप्त होकर असन्मार्ग की ओर जाती है, इसका भी मूल कारण माता-पिता ही हैं। यदि प्रारम्भ से माता पिता अपनी सन्तान की देखभाल रखें तो फिर सन्तान कभी कुमार्ग की ओर जा ही न सके। ललितांग बिगड़ गया है, सप्त व्यसनों का सेवन करता है, इसमें भी दोष हमारा ही है, कुमार का नहीं। मोह के कारण हमने उसे शिक्षा नहीं दी, जिससे सत् शिक्षा न मिलने से वह बिगड़ गया है, इसमें अन्य किसी का अपराध नहीं है।

यदि हम इसे मुनियों के पास ले जाते, वहां यह उनका उपदेशामृत सुनता तो इसके संस्कार दृढ़ हो जाते और यह कुमार्ग का पथिक नहीं बनता। अच्छे संस्कारों के न पड़ने से अन्य लोगों की संगति के कारण ही इसकी यह दशा हुई है।

जो माता पिता ज्यादा मोह के कारण सन्तान को अशिक्षित रख लेते हैं तथा लाड़ प्यार में अधिक रखते हैं, उनकी सन्तान अवश्य ही कुमार्गगामी बन जाती है। कहावत भी है कि "माताशत्रु पितावैरी येन बालो न पाठितः" अर्थात् जो माता-पिता अपनी संतान की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते हैं, वे शत्रु हैं। उनके द्वारा सन्तान का हित नहीं हो सकता है, बल्कि सन्तान दिनोंदिन बिगड़ती जाती है।

खाद के बिना उत्पन्न हुआ धान्य, बिना शिक्षा का पुत्र और असमय की तपस्या कभी भी सफल नहीं हो सकती। "पुत्रं च शिष्यं च ताडयेत् न लालयेत्" पूर्वाचार्य की इस उक्ति का उलंघन न करते हुए पुत्र को सदा शिक्षित बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार विचार करते हुए राजा ने ललितांग को हाथ पकड़ कर पास बैठा लिया और उसे उपदेश देने लगा—

पृथ्वी की रक्षा करना, दुष्टों का निग्रह और शिष्टों का संरक्षण करना, सद्धर्म की रक्षा करना, धूर्तों, लुटेरों और चोरों को देश से बाहर निकाल देना, प्रजा का सब प्रकार से संरक्षण करना, अनीति और कुमार्ग का त्याग करना, शरणागत की रक्षा करना एवं व्यसनों का त्यागना ही क्षत्रीयों का कर्त्तव्य है। क्षत्रीय शब्द का अर्थ यह है कि जो पीड़ितों की रक्षा करें वे क्षत्रीय होते हैं। क्षत्रीय कभी भी निरपराधियों की जान नहीं लेते हैं।

जैसे बालक के सुख के लिये मां सभी प्रकार के कष्ट स्वयं सहन करती है, सुख की कामना करने वाला जैसे चारित्र और शील की रक्षा करता है, उसी प्रकार पुत्रवत् प्रजा का पालन करना राजा का कर्तव्य है। जो राजा अपनी प्रजा को प्राणों के समान नहीं समझता है, वह राजा अत्यन्त क्षुद्र और नीच है। ऐसे राजा का राज्य शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

चन्द्रमा जैसे किरणों से युक्त होने पर शोभित होता है, सूर्य प्रकाश से युक्त होने पर शोभता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा का हित करने पर शोभता है। जो राजा प्रजा को सन्तुष्ट नहीं कर सकता है, वह राजा कर्तव्य च्युत और पापी माना जाता है। राजा का परम कर्तव्य है कि वह प्रजा की सब प्रकार से देखभाल करे, उसके सभी कष्टों का निवारण करे। जो राजा अभिमान में आकर प्रजा के हितकार्यों को सम्पन्न नहीं करता है, वह नराधम है। नीतिकारों ने भी बतलाला है कि वह राजा नरक का पात्र होता है, जो प्रजा के भूखे रहने पर स्वयं भोजन करता है तथा प्रजा के दुःखी होने पर स्वयं आनन्द का उपभोग करता है। संसार में राजा होना उसी व्यक्ति को उपयुक्त जचता है जो अपनी सन्तान के समान प्रजा का पालन करता है। राजा और प्रजा में केवल अधिकार का भेद है, यह अधिकार तभी प्रकट होता है जब अवसर आने पर राजा प्रजा के हित के लिये अपने स्वार्थों का उत्सर्ग कर देता है।

पूर्व जन्म के महान पुण्योदय से राज-पदवी मिलती है। जो निर्बुद्धि इस महत्वपूर्ण पद को प्राप्त कर अपने

कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं, वे अत्यन्त निन्द्य हैं। इस पदवी को प्राप्त कर अपना हितसाधन करने के साथ-साथ प्रजा की भलाई सभी प्रकार से करना आवश्यक है। प्रजा उसी राजा को अपने पिता तुल्य समझती है जो उसकी सब प्रकार से सहायता करता है।

राजा ने कुमार को पुनः सम्बोधित कर कहा—कुमार संगति का प्रभाव सभी पदार्थों पर पड़ता है। जड़-चेतन सभी पदार्थ सत्संगति और कुसंगति से बनते बिगड़ते हैं। यद्यपि जड़ में अनुभव करने की शक्ति नहीं, फिर भी उसके ऊपर संगति का असर पड़ता है।

जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर तारागण प्रकाशित होते हैं, किन्तु सूर्य के उदय होते ही उनका प्रकाश लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार तीव्र कर्मोदय से दुष्ट संगति में पड़ जाने से मनुष्य का विवेक लुप्त हो जाता है। अतएव अब तुम्हें दुष्टों को दण्ड देकर धर्मात्मा व्यक्तियों का संरक्षण करना चाहिये। तुम मेरे कुल के उज्वल प्रकाश हो, इस साम्राज्य के स्वामी हो, प्रजा के संरक्षण का भार तुम्हारे ऊपर है अतः अब तुम्हें दुष्टों को दण्ड देकर निर्दोष प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। शिक्षा के अभाव से अब तक जो हुआ सो हुआ; किन्तु आज से आप अहंकार, दुष्ट संगति, उपद्रव, अत्याचार आदि दुर्गुणों को छोड़ प्रजा के कल्याण में तत्पर हो जाइये। राजपुत्र होकर तुम्हें ऐसे नीच कृत्य नहीं करने चाहिये। यदि रक्षक ही भक्षक बन जाय तो फिर संसार किस प्रकार चले, धर्म-कर्म का निर्वाह कैसे हो? जरा अपने कुल, वंश, कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विचार करो। राजपुत्र होकर निन्द्य कृत्य करना, दुष्टों की संगति में रहकर नित-प्रति उपद्रव करना, प्रजा को सब प्रकार से त्रास देना, कहां तक उपयुक्त है? तुम जैनधर्म में उत्पन्न हुए हो, तनिक विचारो यह धर्म कितना कल्याणप्रद और उद्धारकारक है?

जैनधर्म शुद्ध, निर्मल स्फटिक मणि के समान है, इसके धारण करने से आत्मा का कल्याण अवश्य हो जाता है, अतः अब आप पापानुराग को छोड़ अपने कर्त्तव्य पालन में लग जाइये। दुष्टों के साथ रहने से वंश, धर्म पद सभी कलंकित होते हैं। कुमार! तुम समझदार हो, राजघराने में उत्पन्न हुए हो, पवित्र जैनधर्म तुम्हारा वंशानुगत धर्म है। जो व्यक्ति इस धर्म को धारण कर लेता है, उसकी आत्मा इतनी पवित्र हो जाती है जिससे उसकी पापाचार की ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। मैं आपको अधिक क्या समझाऊं, आप पाप प्रवृत्ति छोड़कर धर्माचरण में लग जाइये। आज से मेरी कसम खाइये कि कुसंगति में न जाइयेगा। तुम हमारे कुलदीपक हो, तुम्हें प्राप्त कर हमारा कुल धन्य हुआ, अतः

अपने कुल की लज्जा का निर्वाह करने के लिये कुकृत्य का त्याग तुम्हें आज से कर देना चाहिये । हमारे घर में किस बात की कमी है जिससे लूट-पाट कर धन तुम लाते हो ? पुत्र, संसार उन्हीं का गुणगान करता है, जो प्राण रहते हुए अन्य लोगों का उपकार करते हैं । इस प्रकार प्रेम पूर्वक समझा कर कुमार को सुस्वादु भोजन और रत्नहार अर्पित किये तथा राजा ने स्नेहाश्रुओं से कुमार के मस्तक को आर्द्र कर दिया ।

जिस प्रकार नारियल के पेड़ को किसी लकड़ी के सहारे बांध देने पर सीधा हो जाता है; पर पीछे वह फिर टेढ़ा हो जाता है तथा कुत्ते की पूंछ को थोड़ी देर के लिये भले ही सीधा कर लिया जाय, किन्तु थोड़े समय में वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है, इसी प्रकार कुमार भी जब तक राजा के पास रहा ठीक रहा, किन्तु वहां से हटते ही उसकी दुष्प्रवृत्तियां पुनः उद्बुद्ध हो गयीं । उसने अपने पुराने साथियों को संघटित किया और सभी एकत्रित हो नगर में लूट-पाट मचाने लगे । नगरी की युवतियों की इज्जत लूटने, सम्भ्रान्त परिवारों को सताने एवं जलाशयों के जल को विषैला बनाने में उन्हें अपूर्व आनन्द आता था - छोटे छोटे बच्चों को कत्ल कर देना, बुढ्ढ़ों को धक्के देकर मार डालना उनके लिये अत्यन्त सरल था ।

जब राजा अरिमत को यह समाचार मिला तो उसे बहुत क्रोध आया और ललितांग को बुला कर उसने कहा अरे कुमार ! जैसे दूध पिलाने पर भी सांप विष ही उगलता है, उसी प्रकार तुम मेरे उपदेशामृत के बावजूद भी अपनी पुरानी हरकतों से बाज नहीं आये । अग्नि का छोटा सा कण जैसे हवा के झोंके से तेज हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी बाहर निकलते ही पुनः दुष्टों के चक्कर में आ गये ।

झूठी प्रतिज्ञाएं करने वाले तुम जैसे मक्कार पुत्र को राज्य देने से क्या लाभ ? तुमने मेरी अन्तरात्मा को बड़ा भारी कष्ट दिया है; अब तुम्हें अत्याचार और उपद्रव करने का दण्ड मिलना चाहिये । जिस प्रकार अच्छे कोयले को भी हाथ में लेने से हाथ काला हो जाता है, उसी प्रकार दुर्जन को उपदेश देने पर भी वह दुष्टता ही करता है । दुर्जन संसर्ग से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । अतएव तुम जैसे निकम्मे पुत्र का मैं मुंह नहीं देखना चाहता हूं, तुम मेरे सामने से निकल जाओ । अब तुम्हें मेरे राज्य में रहने की आवश्यकता नहीं । तुम जैसे पापी के रहने से मेरे राज्य का सर्वनाश हो जायगा । जल्दी मेरी आंखों से ओझल हो जाओ । आज से तुम्हें देश निकाला दिया जाता है, यदि कहीं भी मेरे राज्य में तुम पाये गये तो उसी समय तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा ।

ललितांग पिता के क्रोध पूर्ण वचनों को सुन कर सहम गया। वह डरता हुआ मां के पास पहुँचा और नम्रता पूर्वक मां से कहने लगा — मेरी स्नेहमयी मां ! पिताजी ने मुझे देश निकाला दे दिया है अब तो आपही मेरी रक्षा कर सकती हैं। पिता के क्रोधानल से बचाने की शक्ति आप में ही है। आपकी जिस स्नेहमयी गोद में मैंने आनन्द से बचपन बिताया, युवावस्था को प्राप्त हुआ, क्या अब उस गोद में मुझे स्थान नहीं मिलेगा।

मां—पुत्र तुम नहीं जानते तुम्हारे पिता तुम्हें कितना स्नेह करते हैं। उन्होंने तुम्हें कितना समझाया। तुमने भरी राजसभा में उपद्रव और अत्याचार न करने की प्रतिज्ञा भी ली किन्तु तुमने उस प्रतिज्ञा का चार छः दिन भी पालन नहीं किया। पिता के प्रेमपूर्ण समझाने का तुम्हारे ऊपर कुछ भी असर नहीं हुआ। अतएव अब इस राज्य में तुम्हारे लिये स्थान कहां है ? तुम जैसे अत्याचारी का पुत्र होना ही हमारे लिये लज्जा की बात हैं। मेरे उदर से जन्म लेकर तुमने मुझे भी निन्दनीय बनाया। तुम कुल के लिये कलंक हो, यदि तुम उत्पन्न न होते तो कुल में दाग नहीं लगता बन्ध्या को जीवन में एक बार ही दुःख का अनुभव होता है, किन्तु दुष्ट पुत्र उत्पन्न करने वाली को पग-पग पर दुःख भोगना पड़ता है। तुम्हारे लिये कल्याण इसी में है कि तुम अविलम्ब यहां से चले जाओ। जितना जल्दी हो सके राज्य से बाहर हो जाओ।

जिस प्रकार शीतल जल सूर्य की किरणों के संयोग से गर्म हो जाता है, उसी प्रकार तुम दुष्ट संगति से बिगड़ गये हो। यदि अब भी तुम अपना कल्याण चाहते हो तथा अपनी दुष्टताओं को छोड़ सकते हो तो तुम्हारे लिये एक ही रास्ता है कि तुम अपने पिता के पास जाकर क्षमा याचना करो।

मां के इन वचनों को सुन कर ललितांग को क्रोध आ गया और वहीं गालियां देने लगा। मां ने इस पर भी पुत्र-प्रेम से प्रेरित होकर ललितांग को समझाया—विनय पूर्वक मां-बाप की आज्ञा न मानने से तथा दिन रात दुष्टों की संगति में रहने से तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया है, इसी कारण तुम्हें हित के वचन अच्छे नहीं लगते।

माता के इन वचनों ने ललितांग को और भी कटीले वृक्ष के समान दुःखदायी बना दिया। मदिरा पान किये हुए समान वह मां-बाप को ही गालियां बकने लगा। क्रोधाभिभूत हो वह देश छोड़कर नैपाल देश में आया।

जिस प्रकार गंजड़ी और शरावी गंजेड़ीयों और शरावीयों में मिल जाते है, विष विष में मिल जाता है, उसी प्रकार ललितांग अपने धूर्त साथियों के साथ धूर्तों में मिल गया और चोरी करने लगा। चौर्यकला में इसने अत्यन्त

ख्याति प्राप्त की; जिस कार्य को कोई नहीं कर सकता था, उसे ललितांग करता था। इसने चोरी में सफलता प्राप्त करने के लिये अंजनवटी विद्या को सिद्ध किया, जिससे अदृश्य होकर मनमानी वस्तुओं को चुरा लाता था। अंजनवटी विद्या के कारण सर्वसाधारण में यह अंजन चोर के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। देश-देशान्तों में भ्रमण कर अपनी विद्या के बल से सहस्त्रों रुपयों का माल चोरी में लाने लगा। यह सदा चोरी करना- जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, वेश्या गमन करना, परस्त्री सेवन करना आदि सातों व्यसनों का सेवन करने लगा। सदाचार और धर्म-कर्म को भूल कर निरन्तर दुराचार में ही प्रवृत्त रहने लगा धूर्त, चोर, शराबी डाकू आदि अनाचारियों के साथ रहकर मनमाना पाप करने लगा।

कुछ दिन पश्चात् नाना देशों में भ्रमण करता हुआ ललितांग अपने साथियों के साथ राजगृह नगर में आया। इस नगरी की अप्रतिम सौन्दर्यशाली अनंग सुन्दरी नाम की वेश्या को देखकर मोहित हो गया और वहीं पर रहने लगा। वेश्या की इच्छा पूर्ति के लिये वह रातभर चोरी कर सामान लाता और दिन को वेश्या के घर में ही पड़ा रहता। उसके द्वारा चोरी में लाये हुऐ सामान से थोड़े ही दिनों में वेश्या का घर भर गया। अनंग सुन्दरी इतने महान् चोरी के द्रव्य को देखकर आश्चर्य में पड़ गयी। वह मन में सोचने लगी—इतना वैभव इन्द्र के यहां भी नहीं होगा, किसी राजा महाराजा चक्रवर्ती के यहां भी इतनी विपुल धन- राशि नहीं हो सकती है। मेरा यह पति महान् है, ऐसा व्यक्ति त्रिलोक में भी नहीं होगा। मेरे घर में देश -विदेश की सारी विभूतियां एकत्रित हैं। मुझे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। मैं चाहूं तो इतने धन से राज्य खरीद सकती हूं। वेश्या ने ललितांग की खूब प्रसंशा की और उसे बातों में इस प्रकार फंसा लिया जिससे चोरी करने की विधि, चोरी करने के स्थान आदि को अपने वाक्जाल द्वारा सहज में ही अवगत कर लिया। ललितांग की बातों ने अनंग सुन्दरी को आश्चर्य में डाल दिया। चोरी करने की विधि, स्थान तथा साहस आदि को सुन कर वह मुग्ध हो गयी।

दूसरे दिन राजगृह का नृपति अपने परिवार सहित जल क्रीड़ा के लिये जा रहा था। रानी हाथी पर बैठकर राजा के साथ जा रही थी। उसके गले में ज्योतिप्रभा नामक नीलमणियों का हार चमक रहा था। जब वेश्या की दृष्टि रानी के गले के हार की ओर गयी तो वह उसे देखकर ललचा गयी और उसे पाने के लिये लालायित हो उठी। उसने मन में विचार किया कि मेरा पति अंजनचोर अपनी विद्या के बल से इस हार को लाने में सर्वथा समर्थ है, अतः

इसके प्राप्त करने में मुझे कुछ भी देर नहीं है। जब वह आयगा मैं नाज नखरे के साथ कहूंगी कि यदि आपका मेरे ऊपर सच्चा प्रेम है तो हार लाकर दीजिये। जब तक हार मेरे गले में नहीं पड़ेगा, मैं अन्न–जल ग्रहण नहीं करूंगी।

अंजनचोर जब ग्रामान्तर से लौट कर आया तो वेश्या ने कटाक्ष करते हुए कहा कि यह महिषी के गले का ज्योतिप्रभा नामक हार आप लाकर तुरन्त दीजिये, अन्यथा मैं अनशन कर अपने प्राण देदूंगी।

अंजनचोर—अरी पगली ! तुझे क्या मेरे प्राणों से मोह नहीं। इस हार का लाना मेरे लिये असंभव है, राजा के यहां कड़ा पहरा रहता है। पहरेदार रातभर जागते रहते हैं। चोरी के लिये जाते ही पकड़ा जाऊंगा और मुझे फांसी का दण्ड भोगना पड़ेगा। क्या तुम्हें मेरे जीवन की तनिक भी परवाह नहीं ? मैं दूसरी जगह से किसी सेठ साहूकार के यहां से इससे भी बढ़िया हार तुम्हारे लिये ला दूंगा। तुम्हें दुःख करने की आवश्यकता नहीं।

अंजनचोर की बातों को सुनकर वह अपना सिर पीटने लगी और एक छोटीसी खटिया पर पड़ कर स्त्रियोचित नखरे करने लगी। उसने भोजन, स्नान, जल आदि का त्याग कर दिया और ललितांग को खोटी खरी बातें सुनाने लगी। मैंने अपनी मां की बात न सुनकर तुम्हें पति चुना, पर तुम एक छोटे से काम से घबड़ाते हो। अब मैं जीवित रह कर क्या करूंगी।

वेश्या की इस फटकार को सुनकर अंजनचोर घबड़ा गया और उसके पैर पकड़ कर बोला–प्रिये चांदनी में विद्या का प्रयोग नहीं होता कृष्णपक्ष की अष्टमी आने दो अवश्य तुम्हें रानी का हार लाकर सौंप दूंगा। इस छोटी सी बात के लिये इतनी नाराज क्यों होरही हो। तुम्हारे लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूं। थोड़े दिन तक धैर्य धारण करिये। ललितांग की इस प्रार्थना को सुन कर भी वेश्या अपनी हठ से विरक्त नहीं हुई, अतः उसे उसी दिन आंख में अंजन लगाकर हार चुराने के लिये जाना पड़ा। विद्या के बल से छिपकर ज्योतिप्रभा हार को अपने हाथ में ले लिया।

ज्योतिप्रभा हार में लगी हुई मणियों का प्रकाश इतना अधिक था, जिससे वह हार छिप न सका। उस हार के प्रकाश की चकाचौंध ने कोतवाल के ध्यान को आकृष्ट किया और उसने हल्ला मचा दिया तथा प्रकाश की दिशा की ओर पकड़ने को दौड़ा। चांदनी रात के कारण अञ्जन गुटिका भी अपना पूरा प्रभाव नहीं दिखला सकी, जिससे कोतवाल उसके पीछे दौड़ने लगा। जब अंजनचोर ने कोतवाल को पीछे आते हुए देखा और अपनी विद्या को निरर्थक देखा तो हार को फेंक दिया तथा जी,तोड़ दौड़ने लगा। वह नगर की चहारदीवारी को लांघ कर श्मशान भूमि की

और बढ़ा । वहां पर वृक्ष के नीचे दीपक जलते हुए देखकर वह उस पेड़ के नीचे पहुँचा और ऊपर की ओर देखने लगा । वहां पर एक १०८ रस्सियों का सींका लटक रहा था, उसके नीचे अस्त्र, भाला, वर्छी, तलवार, फर्सा, मुगद्र, शूल, चक्र आदि २ प्रकार के अस्त्र गाढ़े गये थे । एक व्यक्ति वहां पूजा कर णमोकार मंत्र पढ़ता हुआ एक-एक रस्सी काटता जाता था । प्रत्येक रस्सी काटने के बाद वह भय से नीचे की ओर देखता जाता था, क्योंकि अस्त्र पर गिरने से मृत्यु होजाने का डर था । अञ्जनचोर ने उससे पूछा तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ?

वह बोला —मेरा नाम वारिसेण है । मैं गगन गामिनी विद्या को सिद्ध कर रहा हूं । मुझे यह मन्त्र जिनदत्त श्रेष्ठि से मिला है । अंजनचोर उसकी बातों को सुनकर हंसने लगा और बोला—तुम्हें सम्यत्वचूड़ामणि, गुणज्ञ जिनदत्त सेठ के वचनों पर विश्वास नहीं है । तुम डरते हो । मालूम होता है कि विद्यासिद्धि में तुम्हें शंका है ? इस प्रकार कह कर अंजनचोर विचारने लगा कि मुझे तो मरना ही है, जैसे भी मरूं ? अत: जिनदत्त सेठ के वचनों पर विश्वास कर मन्त्रोच्चारण करते हुए स्वर्ग जाना अच्छा है । कोतवाल यदि पकड़ लेगा तो फांसी हो ही जायगी, अत: नर्क जाने की अपेक्षा स्वर्ग जाना श्रेष्ठ है । दयानिधि जिनदत्त सेठ के वचन अन्यथा नहीं हो सकते हैं । जिनदत्त सेठ ने आज तक किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया है, अत्यन्त धर्मात्मा, ज्ञानी और विवेकी है । वह कभी भी झूठ नहीं बोल सकता है; अत:मुझे उसकी बातों पर विश्वास करना चाहिये । इतना विचार कर अंजनचोर ने वारिषेण से कहा-भई आपको मन्त्र पर विश्वास नहीं है तो आप इसे मुझे दे दें । मैं इसे सिद्ध कर लूंगा वारिषेण प्राणों के मोह में पड़ कर घवड़ा गया और जिनदत्त सेठ के द्वारा बतायी हुई विधि पूर्वक उस मन्त्र को अंजनचोर को दे दिया । अंजनचोर ने अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ उस मन्त्र को सुना और उसकी साधना करने लगा । उसने सबसे प्रथम जिनदत्त सेठ को निर्मल मन से प्रणाम किया और अटल विश्वास पूर्वक नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करने लगा ।

सींके पर चढ कर मन्त्रोच्चारण पूर्वक वह रस्सियां काटने लगा । उसके मन में अपूर्व साहस, दृढ़ता और धैर्य था । अन्तिम रस्सी के कटते ही जैसे ही वह अस्त्रों के ऊपर गिरने वाला था कि विद्या देवता ने आकर उसको ऊपर ही उठा लिया और कहा तुम्हें क्या चाहिये ? मुझे आज्ञा दीजिये, मैं प्रस्तुत हूं ।

ललितांग उर्फ अंजनचोर—मैं जिनदत्त सेठ के दर्शन करना चाहता हूं, मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये ।

जिनदत्त सेठ उस समय सुमेरु पर्वत पर स्थित नन्दन और भद्रशाल वन में जिनेन्द्र प्रभु की पूजा कर रहा था। अंजनचोर सुमेरु पर्वत पर स्थित इस चैत्यालय को देख कर आश्चर्य में पड़ गया। यहां पर नाना प्रकार के फूलों के गुच्छे अशोकवृक्ष, चन्दनवृक्ष आदि से युक्त वन सुशोभित था। फूलों के ऊपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे तथा नाना प्रकार के पक्षी चहचहा रहे थे। मलयानिल पुष्पों की सुगन्ध को लेकर वह रही थी। विद्याधर अपनी पत्नियों सहित विहार कर रहे थे। ललितांग इस वन के सुन्दर मनोहर प्राकृतिक दृश्यों को देख कर आनन्द पूर्वक विहार करता हुआ मुग्ध हो गया।

चैत्यालय में सब जगह स्फटिक मणियाँ लगी हुई थीं सोपान वज्र का बना हुआ था, दरवाजे में वैडूर्य मणियां जटित थीं। वज्र के किवाड़ और सूर्यकान्त मणि की चौखट बनायी गयी थी। पद्मराग मणियों के कलश, मरकत मणियों के तोरण और मोतियों की झालर लगी हुई थी तथा जिन बिम्ब माणिक्य और हीरे के थे।

जिस समय अंजनचोर ने उस मन्दिर में प्रवेश किया, उस समय जिनदत्त सेठ अष्टद्रव्यों से भगवान् जिनेन्द्र की पूजा कर रहा था। अंजनचोर जिनदत्त सेठ के चरणों में नमस्कार करने लगा। जिनदत्त सेठ उसे देखते ही विचारने लगा कि इस दुराचारी, पापी को आकाशगामिनी विद्या कैसे प्राप्त हो गयी।

सेठ–आपको यह आकाशगामिनी विद्या कैसे प्राप्त हो गयी ?

अंजनचोर—हे श्रेष्ठिवर्य ! आपकी कृपा का ही यह फल है। जो जिनेन्द्र भगवान् के वचनों पर अटूट श्रद्धा रखता है, संसार में उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। मैंने कुसंगति में पड़ कर नाना पाप किये, हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह इन पांचो पापों का सेवन किया; पर एक बार ही जिनेन्द्र प्रभु के वचनों का दृढ़ श्रद्धान करने से मुझ जैसे पापी को भी यह श्रेष्ठ विद्या प्राप्त हो गयी। जिनेन्द्र प्रभु अनन्त शक्तिधारी हैं, जो इनकी भक्ति करता है, उसका संसार से अवश्य उद्धार हो जाता है। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि जिनेन्द्र भगवान् ही सच्चे देव हैं, वे ही वीतरागी हितोपदेशी और सर्वज्ञ हैं मैंने आपके वचनों का विश्वास कर पञ्चनमस्कार मन्त्र की आराधना की जिससे मुझे यह आकाश गामिनी विद्या प्राप्त हुई हैं।

जिनदत्त सेठ ललितांग को दृढ़ करने के लिये एक कथा कहने लगा ——

जैनधर्म के आराधकों से परिपूर्ण बहुजन संकीर्ण भरतक्षेत्र में भूमितिलक नाम का एक नगर है। इस नगर में नरपाल नामक राजा राज्य करता था तथा सुन्दर नाम का राजसेठ अपनी स्त्री सुनन्दा सहित आनन्द से रहता था। इन दोनों के श्रीवर्मा, जयवर्मा, जिनवर्मा, जिनदत्त, जिनदास और धन्वन्तरि ये छः पुत्र थे। राजा के पुरोहित का नाम सोमशर्मा था। इसकी स्त्री यज्ञिले नाम की थी। इनको विश्वानुलोम नाम का पुत्र था। कर्मयोग से धन्वन्तरि और विश्वानुलोम में अत्यन्त वात्सल्य था। दोनों एक साथ ही भोजन-शयन करते थे। ये दोनों एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे।

दैवयोग से दोनों कुसंगति में पड़कर सप्त व्यसनों का सेवन करने लगे। राजपुरोहित और राजसेठ ने इन दोनों को दुष्कर्मों से रोकने के लिये पूरा प्रयत्न किया पर वे न माने। चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कृत्य करते रहे थे। इन दोनों ने राजा से अपने पुत्रों की शिकायत की। राजा ने दोनों को दण्ड दिया, परन्तु फिर भी उन दोनों ने अपने पाप कर्मों को छोड़ा नहीं।

एक दिन उन्होंने राजभण्डार में चोरी की। कोतवाल ने चोरी करते हुए उन्हें पकड़ा और राजा के पास उपस्थित किया। राजा ने कहा—तुम दोनों बड़े दुष्ट हो, जल्दी मेरे राज्य से निकल जाओ, अन्यथा तुम्हें फांसी पर लटकवा दूंगा। राजाज्ञा प्राप्त कर वे दोनों शहर छोड़कर अन्यत्र चले गये। मोह के कारण माता-पिता भी उनके साथ चले। कुछ दिन तक चलने के उपरान्त वे गजपुर में पहुँचे और वहां जाकर भी चोरी का कार्य करने लगे तथा थोड़े ही दिनों में चोरों के सरदार बन गये।

एक दिन विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि से कहा—भई! आप मेरी एक बात अवश्य स्वीकार कीजिये। आप आज से जैन साधुओं के पास न जाइये तथा जैन मन्दिर में भी मत जाइये। आप भूमितिलक नगर में सदा जैन मन्दिर के दर्शन करते थे, जैन साधुओं के उपदेश सुनते थे; किन्तु अब आपको सब छोड़ना पड़ेगा। इनके साथ रहने से हमारे भोग-विलास में बाधा आती है। अतएव आज से आप को मेरी बात मानकर जैन मन्दिर जाना बन्द करना होगा।

धन्वन्तरि—भई बिगड़ते क्यों हो आज से आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

वार्तालाप के कुछ दिन बाद दोनों मित्र कहीं जा रहे थे कि कुछ दूर जाने पर प्यास लगी। वे दोनों जंगल में जल की तलाश करने लगे, इतने में एक जंगली हाथी उनके पीछे दौड़ा। दोनों भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। इसी बीच आकाश में बादल छा गये, पानी वर्षने लगा। पानी बन्द होने पर सन्ध्या समय दोनों वहां से चले किन्तु नगर का फाटक बन्द हो जाने से उन्हें वापस आना पड़ा और वे एक जैन मन्दिर में ठहर गये। सौभाग्य से उस दिन उस मन्दिर में वरधर्म नाम के मुनिराज भी वहां विद्यमान थे। प्रातःकाल भक्तिपाठ के अनन्तर श्रावकों को उपदेश दे रहे थे। उन दोनों ने विचारा कि इनका उपदेश कहीं हमारे कान में न पड़ जाय; अतः उन्होंने अपने कान बन्द कर लिये। अचानक धन्वन्तरि के कान से रुई निकल गयी और उसके कान में मुनिराज जी का उपदेशामृत जाने लगा। वह मुनिराज के पास चला आया और नमस्कार कर उनका उपदेश सुनने लगा। उपदेश सुनकर धन्वन्तरि बहुत प्रभावित हुआ और उसने मुनिराज से व्रत की याचना की। उसकी प्रार्थना सुनकर मुनिराज बोले—तुम कौनसा व्रत लेना चाहते हो ?

धन्वन्तरि—महाराज मुझे कोई ऐसा व्रत दीजिये, जिसका मैं निर्वाह कर सकूं।

मुनिराज—तुम प्रतिदिन घुटे सिर व्यक्ति का दर्शन कर भोजन करना।

धन्वन्तरि इस नियम को सहर्ष स्वीकार कर अपने साथी के पास आकर सो गया। घर आने पर अपने नियम का दृढ़ता पूर्वक पालन करने लगा। एक दिन शीघ्रतावश वह घुटे सिरवाले व्यक्ति के दर्शन किये बिना भोजन करने लगा। बीच में उसे अपने नियम की याद आ गई; अतः वह भोजन छोड़कर अपने नियम को पूरा करने के लिये चला। उसके पडोस में कुम्हार ने उसी दिन सिर घुटवाया था, किंतु वह वर्तन बनाने के लिये मिट्टी लेने बाहर गया हुआ था। धन्वन्तरि जब कुम्हार के यहां पहुँचा और उसे घर में न पाया तो जिधर कुम्हार मिट्टी लेने के लिये गया था, वह भी उधर की ओर चला। जब कुम्हार के पास वह पहुँचा तो उसने कुम्हार को घबड़ाया हुआ देखा। कुम्हार ने समझा—इसने मुझे खदान से धन निकालते हुए देख लिया है, अतः आधा हिस्सा इसको भी देना चाहिये, अन्यथा यह राजा से जाकर कह देगा तो राजा सभी धन लेलेगा। इस प्रकार विचार कर कुम्हार धन्वन्तरि के पीछे धन का हण्डा लेकर चला। धन्वंतरि दर्शन कर सीधा अपने घर की ओर तेजी से चलने लगा। धन्वंतरि आगे चला जा रहा था और कुम्हार स्वर्ण मुद्राओं से भरे हण्डे को लेकर उसके पीछे दौड़ने लगा तथा धन्वंतरि को

पाप दूर करने के लिये कुछ उपाय बतलाइये । जिनदीक्षा से बढ़कर आत्मकल्याणकारी अन्य कोई साधन नहीं है, अतः आप मुझे दिगम्बर दीक्षा दीजिये ।

मुनिराज— वत्स ! तपश्चर्या बड़ी कठिन वस्तु है । यह असिधारा व्रत है, तुम अभी इसके योग्य नहीं हो, अतः घर में रहकर ही श्रावकधर्म का पालन करो

धन्वन्तरि को मुनिराज के वचनों से संतोप नहीं हुआ, परन्तु गुरु आज्ञा मान कर घर चला आया । दो-चार दिन रह कर उसने श्रावकधर्म का पालन किया परन्तु इसके मन में बड़ा भारी संघर्ष था । अंत में उसने निश्चय किया कि जैसे भी हो दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करूंगा । यही एक मात्र मनुष्य का उद्धार करनेवाली है । इस प्रकार विचार-विनि-मय कर वह अपनी माता को समझा गया कि तुम विश्वानुलोम को मेरे पास भेज देना । वह धरणीभूषण पर्वत पर गया और वहां श्रीधर्म मुनिराज से दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली ।

जब विश्वानुलोम धन्वन्तरि के घर आया और उसे यह समाचार मिला कि धन्वन्तरि ने दीक्षा ग्रहण करली है, तो उसने निश्चय किया कि जो मित्र की दशा हुई है, वही मेरी होगी । मैं अब दीक्षा ग्रहण कर अपना कल्याण करूंगा । तस्कर वृत्ति करते—करते मेरी आत्मा निष्ठुर हो गई है, अतः अब अंतिम समय में मुझे कल्याण करना चाहिये ।

विश्वानुलोम जिस समय धन्वन्तरि के पास पहुँचा, धन्वन्तरि उस समय सूर्य प्रतिमा धारण किये था, जिससे वह मौन हो खड्गासन लगाये ध्यानस्थ था । विश्वानुलोन ने धन्वन्तरि से बात-चीत करने का प्रयास किया किन्तु मौन होने के कारण धन्वन्तरि कुछ नहीं बोला जिससे विश्वानुलोम को क्रोध आ गया और सहस्र जटी मिथ्यात्वी तापसी से दीक्षा ग्रहण करली । दूसरे दिन धन्वन्तरि विश्वानुलोम के पास आया और बात करने लगा । विश्वानुलोम ने सोचा कल मैं कितना चिल्लाया पर इसने बात भी नहीं कि, आज मैं इससे क्यों बोलूं । विश्वानुलोम की इस क्रिया को देख धन्वंतरि कहने लगा—हे मित्र ! आपकी यह तपस्या आत्म कल्याण से दूर ले जानेवाली है, इससे आप इहलौकिक कीर्त्ति के सिवा और कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं । इस मानव पर्याय को प्राप्त कर आत्म कल्याण करना चाहिये । अज्ञानता के समान संसार में कोई भी दुःखदाई नहीं है । जिस पाप पंक से बचने के लिये तुम तपस्या कर रहे हो,

धन्वंतरि — महाराज ! आपके द्वारा दिये गये व्रत ने मेरा परम कल्याण किया है । कृपया अन्य सुलभ व्रत दीजिये ।

मुनिराज — वत्स ! तुम किसी पर क्रोध करो और मारो तो सात कदम पीछे हटकर अपना कार्य करना ।

धन्वन्तरि—एवमस्तु ।

कुछ दिन तक घर में रहने के उपरांत दोनों मित्र अपने अनेक साथियों के साथ कलिंग देश की ओर चोरी करने के लिये गये और छः महीने तक वहीं रहते रहे; पश्चात् घर को लौटे । धन्वन्तरि घर से आते समय अपनी स्त्री को गर्भवती छोड़ आया था अतः उसके लिये विशेष रूप में चिंता करने लगा । लौटते समय वह गजपुर में कुछ दिनों तक रहा और वहां पूजा के उत्सव को देखने के अनन्तर घर गया । एक ही चार पाई पर अपनी स्त्री और मां को सोते पाया । मां किसी नाटकमें गयी थी अतः पुरुषकी पोशाक पहनेही सो गई, जिससे धन्वन्तरीको अपनी स्त्रीके आचरण के ऊपर संदेह हो गया । उसने समझा कि मेरी स्त्री किसी पर पुरुष के पास सो रही है, अतः मारने के लिए तलवार खींच ली; परन्तु मुनिराज के द्वारा दिये गये व्रत का स्मरण कर वह सात कदम पीछे को हट गया । इतने में उसकी स्त्री ने अपनी सास से कहा—ज़रा आगे को हटिये, गर्मी लग रही है आप तो मर्दानि कपड़े ही पहने सो गयीं, नींद नहीं आ रही है । स्त्री की इस आवाज को सुनकर वह भौंचक्का रह गया और तलवार म्यान में रखली और विचारने लगा कि आज इस पांचवें व्रत ने मेरा सर्वस्व बचा दिया । आज मुझ से महान् अनर्थ होता , मां की हत्या करता, गर्भिणी स्त्री को मारता जिससे दो जीवों की हत्या होती और मेरा पूरा घर ही उजड़ जाता । धन्य हो दिगम्बर साधु जिनके इन तुच्छ व्रतों ने मेरा कितना उपकार किया । अब मुझे आत्म कल्याण करनेवाले व्रत ग्रहण करना चाहिये । व्यसनों में पड़ कर मैंने अपनी आत्मा का कितना अपकार किया । लोकपरलोक सब कुछ बिगाड़ा, जघन्य से जघन्य कृत्य किया मेरे समान संसार में कोई भी पापी नहीं होगा, हाय ! ऐसे परोपकारी दिगम्बर साधु को प्राप्त कर भी मैंने अपना उद्धार नहीं किया । मुझ से नीच संसार में कोई नहीं होगा । इस प्रकार आत्मालोचना करता हुआ धन्वन्तरि आत्मविभोर हो गया । उसने समस्त धन दान में लगा दिया तथा स्त्री और माताके रहने का पूरा प्रबंध कर अपने कल्याण के लिये मुनिराज के चरणों में आया और हाथ जोड़कर कहने लगा — हे प्रभो ! अब मैं अपने स्वरूप को समझ गया हूं, आप

ठहरने के लिये पुकारने लगा ।

धन्वंतरि अपने कार्य की शीघ्रता के कारण कुम्हार के द्वारा रोके जाने पर भी नहीं रुका और अपने घर पहुँच गया । कुम्हार ने जाकर स्वर्ण मुद्राओं का ढेर उसके सामने लगा दिया और हाथ जोड़कर कहने लगा—हे प्रभो ! आप इन स्वर्ण मुद्राओं को ग्रहण कीजिये; मैंने इन्हें उसी खदान में मिट्टी खोदते समय पाया है । आप इस धन के मालिक हैं, जैसा समझें, करें ।

कुम्हार के इन वचनों को सुनकर धन्वंतरि को मुनिराज के वचनों का स्मरण आ गया और विचारने लगा कि एक छोटे से नियम के ग्रहण करने से इतनी विशाल धनराशि की प्राप्ति हुई है । यदि मैं मुनिराज के पास जाकर अन्य कोई व्रत ग्रहण करूं तो निश्चय ही मालामाल हो जाऊंगा । इस तरह ऊहा पोहाकर कुम्हार को आधा धन दे वरधर्म मुनिराज के पास आया और महाराज से अन्य कल्याणकारक व्रत की याचना की ।

सोच-विचार कर मुनिराज बोले—हे वत्स ! अजान फल का भक्षण करना छोड़ दो ।

धन्वंतरि ने सहर्ष नमस्कार कर व्रत ग्रहण कर लिया । कुछ दिनों के उपरान्त धन्वंतरि और विश्वानुलोम विदेश से बहुत सा धन चुराकर आये और एक बड़े मैदान में बैठकर बटवारा करने लगे । कई दिनों से भोजन न मिलने के कारण ये लोग बहुत भूखे थे तथा पास में रुपये, पैसे सिक्के नहीं थे, सिर्फ स्वर्ण, चांदी और जवाहरात ही थीं । अतः बाजार से भोज्य पदार्थ न ला सकने के कारण इन्होंने जंगल में से ही लालवर्ण के कुछ अजनबी फलों को तोड़ा और सभी लोगों के साथ खाने के लिये बैठे ।

धन्वन्तरि—अरे ! इन फलों का नाम बताओ ? जब तक इनका नाम नहीं मालूम होगा, मैं इन्हें नहीं खाऊंगा । मैंने अजान फल न भक्षण करने की प्रतिज्ञा की है । उसने अपने प्रत्येक साथी से उन फलों का नाम पूछा परन्तु कोई भी नहीं बता सका । अतः उसने अपने घनिष्ट मित्र बिश्वानुलोम से पुनः कहा—मैं किसी भी अवस्था में इन फलों को ग्रहण नहीं करूंगा ।

विश्वानुलोम—भई ! अब हमारा तुम्हारे साथ निर्वाह नहीं हो सकेगा । तुम स्वयं भूखे रहते हो और हम लोगों को भी भूखे रखते हो । तुम्हारे बिना खाये मैं कभी भी नहीं खा सकता हूं । तुम दिगम्बर जैन साधुओं के बहकाने से ढोंग में पड़ गये हो । तुम नहीं जानते, ये लोग जादूगर होते हैं । जो इनके पास जाता है, अवश्य प्रभावित हो

जाता है। मैं तो तुम से पहले ही मने करते रहता था कि इनके पास मत जाओ, इनका उपदेश मत सुनो, पर तुमने मेरी बात नहीं सुनी। आज कई दिनों से तुम्हारे ही कारण मैं भूखा हूं। यदि तुम हठ छोड़ देते तो पूर्व के अरण्य में ही फल खाकर हम अपनी क्षुधा को दूर करते। अच्छा तुम मत खाओ, मैं भी नहीं खाता हूं, पर इन विचारे साथियों को भूखे क्यों मारते हो ? अरे भाईयो ! तुम यथेष्ट फल खाकर अपनी क्षुधा को शान्त करो ।

विश्वानुलोम के निदेशानुसार अन्य साथियों ने फल खाये और वे सदा के लिये निद्रा देवी की गोद में सो, अपने पाप से छुटकारा प्राप्त किये। बात यह थी कि वे सभी फल विषफल थे, अतः खाते ही उनके साथियों के प्राण पखेरू उड़ गये धन्वन्तरि इस दृश्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और घर पहुँच कर पुनः वरधर्म मुनिराज के पास गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—स्वामिन् ! आपके दिये हुए व्रत ने मेरे प्राणों की रक्षा की है, अतः अब कोई आसान दूसरा व्रत दे दीजिये ।

मुनिराज—वत्स ! बलिदान के लिये आटे का बकरा या अन्य पशु बनाकर लोग रास्ते में चौराहे पर छोड़ देते हैं, तुम उसको न खाने का नियम लो।

धन्वन्तरि—महाराज ! आपका व्रत स्वीकार है, आप सच्चे गुरु हैं। चोरी करना मुझे अत्यन्त प्रिय है, आप इसीलिये इसे छोड़ने को नहीं कह रहे हैं ।

धन्वन्तरि की बातों को सुनकर महाराज मुस्कुराये और सोचने लगे कि इस शिष्य का कल्याण अवश्य होगा अब इसके उद्धार का समय निकट आ रहा है। त्याग के समान सुखकर अन्य कुछ नहीं है, परन्तु सदा शक्ति के अनुसार ही त्याग करना या करवाना चाहिये। जो अपनी शक्ति का विचार किये बिना व्रत नियम ग्रहण कर लेते हैं, वे प्रायः असफल रहते हैं। यदि इस धन्वन्तरि को मैं एक दिन ही सप्तव्यसन का त्याग कराता तो यह कभी भी नहीं करता। अब निश्चय ही यह धर्म को धारण करेगा।

धन्वन्तरि घर जाकर पुनः चोरी के व्यवसाय को अपने मित्र के साथ पूर्ववत् करने लगा। एक दिन धन्वन्तरि और विश्वानुलोम भूखे-प्यासे चले आ रहे थे। रास्ते में एक स्थान पर धरणेन्द्र का मन्दिर मिला। वहां पर कमलों से परिपूर्ण एक सरोवर था, उसके किनारे आटे के बैलों को कोई बलिदान कर रख गया था। विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि

से कहा—भाई ! यह आटा यहां मिल ही गया है, पानी यहां पर है ही अतः यहीं हमलोगों को भोजन कर लेना चाहिये अब भूख के मारे एक कदम भी आगे नहीं चला जाता है।

धन्वन्तरि—मेरा व्रत है कि बलिदान के लिये बनाये गये आटे के पशु को काम में न लेना; अतः मुझे भूखा मरना पसन्द है, परन्तु इस बलिदान के अन्न को खाना नहीं। मुझे तो यह आटे का पुतला विषमय प्रतीत हो रहा है। गुरु के वचनों पर मेरा अटल विश्वास है। यद्यपि भूख के मारे मेरे भी प्राण निकल रहे हैं,परन्तु व्रतको मैं नही तोड़ूंगा।

धन्वन्तरि के न खाने से विश्वनुलोम को भी भूखे ही रह जाना पड़ा; परन्तु उनके अन्य साथियों ने उस आटे के पुतले की रोटियां बनाकर खालीं। भोजन के उपरान्त सभी भोजन करनेवाले साथी मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए। बात यह हुई थी एक सांप उस पुतले को विषैला कर गया था, जिससे उन विषैली रोटियों के खाने से वे मृत्यु के शिकार हुए। साथियों की मृत्यु देखकर वे दोनों आश्चर्य में पड़ गये और चोरी के धन को आपस में बांटकर घर ले गये।

धन्वन्तरि अपने व्रत की सचाई देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि गुरु के पास जाकर अब और कोई व्रत लेना चाहिये। ये दिगम्बर साधु बड़े ही हितकारी हैं, इनके ही कारण मेरे प्राणों की रक्षा दो बार हुई है। ये संसार से बिल्कुल विरक्त हैं, इनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं। नग्न रहकर भूख, प्यास, गर्मी, वर्षा, जाड़ा, आदि के कष्ट को शान्ति और धैर्यपूर्वक सहन करते हैं। किसी से कुछ भी नहीं लेते, मैंने उस दिन इन्हें सौ स्वर्ण मुद्राएं दीं, परन्तु इन्होंने एक भी न ली। संसार के सब से बड़े हितैषी यही हैं। कोई गाली दे तो भी नाराज नहीं होते। विश्वानुलोम ने उस दिन एक हजार गालियां इनको दी होंगी, पर एक शब्द भी इन्होने मुंह से नहीं निकाला। मेरे एक साथी ने जब ढेले से मारा था, तब भी यह हंसते ही रहे, उस ढेले के दुःख की तनिक भी परवाह नहीं की। परसों जब हम उस रास्ते से जा रहे थे, तो हमने देखा था कि इतनी कड़ाके की सर्दी में भी ये अपने ध्यान में संलग्न थे। अब तो मुझे निश्चय हो गया है कि दिगम्बर साधु ही सच्चे हैं। ढोंगियों के पास कभी नहीं जाना चाहिये, वास्तव में मेरी आदत इन पाखण्डी साधुओं ने ही खराब की है। शराब पीने का मुझे बिल्कुल अभ्यास नहीं था, मुझे शराब देखते ही कप-कपी होती थी; पर धीरे-धीरे पाखण्डी साधुओं ने मुझे शराब की आदत डाल दी यदि उस समय ये दिगम्बर

साधु मिल गये होते, तो निश्चय मेरा जीवन इस नरक से बच जाता। अब पछताने से क्या होता है, मेरी आदतें इतनी पुरानी हो गई हैं कि मैं इन्हें छोड़ने में मजबूर हूं। इस प्रकार विचार-सागर में डुबकियां लगाता हुआ धन्वंतरि वनमें मुनिराज के पास गया और बोला–प्रभो ! आपके व्रत ने मेरी प्राण रक्षा की है, कृपया और कोई सुलभ व्रत दीजिये।

मुनिराज—वत्स ! प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को मांस खाने और मदिरापान करने का त्याग कर दो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

वह व्रत स्वीकार कर घर आया और विश्वानुलोम को बुलाकर चोरी के लिये विदेश गमन किया। अब की बार अपार धनराशि चोरी में उपलब्ध हुई। दोनों साथी अनेक अनुचरों के साथ लौटे तो धन का बंटवारा करने के लिये डेरा डाल दिया। आमोद–प्रमोद करने के लिये अपने दो अनुचरों को बढ़िया शराब लेने और दो को मांस लेने नगर में भेजा। जो व्यक्ति शराब लेने गये थे वे सोचने लगे कि ये दोनों सरदार तो आधे से ज्यादा धन ले लेते हैं, हमलोगों को बहुत कम हिस्सा देते हैं। यदि इस शराब में हमलोग विष मिलाकर ले चलें, तो सरदार तथा इनके अन्य साथी शराब पीते ही यमलोक पहुँच जायेंगे और सारा धन हमें मिल जायगा, जिससे हम अपनी जीवन भर की गरीबी को दूर कर सकेंगे ! इस प्रकार विचार कर विष खरीदा और शराब में मिला दिया !

जो व्यक्ति मांस लेने गये थे, उनके मन में भी यह लोभ-पाप घुसा और उन्होंने भी मांस में विष मिला दिया जब नगर से शराब और मांस आ गया तो विश्वानुलोम बोला—भाई धन्वन्तरि ! इस भोज्य को ग्रहण करो !

धन्वन्तरि—आज चतुर्दशी होने से मैं मदिरा और मांस नहीं ग्रहण करूंगा। विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि को बहुत समझाया, पर वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। उनके सभी साथियों ने विषैली शराब और मांस ग्रहण किये, जिससे वे एक-एक कर मृत्यु के मुख में चले गये। केवल धन्वन्तरि और विश्वानुलोम दोनों बच गये। धन्वन्तरि ने इस आश्चर्यमय घटना को देखकर विश्वानुलोम से कहा—देखा, गुरु वचन का प्रभाव, तीन बार हमारे प्राणों की रक्षा गुरु वचनों से हुई है। देखो ! तुमने उस दिन मुनिराज को कितनी गालियां दी थी, अब उनकी महत्ता को समझो।

धन का बंटवारा कर दोनों घर आये। धन्वन्तरि को शान्ति नहीं मिली, अतः वह मुनिराज के पास गया।

मुनिराज—वत्स ! किस लिये आये हो ?

उसी पाप पंक में लिप्त होने का प्रयास आप क्यों करते हैं ? इस प्रकार समझाकर धन्वन्तरि अपने स्थान पर लौट आया और उग्रतर तपस्या कर समाधिमरण किया, जिससे मरकर अच्युत स्वर्ग में मितप्रभ नाम का अहमिन्द्र देव हुआ ।

धन्वन्तरि के जीव मितप्रभ देव ने नंदीश्वरी द्वीप में विश्वानुलोम के जीव को व्यंतर हुआ देखकर महान् आश्चर्य किया और कहने लगा—तुमने खोटी तपस्या की थी, मैंने तुमको कितना समझाया पर तुम नहीं माने, इसीका फल व्यंतर होना तुम्हें मिला है, तुम स्वयं परीक्षा करके देख लो कि किसकी तपस्या अच्छी है । चलो, अपने-अपने गुरुओं की परीक्षा करें—

वे दोनों चल कर कराट देश के पश्चिम भाग में चन्द्रिकारण्य में रहने वाले जमदग्नि जटाधारी तपस्वी की परीक्षा करने के लिये आये । जमदग्नि उग्र तपस्या में लीन था, आपाद मस्तक लताएं उसे वेष्टित किये हुए थीं, वह सिर पर पत्थर लिए तपस्या में लीन था उसकी इस तपस्या को देखकर अच्युतेन्द्र बोला—मूर्ख की बात, आकाश की छाया और अज्ञानपूर्वक तप कभी शाश्वत नहीं होते । इस प्रकार कह कर उसकी परीक्षा के लिए उसने अपनी विक्रिया के द्वारा दो पक्षियों को उत्पन्न किया और उनका घोंसला उनकी दाढ़ी में बना दिया । कुछ समय के बाद एक तीसरा पक्षी आया और उससे बोला—मेरु गिरि के पास मेरी बहन की शादी है, अतः आप चलिये । नर पक्षी जब निमंत्रण को स्वीकार कर जाने लगा तो मादा बोली—मैं गर्भिणी हूं, अकेली नहीं रहूंगी । मालूम होता है कि तुम वहां दूसरी शादी कर अपने को सुखी बनाना चाहते हो, इसी कारण तुम मुझे यहीं छोड़कर जाते हो । मैं यह कहे देती है कि यदि तुमने मेरा जी दुखाकर दूसरा विवाह कर लिया तो तुम्हारी वही गति होगी जो मरने पर इस तपस्वी की ।

मादा पक्षी की इस बातको सुनकर जमदग्नि ऋषि को क्रोध आ गया और दोनों पक्षियों को हाथ में लेकर फेंक दिया । क्रोध शांत होनेपर वह ऋषि पश्चात्ताप करने लगा, अतः उनको नमस्कार कर बोला—हे पक्षियों ! बताओ मेरी कौन-सी गति होगी ? तुम लोग मेरी नीच गति क्यों कह रहे हो ? पक्षी बोले—'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' तुमने बिना पुत्र उत्पन्न किये तपस्या की है अतः तुम्हारी अच्छी गति नहीं होगी । पक्षियों के इन वचनों को सुनकर ऋषि बहुत प्रभावित हुआ और उनकी प्रदक्षिणा देकर कहने लगा—आपने मेरा बड़ा उपकार किया है, आज आपने मुझे

सच्चा ज्ञान दिया । मैं अबतक बड़े अन्धेरे में था । हाय ! मुझ मूढ़ को यह छोटी-सी बात भी याद न आई । इस प्रकार स्तुति कर घर आया और अपने मामा की पुत्री से विवाह कर आनन्द से विषय भोगने लगा ।

अच्युतेन्द्र व्यन्तर की ओर देखकर कहने लगा—देखो ! तुम्हारा इतना बड़ा गुरु भी एक छोटी सी बात से चलायमान हो गया । मिथ्या तपस्या का प्रभाव ऐसा ही क्षणिक होता है, यह प्रारम्भ में भले ही चमत्कारपूर्ण मालूम हो, पर पीछे निष्फल सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकती । दिगम्बर साधुओं की परीक्षा तुम पीछे करना, पहले जैन गृहस्थ की ही परीक्षा करके देख लो । आत्मा की प्रतीति हो जाने पर—सम्यग्दर्शन हो जाने पर कोई भी धर्म से च्युत नहीं हो सकता है । यदि तुम सम्यग्दृष्टि श्रावक को ही अपने व्रत से च्युत कर दो, तो मैं तुम्हें बड़ा भारी ज्ञानी समझूं ।

रात को एक श्रावक प्रतिमा योग किये श्मशान भूमि में तपस्या कर रहा था । अच्युतेन्द्र ने कहा आप इसकी परीक्षा कीजिये । व्यन्तरदेव ने क्रोधित हो बिजली तैयार की, जोर से हवा चलायी, जिससे बड़े-बड़े पौधे भी उखड़ गये सिंह, व्याघ्र उत्पन्न किये जो दहाड़ने और चिंघाड़ने लगे । श्रावक के चारों ओर अग्नि जलने लगी, मदोन्मत्त हाथियों का समुदाय उपद्रव करने लगा, राक्षसों का समुदाय चिल्लाने लगा कि इसे मारो, काटो, चूर-चूर कर डालो की आवाज गूंजने लगी इतना ही नहीं उस व्यन्तरों ने उसको मिट्टी के ढेले के समान फेंकना शुरु किया नाना प्रकार के कष्ट दिये; किंतु वह धीर श्रावक इन नाना प्रकार के उपसर्गों से विचलित न हुआ । इसके अनन्तर व्यन्तर ने देव, शास्त्र, गुरु का विक्रिया द्वारा अपमान किया, तथा उसकी स्त्री, पुत्र, माता की हत्याएं की, किंतु वह साधक ज्यों का त्यों ध्यान में अडिग रहा । व्यन्तर उसके अद्भुत धैर्य और तेज को देखकर नत हो गया और उसके चरणों में गिर अपने कृत्यों की क्षमा मांगने लगा तथा स्वयं उसने मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण किया ।

इस प्रकार सेठ अंजनचोर से कथा कहकर बोला कि जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने से सारी विभूतियां प्राप्त होती हैं । गगनगामिनी विद्या तुम्हें प्रभु-भक्ति के प्रसाद से ही प्राप्त हुई है । अंजनचोर विचारने लगा कि मैंने सप्तव्यसन में अपना सब कुछ खो दिया, धूर्तों की संगति से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । अतः अब मुझे जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में ही शान्ति मिल सकती हैं । विश्वानुलोम और धन्वन्तरि जैसे व्यसनी जीवों का कल्याण इस पवित्र धर्म के धारण करते हो गया तो फिर मेरा कल्याण क्यों नहीं इस धर्म के धारण करने से होगा ? इस प्रकार आत्मालोचना करता हुआ देवर्षि नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि के पास गया और उनसे दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की, पंच मुट्ठी लौंच

किया और २८ मूल गुणों का पालन करने लगा। कुछ दिन तक तपस्या करने के उपरान्त उसे चारण ऋद्धि प्राप्त हुई। कैलाश पर्वत पर द्वादश प्रकार के तपों को करते हुए उसने घातियों कर्मों को नष्ट किया, पश्चात् मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियों को नाशकर परम पद को प्राप्त हुआ।

जो जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में दृढ़ विश्वास रखता है, वही अविनाशी सुखों को प्राप्त होता है। इस प्रकार गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक से निःशंकित अंग की कथा कही! जो व्यक्ति निःशंक हो पारस पत्थर के समान निर्मल धर्म से मिथ्यात्वरूपी लोहे को स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है, वह धन्य है।

द्वितीय कथा सम्पूर्ण



तीसरी कथा

निःशंकित अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति में दृढ़ हो गौतम गणधर से निःशंकित अंग की कथा कहने के लिये प्रार्थना करने लगा। गौतम गणधर समस्त सुखों की खान निःकांक्षित अंग की कथा कहने लगे।

अगणित कमलों से परिपूर्ण तालाबों से सुशोभित; कुबेर के समान धनिकों से पूर्ण, सरस्वती के अवतार विद्वानों से युक्त अंगदेश इसी भूमि पर शोभित है। इस देश में मोती और पद्मराग मणियों से युक्त उन्नत शिखरबद्ध जिनचैत्यालयों के द्वारा समस्त पाप को दूर करने वाली चम्पापुरी नाम की नगरी है। इस नगरी में जिनागमरूपी समुद्र का पारगामी श्रेष्ठवणिक वंश में उत्पन्न प्रियदत्त नाम का सेठ था, इसकी अनन्त रूप-लावण्यवाली अंगमति नाम की भार्या थी। इन दोनों के गुणवती होनहार अनन्तमती नाम की कन्या थी। यह कन्या अपने रूप और गुणों से सभी के चित्त को प्रसन्न करती थी। इसका बाल्यकाल समवयस्क बच्चों के साथ क्रीड़ा करते हुए बीतने लगा।

एक दिन यह अपनी सहेलियों के साथ गुड्डा गुड़ियों के विवाह का खेल खेल रही थी। इसने गुड़िया और गुड्डा को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाया, दोनों के मस्तक में कुंकुम का तिलक लगाया, सोने का हार पहनाया, गले में सुगन्धित पुष्प और मुक्ताओं से हार तैयार कर पहनाये। कई चन्द्रमुखी बालिकाएं बाजा बजाती हुई, बाजेवालों की नकल कर रही थी। इस प्रकार बालिकाओं की बारात का दृश्य बड़ा ही भव्य और चित्ताकर्षक मालूम हो रहा था। उपस्थित सभी कन्याएं आनन्द विभोर हो लोट-पोट हो रही थीं। इस समय प्रियदत्त सेठ श्री जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के लिये उसी रास्ते से जा रहे थे, जहां बालिकाएं क्रीड़ारत थीं।

प्रियदत्त सेठ ने अपनी प्यारी पुत्री को गोद में उठा लिया और प्यार करते हुए कहा तुम मुझसे छिपाकर विवाह कर रही हो? तुमने वास्तविक बाजे नहीं बुलाये, अतिथियोंको नहीं बुलाया, ज्योनारका प्रबन्ध नहीं किया। यदि तुम पहले से ही मुझ से कह देतीं तो मैं सारा प्रबन्ध कर देता। इस प्रकार अनन्तमती को प्यार की बातें कहकर प्रियदत्त अपने साथ जिनालय में लाया। भगवान् की पूजा-भक्ति करने के अनन्तर उन्होंने मुनिराज के दर्शन किये

तथा मुनिश्री से सद्धर्म का उपदेश देने की प्रार्थना की । श्रद्धापूर्वक उपदेश श्रवणकर नित्यव्रत[1] ग्रहण किये । जाते समय सेठ ने महाराज से प्रार्थना की—प्रभो ! मेरी इस होनहार पुत्री को ब्रह्मचर्यव्रत दे दीजिये । मैं विवाह पूर्ण वयस्क होनेपर करूंगा । मेरे साथ पर्व पर्यन्त यह भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेगी ।

वरदत्त मुनिराज ने हंसकर कहा—पुत्री ! तुम्हें ब्रह्मचर्यव्रत दे रहा हूं, स्वीकार करो ।

अनन्तमती नमोऽस्तु कर—गुरु के वचन अंगीकार हैं । आज से मैं गुड्डा-गुड़ियों का विवाह करना छोड़ती हूं ।

यह व्रत लेकर अनन्तमती बहुत प्रसन्न हुई । जिस प्रकार दरिद्री राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कर, अन्धा दोनों नेत्र पाकर, कुंऐ में गिरा हुआ उसके बाहर आ जाने पर एवं रोगी व्यक्ति बिना औषध के अच्छा हो जाने पर आनन्दित होता है, उसी प्रकार उपर्युक्त व्रत ग्रहण कर अनन्तमती को अपार हर्ष हुआ । वह सोचने लगी कि व्रत ही संसार की पाप कालिमा को दूर कर सुख और शान्ति प्रदान करता है । जीवन में सदाचार का श्री गणेश व्रतों के द्वारा ही होता है ।

वृक्षों के समुदाय में जैसे चन्दन वृक्ष, पुष्पों में कमल, सांसारिक वैभव में स्वर्गिक विभूति, पृथ्वी के राजाओं में चक्रवर्ती श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार समस्त देवों में वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी जिन भगवान् ही श्रेष्ठ हैं । जिनके पूर्वभव का पुण्य बलवान है, उन्हीं के कुलदेव जिनेन्द्र प्रभु हो सकते हैं । दयालु और स्नेहशील रूपवती स्त्री, विश्वासी नौकर, राजा की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करने वाला देश, कुल के अनुसार शील के साथ निर्वेग—विरक्ति, व्रत के साथ तप, तप के साथ ऐश्वर्य, जीवन के साथ श्रद्धा, श्रद्धा के साथ शक्ति, शक्ति के साथ भक्ति, भक्ति से साथ दान, दान के साथ धन, धन के साथ उदारता, सम्यग्दर्शन, व्रत आदि का मिलना संसार में दुर्लभ है । इस ससार से पार करने वाला सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन के बिना इस मनुष्य पर्याय का प्राप्त करना निरर्थक है । धर्म का सार सम्यग्दर्शन ही है, जब तक आत्मा के प्रति श्रद्धा नहीं, लोक परलोक में विश्वास नहीं, तब तक व्यक्ति को शान्ति नहीं मिल सकती । संसार के भोग जीवन में सुख और शान्ति नहीं ला सकते । भोगों से विरक्त हो जाने पर ही शान्ति का अनु-

१—प्रतिदिन गुरु के पास मर्यादा पूर्वक जो व्रत ग्रहण किये जाते हैं, वे नित्यव्रत कहलाते हैं । प्रायः इन इन व्रतों में एक अहोरात्र–२४ घंटे का ही नियम लिया जाता है ,

भव होता है। जो व्यक्ति भोगों का कीड़ा बना रहता है, एक दिन उस व्यक्ति को भी यथार्थता का अनुभव हो जाता है और वह भी इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि जीवन में सुख और शान्ति, सन्तोष और त्याग में ही है।

बाल्यावस्था में सम्यग्दर्शन के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का प्राप्त हो जाना, मेरे लिये परम गौरव की बात है। सांसारिक विषय देखने में सुन्दर पर भीतर से अत्यन्त भयावने हैं। ये विषय सबसे प्रथम मनुष्य की बुद्धि को बिगाड़ते हैं, जिससे विषयी जीव को इन्हीं में आनंद प्रतीत होता है। जिस प्रकार तालाब के पानी को निकाल कर नाले को बांधना, घर को नष्ट कर झोंपड़ी को बचाना, घी को त्याग कर गोबर को लेना, सोना छोड़ मिट्टी को लेना, एवं कस्तूरी को त्याग कर काजल को ग्रहण करना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन और ब्रह्मचर्य को छोड़ संसार के विषयों को ग्रहण करना मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

यद्यपि अनंतमती की अवस्था अभी थोड़ी ही थी, परन्तु विचार शक्ति उसकी प्रौढ़ों के समान थी। इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते समय उसकी अवस्था १५ वर्ष की हो गई। घर में लोग उसे ब्रह्मचारिणी कहा करते थे। यद्यपि प्रियदत्त सेठ का यह विचार था कि अनन्तमती को समझा-बुझा कर विवाह कर देना है, इसलिये वह अच्छे घर-वर की तलाश में था। वह समझता था कि अनन्तमती ने थोड़े दिन के लिये ही यह व्रत लिया है तथा उसका प्रधान ध्येय तो गुड़ियों के खेल का त्याग ही है। अतएव अब वयस्क पुत्री का शीघ्र विवाह कर देना चाहिये।

एक दिन अनन्तमती अपनी सखियों के साथ नगर के बाहर नन्दन उद्यान में आम्रवृक्ष के नीचे झूला-झूलने लगी। वह कमलमुखी अपनी मधुर ध्वनि से भगवान् के गुणों का स्तवन करने लगी. उसके स्वर में अपूर्व मिठास था। यह स्वर ध्वनि जिसके भी कानों में पहुँचती थी, वही मंत्र-मुग्ध हो अपनी सुध-बुध भूल जाता था। इसी समय आकाश मार्ग से विजयार्द्ध श्रेणी का निवासी कुंडलमण्डित नाम का विद्याधर अपनी अग्र पट्टरानी सुकेशिनी सहित क्रीड़ा करने जा रहा था। अनुपम रूपलावण्यवती अनन्तमती के ऊपर जब उस विद्याधर की दृष्टि पड़ी तो वह काम विह्वल हो तड़फने लगा, अपने समस्त ज्ञान और विवेक को खो बैठा। उसकी बुद्धि कुंठित हो गयी; क्योंकि विषयी जीवों की वासना के कारण यही अवस्था होती है, वे अपने विवेक को जलाञ्जलि देते हैं, धर्म-कर्म सब भूल जाते हैं।

प्रकार अनन्तमती उस कामी विद्याधर को देखते ही अपनी चेतना खो बैठी। जब उसकी चेतना लौटी तो उसने अपने को विमान में पाया। तत्क्षण ही अपने बुद्धि–कौशल से सारे रहस्य को समझ गयी और अपने ऊपर आयी हुई विपति देखकर पञ्च नमस्कार मन्त्र का जाप करने लगी। उसने वीतरागी प्रभु का ध्यान करना शुरु किया तथा व्रत रक्षा पर्यन्त अन्न–जल का त्याग कर आत्मचिन्तन में वह लग गयी।

सुकेशिनी को अपने पति पर सन्देह हो गया था, वह उसके कपट जाल को बहुत कुछ समझ गयी थी अतः उसने अवलोकिनी विद्या का स्मरण किया। प्रकट होकर अवलोकिनी विद्या ने विद्याधर के समस्त कुकृत्यों की कथा प्रत्यक्ष देखी बतलाई। जब उसे अपने पति की करतूत मालूम हो गई तो वह क्रोध से कांपने लगी, उसकी आंखें लाल हो गई, दांत कट कटाने लगे और मुंह से अस्पष्ट बड़बड़ाने की आवाज निकलने लगी। सुकेशिनी रौद्ररूप धारण कर दण्ड हाथ में लिये विमान पर आरूढ़ हो अपने पति के पास आई। कुण्डलमण्डित विद्याधर ने जब अपनी स्त्री के इस रौद्रवेश को देखा तो उसके प्राण सूख गये और उसने तत्क्षण लघुपर्ण विद्या का स्मरण किया तथा उसे आदेश दिया कि शीघ्र ही इस अनन्तमती को पृथ्वी पर उतार दो। आदेश पाकर विद्या ने भीम नामक अरण्य में सघन आम्र छाया में जाकर उसको उतार दिया।

इस भयंकर जंगल में चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। कभी सिंह की दहाड़ सुनाई पड़ती थी तो कभी हाथियों की चिंघाड़। स्यार, सारंग आदि भी अपनी–अपनी बोलियां बोल कर भय को बढ़ाने में कुछ कम मदद नहीं पहुँचा रहे थे। भय और आतंक ने वहां अपना साम्राज्य कायम कर लिया था। अनन्तमती दुःख के कारण लम्बी-लम्बी सांसे खींचने लगी और अपने मन को समझाती हुई कहने लगी—अचानक आये हुए असाता कर्म के उदय को सहना पड़ेगा। जीव जो कुछ अच्छा या बुरा करता है, उसका उदय उसे भोगना पड़ता है। मैंने पूर्वजन्म में अवश्य खोटे कर्म किये हैं, अब उनका उदय आने पर मैं क्यों घबड़ाती हूं। जो विपत्ति को शांति और धैर्य के साथ सहन करता है, उसके कार्यों की निर्जरा हो जाती है। परन्तु जो व्यक्ति घबड़ा जाता है और विपत्ति में हाय हाय करता है उसका कर्म बन्धन और दृढ़ होता चला जाता है। अतएव मुझे प्रभुचरणों का स्मरण करते हुए इस अचानक आये हुए कष्ट को सहना पड़ेगा। उसकी विचार धारा पुनः आगे बढ़ी और सोचने लगी—जब में पैदल चार–पांच कदम जाती थी तो पिता मुझे गोदी में बैठा कर चलते थे। माता–पिता मुझ पर अपार स्नेह करते थे, मेरी परिचारिकाएं मेरी सेवा में

विद्याधर कामपीड़ित हो सोचने लगा—ऐसी अनिन्द्य सुन्दरी अब तक मैंने कहीं देखी भी नहीं है। इसकी हिरणी जैसी आंखें, कमल जैसा मुख, सिंहनी जैसी कमर, लता जैसा कोमल शरीर, तलवार जैसी भुजाएं, कोयल जैसी वाणी अन्यत्र दुर्लभ है। रति भी इसके रूप लावण्य के सामने तुच्छ है। इसके बिना मेरा जीवन निरर्थक है। पुनः वह सोचने लगा—इस समय मेरे साथ यह सुकेशिनी है, इसके रहते हुए मैं इस अनुपम सुन्दरी को नहीं प्राप्त कर सकता हूं। अतएव पहले मैं सुकेशिनी को किसी बहाने से घर पहुँचा आऊं, पश्चात् इसको प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। यदि मैं धैर्य खो देता हूं तो फिर इस बाला का उपभोग जीवन में कभी भी नहीं हो सकेगा।

जिस प्रकार रात में चोर पहरेदार को देखकर घबड़ाता है, ग्रीष्मर्तु में सूर्य की गर्मी से पथिक त्रस्त होता है, कृषक पानी के बिना सूखी हुई फसल देखकर चिन्तातुर होता है, उसी प्रकार सुकेशिनी को देखकर वह व्यथित हुआ। उसका मुख कमल सूख गया, हृदय मरुभूमि हो गया, उसका समस्त शरीर कांपने लगा, फिर भी धैर्य धारण कर वह कपट पूर्वक अपनी स्त्री से कहने लगा—भद्रे ? इधर क्रीड़ा के लिये अच्छा नहीं प्रतीत हो रहा है, आज मौसम भी सुन्दर नहीं है अतएव मेरा यह अनुरोध है कि कल हमलोग क्रीड़ा के लिये चलेंगे। आज हम वापस लौट चलें, मुझे इधर के एक भूमिगोचरी राजा से मिलना भी है। अतः आज मैं इस आवश्यक कार्य को पूरा कर लेता हूं और कल निश्चिन्त होकर हम क्रीड़ा करेंगे। दूसरी बात यह भी है कि आज तमने अपना ठीक शृंगार भी नहीं किया, सुन्दर वस्त्राभूषण भी नहीं पहने हैं अतः कल तुम इस कार्य को भी पूरा कर लोगी।

सुकेशिनी—स्वामिन् विहार के लिये आज का मौसम तो बुरा नहीं है। आकाश स्वच्छ है, शीतल—मन्द-सुगन्धित पवन भी चल रहा है, सूर्य की स्वर्णमयी रश्मियां इन पर्वतों की चोटियों पर कितनी भली लग रही हैं। वस्त्राभूषण भी मेरे ठीक है, आप आज अवश्य चलिये।

विद्याधर—भद्रे ! आज मुझे भूमिगोचरी राजा से मिलना अत्यन्त आवश्यक है। न मिलने से हानि होगी, अतः जल्दी क्या है, कल वनविहार किया जायगा।

इस प्रकार अपनी स्त्री को समझा—बुझाकर घर छोड़ आया और शीघ्र ही विमान लौटा कर चम्पापुर के उद्यान में झूलती हुई अनन्तमती के पास पहुँचा। अनन्तमती उस विद्याधर को देखते ही भय से मूर्छित हो गयी, जिस प्रकार मुर्दे को अन्धेरे में देखकर कायर व्यक्ति होश—खो देता है, वधिक को देखकर गाय का रक्त सूख जाता है उसी

दिन रात उपस्थित रहती थी, वे अब कहां चली गयीं ? मेरी सखियां जो सर्वदा मेरे ऊपर स्नेहामृत उड़ेलती थीं, वे अब कहां चली गईं ! आत्मीय परिजन, हितैषी, मित्र आदि कोई भी साथ देनेवाला नहीं होता। जो मैंने आगम में स्वाध्याय करते समय पढ़ा था, वह अब प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ रहा है। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, मणि, औषध आदि भी पुण्योदय तक साथ देते हैं, पुण्य के क्षीण होते ही ये सारी वस्तुएं निष्प्रभ हो जाती हैं। जिस प्रकार गाड़ी में धुरा के रहने पर गाड़ी आगे चलती है, धुरा के टूटते ही गाड़ी का चलना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार पुण्य के धुरा के रहने पर ही जीव के सारे कार्य निर्विघ्न चलते हैं। हितैषी मित्र साथ देते है, पुण्य नष्ट होते ही मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। हाथ पर रखा धन विलीन हो जाता है। राज्य समाप्त हो जाता है, वैभव धूल में मिल जाता है, और सम्मान अपमान के रूप में परिवर्तित हो जाता है। हाथी, घोड़ा, सेना, दुर्ग, आदि कोई भी वस्तु मनुष्य को कष्ट से नहीं बचा सकती हैं। धर्म ही शरण है, यही विपत्ति में जीव को शान्ति देता है और यही सब कष्टों से त्राण करता है।

अनन्तमती पुनः विचारने लगी कि जरा सी देर के लिये भी जब इधर-उधर चली जाती थी, तो मेरे माता पिता मेरे लिये बेचैन हो जाते थे, अब मेरे बिना मेरे कुटुम्बियों की, प्रेमिल सखियों की क्या स्थिति होगी ? संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है, अतः साता के उदय से मिलने वाला यह सुख कैसे स्थिर हो सकता है। दुख और सुख दोनों ही एक तराजू के पलड़े है, कभी दुःख का पलला भारी हो जाता है, तो कभी सुख का। इस जीव ने स्वर्ग में सुख भोगा, नरक में बहुत काल तक दुःख भोगता रहा। तिर्यञ्च गति में वाणी के बिना मूक रह कर अनेक प्रकार के कष्ट सहे। अब बड़ी कठनाई से इस जीव को यह मनुष्य पर्याय मिली है। जो इस अमूल्य पर्याय को प्राप्त कर आत्म कल्याण नहीं करता है, उसका जीवन यों ही बीत जाता है। धर्म के सिवा अन्य कोई भी संसार में हितकारी नहीं है। धन, धान्य, विभूति वैभव, माता, पिता, पुरजन, परिजन ये सभी अनित्य हैं, विनाशीक हैं। धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो इस जीव को नाना प्रकार के कष्टों के बचा सकता है। राज्य, रूप, महिमा, बल, वीर्य, पराक्रम, सुख, विलास, ऐश्वर्य, धन, यौवन ये सभी इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं। यह जीव पुण्योदय से ऐश्वर्यवान् होता है, और पापोदय से गरीब। संसार के सुख, दुःख को अकेला यह जीव ही भोगता है, अन्य कोई भी सहायक नहीं होता।

यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है, यह नसों के जाल से बंधा हुआ मांस का लोथड़ा है। हड्डियों का ढांचा है, खून -पीव आदि पदार्थों का समुदाय इस शरीर में है। चमड़े से ढका होने के कारण यह सुन्दर लगता हैं, इससे मल, मूत्र

जैसे दुर्गन्धित पदार्थ निकलते रहते हैं। नरक में इस जीव को कितने महान् दुःख का सामना करना पडता है। वहां इसको सर्दी, गर्मी का महान् दुःख सहना ही पड़ता है, साथ ही वहां की भूमि के स्पर्शमात्र से इसे इतना कष्ट होता है, जिससे लाखों करोड़ों विच्छुओं के काटने की अनुभूति होती है। शरीर तलवार से काटा जाता है, कोल्हू में पेला जाता है, आग में जलाया जाता है, सुइयों से छेदा जाता है। आरे से सिर से लेकर पैर तक चीर डालते हैं, गर्म तेल में डालकर पकाते हैं। तीक्ष्ण शरीर को जलाने वाली वस्तुओं का लेप शरीर में किया जाता है। गर्दन काट दी जाती है। इस प्रकार छेदने भेदने, भूख, प्यास आदि नाना प्रकारों के कष्ट इस जीव ने नरकों में कितनी ही बार सहे हैं। यहां मुझे केवल भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी का कष्ट हो रहा है, यह कष्ट नरक के कष्टों के सामने कुछ भी नहीं। यहां न मुझे कोई जला रहा है, न कोई काट रहा है, न कोई कोल्हू में पेल रहा है, और न कोई सूइयों से छेदन कर रहा है, तब यह दुःख तो नरक के दुःखों से बिल्कुल कम है, अतः मुझे धैर्यपूर्वक पञ्चपरमेष्ठि की भक्ति करनी चाहिये। मेरा कल्याण प्रभु के ध्यान में ही है, इससे बढ़कर और कुछ उद्धार का उपाय नहीं है।

व्रत पालते हुए इस क्षणिक दुःख का सहन करना कठिन नहीं, पर व्रत के अभाव में सुख का अनुभव करना भी कठिन है। अतः उत्तम मनुष्य गति को प्राप्त कर तथा उत्तम कुल में जन्म लेकर व्रतों का पालन करना परमावश्यक है। जिस प्रकार हाथी जंगल को नहीं छोड़ता, शिशु मां के बिना नहीं रह सकता, स्त्री पति के बिना नहीं रह सकती है, उसी प्रकार व्रतों के बिना मेरा रहना निरर्थक है। व्रत ही इस जीव का कल्याण करने वाले हैं, शरीर में प्राण रहते हुए व्रतों का पालन करना परमावश्यक है इस प्रकार विचार करती हुई अनन्तमती प्रभु स्तुति में लीन हो गई।

इस समय अनन्तमती के पास सिंह, गाय, हाथी, घोडा, सांप, नीले मयूर, कोयल, काक आदि सभी जीव आपस के वैर विरोध को छोड़कर प्रेम से रहने लगे और अनन्तमती के पास शान्तरस का आस्वादन कर सख्यभाव को प्राप्त हुए।

इस जंगल के पास शंखपुर नाम का एक गांव था। इस गांव में एक बनचर लुटेरा रहता था, वह जब जंगल में आया तो अपूर्व लावण्यवती अनन्तमती को देखकर और उसे देवी समझ आनन्दित हुआ। उसने फल, फूल तोड़ कर उसकी पूजा की और प्रार्थना करने लगा—हे देवि हमारी रक्षा कीजिये, हम आपकी शरण में हैं। यह लुटेरा भीमारण्य से चलकर शंखपुर में आया और अपने सरदार से हाथ जोड़कर बोला—स्वामिन्! आज इस अरण्य में एक

रानी बनकर तुम संसार का सुख लूटना। अभी तुम अविवाहित हो, तुम्हें किसी न किसी के साथ विवाह करना ही है, फिर क्यों निरर्थक तकलीफ उठाती हो ? तुम्हारे शीलव्रत में जरा भी कलंक नहीं लगेगा। हे रति, रम्भा, भारती, तिलोत्तमा—तुम मेरे ऊपर विश्वास करो और आनन्द से राज्य का सुख लूटो; अपने जीवन को सार्थक बनाओ। तुम एक बार मेरी ओर प्रेम की दृष्टि से देखो, मैं कितना सुन्दर हूं। हे मृगनयनी तुम मुझे कुरूप मत समझो, तुम्हें इतना सुन्दर पति स्वर्ग में भी नहीं मिलेगा। इस प्रकार नाना प्रकार के प्रलोभनों द्वारा अनन्तमती को विचलित करने की चेष्टा की, पर अनन्तमती सुमेरू के समान दृढ़ रही। उसकी दृढ़ता को देखकर देवी किरातरूप को छोड़ प्रत्यक्ष हो कहने लगी—भगवान् जिनेन्द्र के समान संसार में कोई भी देव नहीं है, उनकी भक्ति से संसार के सभी कार्य सिद्ध हो जाते है, भक्त के चरणों की दासी लक्ष्मी बन जाती है। देवी ! तुम धन्य हो, तुम्हारी अद्वितीय महत्ता है, तुम्हारी जितेन्द्रियता प्रशंसनीय है; संसार का कोई भी प्रलोभन तुम्हें विचलित नहीं कर सका। अब तुम्हारे सभी उपसर्ग दूर हो गये, ध्यान छोड़िये। मैंने किरात भेष धारण कर तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम इस में उत्तीर्ण हो गयीं। मैं अब तुम्हारी रक्षिका हूं, संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकती है। आप मेरे ऊपर विश्वास कीजिये, मैं यक्षिणी देवी हूं। इतना कहकर देवी अदृश्य हो गयी। अनन्तमती सोचने लगी—मैंने स्वप्न तो नहीं देखा है, क्या वास्तव में देवी आयी थी।

प्रातःकाल भिल्लराज अपने साथियों के साथ वहां आया और अनन्तमती के चरणों में गिरकर पूजा करने लगा। मुझे अपने कृत्यों की सजा मिल गई, आप शीलवती देवी हैं, आपके समान इस मध्यलोक में शायद ही कोई नारी होगी आप जहां जाना चाहें आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देंगे। अनन्तमती को अब उसके ऊपर विश्वास हो गया और वह उसके साथ अयोध्या के लिये चल दी। कुछ दूरतक भिल्लराज ने उसे रास्ता बता दिया, पश्चात् वह लौट गया। अनन्तमती अयोध्या की ओर जंगल में चलने लगी; रास्ते में एक मंदिर मिला। वह भगवान् के दर्शन करके उस मन्दिर में गई वहां पर एक वैश्य पुत्र को देखा; जो भगवान् के दर्शन करने आया था। वह वणिक् पुत्र अनन्तमती को देख कर बोला —आप कहां रहती हैं ? आपके माता पिता कौन हैं ? कहां से आयी हैं ? किसलिये अकेली भ्रमण कर रही हैं ?

अनन्तमती—सखी क्षमा हूं, पुत्र शील है, सदा अक्षुण्य रहनेवाली सम्पत्ति सदाचार है, निर्मल दया माता,

देवी आयी है, आप चाहें तो उनसे कुछ वरदान मांग लें। सरदार उसके वचनों को सुनकर भीमारण्य में आया और अनन्तमती को देखकर कहने लगा—यह देव कन्या नहीं है, मानुषी है। यह अनुपम सुन्दरी है; इतना रूप तो आजतक नहीं देखा। इस प्रकार वह अनन्तमती को देखते ही मोहित हो गया तथा अपने वैभव का वर्णन उसके सामने करता हुआ बोला—आपके समान कोई भी प्रतापी सती नहीं है, आपने अपार सौन्दर्य प्राप्त किया है, आपका कटाक्ष मेरे ऊपर चल गया है, अतः आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लीजिये और सुख से रहिये। अनन्तमती उसके कुत्सित प्रस्ताव को सुनकर आत्मस्वरूप का चिन्तन करती हुई पंचनमस्कार मन्त्र का स्मरण करने लगी।

भिल्लराज अनन्तमती को मौन देखकर क्रोधित हो गया, उसकी मूंछें तन गयीं और ताल ठोककर बोला-अभी समय है, मेरी बात स्वीकार कर लीजिये। यदि आपने मेरी इच्छा पूर्ण कर दी तो फिर अपूर्व सुख प्राप्त करेंगी, सदा सहस्रों नर-नारी आपकी सेवा में प्रस्तुत रहेंगे। कोई भी आपकी आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकेगा। मैं सदा आपका दास होकर रहूंगा। यदि आपने मेरी बात नहीं मानी तो इसका परिणाम बुरा होगा, आज्ञा भंग करने का दण्ड आपको भोगना पड़ेगा। यह आप जानती है कि इस जंगल में आपकी रक्षा कोई नहीं कर सकेगा, आपको अपना शरीर तो मुझे सौंपना ही है, यदि राजी से आप मान जायेंगी तो अच्छा है, अन्यथा मुझे जबरदस्ती करनी पड़ेगी। इस प्रकार डांट फटकार कर भिल्लराज अनन्तमती के पास अपने किसी आदमी को छोड़ कर चला गया और उसे सावधान कर कह गया कि तुम यहां से एक मिनट के लिये भी इधर-उधर मत जाना। इस सुन्दरी पर अपनी पूरी दृष्टि रखना, कोई जंगली जानवर इसका अनिष्ट न करने पावे।

भिल्लराज के जाने के पश्चात् अनन्तमती विचारने लगी कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत को कभी नहीं छोड़ सकती हूं, व्रत सहित प्राण देना भी मुझे स्वीकार है, किन्तु व्रत रहित एक घड़ी जीवित रहना भी नहीं। मैं अपने प्राण दे सकती हूं पर इस व्रत को नहीं छोड़ सकती। इस प्रकार ऊहा-पोहकर उसने उपसर्ग के अन्त होने तक के लिये आहार-पानी का त्याग तथा कषायों का त्याग कर सल्लेखना ग्रहण करली।

अनन्तमती के ऊपर आये हुए उपसर्ग को देखकर स्थानीय यक्षिणी देवी का आसन कम्पित हो गया और अनन्तमती की परीक्षा करने के लिये उस देवी ने रात में भिल्लराज का रूप धारण कर कहा—हे कमलमुखी! मेरे रूप-सौन्दर्य की ओर देखो, मेरे साथ रहने से तुम्हें सब प्रकार का सुख प्राप्त होगा। तुम्हें अपनी पट्टमहिषी बना दूंगा

सत्य मेरा दादा, गुण मेरे भाई, तत्वचिन्ता मेरी पुत्री सम्यत्व मेरा पिता, संयम मेरा घर, और सुदूरवर्ती मोक्ष मेरा देश है तथा जिनेश्वर का वचन—आगम मेरा नगर है। अनन्तमती के इस उत्तर को सुनकर वह वणिक् पुत्र बहुत प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि यह निकट भव्य है अतः इसे अपने घर ले जाना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उसने कहा—तुम मेरी बहन के तुल्य हो, मेरे घर चलकर आनन्द से रहो । अनन्तमती भी उसके सद् विचारों को अवगत कर उसका विश्वास कर उसके घर चली गयी। वह अपनी स्त्री गुणवती से बोला—इसका पुत्री समझकर पालन करना। मैं जबतक व्यापार करके वापस न लौटूं, इसका यथोचित पालन और संरक्षण करना। यह हमारा परम सौभाग्य है कि इतनी बड़ी धर्मात्मा कन्या प्राप्त हुई हैं, इस प्रकार कहकर व्यापार के लिये चला गया।

गुणवती अनन्तमती का अद्भुत रूप-लावण्य देखकर सोचने लगी—यह अप्सरा के समान सुन्दर है, यह चन्द्रमा की स्त्री रोहिणी से भी अधिक रूप-लावण्यवती है, यह मनुष्य स्त्री नहीं, किन्तु स्वर्ग की कोई देवाङ्गना हैं। जैसे प्रातःकालीन सूर्य दर्शन से शर्दतु में लोग तृप्त नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह इकटक होकर उसके रूप-सौन्दर्य का पान करने लगी। परन्तु उसके मन में एक खटका उत्पन्न हो गया, वह सोचने लगी कि मेरा यौवन और रूप ढल रहा है, यदि कदाचित् मेरा पति आकर इससे विवाह कर लेगा तो मुझे सदा इसके आधीन रहना पड़ेगा, अतः इस विपत्ति को पतिदेव के लौटने के पहले ही दूर कर देना श्रेयस्कर होगा । इस प्रकार निश्चय कर व्याली नामक कुट्टिनी को बुलाया और उसके हाथ अनन्तमती को बेच दिया। अनन्तमती कुमारी इस विपत्ति में पड़कर सोचने लगी—पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का यह फल है, चाहे मेरे ऊपर कितनी विपत्तियां क्यों न आवें, पर मैं प्राण रहते हुए इस ब्रह्मचर्य व्रत को नहीं छोड़ सकती हूं। धर्म ही मेरा रक्षक है, दुष्ट भाग्य क्या-क्या खेल दिखलाता है। पंचपरमेष्ठी के चरणों की शरण ही मेरे लिये अब सब कुछ है। इस प्रकार ध्यान, स्तवन करती हुई अन्न-जल छोड़कर प्रभु-भक्ति में लीन हो गई।

कुट्टिनी—कुमारी ! तुम पागल क्यों हो रही हो ? तुम्हें अपने शरीर का ख्याल करना चाहिये। शृंगार करो और स्वच्छ वस्त्र पहनकर अपने पलंग पर बैठ जाओ । हमारा तो यह पेशा ही ऐसा है कि जब तक हम अपना बनाव शृंगार न करेंगी, हमारे यहां कोई फटकेगा भी नहीं। तुम संन्यासिनी क्यों बन रही हो अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ? खेलने खाने के दिन हैं। संसार का आनन्द लेना चाहिये, इस अपार रूप-यौवन को प्राप्त कर यों ही खो

देना कहां की बुद्धिमत्ता है ? देखो तुम बनो मत तुमने कितने ही व्यक्तियों के मन को चुरा लिया है। सहस्रों व्यक्ति तुम्हारे चरणों के दास बनने को प्रस्तुत हैं, तुम रानी बनकर संसार के सुखों को भोगो। मैं पुत्री तुझ से सच कहती हूं, तेरे सामने अप्सरा भी कोई वस्तु नहीं है। हमारे सुख के दिन तेरी एक चितवन पर निर्भर हैं।

अनन्तमती हंसकर—विषयी मूर्ख प्राणी बिजली की चमक के समान क्षणिक विषय भोगों को शाश्वत मानते हैं। इन नरक के कीड़ों को धर्म-कर्म कुछ भी नहीं सूझता है। मनुष्य पर्याय को यह क्षुद्र प्राणी योंही खो देते हैं। ब्रह्मचर्य की महत्ता को वेश्या क्या समझ सकती है। सम्यग्दर्शन का स्वरूप विषयी कुत्ते क्या समझेंगे ? आत्मा का हनन कर विषयों के कुंए में गिरना कितनी बड़ी बेवकूफी है ? तुमने मुझे पुत्री कहकर सम्बोधित किया है, अतः मां के पद पर आरूढ़ होकर मुझे कुमार्ग के लिये प्रोत्साहन देने में तुम्हारी यह जीभ गल क्यों नहीं गई। तुम ऐसे पापपूर्ण वचन क्यों निकले ? मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे छोड़ दीजिये, मेरा मन जिधर चाहेगा चली जाऊंगी। इतना कहकर वह मौन हो गई।

कुट्टिनी—अरी कल की छोकड़ी ! तू अभी समझती नहीं है, मैं सामान्य नहीं हूं, मैंने तेरे समान कितनी ही रूपवतियों को ठीक कर लिया है। जिसे तुम नरक कहकर बदनाम करती हो, वह वास्तव में स्वर्ग है। तुम एक बार भी यदि यहां के आनन्द का आस्वादन कर लोगी तो फिर कभी ऐसे वचन नहीं कहोगी ? कोई बात नहीं है, पहले-पहल सभी की यही हालत होती है। दो-चार दिन में तुम्हारी लज्जा छूट जायगी, फिर तो तुम इस प्रकार फसाने लगोगी जैसे मछुआ अपने जाल में मछलियों को। एक नहीं, मैं ऐसी अनेक घटनाओं से परिचित हूं। पहले ऐसा सत दिखलाती हैं जैसे मालूम होता है कि इनके समान 'न भूतो' 'न भविष्यति' कोई है ही नहीं। जीवन का रस जब तुम्हें अनुभूत हो जायगा तब तुम इस ढोंग को छोड़ दोगी।

इस प्रकार नाना प्रकार से समझा बुझा कर वह वेश्या अपने कमरे में चली गई। इधर अनन्तमती ने उपसर्ग आया हुआ जानकर मर्यादा पूर्वक कुछ समय के लिये समाधिमरण ग्रहण कर लिया। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग नहीं टलेगा मैं अन्न-पानी ग्रहण नहीं करूंगी। वह आत्म-आलोचना में तत्पर हो पंचपरमेष्ठी का ध्यान करने लगी। णमोकार मन्त्र का आश्रय ही इस समय उसके प्राणों का रक्षक था।

जब वेश्या ने देखा कि यह इस तरह माननेवाला नहीं है तो उसने सोचा कि इसे राजा के हाथ बेच देना ही उपयुक्त होगा। इस अनुपम सुन्दरी को प्राप्त कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो जायगा और मुझे अपार धन देगा, जिससे मेरे जन्म जन्मान्तर का दारिद्रय दूर हो जायगा। इस समय सबसे बड़ी बुद्धिमानी यही होगी कि इसे राजा के पास पहुँचा दिया जाय। खाना-पीना यह छोड़ चुकी है, यदि मर जायगी तो मेरा धन ऐसे ही बरबाद हो जायगा। इस प्रकार विचार-विनिमय कर वह राजा सिंहव्रत के पास ले गयी और दरबार में जाकर बोली—देव! इस रमणीरत्न को आपकी सेवा में अर्पण करने आयी हूं। यह अनाघ्रात कलिका आपके उपभोग करने योग्य है। दासी ने इसे पाने के लिये अपार धन खर्च किया है। राजा भी उस दिव्य सुन्दरी को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस वेश्या को विपुल धन राशि देकर विदा किया।

राजा अनन्तमती से बोला—हे कमलमुखी! तुम्हारे रूप का जादू मुझ पर चल गया है, मेरे समस्त अंगोपांग शिथिल हो गये हैं, तुम्हें देखते ही मैं बेचैन हो गया हूं, मेरा मन किसी भी काम में नहीं लगता है? हे वनितारत्न! तुम्हें इतना रूप लावण्य कहां से मिला? मैं निश्चय से अपने राज्य, भंडार, भृत्यवर्ग, पट्टरानी, कोष, सेना आदि को आपके चरणों में अर्पित करता हूं। आप मेरी मनोकामना पूर्ण कर सब की स्वामिनी बनिये; मैं सदा अपने राज्य रहित आपका आदेश पालता रहूंगा। आप तनिक प्रेम पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखिये, मुझ घायल पर अपने स्नेहामृत का सिंचन कीजिये। आप इतनी दयालु होकर, निष्ठुर क्यों हो रही हैं। क्या मुझे दया का पात्र नहीं मानतीं? आप प्रसन्न हो जाइये, मैं आपको पट्ट महिषी के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहता हूं। आप इस पद पर लक्ष्मी के समान पूजा, सुख, प्रतिष्ठा और आनन्द प्राप्त करेंगी। राजकुमार, अमात्य, मंत्री, पुरोहित, आदि सभी आपकी आज्ञा में तत्पर रहेंगे। इस प्रकार कहकर उसने अनन्तमती का हाथ पकड़कर अपने मस्तक पर रख लिया और पुनः कहने लगा—रमणीरत्न तुम्हारा यह मौन तो मेरे लिये कामवाण बन गया है, अब अधिक देर तक तुम्हारा मौन मुझे सहन नहीं है। आप कब तक मुझे कष्ट देती रहेंगी? इस प्रकार मधुर वचन कहकर उसे पकड़ अपने शयनागार की ओर ले गया।

अनन्तमती पञ्चपरमेष्ठि के ध्यान में लीन थी, उसे राजा की बातों का बिल्कुल पता नहीं था। उसके मुख पर अद्भुत तेज विद्यमान था। सतीत्व की किरणें निकल रही थी, व्रतों के प्रभाव के कारण राजकुमार अनन्तमती

से डर रहा था। उसके दिव्य तेज के समक्ष उसकी पाशविक वासना भाग रही थी, परन्तु राजमद उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये उत्तेजित कर रहा था।

जब अनेक प्रयत्न करने पर भी राजा अनन्तमती के मौन को न खोल सका तो उसके मन में ईर्षा की अग्नि जलने लगी और उसे अनन्तमती के ऊपर अपार क्रोध हो आया। राजा सोचने लगा—मैं राजा होकर इस दीन स्त्री से कबसे प्रार्थना कर रहा हूं, परन्तु यह मेरी प्रार्थना सुनना ही नहीं चाहती है। इतने सुन्दर रूप का धारण करनेवाली यह कोई दुष्ट स्त्री है, अन्यथा मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार करती। अतएव अब इसके साथ सख्ती करनी पड़ेगी। सीधी अंगुली घी नहीं निकलता है, राजनीति बड़ी दाव-पेंच वाली होती है, इस समय इसीका प्रयोग करना पड़ेगा।

जब राजा उसके साथ अभद्र व्यवहार करने लगा तो अनन्तमती वायु के झोकों से प्रताड़ित लता के समान कांपने लगी और पञ्चपरमेष्ठि के गुणों का चिन्तन करती हुई आत्म स्वरूप में स्थिर हो गयी। दासियां प्रेम पूर्वक समझाने लगीं कि राजा साहब की बात मान जाईये, आपको सब प्रकार से सुख मिलेगा। आप वैभव, विलास, ऐश्वर्य भोग-विलास का त्याग क्यों करती हैं। ऐसा सौभाग्य बड़े पुण्योदय से मिलता है। पट्टरानी से बढ़कर स्त्री पर्याय की सार्थकता और क्या हो सकती है? जिस पद के लिये लोग प्रयत्न करते हैं नारियां तपस्या करती हैं, आपको यह पद इतनी आसानी से मिल रहा है, यह कम गौरव की बात नहीं है।

अनन्तमती अपने व्रत में इस प्रकार दृढ़ थी, जिससे दासियों की बातें वह सुनकर भी अनसुनी कर देती थी। उसके अन्तरंग में जिनेन्द्र प्रभु की मूर्ति विराजमान थी, वह उनके दर्शन कर अनुपम लाभ ले रही थी। अपनी चेतना को खोकर अनन्तमती ने प्रभु चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। मनसा, वाचा और कर्मणा वह वीतरागी प्रभु का स्मरण कर रही थी। यद्यपि उसका दिव्य तेज राजा से सहन नहीं हो रहा था, फिर भी अपनी हठ पूरी करने के लिये वह उस सती का मन सब तरह से विचलित करने पर उतारु था।

सिंहव्रत राजा ने जब अपने समस्त प्रयत्नों को निष्फल देखा तो वह आपे से बाहर हो गया और स्वयं उठकर अनन्तमती को एक लात मारी और परिचारिकाओं को बुलाकर पिटवाना शुरु किया। जितने भी नौकर-चाकर आते थे, सभी अनन्तमती को लाठी, जूते और घूसों से मारते थे, जिससे उसका शरीर सूझ गया। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि अनन्तमती को जितना मारा पीटा जाता था, वह उतनी ही अपने व्रत में स्थिर होती जा रही थी।

उसके मुख पर दिव्य तेज विद्यमान था, शरीर से मोह छोड़ देने के कारण उसमें अपूर्व दृढ़ता आ रही थी। वह निर्दय राजा के अत्याचारों को भगवान् जिनेन्द्र के चरणों का स्मरण करती हुई धैर्य के साथ सहने लगी। अनन्तमती को अपने शरीर की कुछ भी चिन्ता नहीं थी, केवल उसका ध्यान अपने व्रत की रक्षा की ओर था।

उस अबला धर्मात्मा अनन्तमती के ऊपर होनेवाले अत्याचारों के कारण उस नगर के शासन देव का आसन हिला और उसने अपने ज्ञान के बल से सारी घटनाएं अवगत कर लीं। अनन्तमती के पास आकर हाथ जोड़ उसे प्रणाम किया और ललकार कर कहने लगा—रे दुष्टो सावधान! एक अबला पर अत्याचार करते हुए शर्म नहीं आती। तुम्हारी करनी का फल तुरंत मिलता है, ऐसा कहते ही राजा, अमात्य, सेनापति आदि सभी के ऊपर मार पड़ने लगी। आश्चर्य की बात यह थी कि मारने वाला कोई नहीं दिखलाई पड़ता था, केवल मार ही दिखलाई पड़ती था। कोड़े लगने के कारण सभी के शरीर से खून निकलने लगा, सभी मुंह से खून वमन करने लगे। राजा, अमात्य आदि सभी मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, किन्तु वह अप्रत्यक्ष मारनेवाला दिखलाई न पड़ा और न मार-पड़ना ही रुका।

सर्वत्र चीत्कार सुनाई पड़ रहा था, इनके करुण क्रन्दन से नगर में बेचैनी व्याप्त थी। राजा सिंहरत्न की बड़ी विचित्र स्थिति थी। जिस प्रकार चूहेदानी में फंसा चूहा कहीं भागने का रास्ता न पाकर छटपटाता है, उसी प्रकार राजा, अमात्य, राजकुमार आदि सभी अपनी रक्षा का उपाय न देखकर क्रन्दन कर रहे थे। नगर वासी भी वहां एकत्रित होकर तमाशा देख रहे थे, किन्तु उनकी रक्षा कोई भी नहीं कर सका, सभी असमर्थ हो टुकुर-टुकुर देखने लगे। नगरवासी प्रार्थना करने लगे—हे प्रभो यह उपसर्ग कैसे दूर किया जायगा?

सुमेरु के समान स्थिर और पंचनमस्कार मन्त्र के ध्यान में लीन कुमारी को देखकर शासन देव प्रसन्न हो स्तुति करने लगा—हे अनन्तमती! जो भगवान् की भक्ति में निरन्तर लीन रहते हैं, उनकी आराधना और सेवा आबालवृद्ध सभी करते हैं। जो मोहावेश में आकर प्रभु-भक्ति का तिरस्कार करता है, वह अत्यन्त नीच है। जिस के पास धर्म रहता है, उसके पास संसार की सभी अलभ्य वस्तुएं है। व्रत भूषित व्यक्ति यदि भगवान् के चरणों की भक्ति करता है तो उसे संसार के सभी दुर्लभ पदार्थ अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। आप धन्य हैं, देवो आपके गुणों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जो विपत्ति में स्थिर रहता है, ईति-भीति से नहीं घबड़ाता है उसके लिये किसी भी वस्तु की कमी नहीं रहती

विपत्ति में लोग घबड़ा जाते है, किन्तु जैनागम के अध्ययन करनेवाले रंचमात्र भी नहीं घवड़ाते यही उनकी विशेषता होती है।

मेरा किसी के द्वारा अशुभ नहीं हो सकता है, जो यह निश्चय कर लेता है तथा पाप कार्य को छोड़ पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति करता है, और जिनागम के अनुसार अपना प्रत्येक कार्य करता है, उसे चतुर जैन मानना चाहिये। संसार में शरीर, धन, यौवन को क्षणभंगुर समझ कर जो शाश्वत सुख को प्राप्त करता है वह आत्मज्ञ जैन है। स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति धर्म से ही होती है। धर्म आत्मा के वास्तविक स्वभाव का आचरण करना है जो आत्मज्ञ व्यक्ति इस धर्म का आचरण करता है, उसके समान संसार में कोई नहीं हो सकता। जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव जलाना, पानी का स्वभाव शीतलता, वायु का स्वभाव बहना है उसी प्रकार आत्मज्ञ का स्वभाव ज्ञान दर्शन-मय है। आत्मज्ञ इसी स्वभाव को प्राप्त करने का यत्न करता है। पूजा-पाठ तभी तक धर्म की कोटि में हैं, जब तक व्यक्ति आत्मज्ञ नहीं बनता है। आत्मज्ञ हो जाने पर कर्त्तव्य समझकर शुभाश्रव के कार्यों को व्यक्ति भले ही करे, परन्तु धर्म का वास्तविक रूप वह कुछ और ही समझता है। विषय आत्मा के स्वभाव नहीं है। ये स्वयं अचेतन हैं, आत्माकी विभाव परिणति के कारण इनमें प्रवृत्ति होती है। जो विवेकी हैं, वे इनमें प्रवृत्ति नहीं करते, इनसे आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं मानते। कुमारी अनन्तमती तुमने धर्म के वास्तविक रूप को समझ कर जैन धर्म की शान रखी, तुम्हारी आत्मज्ञता प्रशंसनीय है। तुम्हारी चरणरज जो सिर पर धारण करेगा, वह अवश्य ही इससंसार से पार हो जायगा। इस प्रकार शासन देव स्तुति करता रहा, आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी, दुन्दुभि बाजे बजने लगे और कुमारी का जयघोष सुनाई पड़ने लगा।

देव ने राजा सिंहव्रत से कहा कि तुम अपने अपराधों की क्षमा यदि कुमारी से मांगों और इसके चरणों में अपना सिर रगड़ो तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं मैं तो धर्मात्माओं का सेवक हूं, तुमने बड़ा भारी अनर्थकारी काम किया है। तुम विषयी कीड़े हो, अतः जल्दी ही क्षमा याचना करो, अन्यथा तुम्हारे प्राणों का अपहरण हो जायगा।

राजा सिंहव्रत ने अनन्तमती के चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमा याचना की और अपनी पट्टमहिषी सहित उसके चरणारबिन्दों की पूजा की। पश्चात् हाथ जोड़कर कहने लगा—हे धर्ममूर्ते ! मैंने बिना जाने बड़ा अपराध किया है, मेरे समान संसार में अन्य कोई पापी नहीं होगा। राजा का कार्य प्रजा की रक्षा करना है तथा अनाथ दीन दुखियों के कष्टों को दूर करना राजा का परम कर्त्तव्य है, किन्तु मैंने यह कार्य न कर अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की।

इस समय मेरे मन में बड़ी अशान्ति है, मेरा पाप मुझे काटने दौड़ता है। यह सारा राज्य और धन-वैभव आपके चरणों में समर्पित हैं, आप जैसे चाहे मेरी रक्षा करें। राजा के इस प्रकार विनय युक्त वचन सुनकर अनन्तमती बोली—राजन् ! धर्म से बड़कर संसार में कोई वस्तु हितकारी नहीं है, आप धर्म में स्थिर हो जाइये। धर्म ही जीव को शान्ति देने वाला है, इसीके धारण करने से अनुपम सुख की प्राप्ति हो सकती है।

राजा ने राजश्रेष्ठि जिनेन्द्रदत्त को कुमारी अनन्तमती को सौंप दिया। सेठ अपने घर लाकर उसका पालण-पोषण करने लगा। अनन्तमती चैत्यालय में जाकर भगवान् की पूजा भक्ति में रत रहने लगी। रत्नत्रय का पालन करती हुई आत्मस्वरूप में लीन रहने लगी। उस चैत्यालय में कमलश्री नाम की आर्यिका रहती थीं, वह उनके पास आत्मा और तत्त्वों पर विचार करती हुई त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा सुनने लगी। अहर्निश तत्त्वचिन्तन, स्वाध्याय और प्रभु भक्ति में अटल रहती थी, एक वार शुद्ध भोजन करती तथा त्रिकाल सामायिक, वंदना और प्रतिक्रमण करती थी।

इधर चम्पापुरी में प्रियदत्त सेठ और उनकी स्त्री एकाएक प्रियपुत्री अनन्तमती के गायब हो जाने से अत्यन्त दुःखी थे। वे विचारने लगे कि कुमारी के अद्भुत रूपसौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसे कोई विद्याधर चुराकर ले गया है। कुमारी का स्मरण कर माता-पिता विलाप करते हुए कहने लगे—हे चन्द्रमुखी तेरी क्रीड़ा तेरी हंसी तेरा धूलभरा शरीर हम लोगों को कितना सुख देता था। तेरा प्रत्येक कार्य हमें सुख और शान्ति प्रदान करता था। तेरे बिना अब हमारा जीवन निरर्थक हैं।

भगवान् की पूजा किये बिना और मुनिराजों को आहार दान दिये बिना तू आहार ग्रहण नहीं करती थी। हम लोगों को छोड़ कर तू कहां चली गयी। हे भगवान् ! क्या हमारे भाग्य में यहीं दुःख देखना बदा था। जिस प्रकार अग्नि का एक कण भी घास पर गिर कर घास को जला देता है, उसी प्रकार तेरा यह वियोग जन्य दुःख हमें जलाकर भस्म कर देगा। हमारे मन की एक यही साध थी कि बृहद् पूजा करके बड़े भारी गाजे-बाजे के साथ तेरे विवाह का दृश्य अपनी आंखों से देखकर प्रसन्न होंगे, पर यह हमारी कामना अधूरी ही रह गयी। दुष्ट दैव ने हमारी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। हाय हमारी फूल सी सुकुमार पुत्री की क्या दशा हुई होगी ? उसे कौन-कौन से दुःख दिये जा रहे होंगे ? हे प्रभो ! कुमारी की रक्षा करो।

पुनः कुमारी के गुणों का स्मरण कर कहने लगे—लता के समान तन्वंगी, कमलपत्र के समान चंचल नेत्री, भूमि चुम्बी केशों की धारक पुत्री तू कहां गई। इस प्रकार विलाप करते हुए दम्पत्ति जिनालय में वरदत्त मुनिराज के पास गये और उनके चरणों में नमोऽस्तु कर धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की।

मुनिराज—इस संसार में सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगते हैं। यह आत्मा स्वयं कर्त्ता और भोक्ता है। कर्म गति को टालने वाला कोई नहीं है। हाथियों को वश में करने वाले, सिंह को पकड़ने वाले, स्वर्गिक सुख का भोग करने वाले एवं छहों खण्डों पर शासन करने वाले चक्रवर्ती आदि भी जब इन कर्मों के फल से अछूते न रहे तो साधारण व्यक्तियों की बात ही क्या है? मनुष्य, विद्याधर, देवगण, अप्सराएं, स्त्री, धन-ऐश्वर्य के धारी चक्रवर्ती आदि भी जब कालकवलित हुए हैं तो फिर संसार में मृत्यु से कौन बच सकता है?

मुनिराज के उपदेश को सुनकर उन दम्पत्ति को परम शान्ति मिली तथा कर्मों की गति का अनुभव कर पूर्ववत् रहने लगे। जब हृदय के भीतर कोने में दुःख छिप जाता है, तो वह निकालने पर भी दूर नहीं होता। अनन्तमती के हरण का दुःख सेठ के मन में इतना अधिक था कि लाख समझाने पर भी उसे शान्ति और धैर्य नहीं मिल रहा था। जिस प्रकार आंधी के आने पर मजबूती से बांधी गयी लताएं उखड़ जाती हैं, उसी प्रकार प्रियदत्त सेठ का मन दुःख के कारण अत्यन्त व्यथित था। रह-रहकर अनन्तमती की स्मृति उसके हृदय का आलोडन कर रही थी। अतः उसने एक दिन निश्चय किया कि मैं कुछ दिन के लिये अपनी बहन वसुदेवी के यहां चला जाऊं तो शायद वहां मुझे शान्ति मिलेगी।

प्रियदत्त सेठ अपने निश्चय के अनुसार वसुदेवी के यहां पहुँचा। भाई को दुखी देखकर बहन को भी दुःख हुआ। इसने अपने मधुर वार्तालाप द्वारा भाई को शान्ति प्रदान की। स्नान आदि नित्यक्रियाओं से निवृत्त होकर प्रियदत्त सेठ जिनालय में दर्शन करने गया। मन्दिर के दरवाजे के सामने रत्नचूर्ण से निर्मित किये गये चौक और साथियों को देखकर आश्चर्यान्वित हो रोने लगा। उसे अनन्तमती का स्मरण हो आया, क्योंकि अनन्तमती ही ऐसा चौक पूर सकती थी। चौक के बीच में वृक्ष, कमल, हरितचन्दन, पुष्पमालाएं आदि वस्तुएं कलापूर्ण ढंग से बनाई गई थी। इस चौक को देखकर पुनः सोचने लगा कि मेरी कन्या अनन्तमती भी मेरे प्रासाद और जिनालय के सामने इसी प्रकार का कलापूर्ण चौक पूरती थी वह दुःख से विह्वल होकर गर्म गर्म श्वांस छोड़ने लगा। कलाविज्ञ ब्रह्मचारणी अनन्तमती कहां

मिलेगी ? भाई को इस प्रकार विलखते देखकर वसुदेवी कहने लगी—आप इस चौक को देखकर क्यों रोने लगे।

प्रियदत्त—मेरी पुत्री अनन्तमती ऐसा ही चौक पूरती थी, इस चौक को देखकर मुझे उसका स्मरण हो गया है।

वसुदेवी—भाई ! यहां पर एक लड़की है, जो अत्यन्त शीलवान्, आत्मज्ञ और विदुषी है, इसके ब्रह्मचर्य के प्रभाव से नगर के शासनदेव का आसन कम्पित हो गया और इसके शील की रक्षा उसने की। राजा, अमात्य और प्रधान सेनापति को उनकी कामुकता का समुचित दण्ड शासन देव द्वारा मिला यह लड़की अत्यन्त तेजस्वी, भविष्णु और कुशाग्र बुद्धि है। एक बार इसके सम्पर्क में जो पहुँच जाता है, इसका प्रशंसक बन जाता है, इस प्रकार कह कर भीतर ले गयी और संकेत कर उस कन्या को दिखला दिया।

प्रियदत्त उस अनुपम सुन्दरी कन्या को देखते ही अनन्तमती, अनन्तमती कहता हुआ दौड़ा और उसको गोद में उठा लिया। जैसे भिखारी को राज्य मिलने से, भूखे को भोजन मिलने से, प्यासे को जल मिलने से तृप्ति होती है, उसी प्रकार सेठ को पुत्री के मिलने से सुख हुआ। वह पुत्री से कहने लगा— हे कमलमुखी बेटी ! तेरे न रहने से मैं महान् विपत्ति में पड़ा था, खाना-पीना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। सूना घर मुझे काटने को दौड़ता था; मैं दुःख से विह्वल होकर ही यहां आया हूं। प्यारी पुत्री अपना कुल वृतान्त मुझ से कहो। अनन्तमती ने कुण्डल-मण्डित विद्याधर के द्वारा चुराये जाने से लेकर अयोध्या के राजा सिंहव्रत तक सारी कथा कह सुनाई। इस प्रकार पुत्री को प्राप्त कर सेठ प्रियदत्त अत्यन्त हर्षित हुआ।

एक दिन पुत्री को देखकर प्रियदत्त विचारने लगा कि अब अनन्तमती का विवाह कर देना चाहिये। वसुदेवी का पुत्र श्रुतकीर्ति सब प्रकार से योग्य है, सर्व गुण सम्पन्न है। यदि इसके साथ अनन्तमती का विवाह कर दिया जाय तो दोनों का जीवन सुखमय हो जायगा। इस प्रकार निश्चय कर एक शुभ लग्न में उन दोनों का विवाह सम्बन्ध कर देने का उसने निश्चय किया और विवाह की सारी तैयारी शुरु कर दी तथा सुन्दर मण्डप बनवाया। रेशमी वस्त्र चन्दन, तोरण, आम्र पल्लव, मोती की लड़ी, नव रत्न चूर्ण आदि वस्तुओं के द्वारा नगर को खूब सजाया तथा भगवान् के पूजन और अभिषेक के लिये दधि, दुग्ध, घृत, शर्करा, खजुर रस और सर्वौषधि आदि रसों से भरे कुम्भ एवं रेशमीवस्त्र, चीनपट्ट, सूतीवस्त्र आदि सामान एकत्रित किये। अनन्तमती इन सारी तैयारियों को देख कर पिता से

पूछने लगी—

पिताजी ! यह सब सामान किसलिये एकत्रित किया जा रहा है ? क्या आप पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करेंगे या और कोई विधान ?

पिता—समारोह पूर्वक मैं तुम्हारा विवाह करना चाहता हूं । अनेक विद्वान् उत्सव में एकत्रित होंगे, जो जय नन्द आदि शब्दों में आशीर्वाद देंगे ? हे पुत्री ! यह विवाह अभूतपूर्व होगा, ऐसा विवाह अभी तक नहीं हुआ है । मैं इसमें एक करोड़ दीनार[1] खर्च करूंगा, याचकों को स्वेच्छानुसार मुंह-मांगा दान दूंगा; अतिथियों का सत्कार करूंगा और समधी को खूब दहेज दूंगा । दूर-दूर देशों में निमन्त्रण भेजूंगा । एक महीने तक विवाह उत्सव मनाया जायगा ।

अनन्तमती हंसकर बोली—हे पिताजी ! क्या आप त्रिलोकीनाथ भगवान् के सामने लिये गये ब्रह्मचर्य व्रत को भूल गये ? जब आपने पूजाकर श्री वरदत्त मुनिराज से व्रत लिया था, उस समय मैंने भी ब्रह्मचर्य व्रत लिया था । क्या अब मैं उस लिये गये व्रत को छोड़ दूंगी । आप ही बतलाईये कि लिये हुए व्रत को छोड़ना क्या उचित है ?

आश्चर्यान्वित हो प्रियदत्त सेठ कहने लगा—अरी बेटी ! क्या पागलों की सी बातें करती है ? तुम्हारी बातों से मुझे बहुत दुःख हो रहा है । मैंने तो विनोदवश तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था । मेरा अभिप्राय केवल गुड़ियों का खेल रोकना था । तुमने वास्तविक ब्रह्मचर्य व्रत कहां लिया था । वयस्क होने तक के लिये ही तो व्रत दिया गया था, अतः अब विवाह करने में कुछ भी हानि नहीं है ।

अनन्तमती—पिताजी ! क्या भिक्षुक अपनी मिली हुई निधि को छोड़ सकता है ? अनादि काल से संसार में भ्रमण करता हुआ जीव यदि संयम को प्राप्त कर भी छोड़ दे तो इससे बड़ा मूर्ख और कौन हो सकता है । अन्धा व्यक्ति जिस प्रकार पुण्ययोग से प्राप्त किये गये नेत्रों को फोड़ नहीं सकता है, उसी प्रकार सौभाग्य से प्राप्त हुए धर्म को कौन व्यक्ति छोड़ेगा ।

सद्धर्म का मिलना ही कठिन है, मिलने पर उसे छोड़ने वाले मूर्खों को क्या सुख मिल सकता है ? नहीं, कदापि नहीं । धर्म से ही सुख मिलता है, अधर्म दुःख का ही कारण है । मैंने इस छोटी सी आयु में ही संसार का अनुभव कर लिया है और अच्छी तरह देख लिया है कि सद्धर्म में ही सुख है । मोह के कारण आप धर्मात्मा होकर कैसी

[1]—पांच रुपये का एक दीनार होता है ।

बातें कर रहे हैं ? संयम का महत्व आप सरीखे विद्वान् धर्मात्मा न समझेंगे, तो फिर कौन समझेगा ? जीवन की वास्तविकता विषय-सुख में नहीं है ?

प्रियदत्त सेट—पुत्री ! गृहस्थधर्म का पालन करने से भी व्यक्ति अपना आत्म कल्याण कर सकता है। देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान इन पट्कर्मों का गृहस्थ पालन करे तो निश्चय ही वह अपना हित साधन कर लेगा। सुवर्ण, मोती, वैडूर्य, माणिक्य, चांदी के जिनबिम्ब बनवाओ, नवीन जिनालय तैयार कराओ, स्वेच्छानुसार याचकों को दान दो, प्रतिष्ठाएं कराओ और गृहस्थी का सुख भोगो।

अनन्तमती—पिताजी, ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ने से कितना पाप होगा ? हमारे शास्त्रों में बताया गया है कि देव गुरु-शास्त्र की साक्षी पूर्वक लिये गये व्रत को कभी नहीं छोड़ना चाहिये । जो व्यक्ति व्रत को छोड़ देता है उसे अत्यन्त पाप लगता है। अतः आप स्वयं विचार करें, मैं लिये गये व्रत को कैसे छोड़ दूं ?

प्रियदत्त—बेटी ! व्रत छोड़ने से जो पाप होगा उसका मार्जन जिनालय बनवा कर प्रतिष्ठा करा देने से हो जायगा। भगवान का अभिषेक, पूजन चार प्रकार का दान प्रति दिन करती जाओ। घर में धन की कुछ भी कमी नहीं है। यदि तुम विवाह नहीं करती हो तो इस धन का उपयोग कौन करेगा ? अतः विवाह करना तुम्हें आवश्यक है।

अनन्तमती—पिताजी ! आपने जितने भी धर्म साधन के ढंग बताये हैं वे सभी पुण्योत्पादक हैं किन्तु इन वस्तुओं से धर्म नहीं हो सकता है ? संयम धर्म है, इसके छोड़ने से पाप होगा। आप अभी मोह के कारण धर्म की तह तक नहीं पहुँचे हैं। ब्रह्मचर्य के समान इस जीवन में अन्य वस्तु सुखकर नहीं हो सकती है। मैं आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर देश, धर्म और समाज की सेवा करूंगी। मेरा जीवन अपने लिये नहीं होगा, समाज के लिये होगा।

अनन्तमती की इन बातों को सुन कर प्रियदत्त सेठ का बहनोई कहने लगा—अरी पुत्री ! अब मूर्खता को छोड़दे, लड़कपन में लिया गया व्रत किस काम का ? मजाक में लिये गये व्रत भी कहीं पाले जाते हैं। उस समय तो तुम्हें कुछ भी बोध नहीं था ढोंग करना अच्छा नहीं है, विवाह करने में ही कल्याण है। क्या कभी लड़कियां अविवाहिता रहती हैं। विवाहित हो जाने पर भी देश, समाज और धर्म का उत्थान किया जा सकता है।

अनन्तमती—आपका कहना कुछ अंशों में ठीक हो सकता है। व्रत लेने में मजाक नहीं किया जाता ? सांसारिक बातों में हंसी- दिल्लगी की जाती है, व्रतों में नहीं। लड़कियां क्वारी रहकर भी आत्म कल्याण के साथ समाज

का उद्धार कर सकती हैं । राजुलदेवी को क्या आप भूल गये, उन्होंने अविवाहित रहकर ही समाज की भलाई की अपना
कल्याण किया मैं संसार की असारता अच्छी तरह से समझ गई हूं, कोई भी प्रलोभन मुझे व्रतसे विचलित नहीं कर सकता
है । मेरी प्रतिज्ञा सुमेरु के समान दृढ़ है । मैं संयमीरूपी रत्न को यों ही नहीं खोना चाहती हूं ।

वासुदेवी—अनन्तमती ! भूल करना जीवन में ठीक नहीं । हमारे कुल में आजतक ऐसा नहीं हुआ है । तुम्-
हारा विवाह न होने से कुल में कलंक लगेगा, लोग यह कहेंगे कि दरिद्रता के कारण विवाह नहीं हो सका; कुल की
मर्यादा नष्ट हो जायगी, सर्वत्र बदनामी होगी । क्या भले घरानों की लडकियां ऐसी जिद्द करती हैं । तुम तेजस्वी, शील-
वती, कुलदीपक और सर्व प्रकार से मान्य होकर ऐसी जिद्द क्यों करती हो ?

अनन्तमती—संयम से बढ़कर कोई कीमती वस्तु नहीं ।

इस प्रकार उसने सभी परिवार के व्यक्तियों को उपदेश देकर शान्त किया और सभी को संयम की महत्ता
समझा दी । वास्तव में संयम के समान कोई भी कल्याणकारी वस्तु नहीं है, संयमी जीव जो इन्द्रियों का निग्रह कर अपने
आत्मस्वरूप का अनुभव करते हैं और इस अथाह संसार के पार हो जाते हैं । स्पर्शन इन्द्रिय की दासता के कारण व्यक्ति
संसार में व्यभिचार करता है, रसना इन्द्रिय की दासता के कारण अभक्ष्य भक्षण करता हैं, घ्राण इन्द्रिय की दासता के
कारण सुगन्धित इत्र, फुलेल आदि का उपभोग करता है । चक्षु इन्द्रिय की दासता के कारण नाटक देखता है और कर्ण
इन्द्रिय की दासता के कारण सुन्दर कर्णप्रिय गाने सुनता है । इस प्रकार यह जीव इन्द्रियों की दासता के कारण संसार
में अकरणीय कार्यों को करता है । इन्द्रियां अत्यन्त प्रबल हैं, व्यक्ति इनकी दासता के बन्धन में पड़कर अनेक कष्ट
उठाता है । अतः इन्द्रियों की गुलामी का त्याग करना परमावश्यक है । संयम इन्द्रियों के लिये लगाम का काम करता है,
इसे छोड़ना महान् मूर्खता है ।

अनन्तमती ने वरदत्त मुनिराज की शिष्या कमल श्री आर्यिका से जिनदीक्षा ले ली और वह निःकांक्षित हो व्रत
का पालन करने लगी उसके मनमें किसी भी प्रकार का प्रलोभन नहीं था । उसने कषाय और विकारों को उग्र तपस्या के
द्वारा भस्म कर दिया । परमागमका अध्ययन करती हुई ध्यान,आत्मचिन्तन में लीन रहने लगी । उसने चारों अनुयोगों का
अध्ययन किया, महापुरुषों के चरित्रों का मनन, चिन्तन और स्मरण किया ।

चौथी कथा

निर्वाण लक्ष्मी की प्राप्ति में कारण निःकांक्षित अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ गौतम स्वामी को नमस्कार कर कहने लगा—प्रभो ! निर्विचिकित्सा अंग की कथा सुनने की मेरी इच्छा है, क्योंकि यह मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करानेवाली है। इसके श्रवण से सभी प्रकार के पाप क्षीण हो जाते हैं, वासनाएं दूर भाग जाती हैं और आत्मा निर्मल बन जाती है।

गौतम गणधर—पद्म के समान सुन्दर गुम्फित कथा होती है, इसमें महल के दरवाजों के समान कई आमुख रहते हैं, जिससे भव्य जीवों को उल्लास होता है। यह सुमेरु पर्वत के समान गम्भीर, सिद्धपीठ के समान उत्कृष्ट, राजनीति के समान शासन करने वाली, धर्म के समान सुखदायक, दान के समान कल्याणकारी होती है। जो जीव धर्म कथाओं का श्रद्धान कर जीवन में प्रगति करता है, वह धन्य है। धर्म कथा से ज्ञान और चरित्र का संवर्द्धन होता है। तथा सम्यग्दर्शन में श्रद्धा दृढ़ होती है।

निर्विचिकित्सा अंग को जिन्होंने अच्छी तरह जानकर उत्साह पूर्वक धारण किया है, उनका वर्णन करना संभव नहीं, क्योंकि इस अंग का धारी व्यक्ति मोक्ष लक्ष्मी का वरण करने जा रहा है। सम्यग्दृष्टि जीव किसी से घृणा और द्वेष नहीं करता है। यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है, इसमें मल स्रावित करने वाले नौ द्वार हैं। अतः स्वभावतः अशुचि शरीर को देखकर घृणा नहीं करनी चाहिये। आत्मज्ञ जीव वस्तुस्वरूप का अनुभव कर घृणा से मुक्त रहता है। इस निर्विचिकित्सा अंग के पालन करनेवाले की कथा आगे कही जाती है।

भरतक्षेत्र में अनुपम सुन्दर रत्न और मणियों से परिपूर्ण कच्छ नाम का देश है। यह देश चारों ओर नन्दन वन के समान—वाटिकाओं से सुशोभित स्वर्गपुरी के समान शोभनीय है। इसी सुन्दर मनोज्ञ धन–धान्य से परिपूर्ण देश में रौरवपुर नाम का नगर था, इसमें महामण्डलीक उदयन नाम का राजा राज्य करता था। यह राजा शरणागत रक्षक दुष्टों को दण्ड देने वाला, दीनों के लिये कल्पवृक्ष के समान, उज्वलकीर्त्ति का धारी, नाना उत्तम गुणों से युक्त, कामदेव के समान सुन्दर और कृपालु था। भगवान् जिनेन्द्र की पूजा और भक्ति करने में राजा भरत के समान तल्लीन रहने वाला था, उसकी दृढ़ता और विरक्ति देखकर भरत को आशंका उत्पन्न हो जाती थी। इसकी दान कीर्त्ति समस्त भरत-

[illegible] थी । सौन्दर्य में वह सनत्कुमार चक्रवर्ती के समान हुआ था, उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि इसका रूप कामदेव और सनत्कुमार से भी बढ़कर है । प्रजा उससे बहुत सन्तुष्ट थी, राज्य में ईति-भीति कहीं भी नहीं थी ।

[illegible] प्रकार के दान देने में वह राजा [illegible] से भी बढ़कर था, उसके दान की यशोपताका सर्वत्र फहरा रही थी । सर्वदा लोग उसके गुणों का स्तवन करते थे । इस सर्वगुण सम्पन्न राजा की प्रभावती रानी थी, यह इन्द्राणी के समान रूप-सौन्दर्यशालिनी और गुणवती थी । ये दोनों पति-पत्नी जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में सदा लीन रहते थे । प्रभावती का मुख कमल के समान सुन्दर था और उससे गन्ध भी कमल की आती थी । प्रभावती के सिवा इस राजा के और भी कई रानियाँ थीं, परन्तु पट्टरानी प्रभावती ही मानी जाती थी, राजा उद्दायन धर्मसाधनपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था ।

एक दिन सौधर्म स्वर्ग की सुधर्मा नामक सभा में, जिसमें मनोहर रूपधारिणी, चंचलनेत्रवाली चतुर, हाथी की सूंड़ के समान लम्बी-लम्बी भुजाओंवाली अप्सराएं चमर ढुला रही थीं, गीत-नृत्य, वादन आदि नाना प्रकार के [illegible] साधन प्रस्तुत थे, हाथ जोड़कर देव कहने लगे—प्रभो ! आप सर्वजीव हितकारी जैनागम के मर्मज्ञ हैं, अतः सद्धर्म का स्वरूप आपसे तल्लीन जानना चाहते हैं । क्योंकि सद्धर्म ही सब जीवों का कल्याण समानरूप से कर सकता है, पापी से पापी भी इस धर्म के धारण करने से अपना आत्म-साधन कर लेते हैं । यही स्वर्ग-मोक्ष को देनेवाला है, नरक और तिर्यंच गतियों से छुटकारा इसी धर्म के धारण करने से हो सकता है ।

सौधर्मेन्द्र—वास्तव में सद्धर्म ऐसा ही होता है । यह धर्म किसी जाति विशेष के लिये नहीं, किन्तु मनुष्यमात्र के लिये है । जो व्यक्ति शुद्ध आचरण द्वारा इस धर्म को धारण करता है, उसकी कीर्ति संसार में व्याप्त हो जाती है । धर्म धारण करने के लिये किसी भी प्रकार के बन्धन की आवश्यकता नहीं है । उत्तम कुल में उत्पन्न होकर व्यक्ति चरित्रहीन, व्यसनी और दुराचारी हो सकता है, अतः उत्तम कुल में जन्म लेने ही से धर्म का पालन नहीं हो सकता । गुणों से नाम, रूप और आकृति की अपेक्षा से सभी मनुष्य समान हैं, धर्म ही एक ऐसा पदार्थ है जिसके धारण करने से व्यक्ति वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है । दयामयी अहिंसक धर्म ही सद्धर्म हो सकता है । इसमें व्यक्ति के चारित्र, आत्मिक-विकास आदि पर पूरा जोर दिया गया है । भक्ष्याभक्ष्य का विचार, अपने स्वरूप का मनन [illegible] की आराधना सद्धर्म में परिगणित है । जो मनुष्य इस प्रकार के धर्म को ग्रहण कर लेता है, वह अवश्य ही

अपना हित साधन कर लेता है । सज्जन और कोमल प्रकृति वालों को यह धर्म रुचिकर होता है, किन्तु दुष्ट प्रकृति वालों को यह बुरा लगता है ।

जिस प्रकार चोर को चांदनी रात अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार सप्त व्यसनों के सेवन करनेवाले को धर्म अच्छा नहीं लगता है । समस्त सुखों की जड़ सम्यग्दर्शन में है, जो अष्टांग सहित इसका पालन करता है, वह नाना प्रकार की गतियों के भ्रमण से छुटकारा पा लेता है । जिस प्रकार सुभग व्यक्ति दर्पण में अपना मुंह देखते हैं तो उन्हें प्रसन्नता होती है, किन्तु नकटा व्यक्ति जब दर्पण में अपना मुंह देखता है तो उसे क्रोध आता है, इसी प्रकार श्रद्धालु पुण्यात्मा को सद्धर्म अच्छा लगता है, परन्तु पापी व्यक्तियों को इससे घृणा और द्वेष ही होता है ।

जैसे बुद्धिमान पुरुष मिट्टी मिश्रित अशुद्ध स्वर्ण में से अपने प्रयत्न द्वारा शुद्ध स्वर्ण निकाल लेते हैं, वैसे ही श्रद्धालु व्यक्ति धीरे-धीरे समीचीन धर्म को ग्रहण कर अपना कल्याण कर लेते हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि सोने और मिट्टी के भेद को न समझ कर—भेद विज्ञान के अभाव में कुगतियों में भ्रमण करते हैं । कुधर्म के उपदेशक बहुत मिल जाते हैं, पर सद्धर्म के उपदेशक इने-गिने व्यक्ति ही मिल सकते हैं । क्योंकि संसार के जीवों की प्रवृत्ति स्वभावतः विषयों में देखी जाती है, जो व्यक्ति मनमोहक व्यसनों की ओर आकृष्ट नहीं होते हैं वे ही वास्तव में धर्म के परिपालक हैं । साधारण व्यक्तियों को दयामय धर्म के धारण करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है, परन्तु पाप-मय धर्म उनके लिए बहुत ही आसान होता है । क्योंकि उसके लिए कुछ भी त्याग नहीं करना पड़ता है । और न किसी भी प्रकार का कष्ट सहना पड़ता है । भौतिक जीवन, जिसका उद्देश्य केवल खाना-पीना और आनन्द से रहना है, मिथ्यात्व या कुधर्म का घोतक सद्धर्म विवेक सिखलाता है और प्रत्येक कार्य में क्यों और कैसे ? प्रश्न उठाकर अपना अमिट प्रभाव अंकित करता है । मूल्यवान् वस्तु के ग्राहक थोड़े व्यक्ति होते हैं, पर सस्ती चीजों के खरीदार अधिक से अधिक व्यक्ति मिल जाते हैं, इसी प्रकार साधना प्रधान सद्धर्म के धारण करनेवाले कम परन्तु मिथ्या आडम्बर युक्त धर्म को ग्रहण करनेवालों की कभी कमी नहीं रही हैं ।

व्यवहार धर्ममें दान, पूजा, स्वाध्याय, संयम आदि प्रधान हैं । दान देने से स्वपर कष्ट दूर हो जाता है; समाज और धर्म के अर्थ-साध्य कार्य सामूहिक दान के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं । जितने धन का व्यक्ति दान देता है, उतने धन से उसका मोह दूर हो जाता है, जिससे राग द्वेष की माया घटने से धर्म-साधन होता है । बात यह है कि धर्म

आत्मा में है, संसार के बाह्य पदार्थों में नहीं। दान में धर्म नहीं बसता है, बल्कि त्याग वृत्ति में धर्म है। कोई धनिक होकर अधिक धन दान में लगा रहा है, पर उसकी एक मात्र इच्छा कीर्त्ति–उपार्जन की है या और किसी प्रकार का स्वार्थ सिद्ध करने की है तो उसे कभी भी धर्मात्मा नहीं कहा जा सकता। आहार दान, ज्ञान दान, औषध दान और अभय दान इन चारों प्रकार के दान देने में धर्म अवश्य है, पर स्वार्थ के रहने पर धर्म नहीं रहता। स्वार्थ व्यक्ति को नीच बना देता है। भक्ति पूर्वक आहार दान देने से लक्ष्मी की वृद्धि होती है, मन्त्र सिद्ध होता है, सन्तान प्राप्त होती है, रोग-शोक दूर हो जाते है तथा बड़े से बड़े कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इस दान के प्रभाव से मनुष्य स्वर्गादि सुखों को तो प्राप्त करता ही है; किन्तु परम्परा से निर्वाण की भी प्राप्ति होती है। निदान बांध कर दान देने से दान निरर्थक हो जाता है।

ज्ञान दान के समान उपकारक अन्य नहीं है। ज्ञान या विवेक ही व्यक्ति को संसार के हेयोपादेय पदार्थों में प्रवृत्ति कराता है। अज्ञानी जीव वस्तु के स्वरूप से वंचित रहने के कारण सम्यक् प्रवृत्ति नहीं कर सकता है। अज्ञान की निवृत्ति हो जाने से व्यक्ति अपने कल्याण के मार्ग को प्राप्त कर लेता है, उसे हित अहित का ज्ञान हो जाता है। अतएव ज्ञान दान श्रेष्ठ दान है, इसके दाता को सभी प्रकार की सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है तथा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने के कारण आगे चलकर केवल ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है। यदि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में दो चार व्यक्तियों को भी ज्ञानी बना दे, तो वह बहुत बड़ा काम कर सकता है, आत्म श्रद्धा हो जाने पर आत्म ज्ञान होना तथा उस आत्मा को प्राप्त करने के लिये यत्न करना ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। ज्ञान दान का दूसरा नाम शास्त्र दान है, शास्त्र लिखवा कर या छपवा कर बांटना तथा शास्त्रोपदेश देकर मोह अज्ञान और विकारों को दूर करना भी शास्त्रदान है। इस दान का फल शास्त्रकारों ने श्रुतज्ञानी और केवलज्ञानी होना बताया है। एक शास्त्र का दान करनेवाले भी इस संसार से पार हो गये है।

औषध दान में रोगी व्यक्तियों को औषधि का वितरण करना चाहिये। जब किसीका रोग दूर हो जाता है, तो वह परिचर्या या औषध करनेवाले का बड़ा भारी उपकार मानता है, वह अपना नया जीवन प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होता है, अतः इस दान के द्वारा भी अद्वितीय चमत्कारी फलों की प्राप्ति देखी जाती है। त्यागी, साधु, महापुरुषों की परिचर्या करना, रोगी होने पर उनकी सभी प्रकार से संभाल रखना, शुद्ध औषध को देना आदि सभी औषधदान

में गर्भित हैं। इस दान के करने वाले निरोगी रहते हैं। जिस व्यक्ति को सदा स्वस्थ रहना हो और कञ्चन जैसी निर्मल काया की इच्छा हो उसे औषध दान देना चाहिये। निदान बांधकर दान देने से समस्त फल नहीं मिलता है अतः निस्वार्थ भाव से स्वयं त्यागी बनकर दान देना चाहिये।

अभयदान का अर्थ है, दीन-असमर्थ जीवों की प्राण रक्षा करना तथा उनकी सब प्रकार से हिफाजत करना प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राण प्यारे होते है। जो उनकी रक्षा करता है। वास्तव में वह उनका सबसे प्रिय पात्र होता है। अभय दान करने वालों को सद्विवेक पूर्वक दान करना चाहिये। प्राण रक्षा के समान संसार में दूसरा सुखद कार्य नहीं है। इस प्रकार जो व्यक्ति इन चारों प्रकार के दान धर्मों का पालन करता है, वह धर्मात्मा है। गृहस्थ अपनी शक्ति के अनुसार त्यागी, साधु संन्यासियों को दान देता है। प्रभु-भक्ति कर भी धर्म संचय करता है। भगवान् की भक्ति से आत्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट हो जाता है। यही जीवात्मा किस प्रकार परमात्मा बन जाता है, यह भक्ति के चमत्कार द्वारा ही अवगत किया जा सकता है। जिस प्रकार पारस मणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, उसी प्रकार भक्ति के संयोग से जीवात्मा भी परमात्मा बन जाता है। यद्यपि भक्ति श्रद्धा के अन्तगर्त है, बिना श्रद्धा के भक्ति हो नहीं सकती है, परन्तु भक्त जीव अपने हृदय को प्रभु चरण में अर्पण कर समस्त आत्मिक शक्तियों का विकास कर लेता है। नित्य प्रभु की भक्ति से अपनी आत्मा के गुणों का स्मरण होता है, जिससे निर्वाण प्राप्त करने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती। भगवान् की पूजा दरिद्रता, रोग, शोक, मोह मान आदि को दूर कर देती है। अतः सद्धर्म के भीतर प्रभु-भक्ति की गणना की गई हैं।

शास्त्र स्वाध्याय भी सद्धर्म में शामिल है। क्योंकि इसके द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है, हिताहित की प्रवृत्ति और निवृत्ति भी इसीके ऊपर आश्रित हैं। जितने समय तक व्यक्ति स्वाध्याय करता है, उतने काल तक उपयोग के स्थिर रहने के आत्मिक शक्ति का विकास होता है। स्वध्याय की गणना तपों में भी की गई हैं; क्योंकि कर्म निर्जरा का कारण यह है! इस प्रकार सद्धर्म का किंचित् स्वरूप सौधर्मेन्द्र ने कहा।

एक देव—प्रभो! धर्म के आराधक भव्य को कैसा होना चाहिये?

सौधर्मेन्द्र—घोड़े के मुख में लगाम लगाये जाने पर वह घास मुख में ही रख लेता है, पेट में नहीं जाने देता; उसी प्रकार धर्म को जो ऊपर से ग्रहण करते हैं, उसका भीतर रसस्वादन नहीं करते वे सम्यक् आराधक नहीं

हैं। पुण्य की वृद्धि हो और पाप दूर हो जाय, इस धारणा को लेकर धर्म का श्रवण करना व्यर्थ है। भय या आतंक से धर्म का साधन नहीं हो सकता है। आराधक को श्रद्धालु, विनीत और जिज्ञासु होना चाहिये। विवेकी, श्रुतज्ञ, गुणी, जागरूक होना भी साधक के लिये आवश्यक है। भ्रमर के समान रसज्ञ, सोने के समान शुद्ध, पर्वत के समान स्थिर, स्फटिक के समान निर्मल, सुकवि के समान कुमार्ग रहित, जौहरी के समान परिक्षक, महाक्षत्रिय के समान विचार-परायण, देव के समान समबुद्धि, अर्जुन के समान धर्म प्रिय, संयमी के समान दयालु, सुकवि के समान यति प्रिय, सागर के समान अमर्यादित एवं सुमेरु की तरह धर्म में अटल होने वाला ही भव्य आराधक है। भव्य श्रावक धर्म के स्वरूप को अवगत कर धारण करे। अन्ध विश्वासी बनना उचित नहीं है। परीक्षा प्रधानी बनना तथा खरे-खोटे की परखकर धर्म को स्वीकार करना परीक्षा प्रधानी श्रावक का परम कर्त्तव्य है।

सांसारिक विभूतियां पुण्योदय से मिलती हैं, इन्हें प्राप्त कर अभिमान न करना तथा अपने आत्मस्वरूप का चिन्तन सदा करते रहना चाहिये। क्योंकि वैभव धर्म करने से प्राप्त हो, ऐसा कोई नियम नहीं है, हां, पुण्योदय से ऐहिक वैभव प्राप्त होता है। इसके साथ धर्म का विशेष सम्बन्ध नहीं है। बिना डंठी के जैसे छाता नहीं धारण किया जा सकता है, कोई भी राज्य के बिना राजा नहीं बन सकता, घृत के बिना स्वादिष्ट भोजन नहीं बन सकता, मार्ग बिना गमन नहीं हो सकता, योग्यता और चतुराई के बिना कोई मंत्री नहीं बन सकता, बिना वर्तन के भोजन नहीं बनाया जा सकता उसी प्रकार पुण्योदय के बिना सम्पत्ति प्राप्त नहीं हो सकती। सांसारिक वैभव पुण्य के दास हैं, यह पुण्यार्जन दान, पूजा, स्तवन, अभिषेक, परोपकार, स्वाध्याय, संयम, गुरुभक्ति आदि के करने से होता है। मानव समाज की भलाई करने वाले कार्य पुण्य माने गये हैं।

कर्मों का उदय प्रबल होता है। रामचन्द्र और पाण्डवों को भी कर्मों ने नहीं छोड़ा, स्त्री-माता, घर कुटुम्ब आदि से पृथक होना पड़ा। क्या ये महापुरुष मन्त्र-तन्त्र नहीं जानते थे? अपने कर्मों को मन्त्र-तन्त्र के प्रभाव से क्यों नहीं नष्ट कर सके?

सगर, भरत और अद्रुभसेन जैसे उदार वीर भी समस्त पृथ्वी के अर्धाधिपति थे, चक्रवर्ती हुए। पुण्यानुबन्धी पुण्य से क्या भास्वर पुण्य का बन्ध नहीं हो सकता है? संसार के वैभवों से लिये पुण्य ही प्रधान है।

जिसकी आयु पूर्ण हो जाती है, उसको कोई नहीं बचा सकता है। जीव को शाश्वत सुख पुण्य से नहीं मिल

... होता है, अतीन्द्रिय सुख नहीं । अतीन्द्रिय सुख ही शाश्वत हो सकता है, यही अविनाशीक है । पुण्योदय से क्षणिक सुख-दुःख प्राप्त होते हैं, अतः भव्य श्रावक को धर्म और पुण्य का रहस्य समझ कर रत्नत्रय रूप धर्म को धारण करना चाहिये । यदि आत्मधर्म को धारण करने की शक्ति न हो या कठिनाई हो तो पुण्य कार्यों को सम्पन्न करना चाहिये । पाप कार्य, सप्तव्यसन सेवन, अभक्ष्य-भक्षण आदि का त्याग तो जीवन में अवश्य होना चाहिये । इनके त्याग किये बिना मानव का जीवन पशुवत हो जाता है ।

धर्म साधन के लिये निदान नहीं बांधना चाहिये । माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीनों शल्य माने जाते हैं, जीव व्रती शल्य के दूर करने पर ही हो सकता है । शल्य हृदय में कांटे के समान चुभते रहते हैं । अतः धर्म का रहस्य जानने के लिये आगम का अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये । क्योंकि परमागम के बिना उत्तम गति का उपाय नहीं जाना जा सकता है । जिनवाणी ही निर्वाण लक्ष्मी के समक्ष उपस्थित कर देती है । मोह रूपी कुट्टिनी इसके सामने नहीं ठहर सकती है ।

देव—हे स्वामिन् ! निर्विचिकित्सा अंग के धारक इस लोक में कितने जीव हैं ? क्या सम्यग्दर्शन का निर्दोष रूप से पालन करनेवाले इस समय विद्यमान हैं ? और उनकी संख्या कितनी है ?

सौधर्मेन्द्र—इस भरत क्षेत्र के रौरवपुर नाम के नगर में निर्मल, उदार गुणों का धारी, भगवान् के चरणों में भ्रमर की तरह लुब्ध, पृथ्वी में भव्यों द्वारा स्तुत्य, सदाचारी उद्दायन नाम का राजा निर्दोष सम्यग्दृष्टि है तथा निर्विचिकित्सा अंग का पूर्णतया पालन करने वाला है । इस प्रकार सौधर्म की सभा में उद्दायन की प्रशंसा की गई ।

वासवदेव आश्चर्यान्वित हो कहने लगा कि भरतक्षेत्र में एक ही सम्यग्दृष्टि है ? इतनी जनसंख्या के प्रदेश में एक ही व्यक्ति ऐसा क्यों है ? अन्य दो-चार व्यक्ति भी क्या सम्यग्दृष्टि नहीं होंगे ? मैं जाकर अवश्य परीक्षा करूंगा और सम्यग्दृष्टियों की संख्या का यथार्थ पता लगाऊंगा ।

वासवदेव ने भरतक्षेत्र में जाकर मुनिरूप धारण किया । शरीर को कृश, नाक और कान को बेढंगा, आंखों से दुर्गन्धित पानी बहाते हुए, समस्त शरीर से खून-पीप निकालते हुए, गलित कुष्ठ, क्षीण काय, हड्डियों का ढांचा आंतें निकाले हुए, अपना वेष बनाया । इस प्रकार के मुनि को देखते ही दूर से घृणा उत्पन्न होती थी । उसके

वीभत्स शरीर मे निकलने वाली दुर्गन्ध इतनी कड़ी थी कि कोई भी उसके सामने नहीं पड़ता था ।

वह जिस गांव में गया, उसी में महान् दुर्गन्धि छोड़ता हुआ । उसकी दुर्गन्धि के कारण कहीं पर उसे आहार नहीं मिला । नामधारी सभी श्रावक उसे देखते ही छिप जाते थे । क्रमशः चलकर वह रोरवपुर नगर में आया; सभी नगर के व्यक्ति उस कोढ़ी के घृणित शरीर को देखकर घबड़ा गये, दुर्गन्धि के कारण कोई भी उसके सामने नहीं आया । कुछ उसकी निन्दा करने लगे, कुछ तिरस्कार करने लगे और कुछ उसको गालियां देने लगे । कुछ कहने लगे देखो इतना भयंकर कुष्ठ रोग होने पर भी इसे खाने की इच्छा है । मौत के दिन निकट हैं, फिर भी भोजन की लालसा दूर नहीं हुई है । थोड़ा आगे चलने पर एक जातिमूढ़ बोला—शरीर सड़ गया है, हाथ पैर बेकाम हो गये हैं, इसका मर जाना ही अच्छा है । न मालूम यह बदकिस्मत क्यों जीवित रहना चाहता है ? इस प्रकार की आलोचना सुनता हुआ वह आगे बढ़ा । वहां एक श्रावक मिला, वह कहने लगा—इतना दुःख क्यों सहन कर रहा है ? अब आहार-पानी छोड़ अथवा कुंए में कूदकर प्राण दे देने चाहिये । इस प्रकार के जीवन से क्या लाभ ? आशा बड़ी बुरी वस्तु है, मनुष्य आशा को लेकर ही जीवित रहता है । तरह-तरह की आलोचना को सुनता हुआ वह मुनि आगे चला ।

आगे जाने पर एक श्रावक सोचने लगा कि यह मुनिराज क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदि २२ परिषहों को को सहन करते हैं, अशुभोदय से इन्हें कुष्ट हो गया है । इतने महान् कष्ट के आने पर भी इन्होंने अपने चारित्र को न छोड़ा । इस प्रकार दुर्धर चारित्रधारी मुनिराज को धन्य है । आगे जाने पर एक श्रावक करुणा बुद्धि से कहने लगा—देखो किसी को एक छोटा सा घाव होजाने पर कितना कष्ट होता है, यह मुनिराज इतनी महान् वेदना को सहन करते हुए भी अपनी चर्या के लिये आ गये हैं । इनके समान कौन धन्यवाद का पात्र होगा ।

अन्य श्रावक कहने लगा—इस प्रकार महान् कष्टों को सहन करते हुए भी इन्होंने अपनी वीर भिक्षावृत्ति को नहीं छोड़ा है । इस धैर्यशाली को अनेक बार नमस्कार है । मुनिवेष धारी देव उपर्युक्त श्रावकों को अपने-अपने विचारानुसार नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव आयु का वन्ध करने वाला अनुमान करता हुआ आगे बढ़ा ।

आगे जाने पर एक कुसंगति में पड़ा हुआ जैन श्रावक कहने लगा—आज तक हमने इस प्रकार के मुनि को नहीं देखा, यह कोढ़ी कहां से आ गया ? जैनवृत्ति कितनी कठिन है कि इस दुरावस्था में भी यह साधु अपने व्रतों के पालने के लिये भिक्षार्थ यहां आया है । आगे जाने पर जड़मति श्रावक मिला; वह कहने लगा—कि दुर्गन्ध के मारे

नाक फटी जा रही है, यह यहां से जल्दी चला जाय तो अच्छा है । कुछ दूर चलने पर शून्य हृदय श्रावक मिला और कहने लगा—सबसे कठिन कुष्ठ व्याधि है, इतनी वेदना दूसरे रोग में नहीं होती है, अतः इसे किसी समुद्र या नदी में गिरा देना चाहिये । आगे जाने पर एक वृद्ध मिथ्यादृष्टि कहने लगा—आज तक मैंने अनेक मुनियों को सुन्दर सुस्वादु भोजन दिया है, जिससे मेरे हाथ की अंगुलियां घिस गई हैं, पर इस प्रकार के मुनि को आहार देना चाहिये या नहीं ? शास्त्रों में इस सम्बन्ध में क्या लिखा है ? इसका पता नहीं । अनन्तकाल तक दुःख प्राप्त करनेवालों का मार्ग यही है । कुछ दूर चलने पर एक श्रावक पान खाता हुआ मिला और कहने लगा—कि आगे जाओ, यहां तुम्हारी दाल नहीं गलेगी । अन्य नवीन श्रावक कहने लगा—यह मुनि है या नहीं, इसे आहार के लिये पड़गाहा जाय या नहीं ? इस प्रकार की बात चीत होने लगी मुनि आगे बढ़ा—

एक अन्य श्रावक मुनि को देखकर कहने लगा—भाई तुम्हीं पड़गाहने जाओ, मैंने अभी स्नान किया है । दूसरा कहने लगा कि तुम्हीं जाओ, मैं इस कार्य को करलूं । इस प्रकार वहां से भी मुनिराज आगे चले गये । कुछ दूर जाने पर नवीन श्रावक वार्तालाप करने लगे कि हमने समझा था कि आगे के लोग मुनिराज को पड़गाह लेंगे, अन्यथा हमही पड़गाह लेते । इस प्रकार सब बहानाबाजी करने लगे । इस प्रकार किसी भी श्रावक को मुनि को आहार देने की हिम्मत नहीं हुई बदबू और खून-पीप टपकने के कारण कोई भी उनके पास जाने को तैयार नहीं हुआ श्राविकाएं भी ऊपर-ऊपर ही आहार की चर्चाएं करने लगीं परन्तु आन्तरिक इच्छा किसी की भी आहार देने की नहीं हुई; क्योंकि मुनि का शरीर इतना वीभत्स था जिससे कोई भी आहार देनेके लिये तैयार न हो सका । यद्यपि अनेक श्रावकों ने मुनि की चर्या की प्रशंसा की किन्तु वास्तविक निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने को कोई भी तैयार नहीं हुआ । मुनिवेष धारी वासवदेव जब सारी नगरी में घूम लिया और कोई भी वास्तविक श्रावक न मिला तो वह सोचने लगा—जैसे सभी वृक्ष फलों के बिना समान दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु फल आने पर सभी फलों का गुण अलग-अलग प्रकट हो जाता है । आम और लीची के वृक्ष समान दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु फल आने पर उनका भेद प्रकट हुए बिना नहीं रहता । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की क्रियाएं भी समान रूप से होती हैं, परन्तु अवसर आने पर दोनों का भेद प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता । कर्मों के क्षय के बिना क्षायिक सम्यग्दृष्टि कोई नहीं हो सकता । अतएव वासवदेव ने ऊहा-पोह के अनन्तर निर्णय किया कि अब राजा उद्दायन को परीक्षा के लिये चलना चाहिये ।

राजा उद्दायन उस समय राज सभा में सिंहासन पर बैठा हुआ था। जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर शोभित होता है उसी प्रकार राजा सिंहासन पर शोभित हो रहा था अथवा यों समझना चाहिये कि जिस प्रकार नक्षत्रों के समुदाय में चन्द्रमा शोभा पाता है, उसी प्रकार राजा उद्दायन अपने अमात्य, विद्वान् एवं अन्य लोगों के मध्य में बैठा हुआ शोभा प्राप्त कर रहा था, रानियां मोतियोंका हार पहने हुए सुन्दरवस्त्राभूषणों से सुसज्जित अद्भुत शोभा प्राप्त कर रही थीं। राजा के ऊपर चमर ढोरने वाली नारियां अप्सराओं के समान सुन्दरी थीं, इनके अंग-अंग से लावण्य फूटा पड़ता था। सभाकी नर्तकियां नाना प्रकार के आभूषण पहने हुए अपनी ओर दर्शकों का चित्त आकृष्ट करतीं थी। वे नृत्य विद्या में अत्यन्त प्रवीण और हाव-भाव में चतुरा थीं। राजा की सभा में ये नर्तकियां सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की देवाङ्गनाओं से भी बढ़कर थीं। राजा की सभा इन्द्र की सभा के तुल्य थी, कवि कविता की रचना कर उपस्थित मनुष्यों में वीर--शृंगार और शान्त रस की धारा प्रवाहित करने में संलग्न थे। राजा के पास अनेक देशों के छोटे-छोटे राजा उपहार भेंट कर रहे थे। राजा का विदेशी विभाग बहुत ही दृढ़ था, संकेत पर ही सारी व्यवस्था विदेशी दूतों की की जा रही थी।

राजा उद्दायन ने मुक्ति दूत के समान उन मुनिराज को देखा तो तुरन्त सिंहासन से खड़ा हो गया और शुद्ध वस्त्र पहन कर मुनिराज को पड़गाहने के लिये आया। वह अपार भक्ति सहित मुनिराज के चरणों में गिर गया तथा नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाह कर उन्हें उच्चासन पर बैठाया। मुनि भेष धारी वासवदेव ने इतनी दुर्गन्ध छोड़ी, जिससे वहां नाक बन्दकर भी रहना संभव नहीं था। दुर्गन्ध सहन न होने से बहुत से लोग भाग गये, पर कुछ लोग राजा के भय से बड़ी कठिनाई के साथ नाक बन्द कर नीचे को मुख किये खड़े रह गये। रानियां भी दुर्गन्ध से घबड़ा कर भाग गयीं, किन्तु पट्टमहिषी प्रभावती ने प्रसन्नता पूर्वक मुनिराज के आहार की तैयारी की। वह कहने लगी कि श्रेष्ठ रत्न मैलरूपी शरीर में पड़ गया है, इस मैल को दूर करने के लिये ऐसी कठिन पथ्या की आवश्यकता है। प्रभावती रानी सहित राजा उद्दायन ने नवधा भक्ति सहित मुनि को आहार दिया। मुनि ने भी कण्ठ पर्यन्त खूब भोजन कर लिया, जिससे उनका शरीर कांपने लगा, आंखों की पुतलियां निकल आयीं, श्वास तेजी से चलने लगीं तथा दुर्गन्ध भी शरीर से निकल रही थी।

मुनि ने राजा और रानी के ऊपर कांपते हुए वमन कर दिया तथा यह वमन सिर से लेकर पांव तक वज्र-

लेप हो गया, किन्तु राजा-रानी को इस बात से तनिक भी कष्ट नहीं हुआ और न अपने मन में उन्होंने घृणा ही की; बल्कि मुनिराज के वमन से राजा के मन में यह चिन्ता अवश्य हो गयी कि हमारा भोजन न मालूम कैसा था, जिससे हमारे कारण मुनिराज को अपूर्व कष्ट हो रहा है। हमारे न मालूम किस अशुभ कर्म का उदय आ गया है, अन्यथा हमारे निमित्त से मुनिराज को इतनी तकलीफ क्यों होती ?

पुनः राजा विचारने लगा—अरे मैं कैसा पापी हूं ? मैंने मुनि को उनकी प्रकृति के अनुकूल आहार नहीं दिया, इसी से उनको वमन हो गया है। इस प्रकार राजा उद्दायन आत्मालोचना करता हुआ गर्म जल से उनके शरीर को धोने लगा और स्वच्छ कपड़े से शरीर को पोंछ दिया तथा बाहर लाकर एक पट्ट पर बैठा कर मुनि की स्तुति करने लगा। पश्चात् रानी प्रभावती भी मुनि की सेवा करती हुई बोली—इस शरीर का विचार किया जाय तो निश्चय ही ज्ञात हो जायगा कि इसमें तिल मात्र भी शुचित नहीं है। अतः जहां तक हो सके इस शरीर से आत्म कल्याण का कार्य लेना चाहिये। यह तो हमारा गुलाम है, यदि इसके ऊपर यथार्थ नियन्त्रण न किया जायगा तो यह उच्छृंखल हो जायगा। जिस प्रकार सांप के बिल में हाथ डालने से काटता हैं, उसी प्रकार शरीर के स्पर्श से सभी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं। यह बिजली की चमक के समान क्षणिक, ग्रह के समान पीड़कारक, कृष्ण पक्ष के समान भयोत्पादक, शिशु के समान चंचल,तृणाग्नि के समान अस्थिर एवं सब प्रकार से दुर्गुणों की खान है। जो इस शरीर को प्राप्त कर रत्नत्रय की आराधना करता है, वही सफल माना जाता है।

वासवदेव प्रसन्न होकर सोचने लगा कि सौधर्म सभामें जो इनके गुणों का वर्णन किया गया था, वह सच है। वास्तव में इनके समान गुणी और सम्यग्दृष्टि जगत् में शायद ही कोई होगा। इस भरतक्षेत्र में मैंने भ्रमण कर देख लिया कि राजा उद्दायन और रानी प्रभावती दृढ़ सम्यग्दृष्टि हैं। निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने में ये अद्वितीय हैं। इनके सम्यक्त्व और निर्विचिकित्सा अंगका वर्णन धरणेन्द्र भी नहीं कर सकता है। अतएव अब मुझे अपने वास्तविक रूप को प्रकट करना चाहिये। ऐसा निश्चय कर उसने अपना दिव्य शरीर प्रकट किया।

आश्चर्यान्वित हो राजा उद्दायन ने पूछा—आप कौन हैं ?

वासवदेव—सौधर्म स्वर्ग में एक दिन यह चर्चा उपस्थित हुई थी कि निर्विचिकित्सा अंग में कौन प्रसिद्ध है, इन्द्र ने इसका उत्तर दिया था कि रौरवपुर का राजा उद्दायन और उसकी रानी प्रभावती इस अंग के पूर्णधारी हैं।

सौधर्मेन्द्र की बात सुनकर सभी देवों ने आपकी स्तुति की, हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मैं परीक्षा करने के लिये चला आया। मैंने आपको अत्यन्त कष्ट दिया, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। मेरा नाम वासवदेव है। सभा में आपका जैसा वर्णन किया गया था, आप उससे बढ़कर गुणी और धर्मात्मा हैं। दुःखी जीवों की सेवा करना आपको अत्यन्त प्रिय है। मैंने समस्त भरतक्षेत्र ढूंढ़ डाला पर आपके समान निर्विचिकित्सा अंग का पालन करनेवाला नहीं मिला। मैं युगल मूर्त्ति—राजा और रानी से बहुत प्रसन्न हूं, आप दोनों ही नैष्ठिक धर्मात्मा और सेवाभावी हैं। देवों में न पाये जानेवाले गुण आप लोगों में मौजूद हैं, इसी कारण देव लोग आपकी स्तुति करते हैं। रानी की ओर देखकर पुनः वासवदेव बोला—

हे राजन् ! इस पुण्यमती को शीलवती भी कहा जा सकता है। शील शिरोमणि नारियों से ही यह संसार चल रहा है। शील में अद्भुत शक्ति होती है। नारी की सब से बड़ी सम्पत्ति शील है, जिसने इस सम्पत्ति को खो दिया वह संसार में पापिनी है। शीलवती पत्नी संसार में बड़े पुण्योदय से मिलती है। पातिव्रत धर्म का पालन करने से नारी अपनी पर्याय का छेदन कर पुरुष पर्याय को प्राप्त करती है। इस प्रकार स्तुति कर वासवदेव क्षमा याचना करता हुआ स्वर्ग को चला गया।

कुछ दिनों के उपरान्त राजा उद्दायन अपने किसी कार्य से विदेश चले गये। एक दिन प्रभावती की बचपन की सखी तर्कशास्त्र की ज्ञाता नारायणदत्ता नाम की ब्रह्मचारिणी आई। यह मिथ्याभेष धारण किये थी। सर्वत्र यह प्रचार कर रही थी कि मेरे समान विदुषी और ब्रह्मचारिणी अन्य कोई नहीं है। उसकी कीर्त्ति प्रायः सर्वत्र फैल गयी थी, भक्तों की संख्या भी अपरिमित थी। प्रभावती को देखकर उसने सोचा कि इसका श्राविकापन छुड़ाऊंगी, यह मुझ से बात–चीत भी नहीं करती है और न मुझे नमस्कार ही। अपने को सम्यग्दृष्टि समझती है, अतः इसका अभिमान चूर करूंगी। यद्यपि रानी प्रभावती ने उसका आदर–सत्कार किया किन्तु जैसा वर्ताव होना चाहिये था, उसने नहीं किया, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को किस प्रकार वह नमस्कार करती ?

जैसे सांप को दूध पिलाने पर विष ही उत्पन्न होता है, पित्त प्रकृतिवाले को मीठा दूध पिलाने पर भी कड़ुवा ही लगता है उसी प्रकार दुष्ट प्रकृति के जीव अपनी गलती भी दूसरों की समझते हैं और नाना प्रकार से भलाई करने पर भी अपने दुष्ट स्वभाव को नहीं छोड़ते। नारायणदत्ता सोचने लगी—बाल सखी समझ कर ही इसने मेरे साथ अच्छा

व्यवहार नहीं किया। इसे वैभव प्राप्त कर घमण्ड हो गया है।

कमल तालाब को छोड़ दे, हंस कूड़ा-करकट खाने लगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे तो स्वभावच्युति का दोष आवेगा। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने पद की मर्यादा को छोड़ दे तो बड़ी गड़बड़ी हो जायगी, रानी अपने पद के अभिमान में चूर है, अतः यह इसका दोष नहीं किन्तु इसके पद का दोष है। मैं अपने अपमान का बदला इससे अवश्य लूंगी, अतः प्रतिज्ञा करती हूं कि इसका श्राविकापन दूर किये बिना नमक ग्रहण नहीं करूंगी। योगियों का अपमान करने का फल इसे अवश्य मिलेगा।

वह पुनः सोचने लगी कि चोल नरेश के पास जाना व्यर्थ होगा, क्योंकि वह जैन धर्म का बड़ा भारी श्रद्धानी है। काश्मीर नरेश की पट्टरानी बनने के लायक यह अवश्य है किन्तु वह भी जैन धर्म का अनुयायी है अतः उससे भी मेरा कार्य नहीं हो सकेगा। पाण्ड्य नरेश भी जैन धर्म के आराधक हैं अतः उनसे भी मेरा काम नहीं हो सकेगा। संभवतः मालव नरेश चण्डप्रद्योत के पास जाने से मेरा कार्य हो जायगा।

उपर्युक्त निश्चय कर उसने प्रभावती का एक सुन्दर चित्र खींचा, उसे लेकर वह उज्जयिनी गई और चण्डप्रद्योत को भेंट किया, राजा चित्र को देखते ही काम बाण से विह्वल हो गया तथा अपनी चेतना को खो बैठा। होश में आने पर वह कहने लगा कि यह किस अनिन्द्य सुन्दरी का चित्र है, तुमने इसे कहां पाया? नारायणदत्ता—राजन्! यह रौरवपुर के राजा की पट्टरानी का चित्र है, यह अद्भुत रूप राशि है इसकी तुलना अप्सराओं से नहीं की जा सकती है। आपकी पट्टरानी बनने के यह योग्य है, मैं इसी बात की सूचना आपको देने के लिये आयी हूं।

राजा ने नारायणदत्ता को प्रचुर धन दिया, खूब सम्मान किया तथा मधुर वचन कहकर पूछा कि प्रभावती रानी को प्राप्त करने का उपाय क्या है?

नारायणदत्ता—राजन्! इस समय राजा उद्दायन भी राज्य में नहीं है, वह विदेश गया है। अतः इस समय आप जल्द जाकर उसे ले आइये, आपका काम हो जायगा। उद्दायन राजा के रहने पर आपका काम आसानी से नहीं होगा, क्योंकि वह बड़ा ही पराक्रमी, शूरवीर और युद्धकला का मर्मज्ञ है।

मालव नरेश ने नारायणदत्ता की बात स्वीकार कर रौरवपुर को प्रस्थान किया और जल्दी ही वहां पहुंच कर राज्य को घेर लिया। सालंकार नाम की दासी को रानी प्रभावती के पास भेजा और सन्देश कहलाया। दूती

जाकर कहने लगी---

हे महारानी ! हमारे महाराज चण्डप्रद्योत ने आपका सुख समाचार जानने के लिये मुझे यहां भेजा है। टालमटूल करने की कोई बात नहीं है, आप लोगों की जोड़ी ठीक मिलेगी। आप दोनों सुखी हो जायंगे। मालव नरेश शूरवीर और बलशाली है, आपको ऐसे प्रभावशाली राजा की पत्नी बनने से गौरव प्राप्त होगा। उद्दायन की मालव नरेश से कोई तुलना नहीं, कहां यह जुगुनू और कहां वह चन्द्र, यह अदना सिपाही है तो वह रणक्षेत्र में हुंकारने वाला सिंह। आप सच मानिये संसारिक भोगोपभोगों की वहां कुछ भी कमी नहीं है, सभी भोग सामग्रियां प्रचुर परिमाण में एकत्रित की गई हैं। इस प्रकार प्रभावोत्पादक ढंग से राजा के गुणोंका वर्णन करने लगी। अपनी बात को समझाती हुयी कहती जाती थी कि मालव नरेश को प्राप्त करने से आपका भाग्य सितारा चमक जायगा। आप पट्टमहिषी बन कर शासन करेगीं, अन्य रानियां आपके चरणों की दासी बनी रहेंगी तथा आपकी आज्ञा को सिर आंखों पर रख-कर मानेंगी।

हे तरलाक्षी ! आपकी एक तस्वीर राजा के पास है, राजा उस तस्वीर को देखते ही विरह से विह्वल हो गया है। अपनी सेना सहित मालव नरेश स्वयं यहां पधारे हैं, आप मेरे साथ चलिये और जीवन को सुखमय बनाईये। ऐसा सौभाग्य विरले ही पुण्यशाली जीवों को प्राप्त होता है। जीवन को यों ही बिता देना ठीक नहीं है, इसका सदु-पयोग करना चाहिये। यद्यपि मैं मानती हूं कि आप पट्टरानी यहां पर भी हैं, परन्तु मालव में जो सुख और भोग प्राप्त होंगे, वे यहां कभी भी नहीं मिल सकते हैं। सुन्दर वस्त्राभूषण, इत्र-फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थ तथा अन्य भोग सामग्री की वहां प्रचुरता है। रानी प्रभावती---अरी मूर्खा ! परस्त्री में लीन रहनेवाला कभी सत्पुरुष नहीं हो सकता है, वह कभी गुरु की भक्ति नहीं कर सकता है। अतः आपका राजा दुर्जन है, सज्जन नहीं, पशु है, मनुष्य नहीं, मूर्ख है, ज्ञानी नहीं, हिंसक है, अहिंसक नहीं; क्रूर है, दयालु नहीं; पापी है, धर्मात्मा नहीं और मिथ्यादृष्टि है, सम्यक्‌दृष्टि नहीं। ऐसे राजा की प्रशंसा करते हुए तुझे शर्म आनी चाहिये।

दूती--अरी रानी साहिबा ! धर्म का ठेका आपने ही नहीं ले रखा है। धर्म वास्तव में खाने पीने और आनंद लूटने में है। हमारा नरेश जीवन के वास्तविक तत्त्व से परिचित है अतः संसार में सुन्दर वस्तुओं का उपभोग करना चाहता है। साधुओं और शास्त्रों के वचन स्वार्थियों के हैं, जिन्हें संसार के भोगोपभोग नहीं मिलते हैं, वे ही ऐसी नीरस

बातें किया करते हैं। जीवन का वास्तविक सुख भोग में हैं। आप पागलों की सी बातें क्यों कर रही हैं, आनन्द से भोग भोगिये। ऐसे सुन्दर शरीर को प्राप्त कर भी आप भोगों से वंचित रहना चाहती हैं, वास्तव में आप से बढ़कर मूर्ख अन्य कोई नहीं होगा।

रानी प्रभावती—अरी दुष्टा ! बोलते हुए तेरी जीभ कट क्यों नहीं जाती है। तू पाप का समर्थन करते हुए तनिक भी भय नहीं कर रही है। व्यभिचारी, जुआरी, चोर और गुण्डों के यहां पर भी नरक के समान दुःख भोगना पड़ता है। पापी का संसार में कहीं उद्धार नहीं हो सकता। जो पाप में सुख समझता है, वह अबोध ही नहीं निरा मूर्ख है।

दूती—रानी साहिबा ! ज्ञान ध्यान की बात छोड़ दीजिये, आप सीधे न मानेगीं तो आप को जबरदस्ती हमारे नरेश की बात माननी पड़ेगी। आप जानती हैं कि इस समय आपका कोई भी रक्षक नहीं। हमारी विशाल सेना के सामने आप अकेली क्या कर सकेगीं। यदि राजा उद्दायन आज लौट भी आवें तो भी कुछ नहीं हो सकता है। राजा उद्दायन की शक्ति कितनी है, सेना भी उनके पास थोड़ी है, अतः मेरी बात मान लेने में ही आपका कल्याण है, इसमें आपकी सब प्रकार से भलाई है। जिस शील की आप दुहाई दे रही हैं, वह आपको कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगा। व्यर्थ ही आप खतरा मोल ले रही हैं। स्त्री के लिये शील क्या वस्तु है, जहां जाय वहीं आराम से रहने लगे, यही तो उसका शील है। पति भक्ति करनी चाहिये, यह मैं मानती हूं, आप वहां चलकर अपने नये पति की भक्ति कीजियेगा। नया पति ज्यादा सुख पहुँचावेगा।

प्रभावती रानी—अरी बदतमीज ! तू अभी अनाप सनाप बोलती जाती है, तुझे धर्म कर्म से बिल्कुल डर नहीं। परमात्मा के नाम पर कुछ तो धर्म का निर्वाह कर। तेने अपने को वेच दिया है, गुलाम व्यक्ति की यही अवस्था हो जाती है। तू शील का महत्व क्या समझेगी। शील व्रत को छोड़ जीवित रहना कुत्तों का जीवन व्यतीत करना है। क्या कुत्ते जलेबी के स्वाद को समझ सकते हैं, विषयी श्वान को तो सूखी हड्डी ही स्वादिष्ट प्रतीत होती है।

दूती—रानी साहिबा ! आप क्रोधित न हों। मैं संसार की सच्ची-सच्ची बातें आपके सामने रखती हूं। जीवन पानी के बुल-बुले के समान क्षणिक है, अतः जितना बन सके इससे सुख भोगना चाहिये। यदि मरते समय किसी भी प्रकार की लालसा बनी रह जाय तो निश्चय ही जीव को उसे पूरा करने के लिये संसार में जन्म लेना पड़ता है।

आपने कभी भोगों को भोगा ही नहीं है, अतः आप इसके सम्बन्ध में क्या जाने। धर्म कर जीवन सुखा लेना महान् बेवकूफी है। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि जीवन में वास्तविक सुख विषयों के सेवन से ही आ सकता है। संकीर्ण विचारवालों ने अथवा असमर्थ लोगों ने धर्म का ढकोसला फैला रखा है।

प्रभावती—अन्धा चलते समय आगे के गड्ढे को नहीं देखता है, उसी तरह पाप के उदय से जीव नरक ले जाने वाले कार्यों को नहीं समझता है। परलोक और आत्मा का अस्तित्व मूर्ख लोग नहीं मानते हैं।

दूती—हे कमलमुखी ! ज्यादा बातें न करो, आपकी बातों में कुछ भी सार नहीं है। आप हमारे महाराज की पट्टमहिषी बन जाइये, आपका इसी में कल्याण होगा। राजा तुम्हारे कारण तुम्हारे देश की प्रजा को महान कष्ट पहुँचा रहा है। यदि वास्तव में आप दयालु हैं तो अपनी प्रजा पर दया करें, दुःखी प्रजा का दुःख आपके आत्म समर्पण से कम हो सकता है। आप कहने के लिये धर्म का ढोंग धारण किये हैं, पर वास्तव में धर्म कुछ भी नहीं जानती हैं। मालव नरेश तुम्हारे लिये जान दे रहा है और तुम उसकी परवाह भी नहीं करती हो, क्या यह हिंसा नहीं है। एक आदमी मर रहा है और आप धर्म-धर्म चिल्ला रही हैं,अतएव सब किसी की भलाई इसमें है कि आप प्रसन्नता पूर्वक मालव नरेश को स्वीकार कर लें।

प्रभावती—दुष्टा ! तू सती के सत् को क्या समझेगी ? सती के तेज से तीनों लोक जलकर राख हो सकते हैं। त्रिखण्डाधिपति रावण परस्त्री के मोह में अपना सर्वनाश कर चुका है, तब मालव नरेश जैसे क्षुद्रों की गणना ही क्या है ? शील के समान संसार में सुखदायक अन्य कुछ भी नहीं है। हट यहां से अन्यथा तेरे प्राण ले लूंगी।

रानी को क्रोधित और उत्तेजित देखकर दूती अपने प्राण लेकर भागी और राजा से सारी बातें कह दी। मालव नरेश कहने लगा कि सीधे ढंग से नहीं मानती है, तो बलपूर्वक मानना पड़ेगा। जब यहां तक आगये हैं, तो अब बिना कार्य सिद्ध हुए लौटना मूर्खता है। मेरे समक्ष संसार भी युद्ध करने आ जाय तो भी मैं विजयी हो जाऊंगा। उद्दायन की सेना कितनी है, इसकी तो मुझे कुछ परवाह नहीं हां निन्दा का डर अवश्य है, पर निन्दा तो अब हो ही चुकी है, अतः जैसे बने इस नारी रत्न को अपने नियन्त्रण में लेना चाहिये। इस प्रकार सोच-विचार कर राजा ने अपने दण्डाधिपति को आदेश दिया कि सेना की एक टुकडी ले जाकर बलपूर्वक रानी प्रभावती को ले आओ। इस कार्य के लिये तुम्हें इच्छित पुरस्कार मिलेगा।

जब रानी प्रभावती कों दण्डाधिपति के आने का समाचार मिला तो वह विचारने लगी कि इस समय राजा तथा प्रधान सेनापति बाहर गये हैं, अपने पास जो थोड़ी सी सेना है, वह इतनी बड़ी सेना का सामना नहीं कर सकेगी। हाय बड़ी विपत्ति आई, इस समय राज्य में कोई भी बड़ा सामन्त नहीं है, सभी राजा के साथ गये हैं, किस प्रकार इस परस्त्री लोलुपी दुष्ट राजा का सामना किया जाय। इस समय सब से श्रेष्ठ उपाय यही है कि चारों प्रकार के आहार का त्यागकर उपसर्ग दूर होने तक समाधिमरण ले लिया जाय। धर्माचरणपूर्वक मृत्यु प्राप्त होने से परलोक तो सुधर जायगा।शील व्रत को मैं जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ सकती हूं, प्राण चले जाना मुझे स्वीकार है पर शील का छोड़ना नहीं।

इतने में दण्डाधिपति ने आकर फाटक तोड़ दिया और नगर के भीतर प्रविष्ट हो गया। पहरेदार को सिपाहियों ने तलवार के घाट उतार दिया और आगे बढ़ते चले गये। सेना को रोकनेवाला कोई था नहीं, अतः सेना तेज गति से आगे बढ़ती गई। इधर रानी प्रभावती नासाग्र दृष्टि लगाकर ध्यान में मग्न थी, उसने समस्त चिन्ताओं को छोड़ दिया था। केवल प्रभुचरणों का ध्यान ही उसके जीवन का सर्वस्व था।

नन्दीश्वर द्वीप के अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना के लिये आकाशमार्ग से जाते हुए देवों का विमान रौरवपुर के ऊपर अटक गया। सती प्रभावती के सतीत्व ने देवों के विमान को कीलित कर दिया। जब देवों ने अवधिज्ञान से विमान के अटकने के कारण को देखा तो मालूम हुआ कि इस नगर में किसी सती के ऊपर विपत्ति आई है। एक सती के ऊपर मालव नरेश के इस प्रकार के अत्याचार को देखते ही एक सम्यग्दृष्टि देव को अत्यन्त क्रोध आया और उसने चण्डप्रद्योत की सेना को हवा की तरह उड़ाकर उज्जयिनी में ला उपस्थित किया।

रानी प्रभावती की परीक्षा करने के लिये उस देव ने चण्डप्रद्योत का रूप धारण किया और समस्त प्रजा को महानिद्रा में मग्न कर विक्रिया ऋद्धि के बल से चतुरंग सेना तैयार की और गढ़ को चारों ओर से घेर लिया। नगर में मायावी आग लगादी, रास्ते में कृत्रिम रक्त की धारा बहने लगी, सर्वत्र भय व्याप्त कर दिया और प्रभावती देवी के पास आकर बोला—मैंने तम्हारी सेना को मार डाला है, अब आप पूरी तरह से मेरे आधीन हैं, अतः आखें खोलकर मेरी ओर देखिये। आपके पति उद्दायन राजा को भी पकड़ कर कैद कर लिया है। अब मेरा सामना करने वाला कोई नहीं है। आप अब मेरे साथ चलिये और पट्टरानी बन कर संसार का आनन्द भोगिये।

रानी राजा चण्डप्रद्योत के रूपधारी देव के वचनों को सुनकर पञ्चनमस्कार मन्त्र के ध्यान में और भी लीन हो गई और स्थिरता पूर्वक जिनेन्द्र प्रभु के गुणों का चिन्तन करने लगी। उसने निश्चय किया कि प्राण जाने तक भी शील को नहीं छोड़ूंगी।

देव पुनः कहने लगा—प्रिये ! देखो मैं कितना प्रतापी हूं। तुम्हें कितना सुख दूंगा, इसे तुम नहीं जानती हो? एक बार प्रेमपूर्वक मेरी ओर देखिये। अब राजा उद्दायन से मिलने की आशा छोड़ दीजिये, इसको मैं अपने जादू घर में रखूंगा, यह कौतुक का कार्य करेगा। देखो ! तुम्हारा पति तो अब बन्दी बन ही गया है, अतः इस युवावस्था में किसी युवक के साथ रहकर जीवन बिताइये। शील, शील की माला क्यों जपती हो, इस शील के द्वारा तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती है। इस प्रकार उस परीक्षक देव ने नाना प्रकार से रानी प्रभावती को विचलित करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी।

अनन्तर देव ने अपना वास्तविक रूप धारण कर कहा—देखो मैं देव हूं, मैंने विक्रिया बल से यहां की सेना और प्रजा को मूर्छित कर दिया है, चण्डप्रद्योत की सेना को भी उज्जयिनी पहुँचा दिया है, अब तुम्हारे ऊपर उपसर्ग नहीं है। अपने शील के प्रभाव से तुमने देवों को किंकर बना लिया है। मैंने आपकी परीक्षा की थी, आप सतीशिरोमणि हैं धन्य है आपके शील व्रत को, मध्यलोक वास्तव में सती नारियों के सतीत्व पर ही अवलम्बित है। इस प्रकार कहकर पारिजात पुष्पों से रानी की पूजा की; आकाश में दुन्दुभि बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी। सती शिरोमणि की नाना प्रकार से जयध्वनि आकाश में गूंजने लगी।

प्राचीन पुरुष रत्न के चरित्र को बतलाने वाले, जिन भगवान के चरणों में भ्रमर की तरह तल्लीन रहने वाले सम्यक्त्वरूपी आभूषणों को धारण करने वाले दया के समुद्र, सुमेरू के समान धैर्यशाली, राजाओं के द्वारा वन्दनीय उद्दायन राजा की सभी ने स्तुति की।

विदेश से लौटने पर जब राजा उद्दायन को उपर्युक्त समाचार मिला तो उसे संसार से बड़ी विरक्ति हुई और वह अपने बड़े पुत्र अरिञ्जय को राज गद्दी दे तपस्या करने चला गया। जाते समय उसने अपने पुत्र को उपदेश दिया—जिनेन्द्र भगवान के चरणों में सदा लीन रहना, दुष्टों को दण्ड, शिष्टों को अनुग्रह करना तथा दान-पूजा-भक्ति आदि कार्यों को निरन्तर करना चाहिये। इस प्रकार उपदेश देकर चला गया और जिनदीक्षा लेकर तपस्या की तथा अष्टकर्मों

को नष्ट कर निर्वाण पाया। रानी प्रभावती ने भी आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ली और तपश्चरण किया। अन्त में ब्रह्मस्वर्ग में दस सागरोपम आयु प्राप्त कर महा ऋद्धि देव हुई।

यह निर्विचिकित्सा अंग मोक्षलक्ष्मी के लिये तिलक के समान, मिथ्यात्वरूपी हाथी के लिये सिंह के समान और समस्त सुखों की खान है। इस प्रकार निर्विचिकित्सा अंग की कथा गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक से कही। राजा श्रेणिक के हृदय में इस कथा को सुनकर अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई, और उन्होंने अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ किया।

चौथी कथा समाप्त हुयी



पाचवीं कथा

राजा श्रेणिक ने निर्विचिकित्सा अंग की कथा सुनकर गौतम गणधर से अमूढ़ दृष्टि अंग की कथा जानने की इच्छा प्रकट की ।

गौतम गणधर—राजन् ! मूढ़ता को छोड़कर पाखण्ड के आधीन न होना तथा मूर्ख लोग जिन दम्भों को करते हैं, उन्हें छोड़ना अमूढ़दृष्टि है । मूढ़ताएं तीन प्रकार की होती हैं, प्रथम कुछ लोग देवों में मूर्खता करते हैं, अर्थात् रागी–द्वेषी को देव समझ लेते हैं । परन्तु सत्य यह है जो रागी–द्वेषी नहीं है, क्रोध–मान–माया–लोभ कषायों से रहित है, जितेन्द्रिय है, सर्वज्ञ है, हितोपदेशी है, वही सच्चा देव हो सकता है । जिसके मन में राग–द्वेष लगा है वह निष्पक्ष बात कह नहीं सकता है, उसकी बात सभी जीवों को सुखकर नहीं हो सकती है । जब तक लोभ, स्वार्थ, मोह, घृणा, ईर्षा आदि लगे रहेंगे, तब तक व्यक्ति में समदृष्टिपना नहीं आ सकता है । जो लोग मूर्खतावश रागी–द्वेषी व्यक्तियों को देव मान लेते हैं, उनका कभी एसे देवों से हित नहीं हो सकता है । हिंसक, विषयी देवों की आराधना, भक्ति और पूजा से आत्मिक गुणों का विकास नहीं हो सकता है । विवेकी जीव को इस प्रकार के देवों की उपासना नहीं करनी चाहिये अतः जिन्हें राग–द्वेष से रहित देव के सम्बन्ध में पूरी जानकारी हो गई है, वे सच्चे देवों की उपासना से स्वयं देवत्व को प्राप्त होते हैं ।

लोक मूढ़ता का अर्थ यह है कि लोक प्रचलित बातों में मूर्खता करना । लोक व्यवहार में अनेक मूर्खताएं प्रचलित हैं यथा गंगा स्नान से पुण्य समझना, बालू–पत्थर आदि के ढेर लगाकर उन्हें पूजना, अग्नि में जलने से पुण्य समझना, नदी में डूबकर मृत्यु प्राप्त करने में पुण्य समझना, किसी स्थान विशेष पर मृत्यु की कामना करना और सोचना कि उस स्थान पर मृत्यु होने से निर्वाण मिल जायगा, इसी प्रकार के और भी अनेक व्यवहार हैं, जो मूर्खता में परिगणित किये जा सकते हैं । इन समस्त प्रकार के अन्धविश्वासों को त्याग कर विवेक से काम लेना ही, व्यक्ति की विशेषता है । सम्यग्दृष्टि जीव समस्त प्रकार के भय और आतंकों से रहित हो विवेक पूर्वक अपनी प्रवृत्ति करता है ।

गुरु मूढ़ता तीसरी मूढता है,इसका अर्थ है कि पाखण्डी, ढोंगी विषयलोलुपी गुरुओं की भक्ति करना ऐसे गुरु संसार समुद्र में स्वयं डूबते हैं और अपने भक्तों को डुबाते हैं गुरु तीन प्रकार के बताये गये हैं-प्रथम गुरु वे हैं जो संसार नौका के

समान हैं, जिस प्रकार नौका में सवार होकर अन्य व्यक्ति नदी को पार कर लेते हैं तथा स्वयं नौका भी पार हो जाती है, उसी प्रकार जो स्वयं कर्मबन्धन को नष्ट करते हैं तथा अपने आराधकों के कर्म-बन्धन नष्ट करने के उपाय बतलाते हैं। ऐसे गुरु सभी प्रकार के परिग्रह से रहित दिगम्बर जैन साधु ही हो सकते हैं। इनके जीवन में अहिंसा सभी प्रकार से व्याप्त रहती है, ये अपने पास तिल, तुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखते हैं।

दूसरे प्रकार के गुरु—कागज की नाव के समान होते हैं। जिस प्रकार कागज की नाव स्वयं तो नदी के प्रवाह में पड़कर वायु के वेग से पार हो भी जाती है, किन्तु उसका आश्रय लेनेवाला अवश्य बीच में ही डूब जाता है। यही हालत थोड़ा-बहुत परिग्रह रखने वाले तथा भीतर से समस्त विषयों की लालसा से रहित गुरु होते हैं। ऐसे गुरुओं का आश्रय लेने से भी आत्म कल्याण नहीं हो सकता है।

तीसरे प्रकार के गुरु पत्थर की नौका के समान हैं, जिस प्रकार पत्थर की नाव नदी में स्वयं डूबती है तथा उस पर सवार होने वाले डूब जाते हैं, उसी प्रकार रागी-द्वेषी-मानी-मायावी-लोभी-विषयी-परिग्रहवान् गुरुओं की सेवा-भक्ति करने से संसार में ही भ्रमण करना पड़ता है। गुरु का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि मोक्ष का रास्ता गुरु के द्वारा ही मिलता है, पर जो गुरु स्वयं मोक्ष का रास्ता नहीं जानता है, वह क्या दूसरों को रास्ता बतावेगा! अतएव सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का श्रद्धान करना तथा कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र कुधर्म का त्याग करना, सम्यग्दृष्टि होने का चिन्ह है। अमूढ़दृष्टि अंग का धारी सभी प्रकार की मूर्खताओं से रहित होकर सद्विवेक द्वारा अपनी प्रवृत्ति करता है, जिससे वह कल्याण मार्ग को प्राप्त कर लेता है।

राजा श्रेणिक—स्वामिन्! इस अंग के धारी की कथा कहने की कृपा करें।

गौतम गणधर—राजन्! इस भरतक्षेत्र में नाना प्रकार के सौन्दर्य से परिपूर्ण शौरसेन नाम का देश है। इस देश में अनेक दिव्य जिनालयों से परिपूर्ण उत्तर मथुरा नाम की नगरी है। इस नगरी में वरुण नाम का महामण्डलीक राजा राज्य करता था, इस राजा की पट्टरानी रेवती थी। यह जिनेश्वर की भक्ति में शची के समान, पतिव्रत में सीता के समान एवं विलास में रति के समान थी। सद्गुणों के आभरण से अलंकृत, जिनेन्द्र भक्ति में तल्लीन और नाना प्रकार के हाव-भाव में निपुण रेवती रानी सुख भोगती थी।

विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नामका एक नगर था । इसमें पृथ्वी में स्तुत्य, विद्याधरों के द्वारा पूज्य, जिनेन्द्र भगवान का परम भक्त, दयालु और सद्‌गुणी चन्द्राभ नामका राजा राज्य करता था । उसकी पट्टरानी सुमति महादेवी थी, इनके चन्द्रशेखर नामका पुत्र था । दोनों पुत्र के प्रेम में मग्न हो राज्य करते थे ।

एक दिन चन्द्राभ राजा विद्याधरों के साथ बैठा हुआ वराङ्गनाओं के नृत्य देखने में तल्लीन था । प्रेम के साथ अनेक विद्याधर आकाश मार्ग से संगीत सुनाने के लिये आ रहे थे, राजा अपने प्रभाव को देखकर प्रसन्न था । उसका ध्यान आकाश की ओर लगा हुआ था । मृगों के समूह के समान, हाथियों के समुदाय के समान, वन के समान, मयूरों के समुदाय के समान कोमल सच्चिकण बालों के समान, पर्वतों के समुदाय के समान, मनुष्य-गाय-बन्दर आदि के समूह के समान विभिन्न आकृति के बादलों से मुक्त आकाश दिखलाई पड़ा । नाना आकृति वाले विचित्र वर्ण के बादलों को देखकर चन्द्राभ नृप अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ और सोचने लगा कि जिस प्रकार यह मेघ पटल क्षण भर में अपने विभिन्न रूप और आकृतियों को दिखलाकर विलीन हो रहा है, वैसे ही सांसारिक सुख क्षणभर में नष्ट होने वाले हैं । मोह के कारण संसार के प्राणी इन विषय-जन्म सुखों में लीन रहते हैं, पर वास्तव में ये सुख अस्थिर और नीरस हैं ।

लक्ष्मी इन्द्र धनुष के समान क्षणिक, युवावस्था कोयले की राख के समान सारहीन, स्त्रियों का प्रेम जीर्ण शीर्ण बृक्ष के समान शक्तिहीन, विभूति ओस की बून्द के समान अस्थिर, कीर्त्ति बालू के ढेर के समान अस्थायी, धन और आयु तिनकों की अग्नि के समान क्षणध्वंसी, शोक मेघ पटल के समान क्षणभंगुर; सांसारिक वैभव और विलास नवीन बृक्ष के समान वायु के एक ही झोंके से गिरने वाले हैं । इस प्रकार विचार करते ही विद्याधर संसार से विरक्त हो गया । जब तक कर्म का उपशम नहीं होता, तभी तक स्पर्शनेन्द्रिय के अधीन होकर हाथी मनुष्यों के वश हो दुख सहता है, नेत्र इन्द्रिय के आधीन हो पतंग अपने जीवन का बलिदान करता है, मृग श्रवणेन्द्रिय के आधीन हो मनोहर गान सुनता हुआ शिकारी के बाण द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है । बृक्षों को छेदन करने की शक्ति से युक्त भ्रमर घ्राण इन्द्रिय के आधीन होकर कमल पंखुड़ी में बंध जाता है । रसनेन्द्रिय के वश होकर मीन अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है । जब एक एक इन्द्रिय के विषयों में लीन रहनेवाले जीवों की यह हालत है तब पांचों इन्द्रियों के आधीन रहने वाले मनुष्यों की क्या अवस्था होगी ? इन्द्रियों की आधीनता बुरी वस्तु है । मैंने अब तक इन्द्रियों के आधीन होकर महान् पाप का बंध किया है, मेरी आत्मा पाप पंक में लिप्त है । अब समय आगया है अतः आत्मकल्याण के लिये उत्साहित होना चाहिये ।

उसकी विचारधारा और आगे बढ़ी और सोचने लगा।

यह शरीर मल का ढ़ेर है, इसमें लार-मूत्र आदि अपवित्र पदार्थ भरे हैं। एक दिन यह मिट्टी में मिल जायगा। इसीको प्राप्त कर मनुष्य कितना घमण्ड करता है, दूसरों को छोटा, नीच, तुच्छ और हीन समझता है। अपने को संसार में बड़ा समझता है।

परिग्रह की लालसा इस जीव की बढ़ती चली जाती है। जिस प्रकार सिंह, रीछ, बाघ प्राणियों को मारकर खा जाते हैं, उसी प्रकार परिग्रह पिशाच मनुष्य की मनुष्यता को खा लेता है। इसके समान अन्य कोई पाप नहीं है। परिग्रह संचय के लिये व्यक्ति को नाना प्रकार के पाप अत्याचार करने पड़ते हैं। तृष्णा ऐसी पिशाचिनी है की परिग्रह बढ़ता जाता है, यह और वृद्धिगत होती जाती है। इसे शान्त होने का अवसर ही नहीं मिलता, अतः मनुष्य जीवन की सार्थकता विरक्ति में है। जो ऐसे सुन्दर शरीर को पाकर त्याग, तप नहीं करता, उसके समान संसार में अन्य कोई मूर्ख नहीं हो सकता। इस प्रकार विचार कर विद्याधर ने चन्द्रशेखर पुत्र को बुला कर कहा।

हे राजकुमार! लक्ष्मी के विलास में लगकर मैंने मोह के कारण अपने कल्याण का स्वयं घात किया है! अतः अब मैं मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करने वाले जिनेन्द्र भगवान के चरणों की शरण में जाता हूं। तुम इस विद्याधर राज्य को संभालो। राजा के इन वचनों को सुनकर राजकुमार कहने लगा—

हे पिताजी! आप नित्य और शाश्वत सुख को ग्रहण करें और मैं दुर्गति में ले जानेवाले राज्य का संचालन करूं, यह कैसे संभव है? विचार कर देखने से प्रतीत होता है कि संसार में जितने भी सुन्दर पदार्थ हैं, शक्ति के अनुसार पिता-पुत्र को देता है। दुर्गति में ले जानेवाले क्षणिक सुखदायी राज्य को आप मुझे कैसे दे रहे हैं, अतः हे पिताजी आपका प्रेम मेरे ऊपर है तो नरक गति को ले जानेवाले इस राज्य को कैसे दे रहे हैं। मुझे आपके इस कृत्य से आश्चर्य हो रहा है।

राजा—राजकुमार! पहले राज्य करो, संसार का सुख भोगो। विवाह करने के उपरान्त जब सन्तान हो जाय, तो तुम भी समर्थ सन्तान को राज्य देकर तपस्या करना। अभी तुम्हारा समय तप करने का नहीं है। राज्य परम्परा को कायम रखने के लिये आपका राजा होना आवश्यक है। मेरा यह समय तपस्या करने का है, तुम्हारा नहीं।

प्राचीन कालमें जैसे राजा नाभि ने अपने पुत्र ऋषभ को राज्य दिया, ऋषभने अपने पुत्र भरत को भरत ने अपने पुत्रों को राज्य दिया। इसी परिपाटी के अनुसार मैं भी तुम्हें राज्य देना चाहता हूं, परिपाटी को छोड़ना उचित नहीं। इस प्रकार राजा ने मधुर वचनों से राजकुमार को सन्तुष्ट किया और उसके मुख की ओर देख कर कहने लगा।

पुत्र ! सदाचार सदा पालना, गुणों में लीन रहना, धर्म का पालन करना, सदा भगवान् की भक्ति करना, अभिमान में आकर कभी किसी जीव को दुःख न देना, किसी का अपमान न करना, जैन मुनियों की भक्ति करना; नम्र होकर रहना, दुःखियों पर दया करना आदि बातों का पालन सदा करना चाहिये। कुमार तुम होनहार हो, तुमको संसार से निर्लिप्त रहते हुए पृथक् रहना चाहिये। जैसे कमल पत्र पर पड़े हुए जलविन्दु कमल से अलग रहते हैं, इसी प्रकार राज्य सचालन करते हुए भी उसमें लिप्त न होना, व्यक्ति की जागरूकता है। दुःख और पाप के रूप को समझ कर उससे इस प्रकार अलग रहना, जैसे मोती सीप का स्पर्श करता हुआ भी उससे भिन्न रहता है। धर्म, राज-नीति, जिन भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से ही राज्य स्थिर रहता है। जैसे नौकर को कार्य पूरा होजाने पर छोड़ देते हैं, उसी प्रकार सच्चरित्रता प्राप्त होने पर विचारशील दुश्चरित्रता को छोड़ देते हैं। इस तरह पुत्र को समझा कर और राज्य भार देकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये चन्द्राभ पाण्ड्यदेश की दक्षिण मथुरा में विमान द्वारा आया।

यह नगरी अत्यन्त ही सुन्दर और रमणीक थी। इसमें भव्य जिनालय थे, इनके दर्शन करता हुआ वह एक जिनालय में पहुँचा। यहां पर एक विद्याधर को राजा ने भगवान् के दर्शन के लिये आते हुए देखा। यह विद्याधर अत्यन्त सुन्दर और मनोज्ञ था। इसका प्रत्येक अंग दर्शनीय था, इसके साथ अनेक विलासी अंगनाएं थीं। इस मन्दिर में अनेक विद्याधर स्वर्ग के देवों के समान दर्शन-पूजन में संलग्न थे। इन विद्याधरों के विमान चीन महाचीन आदि देशों के वस्त्रों की ध्वजाओं से युक्त थे।

इस जिनालय में भगवान की वेदी हरित वर्ण की मणियों से युक्त मोतियों के द्वारा निर्मित थी। इसी समय मथुरा का राजा चित्रवाहन नगर के समस्त चैत्यालयों के दर्शन करता हुआ अपने द्वारा निर्मित भूत हित चैत्यालय में आया। मन्दिर में जाकर उसने भक्तिभाव सहित भगवान के दर्शन किये तथा स्तुति करता हुआ भक्ति में लीन हो गया।

पूजा करने के उपरान्त भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति करने लगा। पश्चात् पाण्ड्य नरेश ने मुनिराजों को

नमस्कार कर उनकी धर्म देशना सुनी, अनन्तर वह राजमन्त्रियों सहित अपने दरबार को ओर चला गया । विद्याधर उस पाण्ड्यनरेश चित्रवाहन को सम्यग्दृष्टि समझ कर विचारने लगा कि यह राजा धन्य है, जो सम्यग्दृष्टि भक्त, श्रद्धालु और धर्मात्मा है । यह कुल ऐश्वर्य और भगवान् की भक्ति में बहुत बढ़ा चढ़ा है । इसकी कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि गुण क्या अन्य किसी में आ सकते हैं ? इस प्रकार चन्द्राभ विद्याधर पाण्ड्यनरेश की महिमा से आश्चर्यान्वित हो विचारने लगा कि इस राजा के राज्य में कोई भी मिथ्यादृष्टि नहीं होगा । जब राजा सम्यग्दृष्टि है तो प्रजा अवश्य सम्यग्दृष्टि होगी; क्योंकि प्रसद्धि भी है कि 'यथा राजा तथा प्रजा ।'

इस प्रकार राजा चित्रवाहन के सम्बन्ध में ऊहा-पोह करने के उपरान्त चन्द्राभ ने दर्शन, पूजन किया । अनन्तर मुनिगुप्त मुनिराज के पास जाकर नमोऽस्तु किया । ये जिन शास्त्रों के ज्ञानी, सज्जनों के द्वारा वन्दनीय, रत्नत्रय से विभूषित एवं अध्यात्मरत योगी थे । हाथ जोड़कर इनसे चन्द्राभ ने मुनिदीक्षा की याचना की ।

मुनिराज—वत्स ! तपश्चर्या मामूली वस्तु नहीं है, संसार में बिना वैराग्य के न तप होता और न आत्मसाधन ही । शास्त्रज्ञान और सच्ची विरक्ति के बिना दीक्षा लेना निरर्थक है । जिस प्रकार अन्न, जल, अग्नि के होने पर पाकक्रिया की जानकार नारी ही भोजन बना सकती है, अन्य नहीं; इसी तरह शास्त्रज्ञान और विरक्ति के बिना दीक्षा कभी भी सफल नहीं हो सकती है । अतः योगीके लिये २८ मूलगुण और १३ प्रकारके चारित्रका पालन करना अत्यावश्यक है । इनमें से एक गुण कम होने पर मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है । पानी, अग्नि, चावल, दाल आदि के अनुपात का यथार्थ ज्ञान न होने पर जिस प्रकार रसोई ठोक नहीं बनती है, उसी प्रकार मुनिधर्म के गुणों में से किसी एक गुण के कम होने पर कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है । मूल गुणों के नष्ट होने से इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं । अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर जो उद्दण्ड हो जाता है, वह मुनि नहीं है । ऐसा उद्दण्ड मुनि केवल आत्मवंचना करता है ।

अभीष्ट वस्तु चाहे भक्ष्य हो या अभक्ष्य उसे अपने नियम में रख लेना तथा अनिच्छित वस्तुओं को भक्ष्य होने पर भी त्याग देना, मन-मानी चर्या करना, गण्डा-ताबीज देना, ऊट पटांग ढंग से अपनी बात को समझाना ही उद्दण्डता है । बच्चों की सी बातें करने वाले, अन्य मुनियों से ईर्ष्या करने वाले, दूसरों की निन्दा और स्तुति में भाग लेनेवाले, स्वेच्छाचार करने वाले व्यक्ति कभी भी निवृत्ति नहीं प्राप्त कर सकते हैं ।

कल्पित कथाएं कहना, आगम के अर्थ को बदलना, कषाय के आधीन होना मुनि का कार्य नहीं है। अपने संघ को छोड़कर पाखंडी मिथ्यादृष्टियों की स्तुति करने से कभी भी सद्‌गति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अपनी स्तुति करना, अन्य की निन्दा करना, अन्य के गुणों की प्रशंसा सुनकर जलना साधु का कार्य नहीं है। जो मुनि यह कहते हैं, कि मेरी पूजा करनी चाहिये, आप पर मेरा अधिकार है, आप मुझे छोड़ अन्यत्र नहीं जा सकते, आप को आहार मुझे देना होगा, आहार स्वादिष्ट होना चाहिये, वे निश्चय पतित हैं।

मुनि को सन्तोषी, सहिष्णु, आत्मज्ञ, जितेन्द्रिय, संयमी, गुणज्ञ, समदृष्टि, व्रती, तपस्वी, मन्दकषायी या क्षीणकषायी और मितभाषी होना चाहिये। जो अधिक बोलता है, वह व्यक्ति असत्य वचनों का प्रयोग करता है तथा भाषा समिति की अवहेलना भी करता है। जहां तक संभव हो मुनि को संघ में ही रहना चाहिये, ऐकाकी विहार करने से संयम के पालन करने में शिथिलता हो सकती है। परिषहों को सहन करने में सदा तत्पर रहने वाले, उग्रोग्रतर तपस्या करने वाले, धीर गम्भीर, निर्ग्रन्थ, वीतरागी मुनि ही वन्दनीय हो सकते हैं।

नारियल के पेड़ के समान वक्रपरिणामी, लोहे के समान कठोर परिणामी, कौवे के समान परपीड़क, कुत्ते के समान कलहप्रिय, राजपुत्र के समान निरकुंश, बच्चों के समान हठग्रही, किसी भी इच्छा की पूर्त्ति के लिये अनशन करनेवाला, पण्डों के समान दक्षिणा लेकर भोजन करनेवाला, सिंह के समान अन्य को कष्ट देनेवाला, सुअर के समान लोलुपी, दरिद्र के समान असाहसी, चींटी के समान घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत, व्याघ्र के समान इधर उधर स्वेच्छाचारपूर्वक भ्रमण करनेवाला मुनि को न होना चाहिये। मुनि को हंस के समान सारग्रहण करनेवाला, शरत् ऋतु के जल के समान निर्मल, सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान, मन्द वायु के समान गमन करनेवाला, समुद्र के समान अमर्यादित संसार मार्ग से भय रहित, शास्त्रों का पारगामी, सत्पुरुष के समान मात्सर्य से रहित, ईर्षा-निन्दा-स्तुति आदि से रहित, आत्मकल्याण में संलग्न, दूरदर्शी, प्रमाद रहित, सुमेरू पर्वत के समान क्षमाशील, शरीर धारण के लिये आवश्यक भोजन करनेवाला, संयम में उत्साह रखनेवाला, हित-मित-प्रिय वचन बोलनेवाला, धर्मज्ञ, सेनापति के समान जीवों का रक्षण करनेवाला, अवधि ज्ञानी के समान सभी के मन के भावों को जाननेवाला, महावत के अंकुश के समान मन रूपी हाथीको वशमें करनेवाला, किसी के ऊपर क्रोध न करनेवाला, सर्वदा स्वाध्याय में रत रहनेवाला, शिष्यों के साथ सहानुभूति रखनेवाला, पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन करनेवाला, पाप से दूर रहनेवाला, आगम विपरीत न चलनेवाला, अन्य

की निन्दा कर श्रावकों को अपनी ओर न झुकानेवाला एवं दृढ़ आचरण करनेवाला होना चाहिये।

बाह्य परिग्रह को छोड़ देने पर भी जिसके अन्तरंग में परिग्रह शेष है, वह मुनि अपनी संसार सन्तति को नष्ट नहीं कर सकता है। केवल अन्तरंग के छोड़ने का दम्भ करनेवाला, किन्तु बाह्य परिग्रह का धारी कभी मुनि नहीं हो सकता। अतः बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग करनेवाला ही मुनि संसार रूपी सन्तति को नष्ट कर सकता है। जैसे एक चक्र से गाड़ी नहीं चलती है, पानी के बिना भोजन नहीं बन सकता है, बेंट के बिना कुल्हाड़ी काम नहीं कर सकती है, उसी प्रकार केवल अन्तरंग या बहिरंग त्याग भी आत्मकल्याण का साधन नहीं हो सकता है।

शिष्य की योग्यता की बिना परीक्षा किये जो दीक्षा देता है तथा योग्यता के बिना ही जो दीक्षा देता है ऐसा गुरु पाप का भागी है, वह स्वयं पदच्युत होता है और दीक्षा देने वाले को भी कहीं का नहीं रहने देता है। गुण, ज्ञान और योग्यता की परीक्षा न कर दीक्षा देने या लेने से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता है। पहले के ऐश्वर्य, कुल, कीर्त्ति आदि का विचार कर दीक्षा देना सर्वथा अनुचित है। संसार के पदार्थों के साथ ममत्व बुद्धि रखनेवाला मुनि तथा किसी प्रलोभन वश अस्थिर विचार के शिष्य को दीक्षा देने वाला मुनि नरकगामी है। मुनि को राग द्वेष से रहित होकर सदा तपश्चरण में लीन रहना चाहिये और ऐसे ही शिष्यों को दीक्षा देनी चाहिये जो आत्मज्ञ हों, जिन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई हो तथा जिनके द्वारा धर्म का प्रचार और प्रसार होने की संभावना हो। मुनि परम्परा चलाने के लिये दीक्षा देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, किन्तु अच्छी तरह शिष्य की परीक्षा कर ही दीक्षा देनी चाहिये। धनी-मानी, रूपवान्, युवक और वाचाल व्यक्ति तभी दीक्षा का अधिकारी है, जब वह दीक्षा के रहस्य को समझ जाय तथा वास्तविक में आत्मकल्याण करने की लगन हो।

शिष्य की परीक्षा करने के लिये कुछ समय तक उसे अपने पास रखना चाहिये। जब संयम का अभ्यास और शास्त्रज्ञान इस सीमा पर पहुँच जाय कि दीक्षा का निर्वाह शिष्य अच्छी तरह से कर सके, तो उसे दीक्षा दे देनी चाहिये। मुनिमार्ग बड़ा ही कठिन मार्ग है, इसका पालन करना सबके लिये आसान नहीं है। बिना किसी प्रलोभन और महत्वाकांक्षा के इस मार्ग का अनुसरण करनेवाले ही सफल हो सकते हैं। जिनके हृदय में आत्मकल्याण की लगन लग जाती है, संसार के कार्यों और प्रलोभनों से जिन्हें विरक्ति हो जाती है फिर उन्हें दीक्षा लेने से कोई भी नहीं रोक सकता

है। वास्तविक रूप से विरक्ति होने पर व्यक्ती को एक क्षण भी गृहस्थी के जाल में रहना रुचिकर नहीं होता । श्मशान वैराग्य बहुत लोगों को होता है, थोड़े समय के बाद उनका वैराग्य समाप्त हो जाता है और वे पुनः विषयों में फंस जाते हैं । अतएव अपने को अच्छी तरह जांच कर दीक्षा लेनी चाहिये । यह बच्चों का खेल नहीं है, जो आज ली जाय और कल खिलौने के समान फोड़ कर छोड़ दी जाय ।

यदि मोक्ष मार्ग में लगा हुआ गृहस्थ मोह रहित हो तो वह मोही मुनि की अपेक्षा श्रेष्ठ है । अत: श्रावक के व्रत ग्रहण कर आत्म कल्याण करना आपके लिये अधिक हितकर है ।

चन्द्राभ—हे स्वामिन् ! अनादि काल से मैंने कितने ही राज्यों का सुख भोगा है, कितनी ही दिव्य अंगनाओं का आलिंगन किया है, किन्तु अब तो मेरा विचार इस जिनदीक्षा को ग्रहण करने का है । संसार की असारता का अनुभव मुझे हो गया है ।

मुनिगुप्त मुनिराज—वत्स ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं । तुम विद्याधर राजा होकर संसार से विरक्त हो गये हो । तुम्हारा वैराग्य सच्चा है, तुम को मैं दीक्षा देता हूं, किन्तु अभी तुम उत्कृष्ट श्रावक के ही व्र ग्रहण करो । हां, अभ्यास के लिये परिग्रह का त्याग कर दो, अपनी समस्त विद्याओं को, जिनके द्वारा तुम भौतिक कामनाओं को पूरा करते थे, छोड़ दो ।

चन्द्राभ ने समस्त विद्याओं का त्याग कर दिया, परन्तु एक गगनगामिनी विद्या अपने पास रखली ।

मुनिगुप्त मुनिराज—वत्स ! तुमने क्यों गगनगामिनी विद्या अपने पास रखली है, इसकी तुम्हें क्या आवश्यकता है ?

चन्द्राभ—प्रभो ! मेरी भावना अकृत्रिम जिन चैत्यालयों के दर्शन की है । मैं सुमेरु पर्वत के अकृत्रिम जिनालयों के दर्शन करना चाहता हूं, इसलिये इस विद्या का त्याग मैंने नहीं किया है ।

हंसकर मुनिराज—वत्स ! तुम क्षुल्लक दीक्षा ले लो और अपना आत्म कल्याण करो । उत्कृष्ट श्रावक-धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति जल्दी ही इस संसार से मुक्त हो जाता है । यह मार्ग मुनि धर्म पर आरुढ़ होने का सोपान है ।

चन्द्राभ--प्रभो ! अणुव्रतों का स्वरूप समझाइये । श्रावक कितने प्रकार के होते हैं और उत्कृष्ट श्रावक कौन होता है ।

मुनिराज--वत्स ! जो श्रद्धालु, ज्ञानवान् और क्रियावान् होता है, वही श्रावक कहलाता है । श्रावक तीन प्रकार के होते हैं--पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक । पाक्षिक श्रावक आठ मूल गुणों का धारण करता है । यह मद्य, मांस, मधु, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करता है । रात्रि भोजनका त्यागी होता है, जल छानकर पीता है और प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, पूजन करता है । जिनेन्द्र प्रभु के वचनों का अटूट श्रद्धान करता है, शक्ति के अनुसार दैनिक षट्कर्मों का पालन करता है । सप्तव्यसन का त्यागी होता है । धर्म प्रचार और प्रसार के लिये दान देता है, मन्दिर बनवाता है, प्रतिष्ठाएं कराता है तथा विशेष उत्सवों के द्वारा धर्म का प्रसार करता है ।

नैष्ठिक श्रावक निर्दोष रूप से अतिचार रहित मूल गुणों का पालन करता है, सम्यग्दर्शन को दृढ़ और निर्मल बनाता है । तथा अपने चरित्र का उत्तरोत्तर विकास करता चला जाता है । इसके तीन भेद हैं--जघन्य, मध्यम और उत्तम । प्रारम्भ की सात प्रतिमाओं के धारण करने वाले जघन्य, मध्य की तीन प्रतिमाओं का पालन करने वाले मध्यम और अन्त की ग्यारहवीं प्रतिमा को धारण करने वाले उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं ।

चन्द्राभ--स्वामिन् ! प्रतिमा किसे कहते हैं, और इनका स्वरूप क्या है ।

मुनिराज--वत्स ! श्रावक के ग्यारह दर्जे होते हैं, जो प्रतिमा कहलाते हैं । सदाचार के पालन करने के लिये कुछ कक्षाएं बंटी हैं, ये ही प्रतिमा कहलाती हैं । अभिप्राय यह है कि सदाचार के पालन के लिये ग्यारह दर्जे हैं, जिनका पालन क्रमशः गृहस्थ करता है । जैसे विद्यार्थी कक्षा क्रम से अपने ज्ञान का विकास करता है, वैसे ही श्रावक सदाचार के कक्षा क्रमानुसार अपने चरित्र का विकास करता है । विद्यार्थी के लिये आगे वाली कक्षा में जाने पर जैसे पीछे वाली कक्षा का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है, वैसे ही चरित्र का विकास करने वाले को भी आगे में सदाचार की कक्षा में जाने पर पीछे वाली सदाचार की कक्षा का चारित्र पालना आवश्यक है ।

दर्शन प्रतिमा--संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर पंच परमेष्ठी के चरणों में श्रद्धापूर्वक भक्ति करना दर्शन प्रतिमा है । मूल गुणों के अतिचारों का त्याग करना, सामायिक, पूजन स्तवन करना तथा व्रत और तप का अभ्यास करना, इस प्रतिमावाले के लिये आवश्यक है । आहार–विहार की शुद्धि, रहन–सहन की शुद्धि और कषायों को

मन्द करना तथा आत्म स्वरूप का चिन्तन करना भी इसके लिये विधान है । इस प्रतिमा का धारी पर्वत के समान गम्भीर, समुद्र के जल के समान शान्त, और कमल के पत्ते के समान संसार से निर्लिप्त रहता है । जैसे लोभी व्यक्ति धन से, भ्रमर पुष्प से, फूल गन्ध से, शिशु मां से सदा चिपटा रहता है, वैसे ही इस प्रतिमा वाला भगवान् जिनेन्द्र के गुणों में सदा अनुरक्त रहता है ।

जिस प्रकार सांप को देखते ही मेढ़क, बिल्ली को देखते ही चूहा, डाकू को देखते ही पथिक, गरुड़ को देखते ही सांप, पुलिस को देखते ही चोर, कुत्ते को देखते ही बिल्ली, और बाघ को देखते ही हिरण भाग जाते हैं, उसी प्रकार दर्शन प्रतिमाधारी संसार, शरीर और भोगों से मोह छोड़ देता है ।

जैसे राक्षस को देखकर मनुष्य, सिंह को देखकर हाथी, अपरिचित को देखकर बच्चा, दुश्चरित्र को देखकर धर्मात्मा और व्यसनी को देखकर जितेन्द्रिय अलग हो जाते हैं, वैसे दर्शन प्रतिमावाला सप्तव्यसनों से बिल्कुल दूर हो जाता है ।

इस प्रतिमा वाला अष्टांग सति सम्यग्दर्शन का पालन करता है । ज्ञान, पूजा, कुल जाति, बल ऋद्धि, तप और शरीर का अभिमान नहीं करता तथा षट् अनायतन—मिथ्या देव, मिथ्या देवालय, मिथ्या तप, मिथ्या तपस्वी, मिथ्या व्रत एवं मिथ्या ज्ञानियों की सेवा से पृथक् रहता है । निर्भय होकर संसार में विचरण करता है, किसी भी प्रकार का प्रलोभन उसे पथ-भ्रष्ट नहीं कर पाता है । आत्मकल्याण की चिन्ता दिन रात उसे रहती है । यद्यपि गृहस्थी के समस्त कर्मों को करता है, किन्तु लिप्त किसी भी कार्य में नहीं होता । हानि—लाभ में समता बुद्धि रखता है, गृहस्थी का संचालन करता हुआ भी अन्याय मार्ग का अनुसरण नहीं करता । किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाता है, यद्यपि व्यापार या आजीविका के लिये कोई कार्य करता है, परन्तु अहिंसा धर्म को कभी नहीं भूलता । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग करता है । दर्शन प्रतिमा वाला अपने कषाय और विकारों को जीतने का पूरा प्रयत्न करता है ।

साधर्मी भाई से वात्सल्य भाव रखता है । समस्त प्राणियों के साथ मित्रता का व्यवहार करता है । गुणी व्यक्तियों पर श्रद्धा रखता है, तथा गुणियों को देख कर प्रसन्न होता, दुःखी रोगी जीवों को देखकर दया भाव करता है और शक्ति भर उनके दुःख को दूर करने का यत्न करता है । जो व्यक्ति उसके विचारों के प्रतिकूल चलते हैं, उनके साथ मध्यस्थता–तटस्थता रखता है । जिनेन्द्र भगवान के वचनों में किसी भी प्रकार की शंका नहीं करता है, संसार के

भोगों की या धन वैभव की आकांक्षा नहीं करता, निन्दा या घृणा किसी से नहीं करता, पापी व्यक्ति से भी वह वात्सल्य भाव रखता है, घृणा और पाप से डरता है, पापी से नहीं। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरु दयामयी धर्म में उसकी अटूट श्रद्धा रहती है। करूणा और दया उसके जीवन में वस जाती है। आत्मा के उपर श्रद्धा करने लगता है तथा आत्मिक गुणों को प्राप्त करने के लिये सदा तत्पर रहता है।

दर्शन प्रतिमा धारी यद्यपि व्रतों का धारी नहीं होता फिर भी शक्ति के अनुसार व्रत, उपवास करता है। शल्य का त्यागी, सदाचारी- और वासना कषायों को जीतने वाला तथा अपनी आत्मा को निर्मल करने के लिये तीर्थयात्रा करने वाला होता है। भगवान् के जन्मस्थान, तपस्थान और निर्वाणस्थान के पवित्र रजकणों में जाकर अपनी आत्मा की शुद्धि करता है। एकान्त स्थान में वैठकर संसार की अनित्यता का चिन्तन कर वैराग्य को उद्दीप्त करता है।

व्रत प्रतिमा—पञ्चाणुव्रत और सात शीलों का निरतिचार पालन करना व्रत प्रतिमा है। प्रमाद से संकल्प पूर्वक होने वाली त्रस हिंसा का त्याग करना अहिंसाणु व्रत है। इस व्रत का पालन करने वाला जान-बूझ कर किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाता है। इस व्रत के पालन करने के लिये पांच भावनाओं का पालन करना चाहिये।

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।

अर्थात् जीवन में भले प्रकार से वचन गुप्ति. मनोगुप्ति ईर्या समिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपान भोजन—अच्छी तरह देखकर खाने पीने की वस्तुओं को ग्रहण करना, इन भावनाओं का पालन करना चाहिये। इस व्रत के अतिचारों का भी त्याग करना आवश्यक है—

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।

अर्थात् —बन्ध—किसी प्राणी को बांधकर या रोककर रखना; वध—दण्डा, चाबुक या वेत आदि से प्रहार करना; छेद—नाक, कान आदि अवयवों का छेदन करना; अतिभारारोपण—शक्ति और मर्यादा का विचार न कर अधिक वोझ लादना एवं अन्नपाननिरोध—भोजन आदि में रुकावट डालना या समय पर न देना ये पांच अहिंसाणुव्रत के अतिचार हैं।

वस्तु के अस्तित्व का लोप करना, जैसी वस्तु है वैसी न बतलाना, बात चीत करते समय अशिष्ट वचनों का प्रयोग असत्य बोलना है। इस असत्य बोलने को छोड़ना सत्य बचन है। असत्य भाषण करने से हिंसा का पाप लगता है। निन्दा करना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना, अप्रिय बचन बोलना, प्राणियों के वध करने वाले वचन बोलना असत्य में शामिल है। सत्यव्रत का पालन करने के लिये निम्न पांच भावनाओं को पालना चाहिये—

क्रोधलोभीभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।

अर्थात्—क्रोध, लोभ, भय और हास्य का त्याग करना तथा निर्दोष वचन बोलना, सत्याणुव्रत की भावनाएं है। इस व्रत के पालने के लिये भी पांच अतिचारों का त्याग करना चाहिये—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः।

अर्थात्—मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्र भेद, इन पांच अतिचारों का त्याग करना चहिये।

किसी की गिरी हुई, पड़ी हुई, भूली हुई अर्थात् बिना दी हुई वस्तु को ग्रहन न करना अचौर्याणुव्रत है। इस व्रत का पालन करने के लिये निम्न भावनाओं का पालन आवश्यक है—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभक्ष्यशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पञ्च।

अर्थात्—पर्वत की गुफा, वृक्षकोटर आदि में रहना; दूसरे के द्वारा त्याग किये स्थान में रहना, अपने स्थान पर दूसरे को आने से न रोकना, भिक्षा नियमों का ध्यान रखकर भिक्षा ग्रहण करना और साधर्मी से विवाद न करना, अचौर्याणुव्रत की भावना है।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः।

अर्थात्—चोरी के लिये प्रेरित करना, चोरी की वस्तु को खरीदना, राज्य में विप्लव होने पर हीनाधिक मान से वस्तुओं का आदान-प्रदान करना, राज्य के नियमों का उलंघन कर व्यापार आदि करना एवं असली वस्तु के बदले में नकली वस्तु देना, अचौर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

"ब्रह्मणि आत्मनि चरतीति ब्रह्मचर्यः" अर्थात् आत्मा के स्वरूप में रमण करना ब्रह्मचर्य है। विषय-वासना

आत्मा में विकार उत्पन्न करने वाली है तथा इसके त्याग से आत्मा अपने रूप में रमण करती हैं, यही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य व्रत का धारी अपनी स्पर्शनेन्द्रिय को आधीन करने के साथ रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय को अपने आधीन करता है। इन्द्रियों के विषयों में उच्छृंखल रूप से प्रवृत्ति करने पर आत्मा में अब्रह्म दोष आता है।

ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने के लिये निम्न पांच भावनाओं का पालन आवश्यक है।

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च।

अर्थात्—स्त्रीरागकथा श्रवणत्याग—जिन कथाओं के सुनने या पढ़ने में स्त्री विषयक अनुराग जाग्रत हो ऐसी कथाओं का त्याग, स्त्री मनोहरांग निरीक्षण—स्त्रियों के मुख, आंख, कुच आदि सुन्दर अंगों को देखने का त्याग, पूर्वरतानुस्मरण—पूर्व के भोगे हुए भोगों के स्मरण का त्याग, वृष्येष्टरस त्याग—गरिष्ठ और प्रिय भोजन का त्याग और स्वशरीर संस्कार त्याग शरीर के श्रृंगार का त्याग इन पांच भावनाओं का पालन करना चाहिये। इस व्रत के अतिचार—

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतागमनाङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः।

अर्थात्—पर विवाहकरण, इत्वरिका–परि–गृहीता गमन, इत्वरिका अपरिगृहीता-गमन, अनंग क्रीड़ा, और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

संसार के पदार्थों में ममत्वबुद्धि रखना परिग्रह है, इस परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह है। इस प्रकार इन पांचों अणुव्रतों का धारण करना व्रत प्रतिमा वाले के लिये आवश्यक है।

दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथिसंविभाग व्रत इन सात शीलों का भी पालन करना चाहिये। द्वितीय प्रतिमाधारी निरतिचाररूप से शील और व्रतों का पालन करता है।

द्वितीय प्रतिमावाला रक्त, मांस, पीव, चलितरस, त्याज्यवस्तु, मृतकीड़ा और हड्डी इन वस्तुओं के दर्शनमात्र से भोजन का त्याग कर देता है।

सामायिक प्रतिमा—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में कम से कम दो घड़ी और अधिक से अधिक छः घड़ी एकान्त में बैठ कर आत्मचिन्तन करना चाहिये। इस प्रतिमाधारी को निम्न ३२ दोषों को टाल कर सामायिक करना चाहिये—

(१)उन्मत्तचेष्टा (२) अंग संचालन (३) जिह्वा संचालन (४) डरकर सामायिक करना (५) गुरु का तिरस्कार कर सामायिक करना (६) गुरु के प्रतिकूल होकर सामायिक करना (७) सामायिक करते हुए संकेत करना (८) मस्तक ऊपर को उठाना (९) कांपना (१०) संघ विरोधी होकर सामायिक करना (१) गुरु के सामने अभिमान में आकर सामायिक करना (१२) आवाज करना (१३) गुनगुनाना (१४) घोड़े के पैर के सना पांव टेढ़ा करना (१५) लता के समान चंचल होना (१६) ऊपर देखना (१७) नीचे देखना (१८) अपने शरीर को देखना (१९) कौवे के समान तिरछा देखना (२०) घोड़े के मुख में लगी लगाम के समान मुंह हिलाना (२१) शरीर का स्पर्श करना (२२) अंगुली चटकाना (२३) हिलना (२४) पागल की तरह चारों दिशाओं को देखना (२५) सामायिक में इधर–उधर देखा (२६) दांत कटकटाना (२७) मस्तक पर हाथ फेरना (२८) शरीर खुजलाना (२९) भोगों का चिन्तन करना (३०) आंखों से संकेत करना (३१) जबरदस्ती सामायिक करना (३२) प्रमादी होना ।

प्रोषधोपवास—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को निरतिचार सोलह प्रहर का उपवास करना प्रोषधोपवास प्रतिमा है । प्रोषध एकाशन करने को कहते हैं, दो एकाशन सहित एक उपवास करना प्रोपधोपवास है ।

सचित्तत्याग प्रतिमा—कच्चे फल–फूल, वनस्पति, आदि सचित्त पदार्थों का त्याग करना सचित्तत्याग प्रतिमा है ।

दिवामैथुन त्याग या रत्रिभोजन त्याग प्रतिमा–दिन में मैथुन करने का त्याग करना तथा रात को चारों प्रकार के भोजन करने का त्याग करना दिवामैथुन त्याग प्रतिमा है ।

ब्रह्मचर्य—मन, वचन और काय से स्त्री विषयक अभिलापा का त्याग करना तथा संसार की समस्त स्त्रियों में मातृत्व भावना का जाग्रत हो जाना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है । शरीर शृंगार, गरिष्ठ भोजन आदि का भी त्याग इस प्रतिमाधारी को करना पड़ता है ।

आरम्भ त्याग—घर–गृहस्थी के कार्यों का त्याग करना आरम्भ त्याग प्रतिमा है । इस प्रतिमाधारी हिंसा के कारण नौकरी, खेती, वाणिज्य आदि आरम्भ क्रियाओं से विरक्त हो जाता है ।

परिग्रह त्याग प्रतिमा—धन, धान्य आदि दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह तथा शरीर आदि पर पदार्थों से आत्मबुद्धि रहित होकर अखंड, अविनाशी आत्म स्वरूप में स्थिर होना परिग्रह त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का पालन करनेवाला घर–गृहस्थी का भार अपने पुत्र आदि पर छोड़कर दो–चार आवश्यक वस्त्र आदि लेकर जिनालय या घर के किसी एकान्त स्थान में रहता है। भोजन के लिये घर का व्यक्ति या अन्य कोई बुलाता है तो जाकर भोजन कर लेता है।

अनुमति त्याग प्रतिमा—चैत्यालय या वन में रहते हुए घर के किसी भी लौकिक कार्य में सलाह नहीं देना अनुमति त्याग प्रतिमा हैं।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा–घर छोड़कर वन में जाकर गुरुओं के पास दीक्षा ग्रहण करना तथा तपश्चरण करते हुए केवल लंगोटी या खंड वस्त्र धारण कर भिक्षावृत्ति से भोजन करना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है। इसके दो भेद हैं– क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक लंगोटी और चादर दोनों धारण करते हैं। परन्तु ऐलक केवल लंगोटी ही धारण करते हैं।

इस प्रकार ग्यारह प्रतिमाओं के कारण श्रावक ग्यारह प्रकार के भी होते हैं।

चन्द्राभ विद्याधर ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर गुरु के पास उत्कृष्ट-श्रावक-व्रतों का अभ्यास करने लगा।

एक दिन उसकी इच्छा उत्तर मथुरा के जिनमन्दिरों के दर्शन की हुई। उसने मन में विचार किया कि गुरु वचनों का उलंघन कर अपने मन के अनुसार चलनेवाले को सुख कहां? इस प्रकार निश्चय कर मुनिगुप्त महाराज के पास जाकर नमोऽस्तु कर बैठ गया और अवसर पाकर अपनी इच्छा प्रकट की।

गुरु—वत्स! गुणों की वृद्धि करना, वैराग्य बढ़ाना, परिणामों को शान्त रखना, इन्द्रियों तथा मन को वश करना, चारित्र पालन में सजग रहना, यही हमारा तुम्हारे लिये उपदेश है। यात्रा कर जल्दी वापस आना, निर्गुण, चरित्रहीन के पास कभी मत जाना, अन्यथा गुण दूषित हो जायंगे। अपने गुणों में दोष लगाकर प्रमादी बनना बड़ी भारी गलती है। वरुण महाराज की रानी रेवती को आशीर्वाद कहना तथा उड्डर भट्टारक को प्रतिवंदना कहना।

ब्रह्मचारी हंसकर—गुरुदेव! आपने अन्य श्रावकों को कुछ भी नहीं कहा, तथा अभव्यसेन आदि १०० मुनिराजों के लिये कुछ भी नहीं कहा, क्या बात है? क्या आपका इन दोनों से कोई सम्बन्ध है?

मुनिगुप्त भट्टारक–वत्स ! तुम अपनी शंकाओं का सामाधान स्वयं प्राप्त करोगे। नीम के पेड़ पर कितना ही दूध डाला जाय फल कड़ुवे ही होंगे, कभी भी मीठे नहीं हो सकते। अज्ञानी को अच्छा उपदेश देने पर भी कुफल ही निकलता है।

ब्रह्मचारी रास्ते में विचारने लगा––गुरुदेव ने कहा है कि तुम्हें अपनी शंकाओं का उत्तर स्वयं मिल जायगा अतः मैं रेवती रानी और उंडूर महाराज की परीक्षा लूंगा, गुरुदेव का प्रेम इन दोनों पर क्यों ज्यादा है ? गुरुदेव अष्टांग निमित्तज्ञानी हैं, निमित्तज्ञान के बल से समस्त बातों को जानते हैं। इनके वचनों में अवश्य कोई रहस्य है। इस प्रकार सोच–विचार करता हुआ ब्रह्मचारी विमान द्वारा अभव्यसेन महाराज के पास आया।

अभव्यसेन मुनि––वत्स ! कहां से आये हो ?

ब्रह्मचारी––महाराज ! आपके तप की ख्याति सुनकर मैं पाण्ड्य देश की दक्षिण मथुरा नगरी से आपके दर्शन करने आया हूं।

ब्रह्मचारी के इन वचनों को सुन कर अभव्यसेन मुनि बहुत प्रसन्न हुए।

ब्रह्मचारी—अभव्यसेन आचार्य के सम्यक्त्व की परीक्षा करने के लिये दो चार आवश्यक बातों के बाद कहने लगा–हे महाराज आपने संसार के भोग विलासों को छोड़ कर यह भेष क्यों धारण किया है ? स्वर्ग-मोक्ष किसने देखा है ? कौन इसे प्राप्त कर सकता है ? आप व्यर्थ क्यों कष्ट उठाते हैं ? श्रावकों को भी कष्ट देते हैं ? प्रत्यक्ष को छोड़ परोक्ष की आशा से आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। जब तक जीवन है, आनन्द से रहना चाहिये, व्यर्थ कष्ट सहने से क्या लाभ ? यह तो निबुद्धियों का काम है ? धर्म-धर्म कहकर जो अपने शरीर को कष्ट देते हैं।

अभव्सेन आचार्य—लोग कहते हैं कि मोक्ष में सुख है, आगम में भी बताया है। मैंने उन्हीं लोगों के कहने से इस कष्ट को स्वीकार किया है, क्या जाने वास्तविक बात क्या है ? प्रत्यक्ष में तो आनन्द से खाना पीना, मौज उड़ाना ही सब कुछ है ? मरने के बाद किसने देखा है कि मोक्ष मिलता है ? शरीर जल कर यहीं राख हो जाता है, अतएव भई, में भी गतानुगतिक हूं। मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता है।

ब्रह्मचारी ने विद्याबल से मायामयी त्रसजीवों को उत्पन्न किया, उनको पैरों से कुचलने लगा तथा बिना प्रयो-

जन के प्राणियों को कष्ट देने लगा। अभव्यसेनाचार्य ने उसके इस कृत्य में बाधा नहीं दी तथा उसे जीव मारते हुए न रोका। वह हंसते हुए अपने स्थान पर बैठे रहे।

अभव्यसेन जब शौच करने गये तो उन्होंने उनके कमण्डलु के प्रासुक जल को सुखा दिया। जब जल की आवश्यकता हुई तो वे बहुत चिन्तित हुए। ब्रह्मचारी ने विद्याबल के प्रभाव से वहां हरी घास भी लगा दी और कहने लगा कि पृथ्वी जल अग्नि, वायु एवं वनस्पति में जीव है, यह किसने देखा है। अतः तालाब का पानी काम में लाना चाहिये। आचार्य ने तालाब का पानी लेकर शुद्धि की।

पुनः ब्रह्मचारी—हे महाराज अनेक प्रकार के गाजे-बाजे के साथ संगीत पूर्वक घी, दधि आदि से वीतरागी प्रभु का भव्य जीव अभिषेक करते हैं, इसमें पुण्य क्या है?

अभव्यसेन—अरे भाई! सुना तो हमने भी है कि पुण्य होता है, पर पता नहीं ठीक कहां तक है!

ब्रह्मचारी—जिस प्रकार कमल जल में रहते हुए भी जल से भिन्न रहता है, सोना माणिक्य के साथ मिलाये जाने पर भी भिन्न रहता हैं, कर्णफूल कान में पहनने पर भी कान से अलग रहता है, आकाश पृथ्वी से भिन्न है, नक्षत्र मेरु की प्रदक्षिणा करने पर भी उससे भिन्न हैं, इसी प्रकार यह अभव्यसेन भी आप्त, आगम के श्रद्धान से रहित है। यह मिथ्यात्वी है, जिस प्रकार नीम के बीज में कभी भी माधुर्य नहीं आ सकता है, सूर्य की किरणें कभी भी शीत नहीं हो सकती हैं, उसी प्रकार अभव्य में कभी भी सम्यक्त्व आ नहीं सकता है।

जैसे पीतल की मूर्ति काली ही रहती है, उसी प्रकार अभव्य जिनदीक्षा लेकर भी पापी ही रहता है, वह अपना आत्म कल्याण नहीं कर सकता है। "संस्कार शतेनापि न गुण्डा कुंकुमायते" अर्थात् सैकड़ों प्रकार से कारीगरी करने पर भी पत्थर जैसे कुंकुम नहीं बन सकता है, उसी प्रकार अभव्य शास्त्राभ्यास, दीक्षा आदि के द्वारा भी भव्य नहीं बन सकता है। यह अभव्यसेन शास्त्राभ्यासी है, बड़ा भारी विद्वान् माना जाता है, परन्तु पूरा मिथ्यात्वी है। इसका निर्वाण नहीं हो सकता है, यह अविवेकी है।

इसके अनन्तर वह ब्रह्मचारी उंडूर भट्टारक के पास गया। उंडूर भट्टारक भिक्षा से लौट रहे थे। ब्रह्मचारी ने विद्याबल से खटमल, चींटी तैयार की और मारना आरम्भ किया। उंडूर भट्टारक इस कृत्य को देखकर विचारने

लगे—जिस प्रकार बच्चा अज्ञानता के कारण मल को हाथ में लेकर शरीर में लगा लेता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि
जीव अशुभकर्म के उदय से पाप करता है। भट्टारक उस निर्दय व्यक्ति के पास गये और सभ्यतापूर्वक मधुर वचन कहने
लगे——दया बिना सद्धर्म, विश्वास बिना स्त्री, आत्मा बिना शरीर और शूरता बिना युद्ध शोभा नहीं देते हैं। यह जैनधर्म
जीव मात्र को कल्याण करनेवाला है, पापसमुदाय को नष्ट करने वाला है, संसार के दुःखों को जलाने वाला है एवं सुव्रत
रूपी निधि से पूर्ण है। इसके समान संसार में अन्य कोई वस्तु सुख दायक नहीं है।

आप जिनेश्वर का वीररूप धारण कर ऐसा निन्द-कृत्य क्यों कर रहे हैं ? जिनागम का अध्ययन कर अपना
वास्तविक कल्याण क्यों नहीं करते ? परमागम का अध्ययन कर सदा सद्धर्म के स्वरूप को जानने का प्रयत्न होना चाहिये
दया सब धर्मों का मूल है, निर्दयता के समान अन्य पाप नहीं है। जो व्यक्ति निर्दय होकर अन्य जीवों के प्राण लेता है,
वास्तव में वह महान् पापी है। उसका कल्याण कभी नहीं हो पाता है, ब्रह्मचारी——महाराज ! आप क्या कह रहे हैं ?
शरीर को तपश्चर्या में सुखाना, लौकिक सुखों को छोड़ना और स्त्री–पुत्र आदि छोड़कर पारलौकिक सुखों की कामना
करना मूर्खता नहीं तो क्या हैं ? जिन छोटे जीवों को मैं मार रहा हूं, उनके जीवित रहने से लाभ क्या ? इनको तो
मरना ही है। मैं इनको मार कर दुःख से मुक्त कर रहा हूं ?

उंडूर भट्टारक —जो वस्तुएं प्रत्यक्ष नहीं है, उनका भी अस्तित्व युक्ति से सिद्ध होता है। जैसे आंख अपने को
नहीं देख सकती है, फिर भी उसका अस्तित्व स्वीकार करना पडता हैं, उसी प्रकार परोक्ष बातों की भी सत्ता स्वीकार
करनी पड़ेगी। अपनी मां से व्यक्ति जन्म लेता है, किन्तु जन्म लेते समय इस बात को वह नहीं जानता फिर भी यह
विश्वास करना पड़ता है कि यह हमारी मां है, उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के वचनों का विश्वास करना पड़ेगा आगम
में जो पुण्य–पाप की व्याख्या की गई है, वह ठीक है। निन्दनीय कार्य पाप-कृत्य माने जाते हैं, तथा जिन कार्यों से अपनी
या पर की भलाई होती है वे पुण्य कृत्यों में शामिल हैं। त्यागी व्यक्ति सुखों का त्याग थोड़े ही करता है, बल्कि सुख
प्राप्ति के लिये वह प्रयत्न करता है। स्त्री-पुत्र, धन-वैभव के मूल हैं, यह सब ऐन्द्रिक क्षणिक सुख है, इसका परिणाम
दुःख ही है। अतः जिस सुख का परिणाम दुःख हो, उसे कौन बुद्धिमान धारण करेगा। वास्तविक बात यह है कि शाश्-
वत सुख की उपलब्धि के लिये त्याग किया जाता है, आत्मा के वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि भी त्याग से ही होती
है। वासना और कषाय आत्मा को विकृत करते हैं, इनसे दुःख ही मिलता है, अतः त्याग द्वारा सच्चा सुख प्राप्त किया

जाता है।

जो तुमने अज्ञानता पूर्वक यह कहा है कि जिन छोटे जीवों को मार रहा हूं, उनके जीवित रहने से लाभ क्या ? यह भी तुम्हारा कथत विवेक शून्य है। संसार में सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्रिय हैं। जैसे हमें मारने से कष्ट होता है, वैसे ही इन प्राणियों को भी कष्ट होरहा है। हमारे समान सभी जीवों को जीवित रहने का अधिकार है अपने को विवेकी समझनेवाले प्राणी का यह कर्त्तव्य है कि वह सुख-शान्ति से संसार के अन्य जीवों को जीवित रहने दे। जीना अधिकार है और अन्य को जीवित रहने देना कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति कर्त्तव्य को नहीं समझता है वही इस प्रकार की अनर्गल बातें कहेगा, कोई किसी को मारकर दुःख से नहीं छुड़ा सकता। दुःख से तभी छुड़ाया जा सकता है, जब उसे सद्धर्म का उपदेश दिया जाय और उस धर्म का वह प्राणी अनुसरण कर अपना कर्त्तव्य पूरा करे। अतएव भाई ! आपको इस प्रकार की क्रूरता का त्याग करना चाहिये। अहिंसा के समान संसार में सुख और शान्ति देनेवाला अन्य कोई सिद्धान्त नहीं है।

ब्रह्मचारी—महाराज ! आपकी बातें युक्ति संगत तो अवश्य प्रतीत होती हैं, परन्तु यह बतलाइये कि जिस व्यक्ति ने तप द्वारा मरकर स्वर्ग प्राप्त कर लिया है, क्या उसने कभी आकर आपसे कहा है ? जिससे आप इस प्रकार की बातों का विश्वास करते हैं।

उंडूर भट्टारक—अरे भाई ! मैंने पहले ही कहा था कि आत्मा का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है। मरने पर शरीर यहीं रह जाता है और आत्मा अपने शुभाशुभ फलों के अनुसार अन्य योनि में चली जाती है। यदि कोई व्यक्ति जीवन में अच्छे कार्य करता है तो उसका शुभ बन्ध अवश्य होता है तथा वह अपने कर्मानुसार अच्छी गति को पाता है। भगवान् जिनेन्द्र सर्वज्ञ थे, उनके वचन कभी असत्य नहीं हो सकते हैं, अतः जिनागम की सभी बातें सत्य हैं, उनका श्रद्धान करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अनेकान्त सिद्धान्त के द्वारा आप स्वयं षड्द्रव्य पञ्चास्तिकाय, सप्ततत्त्व, षट्काय, छःलेश्या, आदि के सत्यासत्य को जान सकते हैं। इन द्रव्य, तत्त्व और लेश्याओं के स्वरूप में तनिक भी अन्तर नहीं मिलेगा। सर्वज्ञ प्रभु संसार के त्रिकालवर्ती पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से जानते थे। वीतरागी होने के कारण उनके वचनों में किसी प्रकार का दोष नहीं है। जैसे सूर्य अपनी उष्णता नहीं छोड़ता, चन्द्रमा शीतलता नहीं छोड़ता, कमल जल को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार जिनागम में वर्णित तत्त्व कभी झूठ नहीं हो सकते। सम्यग्दृष्टि जीव का सभी

पदार्थों का यथार्थ अधुभव है, वह जिनेन्द्र प्रभु के वचनों को बिल्कुल सत्य और निर्दोष समझता है।

मुनिराज के इस उपदेश को सुनकर वह ब्रह्मचारी बहुत प्रसन्न हुआ। अपना वास्तविक भेद उनके सामने प्रकट कर क्षमा याचना की भक्ति पूर्वक उंडूर भट्टारक की परिचर्या की तथा मुनिगुप्त भट्टारक की प्रतिवंदना कह सुनाई।

अगले दिन ब्रह्मचारी रेवती रानी की परीक्षा के लिये गया। उसने पूर्व दिशा में जाकर विद्या के बल से अपना ब्रह्मा का रूप बनाया। श्रेष्ठ कमण्डलु हाथ में ले लिया, चांदी का छत्र सिर पर धारण किया, यज्ञोपवीत कन्धे में धारण किया, हंस पर सवार हो चतुर्मुखों से सहित साक्षात् ब्रह्मा बन कर आया। श्रावक ब्रह्मा के आने का समाचार प्राप्त कर एकत्रित होने लगे। नाम श्रावक, चर्चा श्रावक, यथार्थ श्रावक, कुमति श्रावक, कार्यार्थी श्रावक, नवीन श्रावक पूजा सामग्री लेकर तमाशा के बहाना वहां आये। जिस समय राजा वरुण की सभा में ब्रह्मा के आने का समाचार प्राप्त हुआ, उस समय राजा रेवती रानी सहित चार हजार मुकुट बद्ध राजाओं की सभा में विराजमान था। राजाने सभा में कहा—हम धन्य हैं, हमारे राज्य में कमलासन सहित साक्षात् ब्रह्मा अनेक देवों सहित पधारे हैं। अतः उनके दर्शन कर हमें कृतार्थ होना चाहिये।

रानी महाराज ! आप कैसी बातें कर रहे हैं। यह दर्शन करने के योग्य नहीं है।

राजा—प्रिये ! क्या परमेश्वर के दर्शन भी नहीं करने चाहिये। मैं तो अवश्य दर्शन करने जाऊंगा, दर्शन से अवश्य कृतकृत्य हो जाऊंगा।

रानी हंसकर —महाराज ! वह ब्रह्मा नहीं है, कोई मायाचारी व्यन्तर या विद्याधर कपट वेष धारण कर ठगने के लिये आया होगा। हमारे आगम में बताया गया है कि इस अवसर्पिणी काल में एक ही आदि ब्रह्म नाम का तीर्थंकर हुआ है, जो मोक्ष भी प्राप्त कर चुका है। अतः यह कोई मायावी ब्रह्मा है, वास्तविक ब्रह्मा नहीं। आप चाहे भले ही दर्शन करने चले जांय। मैं तो इस झूठे, पाखण्डी के दर्शन करने नहीं जाऊंगी।

नागारिक बिना बिचार किये आये और सबने ब्रह्मा की पूजा की। ब्रह्मचारी ने देखा कि रानी नहीं आयी तो सोचने लगा कि आज तो मेरा परिश्रम व्यर्थ गया, कल पुनः परीक्षा करूंगा।

अगले दिन वह दक्षिण दिशा में गया और वहां गले में कौस्तुम्भ, चारों हाथों में गदा, शंक, चक्र और धनुष

लिये, नील वर्ण के पर्वत के समान रूप धारण कर के गरूड़ पर सवार प्रकट हुआ। उसने सोलह हजार देवियों के सहित दिव्य विष्णु का रूप धारण किया। नगर में जब यह विष्णु पधारे तो सर्वत्र हल्ला हो गया कि आज विष्णु भगवान पधारे हैं। उनकी पूजा के लिये सभी नागरिक एकत्रित होने लगे, धीरे-धीरे यह समाचार राजसभा में पहुँचा राजा ने रेवती रानी की ओर मुख कर कहा—कल ब्रह्मा आये थे, आपको उनके ऊपर विश्वास नहीं हुआ। आज साक्षात् विष्णु भगवान पधारे हैं, अतः आपको अवश्य उनके दर्शन के लिये जाना चाहिये। दर्शन से आत्मा पवित्र हो जायगी, और इच्छाएं पूर्ण हो जायंगी।

रेवती रानी—राजन् ! यह भी कोई मायावी है, इसकी पूजा अज्ञानी और पाखण्डी ही करेंगे। यह केशव या नारायण नहीं है। हमारे आगम में बताया गया है कि नव नारायण पहले हुए हैं, वे अब यहां कहां से आवेंगे ? वे आज से लाखों बर्ष पहले हुए हैं, उनका अब इस रूप में अस्तित्व कैसे संभव है ? यह कोई अवश्य मायाचारी है। रानी की बातों ने राजा को आश्चर्य में डाल दिया।

ब्रह्मचारी रेवती रानी को आया हुआ न देखकर निराश हुआ और उस रूप को छोड़कर पश्चिम दिशा में जाकर महादेव का रूप धारण किया। उसने अपनी जटाओं में गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा शरीर में भभूति, हाथ में त्रिशूल, कर में सर्पों के कंकण, वगल में पार्वती धारण की। वृषभ पर सवार होकर महादेव के रूप में प्रकट हुआ। नगर में चर्चा होने लगी कि अब तक सुनने में आया था कि महादेव नाम का कोई देव है, किन्तु इस समय हमलोग प्रत्यक्ष दर्शन कर कृतार्थ हो गये।

वरुण महाराज ने इस चर्चा को सुनकर रेवती रानी से कहा—हे कमल मुखी ! आप मेरे साथ सीधे चलिये और महादेव के दर्शन कर अपने को सफल कीजिये। शंकर संसार में कल्याण करते हैं, इनके समान शक्तिशाली अन्य कोई भी देव नहीं है, व्यर्थ की हठ करना अच्छा नहीं होता है।

रानी—देव ! आगम में ग्यारह रुद्रों का वर्णन आया है, वे सभी आज से लाखों वर्ष पहले हो चुके हैं। इस काल में रुद्र नहीं आ सकते। यह कोई मायाचारी है, व्यन्तर या विद्याधर के सिवा अन्य कोई नहीं है। रानी के न जाने से राजा भी महादेव के दर्शन करने नहीं गया।

ब्रह्मचारी इस बार भी रानी को आया हुआ न देखकर आश्चर्य में पड़ गया और अपनी विद्या को विसर्जित किया। अगले दिन वह उत्तर दिशा में आया और जगत को आश्चर्य में डालने वाला रूप बनाया। अशोक वृक्ष तैयार किया, अष्ट प्रातिहार्य बनाये, दिव्य ध्वनि शुरु की, देवों द्वारा पुष्पों की वर्षा होने लगी। पृथ्वी निवासियों को आश्चर्य में डालनेवाला समवशरण बनाया और भगवान् महावीर स्वामी का रूप धारण किया। देखने में बिल्कुल वह महावीर जैसा ही लग रहा था।

तीर्थंकर का समवशरण आया हुआ जान कर सब पूजा के लिये गये और भक्तिपूर्वक कमल, पुष्प, जल, चन्दन, अक्षत, नैवेद्य, फल, धूप, दीप आदि से उनकी पूजा की। पूजा करने और वर्द्धमान भगवान के आने की बात राजा वरुण के कानों में पहुँची।

राजा—हे राजीवलोचनि ! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के दर्शन नहीं किये, पर आज तो अपने कुल-देवता वर्द्धमान स्वामी का समवशरण आया है, अत: अब आप दर्शन के लिये चलिये।

रानी—कैवल्य श्री को प्राप्त किये जिनेन्द्र इस काल में कहां से आ गये ? २४ तीर्थंकर तो पहले ही हो चुके हैं, अब २५ वां तीर्थंकर कहां से आयगा जो भगवान् निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, वे कहां से आवेंगे ? मैं इन्हें तीर्थंकर मानने को तैयार नहीं हूं, अवश्य ही यह कोई मायावी है। राजा को रेवती रानी के वचनों ने आश्चर्य में डाल दिया। वह सोचने लगा, बात ठीक ही है। वास्तव में २५ वां तीर्थंकर कहां से आयेगा ?

राजा—प्रिये ! सभी लोग आश्चर्य में पड़कर क्यों इन्हें महावीर मानते हैं ? क्या सभी लोग मिथ्यादृष्टि हैं। कुछ समझ में नहीं आता है, बात क्या है ?

रानी—स्वामिन् ! जैसे सभी पुष्पों में फल नहीं लगते। सभी वृक्ष चन्दन के नहीं होते है। सभी नारियां सती नहीं होती, उसी प्रकार सभी व्यक्ति सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं। कतिपय व्यक्ति ही सम्यत्त्व के धारी हैं। देव, शास्त्र और गुरु का सच्चा श्रद्धान जिसे है, वह कभी भी इस प्रकार के जाल में फंस नहीं सकता है।

जब अबकी बार भी रानी ब्रह्मचारी के पास नहीं गयी तो उन्होंने स्थिरमति समझा। पश्चात् उसने साधु का रूप धारण कियाऔर चर्या के लिये निकला। रानी ने उसको पड़गाहा और भीतर चौके में ले गयी। ब्रह्मचारी ने रानी को सम्यग्दृष्टि समझा तथा अपना वास्तविक रूप प्रकट कर मुनि गुप्त भट्टारक का आशीर्वाद कहा अब ब्रह्मचारी।

को मुनि गुप्त भट्टारक की सारी बातें समझ में आ गयीं ।

कुछ दिनों के बाद रेवती रानी ने सुव्रता नाम की आर्यिका से दीक्षा ग्रहण की और तप कर संन्यास पूर्वक मरण किया, जिससे १६ वें स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई। २२ सागर की आयु प्राप्त कर सुख भोगने लगी। इस प्रकार राजा श्रेणिक को गौतम स्वामी ने अमूढ़ दृष्टि अंग की कथा कही ।

पांचवी कथा समाप्त हुयी



छठवीं कथा

राजा श्रेणिक गौतम स्वामी को नमस्कार कर बोला—प्रभो ! उपगूहन अंग की कथा कहने का कष्ट करें। इस अंग का यथार्थ रीति से पालन करने पर निर्वाण लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है। उपगूहन अंग की महिमा विलक्षण है, जो श्रावक इस अंग को धारण करता है, वह इस संसार से जल्दी पार हो जाता है । सबसे प्रथम मैं उपगूहन अंग का स्वरूप समझना चाहता है ।

गौतम स्वामी—-राजन् ! किसी धर्मात्मा, सम्यक्दृष्टि जीव के किसी अवगुण को देखकर उसे छिपाना तथा एकान्त में उसे सचेत कर समझा देना उपगूहन अंग हैं। इस अंग का पालन सभी व्यक्ति नहीं कर पाते हैं, क्योंकि व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरों की गलतियां और दुर्गुण देखता है; जिससे इस अंग का यथार्थ पालन नहीं हो सकता है।

राजा श्रेणिक—-स्वामिन् ! इस अंगधारी की कथा सुनने की इच्छा है, कृपया कथा कहकर जिज्ञासा की तृप्ति करें। कथा के सहारे मनुष्य धर्म के तत्त्वों को आसानी से हृदयंगम कर लेता है, अतएव आप धर्मतत्त्वों को उपगूहन अंग की कथा के माध्यम द्वारा कहने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—-नाना प्रकार के अतिशयों से युक्त ग्वल देश में सुन्दर कामलिप्त नाम का नगर था । इस नगर में मनोहर नामका राजा राज्य करता था । इस नगर में जिनभक्त नाम का सेठ रहता था । इसका ऐश्वर्य कुवेर के समान और प्रभाव इन्द्र के समान था। इस नगर में इसके समान अन्य कोई भी धनिक नहीं था। यह सुख-पूर्वक अपना समय बिताता था।

इसी समय पाटलीपुत्र में वीरध्वज नाम का राजा राज्य करता था, इसकी धर्मपत्नी सुसीमा नाम की थी। इनका पुत्र वीरकुमार नाम का था । यह कुसंगति के कारण सातों व्यसनों सा सेवन करता था। चोर, उचक्के, बदमाश और गुण्डों का साथ उसे प्रिय था । यद्यपि राजा ने पुत्र को सुधारने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वह रास्ते पर न आया।

एक दिन राजकुमार ने अपने साथियों से कहा--मित्रों ! ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहां से हमने वस्तुएं न चुराई हों। हम लोग चोरी के व्यवसाय में बहुत ही प्रवीण हैं। परन्तु एक वस्तु ऐसी सुन्दर और कीमती है कि जिसका चुराना हमारे लिये आवश्यक है। यह चोरी साधारण नहीं है, इसमें प्राण जाने का भी भय है। परन्तु फिर भी मुझे विश्वास है कि कोई भी मेरा साथी इस काम को पूरा कर सकेगा। आप लोग जानते हैं कि भ्वलदेश में कामलिप्त नाम का नगर है, इसमें प्रसिद्ध धन कुवेर जिनेन्द्र भक्त नाम का सेठ रहता है। इसके जिनालय में भगवान् के ऊपर लगा हुआ मणि मण्डित छत्र अत्यन्त कीमती है, इसके समान दिव्य वस्तु आज तक दूसरी नहीं देखी है।

वह पुनः बोला--यह मन्दिर भी सुमेरु पर्वत के समान वज्र का सा है। बारह दरवाजे हैं, सबों को लांघ कर परकोटे के अन्दर जाना पड़ता है। वहां जाकर पहले कर्मचारियों को वश में करना होगा, इसके बिना वहां से चोरी नहीं हो सकती है। पहरेदारों की वहां कमी नहीं है। तलवार, भाला, गदा लिये पहरेदार सदा सन्नद्ध रहते हैं, आहट पाते ही पकड़ लेते हैं ? इतना सब कुछ होते हुए भी क्या आप लोगों में ऐसा कोई वीर है, जो साहस कर उस बहुमूल्य छत्र को चुरा लावे। मुझे विश्वास है कि आप लोग अत्यन्त हुशियार, समझदार चोर हैं, आप लोगों की तुलना किसी में नहीं की जा सकती है।

किसी भी उपाय से जो लाकर उसे दे देगा, मैं आधा राज्य उसे दे दूंगा। यह छत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है। जबसे मैंने उस छत्र को देखा है, मुझे उसके प्राप्त करने की चिन्ता हो गई है। उसके बिना मुझे चैन नहीं।

सूर्य चोर--राजकुमार ! आप चिन्ता न करें, मैं अवश्य उस छत्र को लाकर आपको दूंगा। चाहे मेरे प्राण इस कार्य में भले ही चले जांय, परन्तु उस छत्र को चुराकर अवश्य लाऊंगा। आज तक मैंने ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य किये हैं, जिससे बड़े बड़े लोग आश्चर्य में पड़ गये हैं; यह मेरे लिये कोई बड़ी बात नहीं है।

चोर सोचने लगा यह काम सामान्य नहीं है, उसे चुराकर कोई नहीं ला सकता है, इसके लिये मुझे बुद्धि से काम लेना होगा। जो काम बल से सम्पन्न नहीं किया जा सकता है, वह बुद्धि से हो सकता है। चोरी कर लेने पर भी दयालु जिन भक्त मेरे प्राण नहीं लेगा, किन्तु उसके व्यक्ति मुझे अवश्य मार डालेंगे। सामान्य स्तेय कृत्य से इस में सफल होना कठिन है, युक्ति से काम लेने पर अवश्य सफलता मिलेगी। दुःख, मरण और चिन्ता इन तीनों का रहस्य

स्य चोर ही समझता है। कोई व्यक्ति यदि असावधान होकर किसी दरवाजे में प्रवेश करे तो उसके सिर में चोट लगना साधारण है, परन्तु जो व्यक्ति सावधान होकर घुसता है, उसके सिर में चोट क्यों लगेगी ? विचारशील व्यक्ति युक्ति-पूर्वक किसी भी कार्य को सिद्ध कर लेता है। अतः छत्र में लगी वैडूर्यमणि को सावधानी से लाना होगा, अन्यथा छत्र लेने के साथ ही प्राण ले लिये जायंगे।

इस कार्य को सम्पन्न करने लिये मुझे श्रावक बनना पड़ेगा, मुनिराज के पास जाकर कपट वेश धारण कर आगम का अभ्यास करना होगा। पश्चात् मायाचार द्वारा उग्र तपस्या कर लोक में ख्याति प्राप्त कर लेने पर जिनेन्द्र भक्त सेठ अपने, आप मेरे पास आयगा। मेरे तप से आकृष्ट होकर अपने घर ले जायगा, मैं विश्वास उत्पन्न कर वैडूर्य-मणि को चुरा लाऊंगा, पश्चात् उसे राजा को देकर आधा राज्य प्राप्त करूंगा।

घर आकर उसने अपने कुटुम्बियों से कहा कि आज राजपुत्र वीरकुमार ने एक कार्य करने को दिया है, इस काम के पूरा हो जाने पर आधा राज्य प्राप्त हो जायगा। परन्तु यह कार्य सामान्य नहीं है, इसमें प्राण जाने का भी डर है। मैं अब कार्य की सिद्धि में जाऊंगा, आप लोग मेरे लौटने तक किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें, घर में प्रेमपूर्वक सावधानी से रहें। मैं अपना कार्य कर जहां तक होगा शीघ्र लौट कर आऊंगा। इस प्रकार घर के लोगों को समझा कर वह ग्वलदेश की ओर गया और वहां पर एक जिनालय में एक मुनिराज के पास साधु मार्ग का अभ्यास करने के लिये पहुँचा।

मुनिराज——वत्स ! कहां से आये हो ? कहां रहते हो ? अब कहां जा रहे हो ?

छद्मवेषी——प्रभो ! अनाथ परदेशी हूं। अनादिकाल से इस जीव का कोई भी साथी नहीं रहा है। मैं आत्म कल्याण करने के लिये आपकी सेवा में आया हूं ! आभूषण, वस्त्र, कुटुम्ब, माता, पिता, स्त्री, धन, वैभव आदि के मोह में पड़ कर इस जीव ने अनादिकाल से कष्ट पाया है। संसारिक सुख शाश्वत नहीं है, इस मनुष्य पर्याय का फल यही है भौतिक सुख को छोड़, विरक्त हो आत्म कल्याण के लिये बद्धपरिकर रहे। इस प्रकार की बातें कह कर मुनिराज के पास एक श्रद्धालु शिष्य के समान रहने लगा और इनके निकट सम्पर्क के कारण उठना, बैठना, शास्त्राभ्यास, आहार आदि की विधि को समझ गया। ब्रह्मचारी का भेष धारण कर कपट रूप में श्रावक कर्म का अभ्यास करने लगा। उसने अपना सारा क्रिया काण्ड और बाह्य आडम्बर ब्रह्मचारी का सा बना लिया।

राजपुत्र वीरकुमार से आधा राज्य पाने की लालसा से वह तपस्या में लग गया। पृथ्वी में आश्चर्य उत्पन्न करने वाला कठोर तप करने लगा। बाह्य तप कर उसने शरीर को कृश कर दिया। एकोपवास, द्वि-उपवास, अष्टोपवास, पक्षपवास आदि कठोर उपवास करने लगा, जिससे शरीर सूखकर कांटा बन गया। इस प्रकार उग्र-उग्रतर तपस्या करता हुआ वह कामलिप्त नगर की ओर बढ़ने लगा। ग्राम, नगर, खेट खर्वट, मटम्ब द्रोण, पत्तन आदि को पार करता हुआ आगे चला जा रहा था। कामलिप्त नगर में पहुँच कर उसने अपने तप का प्रभाव सभी पर डाल दिया मुक्तकण्ठ से सभी उसकी तपस्या की स्तुति करने लगे। उसकी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त हो गयी। चर्चा होने लगी कि ऐसे त्यागी बहुत कम लोग हैं, इन्होंने शरीर से अपना मोह बिल्कुल दूर कर दिया है। प्रत्येक व्यक्ति उसके गुणों की प्रशंसा कर रहा था, जिनेन्द्रभक्त सेठ को जब उस त्यागी ब्रह्मचारी का समाचार मिला तो वह बेचारा उसके दर्शन करने के लिये आया। उसने उसके दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया तथा पूजा कर स्तुति की। हाथ जोड़कर जिनेन्द्रभक्त बोला—स्वामिन् आप हमारे चैत्यालय में दर्शन करने के लिये चलें, दास पर बड़ी कृपा होगी।

पहले तो ब्रह्मचारी ने सेठ जिनेन्द्रभक्त की प्रार्थना स्वीकार करने में आनाकानी की, परन्तु बाद को उसने प्रार्थना स्वीकार कर ली और जिनालय में आकर रहने लगा। ब्रह्मचारी के आ जाने से जिनेन्द्रभक्त भी बहुत प्रसन्न था, अपने पुण्य का उदय समझ कर अपने को कृतार्थ समझ रहा था। ब्रह्मचारी रत्नमयी उस जिनालय को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और जिनेन्द्रभक्त से कहने लगा कि इस रत्न परिपूर्ण जिनालय में मेरा रहना ठीक नहीं है। मैं किसी सादे मकान में रहूंगा, इतने वैभव प्रासाद में रहने से मेरी भक्ति भावना में बाधा आवेगी। इस प्रकार सेठ को दृढ़ करने के लिये उसने मायाचारी वचन कहे। वह छद्मवेषी ब्रह्मचारी प्रत्येक कार्य को सावधानी पूर्वक करने लगा, अतः उसने इस समय और अधिक उपवास करने आरम्भ किये। वह सोचने लगा—इस समय मैं जितनी अधिक तपस्या करूंगा मेरा प्रभाव बढ़ेगा, जिनेन्द्रभक्त को मेरे ऊपर बिल्कुल विश्वास हो जायगा। अतएव वह मौन होकर उपवास करने लगा, शरीर उसका सूखकर बिल्कुल कांटा हो गया, आखें नीचे बैठ गयीं, किन्तु फिर भी ऊपर से तेज दिखलायी पड़ता था।

वह स्त्रियों को देखते ही आंखें बन्द कर लेता था, उनके साथ वह बात—चीत भी नहीं करता था। यदि कदाचित् किसी स्त्री से बात कर लेता तो उसके लिये उसे उपवास करना पड़ता। वह स्त्रियों के हाथ का परोसा भोजन भी नहीं करता। सुवर्ण का नाम सुनते ही कान बन्द कर लेता था, आभूषणों के स्पर्शमात्र से उपवास करता था।

छद्मवेषी वह ब्रह्मचारी निस्पृह होकर अपना कार्य सिद्ध करने की चिन्ता में था। वह संसारिक भोग की बातें सुनकर अन्तराय कर लेता था। वह बिलाव के समान चतुर, बगुला के समान मायाचारी, बड़ ऊमर फलों के समान निस्सार, व्याघ्र के समान अन्तरंग मे क्रूर था।

कुछ दिनों के उपरान्त एक दिन जिनेन्द्र भक्त ने कहीं व्यापार के लिये जाने का विचार किया और अपने साथ जाने वाले व्यापारियों को एकत्रित कर व्यापार के सम्बन्ध में विचार विनिमय किया। प्रस्थान के दिन भक्तिवश ब्रह्मचारी के पास आकर बोला—हे महाराज ! आपके समान व्यक्ति के दर्शन पुण्योदय के बिना नहीं होते ? आप कृपया मेरे ही घर पर रहें, आप अत्यन्त पुण्यवन्त हैं, अद्भुत आप में आकर्षण है। आपके प्रभाव से अनेकानेक श्रावक प्रतिदिन यहां आया करेंगे। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये, और मेरे घर लौट आने तक आप यहीं रहने की कृपा कीजिये। ब्रह्मचारी मन में प्रसन्न होकर सोचने लगा—मेरा पुण्य कितना प्रबल है, मेरा कार्य अब सिद्ध होना ही चाहता है, यह अपने आप घर छोड़ कर जा रहा है। अब तो मेरी इच्छा अच्छी तरह पूर्ण हो जायगी। इस प्रकार वह विचार कर भीतर के भावों को दबा कर ऊपर से कहरने लगा—अरे सेठ ! जब मैंने अपने ही घर के स्त्री पुत्र, कुटुम्बियों को छोड़ दिया, धन–वैभव को छोड़ा, तो मैं किसके घरकी रखवाली करूंगा। मैंने आत्मकल्याण के लिये यह सब त्याग किया है, यदि आत्म कल्याण में कुछ बाधा आयेगी तो फिर मेरा किया कराया चौपट हो जायगा। कल्याणेच्छुक को सदा अपने वैराग्य को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। एक स्थान पर रहने वाले को आनन्द भी प्राप्त नहीं हो सकता है। संसार में सुख लेश मात्र भी नहीं हैं, आहार की याचना ही पहले तो पापकारक है, फिर आहार ग्रहण करने में कितना पाप होता है। मैं तो सोचता हूं कि यदि बन सके तो साधक को आहार का भी त्याग कर देना चाहिये। साधु का काम एक स्थान पर रहना नहीं है, उसे जगह–जगह भ्रमण कर अपने उपदेश द्वारा जनता का कल्याण करना चाहिये। साधु का शरीर चन्दन के समान रगड़ने पर सुख और आनन्द ही देता है। वास्तव में आत्मकल्याण तभी संभव है जब तप–व्रत द्वारा अपनी भलाई की जाय।

जिनेन्द्र भक्त—महाराज ! श्रावकों की विनय और प्रार्थना आप लोगों को सुननी चाहिये। विरक्त व्यक्ति के लिये घर और वन दोनों समान हैं। विषयासक्त वन में रह कर अपना आत्म कल्याण नहीं कर पाता है- उसे विषयों की लालसा नीचे गिरा देती है; किन्तु विषय भी विरक्त व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। आप यहां रह

कर भी अपने ज्ञान ध्यान को समुज्ज्वल बना सकते हैं । यहां रहने पर भी आपकी तपस्या में कोई हानि नहीं होगी । आप कृपा कर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये । इतना कह कर उसने नमस्कार किया ।

जिनेन्द्रभक्त सेठने अपने अन्य घरके लोगों को बुलाकर घर की सारी व्यवस्था करदी और दान -पुण्य के कार्यों के संचालन की सारी विधि समझा दी ।

ब्रह्मचारी सोचने लगा—अब मेरा भाग्य सफल होने को है। मैंने वैडूर्यमणि को प्राप्त करने के लिये कितने कष्ट सहे हैं । शरीर को भूखा रख कर बिल्कुल सुखा दिया है। पर अब मेरे सभी मनोरथ सफल हो जायंगे । दो-तीन दिन में मैं जल्दी ही राजा के पास जाकर मणि दे दूंगा और अपना आधा राज्य मांग लूंगा । इस प्रकार विचार कर वह रातभर जागता रहा और मध्य रात्रि में उठकर पहरेदारों के सो जाने पर तीनों छत्रों के मध्य में लगे हुए वैडूर्य मणि को उसने निकाल लिया । इस मणि को देखकर वह कहने लगा—हे रत्न शिरोमणि ! आपके लिये मैंने कितने कष्ट सहन किये हैं ? आपके द्वारा मेरा भाग्योदय होने जा रहा है। वास्तव में आप हैं भी उतने ही सुन्दर, जितने आपको लोग कहा करते थे इस प्रकार रत्न की स्तुति करता हुआ बात करने लगा । अनन्तर उसे गले से लगाया, सिर पर धारण किया और हाथ में लेकर भावी सुख की कल्पना कर अत्यन्त हर्षित हुआ ।

वह पुनः सोचने लगा—इस रत्न को देकर वीरकुमार से मुझे आधा राज्य मिल जायगा, मैं धन–वैभव प्राप्त कर आनन्द से राज्य करूंगा । अब, चोरी का धन्धा मैं सदा के लिये छोड़ दूंगा । मेरी तुलना संसार में कोई नहीं कर सकेगा यदि मेरे पुण्य का उदय नहीं होता तो मैं क्यों इस प्रकार का दुस्साहपूर्ण कार्य करता । अब तो निश्चय ही अनेक रमणियों के साथ भोग-विलास करते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाऊंगा । इस प्रकार सोच कर उसने वैडूर्य मणि हाथ में ले ली और समस्त दीपकों को बुझाकर निकल भागा। रत्न की जगमगाहट को देखकर लोग उसके पीछे दौड़ने लगे, उन्होंने उसे रत्नका चोर समझा । नगर के हल्लेको सुनकर जिनालय के पहरेदार भी जाग गये और जिनालय में अन्धेरा देखकर वैडूर्यमणि की चोरी की बात समझ गये । जिनालय में खोजने पर भी जब ब्रह्मचारी दिखलाई नहीं पड़ा तो लोगों ने उसे ठग समझ लिया और वे सभी पहरेदार उस चोर को पकड़ने के लिये दौड़े ।

वैडूर्य मणि का प्रकाश इतना तेज था कि जिसके छिपाने के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह उसे छिपा न सका। वह इतनी तेजी से आगे बढ़ा जिससे उसके पांव में कई जगह चोट लगी, कांटे गड़े; परन्तु फिर भी वह भागता गया। इधर चोर के पीछे पहरेदार तथा अन्य नागरिक भी दौड़ते ही गये। तेज प्रकाश उसे पकड़ने में बहुत सहायक था। यद्यपि चोर ने रत्न के प्रकाश को कपड़ों में छिपाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह किसी भी प्रकार नहीं छिप सका।

चोर बेतहाशा भाग रहा था। चारों ओर से लोग इसे घेरे हुए थे, उनकी अवस्था बिल्कुल खराब हो रही थी। जब उसे अपने बचने का कोई उपाय नहीं दिखलाई पड़ा तो, वह सोचने लगा कि ये अब मेरे निकट आ पहुँचे हैं। मैं अवश्य पकड़ा जाऊंगा और मेरी बड़ी कुगति होगी। ये लोग मेरी हड्डी-पसली सभी तोड़ देगें अतएव समय सबसे अच्छा यही है कि मैं जिनेन्द्रभक्त की शरण में पहुँच जाऊं तो शायद मेरे प्राण बच भी जायंगे। इस समय मेरा बचना बड़ा ही कठिन है, अतः मुझे जिनेन्द्रभक्त के पास ही जाना चाहिये। जिनेन्द्रभक्त का डेरा यहां से पास है। ऐसा विचार कर वह दौड़ा और जिनेन्द्रभक्त के तम्बू में घुस गया।

सेठ का ब्रह्मचारी के ऊपर बड़ा प्रेम था, किन्तु आज उसके ठग और पाखण्डी रूप को देखकर उसे उससे घृणा हो गयी। वह सोचने लगा—जैसे सांप देशविदेश में चाहे जहां घूम आवें, उसे खाने के लिये चाहे जो कुछ दिया जाय किन्तु उसका विष दूर नहीं हो सकता है। इसी प्रकार धूर्त व्यक्ति अपनी धूर्तता को कभी नहीं छोड़ सकते हैं। विवेकी पुरुष को स्त्री-मोही और धनलुब्धक का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, यह नीति शास्त्र का नियम है। क्योंकि व्यसनी का सत्य, दुर्जन का धर्म, मूर्ख का चरित्र, झूठे का शौच, दरिद्र का भोग, कमजोर की वीरता, ठग की कीर्त्ति, विट का शील एवं वधिर का सुनना क्या कभी किसी ने देखा है? अन्धे को भेंट, स्त्री का राज्य, चंचल वृत्तिवालों का धैर्य, पातिव्रत बिना नारी, शील बिना सज्जन एवं सम्यग्दर्शन बिना तप कभी भी शोभा को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्रथमानुयोग के अध्ययन बिना अध्यात्मज्ञान, पागलों का यश और मूर्खों का ऐश्वर्य समय पड़ने पर कार्यकारी नहीं हो सकते है। ये सब बालू की भींत के समान हैं, न मालूम कब ढह जांय। सिद्धान्तशास्त्र का मर्म बिना समझे पढ़नेवाला निर्बुद्धि कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकता है। प्रथमानुयोग शास्त्र की कथाओं के द्वारा अध्यात्मज्ञान समझा जा सकता है, जो व्यक्ति केवल अध्यात्मशास्त्र को ही जानना चाहता है, वह व्यवहार धर्म की सम्यक् जानकारी के अभाव

में इस शास्त्र के रहस्य को हृदयंगम नहीं कर सकेगा, दान–पूजन, स्वाध्याय आदि कार्य व्यक्ति में आत्मिक स्थिरता उत्पन्न करते हैं, अतः इनकी परम आवश्यकता है।

मूर्खों की मित्रता, दरिद्री का भोग, आगम ज्ञान विना तपस्या और अविचारित कार्य कभी सफल नहीं होते। तपस्वी के लिये समागम का अध्ययन परमावश्यक है। शास्त्रज्ञान से परिणामों में दृढ़ता आती है, वास्तविक विरक्ति उत्पन्न होती है, वस्तुस्वरूप का बोध होता है तथा हेयोपादेय रूप यथार्थ प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार जिनेन्द्र भक्त सेठ विचार करने लगा।

जिनेन्द्रभक्त सेठ के तम्बू में चोर के घुसते ही पीछे दौडने वाले लाठी, तलवार और वर्छा लिये आये और उसे मारने के लिये प्रस्तुत थे। वे लोग कहने लगे—इस पापी ने अपनी कीर्ति फैलाई, दूसरों को अपने प्रभाव से झुकाया। जिस प्रकार बबूल के छोटे वृक्ष में आरम्भ से कांटे नहीं दिखलाई पड़ते, किन्तु बड़ा होजाने पर उनमें कांटे निकल आते हैं, उसी प्रकार मूर्खों की तपस्या आरम्भ में अच्छी मालूम होती है, पर वाद को अच्छी नहीं लगती।। वांस, पत्थर बाहर से देखने पर अच्छे लगते हैं, किन्तु उनके भीतर वैसी कोई सुन्दर चीज नहीं होती, इसी प्रकार धूर्त और ठग ऊपर से अच्छे दिखलायी पड़ते हैं, किन्तु भीतर इनके धूर्तता छिपी रहती है। दुष्ट लोग धर्म को स्वीकार कर उसे भी खराब कर देते हैं। इनको पहचानना बड़ा ही कठिन होता है।

जिनेन्द्रभक्त इस दृश्य को देखकर अत्यन्त अचम्भे में पड़ गया और विचारने लगा कि इस समय धर्म की रक्षा करनी चाहिये। इस ब्रह्मचारी के वेष में इसे चोर समझने से धर्म की निन्दा होगी। इस मूर्ख का कुछ नहीं बिगड़ेगा, परन्तु ब्रह्मचारी के भेष से लोगों की श्रद्धा उठ जायगी। जैनधर्म इतना पवित्र और उदार धर्म है कि कोई भी व्यक्ति इसका पालन कर अपना कल्याण कर सकता है। अतः ऊहापोह के अनन्तर सेठ ने एक पाटा रखकर उस पर उसको बैठाया और उसके पैर दबाना शुरू किया। पीछा करने वाले व्यक्तियों ने जब यह कृत्य देखा तो वे आश्चर्य में पड़ गये और सेठसे पूछने लगे कि हे श्रेष्ठिन्! आप यह क्या कर रहे हैं? इस पापीके कृत्य आपको मालूम नहीं हैं क्या? इसने मन्दिर के छत्र में लगी हुई वैडूर्य मणि चुराली है। यह रास्ते में हम लोगों को मिल जाता तो इसे हम तलवार के घाट उतारे विना नहीं छोड़ते, अवतो यह आगके पास आकर वच गया है। यह अविश्वासी, धूर्त, ठग, मायाचारी और

दुष्ट है, इसे शीघ्र ही राज्य के कर्मचारी को देना चाहिये। इसका मायाचार अब छिपाने से छिप नहीं सकता है, इसका धर्मात्मापन हम अच्छी तरह देख चुके हैं।

जिनेन्द्रभक्त गम्भीर होकर—अरे! क्या बक रहे हो? इसने किसकी वस्तु चुराई है। धर्मात्मा आदमी की निन्दा करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती। मैंने वैडूर्य मणि इस ब्रह्मचारी से मंगवाई थी, वही तो इसने लाकर दी है। इस निरापराधी साधु के पीछे तुम लोग क्यों पड़ गये हो? क्या नाश कर लिया है। साधु सन्तों का अपमान करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? यदि यह चोर होता तो कहीं भी भाग सकता था, मेरे पास रत्न देने क्यों आता। शीलवान्, व्रती, तपस्वी की आपने बड़ी दुर्गति की है। मुझे आप लोगों की बुद्धि पर तरस आता है। हाय! हाय! आप लोगों ने मेरी भी इज्जत ले ली। धर्मात्मा ब्रह्मचारी का अपमान कर महान् पाप का बंध किया। ऐसे तपस्वी संसार में विरले ही पुरुष होते हैं, इन्होंने कंचन-कामिनी को आज तक छुआ भी नहीं है। इस प्रकार के सच्चे त्यागी व्यक्ति के सम्बन्ध में असत्कल्पना करना भी निरर्थक है।

लोग—स्वामिन्! हमसे अपराध हो गया। हमने इनको चोर समझा, यह इतनी तेजी से दौड़ने लगे, जिससे हम लोगों का इनके ऊपर सन्देह होना स्वाभाविक था। यदि यह पहले कह देते कि सेठ ने वैडूर्य मणि को मंगाया है तो हम लोग इनके साथ इस प्रकार का निन्द्य वर्ताव कभी नहीं करते। महाराज! हमारा अपराध तो हुआ, परन्तु अज्ञानता में। बीच में बात काटकर दो-तीन उतावले व्यक्ति कहने लगे—अभी भी इनके ऊपर हमारा सन्देह है। यद्यपि आपके वचनों से हमारा सन्देह बहुत कुछ दूर हो गया है, फिर भी पूरी तसल्ली हमको नहीं हुई है। इनके सारे क्रिया-कलाप चोरों के समान थे। इन्होंने जिनालय में अन्धेरा क्यों किया? ये दिन में भी आपके द्वारा मंगाई वस्तु को लाकर दे सकते थे, आधी रात को सभी लोगों के सो जाने पर इन्होंने ऐसा काम क्यों किया? कुछ दाल में काला अवश्य है।

सेठ—आप लोगों को व्यर्थ सन्देह नहीं करना चाहिये। रात में रत्न हमने ही मंगवाया था। जब हम घर से यहां चले आये तो हमारे मन में विचार आया कि वैडूर्य मणि सबसे अधिक मूल्यवान् है, अतः उसे यहाँ छोड़कर जाना ठीक नहीं, साथ ले जाने पर उसकी यथार्थ रक्षा हो सकेगी तथा उसकी समानता की अन्य मणि मिल जायगी तो लेते भी आयेंगे। आधीरात को रत्न मगांने का यही प्रधान कारण है, क्योंकि रात में बस रत्न की चिन्ता के

कारण हमको नींद नहीं आ रही थी, इसलिये उसी समय हमने इनके पास आदमी भेजा था । हमारे ही समाचार के अनुसार आधी रात को यह रत्न लाये हैं । आप लोग बिल्कुल भी सन्देह न करें । भला सोचिये की हमारी ही चीज कोई चुरावे, और हम उनकी सेवा करने लगें, ऐसा आपने क्या कभी देखा है ? चोर को तो सभी पकड़ कर मारते-पीटते हैं ।

इस प्रकार सबको समझा-बुझा कर वहां से विदा किया । सभी लोग आपस में नाना प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना करते हुए अपनी गलती पर पछता रहे थे । उन्होंने सोचा वास्तव में एक तपस्वी को हमने व्यर्थ में ही कष्ट पहुँचाया ।

उनके जाने के पश्चात् सेठ उस मायावी को एकान्त में ले गया और कहने लगा इह कि नगर के समस्त श्रावकों ने आपकी देव तुल्य पूजा की है । सभी आपको बड़ा भारी धर्मात्मा समझते थे । आपने प्रारम्भिक सदाचार की छाप डाल कर कितना बड़ा पाप किया है । आपके समान विश्वासघातक, कृतघ्न, चोर अन्य कोई नहीं है । आपको नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा । जिस प्रकार दूध पीने वाला बिलाव वर्तन के अन्दर मुंह डालकर दूध पीता हुआ समझता है कि मुझे कोई नहीं देखता, इसी प्रकार आप भी यही समझते थे कि मेरे पाप को देखने वाला अन्य कोई नहीं है । पूर्व जन्म में आपने सत्पात्र दान नहीं दिया, इससे आपको धन के लिये इस प्रकार का ढोंग रचना पड़ रहा है । जिस प्रकार गड्ढे में जाकर पानी एकत्रित हो जाता है, उसी प्रकार पुण्यवान के पास सभी सामग्रियां आ जाती हैं । पुण्य के बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं हो सकती है । इस समय आपका कुछ पुण्य शेष था, जिससे मृत्यु से आपकी रक्षा हो गई । ठगी के लिये आपने ब्रह्मचारी का भेष क्यों धारण किया है ? यदि आपको चोरी ही करना उभिष्ट है तो आप अपने इस वेष को क्यों लजाते हैं ? जिनधर्म के धारण करने से वैडूर्य मणि का प्राप्त होना तो बहुत आसान है, यह मोक्षलक्ष्मी को देने वाला है । चोरी करने वाला कभी भी श्रीमन्त नहीं हुआ, कुत्ते के समान घर घर से रोटी चुराने पर भी अन्त में भूखे मरना पड़ता है । सदाचारी व्यक्ति कभी पाप की ओर पैर भी नहीं रखते, पुण्य करने से उन्हें ऐश्वर्य अपने आप प्राप्त हो जाता है । पुण्यमार्ग को त्याग कर आपने यह पापमार्ग क्यों ग्रहण किया ? पुण्योदय से ऐश्वर्य और विभूतियों का प्राप्त होना आसान है ।

दूसरे व्यक्तियों को देखकर कभी भी ईर्षा नहीं करनी चाहिये। कर्म से सुख मिलता है, धर्म को छोड़ देने पर कर्म अपने-आप आकर कष्ट देने लगते हैं। व्यभिचार, चोरी, हिंसा, परिग्रह संचय, झूठ हो तो पाप हैं, जो व्यक्ति इन पाप कर्मों में लिप्त रहता है, उसे कभी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। निन्दनीय कार्यों से धन की प्राप्ति हो नहीं सकती है। जो मोह में आकर आजीविका उपार्जन के लिये पाप करता है, उसे पापों का फल भोगना पड़ता है। परिवार वाले उसके पाप के फल में शामिल नहीं होते हैं, किन्तु धन से लाभ अवश्य उठाते हैं।

सत्य बोलनेवाले को गर्म लोहा भी नहीं जला सकता है किन्तु झूठ बोलनेवाले को ठंडा लोहा भी जला देता है, अतः सच बोलनेवाला सदा सुखी और झूठ बोलनेवाला सदा दुःखी रहता है। जो मांस खाता है, मदिरापान करता है, जुआ खेलता, है झूठ बोलता है, वेश्यागमन करता है तथा परस्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है, वह व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता है। सदा इस प्रकार के व्यक्ति को कष्टों का सामना करना पड़ता है। पाप कृत्य सदा निन्दनीय इसीलिये कहे गये हैं कि इनसे व्यक्ति को सदा कष्ट ही भोगना पड़ता है।

भगवान की पूजा, अभिषेक, दान आदि के बिना स्वर्ग के सुख कैसे मिल सकते हैं। सुख चाहने वाले को सर्वदा जिनेन्द्र प्रभू के चरण कमलों में खड़े रहना चाहिये। प्रभु पूजक को संसार में उत्कृष्ट से उत्कृष्ट फलों की प्राप्ति होती है। पूजक कभी निर्धन नहीं होता, देवलोक के सुख उसके घर में वर्तमान रहते हैं। रोग, शोक, दारिद्रय सभी भगवान की पूजा करने से दूर हो जाते हैं। जन्म-जन्मों के अर्जित पाप प्रभु-पूजा से थोड़े ही समय में भस्म हो जाते हैं। यदि मदोन्मत्त हाथी की सवारी अभीष्ट है, चन्द्रमुखी रमणियों की आकांक्षा है तो भगवान की पूजा करनी चाहिये।

मन- वचन- काय से पवित्र होकर जो सत्पात्रों को दान देता है, शीलव्रत का पालन करता है एवं दुखी जीवों के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। परलोक में भी उसे सुख मिलता है। कुटुम्बियों से प्रेम, धन, वैभव को प्राप्त करना चाहते हो तो धर्म का सेवन करना चाहिये। चन्दन फुलैल, इत्र, तैल आदि सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति के लिये सत्पात्र को दान देना चाहिये। सम्यग्दृष्टि श्रावक को धन, वैभव अभीष्ट नहीं होते; वह तो संसार में भ्रमण करने वाली वस्तुओं का त्याग करता है। सम्यत्व के समान संसार में अन्य कोई रक्षक और कल्याणकारी नहीं है। यह तीन प्रकार के तापों से सदा बचाता है। देवेन्द्र अहमेन्द्र, राजेन्द्र आदि का वैभव इसी के द्वारा प्राप्त होता है।

तरुणियों द्वारा चमरों का ढ़लना, सुन्दर सिंहासन पर विराजना, अंगरक्षकों के द्वारा रक्षा होना, आदि की प्राप्ति के लिये पुण्य ही कारण है। धर्म—सम्यग्दर्शन के बिना इस जीव का कल्याण नहीं हो सकता है। संसार के बन्धन से छुडानेवाला यही सम्यग्दर्शन ही है।

हाथियों का समुदाय, घोड़ों, का समुदाय, एकच्छत्र राज्य प्राप्ति के लिये तथा इन्द्र के समान ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अभिलाषा है तो भगवान की आराधना करनी चाहिये। धर्माराधना द्वारा पुण्य करने से ही देवोपम सुखों की प्राप्ति होती है।

चन्दन, केशर, कर्पूर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति, सुन्दर रेशमी वस्त्रों की प्राप्ति, दिव्य आभूषणों की प्राप्ति, मनोरम कोमल शय्या की प्राप्ति, मखमली गद्दों की प्राप्ति, सुस्वादु भोजनों की प्राप्ति क्या पुण्योदय के बिना संभव है? जैसे जुआरी जुआ खेलकर धन कमाने की निरर्थक इच्छा रखता है, नीम का वृक्ष लगाने वाला मधुर फल प्राप्त करने की व्यर्थ इच्छा रखता है, भैंसा पालकर उससे दूध प्राप्त करने का निरर्थक वांछा है, बालू पेर कर तेल प्राप्त करने का असफल प्रयास है एवं भूसा कूट कर चावल प्राप्ति की कामना निरर्थक हैं, उसी प्रकार पाप कर सुख प्राप्ति करने की इच्छा निरर्थक है। पापी व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता है। उसकी आत्मा पाप के कारण सदा छट—पटाती रहती है।

कर्मों के कारण इस जीव को संसार में भ्रमण करना पड़ता है, नरक, निगोद के दुःखों को कर्मों के कारण भोगता है। यदि कदाचित् पुण्य के उदय से चार दिन के लिये राजपदवी प्राप्त भी हो जाय, तो भी अन्त में नरक जाना पड़ता है। कर्म के उपशम से क्षणिक सुख भी हो जाय तो भी दुःख उठाना पड़ता है ग्रीष्मऋतु में जैसे संताप से पीड़ित होकर कोई व्यक्ति वृक्ष की छाया में गया, पर वहां पर रीछ को देखकर डर गया और सिंह की गुफा में चला गया, इस व्यक्ति की इस गुफा में रक्षा नहीं हो सकती है; इसी प्रकार यह जीव एक गति से निकल कर सुख प्राप्त करने के लिये अन्य गति में जाता है, परन्तु वहां पर भी इसको नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। कंचन और कामिनी के प्रलोभन में पड़कर यह जीव नाना प्रकार के पाप करता है और नरक में जाकर नाना कष्टों को सहन करता है। प्रलोभन ही संसार के परिभ्रमण के कारण हैं।

भगवान् की पूजा में विघ्न डालने से, पूजा करना रोकने से पूजा करने वालों का तिरस्कार करने से एवं

प्रभु पूजा करने वालों की निन्दा करने से नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। हाथ का लूला होना, पांव का लंगड़ा कोढ़ी होना, आदि फल जिनधर्म के तिरस्कार से मिलते हैं। दान में अन्तराय करने से भूखों मरना भिक्षा मांग कर पेट पालना आदि कष्टों को सहना पड़ता है।

गूंगे रोगी, कुष्ट रोगी होना आदि फल औषधदान में अन्तराय करने से होता है, दोनों हाथों का टूट जाना, ऐश्वर्य होने पर भोगों को भोगने में असमर्थ होना, दोनों पांवों से लंगड़ा होना आदि फल तपश्चर्या के छोड़ने से भोगना पड़ता है। आंखों का अन्धा होना, श्वेत कुष्ट होना। सूखा रोग होना आहार दान के अन्तराय का फल है। तुतना, बोलने में असमर्थ होना, ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर उसका जल्द नष्ट हो जाना श्रम करने पर भी ज्ञान की प्राप्ति न होना, अर्जित विद्या का विस्मरण हो जाना, आदि शास्त्र दान के अन्तराय का फल है। निर्धन होना, दरिद्र होकर दाने-दाने के लिये कष्ट उठाना आदि दान के द्रव्य में से चोरी से खाना है। कुत्ता होकर नाना प्रकार के कष्टों को भोगना मायाचार का फल है।

मायाचारी मरकर कुत्ता, महामायाचारी खरगोश, क्रोधी बाघ, महाक्रोधी सिंह, मानी मछली महामानी सांप, रौद्र ध्यान से मरनेवाला भेरुण्ड, महारौद्र परिणामों से मरने वाला ऊंट, गुणियों की निन्दा करने वाला शूकर, कुमार्गी मुर्गी और सद्धर्म द्वेषी हिरण होता है, जातिमद वाले मरकर विलाव, विद्यामद वाले घूग्घू तपमद करने वाले कुत्ता, ऐश्वर्यमद करने वाले मगर, रूपमद करने वाले गधा, ऋद्धिमद वाले घोड़ा चुगली करने वाले रीछ, हिंसानन्द करने वाले बकरी सप्तव्यसन सेवन करने वाले घोड़ा या कुत्ता एवं निरन्तर सप्तव्यसन का सेवन करने वाले मरकर जंगली कुत्ते होते हैं।

पाप के उदय से जीव को नरक में गर्म तेल की कढ़ाई में छोड़ देते हैं, काटते हैं, कोल्हू में पेलते हैं, अग्नि की ज्वाला में जलाते हैं, नाक, कान, हाथ, पैर, छाती आदि को काट डालते हैं। इन्द्रियों के आधीन होकर धर्म-कर्म जो व्यक्ति भूल जाता है उसे अनेक कुयोनियों में नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

सेठ की इन बातों को सुनकर उस मायाचारी को अपने कृत्य पर महान दुःख हुआ। वह पश्चात्ताप करने लगा तथा अपनी भावनाओं द्वारा कर्मों का उपशम कर संसार से विरक्ति प्राप्त की, वह मन में विचारने लगा कि चोरी द्वारा दूसरों की हत्याएं कर जितना धन मैं घर में लाया हूं, उससे मेरे घर वाले आनन्द करते हैं, मुझे व्यर्थ ही सब पापों

का फल भोगना पड़ेगा । मेरे पाप में कोई भी हिस्सेदार नहीं है। आज इस जिनेन्द्रभक्त सेठ के कारण मेरा हित हो गया, अन्यथा मरकर मुझे नरक के दुःख भोगने पड़ते । करोड़ों वर्ष तक नरक में पड़ा कष्ट सहन करना पड़ता । आज सेठ जिनेन्द्रभक्त के उपदेश ने मेरे ज्ञाननेत्र खोल दिये वास्तव में मैंने अब तक बड़ा भारी पाप किया है । सप्तव्यसन का सेवन कर मैंने अपनी आत्मा को नरक और निगोद पर्याय में भ्रमण करने का अधिकारी बना लिया है ।

उसकी विचार धारा आगे बढ़ी और वह पुनः सोचने लगा —मैं वीरकुमार के पास जाकर चोरी की बात क्यों करूं ? सरदार के पास जाकर उसकी स्तुति क्यों करूं ? आधा राज्य लेने में भी मेरा क्या कल्याण होगा ? मायाचारी की तपस्या कर मैंने अपनी आत्मा का बड़ा अहित किया । इस समय जिनेन्द्रभक्त सेठ का उपदेश मेरे लिये निमित्त है, अब अवश्य ही मुझे कल्याण में लग जाना चाहिये । यह सेठ ही मेरा भाई है, पिता है, गुरु है, आप्त है अधिक क्या यही मेरे लिये सब कुछ है, इसने मुझे कल्याण का उपदेश देकर मेरी आंखें खोल दी । वास्तव में अब मेरे कल्याण का समय आ पहुँचा है ।

सूर्य के उदय के बिना जैसे कमल विकसित नहीं होता है, अन्धकार भी दूर नहीं होता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्ररूपित आगम से ही मिथ्यात्व का नाश हो सकता है । मिथ्यात्व के वशीभूत होकर जीव संसार में नाना प्रकार के पाप करता है । जो कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग में लगाते हैं, मिथ्यात्व छुड़ाकर सम्यत्व में दृढ़ करते हैं, प्रमाद दूरकर अत्मकल्याण में सावधान करते हैं वे सच्चे मित्र हैं । इस प्रकार सोच विचार कर वह हाथ जोड़ सेठ से कहने लगा—

सम्यत्व चूड़ामणि ! आपने मेरा कल्याण कर दिया । आज में सच्चे धर्म को प्राप्त कर निहाल हो गया । अब तक मैं अपने को भूले हुए था, सत्यता से बहुत दूर था, किन्तु अब सत्य को प्राप्त करने जा रहा हूं । आपने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की । मैं आज से श्रावक धर्म ग्रहण करता हूं । इस धर्म का पालन करने से मुनि धर्म की भी प्राप्ति होती है तथा परम्परा से निर्वाण भी मिल जाता है । कृपया मुझे श्रावक धर्म के सम्बन्ध में समझाने का कष्ट करें——

जिनेन्द्रभक्त—जो संसार से निकल कर जीवों को मोक्ष में ले जाय, उसे धर्म कहते हैं । रत्नत्रय का नाम

ही धर्म है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आंशिक रूप से पालन करता है, वह श्रावक है। सम्यग्दर्शन का पालन तो श्रावक को पूर्ण रूप से करना चाहिये। यह रत्नत्रय धर्म ही इस जीव का कल्याण करने वाला है। श्रावक को आठ मूल गुणों का पालन, सप्त व्यसन का त्याग, पांच अणुव्रत, सात शीलव्रत का पालन करना चाहिये। आहार-पानी शुद्ध रखना, कुसंगति से बचना न्यायपूर्वक धनार्जन कर अजीविका करना, दैनिक षट् कर्मों का पालन करना तथा मरण समय सल्लेखना धारण करना श्रावक का आचार है।

ब्रह्मचारी—स्वामिन् ! श्रावक धर्म के पालन करने से क्या फल मिलता है ?

जिनेन्द्रभक्त—यह धर्म व्यसन रूप मगर के मुंह से, संशय रूपी सिह के पंजे से, संकल्प–विकल्प रूपी महा-मत्स्य से पूर्ण रक्षा करता है। स्वर्गादि सुखों के अतिरिक्त निर्वाण सुख की प्राप्ति भी इस धर्म के पालन से होती है।

झूठ बोलने वाले, मायाचारी, आडम्बर युक्त, मनमाना उपदेश देने वालों के पास नहीं जाना चाहिये। प्रेम और दया पूर्वक सद्धर्म का उपदेश देनेवालों के पास जाना चाहिये। विषय वासनाओं में अनुरक्त गुरु संसार में भ्रमण करने वाले होते हैं। मायाचारियों के वचन सुनने में अच्छे लगते हैं। परन्तु उनके भीतर विषभरा रहता है। मायावी व्यक्ति अपना अकल्याण तो करता ही है, परन्तु दूसरे व्यक्ति का भी अकल्याण करता है। धूर्त व्यक्ति सदा इसी चक्कर में रहते हैं कि किस प्रकार अन्य व्यक्तियों को फंसाया जाय। अतएव पक्षपात रहित, शुद्ध हृदय, गुणवान्, आगमज्ञ, विवेकी, नैष्ठिक, चारित्रवान् एवं हितोपदेशी व्यक्ति से ही धर्मोपदेश सुनना चाहिये। उपर्युक्त व्यक्ति ही धर्मोपदेश देने का वास्तविक अधिकारी है। जो जिनागम का अर्थ नहीं जानते हैं। व्यर्थ ही काय क्लेश सहते रहते हैं, जिनका अन्तरंग कषाय और वासनाओं से भरा हुआ है ऐसे व्यक्ति कभी भी धर्मोपदेश देने के अधिकारी नहीं।

जिसे शब्द का यथार्थ अर्थ मालूम है, जो विवेकी है, परम्परानुसार सूत्र का अर्थ जानता है, तत्त्वज्ञ है वही उपदेश देने का अधिकारी है।

जैसे संयम और ध्यान में लीन रहनेवाला मुनि श्रेष्ठ माना जाता है, वैसे दान और पूजा में रत रहनेवाला श्रावक श्रेष्ठ समझा जाता है। श्रावक को भी अपनी शक्ति के अनुसार तप करना चाहिये, क्योंकि तप करने के अभ्यास से श्रावक को अनेक प्रकार की विभूतियां प्राप्त होती है तथा मुनि धर्म का अभ्यास पहले से ही हो जाता है। दानी, तपस्वी व्रती, श्रीषेण, धन्यकुमार, करकण्डु महाराज, सीतादेवी आदि की धर्म कथाओं को सुनकर या पढ़कर दान, व्रत

और तपस्या की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये ।

राजा श्रीषेण दान के प्रभाव से मोक्षलक्ष्मी का स्वामी शान्तिनाथ तीर्थंकर हुआ । दान चतुष्टय से पुण्य बन्ध के साथ निर्वाण श्री की प्राप्ति होती है ।

तप से भयभीत होकर जो आत्मशोधनकारी तपस्या नहीं करता है तथा संयम पालने में सहायक व्रतों का पालन नहीं करता है, उस व्यक्ति को निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकेगा ? प्रथम तिर्थंकर आदिनाथ, सनतकुमार चक्रवर्ती, गुरुदत्त मुनि आदि के समान जो उपसर्गों को जीतकर तपस्या करता है उसे अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।

जिस प्रकार आदिनाथ भगवान ने क्रिया सहित तपोमार्ग का आचरण कर निर्वाण लक्ष्मीं की प्राप्ति की उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति रत्नत्रय का पालन करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर लेता है । दिन में सूर्य के उदय से जैसे कमल विकसित होते हैं, उसी प्रकार सद्धर्म और तपस्या के प्रभाव से कल्याण हो जाता है । केवल ज्ञान की प्राप्ति भरतक्षेत्र में पंचमकाल में नहीं हो सकती है फिर भी आगम का श्रद्धान कर दान, धर्म और तपस्या करने से आत्मोत्थान का मार्ग अवश्य मिल सकता है ।

जिनेन्द्रभक्त के इस उपदेश से प्रभावित होकर सूर्य नामक चोर ने, जो ब्रह्मचारी बना हुआ था, श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया । कुछ दिनों के पश्चात् उसे संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई और जिनदीक्षा ग्रहण कर उग्र–उग्रतर तपस्या करने लगा । अन्त में उसने संन्यास मरण धारण किया, जिसके प्रभाव से वह स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ ।

उपगूहन अंग के धारण करने से जिनेन्द्रभक्त सेठ की कीर्त्ति सर्वत्र फैल गयी तथा उसने भी अपना सभी प्रकार से कल्याण किया ।

निर्मल जिनधर्म को दुराचारी कभी गन्दा नहीं कर सकता है, जैसे मेढ़क समुद्र के निर्मल जल को गन्दा नहीं कर पाता है, उसी प्रकार पापी व्यक्ति इस विशाल, उदार और सर्वगुण सम्पन्न धर्म को गन्दा नहीं कर सकते हैं ।

उपगूहन अंग सभी प्रकार के कल्याणों को देनेवाला है, इसके पालने से कीर्त्ति फैल जाती है, आत्मा में अद्भुत प्रकाश आता हैं, भव्य जीवों को आनन्द की प्राप्ति होती है और सभी कामनाएं सफल हो जाती हैं ।

छटवी कथा समाप्त

सातवीं कथा

मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करने में कारण उपगूहन अंग को धारण करने वाले भव्य जीवों को निर्वाण मिलने में बिलम्ब नहीं होता, राजा श्रेणिक आनन्दित होकर गौतमस्वामी के चरण कमलों की वन्दना कर कहने लगा—

प्रभो ! स्थितिकरण अंगकी कथा जानने की मेरी अभिलाषा है। कृपाकर इस कथा को कहने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—राजन् ! धर्म से विचलित होते हुए व्यक्ति को धर्म में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग है। इस अंग का अद्‌भूत महत्व है; क्योंकि इसके पालन करने से आत्मा निर्मल निकल आती है, आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है। इस अंग का पालन करने वाला वारिषेण कुमार होगा। यह श्रीमती चेलना देवी से उत्पन्न होगा। मगध के राजा श्रेणिक की यह पट्टरानी इन्द्राणी और रोहिणी के समान अतीव सुन्दरी है। भगवद् भक्ति, स्वाध्याय, दान आदि में अग्रगण्य है। सीता देवी, सरस्वती, तिलोत्तमा आदि से भी सौन्दर्य, शील, गुण, भक्ति में बढ़कर है।

उदयाचल पर जिस प्रकार दिवाकर का उदय होता हैं, उसी तरह यशपुञ्ज, समस्त गुणों का समुदाय वारिषेण नाम का पुत्र उत्पन्न होगा। यह कुमार सद्‌गुणों का निधि, संसार में माननीय, नीतिज्ञ, भव्यजनों से प्रेम करनेवाला, वर्द्धमान चन्द्रमा के समान होगा। यह दृढ़ चित्तवाला, शूरवीर, दिव्य मुनियों का भक्त, भक्तजीवों का आश्रम शील होगा। उदार भाव से सम्यत्व को पालेगा, मिथ्यात्व से सदा दूर रहेगा और भोगविलास से विरक्त रहेगा। स्वाध्याय और धर्म चर्चा में इसका मन सदा लगेगा। तपश्चर्या करने में, दिव्य मुनियों की चरण सेवा में, भव्य जीवों के साथ तत्त्वचर्चा में, और सत्काव्यों के पठन में तत्पर रहेगा। गुणनिलय, जिनचरणों में भ्रमर के समान, जिनागम श्रवण के लिये वर्षा काल में मयूर के समान हर्षित होनेवाला, पापरूपी मदोन्मत्त हाथी को मारने के लिये सिंह के समान तथा सर्वगुण सम्पन्न होगा।

※एक दिन पाटलीपुत्र नगर में निर्मल गुणों के धारी, कला और शास्त्र के ज्ञाता, मुनिजनों से अनुराग

※—यहां से कथा कहने का ढंग भूत कालीन है।

करने वाले, तेजस्वी, उज्ज्वल चरित्र के धारी, समस्त जीवों का उपकार करने वाले, दयानिधि, मुण्डि-पुत्र नाम के आचार्य पाटलीपुत्र में आये । ये आचार्य गांव में एक दिन, नगर में पांच दिन और वन में दश दिन एक स्थान पर शास्त्रानुसार निवास करते थे । पूर्व दिशा में बालहक नामक पर्वत पर इनके ठहरने का समाचार पाते ही मगधाधिपति श्रेणिक परिवार सहित दर्शन के लिये गया और पूजा की । पूजा करने के पश्चात् धर्म श्रवण किया । परिवार के अन्य सदस्य तो घर चले गये किन्तु वारिषेण उन्हीं के पास रह गया । जिस प्रकार लोभी व्यक्ति भण्डार के द्रव्य को छोड़कर नहीं जाता है, उसी प्रकार वारिषेण भी मुनि चरणों को छोड़ कर अन्यत्र जाने को तैयार नहीं हुआ, वह वहीं पर रहकर आत्म कल्याण के सम्बन्ध में सोचने लगा ।

जो व्यक्ति रात दिन जिनेश्वर का ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं । संसार के दुःखों से ऐसे ही व्यक्ति छुटकारा पाते हैं इस प्रकार वारिषेण कुमार विचारने लगा । उसे संसार से विरक्ति हो गई फिर उसे आत्म कल्याण की चिन्ता होने लगी । मुनिराज वारिषेण कुमार की ओर उन्मुख होकर कहने लगे ।

वत्स ! इस संसार में कोई किसी का साथी नहीं है । आत्मा अनादिकाल से मिथ्यात्व के आधीन होकर इस जगत में भ्रमण कर रही है । समझदार इस मोह जाल में न पड़कर अपना कल्याण करते हैं । जो व्यक्ति विषय भोगों में संलग्न रहता है, वह अपने कल्याण का मार्ग नहीं पा सकता है ।

वारिषेण कुमार—स्वामिन् ! आत्मोद्धार का मार्ग क्या है । ऐसा कौन-सा मार्ग है जिसका अनुसरण करने पर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है ? शान्ति का मार्ग क्या है ? प्रभो ! आपकी शरण में आया हूं, आप मेरी रक्षा करने की कृपा करें । मैं आप्त आगम-गुरु-दान तप को जानना चाहता हूं । जैसे हंस जल और दूध के मिश्रित रूप से केवल दूध को ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार मैं भी सद्धर्म और कुधर्म को जान कर सधर्म को ग्रहण करना चाहता हूं । जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति डाकुओं का विश्वास कर उनके द्वारा दुःख उठाता है, उसी प्रकार कुदेव और कुधर्म की सेवा करने से संसार में नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं । धूर्त, खल, दगावाज कर्मकलंक से मलिन कुलदेव की सेवा कर लोगों को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं । परीक्षक परीक्षा कर कभी भी इन कुदेवों के फेर में नहीं पड़ेगा । इन देवों की संगति करनेवाले पत्थर की नौका के समान संसार समुद्र को पार करने में असमर्थ हैं, जो ऐसे देवों की सेवा करते हैं, वे मूर्ख हैं । लोग कहते हैं कि महाप्रभु ही सबका नियन्ता है, वही सब को सुख दुःख देता है ।

सृष्टि के समस्त कार्य उसी के द्वारा होते हैं, यह कहां तक ठीक है। भूत, प्रेत पिशाचों को बहुत से लोग देव समझ कर पूजते हैं, क्या स्त्री के सहित रहने वाले देव सर्वज्ञ, वीतरागी हो सकते हैं? कौन-सा समझदार व्यक्ति उन्हें देव समझेगा।

इस पृथ्वी में झूठ बोलने वाले, डाकू, चोर, हिंसक, अपवित्रों को जो देव मानते हैं, वे मूर्ख हैं, इस प्रकार के देव कभी भी मान्य नहीं हो सकते हैं। जिस प्रकार घर-घर राजा होने पर देश की व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं हो सकती है, उसी प्रकार सभी देव हो जायं तो देव-कुदेव की व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती है। सप्तव्यसनी, दुराचारी देव के पद पर कभी भी आसीन नहीं हो सकते हैं। जो शान्त है; दयालु है, विकारों से रहित है, सर्वज्ञ है, वही देव सच्चा माना जा सकता है। इसी प्रकार के देव की सेवा करने से आत्मा का कल्याण हो सकता है।

जगत में जैसे सदाचारी का सम्मान होता है, दुराचारी का नहीं? दुराचारी नारियों का जितना तिरस्कार उतनी पतिव्रताओं का नहीं। चोरों को ही सजा दी जाती है, सच्चे लोगों को नहीं।

मुण्डि-पुत्र आचार्य—वत्स! क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष आदि अठारह दोषों से रहित देव ही सच्चे देव हैं। यह सर्वज्ञ, हितोपदेशी और वीतरागी होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति के उदय से ये निर्वाण-मार्ग का उपदेश देते हैं। संसार के सभी प्रलोभनों से रहित होते हैं। इनके पास संसार की कोई भी वस्तु नहीं होती। सबसे पहले ये अपने को शुद्ध करते हैं। जैसे सोना आग में तपाने से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या के द्वारा ये अपने को शुद्ध कर देते हैं। बात यह है कि यह आत्मा ही कर्म मल से रहित होने पर परमात्माबन जाती है। परमात्मा बनने की यह शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान है, किन्तु जो कर्ममल को दूर करने का प्रयत्न करते हैं, वे अवश्य ही देव बन जाते हैं। कुदेव शब्द का अर्थ ही यह है कि जो राग द्वेष युक्त हैं; जिनके पास परिग्रह है तथा जो संसार के प्रलोभनों में फंसे हैं। ऐसे कुदेवों की सेवा-पूजा से कोई भी व्यक्ति संसार से छुटकारा नहीं पा सकता है।

सच्चादेव संसार का कर्त्ता कभी भी नहीं हो सकता है। जो वीतरागी है, जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं है, वह संसार की रचना क्यों करेगा? रचना करने का अर्थ तो यह है कि किसी को सुखी और किसी को दुखी बनाना। एक के हाथ-पैर -नाक कान आदि अंग ठीक बनाना, अन्य को लूला, लंगड़ा, नकटा, बूचा बनाना। क्या इस प्रकार के सृष्टि निर्माण से देव में दूषण नहीं आयेगा। जिसको वह सुखी करता है, उसके साथ उसका राग रहेगा, जिस

को दुःखी करता है, उसके साथ उसका द्वेष रहेगा; अतः रागी-द्वेषी तो उसे बनाना ही पड़ेगा। सृष्टि रचने वाला सामान्य गृहस्थ से भी बढकर झंझट में फंस जायगा। जैसे गृहस्थ एक छोटी-सी गृहस्थी के संचालन में दिन-रात व्यस्त रहता है, उसी प्रकार वह भी इस सृष्टि को लेकर दिन-रात व्यस्त रहेगा। नाना प्रकार की चिन्ताएं, वासनाएं, ईर्षा, विवाद आदि उसमें होते रहेगें। अतः सच्चा देव इस सृष्टि का कर्त्ता कभी नहीं हो सकता है।

वास्तविक बात तो यह है कि इस सृष्टि का कोई कर्ता-धर्त्ता नहीं है। यह तो स्वभावतः अपने आप निर्मित अपने अपने पुण्य-पाप के उदय से व्यक्तियों को हानि लाभ होते रहते हैं। प्रत्येक आत्मा अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है। जो जैसा कर्म करता है, वह उस कर्म के उदय आने पर वैसा ही फल पाता है। यदि सृष्टि का कर्त्ता आत्मा को छोड़ अन्य व्यक्ति को माना जाय तो आत्मा के किये गये पुण्य-पाप निरर्थक हो जायंगे। यदि यह कहा जाय कि आत्मा के पुण्य-पाप के अनुसार ही सृष्टि कर्त्ता फल देता है, तो इस फल देने वाले के मानने की आवश्यकता ही क्या है, क्योंकि अपने अपने पुण्य-पाप के उदय से फल की प्राप्ति तो हो ही जाती है, फिर बीच में एक फल देने वाला मानने से लाभ क्या? यदि यह कहा जाय कि जैसे राजा अच्छे-बुरे कर्म करने वाले व्यक्तियों को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड और पुरस्कार देता है इसी प्रकार ईश्वर भी फल देता है। विचार करने पर यह कथन भी बुद्धि हीन जंचता है क्योंकि राजा कर्म सहित है, तथा नाना प्रकार के दोषों से युक्त है, इसी प्रकार ईश्वर सकर्मा और नाना प्रकार के राग-द्वेषों से युक्त सिद्ध हो जायगा? इस प्रकार का सरागी ईश्वर अभीष्ट नहीं है। अतः इस सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर या अन्य कोई देव नहीं हो सकता है।

तार्किक दृष्टि से विचारने पर भी इस सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि न्याय का नियम है, कि अन्वय और व्यतिरेक व्याप्ति के मिलने पर ही कार्य कारण सम्बन्ध माना जाता है। अन्वय व्याप्ति कर्मों की सृष्टि कर्त्ता के साथ मिल सकती है, परन्तु व्यतिरेक व्याप्ति नहीं मिलती है। तथापि—जो जो कार्य होते हैं, उनका कोई कर्त्ता अवश्य होता है, जैसे वस्त्र कार्य हैं, इस लिये इसका कर्त्ता जुलाहा है। इसी प्रकार सृष्टि एक कर्म है, इस का भी कर्त्ता कोई अवश्य होगा। यहाँ अन्वय व्याप्ति है, परन्तु व्यतिरेक व्याप्ति नहीं पायी जाती है, अतः अनुमान के द्वारा सृष्टि कर्त्ता की सिद्धि नहीं हो सकती है। व्यापकानुपलंभ के द्वारा सृष्टिकर्तृत्व बाधित है।

वारिषेण—प्रभो। सृष्टि का कोई कर्त्ता नहीं है, यह मैं समझ गया। परन्तु यह बतलाने की कृपा करें कि

हमारा शरीर कैसे बनता है। माता के पेट में इसे कौन बना आता है ?

मुण्डि-पुत्र आचार्य—वत्स ! शरीर-रचना नाम कर्म के कारण होती है। आठ प्रकार के कर्म हैं, जिनसे उपशम, क्षयोपशम और उदय से प्राणियों के सारे कार्य चलते हैं। ज्ञानावरणी कर्म ज्ञान को ढकता है, इसके उपशम या क्षयोपशम होने से ज्ञान गुण प्रकट होता है, दर्शनावरणी कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढक लेता है, तथा इस कर्म के उपशम या क्षयोपशम से देखने की शक्ति आती है, विश्वास भी इसी गुण के प्रकट होने पर होता है। आत्मा की ओर रुचि भी दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम या क्षय से होती है । वेदनीकर्म के उदय से जीव को सुःख-दुःख भोगने पड़ते हैं। साता का उदय होने से सुख मिलता है और असाता कर्म के उदय होने से दुःख भोगना पड़ता है, मोहनीय कर्म के उपशम, क्षमोपशम और क्षय से जीव को आत्मिक श्रद्धा और चारित्र की प्राप्ति होती है। राग-द्वेष भी इस कर्म के उदय से ही व्यक्ति करता है। आयु कर्म के उदय से इस जीव को किसी निश्चित काल तक एक शरीर में रुकना पड़ता है। नाम कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांगों का निर्माण होता है तथा सुन्दर, असुन्दर शरीर मिलता है। सुडौल अंगोपांगों की प्राप्ति भी इसी कर्म के उदय से होती है। गोत्र कर्म के उदय से जीव को लोक प्रतिष्ठित या लोकनिन्दित कुल में उत्पन्न होना पड़ता है। अन्तराय कर्म के उदय से कार्यों में विघ्न आते हैं, इसके क्षय या उपशम से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार इस जीव को समस्त सुख-दुःख अपने किये कर्मों के कारण ही उठाने पड़ते हैं। प्रत्येक आत्मा कर्त्ता है, और अपने कर्म फलों का भोक्ता भी। न कोई किसी को फल देता है और न कोई किसी के कर्मों के फल को भोगता है।

वारिषेण—स्वामिन् ! क्या सच्चादेव वास्तव में कर्मों का फल नहीं देता है ?

मुण्डि–पुत्र—नहीं वत्स ! नहीं। प्रत्येक जीव अपने कर्मों का स्वयं फल भोगने वाला है। त्रिकाल में भी कर्म सिद्धान्त झूठा नहीं हो सकता है ? कर्मों का फल प्रत्येक जीव स्वयं भोगता है।

वारिषेण—प्रभो ? अचेतन कर्मों में फलदान शक्ति कहां से आती है ?

मुण्डिपुत्र–अचेतन कर्म होने पर भी आत्मा के संयोग के कारण उनमें विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अचेतन परमाणु में भी अद्भुत शक्ति भरी पड़ी है। सूक्ष्म पुद्गल में जितनी शक्ति होती है, उतनी स्थूल पुद्गल में नहीं। कार्य करने वाले पुद्गलों में कार्माण वर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, तैजस वर्गणा और आहार वर्गणा ये प्रधान है। पुद्गल और जीव

इन दोनों द्रव्यों में क्रियावती शक्ति वर्तमान हैं, अतः इसी शक्ति के कारण कर्म अपना फल देते हैं। जीव द्रव्य में क्रियावती और भाववती दोनों प्रकार की शक्तियां हैं। जीव की भाववती शक्ति के कारण ही आत्मा पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करती है और कर्मरूप में परिणत कर एक विलक्षण स्वभाववान पुद्गल को बना देती हैं। वात यह है कि कर्मों को ग्रहण करने के अनन्तर उनमें चार प्रकार की अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, और अनुभाग। स्थिति बन्ध में ग्रहण किये गये पुद्गल परमाणुओं की समय मर्यादा निश्चित की जाती है और अनुभाग बंध में कर्मों में फल देने की शक्ति आती है। अतः कर्मों में फल देने की शक्ति आत्मा के विकृत परिणामों के कारण स्वयं उत्पन्न हो जाती है। कर्मों का परिणमन रासायनिक प्रक्रिया के अनुसार होता है, अतः विभिन्न फल शक्तियां आत्मा के योग और कषाय का संयोग पाकर प्रकट हो जाती है।

वारिषेण—प्रभो! कर्म फल मेरी समझ में अच्छी तरह से आ गया। आप कृपा कर तप, दान और आत्म कल्याण के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातें बतलाने का कष्ट करें।

मुण्डिपुत्र—वत्स! अन्तरंग विकारों को दूर करने के लिये अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविधशयन, विविधआसन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयाव्रत, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान करने चाहिये। अनशन, ऊनोदर आदि के करने से आत्मा के संचित विकार दूर हो जाते हैं। शरीर और इन्द्रियां आधीन हो जाती हैं। आत्म शुद्धि के लिये इन व्रतों को अवश्य पालना चाहिये।

वारिषेण कुमार—प्रभो! पंचाग्नि तप क्यों नहीं करना चाहिये? इस तप की गणना पृथक् क्यों नहीं की गयी है?

मुण्डिपुत्र—वत्स! पञ्चाग्नि तप से व्यर्थ ही अज्ञानता पूर्वक शरीर को कष्ट देना है। इस तप के द्वारा हिंसा होती है, क्योंकि अग्नि जलाने से हिंसा अवश्यम्भावी है। जहां हिंसा रहती है, वहां तपस्या कैसे संभव है? अहिंसा की प्राप्ति के लिये ही तप किया जाता है, यदि इससे हिंसा हो तो फिर उस तप का मूल्य ही क्या? विवेक पूर्वक आत्मा की विकार परिणति को दूर करना है, जिस तपस्या के द्वारा यह कार्य सम्पन्न न किया जा सके वह तपस्या निरर्थक है। वास्तविक तप विकार और वासनाओं को दूर करने वाला होता है, जिस तप से यह कार्य पूरा न किया जाय वह कभी

भी तप की कोटि में नहीं आ सकता है। इच्छाओं को रोकना तथा बढ़ती हुई सांसारिक विषय प्रवृत्तियों को हटाना तप है।

इस तप की पृथक् गणना नहीं की जा सकती है, क्योंकि यह अहिंसात्मक तप नहीं है। कायोत्सर्ग तप के द्वारा पंचाग्नि तप का कार्य किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि पञ्चाग्नि तप झूठा है व्यर्थ शरीर को कष्ट देनेवाला है, सच्चे तपों में इसकी गणना की आवश्यकता नहीं। आत्मिक सिद्धियां कायोत्सर्ग और ध्यान के द्वारा प्राप्ति की जा सकती है। कर्म कलंक को नष्ट करने में ये दोनों तप बहुत समर्थ हैं। अखण्ड–चेतन–पिण्ड आत्मा ध्यान के द्वारा अनुभव में लायी जा सकती है।

वारिषेण कुमार—स्वामिन्! त्याग का जीवन में क्या महत्त्व है? क्या त्याग के विना आत्मकल्याण नहीं किया जा सकता है? त्यागी व्यक्ति को किस प्रकार का आचरण करना पड़ता है?

मुण्डि–पुत्र—वत्स! त्याग जीवन का सर्वस्व है। त्याग में जो आनन्द है, वह भोग में कभी नहीं। त्याग का सीधा–सादा अर्थ यही है कि जो वस्तु अपनी नहीं है, उसे पर समझकर छोड़ना और अपनी वस्तु को ग्रहण करना। ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य गुण आत्मा के हैं, इनको ग्रहण किये बिना आत्मसाधन संभव नहीं है। धन, वैभव, स्त्री–पुत्र आदि सब पर हैं इनको छोड़ना आवश्यक कर्त्तव्य है। पौद्गलिक कर्म जिनका आत्मा के साथ सम्बन्ध है, उनका भी त्याग करना त्याग में गर्भित है। कषाय, राग द्वेष, रूप, आत्मा की विभाव परिणति का त्याग करना त्याग है। अतएव अपने स्वरूप को प्राप्त करने और परवस्तुओं को छोड़ने का प्रयत्न आत्मा का निज धर्म है। प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का क्षणिक प्रभाव अवश्य पड़ता है परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है, इसका अन्य द्रव्यों के साथ तादात्म्य रूप से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

वारिषेण कुमार—प्रभो! प्रकरण वश हमलोग बहुत आगे निकल गये। गुरु का महत्व आत्म कल्याण के मार्ग में अत्याधिक है। कृपया गुरु कैसे आराध्य है, तथा उसकी आराधना कैसे करनी चाहिये, समझाने का कष्ट करें।

मुण्डि पुत्र—वत्स! प्रश्न आपका बहुत अच्छा है। आत्म कल्याण के मार्ग में गुरु का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि सच्चा गुरु अपने आदर्श के द्वारा शिष्य का कल्याण कर देता है। शिष्य आत्मज्ञान की पाठशाला में सच्चे गुरु को

पाकर अपने पाठ को ठीक तरह से समझ लेता है। यह निर्ग्रन्थ होता है, महाव्रतों का पालन करता है, संसार से बिल्कुल निस्पृही रहता है और बिना किसी इच्छा और आकांक्षा के आत्मोद्धार में रत रहता है। समाज से कुछ भी नहीं लेता, अधिक से अधिक देने का प्रयत्न करता है। संसार के प्रलोभन उसे विचलित नहीं कर सकते हैं। रत्नत्रय मार्ग का अनुयायी होता है तथा अपने अनुयायियों को भी उसी मार्ग पर ले जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों को जीवन में उतारता है तथा अहर्निश आत्म कल्याण में लगा रहता है। संसार के झगड़े-झंझटों से आत्मार्थि गुरु को कुछ भी मतलब नहीं रहता। उसका एकमात्र ध्येय अपनी आत्मा को शुद्ध करना रहता है।

वत्स ! जैसे सूर्य बिना आकाश, पुत्र बिना घर, दया बिना तप, चतुरंग सेना बिना युद्ध करना संभव नहीं, वैसे ही सम्यग्दर्शन बिना तपश्चर्या करना ठीक नहीं है। आत्मा की श्रद्धा हो जाने पर ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है। जो आस्तिक है, श्रद्धालु है और धर्म कर्म में विश्वास करने वाला है वही व्यक्ति इस संसार में आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्ति करता हुआ देखा जाता है। अन्याय, चोरी, हिंसा, झूठ, कुशील सेवन मिथ्या दृष्टि ही करता है । सम्यक्त्वी इन पापों से सदा घृणा करता है।

पुत्र के लिये, भाई, माता, पिता, आदि कुटुम्बियों के लिये जो अन्याय द्वारा धनार्जन करते हैं, उन्हें राज्य द्वारा तो दण्ड मिलता ही है, साथ ही नरक में दुःख भोगना पड़ता है । लूट कर धन लेने वालों को नाना प्रकार की नरक में यातनाएं सहनी पड़ती हैं।

मिथ्यात्व के आधीन होकर राजा पुण्य से प्राप्त हाथी, घोड़े, सेना आदि को साथ लेकर शिकार खेलने जाता है। मिथ्यादृष्टि को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता है, वह पाप को ठीक समझता है, इसलिये उसकी प्रवृत्ति पाप में निरन्तर होती रहती है। श्रेष्ठ सुख की इच्छा करने वाले भक्तों को सबसे पहले मिथ्यात्व का त्याग करना चाहिये। मिथ्यात्व इस जीव को नाना प्रकार के पाप मार्ग में घसीट कर ले जाता है। हिंसा मार्ग का निरूपण करने वाले आगम मिथ्यादृष्टि को पसन्द आते हैं, वह विषय-कषायों की पुष्टि के लिये अहर्निश कुशास्त्र का ही अध्ययन करता रहता है। जिन शास्त्रों के पढ़ने से वासनाओं को उत्तेजना मिले, पाप करने का प्रोत्साहन प्राप्त हो तथा जो अल्प ज्ञानियों द्वारा रचे गये हों वे सभी कुशास्त्र हैं। श्रेष्ठ शास्त्र के पढ़ने से आत्मा में अपूर्व आनन्द आता है, पाप और वासनाएं क्षीण हो जाती है तथा मन के दूषित विकार भी समाप्त हो जाते हैं। ध्यान और तप की प्रवृत्ति सच्चे शास्त्रों के स्वाध्याय से

ही हो सकती है। निवृत्तिरूप धर्म में प्रवृत्ति सदागम के अध्ययन से ही होती है। जैसे पितज्वर वाले के लिये दूध कड़वा लगता है, उसी प्रकार तीव्र कर्मोदय वाले को परमागम अच्छा नहीं लगता है। कुशास्त्र में असम्बद्ध बातें रहती हैं तथा मूर्ख लोग ऐसी भी अनेक मनगढ़न्त बातें लिख देते हैं जिससे पढ़नेवालो का अनिष्ट होता है।

जैसे सांप को गाय का सुस्वादु दूध पिलाने से विष बन जाता है, उसी प्रकार अपात्र को दान देने से अनिष्ट फल होता है। पत्थरीली ककरीली जमीन में खूब साफ सुथरा करने पर भी उत्तम अनाज उत्पन्न नहीं होता है, उसी प्रकार अपात्र को अच्छी वस्तु देने पर भी पुण्य नहीं होता। दान देते समय पात्र का सदा ध्यान रखना चाहिये। कुपात्र को दान देने से अधर्म होता है, क्यों कि वह दान में प्राप्त हुई वस्तु का सदुपयोग नहीं करता है। तोता जैसे सेमर के फूल की बाहरी सुन्दरता को देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है, परन्तु कुछ समय के पश्चात् उसकी नीरसता को देखकर निराश हो जाता है तथा उसे मानसिक कष्ट होता है, इसी प्रकार कुपात्र पहले अच्छा मालूम होता है, अपने वाह्य आकर्षण के कारण वह दाताओं को उपनी ओर खींचता है, किन्तु कुछ समय के पश्चात् उसकी सारहीनता स्पष्ट हो जाती है तथा उसके दुर्गुण मानसिक अशान्ति का कारण बनते हैं। बबूल के वृक्ष को कितना ही पानी दिया जाय, परन्तु उसमें सदा कांटे ही निकलते हैं। आम के बृक्ष में जल का सिंचन करने पर अमृततुल्य फल स्वभावत: निकलते हैं, इसी प्रकार अपात्र को दान देने पर भी वह अपनी अनीति को नहीं छोड़ता है। सत्पात्र सदा अपने न्याय-मार्ग में लगा हुआ स्व-पर के कल्याण का साधन बनता है।

मूर्ख जैसे घुंघुची के ढेर को अनाज समझ कर उससे क्षुधा की निवृत्ति करना चाहें तो नहीं कर सकता है, उसी प्रकार कृपात्र को दान देने से कल्याण नहीं हो सकता है। गुलाब के पेड़ में जल सिंचन करने से जैसे मनोज्ञ पुष्प आते हैं, परन्तु धतुरे को सिचन करने पर सुगंधित पुष्प नहीं उत्पन्न हो सकते, उसी प्रकार सत्पात्र को दान देने से अटूट पुण्य होता है, कुपात्र को दान देने से नहीं। उत्तम सत्पात्र दिगम्बर साधु होते हैं, इनको दान देने से अपरिमित पुण्य होता है। ये २८ मूलगुणों का पालन करते हैं, पांचों इन्द्रियों को जीत लेते हैं। इनकी आत्मा में अपरिमित तेज होता है।

मध्यम पात्र व्रती श्रावक होता है, आवश्यकतानुसार इसे दान देने से पुण्यार्जन होता है। व्रत पालन करने के कारण इसकी आत्मा पवित्र हो जाती है, यह ज्ञान-ध्यान में अनुरक्त रहता है। जघन्य पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि

श्रावक होता, इसको दान देने से भी स्व-पर कल्याण होता है । मिथ्यादृष्टि कुपात्र है, इसे दान नहीं देना चाहिये। रोगी, दुःखी, नंगे को आवश्यकतानुसार भोजन-वस्त्र देना करुणादान है, शक्ति के अनुसार इस प्रकार का दान भी देना चाहिये।

इस प्रकार जो धर्म का स्वरूप समझ कर धर्म साधन करता है वह अपना कल्याण कर लेता है। इस प्रकार आचार्य ने वारिषेण कुमार को उपदेश दिया ।

उपदेश श्रवण कर वारिषेण कुमार घर आया और विषय-भोगों से विरक्त होकर श्रावक धर्म का पालन करने लगा। उसका मन धर्म साधन में विशेष रूप से लगता था, संसार के विषय भोग उसे काटने दौड़ते थे । एक दिन सन्ध्या समय वह प्रतिमायोग धारण करने के लिये श्मशान भूमि में चला गया और वहां ध्यानास्थ हो गया। शिला के समान उसे शरीर की खबर भूल गयी और आत्मचिंतन में लीन हो गया ।

इधर मगध में मृगसेन नामक चोर ने राजश्रेष्ठि की स्त्री कीर्त्तिमती के गले का सुन्दर हार चुरा लिया और उसे लेकर दौड़ा । कर्मचारियों ने उसे हार चुराते हुए देख लिया जिससे वह दौड़ता भागता हुआ श्मशान की ओर गया। जब चोर ने देखा कि अब मेरा बचना कठिन है तो उसने उस हार को वारिषेण के पास फेंक दिया और स्वयं आगे चला गया। राजकर्मचारियों ने हार को जब वारिषेणकुमार के पास देखा तो उन्होंने कुमार को ही चोर समझा। वे सोचने लगे कि बचने के लिये कुमार ने यह ढोंग धारण किया है । लोभ कितना प्रबल होता है, कुमार के पास सभी वस्तुएं हैं फिर भी इन्होंने हार चुराने का प्रयत्न किया । इनकी हाथी, घोड़ा, स्वर्ण, रत्न, आदि सभी वस्तुएं थीं, पर इन्होंने इतना नीच कर्म क्यों किया ? यह स्वयं युवराज हैं, इनके मनमें चोरी करनेकी भावना कैसे उत्पन्न हुई ? क्या महाराज ने इन्हें धन नहीं दिया, जिससे इन्हें चोरी करनी पड़ी। लोभ कषाय बड़ी प्रबल होती है, मालूम होता है कि उसी लोभ की प्रबलता के कारण इन्होंने चोरी की है । हमारा कर्त्तव्य यह है राजा श्रेणिक से जाकर सच्चा-सच्चा समाचार कहें और कुमार की चोरी की बात बतलादें।

उपर्युक्त विचार-विमर्श कर वे सभी कर्मचारी राजा श्रेणिक के पास आये और उन्होंने चोरी की सारी बातें कह दीं तथा यह भी कहा कि हार वारिषेण कुमार के पास पाया गया है, इससे प्रतीत होता है कि कुमार ही चोर है।

कर्मचारियों की उपर्युक्त बातों को सुनकर राजा श्रेणिक मन में विचारने लगा कि क्षत्रियों का कार्य दुष्टों को दण्ड देना है । राज्य में जो भी व्यक्ति नियमों का उलंघन करता है, वह अवश्य दण्डनीय होता है । राजा के लिए पुत्र और प्रजा समान है, चोरी करने पर जितना दण्ड साधारण व्यक्ति को देना चाहिये, उतना ही दण्ड अपने पुत्र को भी । न्यायी राजा का ही राज्य स्थिर हो सकता है, न्याय के समक्ष परिवार का मोह छोड़ देना पड़ता है । जो राजा अन्यायी होता है, अपनी प्रजा को कष्ट पहुँचाता है, धर्म और नीति से प्रजा का पालन नहीं करता है, वह मरकर नरक जाता है । राजा के लिए प्रजा प्राणों के समान प्रिय होनी चाहिये । किसी भी प्रकार का कष्ट प्रजा के ऊपर आ पड़े तो राजा को उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये । अतएव इस समय मेरा कर्त्तव्य है कि वारिषेण कुमार को मैं मृत्यु दण्ड दूं अन्यथा मेरी अपकीर्त्ति संसार में फैल जायगी ।

राजा ने मृत्यु दण्ड का कार्य सम्पन्न करने वाले चाण्डालों को बुलाया और आदेश दिया कि वारिषेण कुमार को मृत्यु का दण्ड तुरन्त दिया जाय । यदि इस आदेश के पालन करने में तनिक भी इधर–उधर किया तो तुम लोगों को भी मृत्यु दण्ड दिया जायगा । बेचारे कर्मचारी राजा की आज्ञा सुनकर भयभीत हो गये, उनके मुख से एक भी बात न निकली और चुप-चाप सिर झुकाकर चले गये ।

कर्मचारी वारिषेण कुमार के पास जाकर बोला–युवराज ! महाराज श्रेणिक ने आपको प्राण दण्ड दिया है । आपने चोरी की है, आपके खजाने में किस बात की कमी थी, जिससे आपने नगर के राजश्रेष्ठि की पत्नी का हार चुराया । आपको हार चुराते समय तनिक भी विवेक नहीं था । दिखाने के लिये आप खूब धर्मात्मा बनते थे, परन्तु धर्म तो आपके भीतर लेश भर भी नहीं है । क्या चोरी करना ही आपका धर्म था ? छिः ! छिः ! ऐसा जघन्य काम आपने राजपुत्र होकर किया । महाराज ने आपको युवराज बना दिया था, आप भावी सम्राट् थे; फिर भी न मालूम आपने क्यों चोरी की ? शायद आपने समझा होगा मैं युवराज हूं, जो चाहें करूं । मेरा कोई क्या कर सकता है ? राजा भी दण्ड नहीं देगा; क्योंकि मैं उनका लाड़िला पुत्र हूं । पर महाराज श्रेणिक बड़े न्यायी धर्मात्मा राजा हैं, वे आपके अन्याय अत्याचार को कभी भी बरदास्त नहीं कर सकते हैं । अतः उन्होंने तत्क्षण प्राण दण्ड की आज्ञा दी है ।

वारिषेण कुमार प्रतिमायोग में लीन थे, अतः उन्होंने मृत्यु दण्डकों की बातें कुछ भी नहीं सुनी । वे स्वयं मन में सोचने लगे कि जब मृत्यु आती है, कोई भी उससे नहीं बच सकता । चाहें कोई तलघरों में घुस जाय, सुमेरु पर्वत पर

चढ़ जाय, गुफा में छिप जाय और भी बचने के जितने उपाय हो सकते हैं करें, परन्तु मृत्यु से वह कभी नहीं बच सकता है अतः आज चोरी का अपराध लगाकर मेरी मृत्यु होरही है, कोई परवाह नहीं है। मैं आत्म कल्याण में रत हूं, अब उपसर्ग दूर होने तक समाधि मरण धारण करता हूं। कर्मका फल विचित्र होता है,यह नाना प्रकार के दुःख देता है प्रबल कर्म के उदय को कोई नहीं टाल सकता है। त्रिखण्डाधिपति रावण ने कर्मोदय के कारण ही सोने की लंका को धूल में मिला दिया। कुम्भकर्ण जैसे प्रतापी और बलवान को भी कर्मों ने नहीं छोड़ा। पाण्डव, राम,लक्ष्मण, आदि सब किसी को कर्मों का फल भोगना पड़ा है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि में घी डालने पर अग्नि भभक उठती है, उसी प्रकार पूर्व जन्म के कर्म के उदय से दुःख भोगना पड़ता है। भव-भव में यह जीव अपने कर्म बन्धन के कारण ही दुःख उठाता है। इस प्रकार विचार कर वह भगवान के चरणों के ध्यान में लीन हो गया।

वह पुनः ध्यानस्थ हो विचारने लगा कि यह कर्माग्नि जिनधर्मरूपी जल से ही बुझाई जा सकती है तथा जिनागम रूपी ग्रहवाद से कुकर्म रूपी ग्रह को नाश कर सकते हैं। जब तक, जिन दीक्षा रूपी कुल्हाड़ी को नहीं अपनाया जायगा कर्म रूपी वृक्ष का छेदन नहीं हो सकता है! जिन व्रती रूपी पतवार को हाथ में लेकर जीवन नौका को संसार से पार किया जा सकता है। क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय आत्मा का अनिष्ट करनेवाली हैं, इनका विनाश भी जैनधर्म के धारण करने से ही हो सकता है। जिनस्तवन रूपी मेघ के जल से संसार की महा व्याधि दूर हो सकती है। जो व्यक्ति विषय-वासनाओं से छुटकारा चाहता है उसे निश्चय जिनेन्द्र प्रभु के चरणों का आश्रय लेना चाहिये। जिनतत्त्वाकांक्षा रूपी वाणों से कर्मवीर का छेदन करने में कठिनाई नहीं होती है। इस समय मेरे ऊपर जो संकट आया है, उसका निराकरण धर्म की शरण जाने पर ही हो सकता है।

संसार में रोग, वेदना जन्य नाना प्रकार का दुःख होता है। स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बियों के कारण संसार में कितने प्रकार के दुःख सहन करने पड़ते हैं। यदि कुटुम्ब पोषण के लिये धन प्राप्त हो गया तो समीचीन है, अन्यथा धनार्जन में नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। दरिद्रता से जो कष्ट होता है, वह तो और भी चिन्ता की वस्तु है। दरिद्रता देवी जिस घर में वास करती हैं, उसमें संसार के सभी कष्टों का निवास रहने लगता है। अतएव इन संसार के सभी कष्टों से मुक्त होने के लिये वीर प्रभु के चरणों की शरण ही एकमात्र आधार है।

इस प्रकार विचार करते-करते वारिषेण कुमार आत्म चिन्तन में स्थिर हो गया इधर मृत्यु दण्ड देने वाले उनके

मौन को देखकर परेशान हो गये और जब उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तो वे उसे मारने लगे। इधर शासनदेव का आसन हिला और उसने अपने प्रभाव से सभी अस्त्र-शस्त्रों को फूल की माला कर दिया। जितने प्रभावशाली अस्त्रों का वे लोग प्रयोग करते थे, वे सभी निष्प्रभ हो जाते थे। सभी लोग परेशान थे कि बात क्या है; राजा श्रेणिक के सामने जाकर हमलोग क्या उत्तर देंगे। राजा हमको मृत्यु दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ेगा। शासनदेव ने वारिषेण कुमार के सिर में मुकुट, गले में अस्त्र लगने के स्थान पर माला, कंधे में यज्ञोपवीत, अंगुली में मुद्रिका, भुजा में भुजबन्धन, आदि नाना प्रकार के आभूषण बना दिये। जब कर्मचारियों ने वारिषेण कुमार के दोनों हाथ की अंगुलियों को काटना प्रारम्भ किया तो काटने के स्थान पर मुद्रिकाएं बनती चली गईं। मस्तक पर जैसे ही उन्होंने दुधारा चलाया; वह वैसे ही मुकुट बन गया। इस प्रकार की आश्चर्यकारक घटनाओं को देखकर वे चकित हो गये और सोचने लगे कि कुमार वास्तव में जैनधर्म का अनुयायी है, यह पाप सन्तति को नष्ट करने वाला है। जैनधर्म के प्रभाव के कारण ही इस समय कुमार का वध करने में हम लोग असमर्थ हैं।

शासन देव ने रत्न जटित सिंहासन तैयार किया, उस पर कुमार को बैठा कर पूजा की, और स्तुति कर नाना प्रकार से गुणानुवाद करने लगे। आकाश में दुन्दुभि बाजे बजने लगे तथा देव लोग जय-जयकार करने लगे। जब नगर वासियों ने यह कोलाहल सुना तो सभी कौतुहलवश इस दृश्य को देखने के लिये श्मशान को ओर चले। चारों ओर से मृत्यु दण्ड देने वालों को कीलित पाया तथा वे चित्रलिखे के समान अपने स्थान पर स्थित थे। वारिषेण कुमार रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए ध्यानस्थ थे। देवों को पूजा करते हुए देखकर नगर निवासियों ने भी सम्यत्त्व चूड़ामणि की पूजा की।

जब बारिषेण कुमार प्रतिमायोग छोड़कर खड़े हुए तो नगर निवासियों ने उनकी विभिन्न प्रकार से स्तुति की और राजा श्रेणिक ने इस समाचार को सुनकर पुत्र का स्वयं आकर सम्मान किया। युवराज वारिषेण कुमार इस प्रकार पूजित होकर यश का भागी बना।

थोड़े दिन तक घर में रहने के उपरान्त वह विचारने लगा कि मैंने अनन्तानन्त भव ऐसे निकाल दिये, आत्मा का कुछ भी कल्याण नहीं किया। मैं कभी चींटी बना, कभी स्यार, कभी कुत्ता, कभी सिंह और कभी बकरी का शरीर धारण किया। इस प्रकार अनन्तकाल से इस संसार में जन्म-मरण के दुःख उठा रहा हूं। नरकनिगोद पर्याय भी धारण

करनी पड़ी है। यदि इस समय मानव पर्याय को प्राप्त कर भी ऐसे ही जन्म बीत जाय तो फिर मुझसा मूर्ख कौन होगा ? सबसे प्रथम तो जीव को पञ्चेन्द्रिय पर्याय का मिलना ही कठिन है, उसमें भी संज्ञी होना और भी मुश्किल है। तथा मनुष्य होकर विचारशील होना तो बहुत ही दुर्लभ है। ये विषय तो बाहर से सुन्दर मालूम होते हैं, परन्तु इनके भीतर विष भरा है। मोह के कारण ही तो मैं अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा हूं। सम्यत्त्व मुझे नहीं मिला, मिथ्यात्व के वश हो देव, शास्त्र, गुरु की निन्दा की, जिससे यह संसार बढ़ता चला गया। पुण्योदय से इस पर्याय में मुझे सम्यत्त्व की प्राप्ति हो गयी है, देव–शास्त्र–गुरु में मेरी अटल भक्ति है। इसी भक्ति के कारण ही एक बार मैं महान् दुःख से मुक्त हुआ हूं। वास्तव में इस वैभव में कुछ भी सुख नहीं। यह तो पहाड़ के समान है जो दूर से देखने में अच्छा लगता है, परन्तु पास जाने पर अच्छा नहीं लगता, इसी प्रकार संसार में धन–वैभव, विषय–कषाय, दूर से देखने पर अच्छे लगते हैं, परन्तु निकट पहुँचने पर ये बहुत बीभत्स मालूम होते हैं।

सांसारिक सुख इस प्रकार के हैं, जैसे सिर के बाल कुछ दिन तक काले रहते हैं, पर पीछे श्वेत हो जाते हैं, इसी तरह से आरम्भ में ये अच्छे लगते हैं; परन्तु दूसरे ही क्षण इनका रूप बदल जाता है। अथवा दीपक थोड़े समय तक प्रकाश देकर जैसे बुझ जाता है, उसी प्रकार ये भी विनाशीक है। चन्द्रमा की चांदनी कुछ दिनों के बाद जैसे अन्धकार में परिणत हो जाती है, उसी प्रकार ये सांसारिक वैभव नष्ट होने वाले हैं। जिनेश्वर ही इस समय एकमात्र पतवार है, अतः उन्हीं की शरण जाने से कार्य हो सकता है। अब मैं इस घर में एक क्षण के लिये भी नहीं रहूंगा, शीघ्र ही जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण करूंगा।

इस प्रकार विचार-विनिमय कर उसने सबसे प्रथम अपनी मां चेलना देवी के पास जाकर अपना विचार प्रकट किया और उससे दीक्षा ग्रहण करने की स्वीकारता ली। घर के सभी सदस्यों से आज्ञा लेकर वारिषेण कुमार ने सुरदेव नामक आचार्य से पुष्पगिरि पर जाकर जिनदीक्षा ली और घोर तपश्चरण करना आरम्भ किया। थोड़े दिनों के बाद उन्हें जंघाचरण नामक ऋद्धि प्राप्त हो गई। नीति है कि आत्म प्रसाधन करने वाले को संसार के वैभव अपने आप मिल जाते हैं। वह इन वैभवों को जितना ठुकराता है ये उसे उतना ही जकड़ते हैं। वैभव वास्तव में पुण्य के दास हैं। जंघाचरण ऋद्धि के प्राप्त हो जाने पर वारिषेण कुमार और भी उग्र तपस्या करने लगा। उसने द्वादश अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन और द धर्मों का मनन करना आरम्भ किया, जिससे उसे आत्मिक बोध उपलब्ध होने लगा।

माण्डली नामक पुरोहित की स्त्री का नाम पुष्पवती और उसके पुत्र का नाम पुष्पडाल था। यह पुष्पडाल वारिषेण कुमार का बचपन का मित्र था, तर्क, व्याकरण, न्याय, आदि सभी विषयों का यह पूर्ण पंडित था। इसका विवाह सूरत नामक काणाक्षी के साथ हो रहा था। वारिषेण कुमार सोचने लगा कि मित्र का कर्त्तव्य है कि वह मित्र का उद्धार करे, उसे सन्मार्ग पर लगावे। अतः मित्र पुष्पडाल को भव भ्रमण से बचाना चाहिये। ऐसा निश्चय कर वह पुष्पडाल के घर आया।

पुष्पडाल उस समय विवाह कर घर वापस आया था। उसके हाथ में विवाह का कंकण बंधा हुआ था। वारिषेण उसे पकड़ कर गुरु के पास ले गया और उससे कहा गुरु को नमस्कार करो। नमस्कार करने के पश्चात् वारिषेण ने गुरु से कहा—स्वामिन्! यह भव्य जीव आत्म कल्याण का इच्छुक है। संसार के बन्धन में नहीं बन्धना चाहता है, विषय—भोग में अपना नारकीय जीवन बिताने को यह तैयार नहीं है अतएव आप इसे शीघ्र दीक्षा दीजिये। यद्यपि पुष्पडाल की इच्छा दीक्षा लेने की नहीं थी, किन्तु वारिषेण कुमार के अनुरोध को टालने की क्षमता उसमें नहीं रही। अतः उसे लाचार होकर दीक्षा ग्रहण करनी पड़ी। यद्यपि नव—विवाहिता पत्नी का मोह उसे दीक्षा लेने में बाधक था, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह कुछ भी नहीं कह सका।

दीक्षा लेने पर भी उसका मन अपनी स्त्री में लगा रहता था। तप करने में उसके परिणाम नहीं लगते, वह अपनी स्त्री का ही ध्यान एकान्त में किया करता था। वारिषेण कुमार को यह सब घटना विदित थी, वह सोचने लगा कि मां जैसे बच्चे का अहित नहीं कर सकती है, वैसे मैं भी इस भव्य का कल्याण अवश्य करूंगा। इसको रास्ते पर लाने का उपाय करना पड़ेगा। मैं इसे आगम का बार—बार उपदेश देकर कर्म में दृढ़ करूंगा। इस प्रकार निश्चय कर वारिषेण कुमार ने उसे नाना प्रकार से समझाया—मित्र! इस पवित्र जिनदीक्षा को तुम व्यर्थ ही खो देना चाहते हो? यह दीक्षा देव गति में प्राप्त नहीं हो सकती हैं। देवों को मनुष्यों से सदा ईर्षा रहती है कि ये दीक्षा ग्रहण कर तपस्या द्वारा इसी भव में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। भरत चक्रवर्ती जैसे राजाओं को, जो छः खण्ड के चक्रवर्ती थे, संसार छोड़ते देरी नहीं लगी। चौबीस तीर्थंकरों ने संसार की असारता के कारण ही अपना राज्य—पाट छोड़कर दीक्षा ग्रहण की और आत्म कल्याण में लगे।

शान्तिनाथ प्रभु ने नाना प्रकार के तपश्चरण द्वारा अपने शरीर को कृशकर शीतोष्ण परिषहों को सहन

करते हुए निर्वाण प्राप्त किया, क्या ये सब सामान्य व्यक्ति थे ? जैसे छोटी नौका द्वारा छोटी नदी को पार किया जाता है, उसी प्रकार सामान्य व्रतों द्वारा देवगति के सुखों को भी प्राप्त किया जा सकता है । वास्तविक तप के द्वारा वैराग्य की प्राप्ति होती है, तप से निर्माण मिलता है तथा इन्द्र, अहमेन्द्र पद भी तप से ही प्राप्त होते हैं । स्त्री का शरीर कितना निन्द्य है, यह मल-मूत्र से भरा है, आत्म कल्याण के इच्छुक को इस में कभी भी अनुरक्त नहीं रहना चाहिये। यह शरीर सदा अपवित्र है । पान खाने, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करने, साज शृंगार करने से यह शरीर कभी भी पवित्र नहीं हो सकता है । जैसे मल देखकर घृणा होती है, वैसे इस शरीर को देखते ही घृणा होती है ।

सोना, चांदी, सम्पत्ति आदि वस्तुएं क्षणिक हैं । कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र भी साथ देने वाले नहीं हैं । चक्रवर्ती का परिवार साढ़े तीन करोड़ व्यक्तियों का होता है, पर दुःख-सुख अकेले चक्रवर्ती को भोगना पड़ता है । अतएव संसार के वास्तविक स्वरूप को समझ कर तुम मोह छोड़ दो और आत्मकल्याण में लग जाओ । जिस प्रकार बालू में कुंआ खोदने पर जल नहीं निकलता है, उसी प्रकार संसार के विषय भोगों में सुख का लेश भी नहीं है । जो व्यक्ति दीक्षा लेकर भी भोगों की आकांक्षा रखता है, वास्तव में वह महान् मूर्ख है । विषय-भोग रीक्ष, व्याघ्र और सांप के समान भयंकर हैं, ये नाम मात्र से ही जीव को उदरस्थ कर लेते हैं ।

भोग के लिये प्रिय वस्तु नारी मानी जाती है । इसका प्रत्येक अंग विषमय है । नारी की भृकुटी लोहे की सांकल के समान, नितम्ब यमराज के दूत के समान, नाक शिकारी कुत्ते के समान, मुख नरक के बिल के समान, दन्त-पंक्ति यम की दाढ़ों के समान, कुटिल चित्त कालकूट के समान, हाव-भाव विलास नरक के समान, आंखे सिंहनी के समान, भुज लताएं सर्पिणी के समान एवं गला वज्र के समान हैं । जो कामी व्यक्ति नारी को सुन्दरी समझता है, वह उसकी दृष्टि का दोष है । दृष्टि में राग-अंश रहने से कामी को कामिनी प्यारी लगती है । यह नरक ले जाने वाली है, मोक्षमार्ग में रुकावट डालने वाले कुत्ते के समान है । ऐश्वर्य घास की अग्नि के समान, राज-वैभव बादल के समान, युवावस्था इन्द्रधनुष के समान क्षण भंगुर हैं । रमणियों का भोग कपास की राख के समान, जीवन सड़े वृक्ष के समान है । अतएव तपस्या में दृढ़ होना यही जीवन का ध्येय है । इस प्रकार पुष्पडाल को वारिषेण कुमार बारह वर्ष तक समझाता रहा, पर उसके हृदय से अपनी स्त्री का मोह नहीं हटा ।

एक दिन वारिषेण कुमार के मन में विपुलाचल पर भगवान महावीर स्वामी के दर्शन की इच्छा हुई । अतः

वे प्रभु के वन्दन के लिये विपुलाचल की ओर चले। जब पुष्पडाल ने देखा कि वारिषेण कुमार विपुलाचल को चले गये तो उसने एक सन्तोष की सांस ली। सोचने लगा कि बारह वर्ष तक मुझे यहां जबरदस्ती रहना पड़ा। आज अच्छा अवसर मिला, अत; अब घर जाकर अपनी पत्नी से मिलूंगा। इस प्रकार विचार कर वह अपने घर को चल दिया। रास्ते में पत्नी से मिलने की मनमोहक कल्पनाएं करता जाता था।

जब वारिषेण कुमार प्रभु दर्शन कर वापस लौटे तो पुष्पडाल को उस स्थान पर न पाकर समझ गये कि मोही जीव को मोह खींच कर ले ही जाता है। इसका मुझे आत्म कल्याण अवश्य करना है, इतना समझाने पर भी इसका मोह नहीं हट रहा है, अतः अबकी बार इसे किसी भी तरह से धर्म में स्थिर करूंगा। इतना विचार कर वह ऋद्धि द्वारा पुष्पडाल के पास गये और घर पहुँचने के पहले ही उसे पकड़ लिया। उसे धर्म में स्थिर करने के लिये वारिषेण कुमार उसके साथ राजगृह गये। जब चेलना देवी ने वारिषेण कुमार को राजभवन की ओर आता देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि मुक्तिमार्ग बड़ा कठिन है, मालूम होता है कि इनके मन में अभी भोगों की आकांक्षा है, अन्यथा कुसमय में यह राजभवन में क्यों आते हैं? साथ में पुष्पडाल को देखकर चेलना देवीने एक सोनेका आसन तथा एक काष्ठासन बिछा दिया। वारिषेण कुमार काष्ठासन पर और पुष्पडाल सोने के आसन पर बैठ गये। चेलना देवी ने अपने वीतरागी पुत्र की अष्ट द्रव्यों से पूजा की और हाथ जोड़ कर कहने लगी—महाराज आज मैं धन्य हो गयी, आपने राजभवन में पधारने का कष्ट किया, आज्ञा दीजिये।

वारिषेण कुमार—आप अपनी तीन सौ बहुओं का शृंगार कर यहां बुलाईये। चेलना देवी ने अन्तःपुर में दासियां भेजकर शृंगार पूर्वक सभी बहुओं को उनके समक्ष बुलाया। सभी वारिषेण कुमार की पत्नियां सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर रति के समान मन्द-मन्द गति से आईं। वे सब सोचने लगी कि स्वामी ने आज हम को याद किया है, यदि हम सब अपने रूप सौन्दर्य से उनको अपने वश में कर लेगीं तो आज से हमारे भाग्य खुल जायंगे, वे दीक्षा छोड़कर यहीं रहने लगेंगे। देखें हमारा भाग्य क्या करता है, इस प्रकार संकल्प-विकल्प करती हुई वारिषेण कुमार के समक्ष उपस्थित हुईं। सभी रानियों के आ जाने पर उन्होंने पुष्पडाल की पत्नी को भी बुलाया। यह काली-कलूटी बकरी के समान मालूम होती थी, उसका मुख लंगूर के समान था। कानी आंख इसे और भी विरूप बना रही थी।

वारिषेण कुमार ने ओजस्वी शब्दों में अपने पुष्पडाल से कहा—मित्र बारह वर्ष तक जिस सुन्दरी का तुम

ध्यान करते रह गये, वह यही है। देखो यह कितनी सुन्दरी है ! आत्म कल्याणकारी तप को छोड़ कर आपने मोहवश इस कुरूपिणी का ध्यान किया। देखो ! इन सुन्दरियों को छोड़ते हुए मुझे विलम्ब नहीं हुआ। ये युवती रानियां रति के समान सुन्दरी, इन्द्राणी के समान गुणवती, सभी प्रकार के भोग योग्य थीं। मोह को जीतने के कारण नया संसार का वास्तविक रहस्य अवगत हो जाने के कारण मुझे इनके छोड़नेमें तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। विषय किंपाक फल के समान हैं, ये देखने में सुन्दर, पर भोग करते ही अपना विषैला प्रभाव डालने वाले हैं। धिक्कार है ऐसे विषयों को, जिनकी आकांक्षा से तुमने बारह बर्ष तक अपनी इस अनिन्द्य सुन्दरी का ध्यान किया। सुखकारी दीक्षा को छोड़कर इस प्रकार की स्त्री का ध्यान करनेवाला मूर्ख नहीं तो और कौन होगा ?

वारिषेण कुमार की बातों को सुनकर सुद्धन्ती—जो कुत्ता के समान कय (वमन) कर उसे खा लेता है, वह महा निन्द्य है। इस अस्थि–चर्ममय शरीर से स्नेह करता है, वह वेवकूफ है। ऐसे प्राणी का संसार में उद्धार होना असम्भव है। जिनदीक्षा आत्म कल्याण करने वाली है, इसे पाकर भी जो व्यक्ति अपने कल्यण से वंचित है वह बड़ा भारी मूर्ख है।

अपनी स्त्री की उपर्युक्त बातों को सुनकर पुष्पडाल बिचारने लगा—वारिषेण कुमार धन्य हैं, जो इतनी सुन्दर रमणियों को छोड़कर आत्मकल्याण में संलग्न हैं। मैंने बड़ी भारी गलती की जो विषयाकांक्षा को रख कर काली –कलूटी, काणाक्षी का ध्यान किया। मेरी स्त्री भी मुझसे ज्यादा ज्ञानवती है, उसे भी विवेक है, संसार मुझे प्राप्त नहीं हुआ। जिन विषयों को मैं बहुत सुन्दर समझता था, वास्तव में वे बीभत्स हैं, उनमें कुछ भी सार नहीं है। आत्मा का कल्याण इन विषयों के सेवन से कभी नहीं हो सकता है। वीर प्रभु का मार्ग ही श्रेयस्कर है, मैंने इतना समय व्यर्थ खोया। मोह रूपी पर्वत और कर्मरूपी इंधन को भस्म करने के लिये जिनदीक्षा से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। आज मेरा मिथ्यात्व नष्ट हो गया। वारिषेण कुमार ने मुझे सचेत करने के लिये अच्छा मार्ग अपनाया है, मेरे लिये आज का दिन बड़ा भारी कल्याणकारी सिद्ध होगा। मित्र, वही है जो मित्र की सच्चे दिल से भलाई करे। मेरा मित्र, मित्र नहीं; गुरु और हितैषी भी है। आज से मैं विषय-सुखों को सदा के लिये छोड़ता हूं। अब मुझे यहां पर एक क्षण भी रहना दुःखमय प्रतीत हो रहा हैं; ये दिव्यांगनाएं राक्षसियों के समान प्रतीत हो रही है। अतः अब शीघ्र ही चलकर तपस्या में रत होता हैं। मुझे मार्ग मिल गया।

इस प्रकार आत्मालोचना कर पुष्पड़ाल ने भावसेन मुनि के पास आकर तपस्या आरम्भ की। उग्र-उग्र तप करने लगा, अन्तिम समय समझ कर उसने समाधिमरण धारण किया और मरण कर महार्द्धिक देव हुआ।

वारिषेण कुमार पुष्पडाल को दीक्षा में स्थित कर अकेला भ्रमण करने लगा। बारह प्रकार के तपों को करता हुआ आत्मध्यान में लीन रहने लगा। अन्त में समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग किया, जिससे सर्वार्थसिद्धि विमान में तेतीस सागर की आयु पाकर देव हुआ।

इस प्रकार गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक को स्थितिकरण अंग की कथा कही।

सातवी कथा समाप्त

आठवीं कथा

आत्म कल्याण कारक स्थितिकरण अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से वात्सल्य अंग की कथा कहने की प्रार्थना की राजा श्रेणिक हाथ जोड़ कर विनीत भाव से कहने लगा—प्रभो वात्सल्य अंग का स्वरूप क्या है, और इसके धारण करनेवाले को क्या फल मिलता है ? कहें।

गौतम स्वामी — राजन् ! साधर्मी भाई के साथ स्नेह करना, उसके कष्ट और संकटों को दूर करने का प्रयत्न करना वात्सल्य अंग है। क्योंकि साधर्मी की श्रीवृद्धि से धर्म की श्रीवृद्धि होती है। जो व्यक्ति केवल अपने ही स्वार्थ की पूर्ति में लगा रहता है,अन्य के सुख-स्वार्थों की कुछ भी परवाह नहीं करता, वह निन्द्य है,ऐसे व्यक्ति से धर्म की हानि होती है। धर्म का आधार धर्मात्मा व्यक्ति है, जो धर्मात्मा व्यक्तियों का रक्षण, संवर्द्धन और सहाय्य करता है, वह धर्म का रक्षण, संवर्द्धन और सहाय्य करता है, अतः वात्सल्य अंग स्वार्थ को दूर करने वाला, मानव को संकुचित दायरे से हटा कर विस्तृत सेवा के मार्ग में लानेवाला है। ऐसे अंग का जो पालन करते हैं, वे केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेते हैं।

राजा श्रेणिक—स्वामिन् ! धर्मात्माओं की सेवा करना ठीक है। मुनियों की सेवा करना गृहस्थ का कर्त्तव्य है, परन्तु गृहस्थ की सेवा गृहस्थ क्या करेगा ? कृपा कर इसे समझाने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी — राजन् ! मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका यह चार प्रकार का संघ है। इसे चतुर्वर्ण संघ कहा जाता है। इन चार वर्णों की जो सेवा करता है, वह वास्तव में धन्य है। जैसे मुनियों की सेवा-शुश्रूषा से धर्म की वृद्धि होती है, उसी प्रकार श्रावकों की सेवा से भी। आपस में श्रावकों को भी एक-दूसरे की यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये। स्वार्थ के कारण जो आपस में विद्वेष करते हैं, कलह और विसंवाद में अपनी शक्ति को नष्ट करते रहते हैं, वे व्यक्ति नीच हैं। ऐसे व्यक्तियों से धर्म का उद्धार नहीं हो सकता है। प्रत्येक श्रमणानुयायी का यह कर्त्तव्य है कि वह सेवा के मार्ग में लगे जीवन का ध्येय आत्म सुधार है। यह तभी संभव है जब संसार के प्राणियों के साथ वात्सल्य

भाव रहे। इस अंग की कथा निम्न है।

कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम का नगर था। इसमें महापद्म राजा लक्ष्मीमती रानी के साथ आनन्दपूर्वक राज्य करता था। इसके कामदेव के समान सुन्दर, ऐश्वर्यशाली, जिनेन्द्र भगवान के भक्त पद्मराय और विष्णुकुमार नाम के पुत्र थे।

एक दिन श्रुतसागर नाम के आचार्य पांच सौ मुनियों के साथ संघ सहित विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे और नगर के बाहर के उद्यान में ठहर गये। वनपाल द्वारा मुनियों के आने का समाचार सुनकर राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रसन्न होकर उसने वनपाल को नाना प्रकार के वस्त्राभूषण और धन-वैभव पुरस्कार में दिये तथा सिंहासन से उतरकर परोक्ष नमस्कार किया। राजा ने नगर में आनन्द भेरी बजवा कर समस्त प्रजा को एकत्रित किया। सभी श्रावक समुदाय आनन्द सहित पूजा द्रव्य लेकर मुनियों की पूजा के लिये चला। राजा ने पुरजन-परिजन के साथ उस तेजस्वी मुनि संघ की प्रदक्षिणा की और परम तपस्वी, ज्ञानवान श्रुतसागर मुनिराज की पूजा की। पश्चात्, हिंसा, झूठ चोरी, सप्तव्यसन आदि पापों को दूर करने वाले समस्त सुखों की खान जैनधर्म को मन लगा कर सुना। महापद्म राजा उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया। वह सोचने लगा कि अनादिकाल से यह जीव मोहवश पञ्चेन्द्रियों के आधीन हो नाना प्रकार के पाप कर रहा हैं, इसने सभी प्रकार के अकरणीय कृत्यों को किया, इन्द्रिय तृप्ति के साधन विषयों को भोगा और नाना प्रकार के मनमाने कार्य किये। हितकारी गुरु के न मिलने से इस जीव को अनन्तानन्त जन्म ग्रहण करने पड़े। ऐसे सुअवसर को प्राप्त कर भी जो व्यक्ति अपना कल्याण नहीं करना चाहता है, उससे बढ़कर संसार में मूर्ख और कौन हो सकता है? जीवन ओस बिन्दु के समान अस्थिर है। आयु पानी के बुलबुले के समान अस्थिर है, अतः आत्म कल्याण में शीघ्र ही लगना चाहिये।

विरक्त होकर राजा महापद्म ने पद्मराय, विष्णुकुमार और सामन्तों को बुलाकर कहा—पूर्व पुण्य के उदय से राज्य प्राप्त होता है, जो व्यक्ति इस राज्य पदको प्राप्त कर अपना कल्याण नहीं करता है, अन्धा है। जैसे किसान आगे की फसल को ठीक तरह से उत्पन्न करने के लिये बीज बचा कर रखता है, उसी प्रकार सारे पुण्य फल को यहीं भोग लेना ठीक नहीं है, आगे के सुखों के लिये और पुण्यार्जन करना आवश्यक है, मानव जीवन स्वपर कल्याण के लिये है, जो व्यक्ति इस कार्य को नहीं करता हैं, वह अपने अमोल जन्म को यों ही बिता देता है, अतएव अब मेरी इच्छा तप

करने की है, इसके द्वारा दोनों लोकों का सुधार हो सकता है। पुण्योदय से ही जिनरूप धारण करने का अवसर प्राप्त होता है, इस प्रकार समझा बुझा कर पद्मराय को राज्यपद दे दिया।

पिता को दीक्षा लेते देखकर विष्णुकुमार हाथ जोड़ कर कहने लगा--हे तात ! यदि राज्य सम्पत्ति अच्छी है तो आप इसको क्यों छोड़ रहे हैं ? आप भोगों को अच्छा समझते हैं तो फिर क्यों छोड़ना चाहते हैं। स्त्रियां, हाथी, घोड़े, धन, धान्य आदि यदि कल्याणकारी सुख साधन हैं तो फिर आप इनको क्यों नहीं स्वीकार करते ? मिथ्यात्व के के कारण अनादिकाल से यह जीव भ्रमण कर रहा है। नरक निगोद आदि में भ्रमण करता हुआ यह जीव नाना प्रकार के दुःखों को भोग रहा है। अतः मेरा भी विचार दीक्षा लेने का है।

महापद्म—पुत्र ! अभी तुम्हारी अवस्था छोटी है। मैंने संसार के विषयों का स्वाद ले लिया है, अतः अब तपस्या करने का मैं अधिकारी हूं। अभी तुम्हें कुछ दिन तक संसार में रहना चाहिये; भोगों को भोगने से जब तृप्ति हो जाय तब तुम तपस्या करने चले जाना। जब तक संसार से विरक्ति न हो तपस्या करने कभी नहीं जाना चाहिये। तपस्या बड़ी कठिन वस्तु है, इसे सब कोई नहीं कर सकता है, किसी भी काम में जल्दीवाजी करना उचित नहीं है।

विष्णुकुमार--पूज्यवर तात ! आप का कहना किसी नय से ठीक है, मृत्यु छोटी और बड़ी अवस्था का विचार नहीं करती है। इसका कुछ भी ठीक नहीं है कभी भी आ जाय। संसार के भोगों में कुछ भी तथ्य नहीं है। मुझे इनसे पूर्ण विरक्ति हो चुकी है। अतः अब मैं जल्द ही दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं।

पद्मराय--आयुष्मान् ! तुम इतनी जल्दी विरक्त क्यों हो रहे हो ? यदि राज्य करने की इच्छा हो तो यह समस्त राज्य तुम्हें दे सकता हूं। यह राज्य पिता की थाती है; प्रजा का पालन धर्म न्याय से करना है। कोई भी व्यक्ति राज्य प्राप्त कर आनन्द से नहीं रह सकता है। यह एक बडा कर्त्तव्य है, इसकी जिम्मेदारी को निभाना बहुत बड़ा काम है, अभी तुम्हारे खेलने-खाने के दिन हैं; युवराज्य पद पर आसीन होकर प्रजा की सेवा करो, देश का उत्थान और उद्धार करो। अभी तपस्या करने के दिन नहीं हैं, पिता को मुनि दीक्षा लेने दो। उनकी दीक्षा प्राप्ति में तुम विघ्न मत बनो।

विष्णुकुमार स्वयं विचारने लगा—पुण्योदय से ही आत्मकल्याण का अवसर मिलता है। माता, पिता, भाई, बन्धु यह सब संसार के नाते हैं। अकेली ही आत्मा सुख-दुख को भोगनेवाली है। मोहोदय के कारण नरकादि योनियों में नाना प्रकार के कष्टों को सहा हैं। ऐन्द्रियिक सुखों से इस जीवको कभी तृप्ति नहीं हुई। जैसे ओस के चाटने से प्यास

शान्त नहीं हो सकती है, उसी प्रकार इन्द्रिय-सुखों के उपयोग में जीव को कभी शान्ति नहीं हो सकती है।

इस प्रकार ऊहापोह कर विष्णुकुमार ने महापद्म राजा के साथ श्री श्रुतसागर आचार्य से मुनि दीक्षा ग्रहण करली। महापद्म ने कैलाशपर्वत पर जाकर उग्र तपश्चरण किया और कर्मक्षय कर निर्वाण प्राप्त किया। विष्णुकुमार मुनि उत्तरोत्तर तपश्चरण करते हुए शास्त्राभ्यास करने लगे। पद्मराय भी अपने पिता के आदेशानुसार धर्म-न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उसने दरिद्रों को दान दिये, भगवान जिनेन्द्र के पूजा-महोत्सव कराये तथा अपने राज्य की वृद्धि की।

अवन्ती देश की उज्जैनी नगरी में जयवर्मा नाम का राजा राज्य करता था, इसकी रानी का नाम श्रीमती था। इस राजा के जैनमत के कट्टर शत्रु बलि, नमुचि, वृहस्पति और प्रह्लाद ये चार वेद-शास्त्र के पारंगत मन्त्री थे।

एक समय इस नगर में मोक्ष मार्ग के उपदेशक श्री अकम्पनाचार्य नाम के जैन मुनि अपने ७०० शिष्यों सहित पधारे और नगर के बाहर बगीचे में ठहर गये। जब आचार्य श्री को यह समाचार मिला कि यहां के राजा के चारों मन्त्री जैनधर्म के द्वेषी हैं, तो उन्होंने सब शिष्यों को बुलाकर आज्ञा दी कि जब राजा और मन्त्री यहां आवें तो मौनव्रत धारण कर ध्यानस्थ हो जाना। धर्म द्वेषी से वादविवाद करने से व्यर्थ ही झगड़ा बढ़ता है। सभी शिष्यों ने नमोऽस्तु कह कर गुरु आज्ञा को स्वीकार किया।

गुरु ने जिस समय शिष्यों को यह आदेश दिया था, उस समय श्रुतकीर्ति नाम के आचार्य नगर में भिक्षा के लिये चले गये थे, अतः गुरु का आदेश न सुन सके।

मुनियों के पधारने का समाचार जब नगर में पहुँचा तो सभी श्रावक उनके दर्शन करने आने लगे। राजा ने भी यह समाचार वनपाल के द्वारा अवगत किया और प्रसन्न होकर उसने कहा—परमावधिज्ञान के धारी, द्वादशांग के ज्ञाता अकम्पनाचार्य अपने शिष्यों सहित यहां पधारे हैं। अतः हम सब को चलकर आचार्य संघ की पूजा करनी चाहिये।

मंत्री—महाराज! ये नंगे साधु दर्शन करने के योग्य नहीं होते, अतः शास्त्रों में इन्हें अदर्शनीय कहा गया है।

राजा—हे मन्त्रिवर! ये लोग बड़े तपस्वी होते हैं। इन्द्रिय और मन को जीत कर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

मंत्री—राजन्! पाप-पुण्य, परलोक, जीव, स्वर्ग, मोक्ष कुछ भी नहीं हैं। ये सब कल्पना की वस्तुएं हैं।

स्वार्थियों ने अपना पेट भरने के लिये नाना प्रकार की कल्पनाएं कर रखी हैं। राज्य सुख छोड़कर तपस्या करने में शरीर को कष्ट देना कौन सी बुद्धिमानी है ? पुर्नजन्म कभी होता ही नहीं, मरने के उपरान्त भूत चतुष्टय रूप आत्मा इसी मिट्टी में मिल जाती हैं। जब तक सूक्ष्म परमाणुओं का संयोग रहता है। तब तक शरीर में गति रहती है, इसीका नाम चैतन्य है। इसके समाप्त होते ही मृत्यु हो जाती है, अतः आत्मा नाम का कोई पदार्थ ही नहीं, फिर तपस्या करने की आवश्यकता ही क्या ? प्राप्त हुए भोगों को छोड़ना, अपने शरीर को कष्ट पहुँचाना बेवकूफी के सिवा और क्या है ? ये नंगे साधु अपने मायावी वचनों द्वारा लोगों को जाल में फंसाकर व्यर्थ का ढोंग रचते हैं।

राजा — मंत्रिवर ! आत्मा का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वानुभव से प्रतिक्षण सुख-दुःख रूप में आत्मा का अनुभव करता रहता है। भूत चतुष्टय के संयोय से आत्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि जड़-भूत-चतुष्टय से चैतन्य आत्मा की उत्पत्ति होना असंभव है। सजातीय द्रव्य से विजातीय द्रव्य उत्पन्न नहीं हो सकता पुनर्जन्म को सिद्ध करनेवाले अनेक उदाहरण वर्तमान हैं। अनेक व्यक्तियों को अपने पूर्व जन्म की स्मृति रह जाती है। यदि आत्मा का चिरन्तन अस्तित्व न होता और उसके साथ रहने वाले पुण्य-पाप न होते तो फिर संसार में ज्ञान, बुद्धि सुख आदि की विषमता क्यों दिखलायी पड़ती ? अतः एक ऐसा कारण अवश्य मानना पड़ता है, जिससे इस संसार की विषमता का रहस्य सम्बद्ध है।

मन्त्री — राजन् ! पुनर्जन्म मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु इन नंगे साधुओं के दर्शन में क्या रखा है ?

राजा — मंत्रिवर ! देखने से क्या पाप लगेगा। यदि आप की इच्छा इनके दर्शन करने की नहीं है तो आप न चलें मेरी इच्छा है अतः मैं दर्शन करने जाऊंगा। इतना कह कर जब राजा दर्शन करने को चलने लगा तो मंत्रियों को भी झकमार कर उनके साथ दर्शन करने जाना पड़ा। उन्होंने सोचा कि यह राजा के साथ इस समय नहीं जायंगे तो राजा को बहुत बुरा लगेगा।

जब मुनियों ने राजा और मन्त्रियों को आते देखा तो वे सभी मौन होकर ध्यानस्थ हो गये। राजा सब को प्रणाम करता हुआ आगे बढ़ा। आगे जाने पर अवसर पाकर मन्त्रियों ने राजा से कहा —राजन् ! ये सभी मुनि मूर्ख हैं, इसी कारण मौनी बने बैठे हैं। और भी नाना प्रकार से मुनियों की हंसी, दिल्लगी करते हुए जा रहे थे कि उन्हें रास्ते

में श्रुतकीर्ति मुनि मिले, जो नगर में चले जाने के कारण गुरु आज्ञा नहीं सुन सके थे।

मुनि को आते हुए देखकर वे हंसकर कहने लगे—देखो अपने सामने एक तरुण बैल दौड़ता हुआ आ रहा है जब मुनि और पास आ गये तो उन्होंने और भद्दा मजाक किया।

मुनिराज ने गम्भीर होकर हितमित प्रियवचनों द्वारा उन मन्त्रियों की समस्त शंकाओं का समाधान किया। जीव, लोक, परलोक आदि के अस्तित्व को प्रबल प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया। मुनिराज ने कहा—अपने स्वरूप का प्राप्त होना धर्म है। जब तक कोई भी वस्तु अपने स्वरूप से च्युत रहती है, अधर्मावस्था में हैं। धर्म के धारण करने से समस्त प्रकार की विपत्तियों का संहार हो जाता है।

यद्यपि मुनिराज के वचन मन्त्रीयों को बुरे लगे- परन्तु राजा को खुश करने के लिये हां में हां मिलाते हुए पुनः कहने लगे—

अर्हन्त कहां हैं ? उन्हें किसने देखा है ? बिना देखे उनकी पूजा करना कैसे संभव है क्या आपने अर्हन्त को देखा है ? स्वर्ग–नरक आपको दिखलायी पड़ रहे हैं ?

मुनिराज—देखो ! अप्रत्यक्ष वस्तुओं पर भी विश्वास करना पड़ता है। तुमने अपने दादा को नहीं देखा, पर क्या उनका अस्तित्व नहीं मानते ? तुम्हें क्या अपना कुल–गोत्र दिखलाई पड़ रहा है, फिर क्यों अपने को उच्चकुल का कहते हो ? पुण्य–पाप का फल प्रत्यक्ष ही सुख, दुःख, हानि, लाभ रूप दिखलायी पड़ रहा है। जैसे राजा की आज्ञा भंग करने पर दण्ड मिलता है, उसी प्रकार भगवान की आज्ञा भंग करने पर दण्ड भोगना पड़ता है। यह जिनेन्द्र प्रभु सभी प्रकार के परिग्रह से रहित होते हैं, ये ही वीतरागी, हितोपदेशी, और सर्वज्ञ देव हैं। धर्म विरुद्ध चलने, संयम को नष्ट करने, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पापों में लिप्त रहने से पाप का बंध होता है। जिन्होंने धर्मार्जन किया है वे अभी भी प्रसिद्ध हैं। अहिंसा में धर्मराज, सत्य में कर्ण, अचौर्य में अर्जुन, शौच में गांगेय और अपरिग्रह में रामचन्द्र प्रसिद्ध हैं, इनका वर्णन पुराणों में आता है। अतः जिनेश्वर भगवान के उपदेश के अनुसार चलने से क्या लौकिक अभ्युदय प्राप्त करने में बिलम्ब होगा ? भगवान के बताये मार्ग का अनुसरण करने से क्या धर्म नहीं होगा ? जैसे दीपक के रहने से रास्ता दिखलाई पड़ता है, बीज रहने से खेती सफल होती है उसी प्रकार भगवान जिनेश्वर के

धर्म का पालन करने से तथा उनके बताये मार्ग का अनुसरण करने से अवश्य पुण्य होगा। भगवान जिनेश्वर का मत ही संसार में कल्याणकारी है।

जिनदीक्षा धारण करने वाले को सब सुख प्राप्त होते हैं। भूमि के निर्ग्रन्थ—स्वच्छ रखने से किसान को आनन्द होता है, आकाश के निर्ग्रन्थ—स्वच्छ होने से उत्सव सफल होता है, पानी के निर्ग्रन्थ—निर्मल पेय होने से पानी स्वादिष्ट लगता है, अग्नि के निर्ग्रन्थ—तेजस्वी रहने से आहार ठीक तरह से पकाया जाता है, चावल के निर्ग्रन्थ होने से आहार ठीक बनता है, सूर्य के निर्ग्रन्थ रहने से दिन शुद्ध होता है, चन्द्रमा के निर्ग्रन्थ रहने से रात्रि शुद्ध होती है, मन के निर्ग्रन्थ रहने से कार्य सिद्ध होता है, रत्न के निर्ग्रन्थ रहने से मूल्याधिक रहता है, सोने के निर्ग्रन्थ होने से सुन्दर आभूषण बनाये जाते हैं, इसी प्रकार मनुष्य के निर्ग्रन्थ होने से सभी अभिष्ट कार्यों कि सिद्धि होती है। अर्हन्त भगवान् का उपदेश निर्ग्रन्थ धर्म है, इसमें किसी भी प्रकार का छल-कपट या भेदभाव नहीं है अतः आत्मोद्धारक यही धर्म है। बच्चा, गाय, भूमि, सूर्य, वृक्ष, आकाश, समुद्र, घोड़ा, पर्वत आदि पदार्थ निर्ग्रन्थ हैं। संसार में निर्ग्रन्थपन से रहित कोई भी वस्तु नहीं है।

जो लोग यह कहते हैं कि दिगम्बर को देखने से गाय, बैल पशु मर जाते हैं, उस दिन भोजन नहीं मिलता, घर बिना सन्तान का हो जाता है। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो संसार में किसीं को भी खाने को नहीं मिलेगा, क्योंकि पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी दिगम्बर हैं। इनके दर्शन पद-पद पर प्रत्येक व्यक्ति को होते हैं। दिगम्बर मुनि का दर्शन करने से तो प्राकृतिक धर्म की ओर झुकाव होना चाहिये। पाखण्डी, ढोंगी और मिथ्याडम्बर में लगे हुए साधुओं के दर्शन से कल्याण की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि मयूरपिच्छी रहने के कारण दिगम्बर साधु को अदर्शनीय मानते हैं, तो यह भी मिथ्या है; क्यों कि मयूरपंख के मुकुट आदि भी बनते हैं और बड़े-बड़े लोग इनको काम में लाते हैं।

यदि दिगम्बरत्व को ही दोष मानते हैं, तो छोटे बच्चे, पशु, पेड़ आदि भी दिगम्बर रहते हैं, इनको देखने में भी दोष मानना पड़ेगा। यदि चटाई रखने के कारण दिगम्बर साधु में दोष है तो चोल देश में रहने वाले सभी चटाई पर शयन करते हैं। कमण्डलु में दोष बताते हो तो कमण्डलु नारियल से बनता है, फिर नारियल उपयोग में लानेवाले कैसे निर्दोष हो सकेंगे? यदि स्नान न करने से दोष मानते हैं तो सूर्य, चन्द्र को दोष क्यों नहीं लगता? मैल लगी रहने से दोष मानते हैं तो पृथ्वी पर कूड़ा सदा पड़ा रहता है, फिर उसे क्यों देखते हैं? खड़े होकर भोजन करना दोष का

कारण है तो पशु खड़े होकर आहार करते हैं, फिर उन्हें क्यों देखते हैं ? पंच महाव्रत धारण करने से दोष समझते हैं तो भीष्म, कर्ण, युधिष्ठिर आदि एक एक व्रत के धारण करने वाले निर्दोष कैसे माने जा सकेंगे । यदि निर्वाण प्राप्त करना झूठ है, तो गाय की योनी में ३३ करोड़ देवताओं का निवास है, यह कैसे सच माना जायगा ?

कर्मरूपी शत्रु को नष्ट करने के लिये एक जिनधर्म ही सहायक है । जिनेश्वर की आज्ञानुसार चलना ही एकमात्र कर्त्तव्य है । मद्यपायी, हिंसक और मांसाहारी देव कभी नहीं हो सकता है । मान करना तथा यज्ञ के नाम पर हिंसा करना महापाप है; हिंसा त्रिकाल में भी धर्म नहीं हो सकती है । रावण ने जिन वचनों का उलंघन कर परस्त्री हरण किया, कौरवों ने परिग्रह लालसा को बढ़ाया, इसका परिणाम सर्व विदित है ।

शराबी और मांसाहारी नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं । जब तक धर्म का पूर्ण परिज्ञान न हो जाय तब तक अविश्वास नहीं करना चाहिये । जैसे मन्त्र, विद्या और आयुर्वेद आदि की शक्ति को न जानकर इनके प्रभाव के सम्बन्ध में अविश्वास नहीं किया जा सकता है; इसी प्रकार आत्मा, परलोक आदि के सम्बन्ध में अविश्वास नहीं किया जा सकता है । जिन्हें हम देव समझते हैं, उनकी मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों से पूजा करना बड़ी भारी मूर्खता है । देव कभी भी निंद्य पदार्थों को ग्रहण नहीं करते । क्षेत्रपाल, दिग्पाल आदि सम्यग्दृष्टि जिनेन्द्र भगवान् की आराधना में तत्पर कुदेव नहीं कहे जा सकते हैं, ये कभी भी निन्द्य पदार्थों को ग्रहण नहीं करते हैं । अत: सम्यग्दृष्टि बन कर अपनी आत्मा की शुद्धि करनी चाहिये ।

मुनिराज ने अकाट्य युक्तियों से आत्मा और पुनर्जन्म सिद्ध किया । इनके प्रवचन को सुनकर राजा जयवर्मा बहुत प्रसन्न हुआ और संघ का जयघोष करने लगा । ईर्ष्यालु मन्त्रियों से कहा देखो—दिगम्बर साधु के वचनों में कितनी शक्ति है । हम सभी मन्त्रमुग्ध होकर कितनी तल्लीनता के साथ इनका उपदेश सुन रहे हैं । धन्य है, इन मुनियों को संसार के समस्त विकार भावों से रहित हैं, निर्मल परिणाम के धारी हैं । इन महान तपस्वियों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । राजा ने व्यंग्य पूर्वक बलि से कहा—देखो पीछे तुम इन मुनियोंकी निन्दा करते थे, इनको अपशब्द कहते थे । देखो ये कितने प्रभावशाली हैं । इनके सामने तुम्हारे बोलने की शक्ति है । पीछे बड़बड़ाने से कुछ भी लाभ नहीं, सामने बोलिये जब मालूम होगा । इस प्रकार सभी लोग मुनियों की वंदना कर चलने लगे । थोड़ी दूर आगे जाने पर बलि कहने लगा—

यह तपस्वी मायावी है। इन्होंने माया के कारण सब को वश में कर लिया है। मालूम होता है कि यह मन्त्रवादी भी है, इसी से इसने सबकी जिह्वा को अपने वशमें कर लिया है। ऐसे धूर्तों से सदा सावधान रहना चाहिये। इन नंगे साधुओं को लज्जा भी नहीं आती है। इनमें अधिकांश मूर्ख हैं। छल कपट कर अपना उदर पोषण करते हैं। महाराज ! आप भी भोले हैं, इसलिये इनके आधीन हो गये।

राजा—मन्त्रीवर ! ऐसे सच्चे साधुओं की निन्दा नहीं करनी चाहिये। ये बड़े प्रभावशाली, सात्त्विक हैं। इनका आत्मतेज अपूर्व है। आप स्वयं सोचिये कि उनके सामने एक शब्द भी आप नहीं बोल सके। इस समय आप व्यर्थ ही ऊटपटांग बातें करते हैं।

बलि—राजन् ! इस समय आपकी बुद्धि मारी गयी है, इसी से आप इन धूर्तों की प्रशंसा करते हैं।

राजा—अरे दुष्ट ! तुम्हें बोलना भी नहीं आता है। कुत्ते की पूछ को कितना ही सीधा किया जाय पर वह सीधी नहीं होती, इसी प्रकार दुष्ट सदा मिथ्यात्व के नशे के कारण अपनी गलती को नहीं छोड़ते हैं। जो राजा के सामने इस प्रकार की ऊल-जलूल बातें कहता है, उसे मन्त्रीपद से हटा देना परमावश्यक है। मन्त्री को सर्व प्रिय होना चाहिये। अभिमानी द्वेषी और परपीडक कभी मन्त्री नहीं हो सकता है, आज से तुम्हें मन्त्री पद से हटाता हूं। तुम चारों के चारों ही दुष्ट प्रकृति के हो. इस लिये मैं अपना नया मन्त्री मण्डल बनाऊंगा।

राज्य सभा में आकर राजा ने अपनी परिषद् के सभी सदस्यों को बुलाया और अपना फैसला उनके सामने उपस्थित किया। सभी सदस्यों ने एकमत से राजा की बात का समर्थन किया और नये मन्त्रियों का निर्वाचन किया गया अभिमानी, द्वेषी और ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी भी राज्य शासन के योग्य नहीं हो सकता है। जो सेवाभावी है, त्यागी है और जितेन्द्रिय है वही व्यक्ति अमात्य पद पर आसीन हो सकता है।

बलि, बृहस्पति आदि सभी मन्त्री विचारने लगे कि इन मुनियों के कारण ही हमारी यह दुर्दशा हुई है। अतः इनसे बदला अवश्य लेना चाहिये। इन सबका गुरु आचार्य बड़ा धूर्त है, उसने ऐसी राजनीति चली है, जिससे हम लोगों को यह अपमान और संकट सहना पड़ा है। इस जयवर्मा राजाने हमारा बड़ा तिरस्कार किया है, इसके ऊपर नंगे साधुओं की माया प्रभाव डाल चुकी है; अतः अवसर मिलने पर इन सबसे बदला चुकाया जायगा। हम लोगों ने वेद, वेदांग

आदि सभी शास्त्रों का अध्ययन किया है, क्या ये लोग हमारे सामने ठहर सकेंगे। इस प्रकार नाना तरह से मन सूबे बांधते हुए हस्तिनापुर में पद्मराय के यहां जाकर रहने लगे। राजा पद्मराय ने बलि को मन्त्री पद और अन्य तीनों को अन्य कार्य सौंप दिये।

पद्मराय राजा के यहां थोड़े दिन रहने के बाद बलि ने पूछा—महाराज! आप का स्वास्थ्य दिनोदिन क्यों गिरता जाता है, आपको कौनसी मानसिक चिन्ता है? कृपाकर आप कहें, मैं सर्वशक्तिमान हूं, आपकी सारी चिन्ता और व्यथा दूर करने की शक्ति मुझ में वर्तमान है।

पद्मराय—मन्त्रिवर! मेरे पिता चक्रवर्ती थे, सभी देशों के राजा उनके सेवक थे। उनके दीक्षा लेने के बाद से एक-एक कर सभी देश निकलते जा रहे हैं। अभी हाल में कुम्भपुर के सिंहकीर्ति राजा ने बगावत की है, हमारी आधीनता छोड़कर वह स्वतन्त्र हो गया है। उसके पास पर्याप्त सेना है, अतः हमसे वह अजेय है। इसी कारण चिन्ता से मेरा मन जर्जरित हो गया है।

बलि—राजन्! आप चिन्ता न करें। मुझे थोड़ी सी सेना दें, मैं उस राजा को अपने बुद्धि कौशल से पकड़ लाऊंगा।

थोड़ी-सी सेना लेकर बलि ने कुम्भपुर की ओर प्रयाण किया और थोड़े दिनों के पश्चात् कुम्भपुर को घेर लिया। छल-बल से सिंहकीर्त्ति को अपना बन्दी बना लिया और राजा पद्मराय को लाकर सौंप दिया। इस कार्य से राजा पद्मराय बलि से बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—आपने मेरा बड़ा भारी कार्य किया है। जो कुछ मांगना हो मांगो, दूंगा।

बलि—महाराज! आप बड़े उदार हैं, जो मेरे जैसे तुच्छ आदमी का उपकार मानते हैं। यदि ऐसा है तो आप मेरे वरदान को अपने ही भंडार में रहने दीजिये, जब मुझे जरूरत होगी मांग लूंगा। राजा ने उसकी बात स्वीकार कर ली और कहा कि जब तुम्हारी इच्छा हो तब मांग लेना।

कुछ समय के पश्चात् अकम्पनाचार्य का सात सौ मुनियों का संघ हस्तिनापुर के उद्यान में आकर ठहरा। बलि को संघ का समाचार मिलते ही चिन्ता हो गयी कि अब किसी भी प्रकार अपने अपमान का बदला लेना चाहिये।

यदि इस समय धरोहर में रखा अपना वरदान मांग लूं तो वड़ा अच्छा हो ऐसा निश्चय कर राजा के पास गया और प्रणाम कर वरदान मांगा।

वलि—राजन्! मुझे सिर्फ सात दिन के लिये राज्य दे दीजिये। राजा ने प्रसन्न होकर बलि की मांग स्वीकार कर ली और सात दिन के लिये उसे राजा बना दिया गया।

राजा होने के बाद जब वलि बिल्कुल निर्भय हो गया तो उसने जहां मुनि ठहरे हुए थे, नरमेध यज्ञ कराना आरम्भ किया। मुनियों के चारों ओर कांटों की बारि लगा दी तथा यज्ञ करने लगा। उसने मुनियोंके नाशके लिये ही यज्ञ आरम्भ किया था। यज्ञ में मांस, हड्डी, रक्त आदि की आहुतियां दी जा रही थीं तथा दूषित वायु मुनियों को महान् कष्ट दे रही थी। जीवित प्राणियों का भी होम किया जा रहा था, जिससे वहां बड़ी भारी दुर्गन्धि आ रही थी। मुनियों के ऊपर बड़ा भारी उपसर्ग किया जा रहा था। मुनियों ने विचार कर प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग दूर नहीं होगा, अन्न-जल का त्याग है। इस प्रकार कषाय, वासना आदि का त्याग कर सल्लेखना ग्रहण की।

नगर के सभी लोग मुनियों के ऊपर भयानक उपसर्ग देखकर अधीर हो गये। सब त्राहि-त्राहि करने लगे। दुष्ट अधर्मी वलि राजा सात सौ मुनियों की वलि करने जा रहा है। नगर के लोग नाना प्रकार से चिन्तित थे। जब राजा ही ऐसा अन्याय कर रहा है तब रक्षा कौन कर सकता है। पद्मराय ने सात दिन के लिये वलि को राजा बनाकर महान् पाप किया। इस पाप के वल से पृथ्वी रसातल को चली जायगी। इस प्रकार सोच विचार कर सभी नगर निवासियों ने भी उपसर्ग दूर होने तक आहार-पानी का त्याग कर दिया। नगर में भयंकर उदासी छा गयी, सभी नागरिक दुःख और शोक में निमग्न हो गये।

दुर्गन्धित धूम ने मुनियों के गलों को बन्द कर दिया। उनकी श्वांसे रुक गयीं, मांस और लोहू आदि की बदबू ने उनको महान् कष्ट दिया यद्यपि धैर्य धारण कर वे शान्ति पूर्वक सभी कष्टों को सहन करते रहे। इनके प्राण कण्ठ में आ गये थे।

आधी रात के समय मिथिलापुर नाम के नगर के वन में सारचन्द नाम के आचार्य ने कंपायमान श्रवण नक्षत्र को देखकर अवधिज्ञान के द्वारा जाना कि कहीं मुनियों को घोर कष्ट हो रहा है। अतः हा! हा!! कष्ट!!! इस प्रकार के दुःख सूचक शब्द उनके मुंह से निकले उनके पास में रहने वाले पुष्पदन्त नाम के मुनि बोले—प्रभो! किसे

कहां, क्या कष्ट हो रहा है ।

सारचन्द आचार्य—हस्तिनापुर के वन में नीच बलि ने नरमेध यज्ञ आरम्भ किया है । जिस स्थान पर यह यज्ञ हो रहा है, वहां अकम्पनाचार्य का सात सौ मुनियों का संघ ठहरा हुआ है, बलि ने इस संघ से अपना बैर प्रतिशोध करने के लिये यह कुकर्म किया है । हड्डी मांस चमड़ा आदि के जलाने से महान् दुर्गन्ध आ रही है, जिससे मुनियों को महान् कष्ट हो रहा है ।

पुष्पदन्त—गुरुदेव ! यदि इनके बचने का कोई उपाय हो तो बतलाइये । मैं शक्ति भर प्रयत्न करूंगा । यह धर्म के ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आई है । इसके निवारण के लिये बड़ा त्याग करना भी नगण्य है । यदि मुझ अकिञ्चन से कुछ सेवा हो सके तो आप आज्ञा दें, मैं सब कुछ करने को प्रस्तुत हूं ।

सारचन्द आचार्य—वत्स ! तुम आकाशगामी हो इस कार्य को सम्पन्न करने में तुम निमित्त बन सकते हो । तुम धरणी भूषण पर्वत पर चले जाओ, वहां पर विष्णुकुमार नाम के मुनि तप कर रहे हैं, उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गयी है । इस कार्य को पूर्णतया सम्पन्न करने की क्षमता उनमें है । तुम उनसे जाकर सभी वृत्तान्त कहो, धर्म की रक्षा हो जायगी ।

पुष्पदन्त मुनि आकाश मार्ग से तुरन्त चले और शीघ्र ही विष्णुकुमार मुनि के पास पहुँच गये । वन्दना कर अपना सारा वृत्तान्त उनको सुनाया तथा उनसे अनुरोध किया कि आपको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है अतः आप मुनियों का उपसर्ग दूर करें । आपके द्वारा ही यह महान् कार्य सम्पन्न होगा; क्योंकि वात्सल्य अंग का पालन करनेवाले इस समय इस भरतक्षेत्र में आप ही हैं ।

विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया ऋद्धि की परीक्षा करने के लिये एक भुजा लम्बी की तो समुद्र में जाकर पड़ी । परीक्षा के अनन्तर वह शीघ्र ही अपनी ऋद्धि के प्रभाव से मुनियों के उपसर्ग स्थान पर पहुँचे । सबसे पहले राजा पद्मराय के पास उनके महल में गये और पद्मराय को बुलाकर कहा—"इस कुरुवंश में आप कलंक क्यों लगा रहे हैं । इस वंश की कीर्त्ति जगत्प्रसिद्ध है, इसमें राजा श्रेयान्स सर्व प्रथम दानी हुआ । शान्ति, कुन्थु और अरहनाथ ये तीन तीर्थंकर हुए मेरे पिता चक्रवर्ती हुए, जिन्होंने आप को राज्य तिलक देकर तप कर निर्वाण पद प्राप्त किया । आप ऐसे समुज्ज्वल वंश में उत्पन्न होकर मुनियों के नाश का महान् पाप अपने ऊपर क्यों ले रहे हैं ?"

पद्मराय——मुनिनाथ ! मैंने मुनियों के ऊपर न उपसर्ग किया है और न करने की आज्ञा दी है। यह सब दुष्ट बलि ने किया है। सिंहकीर्त्ति को वह छल,बल से पकड़ लाया था। मैंने प्रसन्न होकर उसे मन चाहा वरदान मांगने को कहा; परन्तु उस समय उसने वह वरदान नहीं लिया और 'आवश्यकता होगी तब मांग लूंगा' ऐसा कहकर मेरे ही पास रहने दिया। अब उसने इस समय ७ दिन के लिये राज्य ले लिया है, मैं वचन बद्ध हूं। यदि अपने वचनों को लौटाता हूं तो कुरुवंश में कलंक लग जायगा। मेरी हंसी होगी तथा मेरा परलोक भी बिगड़ जायगा। आप सब प्रकार समर्थ हैं, जैसे चाहें मुनियों का उपसर्ग दूर करें। आप में तपस्या का अपूर्व तेज है, मुझ अकर्मण्य से इस समय कुछ होने का नहीं है।

राजा पद्मराय के उपर्युक्त वचनों को सुनकर विष्णुकुमार मुनि ५२ अंगुल का शरीर बनाकर ब्राह्मण के वेष में 'जहां बलि दान कर रहा था, पहुँचे। बलि ने उन्हें देखकर आदर सत्कार किया और बोला–विप्र क्या चाहते हैं आप स्वेच्छानुसार जो मांगेगे, दूंगा। इस समय मैं सब प्रकार समर्थ हूं। ब्राह्मणों को मुंह मांगा धन दूंगा।

बलि के बचन सुनकर मुनिराज बोले——मुझे धन दौलत की आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण को आत्मकल्याण से ही प्रयोजन है, संसार के विषयों की उसे आवश्यकता नहीं। अतएव आप मुझे केवल तीन कदम पृथ्वी दीजिये, जिस पर बैठ कर मैं ध्यान कर सकूं। हां, यह भूमि मैं अपनी डेग से नाप कर लूंगा। यदि आपको देना हो तो दीजिये, अन्यथा अस्वीकार कीजिये, जिससे दूसरे किसी दानी का द्वार देखूं।

बलि——विप्रदेव ! इतना अल्प दान देते हुए मुझे लज्जा का अनुभव करना पड़ेगा। आप और कुछ मांगिये। इस समय आपको मैं सर्वस्व देने में समर्थ हूं।

विप्रवेषी मुनिराज——वत्स ! हमारा सन्तोष ही एक मात्र धन है। ब्राह्मण को स्वपर कल्याण में रत रहना चाहिये। जो ब्राह्मण तृष्णा करता है, धन की लालसा सदा करता रहता है वह अपने पद से च्युत हो जाता है। आत्म ध्यान करने के लिये तीन कदम भूमि पर्याप्त है, अतः आप देना चाहें तो यही दान दीजिये।

वलि ने ब्राह्मण वेषधारी मुनि को तीन डेग जमीन देने का संकल्प कर दिया, जो मुनि ने स्वस्ति कहकर स्वीकार किया।

विक्रिया ऋद्धि के द्वारा विष्णुकुमार मुनि ने अपना शरीर बड़ा बनाकर मापना शुरू किया तो पहली डेग सुमेरु पर्वत पर पडी और दूसरी मानुषोत्तर पर्वत पर । जब तीसरी डेग के लिये जमीन न रही तो बलि से बोले—एक डेग भूमि और दीजिये और वह स्थान बताईये जहां वह पृथ्वी है

बलि—प्रभो ! अब पृथ्वी नहीं है, आप तीसरी डेग मेरी पीठ पर रख लीजिये । इतना सुनते ही ब्राह्मण वेषधारी मुनि ने तीसरी डेग बलि की पीठ पर रखी तो बलि का शरीर थर-थर कांपने लगा । देव और असुरों के आसन कंपायमान हो गये और अवधिज्ञान से समस्त वृतान्त जानकर नारद और सुर असुर वहां आये । मुनि विष्णुकुमार को नमस्कार कर कहने लगे—करुणानिधे ! अब क्षमा कीजिये, बलि राजा की पीठ पर से चरण हटाईये ।

मुनिराज ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया, जिससे उनके प्रताप से सर्वत्र शान्ति फैल गयी और धन्य-धन्य की ध्वनि गूंजने लगी । बलि ने यज्ञ बन्द कर सब मुनियों का उपसर्ग दूर किया ।

राजा पद्मराय भी इस समाचार को सुनकर वहां आया । मुनियों को नमस्कार कर स्तुति करने लगा—प्रभो ! आप अहिंसा के अवतार हैं । आपने अपने जीवन में अहिंसा धर्म को पूर्णतः उतार लिया है । क्षमा आपमें पूर्णरूप से वर्तमान है, शत्रु और मित्र आपके लिये समान हैं । जो कोई आपको कष्ट पहुँचाता है, आप उससे अप्रसन्न नहीं होते । स्तुति करने वाले सेवक से आप प्रसन्न नहीं होते हैं । राग द्वेप को आपने पूर्णतया जीत लिया है, आपमें लेशमात्र भी रागभाव नहीं है । बाईस परिषह सहन करने में आप समर्थ हैं । विकार और वासनाओं को आपने पृथक कर दिया है । आपके त्याग और तप को धन्य है ।

मुनि विष्णुकुमार की ओर संकेत कर राजा कहने लगा—परोपकारी व्यक्ति स्नेहवश अन्य लोगों की भलाई के लिये अपना अहित भी कर लेते हैं । वात्सल्य गुण ऐसा ही है, यह साधर्मी की भलाई और कल्याण के लिये सदा प्रेरणा देता है । मुनिराज ! आपने अपनी तपस्या की परवाह न कर सात सौ एक मुनियों की रक्षा की है । आपके समान धर्मात्मा इस समय शायद ही कोई होगा । आज आपने जैन धर्म की रक्षा कर बड़ाभारी पुण्य का कार्य किया है । आप धन्य हैं, धन्य हैं ।

अन्य श्रावक भी इस समाचार को सुनकर वहां पहुँचे और मुनियों की वैयावृत्ति करने लगे । क्योंकि यज्ञ के दूषित धुंऐ के कारण सब मुनियों के गले फट गये थे और आंखों से पानी बह रह था, अतः सब मुनि बेसुध पड़े थे ।

यह देखकर श्रावकों ने उनके सचेत करने का उपचार किया और सबके नाक, नेत्र आदि अंग जल से धोकर हवा की, जिससे मुनि सचेत हो गये,

राजा पद्मराय—इस दुष्ट बलि को इस प्रकार का दण्ड देना चाहिये, जिससे फिर यह कभी भी इस प्रकार का दुष्कृत्य न कर सके। इस नीच ने मेरे राज्य में इस प्रकार का कुकृत्य कर मुझे बहुत कलंकित किया है। अब इसको प्राण दण्ड दिये बिना मुझे शान्ति न मिल सकेगी।

विष्णुकुमार—राजन्! जो जैसा करता है, उसे वैसा अपने आप भोगना पड़ता है। आप इसे क्षमा कर दें। अहिंसा धर्म के समान आत्मा का अन्य कोई उपकारी नहीं है। धर्म के नाम पर हिंसा करने वालों को नाना प्रकार की कुगतियों में भ्रमण करना पड़ता है।

मुनिराज की इन सारगर्भित बातों को सुनकर बलि, नमुचि, बृहस्पति और प्रह्लाद ने पश्चात्ताप प्रकट करते हुए उनके चरणों में जा मुनिदीक्षा ग्रहण की।

अकंपनाचार्य के संघ को हस्तिनापुर निवासियों ने आहार दान दिया। यह दिन श्रावणी पूर्णिमा का दिन था।

इस प्रकार वात्सल्य अंग का पालन विष्णुकुमार मुनि ने किया। अनन्तर वह गुरु के पास गये और अपने दोषों की आलोचना कर छेदोपस्थापना विधि से महान् तप किया। कुछ दिनों के पश्चात् कर्मबन्धन को नष्ट कर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।



नौवीं कथा

मोक्ष देने वाले वात्सल्य अंग की कथा सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से प्रभावना अंग की कथा कहने का अनुरोध किया। राजा श्रेणिक हाथ जोड़कर कहने लगा–प्रभो ! प्रभावना अंग का स्वरूप और इसके धारण करने वाले को क्या फल मिलता है ? बतलाने की कृपा करें।

गौतम स्वामी—-राजन् ! साधर्मी भाई के साथ स्नेह करना, उसके कष्ट और विपत्तियों को दूर करना, धर्म का उद्योत करना तथा जिनशासन की अभिवृद्धि के उपाय करना प्रभावना हैं। रथोत्सव करना, पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करना, शास्त्र वितिरित करना, अज्ञानी जीवों के अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करना एवं सामूहिक धर्म प्रभावना के कार्य करना प्रभावना है। पापों का प्रक्षालन करनेवाले अहिंसा धर्म की प्रभावना के लिये अपनी सम्पत्ति और शक्ति का लगाना प्रभावना है।

नाक बिना सूंघना, आंख बिना देखना, कान बिना सुनना, अंगुलियों के बिना भोजन करना जैसे असंभव है, उसी प्रकार अष्टांग के बिना सम्यक्त्व भी अपूर्ण है। अंग हीन सम्यक्त्व पापरूपी मल दूर नहीं कर सकता है। अष्टांग सहित सम्यक्त्व के पालन करने से ही मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है। जैसे हाथ, पैर आदि अंगों के अभाव में शरीर अपूर्ण और निरर्थक है, उसी प्रकार आठ अंगों में से किसी भी अंग के बिना सम्यक्त्व भी अपूर्ण है। धर्मात्मा व्यक्ति अष्टांग सम्यग्दर्शन का पालन अवश्य करता है। सम्यक्त्व का निर्दोष पालन करने वाला इस संसार से अवश्य पार हो जाता है। आत्मा का एकमात्र रक्षक सम्यग्दर्शन ही है, इसके बिना आत्मा का कल्याण करने वाला अन्य कोई साधन नहीं हो सकता है।

प्रभावना अंग का पालन करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है, जिनशासन के प्रचार और प्रसार से पापी और कुकर्मरत व्यक्ति भी अपने कल्याण का मार्ग प्राप्त कर लेते हैं। यह धर्म ऐसा है, जिससे पापी से पापी और नीच से नीच व्यक्ति भी इसका आश्रय पाकर अपना उद्धार कर सकते हैं। जिनशासन की प्रभावना करने वाला व्यक्ति देवों के द्वारा स्तुत्य वन्दनीय होता है, धर्म का प्रचारक होने के कारण उसकी आत्मा में अपूर्व शक्ति आजाती है।

अधिक पूछने पर एकदिन यज्ञदत्ता ने कहा — मुझे कुंकुम वर्ण के पके आम खाने की इच्छा है। परन्तु उस समय आम की फसल नहीं थी, अतः आम प्राप्त करने में पर्याप्त कठिनाई थी। सोमदत्त सोचने लगा — जिस प्रकार सिंहनी का दूध, खरगोश का सींग, गन्ने का फल, कटहल का फूल मिलना कठिन है, उसी प्रकार इस समय आम का मिलना भी। यदि इस समय इसको आम्रफल लाकर नहीं दिया जायगा तो यह मृत्यु को प्राप्त हो जायगी। अतएव आम्रफल लाने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। उसने अपने विद्यार्थियों को बुलाकर चारों दिशाओं में आम की तलाश के लिये भेजा। स्वयं भी जलाशयों के किनारे के आम्रवृक्ष, दूर देशों की आम्रवाटिकाओं का पके फल के लिये अन्वेषण किया, किन्तु उसकी मनोकामना सफल नहीं हुई। आम लाने की चिन्ता में वह खाना–पीना भी भूल गया। उसने ग्राम, नगर, खेट, खर्वट, मटम्ब, दत्तन, द्रोण आदि में घूम–घूम कर आम की तलाश की। उसने देश देशान्तरों में यह घोषणा कर दी कि जो आम का फल लाकर देगा उसे अपरिमित धन दिया जायगा। इस प्रकार पृथ्वी के कोने–कोने में आम्रफल का अन्वेषण किया।

वह गोपुर में गया, गाय चरानेवाले गोचारकों से पूछा, परन्तु कहीं कुछ भी पता नहीं लगा। वह आगे बढ़ा कि उसे बलवाहिनी नदी के किनारे एक भील वस्ती मिली। उसने भीलों से पके आम के सम्बन्ध में पूछ–ताछ की। एक भील ने आगे आकर कहा — मैं पके आम के फल को जानता हूं। सोमदत्त भील के वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा — जल्दी चलकर बताओ, जो इनाम मांगोगे, दूंगा। अब बिलम्ब करना ठीक नहीं है।

भील—इस नदी के किनारे अब्जषण्ड नाम का एक आम्रवन है। इस आम्रवन में एक पेड़ के नीचे एक नंगा गन्दा व्यक्ति मौन होकर तपस्या कर रहा है। वह कुछ बोलता नहीं है और न किसी से कुछ मांगता है। मारने–पीटने पर भी कुछ उत्तर नहीं देता है। उसी पेड़ पर पके फल हैं। भील ने संकेत से रास्ता बतला दिया, जिससे सोमदत्त अपने साथियों के साथ उस रास्ते पर चलने लगा।

सोमदत्त उस वन के रमणीक दृश्य से बहुत प्रभावित हुआ और फल से नम्रीभूत वृक्ष को देखकर सोचने लगा कि इस वृक्ष पर पके फलों का रहना इस तपस्वी की तपस्या का ही फल है। अन्यथा इस एकही वृक्ष पर पके आम क्यों होते ? इस वन में और भी अनेक पेड़ हैं, किन्तु उन पर एक भी फल नहीं है। अवश्य ही यह इसकी तपस्या का फल है। यह तपस्वी सामान्य नहीं है, इसकी तपस्या में अपूर्व शक्ति है। यह साक्षात् देव है, इतना बड़ा करामाती

है कि इसके समान ब्रह्मा, विष्णु, और महेश भी नहीं हो सकते हैं। ऐसा विचार कर सोमदत्त उनके चरणों के निकट पहुँचा।

वह आचार्य सुमति नाम के थे और यह यति वृषभ द्वारा विरचित तिलोयपण्णत्ति का स्वाध्याय कर रहे थे। मनुष्य लोक का वर्णन समाप्त कर जब स्वर्ग लोक का वर्णन पढ़ने लगे तो बारहवें सहस्रार स्वर्ग का प्रकरण पढ़ा। सोमदत्त एक-एक शब्द का अर्थ समझने लगा। जब आचार्य सूर्याभ नामके विमान का वर्णन करने लगे, जिससे च्युत होकर सोमदत्त ने पृथ्वी पर जन्म लिया है, तो सुनने मात्र से सोमदत्त को जाति स्मरण हो गया और वह अपनी सारी बातों को समझकर मूर्छित होकर गिर पड़ा। इस घटना से सोमदत्त के साथ में आने वाले विद्यार्थी आश्चर्यान्वित हुए और कहने लगे—गुरु देव ने बहुत परिश्रम किया है जिससे वह थक कर गिर पड़े हैं। इस प्रकार आपस में चर्चा कर सभी उसकी मूर्छा को दूर करने का प्रयत्न करने लगे।

जब सोमदत्त की मूर्छा दूर हुई तो वह सोचने लगा—स्वर्ग में मैंने नाना प्रकार के दिव्य सुख भोगे हैं? उन सुखों से जब मेरी तृप्ति नहीं हुई तो अब इस मृत्यलोक के इन क्षणिक सुखों से मेरी कैसे तृप्ति हो सकेगी? जब सागर के जल से प्यास न मिटी तो ओस विन्दुओं से कैसे प्यास बुझ सकेगी? निवृत्ति मार्ग को ग्रहण किये बिना सुख का मिलना कठिन है। सच्चा सुख त्याग में ही है। आत्मा अमर है, इसमें ज्ञान, दर्शन, सुख आदि अनन्तगुण वर्तमान हैं। कर्मों के आवरण के कारण ये गुण विकृत हो गये हैं। मैं अब तक इस भ्रम में था कि आत्मा का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। जहां शरीर समाप्त हुआ, वहीं आत्मा भी समाप्त हो जाती है। जीवन का ध्येय खाना-पीना और आनन्द से रहना है। यही मैंने समझा था, आज मेरा भ्रम दूर हो गया और वस्तु स्थिति का परिज्ञान मुझे हो गया है। इस प्रकार विचार करते हुए सोमदत्त को अनेक भवों की घटनाएं याद आ गईं।

सोमदत्त मुनिराज के चरणों में पड़ कर प्रार्थना करने लगा—प्रभो! मेरी पूर्वभवावलि को कहने की कृपा करें। वास्तव में मैंने अनन्त भव धारण कर मनमाने पाप किये हैं, जिससे मेरी आत्मा कर्मों से लिप्त हो गई है और मेरा ज्ञान आच्छादित हो गया है। आज आपके दर्शन से मेरा भ्रम दूर हो गया और मैं अपने को समझ गया हूं।

सुमति मुनिराज—वत्स! तुमने अब तक अनेक भव धारण किये। विद्याधर के भव में तुमने पुण्यार्जन किया, जिससे बारहवें स्वर्ग में देव हुए। वहां से च्युत होकर अब तुमने मानव पर्याय प्राप्त की है।

सोमदत्त—प्रभो ! यह बतलाने की कृपा करें कि मेरी स्त्री को आम खाने का दोहद क्यों हुआ।

सुमति मुनिराज—तुम्हारी स्त्री के गर्भ का जीव जिनशास्त्र का पारगामी होगा, यह जिन दीक्षा ग्रहण कर तप करेगा और अपने कर्म रूपी पर्वत का उन्मूलन कर शाश्वत सुख प्राप्त करेगा। वास्तव में तो आपकी पत्नी को आम खाने का दोहद नहीं है, उसने भय के कारण अपना असल दोहद नहीं बताया है उसकी इच्छा दिगम्बर मुनियों के दर्शन—पूजन की है, वह तीर्थाटन, दान, पूजन-अभिषेक करना चाहती है। आप लोग जैन धर्म के विरोधी हैं, इस कारण उसने अपना दोहद छिपा लिया है और आम खाने की बात झूठ ही आप से कह दी है।

मुनिराज की बात सुनकर सोमदत्त को आश्चर्य हुआ वह बार बार उनके चरणों में नमोऽस्तु करने लगा। उसे संसार से विरक्ति हो गयी, वह सोचने लगा कि संसार के सुख दुःखरूप ही है, इनसे जीवका कल्याण नहीं होता है। अतएव जितना जल्द हो सके आत्मकल्याण में लग जाना चाहिये। इस प्रकार सोचविचार कर सोमदत्त वहीं पर रहने लगा और उसने अपने शिष्यो के हाथ भार्या के लिये आम भेज दिये।

उसकी विचारधारा आगे बढ़ने लगी—जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की शरण से हटकर व्यर्थ के सांसारिक प्रपंचों में पड़कर मैंने नाना प्रकार के कष्ट सहन किये हैं। आज मैंने काललब्धि को प्राप्त कर आगम के पारगामी मुनिराज का उपदेश श्रवण किया है। मिथ्या मद के कारण मैंने अनेक प्रकार के पाप किये, धर्म-कुधर्म को कुछ भी नहीं समझा। यज्ञ कर हिंसा की है तथा अपना सम्मान कायम रखने के लिये मैंने झूठे वचनों का प्रयोग किया है। आज मुझे सच्चा उपदेश प्राप्त कर महान् प्रसन्नता है, अब मेरा कल्याण निकट है, शुभोदय के बिना उपदेश मिलना संभव नहीं। रास्ते में पड़े हुए रत्न के समान, अपने घर में स्वयं आई हुई निधि के समान, बिना खर्च किये प्राप्त हुए महल के समान बिना पानी दिये गये फल के बगीचे के समान, अपने आप ही मुझे जिनधर्म मिल गया। इस धर्म की प्राप्ति के लिये कितना श्रम करना पड़ता है, परन्तु आज मुझे अनायास ही आत्म कल्याणकारी धर्म-मार्ग मिल गया; अतः अब मेरा अवश्य ही आत्म कल्याण हो जायगा। आकाश में बादल छाये हुए देखकर पानी बरसने की आशा से घर जल को गिरा देना, दूसरे के खेत में अच्छा धान उत्पन्न हुआ देखकर अपने खेत में धान न बोना तथा रिश्तेदार के यहां बच्चा देखकर अपने बच्चे को छोड़ देने के समान इस अनायास प्राप्त किये गये धर्म को मैं छोड़नेवाला नहीं हूं। पड़ोस में विवाह की तैयारियां देखकर घर में रोटी मूर्ख लोग ही नहीं बनाते हैं, चतुर व्यक्ति पहले अपना काम करते हैं, तब दूसरों के ऊपर

भरोसा। अतएव इस महान् उपकारी जैनधर्म से मेरा बड़ा भारी कल्याण होगा; क्योंकि यही धर्म आत्मा का निज धर्म है। कर्म बन्धन को इसी के द्वारा तोड़ा जा सकता है। इस प्रकार विचार कर उसने मुनिराज के चरणों में जाकर दीक्षा की याचना की—

सुमति मुनिराज—वत्स ! दीक्षा मार्ग बड़ा कठिन है, सभी लोग इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते हैं। यदि आप को वास्तव में संसारसे विरक्ति हो गई हो तो दीक्षा ग्रहण करो। दिगम्बर मुनि आत्मा में विचरण करनेवाला होता है, यह किसी से अपनी सेवा के बदले में कुछ भी नहीं लेता है।

सोमदत्त—प्रभो ! अब मुझे उपदेश की आवश्यकता नहीं है। मैं रत्नत्रय का स्वरूप भली भाति समझ गया हूं। तथा यह भी मुझे मालूम हो गया कि आत्मकल्याण का मार्ग क्या है। मैंने अब तक सहस्त्रों विद्यार्थियों को विद्यादान दिया है। व्याकरण, कोप, दर्शन ज्योतिष आदि विपयोंमें मैंने प्रवीणता प्राप्त की है, अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन मैंने नहीं किया था, यह शास्त्र आप के दर्शन से अपने आप प्राप्त हो गया। आपने मेरे ज्ञान नेत्र खोल दिये, जिससे मैं अब अपने को भली प्रकार देख सकता हूं। अब मुझे दिगम्बर होने में बड़ी प्रसन्नता होगी, अतः जल्द से जल्द आप दीक्षा देने की कृपा करें।

सुमति मुनिराज ने योग्य शिष्य समझकर उसे दीक्षा दे दी। दस धर्म, द्वादश तप, पांच समिति, पांच आचार, षट् आवश्यक, त्रिगुप्तियों का विधिवत सोमदत्त पालन करने लगा।

जब सोमदत्त के छात्र आम लेकर घर आये और सोमदत्त की दीक्षा का समाचार सुनाया तो सभी लोगों को आश्चर्य हुआ। परिवार के लोग सोचने लगे—विप्र वंश में जन्म लेकर सोमदत्त ने नग्न दीक्षा क्यों ले ली। उसे किस बात की कमी थी, सहस्त्रों विद्यार्थी उसके चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करते थे। राज पुरोहित होने से धन-धान्य से कमी थी ही नहीं, सुन्दरी स्त्री भी घर में है, फिर क्यों दीक्षा ले ली। क्या नंगे बाबा ने अपना कोई जादू चला दिया है, जिससे उसने दीक्षा ग्रहण करली है। गर्भ की अवस्था में सोमदत्त के कार्य को वह उचित समझती थी परन्तु प्रत्यक्ष में परिवार के सदस्यों के भय से कुछ भी नहीं कह सकती थी।

यज्ञदत्ता ने गर्भ काल को बिताकर एक सुन्दर प्रतापशाली, तेजस्वी, समस्त प्राणियों का हित करनेवाले पुत्र को जन्म दिया। बच्चा का नाम श्रीदत्त रखा गया। गर्भावस्था में यज्ञदत्ता अपने पति के कार्य को ठीक समझती थी,

पर अब उसे पति का दीक्षा लेना खटकने लगा। उसे अपने पति के ऊपर बहुत क्रोध आया। वह सोचने लगी न मालूम गर्भ के कारण मेरे कैसे विचार हो गये थे, जिससे उनके जिन दीक्षा ले लेने पर मैं शान्त रही। अब तो जैसे बनेगा, समझा बुझाकर यहां लाऊंगी।

जब सोमदत्त का नाभिगिरि पर्वत पर आने का समाचार उनके कुटुम्बियों को मिला तो यज्ञदत्ता परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ उनकी तपस्या को भ्रष्ट करने के लिये वहां गई। वह जाकर बोली—तुम्हें सैकड़ों बार धिक्कार है। पवित्र धर्म छोड़कर यह नग्न दीक्षा ले ली। तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में पूजनीय थे। अविवेकी बनकर तुमने क्या कर डाला? वेदान्त, व्याकरण आदिका जितना अतलस्पर्शी ज्ञान आपने प्राप्त किया है, उतना इस साधुने कभी भी नहीं तुम्हारा जैसा कुल पवित्र है वैसा किसी श्रमण का नहीं। भावुकतावश तुमने लोक-परलोक को बिगाड़ डाला। श्रमणों के जादू ने तुम को वश में कर लिया है, इसी कारण तुम्हें नंगा होने में लज्जा नहीं आई। देखो! तुम्हारी स्त्री तुम्हारे सामने उपस्थित है, तुम नंगे हो लज्जा आनी चाहिये। अभी कुछ नहीं बिगड़ा चलो घर कपड़ा पहन लो। देखो शरीर कितना कृश हो गया है, घरका सा खाना-पीना यहां कहां रखा है। जल्दी करो, देरी करना ठीक नहीं है।

यज्ञदत्ता के वचनों को सुनकर भी सोमदत्त मौन ही रहा और ध्यानस्थ हो आत्मचिन्तन करने लगा तो उसकी माता वात्सल्य पूर्वक बोली—बेटा! तुम सभी शास्त्रों के पारगामी नृपपूजित ब्राह्मणों के द्वारा वन्दनीय, नीतिवान्, वेद-स्मृतिपुराणों के धुरन्धर ज्ञाता, और अपूर्व प्रतिभाशाली होकर तुमने यह क्या कर डाला? वेदाभ्यासी होकर जिन दीक्षा क्यों ग्रहण कर ली? अब जल्दी इस दीक्षा को छोड़ो और घर को चलो। अपने सुब्रह्मणत्व को कलंकित मत कीजिये। बिना विचारे जैन साधु के फेर में पड़ कर यह दीक्षा ग्रहण की है। अपने इस कर्म के प्रायश्चित के लिये यज्ञ करें, सभी पाप दूर हो जायगा।

सोमदत्त मन में विचारने लगा कि जिनवचनरूपी अमृत को छोड़कर कुनय विष का पान अनादि काल से करता चला आ रहा हूं, जिससे अभी तक कल्याण नहीं हो सका है। स्याद्वाद और कुनय क्या समान हो सकते हैं? जैसे सूर्य और दीपक का प्रकाश समान नहीं हो सकता है, वैसे ही कुनय क्या स्याद्वाद के समान हो सकेगा? हिंसा, झूठ आदि सप्तव्यसनों में संलग्न लोगों को जिनवचन अच्छे नहीं लगते हैं। जिन लोगों ने विषयों को ही सुख मान लिया है वे जैन धर्म के निन्दक बने ही रह सकते हैं। आत्मबोध के बिना सच्चा धर्म प्रिय हो नहीं सकता है। जब जीव को

आत्मबोध हो जाता है तो फिर सत्य का आभास उसे हो ही जाता है। स्वार्थी लोग ही जैन धर्म की निन्दा किया करते हैं, क्योंकि उनका स्वार्थ पूरा नहीं हो पाता है। अतः इस समय मौन रहना ही ठीक है, मूर्खों की बातों का उत्तर देने से विवाद बढ़ता है। ऊंट खीर का स्वाद क्यों जाने, उसे तो नीम ही मीठा लगता है। मिथ्यावादियों को आत्म कल्याण-कारी जैन धर्म अच्छा नहीं लग सकता है, उन्हें तो विषय-कषाय को पुष्ट करने वाला धर्म ही रुचिकर होता है।

जब सोमदत्त ने उत्तर नहीं दिया तो यज्ञदत्ता पुनः कहने लगी—स्वामिन्! जैन धर्म एक छोटी सी नदी के समान है और वैदिक धर्म विशाल लम्बा-चौड़ा समुद्र है। आपने विशाल धर्म को छोड़ कर परीषह सहने के लिये इस धर्म को क्यों ग्रहण कर लिया है? इस धर्म के ग्रहण करने से आपकी बड़ी हंसी हो रही है। सभी द्विज आपको कुल-कलंक कह रहे हैं। विद्यानिधि विप्रवंशशेखर होकर आपने यह क्या अन्याय कर डाला। स्वामी! संभलिये, जल्दी चलिये भिखारी के समान आपका यह वेष मुझसे देखा नहीं जाता है। आपका शरीर इन थोड़े से दिनों में ही जली हुई लकड़ी के समान हो गया है। देखिये आपका पुत्र कितना सुन्दर और सलोना है,आप इसको एक बार गोद में लेकर प्यार कीजिये।

सोमदत्त मन में सोचने लगा—लोगों ने जैन धर्म के स्वरूप को समझा नहीं है। जिनेन्द्र भगवान् के चरण की सेवा से भुवनत्रय का अधिपतित्व प्राप्त हो सकता है। स्वर्ग की सम्पत्ति, अनेक प्रकार की राजविभूतियां धर्म से ही प्राप्त होती हैं। चतुर लोग हित की बात को सुनते हैं, पाप की वृद्धि करने वाले आत्मकल्याण से बहिर्भूत वचनों को श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं सुनते। अहिंसा में जो आनन्द है, क्या वह कभी भी हिंसा में आ सकता है। कांच और मणि में महान अन्तर होता है। जैन धर्म मणि के समान है और अन्य धर्म कांच के समान। यद्यपि सामान्य व्यक्तिको कांच और मणी समान मालूम होते हैं, परन्तु वास्तव में दोनों में महान् अन्तर है। आत्म धर्म को छोड़ने के कारण ही तो जीव कुगतियों में भ्रमण कर रहा है। इस आत्म धर्म का मिलना सहज नहीं है, कर्म पटल हट जाता है तथा काल लब्धि आ जाती है तभी इस धर्म की प्राप्ति होती है। इन बेचारों को इस धर्म की महत्ता का क्या पता है, ये तो विषयी कीड़े हैं इनको तो विषय पुष्ट करने वाला धर्म ही रुचिकर होगा।

यज्ञदत्ता—अरे! पाखण्ड को छोड़ और घर को चल। स्त्री-पुत्र को छोड़कर यह मार्ग क्यों ग्रहण किया है। निठल्ले होने के लिये ही यह दीक्षा ली है। कमाने से छुट्टी मिल जायगी, और खाने को मुफ्त में मिलता ही रहेगा। यदि तुम्हें यह मार्ग ग्रहण करना था तो विवाह क्यों किया? अब तो घर चलना पड़ेगा। इतना कहकर उसने सोमदत्त का

हाथ पकड़ लिया और घसीटना आरम्भ किया। अभी तक सोमदत्त मौन था। वह मौन रहने में ही अपना कल्याण
समझता था। उनके द्वारा दिये गये उपसर्गों को शान्तिपूर्वक सहन करने लगा। वे लोग उसका पैर पकड़ कर खींचने
लगे, सगोत्री उसके कान पकड़कर खींचने लगे; इस प्रकार जैसे बन सका लोग उसे कष्ट पहुँचाने लगे।

सोमदत्त ने उपसर्ग दूर होने तक संन्यास ले लिया तथा चारों प्रकार के आहार का त्याग कर आत्म चिन्तन
में लीन हो गया।

जब सोमदत्त के कुटुम्बियों ने देखा कि यह किसी भी प्रकार से दीक्षा छोड़ने को तैयार नहीं है तथा लाख
उपाय करने पर भी यह व्रत से विचलित नहीं हो सकता है तो उन लोगों ने घर चलने का निश्चय किया। सब मिल-
कर विचार करने लगे–अब यहां रहने से कोई लाभ नहीं। इसका मस्तिष्क विकृत हो गया है। इतना पढ़ा लिखा होकर
भी हमारी बातें नहीं मान रहा है, अतः अब इसे यहीं छोड़कर चलना चाहिये। यदि इसमें समझ आ जायगी तो यह
अपने आप ही दो-चार दिन में चला आवेगा। ज्यादा तंग करना भी ठीक नहीं है। जितना इसे कहा जा रहा है, उतना
ही यह कड़ा होता जा रहा है। इसने मौन ले लिया है, एक भी वचन नहीं कह रहा है अतः अब घर चलना ही ठीक है।

सब लोग घर को चलने लगे। यज्ञदत्ता को महान् क्रोध था, उसने क्रोध के आवेश में आकर अपने नवजात
शिशु को सोमदत्त के चरणों में डाल दिया तथा बड़बड़ाने लगी––इस भाग्यहीन के कारण ही इनकी यह अवस्था हुई है
न मालूम यह किस कुघड़ी में गर्भ में आया था जिससे इसने मेरी बुद्धि बिगाड़ दी। यदि मैं आम खाने की बात नहीं
कहती तो इनकी यह अवस्था नहीं होती। इस प्रकार बच्चे को वहीं फेंक कर वह अपने घर चली गयी बच्चा मुनि के
चरणों में आनन्दित होने लगा।

इस भरत क्षेत्र के विजयार्द्ध के दक्षिण भाग में अमरावती नाम का नगर है। इस नगर में शम्भू नाम का
विद्याधर राज्य करता था, इसकी महादेवी नाम की पत्नी थी। इनके दो पुत्र थे—भास्करदेव और सुन्दरदेव। दोनों
शूरवीर थे। रूप और गुणों में लक्ष्मी और सरस्वती को तिरस्कृत करने वाली इनकी सुदेवी नाम की बहन थी। कनकपुर
के राजा विमलवाहन के साथ सुदेवी का पाणिग्रहण किया गया था।

शम्भू विद्याधर को नाना भोग भोगते हुए संसार से वैराग्य हो गया, जिससे उसने अपने पुत्र भास्करदेव
को राज्य दे दिया और स्वयं आत्मकल्याण के लिये चल दिया। भोग और ऐश्वर्य को तृण के समान त्याग कर सुप्रभ नाम
के आचार्य के पास जिनदीक्षा लेकर तपस्या करने लगा।

धर्मामृत २१७

मन्दरदेव ने अपनी विद्या के प्रभाव से भास्करदेव से राज्य छीन लिया, जिससे वह चिन्तित रहने लगा। मन्दरदेव ने राज्य ही नहीं छीना, बल्कि अपने भाई को राज्य से निकाल भी दिया, जिससे वह कनकपुर में अपने बहनोई के यहां चला गया। पवित्र जैनधर्म की आराधना करते हुए भास्करदेव अपना समय बिताने लगा। एक दिन उसने पर्वोपवास किया और भरतक्षेत्र के चैत्यालय और मुनियों के दर्शन करने के लिये चला। नाभिगिरि पर्वत पर सोमदत्त मुनि के दर्शन करने आया, पास में सूर्य के समान तेजस्वी बालक को देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, हृदय में अद्भुत आनन्द उत्पन्न हुआ। उसने उस बच्चे को गोद में उठा लिया और प्यार करने लगा।

मुनिराज की पूजा करने के पश्चात् भास्करदेव उस पुत्र को लेकर घर चला आया और अपनी स्त्री से कहने लगा—प्रिये ! तुम्हें सन्तान नहीं है, अतः कामदेव के समान इस सुन्दर पुत्र को प्राप्त कर अपने को सन्तानवती समझो दूसरे दिन उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि वनमाला गूढ़ गर्भिणी थी आज उसे पुत्र की प्राप्ति हुई है। पुत्रोत्सव धूम-धाम से मनाया गया, भगवान की पूजा की गयी। शिशु का नामकरण संस्कार सम्पन्न किया गया और उसका नाम वज्र कुमार रखा। पांच वर्ष के उपरान्त उपाध्याय के पास विद्याध्ययन के लिये भेजा गया। थोड़े ही समय में यह कुमार अक्षर विद्या, अंक विद्या, व्याकरण, कोष्ट आदि विभिन्न शास्त्रों में पारंगत हो गया। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात, कहावत के अनुसार यह बचपन से ही प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि था। अपने रूप और गुणों से सभी व्यक्तियों को मोहित कर लिया था, समस्त विद्याओं में पारंगत होकर घर आया और माता पिता को आनन्दित करता हुआ रहने लगा। माता-पिता पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे, उनके जीवन में पुत्र ने नवीनता ला दी थी।

जब वज्र कुमार वयस्क हुआ तो माता ने सुवेदी की कन्या इन्दुमती के साथ उसका विवाह कर देने का निश्चय किया। धूम धाम से शुभ मुहूर्त्त में कुमार का विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया। दोनों में अत्यन्त स्नेह था। पति-पत्नी आमोद-प्रमोद पूर्वक अपना जीवन बिताने लगे।

वज्र कुमार एक दिन विजयार्द्ध के चैत्यालयों के दर्शन करने जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि एक विद्याधरी किसी विद्या कि सिद्धी में लगी है। एक अजगर सांप उसको निगल रहा है, केवल सिर शेष है बाकी भाग वह उदरस्थ किये हुए है, वज्रकुमार ने दया कर उस विद्याधरी की रक्षा की और अपनी प्रतिविद्या के द्वारा उस विघ्न रूप अजगर को वहां से हटाया। अपना विघ्न दूर होने पर उस विद्याधरी ने वज्रकुमार की खूब प्रशंसा की और पूजा

स्तुति की। जब नमस्कार कर जाने को प्रस्तुत हुई तो वज्रकुमार ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? कौनसी विद्या सिद्ध कर रही हो ?

विद्याधरी—वरचन्द्रपुर नाम के नगर में सुर सदृश गरुड़ नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी पट्टरानी का नाम वश्रिमान्वती था। इसके उदर से पवनवेगा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वही पवनेवगा मैं बहुरूपिणी नाम की विद्या सिद्ध करने आयी हूं। मैं विद्या साधन कर रही थी कि इतनें में यह विघ्न उपस्थित हुआ। मैं आज आपकी कृपा से बच गयी, आपकी आजन्म कृतज्ञ रहूंगी।

इस प्रकार अपना समस्त वृत्तान्त कह कर उसने कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिऐ वज्रकुमार को प्रज्ञप्ति विद्या दे दी।

वज्रकुमार—विद्याधरी देवी ! यह विद्या तो विद्याधरों को हो सकती है। आपको स्त्री पर्याय में यह विद्या कैसे सिद्ध हो गयी ?

पवनवेगा—संजयन्त नाम के आचार्य विदेह क्षेत्र में उग्रोग्र तपस्या कर रहे थे। उनके पूर्वभव का शत्रु विद्युत्वेग विद्याधर विद्या विनोद के लिये इधर-उधर भ्रमण करता हुआ वहां आया और मुनि को देखते ही क्रोधावेश में आ गया। वह मुनिराज को उठाकर आकाश में ले गया और उसने उन्हें हरिवती, गजावती पुष्पावती कमलावती और चंडबेगा इन पांच नदियों के संगम पर पटक दिया ! संजयन्त मुनि ने क्षमा धारण की और संन्यास ले लिया; जिससे उन्हें तुरन्त केवल ज्ञान प्राप्त हो गया और शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा कर्माटवी को जला कर भस्म किया। निर्वाण प्राप्त हो जाने पर देवों ने उत्सव किया तथा उनके गुणों की स्तुति की।

धरणेन्द्र को उस विद्याधर पर तीव्र क्रोध आया। उसने विद्याधर से कहा—तुमने सुमेरु के समान धैर्यशाली मुनिराज को कष्ट पहुँचाया है, अतः कुटुम्ब सहित तुम्हें समुद्र में डुबा देंगे। धरणेन्द्र ने उसे अभिशाप दिया कि जब तक यहां संजयन्त मुनि की पूजा नहीं की जायगी, किसी को विद्या सिद्ध नहीं हो सकती है। इसी कारण यहां विघ्न आ गया है, यह अजगर विद्युतवेग विद्याधर का जीव था, जिसको आपने अभी मारा है। मैंने मुनिराज की पूजा कर इस विद्या को सिद्ध किया है।

वज्रकुमार इस प्रकार विद्या लेकर कनकपुर में आ गया। एक दिन वह अपने पिता भास्करदेव से कहने लगा-आप विद्याधर होकर इस भूमिगोचरी राजा के आधीन क्यों हो गये हैं ? भास्करदेव ने अपना समस्त वृतान्त पुत्र से कहा-वज्रकुमार ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अपने पिता का राज्य लड़कर नहीं ले लूंगा, तब तक मेरे समस्त भोगोपभोग की वस्तुओं का त्याग है। इस प्रकार सिंह गर्जना करते हुए उसने अपनी सेना तैयार की और अमरावतीपुर पर आक्रमण कर दिया। मन्दरदेव ने भी अपनी सेना को सजाया और डटकर सामना किया। दोनों ने वाणवर्षा की और आपस में एक दूसरे के वाणों का काट करने लगे। वज्रकुमार ने समुद्र वाण चलाया, मन्दरदेव ने बाड़वाग्नि वाण द्वारा उसका निराकरण कर दिया। मन्दरदेव ने सर्प वाण चलाया, वज्रकुमार ने उसका गरुड़ वाण द्वारा निराकरण किया। वज्रकुमार ने मेघवाण चलाया, मन्दरदेव ने वायुवाण चलाकर उसे छिन्न भिन्न कर दिया। मन्दरदेव ने पर्वत वाण चलाया, वज्रकुमार ने वज्रवाण द्वारा उसका निवारण किया। मन्दरदेव ने तमोवाण चलाकर सर्वत्र अंधकार कर दिया, किन्तु वज्रकुमार ने तुरन्त सूर्यवाण द्वारा उसका प्रतिकार किया। इस प्रकार वाण चलाते-चलाते जब मन्दरदेव के समस्त वाण समाप्त हो गये तो वह घबड़ा गया और युद्धभूमि छोड़कर भागने लगा।

विजय का डंका बजाता हुआ वज्रकुमार अपने माता पिता और अन्य कुटुम्बियों के साथ अमरावती में रहने लगा। वह विद्याधरों का राजा बन गया। जिनेन्द्रपूजा, अभिषेक, आहारदान, औषधदान, अभयदान और शास्त्रदान कर पुण्यार्जन करने लगा।

कुछ दिन के उपरान्त चन्द्रपुर के राजा गरुड़वेग ने अपनी कन्या पवनवेगा के विवाह के लिये स्वयंवर की तैयारियां की। जगह-जगह निमन्त्रण भेजे गये। वज्रकुमार को भी स्वयंवर में शामिल होने के लिये निमन्त्रण मिला। इस निमन्त्रण को पाकर वज्रकुमार को महान् प्रसन्नता हुई और उसने दूत को भेंट दी। पश्चात् विद्याधरों के साथ उसने चन्द्रपुर के लिये प्रस्थान किया और वहां जाकर एक भव्य भवन में ठहर गया। अगले दिन स्वयंवर मण्डप में सभी विद्याधरों के साथ वज्रकुमार भी पहुँचा और अपने स्थान पर आनन्द सहित बैठ गया। कमलमुखी पवनवेगा ने खूब शृंगार किया और सजकर वह अपनी सखियों के साथ स्वयंवर भूमि में पधारी। समस्त विद्याधर कुमारों को देखते देखते वह वज्रकुमार के पास पहुँची और उन्हें पहचान कर अपना उपकारी समझकर माला उनके गले में डाल दी। अन्यविद्याधर उदास होकर अपने-अपने घर चले गये, सभी वज्रकुमार के भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

विवाह करने के उपरान्त वज्रकुमार अमरावती में आ गया । कामदेव के समान सुन्दर, इन्द्र और कुवेर के समान वैभवशाली हो राज्य का उपभोग करने लगा। सभी विद्याधर उससे प्रसन्न थे । अनेक विद्याधरों ने अपनी कन्याएं उसे भेंट दे दी थीं । सुन्दरी, अनंगमाला, विजया, अनंगसुन्दरी, सुप्रभा, विद्युतवेगा, विजयावती, रत्नसुन्दरी, पवनवेगा रानियां प्रधान थीं । हाथी, घोड़े रथ यात्रा आदि के समूहों सहित विद्याधर उसकी सभा में नितप्रति आते रहते थे ।

एक दिन विद्याधर रमणीयों से बात चीत के सिलसिले में मणिमाला ने कहा की आप लोग बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं । मैं तो निस्सन्तान हूं, मुझे जीवन में सन्तान का अरमान सदा रह गया । इस प्रकार की चर्चा पवनवेगा ने सुन ली और रात को पति से कहने लगी —स्वामिन् आपकी मां ऐसा क्यों कह रही थीं कि मैं निस्सन्तान हूं। कृपाकर आप इस रहस्य को बतलाईये, मेरा मन इसे जानने के लिये अत्याधिक उत्सुक है । आपकी वास्तव में माता कौन हैं ?

वज्रकुमार — प्रिये ! मुझे स्वयं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम है । मैं प्रातः माता जी से पूछ कर सारा रहस्य आपको बतला दूंगा । इसे समय आप धैर्य धारण करें, कोई बड़ी समस्या नहीं है । माताजी ने ऐसे ही कुछ कह दिया होगा । मेरा तो ख्याल है कि आपके सुनने में भूल हुई है । माताजी मुझे सदा पुत्र समझती रही हैं, मेरा पालन-पोषण माता-पिता ने पुत्र के ही समान किया है, अतः मुझे तो विश्वास है कि मैं इनका पुत्र हूं । यदि मैं इनका पुत्र नहीं होता तो ये निश्चय ही मेरे साथ ऐसा वात्सल्य व्यवहार नहीं करते । मनुष्य का व्यवहार स्वयं भेद-भाव को प्रकट कर देता है । रक्त का सम्बन्ध जिसके साथ रहता है,उसी से मनुष्य अधिक स्नेह करता है ।

वज्रकुमार के इन वचनों से पवनवेगा को कुछ सान्त्वना मिली, परन्तु उसकी जिज्ञासा पूरी नहीं हुई; अतः प्रातःकाल पुनः पति से कहा–स्वामी' आज माताजी से कल की बात का रहस्य अवश्य पूछियेगा ?

वज्रकुमार—वन्दनीय माता ! आपके आशीर्वाद से राज्य का कार्य ठीक चल रहा है। मेरे मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। आशा है आप उसे अवश्य पूरा करेंगी । आज तक आपने मेरी किसी भी बात को टाला नहीं है। अतः आप उसे अवश्य पूरा करेंगी । आप वात्सल्यमयी मां हैं, आपका दुग्ध पान कर मेरा शरीर पुष्ट हुआ है । अतः चरणों में मेरी नम्र प्रार्थना है । कृपया यह बतलाने का कष्ट करें कि मैं वास्तव में आपका पुत्र हूं या नहीं । मेरे असली माता–पिता कौन हैं ?

मणिमाला–पुत्र ! आज कैसा प्रश्न तुम करते हो ? अरे तू मेरा पुत्र नहीं है, तो किसका है । ऐसी कौनसी नारी है जो ऐसा पुत्र उत्पन्न कर सकेगी । चल हट बेटा अपना काम कर, व्यर्थ की बातों में क्या रखा है । जिसके चरणों में विद्याधर राजा नत मस्तक होते हैं, वह मेरा पुत्र नहीं तो और किसका होगा ।

वज्रकुमार—प्यारी मां ! अभी आपने सच्ची बात नहीं बतलायी है । कल आप ऐसा क्यों कह रही थी, कि मैं दुर्भाग्यशालिनी हूं, मेरे सन्तान नहीं । जब मैं आपका पुत्र हूं तो फिर आपने ऐसे बचन क्यों कहे । मां ! सत्य छिपाने से नहीं छिपता है । आप वास्तविक बात बतलाने का कष्ट करें । मुझे आपकी बात से कष्ट नहीं होगा । मेरी वास्तविक माता कोई क्यों नहीं रही हो ? परन्तु अब तो आप ही माता–पिता हैं । आपको छोड़कर मैं अन्यत्र नहीं जा सकता हूं ।

मणिमाला—वत्स ! सत्य तो यह है कि तुम बचपन में एक मुनिराज के चरणों में लोटते हुए मिले । तुम्हारी माता क्रोध में आकर तुम्हें मुनि के चरणों में फेंक गयी थीं । तुम्हारे पिता सोमदत्त ने जिनदीक्षा ले ली थी, जिससे घर के लोगों को बहुत दुःख हुआ । सभी उनको मनाने आये, नाना प्रकार से समझाया और घर चलने का अनुरोध किया जब उन्होंने किसी की बात का कुछ भी जवाब नहीं दिया तो क्रोध में आकर वहीं तुमको छोड़ तुम्हारी माता चली गयी । पश्चात् मेरे पतिदेव तुम को यहां ले आये और तुम्हारा पालन–पोषण करने लगे । हमलोगों के कोई सन्तान नहीं थी, जिससे तुमको अपनी सन्तान मानकर पाला । योग्य होकर तुमने जो कार्य किये वे तुम से छिपे नहीं हैं ।

बज्रकुमार—माता जी ! आप लोगों ने मेरा पालन–पोषण कर बड़ा उपकार किया । यह शरीर आपका ही दिया हुआ है । अब तो मेरे माता–पिता आप ही हैं, जीवन में अन्य को माता–पिता नहीं मान सकता हूं । आपका स्नेह मेरे ऊपर अपार है, आपके वात्सल्य के कारण ही मेरी उन्नति हो रही है । परन्तु एक बात है कि मुझे इस संसार से अब घृणा हो गयी है । स्वार्थी और मायावी संसार को जितनी जल्दी हो सके छोड़ देना श्रेष्ठ है । इसमें सभी लोग स्वार्थ के साथी हैं । जब तक पति कमाकर लाता है स्त्री उससे प्यार करती है, माता उसे अपना पुत्र समझती है, कुटुम्बी उसे अपना मानते हैं । किन्तु जब वही कमाना बन्द कर देता है तो पत्नी उससे घृणा करने लगती है. माता उसे निखट्टू समझती है । जान–पहचान के लोग उसका साथ नहीं देते हैं, उसे देखते ही किनारा काट कर निकल जाते हैं । सभी कोई अपने अपने स्वार्थ के कारण स्नेह करते हैं, स्वार्थ निकल जाने पर कोई किसीको नहीं पूछता है ।

वज्रकुमार एकान्त में बैठकर सोचने लगा—स्त्रियों का समुदाय इन्द्रजाल के समान मायावी है, इन्द्रियसुख बिजली की चमक के समान क्षणिक हैं तथा कुत्ते की पूंछ के समान वक्र हैं। शरीर, धन, इन्द्रियां, स्त्री आदि के मोह में पड़ कर धर्म रूपी स्नेह को छोड़ यह जीव दुःख उठा रहा है। अभी तक मद और अज्ञानता के कारण मैंने आत्म-कल्याण के लिये कुछ नहीं किया, परन्तु अब शीघ्र ही इसके लिये मुझे तैयार हो जाना चाहिये। संसार, शरीर और विषयों के सम्बन्ध में जितना ही वह विचार करता था, उसे उतनी ही विरक्ति होती जाती थी उसे अब वह घर, रमणियां और भोग विलास काटने को दौड़ते थे। उसने माता पिता को बुलाकर कहा-आपका उपकार मेरे ऊपर अनन्त हैं। संसार से अब मुझे विरक्ति हो गयी है, अतः मैं अब तपस्या करने के लिये जंगल में जाना चाहता हूं। मैंने यह अनुभव कर देख लिया है कि जिनदीक्षा से बढ़ कर और कोई भी वस्तु आत्मा का उद्धार करने वाली नहीं है। आत्मा का सच्चा कल्याण मुनिदीक्षा ग्रहण करने पर ही हो सकता है। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, जिससे मैं निर्द्वन्द होकर आत्म कल्याण कर सकूं। पहले तो माता-पिता ने इधर-उधर टालने का बहुत प्रयत्न किया तथा वज्रकुमार को नाना उपायों से समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब देखा कि उसके हृदय में दीक्षा लेने की तीव्र लालसा है तो उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी।

वज्रकुमार दक्षिण मथुरा में सोमदत्त भट्टारक के पास पहुँचा और उनसे दीक्षा की याचना की। मणिमाला ने मुनिराज से कहा—प्रभो! मेरा यह पुत्र इतनी अल्प वय में विरक्त हो रहा है, आप इसे समझाइये। अभी इसके भोग-विलास करने के दिन हैं, परन्तु यह हमारे समझाने से नहीं मानता है। आप परम हितैषी हैं, अतः इसको समझा कर घर वापस कर दीजिये।

मुनिराज—यमराज, बालक, युवक और वृद्ध को नहीं देखता। समय पूरा होने पर उठाकर ले जाता है, अतः तपस्या के लिये अवस्था की आवश्यकता नहीं है, किन्तु संसार से वास्तविक विरक्ति चाहिये। यदि वास्तविक विरक्ति है तो किसी भी आयु का व्यक्ति अपना कल्याण कर लेता है। आत्म कल्याण ही श्रेष्ठ है, इसी से व्यक्ति को सुख मिल सकता है।

इस प्रकार सबको समझा-बुझा कर उन्होंने वज्रकुमार को जिनदीक्षा दे दी भास्करदेव और मणिमाला ने भी अणुव्रत स्वीकार किये। विद्याधर सोमदत्त भट्टारक और वज्रकुमार को नमस्कार कर अपने-अपने घर चले गये।

वज्रकुमार अपने संयम को बढ़ाता हुआ तप करने लगा । संसार से भयभीत हो बाह्य और अभ्यन्तर तप को बढ़ाने लगा, थोड़े दिनों में इन्हें चारण ऋद्धि की प्राप्ति हो गयी ।

दक्षिण मथुरा में पूतवाहन राजा की पट्टरानी सम्यग्दृष्टि थी । यह पच्चीस दोष रहित, अष्टांग सहित सम्यक्त्व का पालन करती थी । इसका नाम ओहलीदेवी था, यह समस्त गुणों से युक्त थी । चांदनी के समान उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी । उसका अद्भुत रूप लावण्य था, शरीर से चम्पा की सुगन्ध निकलती थी । भगवान् की भक्ति और दान देने में प्रवीण थी । इसी नगरी में समुद्रदत्त नाम का सेठ था, इसकी स्त्री का नाम धनदत्ता था । दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे । समय पाकर धनदत्ता को गर्भ रहा, थोड़े ही दिनों में उसकी सारी सम्पत्ति विलीन हो गयी । अशुभ कर्म का उदय होने पर सोना भी राख हो जाता है । जो सेठ कोट्याधीश था, वह छः महिने में भिक्षाटन करने लगा । व्यापार में घाटा होने से सम्पत्ति का क्षय हो गया । जब धनदत्ता के गर्भ से कन्या का जन्म हुआ तो पिता को महान् कष्ट हुआ और पुत्री की उत्पत्ति के तीसरे ही दिन वह संसार से चल बसा । पति की मृत्यु के छः महीने उपरान्त धनदत्ता भी मृत्यु को प्राप्त हुई । माता पिता की मृत्यु के उपरान्त अनाथ बालिका दर दर की भिखारिणी बन गयी । जब वह भूख से व्याकुल रहने लगी तो गलियों में पड़े झूठे अन्न के दाने चुन चुन कर खाने लगी । उसके दुःखी जीवन को देखकर करुणा को भी दया आती थी ।

जिनागम के ज्ञाता, पाप रूपी वन को जलाने वाले, सुमेरु के समान धैर्यशाली, अभिनन्दन और नन्दन नाम के दो मुनि चर्या करते हुए रास्ते से जा रहे थे । जब दोनों मुनिराजों की दृष्टि कूड़े में पड़े अन्न को खाती हुई लड़की पर पड़ी तो नन्दन मुनि कहने लगे कि संसार अत्यन्त दुःख का घर है, देखो कैसी होनहार कन्या है, परन्तु भोजन के अभाव में भूख से मर रही है । उनके इन वचनों को सुनकर अभिनन्दन मुनि कहने लगे—यही कन्या पूतवाहन राजा की पट्टरानी होगी । मुनिराज के इन वचनों को बौद्धधर्मानुयायी रक्ताम्बर ने सुन लिया, उसने मन में विचार किया कि ऋषि के वचन अन्यथा नहीं हो सकते हैं, अतः इस कन्या का पालन करना चाहिये । इसके कारण अपनी भी उन्नति हो जायगी । इस तरह विचार कर वह उसे अपने घर ले गया और उसका नाम बुद्धदासी रखा । बुद्धदासी ने युवावस्था में रति से बढ़ कर सौन्दर्य प्राप्त किया, तिलोत्तमा और स्वर्ग की अप्सराएं भी उसके समान सुन्दरी नहीं हो सकती ।

एक दिन बुद्धदासी शृंगार कर नन्दन बगोचे में झूला झूल रही थी। पूतवाहन राजा की सवारी उसी रास्ते से निकली, वह इसके सौन्दर्य को देखते ही मुग्ध हो गया। अपना तन-मन बुद्धदासी के ऊपर न्यौछावर कर दिया। अतः घर आकर राजा ने रक्ताम्बर को बुलवाया और उससे बुद्धदासी की याचना की। रक्ताम्बर ने बुद्धदासी का विवाह राजा के साथ कर दिया। राजा भी उसके साथ आनन्द से रहने लगा। विषय भोगों में फंसकर राजकाज भी छोड़ दिया तथा अन्य रानियों से भी विमुख हो गया

इधर ओहिली देवी का फाल्गुण मास में अष्टान्हिका पर्व आ गया। सर्वदा के समान नन्दीश्वरी पर्व में आठ दिन तक व्रतोपवास किया। पूर्णिमा को भगवान का रथ-विहार करने का विचार स्थिर किया। राजा बुद्धदासी के आधीन था, अतः उसके कहने के अनुसार नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि पहले बुद्ध का रथ निकलेगा तथा धूमधाम से बुद्ध देव की पूजा की जायगी, पीछे जैनरथ जायगा और जिनेन्द्र भगवान् की पूजा भी पीछे की जायगी। राजाज्ञा के अनुसार बुद्ध का रथ निकालने की समस्त तैयारी हो गयी।

ओहिली देवी सोच-विचार में पड़ गयी। उसे यह धर्म का अपमान प्रतीत हुआ कि बुद्धरथ धूमधाम से पहले निकाला जाय और जिनेन्द्र प्रभु की सवारी पीछे निकाली जाय। उसने मन में विचार किया की राजा से कुछ कहना तो व्यर्थ है; क्योंकि वह दुष्टा बुद्धदासी के वश में है। इसी कारण राजा सारा धर्म कर्म छोड़ बैठा है, अतः जब तक जैनरथ पहले नहीं निकलेगा, तब तक के लिये सभी प्रकार के अन्न-पानी का त्याग करती हूं। बहुत सोच विचार कर वह सोमदत्त आचार्य के पास गयी और अपने धर्म का अपमान उनसे कहा और प्रतिज्ञा की कि जब तक बौद्धरथ से पहले जैनरथ नहीं निकलेगा अन्न-पानी का त्याग है। धर्म का अपमान सहन करने की शक्ति मुझ में नहीं है, आप कृपा कर कोई उपाय बतलाइये।

सोमदत्त—आप कनकपुर में वज्रकुमार मुनि के पास जाइये, वहां आप का कार्य अवश्य हो जायगा। वज्रकुमार अनेक विद्याओं से विभूषित हैं, उन्हें चारण ऋद्धि भी प्राप्त है।

रानी किसी तरह कनकपुर पहुँची और वज्रकुमार से सारा वृत्तान्त कहा तथा सोमदत्त आचार्य के पास की गयी अपनी प्रतिज्ञा को भी बतलाया।

रानी की बातें सुनकर वज्रकुमार विचारने लगे कि साधर्मी के साथ वात्सल्य करना चाहिये। वात्सल्य भाव

कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने वाला है, इस लोक और परलोक में कल्याण करने वाला है। जो मात्सर्य छोड़कर चतुर्विधि संघ के साथ प्रेम करता है, वह धन्य है। प्रेम भाव रखना जीवनोत्थान में बड़ा सहायक होता है। जो व्यक्ति साधर्मियों के साथ प्रेम नहीं करता है, ईर्षा या द्वेषवश उनसे मन मुटाव रखता है, वह धर्म के रहस्य से अपरिचित है। इस प्रकार विचार कर वह कहने लगे—

हे दिव्यगुणों की धारणी, भव्यजनों को आनन्द देने वाली! कल हम विद्याधरों सहित आकर जिनेन्द्र भगवान के रथ को चमत्कार सहित निकालेंगे। आपकी पूजामें कोई बाधा नहीं आ सकती है। आप निश्चिन्त होकर घर जाइये। मुनि के इन वचनों को सुनकर रानी के मन में अपार प्रसन्नता हुई और वह घर लौट आई।

वज्रकुमार मुनि चारण ऋद्धि द्वारा आकाश मार्ग से चलकर अमरावती में आये। जब भास्करदेव ने उन्हें आते देखा तो वह सिंहासन से उतर गया और मणिमाला सहित प्रदक्षिणा दी और आसन पर बैठाया।

भास्करदेव—मुनिवर क्या आज्ञा है? मैं धन्य हो गया, आपने यहां पधार कर अपने चरणों से मेरा घर पवित्र कर दिया।

वज्रकुमार मुनि—दक्षिण मथुरा में ओहिली महादेवी की पूजा में विघ्न हो गया है, अतः उस विघ्न को दूर करने के लिये समस्त विद्याधरों को मेरे साथ भेजिये।

मुनि के आदेशानुसार विद्याधरों की सेना आकाश मार्ग से जाने लगी और कुछ ही समय में भास्करदेव दक्षिण मथुरा में पहुँच कर रानी ओहिली देवी की पूजा में सहायता करने लगा। नाना प्रकार के वाद्य बजने लगे। विद्याधरों की स्त्री आकाश में नृत्य, गायन और वादन करने लगीं, जिससे उत्सव का सौन्दर्य कई गुना बढ़ गया।

विद्याधरों के समूह को आकाश में देखकर दक्षिण मथुरा के निवासी कहने लगे कि पूजा-उत्सव को देखने के लिये देव आये हैं? बुद्धधर्मानुयायी कहते थे कि बुद्धदासी का रथ निकालने के लिये तथा उसका उत्सव सानन्द सम्पन्न कराने के लिये देव आये हैं। प्रधान मन्त्री, दण्डनायक, सेनापति आदि भी कहने लगे कि बौद्ध पूजा के लिये देव आये हैं।

आकाश से आवाज हुई कि अनादिकाल से चली आई जैन-पूजा को छोड़ कर बुद्ध-पूजा कैसे होती है? आज हम देखते हैं। यदि अपनी भलाई चाहते हो तो सावधान हो जाओ, भगवान जिनेन्द्र की पूजा करो। आकाश से इस ध्वनि को सुनकर सभी थर-थर कांपने लगे, भय से आतंकित हो गये। नगर के लोग राजा की आलोचना करने

लगे कि राजा परंपरा से चली आयी जैन-पूजा को छोड़ कर बुद्धदासी के फेर में पड़ बुद्ध-पूजा करना चाहता है, इसीसे क्रोधित होकर देव आये हैं। राजा ने ओहिली रानी का अपमान कर बुद्धदासी को पट्टरानी का पद दे दिया है, इसीका यह सब परिणाम है।

नगरवासी कहने लगे कि पाण्डव नरेश की बुद्धि बिगड़ गयी है, इसी से वह बुद्धदासी के कहने में है। इसी से नगर को आज देवताओं का कोपभाजन बनाना पड़ रहा है। रानी ओहिली की दृढ़ता, सम्यक्त्व और पूजा-भक्ति देखकर ही नागेन्द्र धरणेन्द्र और मुनि आये हैं।

ओहिली रानी ने आकर वज्रकुमार मुनि की पूजा की, नगरवासी भी प्रभावित होकर एकत्रित हुए और उन्होंने भी मुनिवर की पूजा-भक्ति की। दूसरे दिन जैन मन्दिरों को खूब सजाया गया। धूप घट रखे गये। चन्दन कपूर की सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त हो गयी। भेरी, दुन्दुभि, घंटा आदि बाजे बज रहे थे, गन्धर्व गाना गा रहे थे। हाथी, घोड़े, स्त्री, पुरुष आदि की भीड़ एकत्रित हो रही थी। सर्वत्र जय-जयकार सुनाई पड़ रहा था। सोलह मंजिल का भव्य रथ बात की बात में तैयार किया गया, इसके चारों ओर विद्याधर विमान लिये उपस्थित थे। उस रथ के चारों ओर विद्याधर के विमान ऐसे प्रतीत होते थे, मानों स्वर्ण के विमान के चारों ओर चांदी के विमान चक्कर लगा रहे हों। पुष्प वृष्टि हो रही थी। स्वर्ण चांदी के दण्डों को लेकर विद्याधर घूम रहे थे। भास्करदेव के आदेशानुसार रथ की रक्षा के लिये अनेक विद्याधर प्रस्तुत थे। ध्वजाएं आकाश को छू रही थीं, गायन आकाश से सुनाई पड़ रहा था।

वज्रकुमार और सोमदत्त दोनों मुनिराज वहां पर रहे और धर्म कार्य को सानन्द सम्पन्न करने के लिये प्रयत्न करते रहे। आठ दिन तक खूब धूम-धाम से पूजा पाठ होता रहा। प्रतिदिन अष्टान्हिका विधान किया जाता था। नगर के सहस्रों नर-नारी विधान में शामिल होते थे। मध्यान्ह में श्रीजी की सवारी निकलती थी। गाजे बाजे के साथ अपार जन-समूह रथोत्सव में शामिल रहता था। भास्करदेव सारा प्रबन्ध इन्द्र के समान सम्पन्न कर रहा था। पूजा के समाप्त हो जाने पर ओहिली देवी ने सूर्याकार जिनस्तूप की वहां स्थापना की। इस स्तूप में वज्रमय अनेक सुन्दर प्रतिमाएं स्थापित की तथा उसके चारों ओर श्रेष्ठ परकोटा बनवा दिया।

धर्म प्रचार के लिये ओहिली देवी ने उत्सव खूब धूम-धाम से सम्पन्न किया । याचकों को दान दिया । चतुर्विध संघ का सत्कार किया, शास्त्र दान दिये और धर्म प्रभावना के कार्य किये । ओहिली देवी को पूजा सम्पन्न कराकर वज्र कुमार मुनि अपने निवास स्थान पर आकर तपस्या करने लगे तथा इस प्रभावना अंग के पालने में जो व्रतपालन में त्रुटि हुई उसका गुरुसे प्रायश्चित्त लिया ।

इस प्रकार गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक से प्रभावना अंग की कथा कही ।

नोंवी कथा समाप्त

दसवीं कथा

चित्त को प्रसन्न करनेवाले, निर्वाण लक्ष्मी को देने में सहायक, अष्टांगपूर्वक जो सम्यग्दर्शन का पालन करता है, वह संसार में धन्य है। कवि लोग भी उस धर्मात्मा की स्तुति कर उसी पद को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

शीघ्र मुक्ति को प्राप्त करने में सहायक अष्टांगपूर्वक सम्यग्दर्शन की कथा सुनने के अनन्तर राजा श्रेणिक विश्वबंध गौतम गणधर से कहने लगा—महाराज मैं अहिंसाणुव्रत की कथा जानना चाहता हूं।

गौतम गणधर—अहिंसा के समान संसार में सुख देने वाली अन्य वस्तु नहीं है। संसार के समस्त जीवों का यह कल्याण करने वाली है। जो इस धर्म का पालन करता है, वह संसार का सबसे बड़ा हितैषी है।

राजा श्रेणिक—प्रभो ! अहिंसा व्रत का लक्षण क्या है और इस व्रत की महत्ता क्या है ?

गौतम स्वामी—राजन् ! प्रमाद के निमित्त से किसी भी प्राणी को मनसा, वाचा और कर्मणा कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ पूर्ण आत्मशुद्धि है। कषाय और रागभाव को घटाना, वासनाओं पर नियन्त्रण करना एवं पवित्र आचरण करना अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। पूर्ण अहिंसा का पालन तो मुनिराज ही कर सकते हैं, किन्तु आंशिक अहिंसा का पालन गृहस्थ करते हैं। गृहस्थों की हिंसा चार प्रकार की होती है—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी गृहस्थ संकल्पी हिंसा का पूर्ण त्याग करता है, शेष तीन प्रकार की हिंसाओं का शक्ति के अनुसार त्याग करता है।

राजा श्रेणिक—प्रभो ! इस व्रत के पालनेवालों को क्या फल मिला और किसने किस प्रकार अहिंसा धर्म का पालन किया, कृपया बिस्तार पूर्वक बतलाने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—अहिंसाव्रत पालन करने से स्वर्ग के पुण्य की समाप्ति होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। अहिंसाणुव्रत पालन करने की कथा निम्न प्रकार है—

इस भरतक्षेत्र में नाना प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त मालव नाम का देश है। इस देश में अमरपुरी के

के समान सुन्दर सभी प्रकार की वस्तुओं से युक्त उज्जैन नाम का नगर था। इस नगर का राजा विश्वन्धर था, इसका राजश्रेष्ठि का नाम गुणपाल था। इन्द्राणी और रतिके रूपको तिरस्कृत करनेवाली धनश्री नाम की उसकी स्त्री थी। यह दिन रात भगवद्भक्ति, पूजा, दान और स्वाध्याय में लीन रहती थी। सेठ भी दान, स्वाध्याय, पूजा आदि गृहस्थ के कर्मों को प्रतिदिन सम्पन्न करता था। इन दोनों के लक्ष्मी और सरस्वती के समान गुणशालिनी कन्या थी, इसका नाम बन्धुश्री रखा गया। माता पिता इस कन्या रत्न के साथ सुख पूर्वक समय को बिताने लगे।

धनश्री ने ब्राह्ममुहूर्त में एक स्वप्न देखा, जिसमें उसे ऐरावत हाथी, चन्द्रमा और सूर्य दिखलायी पड़े। प्रातः काल उठकर उसने गुणपाल सेठ से उसका फल पूछा।

सेठ—इस स्वप्न का फल मुझे मालूम नहीं है। प्रातःकाल जिनालय में जाकर निमित्त ज्ञानी मुनिराज से इसका फल पूछेंगे।

प्रातःकाल नित्यक्रियाओं से निवृत्त हो मुनिराज के पास गये और हाथ जोड़कर उनसे फल पूछा।

मुनिराज—ऐरावत हाथी देखने का फल यह है कि धर्मात्मा, गुरुभक्त और पराक्रमी पुत्र होगा। सूर्य देखने से वह पुत्र जिन शासन की उन्नति करने वाला, कामदेव के समान सुन्दर और तेजस्वी होगा।

पुत्र प्राप्ति समझ दम्पत्ति आनन्दित हो— 'समणो अमोणा वयणो' मुनियों के वचन झूठ नहीं होते, कह घर चले आये।

कुछ दिनों के उपरान्त धनश्री को गर्भ रहा। गर्भावस्था में उसे तीर्थाटन, दिव्य जिनालयों के दर्शन, दान-पूजा करने की अभिलाषा आदि का दोहद उत्पन्न हुआ। भव्यजीव और सद्धर्म के रक्षण की प्रवृत्ति, श्रावकों के साथ धर्मचर्चा करने के भाव, भगवान के समक्ष बैठकर स्तुति करने की इच्छा, त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा सुनने की वांछा, गायन—वादन सहित भगवान की पूजा में रत रहने की लालसा, त्रिलोकीनाथ का पञ्चामृत अभिषेक करने की इच्छा और शास्त्र सुनने की प्रवृत्ति उसके मन में उत्पन्न हुई। इन नवीन दोहदों के अनुसार वह मृगनयनी सर्वदा धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त रहने लगी।

महाराज भरत ने कैलास पर्वत पर जो ७२ जिनालय बनवाये थे, उनका वह ध्यान करने लगी। उसने अनेक

सोने-चांदी के बिम्बों का निर्माण कराया, उनकी प्रतिष्ठाएं करायीं। मन्दिरों में ध्वजा, घंटा आदि उपकरण चढ़ाये। चतुर्विध संघ को चारों ही प्रकार का दान दिया।

एक दिन विश्वन्धर राजा महावैभव के साथ हाथी पर सवार हो वनक्रीड़ा के लिये जा रहा था। मार्ग में उसने सखियों के साथ क्रीड़ा करते हुए श्रेष्ठि कन्या बन्धुश्री को देखा। इस अनिन्द्य सुन्दरी को देखते ही राजा काम-पीड़ित हो गया। वह सोचने लगा- इस अनुपम सुन्दरी ने अपने रूप से रति, शची एवं देवाङ्गनाओं को भी परास्त कर दिया है। इसे प्राप्त किये बिना जीवित रहना निरर्थक है। संसार के समस्त सुख इस सुन्दरी के अभाव में अपूर्ण हैं। इस प्रकार विचार तरंगों में डूबता-उतराता विश्वन्धर राजा मार्ग में से ही लौट गया। घर आते ही राजा मूर्छित हो गया, उसके मुंह से अस्पष्ट ध्वनि निकलती थी, फेन बहा चला जा रहा था। राजा की इस अवस्था को देखकर सभी लोग चिन्तित थे। नाना प्रकार के उपचार किये जा रहे थे। चन्दन, अगर, कपूर के जल से सिंचन किया जा रहा था; दासियां हवा कर रहीं थीं और चिकित्सक औषधोपचार में संलग्न थे।

जब कुछ समय पश्चात् राजा की चेतना लौटी तो उसने दासी को आज्ञा दी कि तुम तुरन्त गुणपाल सेठ के घर जाओ और उनसे कहो कि राजा तुम्हारी पुत्री बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहता है। अतः शीघ्र ही किसी शुभ मुहूर्त्त में विवाह की तैयारी करनी चाहिये।

दासी—श्रेष्ठिन् ! आपको मैं यह खुश खबरी सुनाती हूं कि राजा विश्वन्धर आपकी पुत्री बन्धुश्री से विवाह करना चाहता है। आपके भाग्य जगे, ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो इस हर्षित करनेवाला समाचार को सुनकर आनन्द से न झूमने लगे। ऐसा सौभाग्य कम ही लोगों को मिलता है, महाराज को दमाद बनाना कम गौरव की बात नहीं है। सचमुच में आप बड़े भाग्यशाली हैं, आपकी कन्या के सौभाग्य की क्या प्रसंसा की जाय ? यह तो अब पट्टरानी बनेगी।

दासी के इन वचनों को सुनकर गुणपाल सेठ सोचने लगा। कन्या सदा साधर्मी को देनी चाहिये, विधर्मी को कन्या देना महापाप है। राजा जैनधर्म नहीं मानता है, अतः चाहे जो कुछ हो मैं इस विधर्मी राजा के यहां अपनी कन्या का विवाह नहीं करूंगा। सांसारिक सुखों के लिये धर्म को बेचा नहीं जा सकता है, धर्म ही संसार से त्रास करनेवाला है, यही जीवन का साथी है, इसके बिना जीना निरर्थक है। जो व्यक्ति प्रलोभनों में आकर अपनी कन्या को विधर्मी को

वे देते हैं, वे वस्तुतः निन्दनीय हैं। अब तक बन्धुश्री ने वीतरागी प्रभु की सेवा, अर्चा की है, दिगम्बर मुनियों को आहार दिया है, रात्रि भोजन और बिना छाने जल को कभी छूआ भी नहीं, अब वह किस प्रकार विधर्मी के यहां जाकर अपने धर्म की रक्षा कर सकेगी? क्या वासना के लिये धर्म वेचा जा सकता है? कभी नहीं। मैं अपनी कन्या का जैनधर्मानु-यायी के साथ विवाह करूंगा, चाहे वह गरीब ही क्यों न हो? धन तो सांसारिक वस्तु है, इसका क्या विश्वास? यह आज है कल नहीं रहेगा। परन्तु धर्म शाश्वतिक वस्तु है, यह आत्मा का साथी है, इसको छोड़कर कोई भी अन्य पदार्थ अपना नहीं है। इस प्रकार विचार-सागर में मग्न हो गुणपाल सेठ व्यथित हो गया। उसने किसी प्रकार मीठे वचनों से समझा कर दासी को लौटा दिया। पश्चात् अपनी पत्नी को बुलाकर उसका अभिप्राय जानने के लिये कहने लगा--

महाप्रतापी राजा विश्वन्धर बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहता है। यह हमारे लिये कितने गौरव की बात है। बन्धुश्री पट्टरानी बनेगी, राजदरवार में हमारा मान होगा। अतः अब जल्दी ही बन्धुश्री के विवाह की तैयारियां करनी चाहिये।

धनश्री—स्वामिन् आज आपको क्या हो गया है? कहीं आपने नशा तो नहीं कर लिया? आप अपने मुख से कैसी विचित्र वात कह रहे हैं। राजा विश्वन्धर विधर्मी है, मिथ्यादृष्टि है, उसके साथ में अपनी पुत्री का विवाह कभी नहीं होने दूंगी। वीतरागी प्रभु की सेवा के बिना रूप, लावण्य, धन, वैभव, विद्या, पवित्रता, कुल, आदि सभी व्यर्थ है। मदोन्मत्त हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना या लड़की का गला दबाकर उसकी हत्या कर देना अच्छा है, पर मिथ्यादृष्टि से लड़की का विवाह करना अच्छा नहीं। जो व्यक्ति धर्म की अपेक्षा राज्य को या वैभव को महत्व देते हैं, वे निम्न कोटि के हैं धर्म के सामने राज्य वैभव तुच्छ हैं, इन क्षणिक वस्तुओं की तुलना धर्मके साथ नहीं की जा सकती है। स्वामी, आपने बिना बिचारे ही ऐसा कहा है।

आश्चर्य इस बात का है कि आप जैसे धर्म मर्मज्ञ भी बाह्य ऐश्वर्य को महत्ता देते हैं। अनित्य सुखों को आपने क्यों हितकर समझ लिया? आप बन्धुश्री को नरक में क्यों डालना चाहते हैं। यह पुत्री बड़ी ही धर्मात्मा है, इसकी प्रवृत्ति सर्वदा कर्मशत्रु को नाश करने की ओर रहती है। यदि मिथ्यादृष्टि के साथ इसका विवाह हो जायगा तो इसका उद्धार होना असंभव होगा। संसार में अनन्तकाल तक भ्रमण करने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से जैनधर्म की प्राप्ति होती है; जो व्यक्ति इस धर्म को पाकर अपना कल्याण नहीं करता, उसके समान मूर्ख कौन हो सकता है? मिथ्यात्वी राजा

के साथ इस कन्या के विवाह करने का अर्थ है, इसे सिंह को समर्पण कर देना। न मालूम आप सम्पत्ति पर क्यों मुग्ध हो गये हैं? सांसारिक वैभव प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती, किन्तु सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने में बड़ी कठिनाई होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सम्यग्दृष्टि को संसार के सारे वैभव अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। विभूतियां उसके चरणों की दासी बन जाती हैं। क्षणभंगुर ऐश्वर्य को देखकर जो सम्यग्दर्शन को छोड़ देते हैं, वे ऐसे हैं जैसे कोई कांच के सौन्दर्य को देखकर माणिक्य को छोड़ दे।

मिथ्यादृष्टि जीव का वैभव भी स्थिर नहीं रहता। थोड़े ही दिनों में सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, वह दर दर का भिखारी बनकर खाक छानता फिरता है। स्वामिन्! वास्तविक बात यह है कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप धर्म ही संसार में सुख देनेवाला है। भोग से मनुष्य को कभी शान्ति नहीं मिल सकती है, शान्ति सदा त्याग में है। आपने आज भोग को प्रधान समझ लिया है, इसी से ऐसे वचन आपके मुंह से निकले हैं। आपने शास्त्र में पढ़ा होगा कि—मूर्खराजा, मेघ की छाया, दोपहर के सूर्य की उष्णता, मूर्ख का धन, देखते-देखते विलीन होने वाले हैं। ऐश्वर्य होने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा होता है मनुष्य सम्यग्दर्शन के धारण करने से, अहिंसा धर्म के पालन करने से और आत्म धर्म में विश्वास करने से। स्वामिन्! स्थिर सम्पत्ति को छोड़ अस्थिर सम्पत्ति को प्राप्त करनेवाले निर्बुद्धि के समान, पति को छोड़कर और पर विश्वास करनेवाली नारी के समान, पतिव्रता पत्नी को छोड़ वेश्या पर आसक्त होने-वाले विट के समान, निर्मल जल छोड़कर कीचड़ मिश्रित जल पीनेवाले निर्बुद्धि के समान ही सच्चे धर्म को छोड़ कुधर्म का सेवन करना है। कुधर्मी की बुद्धि कभी भी स्थिर नहीं रह सकती है, वह लोक परलोक को कुछ भी नहीं समझता है। अतः इस राजा के साथ में मैं अपनी कन्या का कभी भी विवाह नहीं होने दूंगी।

आप अत्यन्त बुद्धिमान हैं, धर्मात्मा हैं, धर्म के वास्तविक रहस्य को जाननेवाले हैं, फिर आपको यह विभ्रम कैसे हो गया है? मैं आपको क्या उपदेश दे सकती हूं, आप स्वयं विचार कीजिये कि मेरा कहना कहां तक ठीक है? आप विशेषज्ञ हैं, लोक और शास्त्र की मर्यादा के जानकार हैं अतएव आपकी आज्ञा ही मेरे लिये शिरोधार्य है। मैंने तो अपने विचार आपके सामने रखे हैं।

गुणपाल—कमलनेत्री! तुम्हारी बुद्धि और उच्च विचार जानकर मेरे मन में अत्यन्त प्रसन्नता है। मैंने केवल

तुम्हारी परीक्षा ली थी। तुम-सी सती-शिरोमणि को पा, मैं, धन्य हूं। जिस घर में दुष्ट और उदण्ड स्त्री हो, उस घर का विनाश अवश्यम्भावी है। नारी का विचारशील और विवेकी होना अत्यावश्यक है। सम्यग्दृष्टि स्त्री का मिलना बड़े सौभाग्य की बात मानी जाती है। ऐसी देवी से पुरुष का जीवन भी सुधर जाता है, वह कृतकृत्य हो अपने कल्याण में प्रवृत्त हो जाता है। दुश्चरित्र, धर्म से रहित, कलह-कारिणी, पति आज्ञा का उलंघन करनेवाली, पति के धन को चुराने वाली घर की मान-मर्यादा की परवाह न करने वाली सासससुर तथा कुटुम्बियों की सेवा न करनेवाली ईर्ष्यालु और असहनशील नारी कभी भी सद्गृहणी नहीं कही जा सकती है। पति के समक्ष बढ-बढ़कर बातें करनेवाली स्त्री क्या कुलांगना कही जा सकती है।

सत्य, स्पष्ट और मधुर वचन बोलना नारी के लिये आभूषण है। पति को उचित सलाह देना, कुमार्ग से उसकी रक्षा करना, विपत्ति में पति को धैर्य देना तथा सब प्रकार से पति की सेवा करना नारी का परम कर्त्तव्य है। मैं आज तुम्हारे उच्चादर्श को जानकर बहुत प्रसन्न हूं।

विधर्मी को कन्या देने के पक्ष में मैं कभी नहीं हूं। मेरा विचार सदा ही सावर्मी के साथ कन्या का विवाह कर देने का है। केवल तुम्हारे विचारों का जानने के लिये ही मुझे ऐसा कहना पड़ा था। मैं स्वतन्त्ररूप से तुम्हारे विचारों को जानना चाहता था, अच्छा अब बन्धु श्री को बुलाकर उसका भाव भी जान लेना चाहिये। यदि बन्धु श्री राज्य वैभव को पसन्द करे तो हमें फिर अन्य ढंग से विचार करना होगा। विवाह में कन्या की सलाह लेना भी आवश्यक है। कन्या की भावना को जानकर ही हम लोगों को आगे कुछ करना चाहिये।

गुणपाल ने बन्धु श्री को गोद में बैठा लिया और प्रेम पूर्वक कहने लगा—बेटी, तेरे समान कौन पुण्यात्मा होगा, मालव नरेश ने स्वयं ही तुम्हारे साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि विवाह के बाद तुरत ही तुम्हें पट्टरानी के पद पर अभिषिक्त कर दिया जायगा। समस्त राज्य सुख को तुम भोगोगी। हमारे भी भाग्य जगेंगे, सभी देश हमारा सम्मान करेगा। राजा भी हमको उच्चासन देगा। जब तुम्हारे पुत्र को राज-शासन मिलेगा, तब तो हमारी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जायगी। राजघराने में न पैदा होने पर भी तुम्हारे कारण हमारी राजाओं में गणना होने लगेगी, हमारा हुक्म सभी लोग मानेंगे। बेटी हम धन्य हैं, जिन्होंने तुम जैसी कन्याको प्राप्त किया। आज

हमारे समान कौन सौभाग्यशाली होगा ? किसको ऐसा अवसर मिलता है ? पुण्यात्मा ही ऐसे सुअवसरों को प्राप्त होते हैं ।

बन्धुश्री—पिताजी ! क्षमा करें—आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है । आप मुझे सांसारिक वैभव में झुलाना चाहते हैं । आप विधर्मी के साथ विवाह कर मेरे धर्म को नष्ट करना चाहते हैं । मैं, वासना लोलुप नहीं । धर्म को कोड़ी के मोल बेचना बुद्धिमानों का काम नहीं । क्या आप नहीं जानते कि यह जैनधर्म ही सभी प्राणियों का हित करनेवाला है, यही त्रिभुवन में उत्तम, पूज्य और वंदनीय है । देवेन्द्र के द्वारा स्तुत्य लक्ष्मी, त्यागियों के द्वारा प्राप्त की जानेवाली मोक्ष इसी उत्तम धर्म के धारण करने से मिलती हैं, समस्त सुखों को देनेवाला यही धर्म है । यह जैनधर्म बड़े पुण्योदय से प्राप्त होता है, पापी व्यक्ति इसे कभी नहीं पा सकते । क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष, शंका, आदि सभी सम्यग्दर्शन के प्रतिपक्षी हैं । सम्यग्दर्शन के प्रभाव से ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है; मिथ्यात्व से इस जीव का त्रिकाल में भी हित नहीं हो सकता है ।

मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है कि आप हिंसक मिथ्यादृष्टि के साथ मेरा विवाह करने को कैसे तैयार हो गये ? क्या आप मेरा हित नहीं चाहते हैं ? हितैषी होकर आप विधर्मी के साथ मेरा सम्बन्ध करने को तैयार हैं । राज्य वैभव धर्म के समक्ष मेरे लिये खाक हैं । आज आपको अपने सम्मान का ख्याल हो आया है । विधर्मी के साथ विवाह करने की अपेक्षा तो आप मेरी हत्या कर दें, यही श्रेष्ठ है । मैं अहिंसा धर्म का पालन करते हुए अपने प्राण देना भी उचित समझती हूं । हाय राम ! आप पिता होकर मेरा अनिष्ट करने को तैयार हैं । क्या इस समय कोई भी मेरी रक्षा नहीं कर सकेगा । इस प्रकार कहकर बन्धुश्री रोने लगी ।

गुणपाल—धन्य हो पुत्री ! आज मेरा जीवन सफल हो गया । तुम जैसी कन्या को पाकर कृतकृत्य हो गया । बेटी ! यह तुम्हारी परीक्षा थी, तुम इसमें पूर्ण सफल हो गयीं । बेटी, जीवित रहते हुए तुम्हारा बिवाह विधर्मी से कभी नहीं करूंगा । मैं स्वयं समझता हूं कि धर्म से बढ़कर कोई वस्तु नहीं । मिथ्यादर्शन और हिंसा के समान अन्य कुछ भी कष्टकारी नहीं हो सकता है

गुणपाल पुनः सोचने लगा—यहां रहने पर राजा बलपूर्वक मेरी कन्या के साथ विवाह कर लेगा तथा राजाज्ञा का उलंघन करने से दण्ड भी भोगना पड़ेगा । अतः लड़की की रक्षा यहां से चले जाने पर ही की जा सकती

है । इस प्रकार विचार कर वह अपनी गर्भिणी स्त्री को अपने मित्र श्रीदत्त के यहां छोड़ कर तथा अपनी एक अरब आठ करोड़ की सम्पत्ति को छोड़ रात को पुत्री को लेकर नगर छोड़ चल दिया ।

जब राजा को यह समाचार मिला कि गुणपाल अपनी सारी सम्पत्ति को ज्यों का त्यों छोड़ अपनी कन्या के साथ चला गया है तो राजा सोचने लगा कि उस धर्मात्मा ने मुझ पापी को अपनी कन्या देना उचित नहीं समझा, इसी से यहां से चुप-चाप चला गया है । वास्तव में धर्म ही कल्याण करनेवाला है, अहिंसा के समान संसार में कुछ भी सुखदायी नहीं है । मैंने कुधर्म सेवन में अपना जीवन यों ही बिता दिया । इस प्रकार विचार करने से राजा की कुधर्म से रुचि हट गयी और जिनधर्मानुयायी उस सेठ को ढूढ़ने के लिये उसने अपने दूतों को भेजा ।

एक दिन उस नगर में शिवगुप्त नाम के आचार्य अपने त्रिगुप्त नाम के शिष्य के साथ ईर्या समिति पूर्वक आ रहे थे । श्रीदत्त सेठ उन ज्ञाननिधि, पापरूपी पर्वत को नाश करने के लिये वज्र के समान आचार्य को पड़गाह कर घर ले गया । मुनियों को आहार दान देने के उपरान्त घर के सभी लोग एकत्रित हो गये । धनश्री भी वहीं चली आयी । त्रिगुप्त मुनि धनश्री को देखकर आश्चर्य में पड़ गये और गुरु से कहने लगे—प्रभो ! यह भद्रपरिणामी, उत्तम गुणवाली और पतिव्रत में प्रवीण पर घर में आकर क्यों रह रही है ? इसका शरीर निस्तेज हो रहा है ।

गुरु—आयुष्मन् ! संसार में सिवा दुःख के और क्या है ? इस नगर के राजा ने इससे कन्या मांगी थी, गुणपाल सेठ राजा के भय से अपनी कन्या को यहां से लेकर अन्यत्र चला गया है और यह बेचारी यहां रह गयी है । इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह बड़ा प्रभावशाली, यशस्वी राजा और धर्मात्मा होगा ।

मुनिराज की भविष्यवाणी को सुनकर श्रीदत्त को बड़ा कष्ट हुआ । वह सोचने लगा कि इसके पुत्र को किसी भी तरह से मार डालना आवश्यक है । इस प्रकार के विचार का प्रधान कारण यह था कि उस उत्पन्न होनेवाले जीव के साथ श्रीदत्त का पूर्वजन्म का वैर था ।

श्रीदत्त ने धनश्री को एक अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया और समय पर उसे थोड़ा सा भोजन देने लगा । उसका आना जाना भी रोक दिया गया ।

समय पाकर धनश्री को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर श्रीदत्त ने उस बच्चे को एक चाण्डाल को मारने के लिये दे दिया और उसके स्थान पर मृतक शिशु सुला दिया गया ।

जब धनश्री को होश आया और मृतक शिशुको देखा तो विलाप करने लगी। श्रीदत्तने अपने मायावी वचनों द्वारा समझाना शुरु किया–कर्मोदयको कोई नहीं टाल सकता है; तुम्हारे दुर्भाग्य से ही मरा बालक उत्पन्न हुआ है। अब शान्ति और धैर्य धारण करना चाहिये।

चाण्डाल जब श्रीदत्त के द्वारा दिये गये बच्चे को मारने के लिये तैयार हुआ तो उसके शुभ लक्षण, लालरंग, प्रभावशाली ललाट और राजाओं के से चिन्ह देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसकी भावना एकाएक बदल गयी और सोचने लगा—मैं इस निरपराधी शिशु को मारकर क्यों खून से अपने हाथ रगूं। अतः इसे गर्म बालू पर छोड़ देता हूं यह अपने आप मर जायगा।

वह शिशु तप्त बालू पर पड़ा मृत्यु की बाट जोह रहा था, कि इतने में श्रीदत्त सेठ का बहनोई इन्द्रदत्त सेठ उसी रास्ते से आ निकला। वह उस अनाथ सुन्दर शिशु को देखकर बहुत प्रभावित हुआ और उसे उठा लिया। उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः घर लाकर अपनी स्त्री को दे दिया और गूढ़ गर्भ बतलाकर जनसाधारण में पुत्र होने की बात प्रकट करदी। जो नौकर चाकर साथ में थे, उन्हें धन देकर इस बात को प्रकट करने की मनाही कर दी।

जब श्रीदत्त को राधा के पुत्र होने का समाचार मिला, तो वह आश्चर्यान्वित हो बहनोई के घर पहुँचा। पुत्र को देखते ही काठ मार गया, उसे अत्यधिक मानसिक वेदना हुई और उसको मार डालने का उपाय सोचने लगा। पर वह अपने मन के भावों को छुपाकर बोला—मैं बहुत प्रसन्न हूं; आप लोगों को पर्याप्त धन था, किन्तु सन्तान के अभाव में वह धन निरर्थक था। आज राधा को पुत्रवती जानकर मुझे बड़ा हर्ष है, मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली कौन होगा?

मेरे घर में भी धन की कमी नहीं है, अतः मैं राधे को ले जाकर पुत्रोत्सव धूमधाम से करना चाहता हूं। मैं सब जाती वालों को बतला देना चाहता हूं कि धन की सार्थकता किस बात में है? इस प्रकार बातें बनाकर राधा को अपने साथ ले गया और गांव में जाकर कपट पूर्वक उत्सव किया। जब रात में राधा सोयी हुई थी तो उसने एक मृत शिशु को उसकी बगल में सुला दिया और उस बच्चे को जल्लादों को मारने के लिये सौंप दिया।

प्रातःकाल राधा ने जब मृत शिशु को देखा तो रोने लगी। राधा के रोने की आवाज को सुनकर श्रीदत्त ने भी कपट पूर्वक रोना शुरु किया। वह रोते हुए कहने लगा—मैं अपनी सारी सम्पत्ति का मालिक इसी बच्चे को बनाना

चाहता था। मेरे कितने बड़े-बड़े अरमान थे, इस बच्चे की मृत्यु हो जाने से सभी धूल में मिल गये। मैं कहीं का न रहा, सिर पर एक अपयश भी पड़ा। लोग कहेंगे कि वह अपने यहां न ले जाता तो बच्चे की मृत्यु नहीं होती। पर हाय, भाग्य की रेखा को कौन मेंट सकता है। इतनी बड़ी उम्र में तो राधा को पुत्र हुआ, वह भी चल बसा। यह शिशु भी कामदेव के समान सुन्दर, बृहस्पति के समान बुद्धिमान और इन्द्र के समान पराक्रमी होता। हमारे भाग्य में ऐसा होनहार पुत्र बदा नहीं था, अन्यथा दुष्ट काल हमारे सामने से उसे क्यों ले जाता ? इस प्रकार दूसरों को दिखाने के लिये माथा ठोक-ठोक कर रोने लगा।

जल्लाद जब बच्चे को मारने के लिये सूनसान स्थान में पहुँचा तो उस बच्चे के तेजस्वी मुख को देखकर उसके मन में प्रसन्नता उत्पन्न हुई और वह सोचने लगा--इस निरपराध बच्चे की हत्या कर मैं क्यों पातकी बनूं। मैं इसे तलाब के किनारे छोड़ देता हूं; कोई हिंसक जानवर खा जायगा या यह अपने आप मर जायगा। इस प्रकार निर्णय कर उसने उस तलाब के किनारे पर उसको रख दिया।

दोपहर को गायें तलाब में पानी पीने को आयीं। पानी पीना भूलकर वे उस बच्चे के पास चली गयीं और उसको सूंघने लगीं। उस निरीह शिशु की मूक भावनाओं ने उन पशुओं के हृदय पर भी अपना प्रभाव अंकित कर दिया और सब गायें एकत्रित होकर खड़ी हो गयीं और स्वतः अपने स्तन से दूध गिराने लगीं। जब ग्वालों ने यह दृश्य देखा तो वे अत्यधिक प्रभावित हुए और उस पुत्र को ले जाकर अपने स्वामी गोविन्द को दे दिया। गोविन्द ने उस सुन्दर शिशु का नाम धनकीर्त्ति रखा।

धनकीर्त्ति कुमार कामदेव के समान सुन्दर और दिव्य तेजस्वी था। वह राजपुत्र के समान वृद्धिगत होने लगा।

इधर श्रीवत्त सेठ को अपनी श्रीमती नामक पुत्री का विवाह करना था; इसलिये वह घी लाने के लिये तुरपट्टी नामक गोप गांव में आया। जब उसकी निगाह धनकीर्त्ति पर पड़ी तो उसने तत्काल उसे पहचान लिया और सोचने लगा यह अभागा अभी तक जिन्दा है, मैंने इसे मारने का कितना प्रयत्न किया, फिर भी यह बच गया। मालूम होता है, जल्लाद ने मुझे धोखा दिया है। अबकी बार मैं इसे स्वयं अपने हाथों से जहन्नुम भेजूंगा। अपने बिना किये कोई काम

नहीं होता, क्या अपने मरे बिना किसी को स्वर्ग मिला है। इस कृत्य को सम्पन्न करने के लिये मुझे स्वयं यहां कुछ दिन रुक जाना पड़ेगा। इस तरह सोचकर वह वहां रहने लगा। धीरे धीरे उसने सभी गांव वालों पर अपना प्रभाव डाल दिया। एक दिन उसने गोविन्द को बुलाकर कहा——भाई आपसे एक काम लेना है, आशा है आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगें। वह काम यह है कि–आप अपने पुत्र धनकीर्त्ति को मेरे गांव इस घी और पत्र को लेकर भेज दें, आपकी बड़ी कृपा होगी। मैं अन्य आवश्यक कार्य से दूसरे गांव जा रहा हूं।

उसके कपट जाल से भोला गोविन्द अपरिचित था। अतः उसकी लुभावनी बातों में आकर उसने धनकीर्त्ति को श्रीदत्त के पास भेज दिया। उसने बड़े प्रेम भाव से उसे भोजन कराया और राह का खर्च देकर उसे अपने गांव भेज दिया। साथ में अपने पुत्र के लिये निम्न आशय का पत्र लिखा——

मैं जिस व्यक्ति को घी लेकर भेज रहा हूं, उसे तुम शीघ्र मार डालना। इस पर दया दिखलाने की आवश्यकता नहीं है। इस भेद को छिपाकर रखना, कोई भी जानने न पावे।

धनकीर्त्ति घी का घड़ा और पत्र लेकर शिम्पा नदी के किनारे उज्जयिनी के निकट आया और थकने के कारण आम्रवृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा और सो गया।

इस समय मृगसेना नाम की वेश्या उसी रास्ते से आ रही थी। जब उसकी दृष्टि धनकीर्त्ति के मुख पर पड़ी तो एकाएक उसके मन में स्नेह धारा उमड़ पड़ी। वह अदृश्य शक्ति से खिंच कर आम के पेड़ की छाया में चली आयी धनकीर्त्ति के सुन्दर मुख को देखकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे यह उसका पिता हो। कमर में बंधे पत्र पर जब दृष्टि पड़ी तो उसने उत्सुकता से उस पत्र को खोलकर पढ़ा और उसका रहस्य समझकर दूसरा पत्र लिखकर बांध दिया। उसमें उसने लिख दिया कि पुत्र, तुम्हें मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी, मैं आवश्यक कार्य से दूसरे गांव में जा रहा हूं। आज की लग्न सर्व श्रेष्ठ है, अतः इस सर्व गुण सम्पन्न वर के साथ तुम श्रीमती का विवाह अवश्य कर देना। पुत्र का कर्त्तव्य पिता की आज्ञा मानना है। इस कार्य में तनिक भी ढिलाई मत करना। मेरी प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा वर नहीं मिल सकेगा। इस प्रकार पत्र लिखकर और उसे ज्यों का त्यों बांध कर मृगसेना चली गयी। उसने उसे सोते हुए नहीं जगाया।

जब वह जगा तो विलम्ब जानकर जल्दी ही घी का घड़ा सिर पर रख उज्जयिनी आया और श्रीदत्त के पुत्र महाबल को उसके पिता का पत्र दे दिया।

महाबल ने जल्दी ही विवाह की तैयारी कर दी तथा ज्योतिषी को बुलाकर लग्न दिखलायी। ज्योतिषी ने कहा—यह सर्वश्रेष्ठ समय है। धनकीर्त्ति राजा होगा, यह बड़ा प्रतापी और तेजस्वी राजा निकलेगा। महाबल ने खूब धन खर्च कर श्रीमती का विवाह धनकीर्त्ति के साथ कर दिया। उत्सव में अनेक लोगों को भोजन कराया। विवाह के पश्चात् धनकीर्त्ति श्रीमती के साथ कुछ दिनों तक आनन्दपूर्वक रहता रहा।

जब श्रीदत्त ने उज्जयिनी में आकर यह सब आंखों से देखा तो उसके प्राण सूख गये। विचारने लगा—मैंने तो इसे मार डालने को लिखा था, यह जीवित कैसे बच गया? मालूम होता है कि इसका पुण्य बहुत जोरदार है।

पुनः सोचने लगा—मेरी लड़की विधवा हो जाय कोई हर्ज नहीं, पर इसके मारने का प्रबन्ध अवश्य करना होगा। इसके मारे विना मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। न मालूम क्यों मुझे इससे द्वेप हो गया है? मैं अपने आपको स्वयं नहीं समझ पाता हूं, क्या करूं। इसे मारना तो मुझे अवश्य है।

उसने धनकीर्त्ति को बुलाया और कहा—बेटे! मैं तुम्हें सुखी और समृद्धिशाली देखना चाहता हूं। अतः आज अपने कुल देवता धरणेन्द्र की पूजा नैवेद्य लेकर रात को बारह बजे करने जाना होगा। नैवेद्य चढ़ाकर कुलदेवता के दर्शन कर लौट आना।

रात के बारह बजे जब धनकीर्त्ति कुलदेवता की पूजा के लिये जाने लगा तो महाबल ने कहा—इतनी रात गये मैं आपको नहीं जाने दूंगा। आपका अभी विवाह हुआ है, जाकर सो जायं। मैं ही कुलदेव को नैवेद्य चढ़ाये आता हूं। पिताजी तो ऐसे ही एक न एक नयी-नयी बात करते रहते हैं। इस प्रकार समझा-बुझाकर उसको वहीं पर छोड़ महाबल नैवेद्य चढ़ाने मन्दिर में गया। ज्यों ही उसने मन्दिर में प्रवेश किया त्यों ही जल्लादों की तलवारें उसकी गरदन पर पड़ीं और वह वहीं गिर पञ्चत्व को प्राप्त हुआ।

जब श्रीदत्त ने धनकीर्त्ति को घर में देखा तो पूछा कि तुम नैवेद्य चढ़ाने नहीं गये? धनकीर्त्ति—पिताजी! मैं आपके आदेशानुसार जा रहा था, किन्तु उदार और प्रेमी महाबल ने मुझे नहीं जाने दिया और मेरे हाथ से नैवेद्य लेकर वह स्वयं चले गये। मैंने तो आपकी आज्ञा पालने का पूरा यत्न किया, किन्तु मुझे रुक जाना पड़ा।

धनकीर्त्ति के वचन सुनते ही उसको बड़ी वेदना हुई और नंगे पैर मन्दिर को ओर दौड़ा। मन्दिर के द्वार पर महाबल की लाश पाकर विलाप करने लगा। महाशोक में डूबकर विक्षिप्तसा हो गया। वह सोचने लगा—हाय ! मैंने इस दुष्ट के मारने के लिये कितना प्रयास किया, सब व्यर्थ गया। इसके स्थान में मेरा पुत्र मारा गया, किन्तु जो कुछ भी हो, इसके मारे बिना मुझे शान्ति नहीं मिल सकती है इस प्रकार निश्चय कर अपनी पत्नी को बुलाया और आद्योपान्त सारा व्याख्यान कह सुनाया तथा यह भी कहा कि अपनी पुत्री का मोह छोड़ कर मेरी शान्ति के लिये बिष प्रयोग द्वारा इसे शीघ्र यमराज के यहां भेज दो।

पहले तो पतिव्रता विशाखदत्ता ने अपने पति को बहुत समझाया और कहा कि पाप करने से शान्ति नहीं मिल सकती। अब तक आपने इसको मारने के लिये कितने ही उपाय किये, पर वे सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। पाप द्वारा पाप का प्रक्षालन नहीं हो सकता है, यदि वास्तव में आप शान्ति चाहते हैं तो अब पाप करना छोड़ दीजिये। आप बड़े हैं, ज्ञानवान् हैं, अहिंसा धर्म का तत्त्व समझते हैं, फिर क्यों आप इस प्रकार की बातें सोचते रहते हैं।

श्रीदत्त—स्त्री का काम पति की आज्ञा मानना है। पतिव्रता स्त्री प्राण जाने पर भी पति की आज्ञा का उलंघन नहीं करती है। आज तक तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की, फिर आज ऐसी बातें क्यों कर रही हो। मुझ में अपना हिताहित समझने की शक्ति वर्तमान है, तुमको उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। यदि मेरा जीवन चाहती हो तो तुम जल्दी ही इस दुष्ट को विष खिलाकर यमराज के यहां भेज दो। विशाखदत्ता—स्वामिन् आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। किन्तु एक बार दासी के वचनों पर स्वयं विचार करने का कष्ट करें। संसार में द्वेष, ईर्ष्या का ताण्डव सदा से होता चला आ रहा है, परन्तु अहिंसा धर्म के समान सुख देने वाला कोई धर्म नहीं है। एक अहिंसा ही ऐसा अस्त्र है जिसके द्वारा वैर-विरोध का अन्त किया जा सकता है। आशा है आप थोड़ा विचार करने की कृपा करेंगे यों तो मैं आपके चरणों की दासी हूं, आप जैसा कहेंगे, मैं करूंगी।

श्रीदत्त—मैं ज्यादा बहस सुनना नहीं चाहता, तत्क्षण ऐसा उपाय करो जिससे यह मारा जाय। इसके जीवित रहते हुए मुझे एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिल सकती।

हताश होकर पत्नी ने सुन्दर विषैले लड्डू तैयार किये। छोटे और गन्दे लड्डू बिना विष के—

देखने में सुन्दर और सुस्वादु लड्डू बिषैले बनाये। वह स्वयं हत्या करना नहीं चाहती थी, अतः अपनी पुत्री को आदेश दे कि पिता, पति को भोजन करा देना, पड़ोसी के घर चली गयी।

जब पति और पिता भोजन करने बैठे तो पुत्री ने सोचा कि यदि सुन्दर और बड़े लड्डू पति को परोसती हूं तो पिता कहेंगे कि शादी हो जाने के बाद तुरत ही लड़की हमें भूल गयी, अतः उसने छोटे और गन्दे लड्डू पति को तथा बड़े और सुन्दर लड्डू अपने पिता को परोस दिये। लड्डू खाते ही श्रीदत्त मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा तड़फड़ाता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ। सच है, जो दूसरे को मारने का या अनिष्ट करने का प्रयत्न करता है, वह स्वयं अपना अनिष्ट करता है।

धनकीर्त्ति कुमार ने जब ससुर की यह अवस्था देखी तो वह आश्चर्य में पड़ कर सोचने लगा कि अकस्मात् यह क्या हो गया। कन्या श्रीमती भी पिता की इस अवस्था को देखकर रोने लगी, उसके करुण क्रन्दन को सुनकर विशाखदत्ता भी घर आयी। उसने आशा की थी कि दामाद के मर जाने से श्रीमती रो रही होगी, किन्तु घर में आने पर दूसरा ही मामला उसे दिखलायी पड़ा। दामाद के स्थान पर पति के मरण को देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—हाय रे भाग्य ! तेरी लीला को कौन जानता है ? क्षण भर पहले जहां गीत–नृत्य होते हैं, वहीं क्षण भर बाद रोना पीटना सुनायी पड़ता है। जिसने जीवन भर कपट वृत्ति की उसका फल उसी को भोगना पड़ा, धनकीर्त्ति का बाल भी बांका नहीं हुआ। अहिंसा रूपी जैनधर्म के फल से भयंकर से भयंकर संकट टल जाता है, किन्तु हिंसा के कारण सुख भी दुःख बन जाता है।

मुनि के वचन असत्य नहीं हो सकते, यह धनकीर्त्ति निश्चय ही पालक नरेश बनेगा। यह पृथ्वी में वन्दनीय, परम माण्डलिक राजा होगा। वह दामाद के मुंह की ओर देखकर अपने पति के क्रूर कार्यों की आलोचना करते हुए अपनी पुत्री से कहने लगी—बेटी ! राजाओं से पूज्य धनकीर्ति को पाकर तुम धन्य हो, तुम पट्टरानी होगी। मेरे पति को धनकीर्ति का वैभव सह्य नहीं था, जिससे उन्होंने कपट जाल रच कर अनेक बार इन्हें मरवाने के उपाय किये, पर सदा वह असफल रहे। सच है, जो पुण्यात्मा हैं, उनका कोई बाल बांका नहीं कर सकता। जैसे सूर्य के प्रकाश को कोई भी क्षीण नहीं कर सकता है, उसी तरह पुण्यात्मा के पुण्य को कोई भी क्षीण नहीं कर सकता।

गुणपाल सेट ने अपने मित्र पर विश्वास कर अपनी स्त्री धनश्री को यहाँ छोड़ दिया था, किन्तु उन्होंने ईर्ष्यावश उनके पुत्र धनकीर्त्ति को उत्पन्न होने के दूसरे क्षण से ही मारने का प्रयत्न किया, जिसका परिणाम अपने पुत्र की मृत्यु और स्वयं की मृत्यु हुई। आवेश में आकर उसने सारी कथा आदि से अन्त तक कह दी और स्वयं भी उन बिष मिश्रित लड्डुओं को खा गयी। उसने अपनी पुत्री को आशीर्वाद दिया कि तुम पतिव्रत में सीता के समान, पवित्रता में शची के समान, गुरु भक्ति में चेलना के समान, विद्या में सरस्वती के समान और रूप में रति के समान हो पट्टरानी बनोगी।

वह पुनः जोर-जोर से कहने लगी—धनकीर्त्ति सेठ गुणपाल का पुत्र है, यह महामण्डलीक राजा होगा। जैनधर्म के प्रसाद से संसार में कुछ भी दुष्कर नहीं। इतना कहते-कहते वह भी मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी और पञ्चत्व को प्राप्त हुई।

श्रीदत्त और विशाखदत्ता का अन्तिम संस्कार कर अनेक व्यक्ति धनकीर्त्ति की स्तुति करने लगे—हे देव आपके समान पुण्यात्मा कौन है? आपके समान यशस्वी विव्य तेजस्वी और अलौकिक चमत्कारी कौन है? आपको देखते ही हम लोग आपके आधीन हो गये हैं।

धनकीर्ति ससुर के सारे धन का स्वामी बना। जब मालव नरेश विश्वम्भर को इस बात की सूचना मिली कि यह सेठ गुणपाल का पुत्र है, तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने चारों ओर दूत भेजकर सम्यत्वचूड़ामणि गुणपाल का भी पता लगा लिया। गुणपाल कौशम्बी में है, यह समाचार अवगत कर राजा ने गुणपाल को ससम्मान बुला लिया और उसे राजसेठ का पद प्रदान किया तथा उसकी सारी सम्पत्ति वापस कर दी। राजा उससे कहने लगा——

श्रेष्ठिवर्य! आप धन्य हैं। आपने अपनी धर्म रक्षा के लिये धन-वैभव, भोग विलास आदि का त्याग कर दिया। आपके त्याग का मेरे ऊपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। मैंने उसी दिन से जैनधर्म धारण कर लिया है तथा श्रावक की क्रियाओं का पालन करने लगा हूं। कृपया मुझे अब जैनधर्म के तत्वों को समझाइये। मैंने साथ ही यह निश्चय किया है कि मैं अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र धनकीर्ति के साथ करूंगा। कन्यादान में आधा राज्य भी देता

हूं, आप स्वीकार करें।

गुणपाल—राजन् ! आपका आदेश मैं तभी स्वीकार कर सकूंगा, जब आप वस्तुतः जैन दीक्षा ले लेंगे। दीक्षान्वय क्रिया के हो जाने पर ही आप जैन माने जा सकेंगे। अतः गृहस्थाचार्य को बुलाकर आप दीक्षान्वय क्रिया सम्पन्न करें।

राजा—श्रेष्ठिन् ! मैं जैनधर्म का पालन करता ही हूं, फिर भी आपकी इच्छा यह है कि मैं दीक्षान्वय क्रिया करूं तो आप शीघ्र ही इसका प्रबन्ध कर दीजिये।

राजा की दीक्षान्वय क्रिया हो जाने के उपरान्त शुभ-मुहूर्त्त में धनकीर्त्ति का विवाह अपूर्व रूप-लावण्यवती राजपुत्री के साथ सम्पन्न हो गया और आधे राज्य का स्वामी बन कर शासन करने लगा।

एक दिन यशोधर नाम के मुनि बिहार करते हुए उज्जयिनी के बगीचे में आये। वनपाल ने यह समाचार राजा विश्वन्धर को सुनाया। मुनिराज का आगम सुनकर सेठ गुणपाल, धनकीर्त्ति और राजा विश्वन्धर अनेक सामन्तों के साथ उनके दर्शन के लिये गये। राजा ने मुनिराज से आप्त, आगम, नवपदार्थ और कर्म का स्वरूप जानने की इच्छा प्रकट की।

मुनिराज ने बड़े ही सुन्दर ढंग से देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप बतलाते हुए, कर्म और जीव के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष का स्वरुप बतलाया, जिसे सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

राजा—महाराज ! इस धनकीर्ति ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा पुण्य किया था, जिससे श्रीदत्त द्वारा पांच बार मारने का प्रयत्न करने पर भी यह जीवित रह गया ?

मुनिराज राजन् ! धनकीर्त्ति के भवान्तर को सावधान होकर सुनें, इसकी भवावली को सुनकर आप स्वयं ही इसके पुण्य का अनुमान कर सकेंगे।

इसी उज्जयिनी नगरी के एक गांव में मृगसेन ना धवर रहता था, उसकी स्त्री का नाम घण्टा था। वह मछली मारने का व्यापार करता था। एक दिन जाल लेकर वह शिप्पा नदी की ओर जा रहा था कि रास्ते में

एक पेड़ की छाया में एक मुनिराज को बैठा देखा। वह उत्सुकता वश उनके पास बैठ गया और धर्मोपदेश सुनने लगा। उपदेश सुनकर जब अन्य श्रावक व्रत ग्रहण कर जाने लगे तो वह भी मुनिराज के निकट आ गया और कहने लगा—

देव ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैंने अब तक अनेक पाप किये हैं, सच्चे गुरुओं की अवहेलना की है। दिन रात हिंसा करना ही मेरा पेशा रहा है। कृपया मेरे उद्धार का कोई उपाय बतलाइये तथा मुझे कुछ नियम भी दीजिये। मेरी अन्तरात्मा से यह ध्वनि निकल रही है कि आपके द्वारा मेरा कल्याण संभव है, आप मेरे सच्चे हितैषी हैं। न मालूम क्यों आपसे मेरा स्नेह हो गया है।

मुनिराज—तुम शराब पीते हो ?

धीवर—जी हां, प्रति दिन खूब पीता हूं।

मुनिराज—तुम शराब पीना छोड़ सकते हो ?

धीवर—महाराज ! इसके बिना तो मेरा जीवित रहना असंभव है। एक दिन भी शराब न मिलने पर प्राण छटपटाने लगते हैं, अजब बेचैनी प्रतीत होती है।

मुनिराज—हिंसा करना छोड़ सकते हो ?

धीवर—गुरुदेव ! यदि आज ही मछलियां मारकर न ले जांऊं तो बालबच्चे भूखों मर जायंगे। मेरी पत्नी मुझे घर में भी नहीं घुसने देगी।

मुनिराज—झूठ बोलना छोड़ सकते हो ?

धीवर—गुरुदेव ! नहीं मेरा तो रोजगार ही झूठ पर आश्रित है। जब तक मैं एक का दस दाम नहीं बतलाता, आजीविका के लायक धनार्जन नहीं हो सकता है।

मुनिराज—चोरी करना छोड़ सकते हो ?

धीवर—गुरुदेव ! मेरा इसके बिना भी निर्वाह नहीं हो सकता है। यह पेशा तो मेरे कुल में अनादिकाल से

चला आ रहा है। मेरा काम मछली पकड़ना है, लोग अपने तालाबों में से देखते हुए मछली नहीं पकड़ने देते हैं, अतः प्रायः चोरी से ही मछलियां पकड़नी पड़ती है।

मुनिराज—तुम अभी मछली पकड़ने जा रहे हो, अतः जाल में जो पहली मछली आवे उसे छोड़ देना, प्रतिदिन इस नियम का पालन करना।

धीवर—गुरुदेव ! इस व्रत का मैं पालन कर सकता हूं। इसके पालने से मेरी कुछ हानि नहीं है।

व्रत स्वीकार कर जब उसने शिप्रा नदी में जाल बिछाया तो एक बड़ी सी मछली फंस गयी। उसने अपने व्रत के अनुसार उसकी पूंछ में काला धागा बांध कर दूसरी जगह छोड़ दिया। जाल को उसने कुछ दूर चलकर पुनः फैलाया, अबकी बार भी वही मछली फंसी। उसने मछली को पानी में गिराकर २०० गज की दूरी पर अपना जाल बिछाया, किन्तु यहां पर भी वही मछली आकर फंस गयी, उसे महान् आश्चर्य हुआ, पर अबकी बार भी गहरे जल में उस मछली को गिरा वह और आगे चला गया। काफी दूर चलकर उसने जाल बिछाया, सोचा कि अब इतनी दूर वह मछली नहीं आ सकती है, किन्तु आश्चर्यकी बात यह थी कि अबकी बार भी वही मछली उसके जालमें आयी। वह परेशान हो गया और उस मछली को वहीं गिराकर आगे चला। बहुत दूर जाकर गहरे पानीमें जाल फैला दिया। उसने निश्चय किया कि इतनी दूर वह मछली नहीं आ सकती है। पर दैवयोग से इस बार भी वही मछली उसके जाल में फंस गयी। अब तो मृगसेन का हतोत्साह पराकाष्ठा को पहुँचा। इधर सूर्य भी अस्त हो गया था, अन्धकार बढ़ता चला आ रहा था अतः वह खिन्न मन खाली हाथ घर आया।

घर में प्रवेश करते ही मृगसेन की स्त्री घण्टा ने उसे खाली हाथ समझ कर आड़े हाथों लिया। गालियों से उसकी खूब पूजा की और धक्का देकर घर से बाहर कर दिया। यद्यपि मृगसेन ने मुनिराज से व्रत लेने की सारी बातें कहीं, पर उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे मरुभूमि पर जल की वृष्टि अपना प्रभाव अंकित नहीं कर सकती उसी प्रकार मृगसेन की बातों का घण्टा पर कुछ भी असर नहीं हुआ। जितनी मृगसेन आरजू-मिन्नत करता था, घण्टा का क्रोध उतना ही अधिक बढ़ता जाता था। उसने अब तो आवेश में आकर लाठी, जूते, मुक्के, लात आदि से भी उसे पीटना शुरु कर दिया। घर से बाहर निकालते हुए कहा कि वहीं जा, उसी मुनि के पास जिसने तुझे यह व्रत दिया है। मेरे घर में तुझ जैसे निखट्टू का काम नहीं है।

घर से बाहर निकल जाने के बाद मृगसेन सोचने लगा—यह संसार कितना स्वार्थी है। एक दिन ही मछली पकड़कर नहीं लाया, उस पर इतना क्रोध? मुनिराज सच ही कह रहे थे कि स्त्री, पुत्र, पुरजन, परिजन सभी स्वार्थ के साथी हैं। मैंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया। दूसरों को अपना मान मैंने पाप संचय किया है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब को हम अपना समझते हैं, पर क्या कोई भी काम आता है? अकेले ही जीव को सुख दुःख भोगने पड़ते हैं। जो स्त्री मुझसे स्नेह करती थी, जब मैं कमाकर लाता तो मेरा सम्मान करती थी, आज, उसी स्त्री ने मेरा कितना अपमान किया है। धिक्कार है इस संसार को और इस अज्ञानी जीव को, जो सदा इस माया में पड़ा है। अब मैं निश्चय ही अपना आत्म कल्याण करूंगा। गुरु के द्वारा मुझे सच्चा मार्ग मिल गया है। इस प्रकार सोचते-सोचते घर के बाहर वह सो गया।

मध्य रात्रि में एक सांप निकला और उसने उसके पांव को मेढ़क समझकर काट लिया और मृगसेन मृत्यु को प्राप्त हुआ।

अहिंसा व्रत के प्रभाव से मृगसेन मरकर धनकीर्त्ति हुआ है। इसने पांच बार मछली को अपने जाल में से छोड़ा था, अतः श्रीदत्त के पांच आक्रमणों से इसकी प्राण रक्षा हुई है। इसी व्रत के प्रभाव से इसे आधा राज्य भी मिला है।

मुनिराज आगे कहने लगे—प्रातःकाल अपने पति की लाश को देखकर घण्टा बहुत दुखी हुई। अपने पति के गुणों का स्मरण कर रोने तथा अपने को धिक्कारने लगी। उसने अहिंसा व्रत का महत्व समझा और गुरु के निकट जाकर व्रत ले लिया। संन्यास मरण पूर्वक प्राण त्याग किये जिससे वह श्रीदत्त सेठ के यहां श्रीमती नाम की कन्या हुई जिस मछली को मृगसेन ने अपने जाल में से छुड़ाया था, वह इस नगरी में मृगसेना नाम की वेश्या हुई है। इसी कारण शिप्रा के तट पर घूमती हुई मृगसेना के मन में धनकीर्त्ति को देखकर पितृ-प्रेम उमड़ा था और उसके प्राणों की रक्षा की थी।

मुनिराज के द्वारा कहे गये भवान्तरों को सुनकर सभी लोग चकित हुए और कहने लगे—जब एक दिन अहिंसा व्रत का पालन करने से इतना फल मिल सकता है तो जो प्रतिदिन पंचाणुव्रतों का पालन करेगा, उसे कितना

फल मिलेगा ? वास्तव में व्रतों के समान अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं हो सकता है। इस प्रकार व्रतों के सम्बन्ध में विचार कर राजा विश्वन्धर और उनकी रानी लक्ष्यमती एवं गुणपाल सेठ और उनकी पत्नी धनश्री ने संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा ग्रहण की। धनकीर्त्ति तथा अन्य राजकुमारों ने अपनी-अपनी पत्नियों सहित पञ्चाणुव्रत ग्रहण किये।

धर्म और न्यायपूर्वक राज्य करते हुए धनकीर्त्ति ने कुछ दिनों के उपरान्त संसार, शरीर और भोगों की क्षण-भंगुरता का विचार कर आत्म कल्याण करनेवाली दिगम्बर दीक्षा यशोधर मुनिराज से ग्रहण करली और श्रीमती आदि रानियों ने भी विरक्त होकर विनयमती नामक आर्यिका से दीक्षा ले ली। सभी लोगों ने अन्त में संन्यास मरण किया, जिससे स्वर्ग में देव हुए।

राजा श्रेणिक इस प्रकार अहिंसा व्रत का प्रभाव सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, वास्तव में अहिंसा के समान प्राणियों का हित करनेवाला, मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढ़ानेवाला और जीवमात्र में सद्भावना का प्रचार करनेवाला अन्य दूसरा कोई नहीं है।

दसवीं कथा समाप्त

ग्यारहवीं कथा

संसार में सुख और शान्ति स्थापित करनेवाले अहिंसा महाव्रत की कथा सुनकर महाराज श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए। अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये उन्होंने सत्याणुव्रत की कथा जानने की इच्छा प्रकट की।

श्रेणिक—स्वामिन् ! अहिंसा व्रत का पालन सत्याणुव्रत की सहायता के बिना नहीं हो सकता है, यह आपने अभी कहा है। कृपया यह बतलाइये कि सत्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

गौतम स्वामी—राजन् ! जो वस्तु जैसी देखी या सुनी हो, उसी प्रकार कह देना अपनी ओर से कुछ भी नमक-मिर्च न मिलाना सत्य है। पर अपने या दूसरे के प्राण बचाने के लिये श्रावक यत्किंचित् असत्य भी बोल सकता है। वस्तुतः सत्यव्रत का सम्बन्ध अहिंसा व्रत से है, जो सत्य अहिंसाव्रत का निर्वाह करने में बाधक है, श्रावक के लिये वह असत्य है। निन्द्यवचन, कठोरवचन और किसी के दिलको दुखानेवाले वचनों का त्याग करना चाहिये। सत्यव्रत पालन करने से वचनों की शुद्धि होती है।

श्रेणिक—स्वामिन् ! सत्यव्रत पालन करने से किसे क्या फल प्राप्त हुआ है ? कृपया इस व्रतधारी की कथा कहें। फल प्राप्ति की कथा जानकर ही इस व्रत के पालने का उत्साह होगा।

गौतम स्वामी कथा कहने लगे—

चारों ओर नन्दनवन से युक्त, कमलों से परिपूर्ण तालाबों से परिवेष्टित व्यंगिमण्डल नाम का देश था। इस देश में प्रतिपालपुर नाम का सुन्दर और रमणीय नगर था। इसमें सत्यवचन बोलनेवाला, दृढ़व्रती, प्रजापालक धनद नामका राजा राज्य करता था। यह भगवान् की पूजा और अर्चा करने में इन्द्र के समान, दान में श्रेयान्स के समान, योग में नगेन्द्र के समान, रूप में कामदेव के समान, सम्पत्ति में कुवेर के समान, तेज में सूर्य के समान, प्रताप में भरत चक्रवर्ती के समान और प्रजापालन करने में राम के समान था।

एक दिन एक दूत राजा के पास आकर हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला—

राजन् संघश्री नामक बौद्ध धर्मानुयायी की पुत्री कमलश्री रति के समान सुन्दर, हिरण के समान दीर्घनेत्री, पर्वत के समान उन्नत स्तनवाली, सबके मनमें मनमथ की पीड़ा उत्पन्न करने में समर्थ है। यह रूप में लक्ष्मी और गुणों में सरस्वती है। देव ! यह आपकी पट्टरानी होने के योग्य है।

राजाने इस सुखद समाचार को सुनानेवाले दूत को पारितोषिक देकर विदा किया। कुछ समय पश्चात् अपनी दासी को संघश्री के यहां कन्या याचना के लिये भेजा। जब दासी संघश्री के यहां पहुँची तो संघश्री ने उठकर उसका ससम्मान स्वागत किया।

संघश्री—महाराज ने क्या आदेश भेजा है। क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया है।

दासी—श्रेष्ठिन् महाराज आपकी सुन्दरी कन्या कमलश्री के साथ पाणिग्रहण करना चाहते हैं। मुझे कन्या याचना के लिये आपके पास भेजा है।

इस समाचार को सुनकर संघश्री को अपूर्व प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा कि राजा अबतक जैनधर्म का पालन करता था, जिससे जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ। अब यदि मेरी कन्या के साथ विवाह हो जायगा तो निश्चय ही वह बौद्धधर्म को मानने लगेगा, जिससे बौद्धधर्म का खूब प्रचार और प्रसार होगा। मुझे यह बहुत सुन्दर अवसर मिल रहा है, इस सुअवसर से लाभ उठाना आवश्यक है। राजा के साथ सम्बन्ध हो जाने से मेरा भी सम्मान बढ़ेगा तथा सम्पत्ति भी मुझे अनायास प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार मन ही मन प्रसन्न होकर संघश्री अपनी कन्या के साथ राजदरबार में पहुँचा।

राजा ने जब कन्या के रूप--सौन्दर्य को देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। सोचने लगा--यह संसार कितना विचित्र है, इसमें एक से एक बढ़कर सुन्दर वस्तुएं हैं। यह कमलनेत्री शची, सीता, मेनका, रति, राधा, रोहिणी आदि के सौन्दर्य को एकत्रित कर बनायी गयी है। इतना सौन्दर्य संसार की एक भी नारी में नहीं है। वस्तुतः इसको प्राप्त कर मेरी समस्त कामनाएं पूर्ण हो जायंगी।

विवाह के अनन्तर राजा कमलश्री के साथ भोगों में मग्न हो गया। राज-काज में भी शैथिल्य आने लगा, धार्मिक आचरण भी छूट गया। कुछ दिनों के उपरान्त राजा को अपनी गलती मालूम हो गयी और वह सोचने लगा—

कर्त्तव्य से च्युत हो जाना महान् पाप है। संसार के भोगों में कुछ भी सार नहीं है। न मालूम अनादिकाल से इस जीव को ये भोग क्योंकर ठगते आये हैं। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपना कल्याण करने में समर्थ है, किन्तु यह मनुष्य नाम का जन्तु भी कंचन और कामिनी के मोहक रूप से पृथक नहीं है। मैंने स्वयं ही जिन भगवान् के चरणों की सेवा छोड़ इस पाप के गर्त में मज्जन किया है। जिन भगवान् और दिगम्बर साधुओं की भक्ति छोड़ स्त्रियों की सेवा में लगकर मैंने बडी भारी मूर्खता की है। अब मुझे अवश्य ही सजग होकर अपने उद्धार में लगना चाहिये।

इस बौद्धधर्मानुयायी कमलश्री के साथ रहकर मैं चौपट हो गया। विधर्मी स्त्री सचमुच में धर्म को छुड़ा देती है। अतएव विवाह या अन्य प्रकार का सम्बन्ध सदा साधर्मी से ही करना चाहिये। मैं व्यर्थ ही स्त्रीसुख, राजसुख, धन-वैभव आदि के प्रलोभन में पड़कर अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूं। अब मेरे लिये सबसे अच्छा उपाय यही है कि मैं जिस प्रकार से हो इस स्त्री को जैनधर्म में दीक्षित करूं। जबतक यह बिधर्मी रहेगी, मेरे धर्म की हानि होती रहेगी। पति का सबसे पहला कर्त्तव्य है, अपनी पत्नी का सुधार करना। जो पति अपनी स्त्री को सुशिक्षित और विवेकी नहीं बनाता है, वह केवल वासना प्रिय ही कहा जा सकेगा। अतएव मुझे कमलश्री को समझा कर भगवान् अर्हन्त की उपासिका बना लेना चाहिये। समय पाकर राजा कमलश्री को समझाने लगा—

प्रिये! इस संसार में वीतरागी प्रभु के द्वारा बतलाया गया धर्म ही आत्मकल्याणकारी हो सकता है। आत्मा का सच्चा स्वरूप ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमय है, जिस धर्म के द्वारा आत्मा का यह स्वरूप प्राप्त किया जा सके, वही धर्म मंगलमय हो सकता है। हिंसा और असत्य धर्म के अंग नहीं हैं, इनसे बढ़कर संसार में दूसरा अधर्म नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय से ही इस जीव का उद्धार हो सकता है। प्रतिदिन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। हमें अपने व्यवहार को इतना मधुर और प्रिय बनाना होगा, जिससे किसी भी व्यक्ति को हमसे कष्ट न हो। हम मनुष्य मात्र में विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रचार कर सकें तो हम बड़े धर्मात्मा हैं, कायक्लेश सहना धर्म नहीं है, किसी को कष्ट पहुँचाना धर्म नहीं है, किसी को धोका देना, ठगी करना धर्म नहीं है। वस्तुतः धर्म आत्मा के असली भाव का नाम ही है, जिन क्रिया और व्यवहारों से आत्म स्वभाव प्राप्त किया जा सके, वे सब धर्म हैं। हठ, दुराग्रह, को धर्म में स्थान नहीं है। धर्मात्मा की दृष्टि

विशाल होती है, वह अपनी उदारता और विशालता से सभी प्राणियों को सुख और शान्ति पहुँचाता है। सबका परम हितैषी होता है, स्वप्न में भी किसी के अहित की बात नहीं सोचता। आत्मालोचना के द्वारा अपने किये गये अपराधों को समझता रहता है तथा अपनी गलती को समझ उसे सुधारने का प्रयत्न करता है। शास्त्रों में बताया गया है कि सबसे बड़ा प्रायश्चित्त गलती को न दुहराना ही है। जो यह सोचते हैं कि गलती हो जाने पर उसका प्रायश्चित्त कर लेंगे, वे अन्धेरे में हैं। उनका यह सोचना ऐसा ही है जैसा कीचड़ लगाकर पैर को धोना और बार-बार इसी क्रिया को करते जाना।

इस प्रकार कमलश्री को समझा कर राजा धनद ने उसे जैनधर्म में दीक्षित कर लिया। कमलश्री आनन्द पूर्वक जैनधर्म का पालन करने लगी, दिगम्बर मुनियों को प्रतिदिन आहार देना, वीतरागी प्रभु की भक्ति करना, शास्त्र स्वाध्याय करना और श्रावक की अन्य क्रियाओं का पालना करना उसका दैनिक कृत्य था। वह सब प्रकार से जैन क्रियाओं का पालन करती थी, उसका जीवन रत्नत्रय की ओर बढ़ रहा था।

राजा ने पुनः एकदिन विचार किया कि कमलश्री तो जैनधर्म में दीक्षित हो गयी, परन्तु इसका पिता संघश्री पक्का बौद्ध है, वह जैनधर्म से द्वेष रखता है। अतः जब तक उसे जैनधर्म में दीक्षित नहीं किया जायगा, यह भी सद्धर्म से विचलित हो सकती है। जैसे कांटेदार पेड के पास में रहनेवाले अन्य पेड़ों को भी कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार कुसंगति मनुष्य का सर्वनाश कर देती है। अब सबसे पहले संघश्री को श्रावक बनाना चाहिये। यद्यपि संघश्री हठी है अपनी जिद पर डटा रहनेवाला है, फिर भी प्रयत्न करना अपना कर्त्तव्य है। सुअवसर आजाने से सारी वस्तुएं बदल जाती हैं।

अज्ञानी जीव अन्धानुकरण करनेवाले होते हैं। जैसे भेड़ें एक दूसरे के पीछे चलकर कुंए में कूद अपनी जान दे देती हैं, उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अपनी गांठ की अक्ल न होने से अहित भी कर लेते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह द्वारा सदा ही नासमझ अपना और पर का अहित करते रहते हैं। राग-द्वेषी गुरु और देवों के सम्पर्क में रहने के कारण उसकी बुद्धि भी मलिन हो जाती है। हिताहित का विवेक उन्हें नहीं रहता। मिथ्यादृष्टि जीव सदा अपने कल्याण से दूर रहता है। इस प्रकार विचार विनिमय कर धनद राजा ने संघश्री को बुलाया—

राजा—श्रेष्ठिन ! मनुष्य पर्याय की यथार्थता धर्म धारण करने में है । जैनधर्म ही आत्मा का वास्तविक धर्म है । जिस व्यक्ति को आत्मविश्वास हो जाता है, वह सर्वदा स्वपर-कल्याण में रत रहने लगता है । आप स्वयं सोचें कि अनादिकाल से इस जीव ने कर्मबन्धन में पड़कर अनेक योनियों को धारण किया है । जीवन का कुछ भी ठीक नहीं है, यह पानी के बुल-बुले के समान है, देखते देखते विलीन होनेवाला है । अतः सदा ही मनुष्य को अपने विवेक से काम लेना चाहिये । हठ करना बड़ी भारी मूर्खता है । परीक्षा करने से सत्यता और असत्यता का अपने आप परिज्ञान हो जाता है । जो धर्म सच्चा होता है, उसका अनुसरण करने से ही आत्म कल्याण संभव है झूठा धर्म कभी भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता । आप विवेकी हैं, धर्म की सत्यता की परीक्षा स्वयं करें । क्या जिस धर्म मार्ग में पूर्वापर विरोध हो, जिसके तत्वों का प्रत्यक्ष और अनुमान से खंडन हो सकता हो, वह सच्चा धर्म हो सकता है । आप जिस बौद्धधर्म का अनुसरण कर रहे हैं, उसके द्वारा अभिमत क्षणिकवाद को आप क्या सत्य समझते हैं ? यदि पदार्थ क्षणिक हैं तो फिर उनकी प्रतीति हमें क्यों होती है ? स्थिर और स्थूल आकार के वे क्यों प्रतीत होते हैं ?

आपके धर्म में जब आत्मा का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया गया है तो फिर धर्माचरण की आवश्यता क्या ? क्या आत्मा के अभाव में निर्वाण व्यवस्था बन सकती है ? निर्माण तो आत्मा को ही होता है, शरीर को नहीं चित्तसंतति रूप आत्मा का अस्तित्व कभी नहीं सिद्ध हो सकता । आप स्वयं अनुभव से विचार करें कि बौद्ध दर्शन द्वारा अभिमत प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान प्रमाण की व्यवस्था क्या सिद्ध हो सकती है ? आगम, तर्क, प्रत्यभिज्ञान आदि प्रमाणों को तो बौद्धदर्शन में माना नहीं गया है, फिर वस्तु व्यवस्था किस प्रकार संभव है ?

जैनधर्म की वस्तु व्यवस्था किसी भी प्रमाण से असिद्ध नहीं है । प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक है, एक दृष्टिकोण से वस्तु नित्य है और दूसरे दृष्टिकोण से अनित्य है । अनन्त धर्मात्मक वस्तु के वास्तविक स्वरूप का विश्लेषण स्याद्वाद दर्शन के द्वारा ही संभव है ।

राग-द्वेषी क्या सच्चा देव हो सकता है ? जिसमें स्वयं कमजोरी है, वह हमारे लिये आदर्श कैसे हो सकता है ? आदर्श को शुद्ध, निर्मल, पवित्र और निष्पक्ष होना ही चाहिये । वीतरागी प्रभु ही सच्चे आदर्श हो सकते हैं । उनकी आराधना से ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है ।

इस प्रकार राजा धनद ने संघश्री को उपदेश दिया, जिससे उसने प्रभावित होकर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

संघश्री के जन्म जन्मान्तर के संस्कार प्रबल थे, अतः उसके मन में कुछ सन्देह बना रहा। एक दिन परम-तपस्वी, पापों को नष्ट करनेवाले, सभी आगमों के पारगामी, यशस्वी, सुमेरु के समान क्षमावान, पुण्यमूर्ति, देवदानवों के द्वारा वन्दनीय, पूर्वविदेह से वैक्रियिक ऋद्धि प्राप्त दो चारण मुनि जारहे थे। राजा धनद ने जब आकाशगामी चारण मुनियों को देखा तो दरबार में कहा—देखो धर्म की कितनी महत्ता है। ये ऋषीश्वर तप के प्रभाव से आकाश में बिहार कर रहे हैं। धन्य है, जैनधर्म को। जो व्यक्ति इस धर्म का पालन करता है; वह अवश्य ही संसार समुद्र से पार हो जाता है।

जब संघश्री ने धर्म का यह प्रत्यक्ष फल देखा तो सद्धर्म के प्रति उसकी धार्मिक श्रद्धा फूट पड़ी, मिथ्यात्व नष्ट हो गया, उसका सारा सन्देह दूर हो गया और उसने सच्चे दिल से जैनधर्म को ग्रहण कर लिया।

एक दिन राजा धनद ने अपने प्रधान अमात्य बुद्धिसागर से प्रेतिपालपुर की वंश परम्परा जानने की इच्छा प्रकट की। प्रधान अमात्य बुद्धिसागर बोला—श्री वासुपूज्य तीर्थंकर के समय में यशोधर नाम का राजा हुआ था। यह इक्ष्वाकुवंशी था और अंगदेश की चम्पापुरी नगरी में निवास करता था। इसकी रानी का नाम सौन्दर्य देवी था। अनन्तवीर्यकुमार, श्रीधर और प्रियबन्धु ये तीन कामदेव के समान सुन्दर पुत्र थे।

एक दिन यशोधर राजा ने निश्चय किया कि दिग्विजय के लिये चलना चाहिये। जबतक देश देशान्तर के राजाओं को पराजित नहीं किया जायगा, कीर्त्ति स्थिर नहीं हो सकेगी। आसमुद्र पृथ्वी को अपने आधीन करना चाहिये। इस प्रकार के निश्चय के उपरान्त उसने प्रधान अमात्य को बुलाकर सारी बातें कह दी। अनन्तर तीन दिनों तक मन्त्री अन्य मुकुटबद्ध राजाओं तथा सेनापतियों के साथ भगवान् का अभिषेक किया। पश्चात् राजाओं को आतंकित करने के लिये रणभेरी बजाते हुए उसने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। मालव, मगध, करनाटक, गौड, कराट, गोकुल, लाट, चोल, चेर, पाण्ड्य, मिलिन्द आदि देशों को अपने आधीन कर व्यंगिमण्डल में आया। इस देश के सौन्दर्य को देखकर वह मुग्ध हो गया और यहीं पर प्रतिपालपुर नाम का नगर बसा कर रहने लगा। रत्न, आभरण आदि से युक्त जिनालय

उसने बनवाये। अपने राज्य और प्रजा की उन्नति के लिये अनेक धार्मिक कार्य किये। यह राजा दृढ़ सम्यत्वी था, जिनेश्वर की पूजा में सदा लीन रहता था। चतुर्विध संघ को चारों ही प्रकार का दान देता था।

एक दिन वह नगरवासियों के साथ वनक्रीड़ा के लिये गया। वसन्ततु में उसने अनेक प्रकार से जलक्रीड़ा की। मदोन्मत्त हाथी पर सवार होकर जब वह घर की ओर वापस आ रहा था, तो रास्ते में आम के सूखे पेड़ को देखकर उसे वैराग्य हो गया। वह सोचने लगा--

भूत की बात सुनकर युद्ध के लिये प्रस्थान करनेवाले के समान, चोर की बात मानकर उसके साथ व्यापार करनेवाले के समान, डाकू की बात का विश्वास कर घर का धन बतलानेवाले के समान, ठग की बात को सच मानकर उसके अनुसार कार्य करनेवाले के समान पञ्चेन्द्रिय के विषयों में रत होनेवाला भी महान् मूर्ख और अविचारशील है। जैसे संसार में जल का मन्थन कर मक्खन निकालना व्यर्थ है, उसी प्रकार विषय कषायों की पुष्टि के लिये अपने जीवन को खोना भी व्यर्थ है। खद्योत के प्रकाश को देखकर दीपक को बुझानेवाले के समान आत्मधर्म को छोड़ संसार के विषयों में लीन होना भी निरर्थक है।

यह संसार कैसा विलक्षण है। जिन वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किया जाता है, वे ही वस्त्र शरीर का कफन बनते हैं। जिनके पास अपार वैभव था, वे ही भीख मांगते हुए देखे जाते हैं। बड़े बड़े चक्रवर्ती जिनका ऐश्वर्य अपार था, जिनकी सेवा में बड़े-बड़े राजा हाथ जोड़े खड़े रहते थे, वे सब कहां चले गये ? संसार में जो शरीर और इन्द्रियों को ही सब कुछ समझते हैं, वे वास्तव में बड़े अन्धेरे में हैं। त्याग और तपस्या के बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता है।

मैंने कितनी ही रानियों का भोग किया, पर तनिक भी तृप्ति नहीं हुई। यौवन काल ऐसे ही बीत गया। अब निश्चय ही आत्मकल्याण करने की तैयारी करनी चाहिये।

प्रातःकाल उसने अनन्तवीर्य को बुलाकर कहा—पुत्र ! तुम अब इस विशाल पृथ्वी के शासन का भार ग्रहण करो। सभी राजाओं को अपने आधीन कर साम्राज्य भोगो। मुझे संसार से वैराग्य हो गया है, अतः मैं अब तपस्या केलिये जा रहा हूं।

अनन्तवीर्य—पिताजी ! जब यह राज्य आपको सुखदायी नहीं हुआ तो फिर मुझे कैसे यह सुख दे सकेगा। क्षणिक सुखों में मैं नहीं फंसना चाहता हूं। ये भोग विलास बाहर से ही अच्छे लगते हैं, पर इनके भीतर कुछ भी सार नहीं है। अतः अब मेरी भी इच्छा शाश्वतिक सुखों को प्राप्त करने की है, मैं भी दीक्षा लेकर तपस्या करना चाहता हूं।

यशोधर महाराज ने अपने पुत्र श्रीधर को बुलाया और कहा—आयुष्मान् ! मैं अब संसार से विरक्त होकर तपस्या करने जा रहा हूं, आप इस राज्य को स्वीकार करें।

श्रीधर—स्वामिन् ! जब आप ही इसे निस्सार समझ कर त्यागना चाहते हैं। तो फिर मुझे क्यों इसमें लिप्त करना चाहते हैं ! यदि राज्य में सुख था तो आप स्वयं क्यों त्याग कर रहे हैं, देव अब संसार को भ्रमजाल समझने लगे हैं तो फिर हम लोग भी आपका ही अनुसरण करेंगे। आपको सदा हमारे हित की बात कहनी चाहिये; आप क्यों इस राज्य के दल-दल में हमें फंसाना चाहते हैं।

इसके पश्चात् यशोधर महाराज ने अपने पुत्र प्रियबन्धु को बुलाया और उससे कहा—पुत्र तुम अब सब प्रकार से समर्थ हो, अतः समस्त राज्य का भार तुम्हारे कन्धों पर छोड़ता हूं। तुम्हारे समान गुणी और विद्वान् कम ही व्यक्ति संसार में हैं। तुम सब तरह से राज्यशासन करने के योग्य हो।

प्रियबन्धु—देव ! आदेश प्रमाण है।

यशोधर महाराज ने अगले दिन प्रियबन्धु का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं तथा अन्य दोनों पुत्रों ने विश्वसेन आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। मुनिराज के पादमूल में रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया तथा उत्तरोत्तर तपस्या करते हुए वे कर्मों की निर्जरा करने लगे। इनका शरीर तपस्या के कारण सूखकर कांटा हो गया। संयम के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह कर दिया। द्वादश तप, दस धर्म, पांच आचार, षट् आवश्यक, त्रिगुप्ति और पांच समितियों का पालन करने लगे।

इधर प्रतिपालपुर में प्रियबन्धु अच्छी तरह से शासन करता हुआ समय बिताने लगा। एक दिन वनपाल ने वसन्तराज के आगमन की सूचना राजा को दी और राजा से अनुरोध किया—प्रभो ! कोयल बोल रही है, केकी नृत्य कर रहा है, पुष्पित मल्लिका पर भ्रमर आसक्त हैं, आम्रमंजरी अपनी सुगन्ध से समस्त वाटिका को सौरभान्वित कर रही है।

राजा प्रियबन्धु ने अगले दिन वसन्तोत्सव मनाने के लिये आनन्दभेरी बजवा दी और वनक्रीड़ा की तैयारी होने

लगी। सभी वराङ्गनाएं देवाङ्गनाओं के समान अपना शृंगार कर उपस्थित हुई। राजा ने वन में जाकर क्रीड़ा की, पश्चात् माधवी लताओं द्वारा निर्मित मण्डप में प्रवेश किया। इस मंडप में अगर, कपूर, धूप आदि का धुंआ निकल रहा था। अशोकवृक्ष के पल्लव बिछे हुए थे।

रात में राजा इस मण्डप में निद्रा मग्न था कि अचानक वहां एक सांप निकला, उसने राजा के पैर को मेढ़क समझ डस लिया। राजा ने तत्क्षण सावधान हो समस्त परिग्रह का त्याग कर समाधिमरण धारण कर लिया और सन्यास के प्रभाव से मरकर स्वर्ग में देव हुआ।

धर्मा मृत २५७

राजा की मृत्यु के उपरान्त प्रधान अमात्य ने विचार किया कि राजा को कोई सन्तान नहीं है, अतः अब कोई भी शत्रु राजा इस राज्य पर आक्रमण कर सकता है। इस समय इस समाचार को गुप्त रखना ही उपयुक्त होगा। अतएव उसने नगर में इस समाचार का प्रचार कर दिया कि प्रियबन्धु महाराज वनक्रीड़ा करके वापस आ गये हैं, अस्वस्थ होने के कारण किसी से मिलेंगे नहीं।

प्रधान अमात्य ने समस्त माण्डलिक राजाओं को बुलाया और आदेश दिया कि व्यंगिमंडल का राज्य बढ़ाना है, अतः दक्षिण देश के राजाओं को परास्त करने के लिये चतुरंग सेना सहित प्रस्थान करना होगा। आदेश पाते ही सभी राजा चतुरंग सेना सहित चल पड़े। रास्ते में जटाशिखरगिरि पर नीचे सेना का पड़ाव डाल दिया गया। प्रधान अमात्य चुपचाप अकेला ही पर्वत के ऊपर गया और समस्त मन्दिरों के दर्शन कर मुनियों के दर्शन किये। पश्चात् वह श्रीधर मुनिराज से कहने लगा—

मुनिवर ! व्यंगिमण्डल से अनेक श्रावक जो असमर्थ, बुड्डे और रुग्ण हैं, आपके दर्शन के लिये आये हैं। वे इस उन्नत पर्वत पर चढ़ नहीं सकते हैं, भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के लिये आपको पर्वत के नीचे चलना चाहिये। महाराज ! उन श्रावकों ने यह प्रतिज्ञा की है कि जब तक वे आपके चरणों का दर्शन न कर लेंगे, भोजन नहीं करेंगे। आप दया के समुद्र हैं, उन श्रावकों को दर्शन देकर कृतार्थ करें। आपकी चर्या भी नीचे ही हो जायगी।

प्रधान अमात्य किसी प्रकार बातों में फंसा कर श्रीधर मुनिराज को नीचे लिवा लाया और कपटवृत्ति से पड़गाह कर उनको आहार दिया। भोजन में मादक पदार्थों का मिश्रण कर दिया, जिससे आहार ग्रहण के उपरान्त मुनि-

राज बेहोश हो गये । पश्चात् उन्हें पालकी में सवार कर प्रतिपालपुर ले आया और समस्त राजाओं से कह दिया कि अभी महाराज का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अतः कुछ दिनों के पश्चात् दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे । अभी इस कार्य-क्रम को स्थगित रखा जाय ।

प्रतिपालपुर में श्रीधर मुनि को लाकर उन्हें वस्त्राभूषण पहना दिये । जब मुनिराज का नशा दूर हुआ तो अपने को राजमहल में पाकर आश्चर्य में डूब गये । पश्चात् उस अमात्य से सारी बातें ज्ञातकर चिन्ता करने लगे—जिस क्षणभंगुर सुख को मैंने छोड़ा था आज कर्मोदय से मुझे फिर उसीके बन्धन में पड़ना पड़ा है । कर्मों को धन्य है जो संसार के जीवों को इस तरह से नचाते हैं, हर साधक यह समझता है ।

प्रधान अमात्य—महाराज ! इतना बड़ा विशाल साम्राज्य सन्तान के अभाव में यों ही नष्ट हो रहा है । आप सन्तान हो जाने पर तपस्या करने चले जावें । तब तक आपको यह राज्य भार चलाना पड़ेगा । मैंने अक्षम्य अपराध किया है, पर इस भार को निभाने के लिये । आप ज्ञानी हैं, लोक—परलोक की रीति को जानते हैं अतः आप समस्त माण्डलिक राजाओं की भेंट स्वीकार करें । यदि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे तो हम बिना अन्न—जल के अपने प्राणों का त्याग कर देंगे । इतने बड़े साम्राज्य का विनाश अपनी आंखों से हम नहीं देख सकते ।

मुनि श्रीधर ने अधिक सोच—विचार कर प्रधान अमात्य की बात स्वीकार कर ली और सन्तान उत्पन्न होने तक राजशासन चलाने का वचन दे दिया तथा अब वस्त्र पहन लिये ।

कुछ दिनों के पश्चात् श्रीधर महाराज के पुत्र उत्पन्न हुआ और वयस्क हो जाने पर पुत्र को राज्य शासन दे तपस्या करने चले गये । श्रीधर मुनि ने इसी पर्वत पर तपस्या करके कर्मों को नष्ट किया था, इसलिये इस पर्वत का नाम ऋषि निवास गिरि और पर्वत के नीचे वट वृक्ष के नीचे से मोक्ष प्राप्त किया था, इसलिये उस वट का नाम सिद्धवट पड़ गया था ।

जिस समय श्रीधर आचार्य को केवल ज्ञान हुआ था, उस समय देवों ने आकर उनकी पूजा की थी, इसलिये इस नगरी का नाम अमरावती पड़ गया । प्रधान अमात्य इन्द्र प्रभु ने वृद्धावस्था में तप किया था । इसलिये इस नगर का

नाम वृद्धपुर भी पड़ गया है। वंश परम्परा के अनुसार आगे जाकर यही वंश ऋषिपुत्र या मुण्डिपुत्र कहलाया।

इस तरह बुद्धिसागर ने धनद महाराज को उनको वंशावली बतलायी, जिसे सुनकर संघश्री आदि सभी को बहुत प्रसन्नता हुई।

संघश्री सोचने लगा, इस वंश वाले बड़े धर्मात्मा हैं। आज मैंने इनकी कृपा से सच्चे धर्म को पा लिया। वस्तुतः सद्धर्म का मिलना बड़ा कठिन है, मैं आज इसे पाकर कृतकृत्य हो गया।

कुछ दिनों के उपरान्त संघश्री का गुरु बौद्धश्री आया और उसने जब संघश्री को बुद्धधर्म से उदासीन देखा तो मन में चिन्तित हुआ। उसने मन में निश्चय कि जैसे भी होगा संघश्री को जैनधर्म से अलग करूंगा।

बौद्धश्री — क्यों रे संघश्री ! क्या धनद राजा को दामाद बना लेने से तुझे घमंड हो गया हैं। आजकल तुम हमारा अपमान भी करने लगे हो ? राजा के बहकाव में आकर तुमने बौद्धधर्म छोड़ दिया है, और जैनधर्म स्वीकार कर लिया है। यह तुम्हारा कार्य निन्दनीय है। तुमको फिर बौद्धधर्म स्वीकार करना पड़ेगा। तुम में मेरा आदेश टालने की शक्ति नहीं है, भला गुरु का आदेश कोई भी टालता है। संघश्री ! मुझे तुम्हारे ऊपर सच्चा विश्वास था कि तुम बौद्धधर्म का प्रचार और प्रसार करोगे, किन्तु तुमने तो उल्टा उसका ह्रास किया है। अतएव अब जल्द मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि आज से पुनः बौद्धधर्म धारण कर उसका प्रचार करूंगा। यह जैनधर्म अच्छा नहीं है; इसमें स्त्री, पुत्र, धन, धान्य सभी त्यागना पड़ता है। दुष्कर तपस्या करनी पड़ती है, सभी इन्द्रियों के भोगों का त्याग करना पड़ता है। आत्मा जब अनित्य है, शरीर से भिन्न उसका अस्तित्व ही नहीं तो फिर क्यों इन सब प्रत्यक्ष सुखों को छोड़ा जाय ?

संघश्री— महाराज ! जिनेश्वर के वचन बिल्कुल सत्य हैं। मैंने धर्म का फल प्रत्यक्ष देखा है, चारण मुनियों को आकाश मार्ग से गमन करते हुए देखकर किसे धर्म का विश्वास न होगा।

बौद्धश्री — आयुष्मान् ! धनद राजा ने तुम्हें फंसाने के लिये कोई जाल रचा होगा। जादू-टोने के प्रभाव से आकाश में कुछ दिखला दिया होगा, तुम उसे चारण मुनि समझ गये हो। हमने तो आज तक किसी मुनि को आकाश में गमन करते नहीं देखा।

इस प्रकार बौद्धश्री द्वारा समझाये जाने पर संघश्री ने जैनधर्म छोड़ दिया और पुनः अपने पूर्व धर्म का

पालन करने लगा।

सच है जिनका अशुभ कर्मोदय है वे श्रेष्ठधर्म को कभी नहीं ग्रहण कर सकते। सच्चे धर्म का मिलना आसान नहीं है। यह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है।

जब राजा धनद को संघश्री के धर्म परिवर्तन का समाचार मिला तो विचारने लगा कि भवितव्यता को कोई नहीं बदल सकता है। जिसके अशुभ कर्मों का उदय है, वह लाख प्रयत्न करने पर भी श्रेष्ठधर्म को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। निर्गुणी और बुद्धिमानों को कितना ही उपदेश दिया जाय, पर उससे कोई लाभ नहीं। मलभक्ष शूकर लवंग, जायफल, किसमिस, अंगूर, मुनक्का आदि को मिलने पर भी नहीं खायेगा। उसे विष्ठा ही अच्छी लगती है। अतः स्वभाव एक विलक्षण वस्तु है, इसका बदलना संसार में कठिन है।

नीम का स्वभाव कड़ुवा, गुड़ का स्वभाव मीठा, मिर्च का स्वभाव तिक्त, आंवले का स्वभाव कषैला और नीबू का स्वभाव खट्टा होता है। लाखों प्रयत्न करने पर भी उनके स्वभाव को नहीं बदला जा सकता है। हां, प्रयत्न करने पर इन वस्तुओं के स्वभाव में भी कुछ विकार आ सकता हैं। अतः मैं भी पुनः प्रयत्न करके देखूं, शायद संघश्री पुनः जैनधर्म स्वीकार करले। इस प्रकार विचार कर राजा ने संघश्री को बुलवाया और कहने लगा—

श्रेष्ठिन् ! आपने अपने धर्म को छोड़ दिया ? आप नहीं समझते कि जैनधर्म के समान संसार में कोई भी धर्म सुखकारी नहीं है। आप व्यर्थ ही अपने मायावी गुरु के फेर में पड़ गये। अपने विचारों पर दृढ़ रहना मानवता में परिगणित है।

वर्षा ऋतु में जैसे खूब पानी वरसता है, पर पत्थर के भीतर कभी पानी प्रवृष्टि नहीं होता। इसी प्रकार कर्मों के आधीन व्यक्ति को कितना ही उपदेश दिया जाय उस पर उसका प्रभाव ही नहीं पड़ता। जीव का जब तक पुण्योदय रहता है, सदुपदेश सुनता है तथा संसार में सम्मान और यश प्राप्त करता है; पापोदय के होते ही उसकी प्रवृत्ति धर्म से हट जाती है तथा अस्त होते हुए सूर्य के समान उसका सारा तेज फीका पड़ जाता है।

साधर्मी का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वह विचलित होते हुए व्यक्ति को धर्म में दृढ़ करें, जीवन का सच्चा सुख धर्म धारण करने से ही प्राप्त हो सकता है। धर्म से बढ़कर और कोई चीज आनन्ददायक नहीं है। जिसने

अपनी जितनी आध्यात्मिक उन्नति करली है, वह उतना ही सुखी है। सम्यक् श्रद्धा के बिना ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना नहीं आ सकता। जिस व्यक्ति का सिद्धान्त चंचल रहता है, वह कभी भी आत्मकल्याण नहीं कर सकता है। अतएव अब आप पुनः जैनधर्म को ग्रहण कर लें।

संघश्री—राजन् ! आपने मुझे भुलाव देकर जैनधर्म में दीक्षित कर दिया था। मैं आपके मायावी रूप को समझ गया हूं। मेरी समझ से बौद्धधर्म ही श्रेष्ठ और कल्याणकारक है। क्या प्रत्यक्ष भोग विलास को छोड़कर कोई भी सुखी हुआ है ? तपस्या से कोई भी आकाश में गमन नहीं कर सकता है। जादू या टोना से खेल कोई भी दिखला सकता है, पर आकाश गमन की शक्ति किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकती है।

राजा—श्रेष्ठिन् ! आप असत्य न बोलें। क्या आपने जैनधर्म के आराधक मुनियों को आकाश में गमन करते नहीं देखा था। आपने मिथ्यात्व के कारण सद्धर्म को छोड़ दिया है। अनुपम तपस्वियों के प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर भी आप इस समय इतनी विलक्षण बातें कह रहे हैं। आपके मायावी गुरु ने आपको न मालूम किस प्रकार उलटा-पुलटा समझा दिया है, जिससे आप इस तरह की बातें करने लगे हैं। पर यह सदा स्मरण रखिये कि मूर्ख लोगों की बातों में पड़कर सद्धर्म का छोड़ना कितना अनुचित है। आप सच सच कहिये कि आकाश मार्ग से जाते हुए मुनियों को आपने क्या नहीं देखा ?

संघश्री—आंख, नांक, कान और सिर को स्पर्श कर कहने लगा—मैंने चारण मुनियों को नहीं देखा है।

संघश्री के मुख से निकले इन असत्य वचनों के प्रभाव से नगर के रक्षक देव का आसन हिल गया और उसने क्रोधित हो उस झूठे की आंखें फोड़ दीं। सभा स्थित सभी व्यक्ति आश्चर्य में पड़ गये और कहने लगे—झूठ बोलने का फल तुरन्त मिल गया। हम लोगों को इसके पास से हट जाना चाहिये, अन्यथा कहीं हमारी आंखें न फूट जायं। सूर्य के समान तेजस्वी, देव, विद्याधर और मनुष्यों के द्वारा वन्दनीय चारण मुनियों को आकाश मार्ग से जाते हुए हमने देखा है, यह संघश्री अपने गुरु के बहकाने में आकर झूठ बोला है जिसका फल इसे प्रत्यक्ष मिल गया है।

झूठ बोलने के समान दूसरा पाप नहीं है। जो व्यक्ति सदा सच बोलता है, वह संसार के बड़े से बड़े पापों से अपनी रक्षा कर लेता है। सत्य वचन बोलने से आत्म शक्ति का विकास होता है, वचनों में अपूर्व शक्ति आ जाती

है तथा लोक-परलोक में अनेक सुखों को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार बात-चीत करते हुए लोगोंने संघश्री को उठाकर घर भेज दिया । संघश्री भीतर ही भीतर चिन्ता से जलने लगा । उसके मन में अपार वेदना थी, कभी वह अपने बौद्ध गुरु को कोसता तो कभी राजा के ऊपर क्रोध करता । उसके मन में विचित्र द्वन्द था, एक क्षण के लिये भी शान्ति नहीं थी, चिन्ता से जल-जल कर उसने प्राणों का त्याग किया, जिसके प्रभाव से वह नरक में गया । आज भी उसके वंश में अन्धे ही जन्म लेते हैं । इसी कारण आन्ध्र देश और अन्धक-पुर नगर के नाम पड़ गये हैं ।

मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि को हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह अच्छे प्रतीत होते हैं । जब तक मिथ्यात्व का नशा रहता है, तब तक भ्रान्त प्रतीति सुखकर मालूम पड़ती है, किन्तु सम्यग्दर्शन के प्राप्त होते ही भ्रान्ति निकल जाती है और सत्य का दर्शन होने लगता है । इस मानव जीवन को पाकर जिसने व्रत नहीं धारण किये, उसके जीवन से क्या लाभ ? सच्चा सुख व्रतों को धारण करने में है । जिसने एक बार व्रत पालन करने का आनन्द ले लिया है, वह फिर कभी भी व्रतों को नहीं छोड़ सकता है ।

सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने से आत्म प्रतीति होती है, अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है और जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्मों को सम्यग्दर्शन के प्रभाव से ही नष्ट किया जा सकता है ।

एक दिन धनद राजा को संसार से विरक्ति हो गयी । उन्हें संसार असार प्रतीत होने लगा, अतः अपने इन्द्र नामक पुत्र को बुलाकर कहा—वत्स ! अब हमारा समय संसार में तप करने का है । आत्मकल्याण करना प्रत्येक जीव का चरम लक्ष्य है । अतः आज से इस राज्य का भार तुम्हें सौंपता हूं । पुत्र ! प्रजा का पालन सन्तान वत करना, धर्म की रक्षा करना, दीन अनाथ की सेवा करना, भगवान् की पूजा करना, शास्त्र चर्चा में लीन रहना, सत्संगति करना, राज्यकार्य करते हुए राज्य से निर्लिप्त रहना और सुकवियों का सम्मान करना अत्यावश्यक है । इस प्रकार राजकुमार को राजा ने उपदेश दिया तथा प्रातःकाल ही राज्य तिलक कर दिया गया ।

धनद राजा ने चारसौ मुकुटबद्ध राजाओं के साथ समस्त भोगों को छोड़ श्रुतार्णव नामक आचार्य के पास जाकर दीक्षा ली और द्वादशांग का अध्ययन आरम्भ किया । गुरु के आदेशानुसार एकाकी विहारी होकर २२ परिषहों

को सहने लगा। धनद मुनिराज ने जाड़े में चार महिने तक उपवास करते हुए तपस्या की। क्षुधा, तृषा, शीत, आतप आदि को सहन करता हुआ ग्रीष्म ऋतु में एक पाषाण शिला पर आतप योग लगाकर चार महीने बिताये। वर्षा ऋतु में खडगासन लगाकर तपस्या करने लगे। बिजली कड़कती, बादल बरसते, तूफान आते पर वह निश्चल होकर तपस्या में लीन थे। दुर्द्धर तपस्या करके चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा अवन्ती के तडियर नामक पर्वत पर तपस्या करते हुए आठ कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया।

असत्य बोलने के प्रभाव से संघश्री रौरव नरक में गया और सत्य की रक्षा करने वाला धनद राजा निर्वाण को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार राजा श्रेणिक इस कथा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

ग्यारहवीं कथा समाप्त

बारहवीं कथा

सत्यव्रत मोक्ष लक्ष्मी को देने वाला है, सम्यत्व प्राप्ति का कारण है। मगध सम्राट् श्रेणिक सत्यव्रत की कथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी इच्छा अन्य व्रतों की कथाएं जानने की हुई; क्योंकि व्रत पालन करने के फल को व्यक्त करने वाली कथा सुनकर प्रत्येक व्यक्ति व्रतों के पालन करने लिये प्रेरणा प्राप्त करता है। कथाएं मानव जीवन में पथ प्रदर्शन का कार्य करती हैं। अतः हाथ जोड़कर श्रेणिक कहने लगा---

स्वामिन् अचौर्याणुव्रत के पालन करने से क्या फल मिलता है ? इस फल को किसने प्राप्त किया इस मानव जीवन को सुखी बनाने के लिये अचौर्य की क्या आवश्यकता है ?

गौतम स्वामी — राजन् ! अचौर्याणुव्रत पालन करने से संसार में सुव्यवस्था होती है, जीवन सुखी बन जाता है तथा लोक-परलोक में आनन्द मिलता है।

चोरी करने से हिंसा होती है, झूठ बोलना पड़ता है और चोरी से प्राप्त धन का अपव्यय होने से सप्त व्यसनों का सेवन करना पड़ता है। जो व्यक्ति लोभ वश किसी भी प्रकार की चोरी करता है, वह निश्चय ही अपनी आत्मा का पतन कर लेता है। धन मनुष्यों ने लिये प्राणों के समान प्रिय है, जो दूसरों के धन का अपहरण करता है, वह उसके प्राणों का ही अपहरणकर्त्ता माना जाता है चोरी करना बहुत बड़ा पाप है, इस पाप का करने वाला सदा सन्ताप की अग्नि में जलता रहता है। यदि कोई व्यक्ति चोरी करके धनी बनने की कामना रखता है, तो उसकी यह कामना बालू की भीत है । धन सदा शुभ कर्मों के उदय से प्राप्त होता है, अशुभोदय के आने पर अर्जित धन भी चला जाता है। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि बिना दिये किसी की भूली हुई, पड़ी हुई गिरी हुई वस्तु को न स्वयं लेना और न अन्य को ही देना चाहिये। चोरी का त्याग करने वाले व्यक्ति का सभी लोग विश्वास करते हैं, जिससे समाज का उचित ढंग से संचालन होता है, किसी भी प्रकार की अव्यवस्था नहीं आने पाती है।

श्रेणिक — स्वामिन् ! अहिंसाव्रत और सत्यव्रत के पालन करने से ही चोरी का त्याग हो जाता है, फिर इस व्रत को पृथक् स्थान क्यों दिया ?

गौतमस्वामी—राजन् ! विस्तार से अहिंसा धर्म की व्याख्या करने के लिये ही अचौर्यव्रत को पृथक् स्थान दिया गया है। अहिंसा इतना व्यापक धर्म है, कि इसका वास्तविक पालन करने से सारे पापों का त्याग हो जाता है। जो व्यक्ति अहिंसक है, वह झूठ क्यों बोलेगा ? चोरी क्यों करेगा ? फिर भी अहिंसा को सभी पहलुओं से समझाने के लिये इन व्रतों का पृथक् विधान किया गया है।

श्रेणिक—स्वामी ! क्या अचौर्य व्रत का धारी चोरी के लाये हुये सामान को खरीदेगा ?

गौतम स्वामी—नहीं राजन्, नहीं ! चोरी का सामान लेना भी चोरी है।

जो इस व्रत का अच्छी तरह पालन करता है, वह सब प्रकार से सुख और शान्ति प्राप्त करता है। इस की कथा निम्न है—

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण अवन्ती नाम के देश में उज्जयिनी नाम की नगरी थी। इस नगरी में धरणीधर नाम का राजा राज्य करता था। इस राजा का राजसेठ दिव्य गुणों का धारी, जिनेन्द्र भगवान का भक्त जिन शास्त्र का पारगामी और प्रतिभावान जिनदत्त नाम का था। इस सेठ की स्त्री का नाम जिनेन्द्रदासी था। ये दोनों दम्पत्ति आनन्द पूर्वक रहते थे।

एक दिन पाप रूपी तिमिर को दूर करने वाले पवित्र चरित्र के धारी जिनधर्म के मर्मज्ञ, जिनपालिक नाम के मुनिराज एकाकी विहार करते हुए आ रहे थे। उज्जयिनी के पास आते-आते सूर्यास्त हो गया, अतः रात में गमन निषिद्ध होने से वह भयंकर श्मशान भूमि में जाकर भूमिशोधन कर ध्यानस्थ हो गये। सूर्योदय तक इसी स्थान पर रहेंगे ऐसा नियम कर वहीं एक ही करवट लेट गये। धनुषाकार होकर उन्होंने योग लगाया। योग में मुनिराज इतने लीन थे कि इन्हें अपने शरीर का भी होश नहीं था।

मध्य रात में उज्जयिनी का बिड़म्ब नामक साधक मन्त्र विद्या सिद्ध करने के लिये उसी श्मशाम भूमि में आया। उसने योगस्थ जिनपालित मुनि को मुर्दा समझा अतः पास की चिताओं में से दो तीन मुर्दे और खींच लाया। जिनपालित मुनि और अन्य मुर्दाओं को मिलाकर उसने चूल्हा तैयार किया और इस चूल्हे में आग जलाकर भात बनाना आरम्भ किया। जब आग की लपटें जिनपालित मुनि के मस्तक के पास पहुँची तब भी वह ध्यानस्थ रहे। उन्होंने अग्नि

की कुछ भी परवाह नहीं की। मुनिराज सोचने लगे—

स्त्री बिना पुत्र, दूध बिना मक्खन, सूत बिना कपड़ा और मिट्टी बिना घड़े का बनना जैसे असंभव है, उसी प्रकार उपसर्ग बिना सहे कर्मों को नष्ट करना असंभव है। उपसर्ग की आग से कर्म रूपी लकड़ी जल कर भस्म हो जाती है। इस पर्याय की प्राप्ति और इसमें भी दिगम्बर दीक्षा का मिलना बड़े सौभाग्य से होता है। जो व्यक्ति ऐसे अवसरों पर विचलित हो जाते हैं, वे कहीं के भी नहीं रहते। जीव के परिणाम ही उन्नति अवनति के साधन हैं। परिणाम जैसे-जैसे विशुद्ध होते चले जाते हैं, वैसे यह जीव आत्मकल्याण में प्रवृत्त होता जाता है। इस संसारमें हम अनादि कालसे भव भ्रमण कर रहे हैं; इसमें कोई किसी का नहीं है, सभी स्वार्थ के साथी हैं। यह जीव अकेला ही जन्म मरण के दुःख को भोगता है, इसके दुःखों में से बटवारा करने वाला कोई नहीं है। सद्धर्म का मिलना अत्यन्त कठिन है, इस अशुद्ध शरीर के मोह में पड़कर अपना अकल्याण नहीं करना चाहिये। आत्मा सदा इस शरीर से भिन्न है, शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। केवल आत्मा की वैभाविक शक्ति विशेष के कारण इस शरीर की प्राप्त हुई है तथा अनादिकालीन कर्म बन्धन चला आ रहा है।

मुनिराज आगे सोचने लगे आत्म परिणामों को दृढ़ करने के लिये प्रमत्त, अप्रमत्त आदि गुणस्थानों को दृढ़ करना अत्यावश्यक है; पश्चात् उन्होंने बारह भावनाओं और संसार की अनित्यता का चिन्तन किया। आत्मरस का आस्वादन करते हुए मुनिराज परमानन्द में विचरण करने लगे।

कुछ समय के अनन्तर मुनिराज ने महाव्रत, समिति आदि का चिन्तन किया. जिससे उन्हें अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई। वह सोचने लगे कि जिस प्रकार श्रावक को भगवान् की पूजा करने से सभी ऐहिक सुखों की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार मुनि को व्रतों में दृढ़ होने से समस्त सुख मिल जाते हैं। जो भव्य जीव पवित्र जैनधर्म का आश्रय ग्रहण कर लेता है, वह निश्चय ही इस संसार सागर से पार हो जाता है। भगवान् जिनेन्द्र का वास्तविक स्वरूप दिगम्बर मुद्रा है, इस कल्याणकारी मुद्रा को धारण कर विचलित होना महान आश्चर्य का विषय है।

धर्मध्यान के चिन्तन के अनन्तर मुनिराज ने शुक्ल ध्यान करना आरम्भ किया। आरम्भ में व्रत की महिमा का विचार करते हुए सोचने लगे — व्रत का पालन करने से चाण्डाल भी देव हो गया, कौवे का मांस छोड़ने से

खदिर सागर इन्द्र पदवी को प्राप्त हुआ । नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से कितने ही भव्य जीवों ने आत्मकल्याण कर लिया है । दृढ़ सूर्य नाम का चोर चोरी करते पकड़ा गया, दण्डस्वरूप सूली पर चढ़ाया गया पर णमोकार मन्त्र के प्रभाव से देव हो गया । सोमशर्मा की स्त्री ने बरदत्त मुनिराज को आहार दान दिया था, जिससे वह देवाङ्गना हुई । नमि और विनमि ने भगवान् आदिनाथ की आराधना की थी, जिससे धरणेन्द्र ने आकर उनकी सेवा की । क्या भगवान् की आराधना करना सामान्य हो सकता है ? द्रुमसेन ने जिनेश्वर के मार्ग को समझकर कर्मों को नाश कर दिया, अतः आराधना करनेवाले को मोक्ष कुछ भी दूर नहीं ? रथनेमि ने महाव्यसनी होकर भी अन्त में भगवान् के चरणों की शरण लेने से निर्वाण पद को पाया । चिलात पुत्र ने उपसर्ग आने पर व्रतों को नहीं छोड़ा, ध्यानस्थ रहा जिससे उसने मोक्ष पद पाया जैन दीक्षा सामान्य नहीं है, जिसने इसके मर्म को समझ लिया है, वह बात की बात में इस संसार से पार हो गया है । महाव्रतों का प्राप्त होना परम सौभाग्य है, मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है । नरक में इस जीव को कितनी वेदनाएं सहन करनी पड़ती हैं । यह जीव मरन, छेदन, भेदन, भूख, प्यास के कष्टों को नरक में सहता चला आ रहा है । यह वेचारा अज्ञानी जीव मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर रहा है केवल अपने किये कर्मों के कारण थोड़ा उपसर्ग मुझे सहन करना पड रहा है

जैसे कोई धनिक सर्वदा धन संचय करता रहे, पर वह चोरों के आने पर उसकी रक्षा न करे तो उसका धन संचय करना निरर्थक है, उसी प्रकार जो तपस्वी निरन्तर ध्यान में लीन रहता है, पर उपसर्ग के आने पर तप से विचलित हो जाता है, उसकी यह क्रिया भी सर्वदा निरर्थक है । अतएव अपनी शक्ति के अनुसार दृढ़ रहना चाहिये । शक्ति और बुद्धि के समन्वय से ही आत्मा का शोधन किया जा सकता है । तपस्या करने के लिये शक्ति का होना परम आवश्यक है । जिसमें दृढ़ता नहीं है, उपसर्ग सहन करने की शक्ति नहीं है, ऐसा व्यक्ति कर्मबन्धन को तोडने में असमर्थ है । जिस प्रकार अन्धेरे में दीपक से सूर्य के समान प्रकाश नहीं हो सकता है, उसी प्रकार अल्पशक्ति वाला कर्मबन्धन को नहीं तोड़ सकता है । कोई भी व्यक्ति जिनदीक्षा रूपी मार्ग के अभाव में, जिनेन्द्र-भक्ति रूपी घोड़े पर सवार हुए बिना, जिनेन्द्र आराधनारूपी चाबुक के अभाव में जिनागम के इष्टतत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है ।

वस्तुतः जिनेश्वर ही अशरण की शरण है । इन्द्रियों और मनको वश में किये बिना किसी को भी जिनेश्वर का मार्ग नहीं मिल सकता है । संयम के सिवा अन्य कोई शरण नहीं है । इस प्रकार मुनिराज आत्म चिन्तन करते हुए

धर्म में लीन हो गये।

जब जलती हुई आग उनके हाथों के पास पहुँची तो कुहनी अपने आप ही बिना ऊपर को उठाये, उठ गयी हाथों को उठता देख वह मन्त्रवादी साधक बहुत भयभीत हुआ और अपना सारा सामान वहीं छोड़ घर की ओर भागा। वह इतनी तेजी से भागा जा रहा था, जिससे उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई उसका पीछा कर रहा है। भय-विह्वल हो वह चिल्लाता हुआ दौड़ने लगा कि मुझे बचाओ, मेरे पीछे भूत लगा है।

जिनपालित मुनि को आग की लपटें चारों ओर से घेरे हुई थीं। दया से द्रवित मुनि सोचने लगे कि इस समय थोड़ा भी इधर—उधर हिलने से आसपास के जीवों की हिंसा होगी, अग्नि की लपटें इधर—उधर फैलकर निकटस्थ जीवों को जला देंगी। अतएव वे बिल्कुल ध्यानस्थ हो गये।

मुनिराज की ध्यानदृढ़ता को देखकर श्मशान भूमि के रक्षक देव का शासन हिल गया उसने समुद्र की गर्जना के समान भयंकर गर्जन किया तथा मुनिराज की जय—जय ध्वनि करने लगा। उसने उपसर्ग दूर कर नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से मुनिराज के चरणों की पूजा की और स्तुति करता हुआ कहने लगा—प्रभो! आपके समान धैर्यशाली कौन है? आपने अपने शरीर का तनिक भी मोह नहीं किया। धन्य है जैनधर्म, जिसके प्रभाव से ऐसे—ऐसे उपसर्ग विजयी साधु आज भी वर्तमान हैं। वास्तव में जिनेश्वर के चरणों की शरण प्राप्त हो जाने पर संसार में कुछ भी दुष्कर और दुर्लभ नहीं होता है। आपने शरीर, धन, परिग्रह आदि से ममत्व त्यागकर उपमातीत पदवी प्राप्त की है। ऐसे ही दुर्द्धर तपस्वी शरीर का मोह छोड़कर आत्म सिद्धि प्राप्त करते हैं। वस्तुतः जैन मुनियों की तपस्या बड़ी विलक्षण होती है, वे शरीर, स्त्री, पुत्र, धन धान्य आदि से मोह छोड़कर आत्मसिद्धि में संलग्न रहते हैं। ऐसे ही वीतरागी साधु सच्चे साधु या तपस्वी होते हैं।

जो साधु स्त्री, पुत्र में आसक्त हैं, विषय—वासनाओं की पुष्टि के लिये नाना प्रकार के आडम्बर करते हैं, वे कभी भी सच्चे तपस्वी नहीं हो सकते। जो उपसर्ग आने पर विचलित नहीं होते, संयम की सदा आराधना करते हैं भोगों की तनिक भी लालसा जिनके मन में नहीं होती वे साधु ही आत्म कल्याण करनेवाले कहे जा सकते हैं। देव आप धन्य हैं, आपने अपनी साधना के द्वारा आत्मसिद्धि प्राप्त की है। इस प्रकार नाना प्रकार से स्तुति कर वह श्मशान भूमि का शासक देव तिरोहित हो गया।

नगर में यह सारा समाचार हवा की तरह व्याप्त हो गया। नगर निवासी इस आश्चर्यकारी घटना को देखने के लिये दौड़ पड़े। जब सभी लोगों ने मुनिराज को अधजला ध्यानस्थ पाया तो वे सब आश्चर्य में डूब गये। प्रातःकाल हो जाने पर सूर्योदय हो गया था, अतः जिनपालित मुनि ने योग समाप्त किया।

जिनदत्त सेठ भी नगर वासियों के साथ इस चमत्कार को देखने के लिये आया था। वह मुनिराज से बहुत प्रभावित हुआ और उनके शरीर को रुग्ण समझकर सेवा करने के ख्याल से मुनिराज को अपने जिनालय में लिवा लाया।

जिनदत्त सेठ ने मुनिराज की बड़ी भक्ति के साथ परिचर्या की, उनके जले शरीर पर औषधि लगा दी। थोड़े दिनों में जिनदत्त सेठ की सेवा से मुनि का शरीर स्वस्थ हो गया। एक दिन मुनिराज ने विहार करने की बात जिनदत्त से कही।

जिनदत्त—गुरुवर ! कुछ दिन तक और यहीं रहने की कृपा करें। अभी आपका शरीर पूर्ण स्वस्थ नहीं है। कमजोरी अभी पूरी है, आपको चलने में कष्ट होगा।

मुनिराज—श्रेष्ठिन् ! मुनियों को एक नगर में ५ या ७ दिन से ज्यादा नहीं रहना चाहिये। हमको उज्जयिनी में रहते हुए आज पांच दिन हो गये, अब बिहार करना आवश्यक है।

जिनदत्त—स्वामिन् ! आपका शरीर अभी ठीक नहीं है, रुग्णावस्था में कुछ दिन और ठहरना चाहिये। समय और परिस्थिति के अनुसार काम करना परम आवश्यक है।

मुनिराज—वत्स ! यह शरीर सदा अस्वस्थ है, आत्मकल्याणी इसकी परवाह नहीं करते। आत्मोद्धार के लिये ही तो हमने अपना घर द्वार छोड़ा है। हमें अब मोह करने से कोई लाभ नहीं।

जिनदत्त—स्वामिन् ! अभी आप मेरे आग्रह से दो दिन और ठहरें। चलने में आपको कष्ट होगा। कुछ घाव भी ठीक नहीं है, अतः दो एक दिन में वे भी अच्छे हो जायंगे।

मुनिराज—नहीं वत्स, नहीं। अपने नियम को हम नहीं तोड़ सकते हैं। वीर व्रती अपने मार्ग को नहीं छोड़ सकते।

इस प्रकार समझा बुझाकर मुनिराज ने विहार किया। जिनदत्त श्रावक भी उनको कुछ दूर तक पहुँचाने के लिये गया। मुनिराज ने उपदेश देकर उसे वापस किया।

जिनदत्त सेठ के पुत्र जिनदास ने जब पिता और मुनि को घर से बाहर जाते देखा तो जिस कमरे में मुनिराज रहते थे उस कमरे में गड़े हुए धन को गुन्डों की सहायता से निकाल लिया और धन के स्थान को ज्यों का त्यों ढक दिया।

जब जिनदत्त सेठ लौटकर आया तो अपने धनको देखने लगा। जिनदत्त को सोने, जवाहरात से अधिक मोह था, जब वह धन नहीं मिला तो उसके मन में बड़ी भारी बेचैनी हुई। जिनदास अनजान की तरह दूसरे कमरे में आकर सो गया।

बहुत सोच विचार के बाद जिनदत्त सेठ ने निश्चय किया कि निश्चय मेरा स्वर्ण रत्न का भण्डार मुनि ही खोदकर ले गये हैं। मुनिराज अभी दूर नहीं गये होंगे, उन्हें लौटाकर लाना चाहिये और जैसे हो वैसे उनसे धन वसूल करना चाहिये। हाय, आजकल के मुनि भी चोरी करते हैं, कहां तो इतना उपसर्ग सहना और कहां चोरी जैसा नीच कृत्य करना। इस कमरे में मुनिराज के सिवा और कोई आया ही नहीं, अतः उनको छोड़ और कौन ले गया होगा? इस प्रकार विचार कर वह कपट वृत्ति से मुनिराज के पास आया और नमस्कार कर कहने लगा–

स्वामिन्! आज आप अवश्य लौट चलें। विहार करने से आपका व्रत भी पूरा हो गया और अब पुनः पांच दिन ठहर सकते हैं। मेरी इच्छा आपसे व्रत लेने की है, मुझे ऐसा विश्वास है कि आपके द्वारा ही मेरा आत्म कल्याण हो सकेगा। आप कल चले जायें।

घर ले जाकर श्रीदत्त सेठ ने मुनि को एक पटा पर वैठा दिया और धन निकालने के अभिप्राय से निम्न कथा कहने लगा–

प्रभो! व्यघ्रखेट नगर में दिनकर का कराल नामक पुत्र था। यह पुत्र वचपन में अधिक लाड़–चाव रखने के कारण कुसंगति में पड़ गया और सप्तव्यसनों का सेवन करने लगा। वेश्या सेवन में इतना संलग्न था कि उसने अपना सारा धन इस दुर्व्यसन में बरबाद कर दिया। जब घर में धन नहीं रहा तो चोरी करना शुरू किया। एक दिन यह राजा के यहां चोरी करने को गया। जब धन चुरा कर जाने लगा तो पहरेदारों ने देख लिया और पकड़ने के लिये

उसका पीछा किया। कराल बेतहाश भागा और भागते–भागते जब वह थक गया और भाग निकलने की आशा नहीं रही तो एक दयालु सज्जन के चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा—स्वामिन् मैं आज से कभी चोरी नहीं करूंगा, आप मेरी रक्षा करें। धर्मात्मा व्यक्ति ने दया से द्रवित होकर अपने घर में शरण दी और जनाने कपड़े पहनाकर अपने घर की स्त्रियों में छिपा दिया। कोतवाल और पीछा करनेवाले चपरासियों ने उसके घर की तलाशी ली और स्त्री समझकर उसे छोड़ चले गये। वह रात भर घर में रहा, जब सब लोग सो गये तो चुपचाप उठा और उस घर की सारी धन–सम्पत्ति ले रफू–चक्कर हो गया।

स्वामिन् क्या कराल का ऐसा करना उचित है? शरणागत बनकर किसी को धोखा देना कितना बड़ा पाप है। जिसने शरण दी है, उसी को ठगना और उसके साथ विश्वासघात करना कहां तक उचित है? आप स्वयं विचार करें।

जिनपालित मुनि इस कथा को सुनकर अचम्भे में पड़ गये और जिनदत्त सेठ की आशंका समझकर निश्चय किया कि मालूम होता है कि जिस कमरे में मैं ठहरा था, उसमें का धन किसीने चुरा लिया है और इसका सन्देह हमारे ऊपर है, अतः ऐसी कथा कहनी चाहिये जिससे इसे अपनी गलती मालूम हो जाय। मुनिराज बोले—

प्राचीन काल में द्वारावती नगरी में उदार नारायण नाम का राजा राज्य करता था। यह अर्धचक्री राजा था। एक दिन इस नगर में दण्डक नाम के मुनिराज आये। राजा मुनि आगमन सुन प्रसन्न हुआ और इनके निकट आ नमोऽस्तु कर उपदेश सुनने लगा। मुनिराज व्याधि से पीड़ित होने के कारण बहुत ही कृश हो गये थे। मुनिराज को रोगी समझ उनकी परिचर्या करने के ख्याल से राजा ने प्रार्थना की प्रभो! चातुर्मास यहीं कीजिये, हमलोगों को उपदेश का लाभ होगा। आप जैसे गुरुओं का समागम बड़े ही पुण्योदय से होता है। ज्यादा आग्रह देखकर मुनिराज ने तथास्तु कह दिया। महाराज का चातुर्मास द्वारावती में हो गया।

राजा ने एक दिन श्रीकान्त नाम के वैद्य को एकान्त में बुलाया और मुनिराज की व्याधि को दूर करने के लिये कहा। श्रीकान्त वैद्य ने राजा के आदेश से औषधि तैयार की और उसे रानियों के पास भिजवा दिया तथा यह आदेश दे दिया गया कि चावल के आटे में मिला कर लड्डू बनाकर इस औषध को दे देना पड़ेगा। मुनिराज औषध

के नाम पर कुछ भी नहीं लेंगे अतः चुप-चाप उनको दवा दे देनी चाहिये । मुनिराज का जहां-जहां अहार होता था, औषध मिश्रित लड्डू वहीं-वहीं भिजवा दिये जाते थे ।

कुछ दिनों के उपरान्त मुनिराज अच्छे हो गये तो वैद्यराज अपनी महिमा प्रकट करने के ख्याल से सोचने लगे कि मैं मुनिराज को अपना परिचय दूंगा तो वे बहुत प्रसन्न होंगे और मेरी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त हो जायगी । एक दिन जब राजा उपदेश सुन रहा था तो वैद्य भी वहीं पहुँच गया और मुनिराज और राजा को नमस्कार कर कहने लगा--असाध्य रोग को मैंने बड़ी बुद्धिमानी पूर्वक दूर किया है । मुनिराज ने इस बातको सुनकर वैद्य की कुछ प्रशंसा नहीं की केवल इतना ही कह कर रह गये कि जब तक अशुभ कर्मोदय है, कष्ट भोगना पड़ता है । शुभोदय आते ही व्याधि दूर हो जाती है ।

वैद्यराज मुनिराज के वचनों के मर्म को न समझ कर मन में कहने लगा—मैंने इतना इनका उपकार किया, फिर भी यह कर्मों की बात कह रहे हैं । अच्छा देखूंगा, इनके कर्मों को । दस-पांच दिन के बाद ही वैद्यराज का आर्त्त-ध्यान पूर्वक मरण हो गया, जिससे वह मरकर बन्दर हुए ।

मुनिराज द्वारावती से विहार कर उसी वन में गये जहां वैद्यराज का जीव बन्दर हो गया था । ज्यों ही प्रत्याख्यान कर मुनि आम के पेड़ के नीचे बैठकर सामायिक करने लगे कि आम पर बैठे बन्दर की दृष्टि उनपर पड़ी और पूर्वजन्म के वैर का स्मरण कर एक सूखी लकड़ी तोड़कर मुनि की जांघ में घुसेड़ दी । मुनिराज उपसर्ग समझकर आत्मध्यान में लीन हो गये, उन्होंने शरीर से अपना मोह दूर कर दिया ।

बन्दर ने जब सुमेरु पर्वत के समान मुनिराज को आत्मध्यान में लीन देखा तो उनकी अहिंसक प्रवृत्ति का उसपर अपूर्व प्रभाव पड़ा । उसका हृदय बदल गया, परिणामों में परिवर्तन हो गया । पश्चात्ताप करते हुए वह किसी जंगली पेड़ का पत्ता तोड़ कर ले आया और उसे मुनिराज के घाव में डाल दिया जिससे उनका घाव तत्काल अच्छा हो गया । बन्दर ने मुनिराज के पास बैठकर अणुव्रत ग्रहण किये और धर्मध्यान पूर्वक शरीर का त्याग किया, जिसके प्रभाव के वह देव हुआ ।

श्रेष्ठिन् ! बिना बिचारे काम करने से दुर्गति प्राप्त होती है । प्रायः बिना बिचारे ही लोग साधुओं को कष्ट देते हैं ।

धर्म
मूत
२७३

जिनदत्त इस कथा को सुनकर सोचने लगा, जीवन भर की अर्जित सम्पत्ति को कैसे छोड़ूं ? अतः वह भी मुनिराज को सचेत करने वाली कथा कहने लगा—

भानुपुरा नाम के नगर में हीन बुद्धि कपिल नाम का ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह सोचने लगा कि गरुड़ विद्या सीखकर चारों ओर चमत्कार फैलाया जा सकता है, अतएव वह यश कमाने की लालसा से पूर्व देश के एक मंत्रवादी के पास विद्या सीखने गया। इधर-उधर से मिष्ठान्न एकत्रित कर वह उदरपोषण करने लगा। जब विद्या समाप्त कर चुका तो वह अपने घर को वापस लौटा। रास्ते में उसे एक मरा व्याघ्र मिला, यह व्याघ्र सांप के काटने से पञ्चत्व को प्राप्त हुआ था। उसने मन्त्र परीक्षा करने के लिये उस बाघ की हड्डियों को एकत्रित किया और मांत्रित जल उसके ऊपर छोड़ दिया, जिससे बाघ जिन्दा हो गया और उपकार का स्मरण न कर उस कपिल को खा गया।

हे मुनिराज क्या उस व्याघ्र का यह कार्य उचित कहा जायगा। उपकारी के उपकार का यह बदला देना कहां तक उचित है, आप स्वयं विचार करें।

मुनिराज जिनदत्त की असद् वृत्ति को ज्यों की त्यों देखकर उसके भ्रमोच्छेदन के लिये कहने लगे—

केसरीपुर नाम के नगर में वासव नाम का राजा राज्य करता था। उनकी प्रकाशमान कीर्त्ति चारों ओर व्याप्त थी। इस नगर के राजसेठ के लड़के का नाम नन्दन था। लड़का प्रतिदिन नाना प्रकार के आभूषण पहन कर खेलने जाता था। पड़ोसी की एक स्त्री को उस बच्चे के आभूषणों को देखकर लालच आ गया। उसने विचार किया कि इस बच्चे की हत्या कर उसके आभूषण ले लेने चाहिये। यहां कौन देखता है ? इस प्रकार निश्चय कर वह फुस लाकर बच्चे को अपने घर के भीतर ले गयी तथा गला दबाकर उसकी हत्या कर दी और कोई इस बात को जान न जाय, इसलिये लाश को सांड़ के सींगों में लटका दिया। लोगों ने समझा कि वास्तव में सांड़ ने अपने सींगों से बच्चे को मार डाला है।

बच्चे के न मिलने से मां-बाप को बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे नाना प्रकार से विलाप करने लगे तथा पुत्र के ढूंढने के लिये प्रयास किया। अकस्मात् सींग में बच्चे की लाश को लटकाये हुए आते सांड़ को देखा। वे तुरंत समझ गये कि इस पापी सांड़ ने ही हमारे बच्चे को मार डाला है, अतः पूंछ पकड़ कर सांड़ को मारने लगे। सांड़

खाने से मुंह फाड़ कर रंभाने लगा।

सांड़ दौड़कर एक लुहार की दुकान में घुस गया और वहां से गर्म लोहे को मुंह से उठाकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये, ले कर आ गया। लोगों ने जब सांड़ के इस कृत्य को देखा तो बहुत प्रभावित हुए और उसे निर्दोष समझ सोचने लगे कि आभूषणों के लोभ से अवश्य इसे किसी लालची ने मारा है। अतएव कोतवाल को खबर देनी चाहिये। खबर पाकर पुलिस आई और उसने गुप्त रीति से जांचकर वास्तविक हत्यारे का पता लगा लिया। राजसेठ वास्तविक हत्यारे को जानकर तथा सांड़ को निर्दोष समझ अपनी गलती पर पछताने लगा। अतः बिना बिचारे कभी कोई काम नहीं करना चाहिये।

इस कथा को सुन कर जिनदत्त ने विचार किया कि एक कथा और कहता हूं, जिससे निश्चय ही मेरा धन मिल जायगा। वह कहने लगा—

भारती नाम की नदी के किनारे पर कापालिक नामका एक साधु रहता था। एक दिन नदी में बाढ़ आयी। इस बाढ़ में एक हाथी का बच्चा एक पेड़ के सहारे बहते हुए चला जा रहा था। कापालिक को उस हाथी के बच्चे पर दया आयी, अतः उसने अनेक मनुष्यों की सहायता से पानी के भीतर से उस बच्चे को निकाला और उसका पालन-पोषण करने लगा—

जब यह हाथी का बच्चा बड़ा हो गया तो यह ऐरावत हाथी के समान मालूम पड़ता था। राजा के पास जाकर किसी ने खबर दी कि कापालिक का हाथी सर्वश्रेष्ठ है तो राजा ने दूत भेजकर कापालिक से हाथी मंगवाया। राजा का आदेश मानकर कापालिक ने हाथी दे दिया, किन्तु प्रतिदिन सांकल तोड़कर वह हाथी राजा के यहां से चला आता था। जब लोगों ने हाथी को अधिक तंग किया तो उसने अनेक व्यक्तियों की हत्या कर दी, इससे राजा बहुत ही असन्तुष्ट हुआ। राजा को क्रोधित जानकर कापालिक स्वयं हाथी को लेकर गया और उसे मजबूत बन्धन में बंधवा दिया।

दूसरे दिन क्रुद्ध होकर हाथी आया और उसने कापालिक को ही मार डाला। मुनिराज क्या हाथी का यह कार्य उपयुक्त था ? दुर्गुणी उपकार करने पर भी अपकार ही करते हैं।

जिनपालित मुनि इस कथा को सुनकर मन में विचार करने लगे कि लोभी के मन और बाढ़ के पानी को

निर्मल करना बड़ा कठिन है। शायद अबकी कथा कहने से यह अपने भ्रम को दूर कर सके। अतः वह बोले–

दन्तीपुर नाम का एक नगर था। इसमें अनन्तश्री नाम की सुन्दरी वेश्या रहती थी, इसकी वासवदत्ता नाम की सखी थी, इसने अनन्तश्री को सुन्दर तोता लाकर दिया। पिंजड़े में रखकर तोते को सारी चेष्टाएं और हाव–भाव सिखलाने प्रारम्भ किये। तोते के कारण नगर की सभी वेश्याएं उससे ईर्ष्या करती थी, इससे उन लोगों ने अनन्तश्री को मारने के लिये वासवदत्ता को धन देकर अपने अधीन कर लिया। वासवदत्ता ने शराब में विष मिलाकर अनन्तश्री को दिया। अनन्तश्री कहने लगी–थोड़ी देर में मैं पीऊंगी अभी तू गिलास को आले में रख दे। वासवदत्ता किसी काम से बाहर चली गयी और अनन्तश्री की आंखों में नींद आ गयी।

पिंजड़े में बन्द तोते का ध्यान जब शराब की ओर गया तो उसने देखा कि शराब के वर्तन के ऊपर जितनी मक्खियां बैठती हैं, वे सभी शराब पीते ही मर जाती हैं। अतः शराब में विष समझ कर अपनी स्वामिनी की रक्षा के लिये उस गिलास को गिरा दिया।

जब अनन्तश्री की आंख खुली तो शराब के गिलास को गिरा हुआ देखकर उसे बहुत क्रोध आया और उस तोते के पिंजड़े को उठाकर पटक दिया, जिससे तोता मर गया।

शराब के पास मरी हुई मक्खियों को देखकर अनन्तश्री को शराब में मिले हुए बिष का निश्चय हो गया और बिना बिचारे किये गये कार्य पर पछताने लगी। उसके मन में तोते के मरने का बड़ा भारी शोक था, वह नाना प्रकार से विलाप करने लगी।

श्रेष्ठिन् ! बिना बिचारे काम करना या अपनी गलत धारणा बना लेना कहां तक ठीक है ? अनन्तश्री निर्दोष तोते को मारकर जिस प्रकार पछताई उसी प्रकार अज्ञानी जीव भ्रमवश कोई काम कर देने से पछताते हैं।

मुनिराज के वचन सुनकर सेठ के मन का मैल दूर नहीं हुआ, अतः वह धन निकालने के लिये एक कथा कहने लगा—

अवनी भूषण नाम के नगर में एक बढ़ई रहता था, बहुत ही बुद्धिमान था, बिन्ध्याचल पर्वत पर जाकर प्रतिदिन वृक्ष काटकर लाता था। एक दिन वह वृक्ष काट रहा था कि एक मदोन्मत जंगली हाथी उसी रास्ते से निकला।

हाथी से डरकर वह पेड़ पर चढ़ गया। जब हाथी निकल गया तो उस पेड़ से उतर आया और उसी को काट लिया। हे मुनिराज क्या उपकार करने वाले के साथ इस तरह अपकार करना ठीक है? सेठ की कथा को सुनकर मुनिराज को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि इसके मन में अभी सन्देह है अतः उसके सन्देह को दूर करने के लिये एक कथा कहने लगे—

इस पृथ्वी पर अमरखेट नाम का नगर था, इस नगर में चन्द्रदत्त नाम का ब्राह्मण अपनी यज्ञदत्ता नामक स्त्री के साथ आनन्दपूर्वक रहता था। इस स्त्री ने एक नेवला पाला। इसे वह सन्तान के समान प्रेम करती थी। एक दिन यज्ञदत्ता बच्चे को पालने में सुलाकर पानी भरने चली गयी। बच्चा नींद में आनन्द पूर्वक सो रहा था, इतने में एक सांप निकला और बच्चे को काटने के लिये दौड़ा। नेवला ने बीच में ही झपट कर उस भयंकर सांप को पकड़ लिया और उसके टुकडे-टुकडे कर डाले। नेवला अपनी स्वामी भक्ति को दिखलाने के लिये दरवाजे पर आ गया। जब ब्राह्मणी पानी भरकर लौटी तो नेवले के मुंह पर खून लगा देखकर बहुत क्रोधित हुई और आवेश में आकर भरा घड़ा उसके ऊपर पटक दिया तथा विलाप करने लगी—पापी तूने मेरे बच्चे को मार डाला, ले अपनी करनी का फल भोग।

वह ब्राह्मणी रोती हुई घर में आयी तो बच्चे को आनन्द से सोते देखा तथा उसके पास भयंकर सांप के कई टुकडे देख विलाप करने लगी। उसे नेवले की याद सताने लगी, अपने बिना बिचारे किये गये कार्य पर उसे बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ।

श्रेष्ठिन्! बिना विचारे जो कार्य करते हैं, जिनके मन में झूठा सन्देह उत्पन्न हो जाता है, वे वस्तुतः अपनी बड़ी भारी हानि उठाते हैं।

इस कथा को सुनकर भी जिनदत्त सेठ के मन का सन्देह दूर नहीं हुआ और वह पुनः एक कथा धन निकालने के लिये कहने लगा—

प्राचीन काल में कामुक बन था, उसमें एक कुआ था कुएं में एक बाघ, एक सांप, एक बन्दर और एक मनुष्य भूल से गिर गये थे। एक दिन उस रास्ते से एक ब्राह्मण गंगा स्नान के लिये निकला, उसे रास्ते में बहुत प्यास लगी अतः घबड़ा कर जल की तलाश में उस कुंए पर आया। जैसे ही उसने अपने लोटे को कुंए में जल भरने के लिये लटकाया कि बाघ

ने लोटे को पकड़ लिया। जिस किसी तरह से उसने बाघ को कुंए के बाहर निकाला। बाहर आकर बाघ ने आश्वासन दिया कि तुम घबड़ाओ मत, मेरे द्वारा तुम्हारी किसी भी प्रकार की हानि नहीं होगी, बल्कि मैं तुम्हारे उपकार का बदला चुका दूंगा।

दूसरे बार लोटा लटकाने पर सांप लोटे में बैठकर आ गया, उसने भी उसे उपकार करने का आश्वासन दिया और जंगल की ओर चला गया। तीसरी बार लोटा डालने पर बन्दर चला आया और वह भी नमस्कार कर कहने लगा आपने मुझे जीवन दान दिया है, अतः मैं आपकी सब प्रकार से सहायता करता रहूंगा।

ब्राह्मण—इस समय मुझे सहायता की आवश्यकता नहीं है, समय आने पर आप मेरी सहायता करें। प्रत्येक प्राणी का यह धर्म है कि वह अपने उपकारी का स्मरण रखे।

चौथी बार कुंए में लोटा फांसने पर सुनार भी लटक कर चला आया और वह भी नमस्कार कर विपत्ति पड़ने पर सहायता का आश्वासन देकर चला गया।

गंगा स्नान कर जब ब्राह्मण लौटा तो उसने सर्व प्रथम बन्दर से भेंट की। बन्दर ने उसे मधुर, सुस्वादु फल दिये। कुछ समय तक विश्राम कर वह बाघ के पास गया और उसने भी सम्मान और विनय पूर्वक नमस्कार किया और अमूल्य रत्न भेंट दिये। इसके पश्चात् वह ब्राह्मण ताम्रकूट नगर में सुनार के पास आया। यह भी अपने उपकारी को प्राप्त कर प्रसन्न हुआ। पर ब्राह्मण के पास रत्न भंडार देखकर उसके मन में लोभ आ गया। उस दुष्ट सुनार ने ब्राह्मण को एक स्थान पर ठहरा दिया और पुलिस को सूचना दी कि इसने चोरी की है। सूचना पाकर पुलिस वहां आ गयी और उसने ब्राह्मण को पकड लिया तथा राजा के सामने ला उपस्थित किया।

विपत्ति आयी हुई समझ कर ब्राह्मण ने सांप का स्मरण किया। अपने वचनानुसार सर्पराज उपस्थित हुआ और उसने राजकुमार को डस लिया। सांप के डसते ही राजकुमार मूर्छित हो गया। सांप ने राजा को स्वप्न दिया कि जब तक तुम निर्दोष ब्राह्मण को मुक्त नहीं करोगे, राजकुमार अच्छा नहीं हो सकता है। इस प्रकार सांप ने ब्राह्मण को कारागृह से मुक्त कराया और उसका धन भी दिला दिया।

मुनिराज क्या उस सुनार का इस प्रकार अपकार करना उचित था? जो उपकारी के साथ अपकार करता

है, वह वास्तव में बड़ा ही नीच है। एसे व्यक्ति के लोक-परलोक सभी बिगड़ जाते हैं।

जिनदत्त सेठ के मन में ज्यों का त्यों सन्देह देखकर मुनिराज पुनः कथा कहने लगे—

अवन्तिदेश में उज्जयिनी नाम का नगर है। इसमें महेंद्र नाम का राजा राज्य करता था। इसका कुवेर नाम का राजश्रेष्ठि था। एक दिन राजा अपने सभी दरबारियों के साथ वन क्रीड़ा के लिये गया। कुवेरदत्त सेठ को क्रीड़ा करते हुए एक आम का पका फल मिला। छानबीन कर सेठ ने निश्चय किया कि फल का अद्भुत प्रभाव है। बुड्ढा इसके सेवन से जवान बन सकता है, श्वेत केश काले हो जाते हैं, समस्त रोग और विपत्ति इसके सेवन से दूर हो जाती हैं। अतः इसके बीज को राजा को भेंट करना सर्वश्रेष्ठ है, राजा इसे पाकर बहुत प्रसन्न होंगे और अपार धनराशि मुझे प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार ऊहा पोहकर वह उस फल के बीज को मालव नरेश के पास लेकर गया।

मालव नरेश—श्रेष्ठिन् ! यह बीज कहां से लाये हो ? इसका क्या गुण है ?

सेठ—राजन् ! यह बीज अमृतफल का बीज है। इसका फल खाने से बुड्ढा जवान हो जाता है; श्वेत केश काले हो जाते हैं और सभी प्रकार की व्याधियां दूर हो जाती हैं।

मालव नरेश सेठ के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और पर्याप्त पुरस्कार देकर उसे विदा किया। राजा सोचने लगा—जैनधर्मानुयायी कुवेरदत्त सेठ के वचन कभी भी असत्य नहीं हो सकते हैं। अतः अपनी सेना, सामन्त, परिवार आदि को स्वस्थ रखने के लिये इस बीज को अपने बगीचे में बो देना अच्छा होगा। ऐसा विचार कर उसने उस आम के बीज को अपने बगीचे में बो देने का आदेश दिया।

थोड़े दिनों के उपरान्त जब आम का पेड़ बड़ा हुआ, उस पर फल आये तो एक चील मरे हुए सांप को लेकर आकाश मार्ग से जा रही थी। सांप के शरीर से रक्त टपक रहा था। इस विषैले रक्त की एक बून्द उस आम के पेड़ पर गिर गई, जिस विष के प्रभाव से एक फल पक कर पीला हो गया। वनमाली ने उसे पका समझ कर राजा को दे दिया। राजा ने अपनी मनोकामना पूरी होते देखकर माली को खूब इनाम दिया और फल राजकुमार को खाने के लिये दिया गया। उस विषैले फल के भक्षण से राजकुमार की तत्काल मृत्यु हो गयी, जिससे राजा कुवेरदत्त सेठ से बहुत अप्रसन्न हुआ। उसकी सम्पत्ति लूट ली गयी और उसे कारागृह में बन्द कर दिया गया। अन्य लोगों का अनिष्ट न हो

जाय, इसलिये राजा ने उस आम्र वृक्ष को काटने का आदेश दे दिया।

जब नगर के दुःखी, दीन और वृद्धों ने यह समाचार सुना कि राजा की वाटिका के कटे हुए आम के पेड़ के फलों के खाने से तत्काल मृत्यु हो जाती है, तो वे बेचारे जीवन के कष्टों से छुटकारा पाने के लिये बगीचे में गये और उस तथाकथित विष वृक्ष के फलों को खाकर चंगे और स्वस्थ बन गये। धीरे धीरे यह सब समाचार राजा के पास पहुँचा तो वास्तविक बात ज्ञात कर राजा को बहुत कष्ट हुआ। राजा पछताता हुआ तत्काल कारागृह में कुवेरदत्त सेठ के पास गया और उसे बन्धन मुक्त कर क्षमा याचना करने लगा।

श्रेष्ठिन् ! बिना विचारे जो काम करता है, उसे महेन्द्र राजा के समान पश्चात्ताप करना पड़ता है। किसी पर झूठा सन्देह करना अच्छा नहीं होता है।

जिनदत्त सेठ का संशय इस कथा से भी दूर नहीं हुआ। उसे बार बार धन की याद आ रही थी, अतः वह पुनः धन प्राप्ति की लालसा से कथा कहने लगा—

सानन्द गिरि नाम के नगर में पुलिंद और अमित नाम के दो मित्र रहते थे, वे घूमते हुए दैत्य नामक वन में गये। चलते चलते पुलिंद को प्यास लगी। पानी का पता उसे एक बन्दर से मिला। उसने जलाशय में जाकर खूब पानी पिया, पश्चात् विचारने लगा कि आगे चलने पर पुनः प्यास लगेगी, अतः इस बन्दर को मार कर इसके चमड़े की थैली बनाकर पानी रख लेना चहिये। अपने निश्चय के अनुसार उसने बन्दर को मार दिया और उसके चमड़े की थैली बना कर उस में पानी भर लिया और आगे चला। हे मुनिराज ! उस उपकारी बन्दर के साथ उसका यह अपकार करना उचित था ?

मुनिराज इस कथा को सुनकर आश्चर्य में पड़ गये और उसके सन्देह को दूर करने के लिये निम्न कथा कहने लगे—

इस पृथ्वी पर कौशाम्बी नाम का नगर था। इसमें विशाख नाम का एक बड़ा सेठ रहता था, इसके पुत्र का नाम अंगारक था। अंगारक को रत्न, सोना और जरी के कीमती वस्त्रों से बहुत मोह था अतः वह इन सब वस्तुओं को एकत्रित कर अपने कमरे में बैठ गया। उसने अपनी सबसे प्रिय चन्द्रकान्तमणि को भी जरी के कपड़ों के ऊपर रख दिया। इतने में वहां मेधावी नाम के मुनि भ्रमण करते हुए चर्या के लिये आये। विशाख सेठ ने मुनिराज को भक्तिपूर्वक

पड़गाहा और आहारदान दिया। पुत्र भी इस कार्य में शामिल था। इसी बीच वहां एक चील उड़ती हुई आयी और चन्द्रकान्तमणि को मान्स पिंड समझ उठाकर ले गयी।

मुनिराज को आहार दान देने से पञ्चाश्चर्य हुए। नगर में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। अंगारक चन्द्रकान्तमणि को देखने के लिये आया और मणि को कमरे में न पा, मुनि को ही चोर समझा। अतः जल्दी ही सेठ पुत्र मुनिराज के पास पहुँचा और उन्हें झूठी बातों में फंसाकर अपने घर लिवा लाया तथा मुनि को आसन पर बैठा कर कहने लगा—स्वामिन् ! आप सब कुछ छोड़कर भी रत्न के ऊपर क्यों मोह करते हैं ? आपने रत्न क्यों चुराया ? आप जल्दी ही चन्द्रकान्तमणि को दीजिये, अन्यथा आपकी पूरी खबर ली जायगी।

सेठ पुत्र के उपर्युक्त वचनों को सुनकर मुनिराज विचारने लगे—इस पापी से बातें करना व्यर्थ है, अतः मौन रहना ही श्रेयस्कर होगा।

बार–बार पूछने पर जब मुनिराज कुछ नहीं बोले तो उसका सन्देह और भी दृढ़ हो गया। अतः उसने मुनि को चोर समझ कर मारना–पीटना आरम्भ–किया। यहीं तक नहीं उसने आग से भी मुनि को जलाया। मुनिराज सुमेरु के समान अपने ध्यान में लीन रहे, जिनेन्द्र स्वरूप का चिन्तन करते रहे। उपसर्ग आने पर मुनिराज ध्यान में इतने लीन हो गये कि उन्हें शुक्ल ध्यान प्राप्त हो गया और क्षपक श्रेणि चढ़कर घातिया कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया।

केवल ज्ञान प्राप्त होते ही चारों निकाय के देवों ने आकर मुनिराज की पूजा की। इसमें अंगारक को बहुत आश्चर्य हुआ और डर गया। मुनिराज को मारते समय लकड़ी का एक टुकड़ा पेड़ पर बैठी चील को उचट कर लगा, जिससे चन्द्रकान्त मणि उसके गले से निकल पड़ी। मणि को पेड़ के ऊपर से गिरता देखकर अंगारक बहुत दुःखी हुआ और पछताने लगा—मैंने मुनि को व्यर्थ कष्ट दिया है। कितने बड़े पाप का मैंने बन्ध किया है। मुझसा पापी संसार में कौन होगा ? इस प्रकार आत्मलोचना करते हुए उसे संसार से विरक्ति हो गयी और उन्हीं केवली के पास आकर दीक्षा ग्रहण की।

मुनिराज इतना कह कर मौन हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि अज्ञानी के साथ अधिक बातें करना निरर्थक

स्त्री वसन्ततिलका उस समय भी वन विहार कर रही थीं। वसन्त अपनी स्त्री को धनुर्विद्या दिखलाने के लिये बाणों द्वारा आम के फलों को उसके हाथ में पहुँचा रहा था। राजकुमार इस दृश्य को देखकर बहुत प्रभावित हुआ और अपने मन में धनुर्विद्या सीखने का संकल्प कर स्त्री को वहीं सोती छोड़ पाटलीपुत्र में द्रोणाचार्य के पास आया। उसने आते ही गुरु चरणों में अमूल्यरत्न चढ़ाये और हाथ जोड़कर विद्यादान की प्रार्थना की।

द्रोणाचार्य ने आकृति और रूप-गुण से उसे कोई राजकुमार समझा। वह सोचने लगे कि त्यागवृत्ति और धार्मिक गुण राजा में होते हैं, ब्राह्मणों में उद्दण्डता, वैश्यों में लोभ और शूद्रों में मूढ़ता रहती है। अतएव यह विनयी अवश्य ही क्षत्रियकुमार है। अतः द्रोणाचार्य ने उससे पूछा—तुम्हार नाम क्या है? कहां रहते हो? किसलिये यहां आये हो और क्या चाहते हो?

प्रमातिकुमार—मैं जिन भगवान् का भक्त ब्राह्मण पुत्र हूं और धनुर्विद्या सीखने के लिये आपकी सेवा में आया हूं। आपका यश मेरे कानों में पहुँचा था, अतः प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये उपस्थित हुआ हूं।

द्रोणाचार्य प्रमातिकुमार को सुयोग्य जैनधर्मानुयायी समझ अपने विद्यालय में ले आये और उसे धनुर्विद्या सिखाने लगे। प्रमातिकुमार में विद्यार्थी के सभी गुण वर्तमान थे, वह अल्पाहारी, अप्रमादी, परिश्रमी, अध्यावसायी, जागरूक और मधुकरी वृत्ति से जीविका अर्जन करता हुआ रहता था। धीरे-धीरे धनुर्विद्या का अभ्यास करते-करते प्रमातिकुमार इस विद्या में परिपक्क हो गया। उसकी बुद्धि की प्रखरता गुरु को भी आश्चर्य में डाल रही थी।

एक दिन द्रोणाचार्य अपने सभी शिष्यों के साथ मालवदेश पहुँचे, यहां का राजा सिंहसेन था। इसकी पुत्री का नाम चन्द्रलेखा था। चन्द्रलेखा अपनी सखियों के साथ सहस्रकूट चैत्यालय का दर्शन कर लौट रही थी। इतने में एक मदोन्मत्त हाथी, चिग्घाड़ता हुआ और मार्ग में मिलनेवाले लोगों को रौंदता हुआ चन्द्रलेखा के निकट आया। चारों ओर हाहाकार मच गया, चन्द्रलेखा की सखियां तो इधर-उधर भाग गयीं, किन्तु वह अपने स्थान पर ही घबड़ा कर गिर गयी। उसने हाथी के उपसर्ग के दूर होने तक संन्यास ले लिया और भगवान् जिनेन्द्र का चिन्तन करने लगी। हाथी चन्द्रलेखा को पैरों के नीचे कुचलने वाला ही था, सभी लोग सड़क के किनारे पर खड़े इस दयनीय दृश्य को देख रहे थे। द्रोणाचार्य के शिष्य भी इस अप्रत्यासित घटना को देखकर घबड़ा गये। प्रमातिकुमार को चन्द्रलेखा पर दया आयी, अतः वह हाथी को पकड़ने के लिये दौड़ा। अपने अपूर्व बल और पराक्रम द्वारा उसने हाथी को वश में कर लिया

और हाथीशाला में उसे बंधवा दिया पश्चात् कुमारी चन्द्रलेखा की प्रशंसा करते हुए बोला–देवि ! आपके धर्म प्रेम को धन्य है। वास्तव में आप बड़ी धर्मात्मा हैं।

कुमारी चन्द्रलेखा प्रमातिकुमार के पुरुषार्थ और बल को देखकर बहुत प्रभावित हुई और उसने प्रमातिकुमार को अपने मनका आराध्य बनाने का निश्चय कर लिया।

कुमारी चन्द्रलेखा के निश्चयानुसार उसका विवाह चन्द्रबेध करने पर प्रमातिकुमार के साथ हो गया। परन्तु द्रोणाचार्य के अन्य शिष्यों को यह बात खटकी और वे उससे ईर्ष्या करने लगे। गुरु द्रोणाचार्य ने शिष्यों के मनको सन्तुष्ट करने के लिये एक दिन उनकी धनुर्विद्या की परीक्षा रखी। एक उद्यान में पहुँच कर द्रोणाचार्य ने शिष्यों को आदेश दिया कि सामनेवाले नारियल के पेड़ के नारियलों को अपने आप ले आओ, एक भी नारियल धरती पर गिरने न पावे।

प्रमातिकुमार से द्रोह करनेवाले सभी शिष्यों ने नारियलों को अपने पास लाने का उपाय किया, पर वे अपने पास फलों को लाने में असमर्थ रहे। जब द्रोणाचार्य ने जिनभक्त प्रमातिकुमार को आदेश दिया कि आकाश मार्ग से फलों को अपने पास लाओ तो वह अपनी चतुराई से शीघ्र ही नारियल के फलों को अपने पास ले आया। द्रोणाचार्य प्रमातिकुमार के बाण–कौशल को देखकर बहुत प्रभावित हुए और योग्य शिष्य की प्रशंसा करने लगे।

प्रमातिकुमार के इस कौशल ने अन्य शिष्यों के मन में और भी ईर्ष्या उत्पन्न कर दी और वे उसके अनिष्ट साधन में तत्पर हो गये। एक दिन जंगल में सभी साथी जा रहे थे कि मदोन्मत्त वनगज सामने आता दिखलायी दिया। साथियों ने प्रमातिकुमार को झूठ-मूठ में इसलिये बढ़ावा दिया कि यह समाप्त हो जाय या हाथी इसे घायल कर दे। प्रमातिकुमार धैर्य पूर्वक शान्तिनाथ भगवान् की स्तुति पढ़ता हुआ हाथी के पास गया और अपने पुण्य प्रभाव से उसे पालतू कुत्ते के समान वश में कर लिया। इस कार्य से उसके साथियों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और वे भी अपना वैर-विरोध छोड़कर उससे प्रेम करने लगे।

सच है संसार में पुण्य की महिमा विचित्र होती है; पुण्योदय से ही सारी चीजें उपलब्ध होती हैं। पुण्यात्मा को सभी भोगोपभोग अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। पुण्याक्षीण होने पर हाथ पर रखा धन भी चला जाता है। जैसे

छोटी-छोटी नदियां समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार पुण्य के प्रभाव से सभी लौकिक विभूतियां उपलब्ध हो जाती हैं। पुण्योदय होने पर सरलता से वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं, पर पुण्य के अभाव में लाख प्रयत्न करने पर भी वस्तुओं की उपलब्धि नहीं होती।

सूर्य के उदय से कमल विकसित होते हैं, पर चन्द्रमा के उदय से वे ही संकुचित हो जाते हैं; इसी प्रकार पुण्योदय से सुख मिलते हैं, पर पापोदय से सभी सुख विलीन हो जाते हैं। कर्मोदय बलवान् होने पर रस्सी सांप बन जाती है, गले का हार सर्प हो जाता है, भाई शत्रु बन जाता है, और हाथ पर रखा धन विलीन हो जाता है। प्राय देखा जाता है कि पाप के प्रभाव से मनुष्य आयुष्मान् होते हुए रोगी विद्वान् होते हुए, पागल, धनिक होते हुए भी मूर्ख और राजा होते हुए भी शासन हीन होता है।

इस प्रकार पुण्योदय के कारण चन्द्रलेखा का विवाह हो जाने के उपरान्त मालव देश का आधा राज्य भी प्रमातिकुमार को मिल गया।

एक दिन कौशाम्बी नगर से दूत आया और उसने कहा कि दन्तिबल राजा पर एक माण्डलिक राजा ने आक्रमण कर दिया है। शत्रुओं ने कौशाम्बी के दुर्ग को तोड़ दिया है। यद्यपि राजा दन्तिबल वीरतापूर्वक युद्ध कर रहा है, पर इस युद्ध में विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। दूत के मुख से इस बात को सुन कर प्रमातिकुमार क्रोधाभिभूत हो गया और तत्क्षण कौशाम्बी चलने की तैयारी करने लगा।

प्रमातिकुमार ने सोचा कि यदि मैं मालवानरेश से आज्ञा मागूंगा तो आज्ञा नहीं मिलेगी, अतः बिना कहे चुप-चाप चल देना चाहिये। इस प्रकार निश्चय कर चन्द्रलेखा को साथ ले एक रथ पर सवार हो चल दिया। रास्ते में छोटी छोटी नदियों का उलंघन मदोन्मत्त हाथी के समान करता हुआ आगे बढ़ा चला जा रहा था। जंगली जन्तुओं पर बाणों का प्रयोग कर चन्द्रलेखा को अपनी धनुर्विद्या का परिचय देता जा रहा था। रास्ते में उसने एक अजीब दृश्य देखा कि एक लुटेरों का सरदार द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बनाकर धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था प्रतिदिन वह भक्तिभाव पूर्वक पुष्पों से गुरु पूजा करता था, पश्चात् धनुर्विद्या का अभ्यास। इस प्रकार धनुष चलाने में उसने बड़ी भारी क्षमता और प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

सुवेग नामक चोर सरदार की दृष्टि जब चन्द्रलेखा पर पड़ी तो वह कामविह्वल हो गया। समस्त विवेक को खो उस रमणीरत्न को पाने की लालसा करने लगा उसने निश्चय किया कि इस युवक को मार इस रमणी को प्राप्त कर लूंगा। जब तक यह जीवित रहेगा,यह रमणी हाथ आने की नहीं। इस प्रकार निर्णय कर उसने समस्त डाकुओं को एकत्रित करने के लिये शंखध्वनि की, जिससे बात की बात में डाकू वहां एकत्रित हो गये और प्रमातिकुमार को चारों ओर से घेर लिया।

सरदार---कुमार! तुम इस रमणी को हमें सौंप दो तो हम तुम्हें जीवित छोड़ सकते हैं। तुम से हमें कुछ भी द्वेष नहीं हैं। हम केवल तुम्हारी इस पत्नी को चाहते हैं। इस अनिन्द्य सुन्दरी को भोगने का तुम्हें अधिकार नहीं है। यह तो हम जैसे शासक को मिलनी चाहिये। अतएव तुम इसे हमें शीघ्र सौंपकर चले जाओ।

प्रमातिकुमार---रे मूर्ख! जवान संभाल कर बोल। तुम्हें ऐसी बाते करते हुए लज्जा नहीं आती है। तुम कायर, बुजदिल और कामी कुत्ते हो। जो परस्त्री को देखकर ललचा जाता है, उसके समान नीच और धूर्त कौन होगा? यदि तुम में शक्ति है तो सामने आकर अपनी शक्ति का परिचय दो। देखें—कौन किसे पराजित करता है।

सरदार---अरे! जब मृत्यु आ जाती है, तब लोगों की अक्ल खराब हो जाती है। मालूम होता है कि होनहार अच्छा नहीं है। तुम्हारे प्राण इस शरीर को छोड़कर जाना चाहते हैं, इसीसे तुम इस प्रकार की बातें करते हो? आयु के बिना कोई किसी को बचा नहीं सकता।

प्रमातिकुमार–अरे धूर्तराज, नीच, कामी! तेरे जैसों को आत्मबल ही नहीं, जो परायी स्त्री को लेना चाहता है, उससे बढ़ कर नीच कौन हो सकता है? अपनी स्त्री में ही सन्तोष रखना एक बड़ी भारी नैतिकता है। अपनी स्त्री के सिवा संसार की अन्य स्त्रियां मां, बहन और बेटी के समान हैं। तुम जैसे पापियों को मार कर ही मुझे शान्ति मिलेगी आओ मैदान में, दोनों की परीक्षा हो जायगी।

इस वार्तालाप के अनन्तर डाकुओं में और प्रमातिकुमार में घमासान युद्ध हुआ। प्रमातिकुमार ने निद्रा वाण के द्वारा सभी डाकुओं को मूर्छित कर दिया। डाकू सरदार जो दूर पर खड़ा यह दृश्य देख रहा था, उसने कहा—तुम क्या समझते हो, मैं इतनी जल्दी पराजित होनेवाला हूं। मैं अभी तुम्हें मौत के घाट उतारता हूं। मेरी वाण विद्या को

है । अतः उपसर्ग दूर होने तक चारों प्रकार के आहार का त्याग कर संन्यास ले लिया ।

क्रोध से फुफकारता हुआ जिनदत्त बोला—अब जल्दी धन निकाल कर दो । अब ज्यादा बातें मैं नहीं सुनना चाहता हूं । मैं तुम्हें काट–काट कर टुकड़े कर दूंगा, अथवा अब सीधे सीधे मेरा धन दे दो । ढौंगीं कहीं का, आया है मुनि बनने । चोरी ही करनी थी तो मुनि क्यों बने ? तुमने तो धर्म को भी लजाया ।

इस प्रकार कहकर उसने किवाड़ बन्द कर लिये । जिनदास अलग बैठा हुआ पिता के कार्यों पर हंस रहा था । वह सोचने लगा कि मेरा पिता कितना बड़ा लोभी है । धन के लोभमें आकर व्यर्थ ही मुनिराज को कष्ट दे रहा है । धन चुराया मैंने है, मुनिराज बेचारे निर्दोष हैं । इस प्रकार कुछ देर विचार करने के उपरान्त उसके मन में धन से ग्लानि उत्पन्न हो गयो । वह पुनः सोचने लगा—

यह धन पाप का घर है । इसके कमाने में भी पाप और रक्षण करने में भी पाप । यह सब प्रकार से नरक ले जाने वाला है । मैंने धन चुरा कर बड़ा पाप किया । चोरी करने से कितना बड़ा अनिष्ट हो रहा है । निर्दोष मुनिराज मेरे कारण कष्ट पा रहे हैं । मैं पापी आनन्द से धन चुरा कर बैठा हूं और मुनिराज को कष्ट सहना पड़ रहा है । मैंने आज तक अपने कार्यों से किसी को भी सुख नहीं दिया है, इतने बड़े त्यागी, साधु के कष्ट का कारण मैं हूं । चोरी करना कितना बुरा काम है, चोर को नरक तो जाना ही पड़ता है, पर राज दण्ड, पंचदण्ड भी भोगना पड़ता है । चोरी करने से कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती । आत्मा सदा व्याकुल होकर छटपटाती रहती है । चोर की आत्मा इतनी पतित हो जाती है जिससे वह हिताहित का विचार करना छोड़ देता है । वास्तव में चोरी करना वहुत बड़ा पाप है । अतएव मुझे इस धन को जल्दी ही पिता के सामने रख देना चाहिये, जिससे पिताजी मुनिराज को उपसर्ग देना बन्द कर दें ।

इस प्रकार ऊहापोह कर जिन दास ने लिया हुआ सभी धन जिनदत्त के सामने रख दिया और यह कहते हुए क्षमा मांगी कि अज्ञानता के कारण चोरी की थी आप इन निर्दोषी मुनिराज को कष्ट न दें ।

इस तरह कहकर जिनदास मुनिराज के चरणों में गिर गया और उनसे भी अपने अपराध की क्षमा मांगी । मुनिराज उपसर्ग दूर हुआ जानकर कहने लगे—

वत्स ! धर्म के समान संसार में कोई भी सुखकारी पदार्थ नहीं है । अचौर्य आत्म का धर्म है । यह जीव अनादि काल से ही इन पाप और कषायों के अधीन होकर संसार में भ्रमण कर रहा है । जीव क्रोध में अन्धा होकर गाली

देता है, भाई बन्धुओं की हत्या कर डालता है, पडोसियों का अहित करता है और न मालूम कितने पापों का करता है। इस प्रकार मानवश अपने को बड़ा और संसार के अन्य प्राणियों को छोटा समझता है। इस जीव ने माया छल कपट करके कितने प्राणियों को ठगा है, कितने प्राणियों को हानि पहुँचायी है; पर इसको तनिक भी सुख नहीं मिला। लोभ-कषाय भी अत्यन्त अहितकारक हैं। संसार के सभी पदार्थों के छोड़ देने पर भी लोभ के कारण यह जीव संसार में पुनः लिप्त हो जाता है। लोभी बड़े से बड़ा पाप करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाता। चोरी करना, लूटना, धन हड़प जाना आदि सभी लोभ के कारण होता है। लोभ के अधीन होकर मनुष्य अपने विवेक को खो देता है। वह बिल्कुल अन्धा बन जाता है। व्यर्थ ही इष्ट, अनिष्ट की कल्पना कर लेता है।

वत्स ! तुमने चोरी छोड़ दी, यह अच्छा किया। संसार में आत्मा का उद्धार करनेवाला धर्म ही है।

जिनदास—स्वामिन् ! मुझे अब संसार से विरक्ति हो रही है। अनादि काल से जन्म,मरण के दुःख सहने के उपरान्त अब मुझे यह व्रत ग्रहण करने का अवसर मिला है। स्वार्थ के सिवा संसार में कुछ नहीं है। मैंने यह अच्छी तरह से समझ लिया है कि व्रत ही इस जीव का कल्याण करने वाले हैं। अतएव मुझे व्रत देने की कृपा करें।

मुनिराज ने जिनदास के आग्रह को स्वीकार कर लिया और उसे श्रावक के व्रत दे दिये।

जिनदास ने कुछ दिनों के उपरान्त दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की और तपस्या कर अचौर्य व्रत के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त किया।

इस प्रकार गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को अचौर्यव्रत की कथा कही—

बारहवी कथा समाप्त

तेरहवीं कथा

अस्तेय व्रत की कथा सुनकर महाराज श्रेणिक गद्गद् हो गये और गौतम गणधर से ब्रह्मचर्य व्रत की कथा सुनने की जिज्ञासा प्रकट की।

मगध सम्राट्—स्वामिन् कथा जानने के पूर्व मैं ब्रह्मचर्य व्रत का स्वरूप और उसका महत्व अवगत करना चाहता हूं। कृपया पहले इस व्रत का स्वरूप बतलाने का कष्ट करें।

गौतम स्वामी—राजन् ! मैथुनरूप परिणामों को अब्रह्म कहते हैं, जबतक आत्मा स्वभाव में रमण करता रहता है, तबतक व्यक्ति ब्रह्मचारी माना जाता है। आत्म स्वभाव से च्युत होना ही कुशील या अब्रह्म है। परन्तु ब्रह्मचर्य की यह परिभाषा मुनिराजों के लिये है। श्रावक स्वदार सन्तोष व्रत का पालन करता है, वह अपनी स्त्री के सिवा संसार की सभी स्त्रीयों को मां, बहिन और पुत्री के समान समझता है, जो श्रावक इस व्रत का पालन करता है, उसकी देव भी पूजा करते हैं। इन्द्र-धरणेन्द्र के द्वारा पूज्य होकर अमरपद को प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्य व्रत में अपूर्व शक्ति होती है, इस व्रत के द्वारा मनुष्य अपनी आत्मशक्ति का विकास करता है, विद्या, मन्त्र और ब्रह्म (आत्मा) भी ब्रह्मचर्य के धारण से ही प्राप्त होते हैं। प्रत्येक श्रावक का परम कर्त्तव्य है कि वह स्वदार सन्तोष व्रत को धारण करे। परस्त्री सेवन या वेश्या सेवन से मनुष्य अपना बड़ा भारी ह्रास करता है। नरक का द्वार तो उसके लिये सदा खुला ही रहता है, पर इस लोक में भी उसे नाना प्रकार की हानियां उठानी पड़ती हैं। भयंकर से भयंकर रोग कुशील सेवन से हो जाते हैं, आयु और जीवन—शक्ति क्षीण हो जाती है, जिससे अकाल मरण हो जाता है।

ब्रह्मचर्य व्रत की महत्ता का वर्णन कौन कर सकता है ? इस व्रत के प्रभाव से एक मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान् बन सकता है, एक दुर्बल व्यक्ति सबल बन सकता है और अल्प शक्ति वाला व्यक्ति महान् से महान् कार्यों को कर सकता है। ध्यान और तपस्या ब्रह्मचर्य के बिना सफल नहीं हो सकती अतएव आध्यात्मिक विकास के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना प्रत्येक नर-नारी के लिये आवश्यक है। जो नर या नारी जितने अधिक समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे उतने ही अधिक अपने लौकिक या पारलौकिक कार्यों में सफल होते हैं।

श्रेणिक—स्वामिन् ! ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से किसे विशेष फल की प्राप्ति हुई और उसे इस व्रत में किस प्रकार ख्याति मिली, आदि बातें समझाने की कृपा करें।

गौतम स्वामी—

वत्सकावती देश में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। इसमें दन्तवल नामका महामण्डलीक राजा शासन करता था, इसकी पट्टरानी धारिणी नाम की महादेवी थी। राजा वैभव में इन्द्र के समान, रूप में कामदेव के समान, धैर्य में पृथ्वी के तुल्य, अर्हन्त भगवान् के चरणों में भ्रमर के समान रत और साधर्मी भाइयों से गौ—वच्छ के समान वात्सल्य करनेवाला था। इस राजा के बड़े पुत्रका नाम प्रमातिकुमार था यह पुत्र भी पिता के समान नीतिवान् और ज्ञानवान् था।

वसन्तराज के आने पर वनपाल ने महाराज को सूचना दी कि आम्रवृक्षों पर मंजर आ गयी, लताएं पुष्पों से परिपूर्ण हो गयीं, कोयलें मधुर तानें छोड़ने लगीं और सारी प्रकृति आनन्द विभोर हो गयी है। महाराज वनक्रीड़ा के लिये चलें।

वनपाल द्वारा वसन्तराज के आगमन की सूचना पाकर महाराज दन्तवल ने बन विहार की तैयारी की, वह सेना को सजाकर सामन्त, राजकुमार आदि के साथ वनक्रीड़ा के लिये चला। वसन्तकालीन आकाश की निर्मलता को देखकर राजा रानी से कहने लगा—प्रिये आकाश कितना निर्मल है, इसका सौन्दर्य अनुपम है। प्रकृति इस समय अपनी अपूर्व छटा दिखला रही है। कुछ दूर और बढ़ने पर कमल परिपूर्ण तालाब को देखकर राजा कहने लगा—ये विकसित कमल ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो जिनेन्द्र के पाद पद्म ही हों। कुछ दूर और चलने पर उसे निर्मल पृथ्वी सम्यग्दृष्टि के चित्त के समान, अशोक वृक्ष सुकवि की मनोहर रचना के समान, चम्पा, चमेली और गुलाब के पुष्प रमणियों के विभिन्न अंगों के समान प्रतीत हुए।

सन्ध्या समय वनक्रीड़ा के पश्चात् राजा ने लता भवन में शयन किया और प्रमातिकुमार ने अपनी पत्नी सौन्दर्य देवी के साथ आम्रवृक्ष के कुंजों में निर्मित लता भवन में विश्राम किया। थोड़ी देर तक सौन्दर्य देवी के साथ राजकुमार वार्तालाप करता रहा। दिन भर की थकावट रहने के कारण सौन्दर्य देवी को निद्रा आ गयी, अतः कुमार उसे मृदुल पुष्प शय्या पर सुलाकर वनका दृश्य देखने के लिये चल दिया। उस समय सामन्त पुत्र वसन्त और उसकी

अभी तुमने देखा नहीं है।

प्रमातिकुमार—धन्य है आपको, और आपकी बाण विद्या को। एक राहगीर की स्त्री को छीनना वीरता है? क्या परस्त्री लम्पट वीर हो सकता है? रावण कितना वीर था; पर परस्त्री की लम्पटता ने उसका सर्वनाश कर दिया। क्या परस्त्री की आकांक्षा करनेवाले को यश मिल सकता है ? वस्तुतः परस्त्री की कुदृष्टि भूखे सिंह के समान है जो व्यक्ति को खा जाती है। जो व्यक्ति परस्त्री में आसक्त रहते हैं उन्हें नाना प्रकार का कष्ट भोगना पड़ता है।

इस प्रकार समझाने पर भी सरदार के मन पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। अतः वह बड़े कौशल के साथ युद्ध करने लगा। प्रमातिकुमार के रथ को उसने वाणों से आच्छादित कर दिया, अग्नि वाण, धूम्रवाण, आदि के द्वारा प्रमातिकुमार को अनेक कष्ट दिये। यद्यपि प्रमातिकुमार ने बड़े ही कौशल से युद्ध किया, परन्तु सरदार की युद्ध विद्या के सामने उसका पराक्रम फीका पड़ गया। जब चन्द्रलेखा ने देखा कि पति की पराजय होने को है, तो उसने सोचा कि मृत्यु के पहले ही मर जाना श्रेष्ठ है। पति के मर जाने पर मैं इस दुष्ट के हाथ में पड़ूंगी और यह मेरे शीलव्रत का अपहरण कर लेगा, जिससे मुझे नरक और तिर्यञ्च गति में अनेक जन्म ग्रहण करने पड़ेंगे। जो स्त्री अपने पति को छोड़ अन्य पुरुष के साथ रमण करती है, वह निश्चय ही शूकरी, बन्दरी, भैंस, जंगली गाय आदि पर्यायों को प्राप्त होती है। प्राचीनकाल में अनेक रमणियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये अपने प्राणों का त्याग किया है।

विपत्ति के आने पर धैर्य रखना तथा अपने धर्म की रक्षा के लिये सब कुछ करने को तैयार रहना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। इस समय यदि मैं घबड़ा जाती हूं तो निश्चय ही मेरा अमूल्य शीलरत्न चला जायगा। अतएव मुझे अपने पति के मरने के पहले अपने प्राणों का त्याग कर देना उत्तम होगा।

इस प्रकार ऊहा-पोह कर चन्द्रलेखा रथ से उतर पड़ी और उस ओर चल पडी जिधर से सरदार के वाण आ रहे थे। जब सरदार ने उस अनुपम देवी की रूपराशि देखी तो वह अपना सब कुछ भूल गया। वाण चलाना छोड़ काम विह्वल उन्मत्त सा हो उसे पकड़ने के लिये दौड़ा, इसी बीच प्रमातिकुमार का एक वाण सरदार के मस्तक में लगा और उसने उसका काम तमाम कर दिया। सरदार के गिरते ही उसके अन्य साथी भाग गये और वह यमपुर चला गया।

पाप का फल तुरंत मिलता है, देर से नहीं। परस्त्री की आसक्ति से बुद्धि नष्ट हो जाती है। मति, गति, धैर्य, दया

आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं। मन, शरीर और आत्मा कलुषित हो जाते हैं, जिससे किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती है।

सम्यक्त्वचूड़ामणि प्रमातिकुमार ने उन डाकुओं की भी मूर्छा दूर कर दी, जिनको पहले सुला दिया था। इस प्रकार वह उस जंगल से आगे बढ़ा।

कौशाम्बी नगरी में आकर प्रमातिकुमार ने बड़े ही कौशल के साथ युद्ध किया। उसके शौर्य-पराक्रम को देखकर शत्रु के छक्के छूट गये। शत्रु सेना तितर-बितर हो भागने लगी। प्रमातिकुमार अकेला ही रणक्षेत्र में सर्वत्र दिखलायी पडता था, उसके सामने ठहरने की शक्ति किसी में नहीं थी। शत्रुपक्ष के सेनापति को उसने बात की बात में गिरफ्तार कर लिया और वह राजा के पास चला आया। अपने मयूर बाण से राजा के छत्र को पृथक कर, उसके रथ की ध्वजा को नीचे कर दिया। राजा घबड़ा गया और रणभूमि छोड़ भाग गया। प्रमातिकुमार को शत्रु सेना के भागने से बहुत माल हाथ लगा।

जब राजा दन्तिबल ने देखा कि कोई एक अपरिचित आकर उनकी ओर से युद्ध कर रहा है तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन ही मन देवी देवताओं की प्रशंसा करने लगे, उनका ख्याल था कि कोई परोक्ष सत्ता ही अथवा उसकी प्रेरणा से कोई राजा हमारी ओर से युद्ध कर रहा है। इस नये वीर की युद्ध शैली इतनी विचित्र और आकर्षक थी कि सभी लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

अकस्मात् पिता पुत्र की आंखें चार हुईं। पिता ने पुत्र को पहचान लिया और उनके हृदय का वात्सल्य उमड़ पड़ा। पुत्र की भी पितृभक्ति उमड़ पडी और वह भी पिता के चरणों में गिर गया। चन्द्रलेखा ने भी ससुर की चरणधूलि सिर पर चढ़ाई। इस तरह आपस में मिलकर सभी लोग खुश हुए। राजा ने पुत्र और पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया कि जैनधर्म की आराधना करते हुए अनन्तकाल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग करो। इस प्रकार प्रमातिकुमार कुटुम्बियों से मिला, शत्रु की पराजय हो जाने के बाद उसने धूमधाम से भगवान की पूजा की।

कुछ समय के पश्चात् दन्तिबल को संसार से विरक्ति हो गयी। उसने अपने पुत्र प्रमातिकुमार को राज्यभार दे दिया। प्रमातिकुमार भी पिता के आदेश के अनुसार पराक्रम पूर्वक राज्य करने लगा। कुछ दिनों के उपरान्त उस नगर में धर्मघोष नामके मुनिराज पधारे। प्रमातिकुमार को जब वनपाल से मुनिराज के आने का समाचार प्राप्त हुआ तो वह बहुत खुश हुआ। उसने वनपाल को खूब पुरस्कार दिया। वह सोचने लगा—मुनिराजों का दर्शन तीव्र पुण्योदय

के होने पर ही होता है। मेरा भाग्य धन्य है जो आज वीतरागी साधु के दर्शन का अवसर मिला। कर्मप्रक्षालन के लिये ऐसे सत् अवसर बहुत कम आते हैं। गुरुओं के समागम से मनुष्य अपने पापों को धो डालता है और अपनी आत्मा का कल्याण कर लेता है। वस्तुतः आज मैं धन्य हो गया। शायद मेरी भलाई इन्हीं के द्वारा होगी।

प्रमातिकुमार महाराज मन्त्रियों, सामन्तों और महाजनों सहित मुनिराज के दर्शन के लिये गया। उसने भक्तिभाव पूर्वक मुनिराज की वन्दना की और उनके चरणों के पास बैठ गया और मुनिराज से बोला—प्रभो ! निर्वाण-पद देनेवाले इस पवित्र जैनधर्म को जानने की मेरी इच्छा है। मैं अपने आत्म-कल्याण के लिये जैनतत्त्वों को जानना चाहता हूं। मेरा यह विश्वास है कि जिनेन्द्र भगवान ही एक सच्चे देव हैं, उनके अनुयायी जैनमुनि ही सच्चे तपस्वी हैं और जिनेन्द्र प्रभु के निर्दोष वचन ही सच्चे शास्त्र हैं। किसी भी जीव का उद्धार सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु की भक्ति करने से ही हो सकता है। संसार के समस्त पाप और कलुषितों से जिनेन्द्र भक्ति ही रक्षा कर सकती है। वे जीव धन्य हैं जो सदा जिन भक्ति में रत हैं। कृपया तत्त्वों के सम्बन्ध में कुछ बतलाने का कष्ट करें।

मुनिराज–वत्स ! वस्तु के भाव का नाम तत्त्व है। वे पदार्थ जिनके बिना संसार का काम बिल्कुल नहीं चल सकता है तथा जिनका सद्भाव सदा बना रहता है, तत्त्व हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध,संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं।

मुनिराज ने इन तत्त्वों का विस्तार सहित निरूपण किया, जिसे सुनकर महाराज प्रमातिकुमार को अपूर्व हर्ष हुआ। श्रावक के नित्यप्रति में किये जाने वाले षट्कर्मों के करने का नियम भी महाराज ने लिया। पश्चात् मुनिराज से परस्त्री लम्पट सुवेग नामक डाकुओं के सरदार की कौनसी गति हुई, यह जानने की इच्छा बताई। प्रमातिकुमार ने सुवेग को उसके दुष्कृत्यों के कारण यमपुर भेजा था,पर उनके मन में उसकी गति जानने की अभिलाषा वर्तमान थी। अवधि-ज्ञानी धर्मघोष मुनिराज प्रमातिकुमार की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये कहने लगे—

जिस सुवेग डाकू सरदार की गति के सम्बन्ध में तुम्हें चिन्ता हुई है, वह परस्त्री लम्पटता के कारण नरक में गया है और वहां पर नाना तरह की वेदनाएं भोग रहा है। प्रथम तो स्त्री में आसक्ति ही मोह का कारण और पापवर्धक है। जब कोई व्यक्ति परस्त्री में आसक्त हो जाता है, तो उसकी विद्या, बुद्धि सब चली जाती है और वह नरक

में महान् दुःखों को भोगता है। यह व्यक्ति चावल छोड़ कर भूसा खाने वाले के समान मूर्ख, हाथी छोड़ गधे पर सवारी करने वाले के समान निर्बुद्धि, केला छोड़ केला के पत्ता खाने वाले के समान अविवेकी, और गन्ना छोड़ गन्ने की जड़ खाने वाले के समान बुद्धिभ्रष्ट होता है। ऐसा व्यक्ति अपना और पर का कुछ भी भला नहीं कर सकता, बल्कि संसार में निरन्तर पापार्जन करता हुआ अपने भव–जाल को बढ़ाता रहता है।

जैसे सिंह को देखकर हाथी, सांप को देखकर मेढ़क, गरुड़ को देखकर सांप भयभीत हो जाता है, उसी प्रकार परस्त्री सेवन की भावना से भयभीत होना चाहिये। जो व्यक्ति सदा पाप से भयभीत रहता है, वह निश्चय ही कुशील सेवन से बच जाता है। जो परस्त्री में माता, बहन और पुत्री की भावना रखता है, वह वस्तुतः संसार में कल्याण कर लेता है। परनारी की दृष्टि को कालकूट के समान, उसके केशों को सर्प के समान, उसके मस्तक पर लगी मणियों को सर्पफण के समान, उसकी नाक को बाघ की मूंछ के समान, मुंह को सिंहनी के मुंह के समान, जीभ को तलवार के समान, आंखों को मृत्यु के समान, पावों को शूल के समान, और उसके सौन्दर्य को राक्षसी के समान समझने वाले व्यक्ति संसार से अपना कल्याण कर लेते हैं।

परस्त्री वह काली नागिनी है, जिसका विष जन्म जन्मान्तर तक जाता है। जो एक बार इस पाप पंक में फंस जाता है वह अपना बड़ा भारी अपकार करता है। इस पाप के गड्ढे से निकलना बहुत ही कठिन है।

परस्त्री सेवन करने वाले को राजदण्ड, पंचदण्ड भी भोगना पड़ता है। इस भूमि पर साक्षात् नरक परस्त्री सेवन है, इससे मनुष्य की सारी शक्तियां कुंठित हो जाती हैं, वह जीवन में अपने हित मार्ग से बहुत दूर चला जाता है। बात की बात में जीवन भर की साधना, तपस्या और प्रभुता परस्त्री सेवन से नष्ट हो जाती है। जो मूर्खतावश सुख समझते हैं, वे गलत मार्ग पर हैं। शास्त्रकारों ने इसी कारण परनारी को पैनी छुरी कहा है, जैसे तेज छुरी पेट को फाड़कर प्राणान्त कर देती है, उसी प्रकार परनारी सेवन से पुण्य का छेदन हो जाता है और पाप की वृद्धि होती है। उपदेश से प्रभावित होकर उसने मुनिराज से पंचाणुव्रत लिये। इसके आगे भी मुनिराज ने ब्रह्मचर्याणुव्रत की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए परस्त्री सेवन के दोष बतलाये।

इस प्रकार परस्त्री सेवन की बुराइयों पर मुनिराज ने पर्याप्त प्रकाश डाला। प्रमातिकुमार मुनिराज का उप-

देश सुन बहुत प्रसन्न हुआ और उनके चरणों में नमोऽस्तु कर नगर को लौट गया ।

बहुत समय तक राज्य करने के उपरान्त प्रमातिकुमार को एक दिन अपने श्वेत केश देखने से अनुभव हुआ कि अब मेरी मृत्यु निकट है । मृत्यु के दूत आ चुके हैं, अतः अब आत्म कल्याण में प्रवृत्त होना चाहिये । जो जीवन को सदा स्थिर समझता है, वह बड़ा भारी अज्ञानी है । सांसारिक वैभवों को नित्य समझना सबसे बड़ी मूर्खता है । जन्म-मरण, सुख-दुख में धर्म को नहीं भूलना चाहिये । धर्म ही समस्त सुखों की जड़ है, जो इस को भूल जाता है वह अपना कभी भी उद्धार नहीं कर सकता है ।

संसार में केवल एक ही बात निश्चित है, वह है मरण । इस अटल सत्य को समझकर भी मोही प्राणी अपना जीवन यों ही बिता देता है । सद्धर्म का चिन्तन नहीं करता; मोहावेश में पर पदार्थ ही अच्छे मालूम होते हैं, अतः इन्हीं में लगकर अपने जीवन को खो देता है । संसार में अपने से भिन्न एक अणु भी अपना कल्याण करनेवाला नहीं है । यहां की कोई भी वस्तु मरने के बाद साथ नहीं जायगी, यहीं पर पड़ी रह जायगी । अपने राग के कारण जीव इन्हें अपना समझ रहा है । स्त्री, पुत्र, धन, दौलत आदि राग से ही अपने प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में ये बिल्कुल भिन्न हैं । अतएव हमें क्षणभंगुर संसार में इस नर भव को यों ही नहीं खोना चाहिये । बड़ी कठिनाई से यह मनुष्य पर्याय मिली है, अतएव आत्म कल्याण में लगना बहुत आवश्यक है ।

इस प्रकार विचार-विनिमय कर अपने बड़े पुत्र विमलकीर्त्ति को बुलाकर राज्याभिषेक किया और स्वयं राज-पाट छोड़ दिगम्बर दीक्षा ली ।

सच ही है, इस जीव के लिये दिगम्बर दीक्षा के समान अन्य कुछ उपकारी नहीं है । यही संसार के दुखों से छुड़ाकर शाश्वत सुखों को प्रदान कराती है । दुर्द्धर तपस्या करने के उपरान्त मरण समय प्रमातिकुमार ने संन्यास मरण लिया और समाधि पूर्वक प्राणों का त्याग किया, जिससे पन्द्रवें स्वर्ग में जाकर कीर्त्तिधर नामक महर्द्धि देव हुआ ।

परस्त्री में आसक्त होने वाले नीच गति को पाते हैं, पर जिन्होंने धर्म का स्वरूप समझ कर परवनिता से विरक्ति पा ली है और जो जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रतिपादित धर्म का पालन करते हैं, वे निवृत्तिमार्ग के पथिक बन निर्वाण प्राप्त करते हैं। इस जीव का सच्चा पुरुषार्थ निर्वाण प्राप्त करने में ही है।

इस प्रकार मगध सम्राट् श्रेणिक गौतम गणधर से ब्रह्मचर्य व्रत की कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

तेरहवीं कथा समाप्त

चौदहवीं कथा

सज्जनों के द्वारा वन्दनीय, ब्रह्मचर्याणुव्रत के धारी, दयालु राजा श्रेणिक ने ब्रह्मचर्यव्रत की कथा जानने के पश्चात् अपरिग्रह व्रत की कथा जानने की इच्छा प्रकट की। वह गौतम स्वामी से बोला—प्रभो ! अपरिग्रह व्रत किसे कहते हैं ? इस व्रत का पालन न करना क्यों पाप का कारण है ? इस व्रत के पालन करने से आत्मा पवित्र कैसे होती है।

गौतमस्वामी—राजन् ! किसी भी वस्तु में मूर्छा रखना परिग्रह है, इस मूर्छा का त्याग करना अपरिग्रह है। धन, धान्य, राज, वैभव, स्त्री पुत्र आदि सभी पदार्थ परिग्रह हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद; पुरुषवेद, और नपुंसकवेद भी परिग्रह हैं। जो व्यक्ति इस परिग्रह का त्याग करता है, वही अपरिग्रह व्रत को पालता है।

ममत्व बुद्धि को परिग्रह इस लिये माना गया है कि वाह्य परिग्रह के न रहने पर भी, ममत्व के रहने से व्यक्ति परिग्रह का संचय कर लेता है। अतः मूर्छा ही वस्तुतः परिग्रह है, जो इसका त्यागी है वही अपरिग्रही है। श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार धन, धान्य, गाय, घोड़े, महल, मकान आदि का परिमाण करता है तथा लोभ कषाय को घटाने के लिये मूर्छा को भी धीरे-धीरे घटाता है।

समस्त पापों की जड़ यह परिग्रह है। इसलिये इसे सर्वदोषानुषङ्ग कहा गया है। अपने और दूसरे के जीवन को सुखी बनाने के लिये अपरिग्रह व्रत का पालना आवश्यक है। इसके पालने से ही संसार में शान्ति स्थापित की जा सकती है।

श्रेणिक—स्वामिन् ! इस अपरिग्रह व्रत का पालन करने में कौन प्रसिद्ध हुआ है और किसे फल की प्राप्ति हुई है। कृपया इस व्रत के पालन करनेवाले का आख्यान कहें—

गौतम स्वामी—

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुरुजांगल नाम का देश है, इस में अवन्ति नाम की नगरी है। इस नगरी का राजा अनुपरिचर नाम का था। इसकी पट्टरानियों के नाम पद्मावती, प्रभावती, सुप्रभा, कनकप्रभा थे। इन में पट्टरानी पद्मावती का अग्रस्थान था, इसके पुत्र का नाम अनन्तवीर्य था। अन्य रानियों से भी पुत्र उत्पन्न हुए थे। यह राजा अत्यन्त

प्रभावशाली था, कई माण्डलिक राजा इसे नमस्कार करते थे। इसकी सभा में सदा नाच गान होता रहता था।

एक दिन वनमाली ने आकर वसन्त ऋतु के आगमन की सूचना दी। राजा ने वसन्त आगमन जानकर वन
विहार करने का विचार किया और तदनुसार उसने प्रयाण वाद्य बजाया, जिसे सुनकर सभी शूरवीर और सामन्त चल
पड़े। राजकुमार और रानियां भी मदोन्मत्त हाथियों पर सवार होकर चल पड़ी। सेना आगे-आगे अनेक अस्त्र-शस्त्रों
से सज्जित हो चलने लगी।

वन के सौन्दर्य को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और लता निकुंजों में जाकर उसने विश्राम किया। पश्चात्
रत्न और मणियों से निर्मित घाटों और सोपानों वाले रंग-विरंगे जल से युक्त तालाब में जलक्रीड़ा के लिये राजा ने
रानियों सहित प्रवेश किया। तालाब का जल कुंकुम, केसर, कस्तूरी, कर्पूर आदि से सुगन्धित किया गया था। उसके
घाटों पर मणियों के चौक पूरे गये थे, सोपानों पर सुगन्धित पुष्प बिछाये गये थे। राजा अपनी पट्टमहिषियों के साथ
जलक्रीड़ा में मग्न था।

इसी बीच विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीस्थ अलकापुरी का निवासी वज्रदाढ़ नाम का विद्याधर अपनी
स्त्री मदनवेगा के साथ आकाश मार्ग से आ रहा था। मदनवेगा की दृष्टि जब तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए अनुपरिचर
राजा पर पड़ी तो वह कहने लगी—

हमलोग पक्षी के समान सदा आकाश में घूमते रहते हैं। देखिये यह राजा कितना सुखी है, अपने समस्त
परिवार के साथ आनन्द पूर्वक जल विहार कर रहा है। हम लोग केवल नाम के लिये विद्याधर हैं पर वास्तव में हमारे
जीवन में सुख तनिक भी नहीं है। हम से अधिक सुखी तो यह राजा है, इसने किस प्रकार का सुन्दर तालाब बनवाया
है, इस तालाब का जल भी कितना सुगन्धित और स्वच्छ है। वास्तव में यह धन्य है, मनुष्य जीवन के लौकिक सुखों
को यह भोग रहा है।

वज्रदाढ़ को अनुपरिचर राजा की यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी, अतः वह अपनी स्त्री को अलकापुरी में छोड़-
कर पुनः वहां पर आया और एक बड़ी सी शिला लेकर उस तालाब को ढक दिया। राजा और रानियां उसी तालाव के
भीतर रह गये। यद्यपि उन्होंने बाहर निकलने का पूरा प्रयत्न किया, पर वे अपने प्रयत्न में सफल न हो सके। रानियों

ने राजा से कहा—देव ! अब दुःख करने से कुछ नहीं होने का है, पूर्व जन्म कृतकर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। अशुभोदय किसी को नहीं छोड़ता, अब शान्तिपूर्वक आयी हुई विपत्ति को सहना चाहिये। घबड़ाने या विलाप करने से कुछ होने का नहीं है। स्त्री, पुत्र, धन, दौलत सब यहीं पर रहने वाली वस्तुएं हैं, इनसे मोह करना व्यर्थ है। समय पड़ने पर कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता है, चिन्ता, दुःख और ग्लानि करने से कुछ भी हाथ आने का नहीं। इस जीव ने पूर्वजन्म में जैसे शुभाशुभ कृत्य किये हैं, उनका फल इसे भोगना पड़ेगा। अब मृत्यु से यहां कोई नहीं बचा सकता है, अतः भगवान् जिनेन्द्र के चरणों का ध्यान कीजिये ! वीर वही है, जो मृत्यु का वीरता पूर्वक आलिंगन करे और तनिक भी विचलित न हो।

देव ! अब परिग्रह का मोह छोड़कर, संन्यास मरण धारण करना चाहिये। यह संन्यास मरण ही आत्मा का सच्चा कल्याण करनेवाला है, इसी के द्वारा मनुष्य अपना सच्चा उपकार कर सकता है। मरते समय जो व्यक्ति मोह करता है, वह अपना बड़ा भारी अहित कर लेता है अतएव अब धन, धान्य, वैभव आदि का त्यागकर आत्म कल्याण में लगना चाहिये। महाराज ! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के समान अपनी गति को विगाड़िये मत। परिग्रह का मोह बड़ा ही अहितकर होता है, आचार्यों ने परिग्रह के मोह को समस्त पाप की खान माना है। कोई भी जीव परिग्रह का त्याग किये बिना अपना सच्चा हित साधन नहीं कर सकता।

मोही राजा ने धन, धान्य, वैभव, राज्य, परिवार आदि में आसक्त चित्त हो मरण किया। लाखों तरह से समझाये जाने पर भी राजा का मोह नहीं छूटा, आर्त्त ध्यान में लीन रहा। स्त्री पुत्रों का नाम ले-लेकर विलाप करते हुए उसने मृत्यु प्राप्त की, जिससे वह उसी उद्यान में अजगर हुआ।

रानियों ने समस्त परिग्रह त्याग कर संन्यास मरण धारण किया, जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु प्राप्त कर आनन्द, कान्त, सुकान्त और अमितकान्त नाम की देव हुईं।

जब राजकुमारों और सामन्तों को रानियों सहित अनुपरिचर महाराज की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ तो वे सभी दुःख में संलग्न हो गये। तालाब पर रखे गये पत्थर को देखकर वे कहने लगे कि यह कार्य किसी व्यन्तर या विद्याधर का है। पूर्वजन्म के बैर के कारण ही ऐसा किया गया है। राजा और रानियों के गुणों का स्मरण कर सभी लोग विलाप करने लगे और नाना प्रकार से दुःख प्रकट करते हुए चिन्तित हुए। अनन्तवीर्य ने सभी को समझाया और

कर्म की विचित्रता का स्वरूप बतलाते हुए धैर्य प्रदान किया।

शुभ मुहूर्त में अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक कर दिया गया और सारे कार्य पूर्ववत् चलने लगे। एक दिन इस नगर में अवधिज्ञानी सारस्वत नाम के आचार्य संघ सहित पधारे। वे श्रावन्ति के उद्यान में एक मनोहर शिला पर आसीन होकर तपस्या करने लगे।

अनन्तवीर्य मुनिसंघ का समाचार पाकर पुरजन, परिजन सहित मुनिराज की वन्दना के लिये गया और निकट पहुँच कर तीन प्रदक्षिणा दीं और अष्ट द्रव्यों से पूजा की। पश्चात् शेषाक्षत मस्तक पर चढ़ाकर सामन्तों सहित मुनिराज का उपदेश सुनने लगा।

धर्मोपदेश श्रवण करने के अनन्तर उसने हाथ जोड़कर मुनिराज से पूछा—प्रभो ! मेरे माता पिता का मरण कैसे हुआ ? उनके ऊपर बृहद्शिला किसने रखी ?

अवधिज्ञान द्वारा समस्त बातों को ज्ञातकर मुनिराज बोले—वत्स ! वज्रदाढ़ नामका विद्याधर अपनी पत्नी मदनवेगा सहित भ्रमण करता हुआ वहां आया। अपनी स्त्री द्वारा की गयी राजा की प्रशंसा उसे अच्छी न लगी और उसे अलकापुरी में छोड़, पुनः आकर एक बृहद् शिलाखण्ड को उनके ऊपर छोड़ दिया, जिससे राजा अनुपरिचर की रानियों सहित मृत्यु हो गयी।

अनन्तवीर्य—स्वामिन् ! आपने मृत्यु तो वतला दी, अब कृपाकर यह और बतलाने का कष्ट करें कि उनकी गति कैसी हुई है।

मुनिराज—तुम्हारी माताओं ने समस्त वस्तुओं से ममत्व छोड़ संन्यास मरण धारण किया था, जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में देव हुई हैं। महाराज अनुपरिचर को अन्त समय में भी सभी वस्तुओं का मोह लगा रह गया, जिससे वह उसी बाटिका में अजगर पर्याय को प्राप्त हुए हैं।

अनन्तवीर्य माताओं की सद्गति और पिता की कुगति ज्ञातकर आश्चर्य में डूब गया। उसने विचारा कि यह जीव अपने परिणामों के अनुसार ही सद्गति या दुर्गति को प्राप्त करता है। अतः वह मुनिराज से हाथ जोड़कर कहने

लगा—प्रभो ! आप थोड़ा कष्ट कर मेरे पिता को ऐसा उपदेश दें जिससे वह इस तिर्यंच गति को छोड़ अपना आत्म कल्याण कर सकें।

मुनिराज—वत्स ! अभी उपदेश देने से आपके पिता के जीव सर्प को जातिस्मरण हो सकता है तथा जातिस्मरण होते ही स्वर्ग से रानियों के जीव भी वहां आ जायंगे और उन्हें सम्यक् उपदेश देंगे, जिससे वह परिग्रह से होनेवाली हानियों को समझ जायंगे और संसार से ममत्व छोड़ अपना आत्म कल्याण करेंगे। हमारे उपदेश की अपेक्षा तुम्हारे ही समझाने से उनका कल्याण हो सकता है। जैनधर्म ऐसा अमृत है कि इसका कोई किसी भी अवस्था में सेवन करे, लाभ ही लाभ है। यह धर्म सभी जीवों का कल्याण करनेवाला है।

अनन्तवीर्य मुनिराज को नमस्कार कर अपने पिता के जीव अजगर के पास आया और उसे नमस्कार कर कहने लगा–स्त्री होकर आपकी रानियों ने परिग्रह छोड़ने के कारण देव पद को प्राप्त किया है। सांसारिक पदार्थों की वांछा तथा परिग्रह की लालसा बड़ी हानिकारक है। आपने पुरुष पर्याय प्राप्त कर शूर–वीरता के अनेक कार्य किये, किन्तु मरण समय धन, धान्य से मोह लगा रहा जिससे आपको यह नीच पर्याय प्राप्त हुई धर्मधारण कर भी जो व्यक्ति अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह में लीन रहेगा, वह निश्चय ही अपनी गति को बिगाड़ लेगा। आप वैभवशाली राजा थे, बड़े–बड़े शूर वीर और सामन्त आपका सम्मान करते थे, क्या अपनी यह दशा आपको खटकती नहीं है? देव ! मोह बहुत बुरी वस्तु है, जो मूर्छा करने लगता है, अपने परिणामों को आर्त्त–रौद्र रखता है, वह निश्चय ही कुगति को प्राप्त होता है। वहां आप पहले दिव्य अंगनाओं के बीच शोभित होते थे, कहां अब आप पापोदय के कारण हलाहल को लिये घूम रहे हैं।

श्रेष्ठ चावल, दूध, घृत, मिश्री आदि भक्षण करनेवाले अब आप मेढ़क भक्षण कर अपना उदर पोषण कर रहे हैं। मृदु शय्या पर अंगनाओं के साथ विलास करनेवाले आप कंकरीली भूमि पर शयन कर रहे हैं। अब भी आपको कल्याण करने का अवसर है, आप सचेत हो जाइये। शरीर, धन, वैभव आदि से मोह छोड़कर अपने स्वरूप का चिन्तन कीजिये। विषयाकांक्षाएं विष के समान इस जीव को कष्ट देनेवाली हैं।

अनन्तवीर्य के इस उपदेश को सुनकर अजगर को जाति स्मरण हो आया। रानियां भी अवधिज्ञान से अपने

पति की गति को अवगत कर उसे समझाने के लिये वहां आयीं और उपदेश देने लगी—

सर्पराज ! आप अपने ऊपर विचार कीजिये। विषयों की आसक्ति के कारण ही आपकी यह अवस्था हुई है। दुःख है कि आप अब भी विषयासक्ति को नहीं छोड़ रहे हैं, स्त्री में आपकी आसक्ति इस समय भी पूर्ववत् वर्तमान हैं। यदि आप इस गति के दुःखों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण करो, उनकी भक्ति ही इस जीव को दुर्गति से छुड़ानेवाली है। आप स्वयं विचार करें, हमलोगों ने वीरता पूर्वक संन्यास मरण धारण किया, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम देवगति को प्राप्त करना है। आप मोह में पड़कर वैभव में आसक्त रहे जिससे यह अजगर की पर्याय प्राप्त हुई।

इस प्रकार देव समझाकर वहां से चले गये। अनन्तवीर्य भी उसे सम्बोधन देकर चला आया और मुनिराज के पास आकर सारा वृत्तान्त कहा।

मुनिराज—अनन्तवीर्य वत्स ! सर्पराज की आयु अब केवल १५ दिन की है।

अनन्तवीर्य–प्रभो ! आप एक बार ससंघ उनके उपकार के लिये अवश्य चलें। आपके वहां पहुँचने से अवश्य ही उनका कल्याण होगा।

अनन्तवीर्य के आग्रह को स्वीकार कर मुनिराज अजगर के पास गये और बोले—सर्पराज ! अब तुम्हारी आयु १५ दिन की शेष है, अतः मोक्ष लक्ष्मी को देनेवाले व्रतों को स्वीकार करो। इस प्रकार समझाकर उसे व्रत दे दिये। मुनिराज १५ दिन तक निरन्तर उस अजगर को उपदेश देते रहे और अन्त समय निकट आया हुआ जानकर बोले—तुम्हारी आयु समाप्त हो रही है, अब शरीर से मोह छोड़कर आत्म कल्याण में प्रवृत्त होना चाहिये। भेद विज्ञान द्वारा अनेक भावों में संचित पाप इसी भव में समाप्त करने का उद्यम करना श्रेष्ठ होगा। अब संन्यासमरण धारण करना परम आवश्यक है।

मुनिराज ने संसार की क्षणभंगुरता, वैभवों की अस्थिरता का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया, तथा संन्यास-मरण धारण करने पर बहुत जोर दिया।

समाधिमरण का महत्व बतलाते हुए मुनिराज कहने लगे–एक भव में ही समाधिधारण करने से जीव अपना

कल्याण कर लेता है। समाधिमरण से आठभव के पश्चात् अवश्य निर्वाण सुख मिलता है। वस्तुतः रत्नत्रय के समान इस जीव की भलाई करनेवाला अन्य कोई नहीं है। यही संसार से श्रान्त जीवों को सुख और शान्ति देने वाला धर्म है, जो इस धर्म को भूल जाते हैं, वे अनन्तकाल तक संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

इस प्रकार १५ दिनों तक धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् उस अजगर ने प्राण त्याग किये, किन्तु वज्रदाढ़ से बदला लेने की भावना उसके मन में शेष थी, इसलिये वह तीन पल्य की आयु प्राप्त कर भवनवासी देव हुआ।

अनन्तवीर्य ने पुनः मुनिराज से पूछा—स्वामिन् ! अब मेरे पिता की कौन सी गति हुई है ? मुनिराज–वत्स ! बदले की भावना शेष रह जाने से उन्हें भवनवासी देवों में जन्म लेना पड़ा है। परिग्रह कितना बड़ा पाप है, रानियों ने इसके त्याग से देव गति प्राप्त की पर राजा को दो भव यों ही खोने पड़ रहे हैं। वास्तव में मोह बहुत बड़ा पाप है, इसका प्रक्षालन जल्द नहीं हो सकता है

मुनिराज के इन वचनों का अनन्तवीर्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। उसे संसार से विरक्ति हो गयी, अतः उसने अपने बड़े पुत्र स्वभाव कुमार को बुलाकर राजतिलक दिया और स्वयं अपरिग्रही बन तपस्या करने लगा। सम्मेद-शिखर पर जाकर कर्मक्षय कर निर्वाण लाभ किया।

अनुपरिचर राजा के जीव विमलदेव नामक भवनवासी ने जब वज्रदाढ़ विद्याधर को देखा तो क्रोधाभिभूत हो उसकी समस्त विद्याओं को छीन लिया तथा विद्याधर और उसकी पत्नी को समुद्र में डाल दिया। भवनवासी देव ने उन्हें समुद्र में डाल कर कहा कि खूब पानी पियो और अपनी करनी का फल भोगो। तुमने मुझे चार पट्टरानियों के साथ तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए शिलाखण्ड से ढक कर मारा था, इसी का बदला मैंने चुकाया है।

विद्याधर आर्तध्यान से मरण को प्राप्त हुआ, जिससे वह प्रथम नरक में गया। इधर कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नाम के नगर में जयदत्त नाम का राजा शासन करता था, उसकी रानी का नाम विजया देवी था। इनको कोई सन्तान नहीं थी। दम्पत्ति ने गुरुदत्त मुनिराज के सामने नमस्कार कर कहा—प्रभो ! हमारे किस पाप का उदय है जिससे कुल बढ़ाने वाली सन्तति हमें नहीं प्राप्त हुई है। क्या कभी हमें सन्तान होगी, या बिना सन्तान के यह राज्य यों ही नष्ट हो जायगा।

गुरुदत्त मुनिराज—वत्स ! धैर्य रक्खो घवड़ाने की आवश्यकता नहीं है। आपको जैनधर्म को बढ़ानेवाला, निर्मल चरित्र का धारी धर्मात्मा पुत्र होगा।

कुछ दिनों के उपरान्त अनुपरिचर राजा का जीव विमलदेव चय कर विजयादेवी के गर्भ में आ गया। समय पाकर रा ी के एक सुन्दर पुत्र हुआ, जिसका नाम गुरुदत्त रखा गया। क्योंकि यह पुत्र गुरुदत्त महाराज के आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ था, अतः उन्हीं के नाम पर इसका नामकरण हुआ। यह शिशु आरम्भ से ही होनहार, विवेकी, समझदार और प्रतिभाशाली था। इसने थोड़े ही समय में समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था।

जब गुरुदत्त राज्य भार ग्रहण करने के लायक हो गया तो पिता ने पुत्र को समस्त शासनभार सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो सुधर्माचार्य के पास गया। मुनिराज के उपदेश श्रवण करने के उपरान्त राजा ने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की और दुर्द्धर तपस्या करने लगा।

गुरुदत्त भी पिता के द्वारा दिये गये राज्यशासन को बहुत ही सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से चलाने लगा, उसने राज्य की वृद्धि की, प्रजा की सुख सुविधा के लिये अनेक प्रयत्न किये। प्रजा इस नये महाराज से बहुत ही प्रसन्न थी। उसकी दिन दूनी और रात चोगुनी उन्नति होती जा रही थी। महामाण्डलिक और माण्डलिक राजा उसे नमस्कार करने लगे थे।

एक दिन गुरुदत्त महाराज ने चम्पापुर के राजा धरित्रीवाहन की पुत्री अभयमती को मांगने के लिये दूत भेजा, पर धरित्रीवाहन ने कन्या देने से इन्कार कर दिया जिससे गुरुदत्त ने चम्पापुरी पर आक्रमण किया और चारों ओर से घेर लिया। जब अभयमती को यह समाचार मिला कि कोई राजा उसका हरण करना चाहता है, तो उसे बहुत चिन्ता हुई; क्योंकि उसने अपने मन में गुरुदत्त महाराज से ही विवाह करने का निश्चय किया था।

जब अभयमती को दासियों द्वारा यह समाचार मिला कि महाराज गुरुदत्त ही स्वयं सेना लेकर आये हैं और धरित्रीवाहन विवाह करने से आनाकानी कर रहा हैं, इसीसे उन्होंने आक्रमण किया है तो वह स्वयं पिता के पास गयी और अपना निश्चय उन्हें सुना दिया। उसने कहा—पिताजी ! मैं अपना विवाह गुरुदत्त के सिवा अन्य किसी से नहीं कर सकती हूं। इस भव के मेरे पति गुरुदेव महाराज ही हैं। आप मुझे उनसे विवाह करने की स्वीकृति दें।

कन्या की इच्छा अवगत कर महाराज धरित्रीवाहन ने गुरुदत्त के साथ विवाह करने की स्वीकृति दे दी। अभयमती ने प्रसन्न होकर गुरुदत्त के साथ विवाह कर लिया, गुरुदत्त भी विवाह कर हस्तिनापुर लौट आया और पूर्ववत् राज्य शासन करने लगा।

नरक से निकल कर बज्रदाढ़ का जीव नीलगिरि पर्वत पर व्याघ्र हुआ वह आस-पास के गांवों में उपद्रव करने लगा, जिससे प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गयी। लोग भयभीत हो गुरुदत्त महाराज के पास आये। महाराज गुरुदत्त ने जिस गुफा में वह व्याघ्र रहता था, लकड़ियां भरवा कर आग लगवा दी, जिसके वह आर्त्त रौद्र परिणामों के साथ मरण को प्राप्त हुआ। यह सौराष्ट्र देश में द्रोणमत नामक पर्वत के नीचे पल्लीखेट नामक गांव में आभरण नामक ब्राह्मण का हलमुख नामक पुत्र हुआ। हलमुख भी क्रमशः बड़ा होने लगा।

एकदिन हस्तिनापुर में अमितास्रव नाम के मुनिराज आये। राजा गुरुदत्त ने उन्हें नमोऽस्तु कर अपने पूर्व भवों को जानने की अभिलाषा प्रकट की। मुनिराज द्वारा अपने चार भवों का वृत्तान्त ज्ञात कर गुरुदत्त महाराज को अभयमती के भवों को जानने की उत्कंठा उत्पन्न हुई और उसके भव बतलाने की प्रार्थना मुनिराज से की। दयालु मुनिराज अभयमती की भावावली कहने लगे—

चम्पापुर नगर में गरुडवेग नाम का किरात रहता था, उसकी स्त्री का नाम गोमुखी था। एक दिन गोमुखी चतुर्विध संघ सहित आये समाधिगुप्त नाम के मुनिराज के पास धर्मोपदेश सुन रही थी। उपदेश श्रवण करने के उपरान्त सभी लोगों ने व्रत नियम ग्रहण किये। श्रावकों को व्रत लेते देखकर गोमुखी ने भी अणुव्रत लिये। इसका पति प्रतिदिन कबूतर पकड़कर लाता था, पर वह उसको छोड़ देती थी, जिससे वह नाराज होकर प्रतिदिन पीटता था। एक दिन क्रोध में आकर गरुडवेग ने गोमुखी को घर से निकाल दिया। वह घर से निकलकर अपने एक कुटुम्बी के यहां रहने लगी। मरते समय उसने धरित्रीवाहन राजा का ऐश्वर्य प्राप्त करने की अभिलाषा की, जिससे यही उनकी पुत्री हुई।

अभयमती व्रतों के फल को अवगत कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और सोचने लगी कि व्रतों के सिवा अन्य कोई संसार में रक्षक नहीं है, धर्म ही इस जीव को लोक-परलोक के दुखों से मुक्ति दे सकता है। अब तक भोगों में आसक्त रहकर हमने अपने जीवन को कौड़ी के मोल बेचा है, पर अब आत्मकल्याण करने लिये तैयार हो जाना चाहिये। यह जीव व्यसनों में फंसकर अपना अहित करता है, सच्चे धर्म को वबड़ा कर छोड़ देता है, जिससे इसे आत्मिक तुष्टि नहीं

होती है, अब अवश्य ही हमलोगों को आत्मकल्याण में लगना चाहिये, इस प्रकार निश्चय कर महाराज गुरुदत्त और अभयमती रानी को संसार से विरक्ति हो गयी । उन्हें संसार के वैभव काटने लगे ।

महाराज गुरुदत्त ने अपने पुत्र श्रीदत्त को बुलाया और उन्हें सारी बातें समझा कर राज्यतिलक दे दिया तथा अमितास्त्रव नामक आचार्य के पास आकर दीक्षा ग्रहण की । थोड़े दिनों में द्वादशांग श्रुतज्ञान का धारी होकर गुरुसेवा करता और पश्चात् गुरू आज्ञा से एकाकी विहार करने लगा ।

अभयमतती ने इन्हीं आचार्य की शिष्या सुब्रता नामक आर्यिका से व्रत ग्रहण किये । राजा और रानी तपस्या करने लगे । अभयमती की आयु थोड़ी थी, अतः उसने अपनी मृत्यु निकट जान समाधिमरण धारण कर लिया । मरते समय उसके परिणामों में पर्याप्त शान्ति थी, जिससे वह कापिष्ठ स्वर्ग में मितकान्त नामक देव हुई ।

गुरुदत्त आचार्य विहार करते पल्लीखेट नाम गांव के जंगल में आये और सन्ध्या हो जाने से प्रातः काल होने तक वहीं रात्रियोग धारण किया । प्रातःकाल हलमुख ने गुरुदत्त मुनिराज को देखा । वह अपने खेत में हल जोतने जा रहा था तथा इसी खेत में अपनी स्त्री को भोजन लाने को घर कह आया था । पर यहां खेत में पानी भरा हुआ है, जिससे हल चलाना बहुत ही कठिन है, अतः वह मुनिराज से कहने लगा—

रे साधु ! जब मेरी स्त्री यहां भोजन लेकर आवे, तू कह देना कि पश्चिम के खेत में हल जोतने गया है, वहीं पर भोजन दे आवे । देरी नहीं करे, और देखिये भूल मत जाना, अन्यथा मुझे भूखा रहना पड़ेगा । हल कभी भी सूखे रहकर नहीं जोता जा सकता है ।

स्त्री जब दोपहर को रोटियां लेकर आयी और खेत में हलमुख को न पाया तो बहुत नाराज हुई और गालियां देती हुई घर लौट आयी । इधर पश्चिम वाले खेत पर जब सन्ध्या समय तक भी भोजन नहीं आया तो हलमुख को बड़ा कष्ट हुआ और क्रोध में पागल होकर घर आया तथा स्त्री को खूब पीटने लगा ।

आप खेत पर थे कहां, मैं तो घंटों वहां बैठ-बैठ कर आयी हूं, मेरी क्या गलती है, उसकी स्त्री ने कहा ।

मैं पश्चिम के खेत में काम करने जा रहा हूं, यह बात तुमसे किसी आदमी ने नहीं कही । मैं उस साधु से कह आया था, बड़ा मक्कार निकला । अच्छा अब उसकी मरम्मत करता हूं, क्रोध में बड़बड़ाते हुए हलमुख ने कहा—

वह मुनिराज के पास गया और उनको पकड़ कर ले आया। उनके शरीर से, तेल में भिगोकर कपड़ा लपेट दिया और आग लगा दी। क्षमावान् मुनिराज उपसर्ग आया जानकर ध्यान में लीन हो गये। उन्होंने समस्त विकारों का त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। ध्यान के बल से कर्म शृंखला टूटने लगी, अनादिकालीन कर्म जल-जलकर भस्म होने लगे। मुनिराज सोचने लगे—क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है, इससे किसी की भलाई नहीं हो सकती है। क्षमा के बराबर आत्मा का हित करनेवाला अन्य कुछ भी नहीं है। अनन्तर शुक्ल ध्यान द्वारा क्षपक श्रेणी का आरोहण किया और घातिया कर्म नाशकर कैवल्य प्राप्त कर लिया चारों निकाय के देव आकर उनकी स्तुति करने लगे—

जय दिविज महित, जय बोध रहित। जय दिव्य मूर्त्ति, जय विदित कीर्त्ति ॥
जय मदन बैरि, जय दुरित हारि। जय गुन निधान, जय सुख निधान ॥
जय शान्तरूप, जय विजित कोप। जय मोह विलय, जय धर्म निलय ॥
जय भव्य वन्द्य, जप जगद्वन्द्य। जय कान्तिधाम, जय पुण्यधाम ॥
जय मुनि गनेश, जय महाविनाश। जय दय समुद्र, जय नय समुद्र ॥
जय सच्चरित्र, जय जग पवित्र। जय सेव्य वचन, जय सत्य वचन ॥
जय यम कृतान्त, जय मुक्ति कान्त। जय बोध रूप, जय नष्ट ताप।
जय सकल रुद्र, जय जय जिनेन्द्र। जय श्रय धाम, जय जय विराम ॥

देव पुनः कहने लगे—

हे प्रभो आपके चरण प्रसाद से कल्याण, वचनचातुरी और निर्वाण मिलने में क्या देरी है। देवराज द्वारा आपके चरण निरन्तर वन्दनीय हैं। कर्मबन्धन को नाश करने के लिये आप दवाग्नि के समान है। इस प्रकार स्तुति देवों ने की। ३४

हलमुख देवों को आया हुआ देखकर आश्चर्य में डूब गया तथा कुछ भयभीत भी हुआ। मुनिराज के शरीर में लगायी गयी आग अपने आप शान्त हो गयी थी। उनके शरीर से अपूर्व कान्ति निकल रही थी, केवली मुनिराज ने

उसके चार भवों का वर्णन किया, जिससे उसे संसार से विरक्ति हो गयी और अपने किये कर्मों का पश्चात्ताप करने लगा। मुनिराज को जो उपसर्ग दिया था, उससे उसके मन में और भी कष्ट हुआ। पश्चात् उसने अवसर्पिणी काल का स्वभाव और व्यवहार जानने की अभिलाषा प्रकट की—

केवली—इस अवसर्पिणी काल में परहित करनेवालों का अभाव है, धर्मात्मा और दयालु व्यक्ति नहीं रहेंगे। शील, श्रद्धा, धर्म, दया से रहित पंचमकाल के मनुष्य होंगे। समय पर वर्षा नहीं होगी, असमय पर वर्षा होगी। मनमाने शास्त्र बनाये जायंगे, राजाज्ञा कोई नहीं मानेगा। सन्तान पिता की आज्ञा नहीं मानेगी। चोर, डाकुओं की बहुलता रहेगी, आपस में सहानुभूति और प्रेम का अभाव रहेगा। स्त्रियां पतियों पर विश्वास नहीं करेंगी, पतिव्रत धर्म क्षीण हो जायगा। व्यसनी व्यक्ति अधिक उत्पन्न होंगे। पंचम काल में विद्वानों का सम्मान नहीं होगा, विद्वान भी चरित्रवान नहीं होंगे। धनिक घमंड में रत रहेंगे, गरीबों का उपकार करनेवाला कोई नहीं रहेगा। सभी मनुष्य लोभ कषाय के वशीभूत हो जायंगे। राजलक्ष्मी नीच कुल में चली जायगी, अकुलीन राजा होंगे तथा इन्हीं में वैभव, धन, सम्पत्ति और सम्मान वर्तमान रहेंगे। धर्मात्मा दरिद्री होंगे, इन्हें नाना प्रकार के कष्ट होंगे, जिससे ये ऊब कर धर्म को छोड़ देंगे। जैनधर्म का ह्रास होगा, ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य मार्ग को छोड़ देंगे, नीच कर्म में रत रहेंगे। ये जैनधर्म से द्वेष करने लगेंगे, कुदेव और कुगुरुओं को मानेंगे। क्षत्रीय भी वीरता और शूरता को छोड़ चोरी और डकैती करने लगेंगे। वैश्य व्यापार छोड़ नीच कर्म करेंगे। धर्म की मर्यादा का लोप हो जायगा। आत्मकल्याणकारी जैन धर्म इने गिने व्यक्तियों में ही रह जायगा। मोक्ष इस काल में किसी को नहीं मिलेगा। हां धर्मात्मा व्यक्ति धर्म के प्रभाव से स्वर्ग जायेंगे। पुण्योदय से विभूतियां प्राप्त होंगी, पर प्रकृति भी उलटे रूप में प्रवृत होगी। मौसम समय पर न पड़ेंगें, सर्दी में गर्मी और गर्मी में सर्दी रहेगी।

इस प्रकार पंचमकाल की व्यवस्था सुनकर हलमुख विचलित हो गया, उसे संसार से विरक्ति हो गयी और गुरुदत्त केवली से जिनदीक्षा ग्रहण की। गुरुदत्त केवली पृथ्वी पर विहार करते हुए पल्लिखेट में आये और वहां द्रोणाचल पर निर्वाण को प्राप्त हुए।

जिन्होंने तिलतुषमात्र भी परिग्रह नहीं धारण किया है, उनको निर्वाण सुख प्राप्त करने में देरी नहीं लगती। सम्यग्दर्शन पूर्वक व्रताचरण और धर्माचरण करने से इस जीव का आत्मकल्याण हो जाता है।

इस प्रकार राजा श्रेणिक वसुभूति, अंजनचोर, अनन्तमती, उद्यायन, रेवतीरानी, जिनेन्द्रभक्त, वारिषेण कुमार वज्रकुमार, विष्णुकुमार, धनकीर्त्ति, धनदराजा, जिनेन्द्रदास, प्रमातिकुमार और गुरुदत्त महाराज इन चौदह कथाओं को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और भगवान की वन्दना, पूजा कर अपने नगर में लौट आया।

नगर में आकर उसने चौबीस तीर्थंकरों का अभिषेक किया, पश्चात् स्तुति पढ़ने लगा—

गुरु परमेश्वर सौख्यास्पद जय, दिविज गुणार्चितपादपद्म जय।
विरुदजित जिन दुरित हरण जय, शतमख शतनुत चारुचरण जय ।। १ ।।
संभव जिनपति दुरघ दूर जय, मुक्तिश्री कुचनूत हार जय।
सदभिनन्दन विगत मोह जय, रण्यालंकृत गुण समूह जय ।। २ ।।
सुमति जिनेश्वर परोपकार जय, मनसिज मदगज सिन्धुरारि जय।
पद्मप्रभु जिन शान्त रूप जय, लोकत्रय हित पूज्यपाद जय ।। ३ ।।
सत्सुपार्श्व भुवनैकसार जय, कर्म महीरुह वरकुठार जय।
चन्द्रप्रभहितकर मोहमल्ल जय, भाक्तिक जन कल्याण विजय जय ।। ४ ।।
पुष्पदन्तदिग्नव्यवस्त्रजय, किल्विषनगकुलवासवस्त्र जय।
शीतलशीतल सादृश वचन जय, वज्रशिलातल लिखित वचन जय ।। ५ ।।
श्रेयान्स जिनेन्द्र रुद्र जय, दुष्टकृतपन्नगपति खगेन्द्र जय।
वासुपूज्यदेवाधिदेव जय, सन्मुनि सेव्य महानुभाव जय ।। ६ ।।
विमल गुणरत्न राशि जय, निखिल शीलगुण तोय राशि जय।
अनन्यगुणाम्बुधिवीतराग जय, सर्वहितकर तीर्थंकर जय ।। ७ ।।
धर्म जिनेश्वर धर्म मार्ग जय, निष्ठुराष्टकर्माभ्रपवन जय।
शान्तिजिनेश्वर पुण्यनिलय जय, शरणागत जन कर्म विलय जय ।। ८ ।।

कुन्थुजिनेश्वर जगद्वन्द्य जय गुणमणि मुनिगण निकर वन्द्य जय ।
अर जिन सुरनर निकर वन्द्य जय, सारस्वतत्त्व विदित देवनुत जय ॥ ९ ॥
मल्लिजिनेश्वर सुस्वरूप जय, कर्म कलंक तमः प्रदीप जय ।
मुनिसुव्रत जिनराज हंस जय सुगतिबधू करणावतंस जय ॥ १० ॥
नेमि जिन मुक्तिश्री निवास जय, सकलश्री बनिताविलास जय ।
नेमि जिनेश्वर विनुत शरण जय, हरिकुल गगन सहस्त्र किरण जय ॥ ११ ॥
पार्श्वजिनेश्वर दिव्य मूर्त्ति जय, लोकालोक व्याप्त कीर्त्ति जय ।
वर्द्धमान जिन भुवन पूज्य जय, प्रबलाष्टदशदोष रहित जय ॥ १२ ॥

इस प्रकार राजा श्रेणिक ने भगवान् की पूजा की ।

यह धर्मामृत शक सं० १०३७ में नन्दन संवत्सर के भाद्रपद के शुक्लपक्ष में हस्तार्क दिन को रचा गया । जैसे सुदर्शनचक्र चक्रवर्ती राजा के लिये मान्य होता है, उसी प्रकार चौदह कथाओं वाले इस रत्न को धारण करने से महान कल्याण होगा ।

जो लोग दुराग्रह के कारण धर्मतत्त्वों को ग्रहण नहीं करना चाहते, उनके लिये उदाहरण देकर यह धर्मग्रन्थ रचा गया है ।

आचार्य नयसेन कहते हैं कि मूलगुन्द नामक गांव में रहकर भव्य जीवों के कल्याण के लिये इस उज्ज्वल धर्मामृत की रचना की गयी है । जब तक पृथ्वी पर सूर्य–चन्द्र रहेंगे, तब तक यह धर्मामृत ग्रन्थ अजर–अमर रहेगा । इस धर्मामृत का आस्वादन करने से प्राणीमात्र को शान्ति और सुख मिलेगा ।

